नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

एकादशांग

तृतीय खण्ड

(ज्ञाताधर्मकथा-उपासकदशांग-
अन्तगड--अनुत्तरोपपातिक-
प्रश्नव्याकरण-विपाकसूत्र)

विविध टिप्पण-परिशिष्टादि-समलंकृत

सम्पादक

जैन धर्मोपदेष्टा पंडित रत्न

१०८ मुनि श्री फूलचन्द जी महाराज 'पुप्फभिक्खू'

प्रकाशक

श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

C/o श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश, नया बांस, देहली-६.

अध्यक्ष—श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति 'अनेकान्तविहार'

सूत्रागम स्ट्रीट, S.S. जैन बाज़ार, गुड़गांव-छावनी (हरियाना).

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

ARTHĀGAMA

VOLUME III
(Containing 6 Angas)

Critically edited by

MUNI SHRĪ PHŪLCHAND JI MAHĀRĀJ

Published by

SHRĪ PYARE LĀL OM PRAKĀSH JAIN
President of

SHRĪ SŪTRĀGAMA PRAKĀSHAKA SAMITI
'Anekant Vihar'
Sutragama Street, S. S. Jain Bazar, Gurgaon Cantt (Haryana).

V.E. 2028 1971 A.D.

First Edition] 1000 Copies [Price Rs. 32-00

समप्पणं

पयासणमिणमम्हधम्मायरियविइयवेइयव्ववज्झब्भंतरायरणकरणत्तयविसुद्धिति-
पहगापगापवाहनिम्मूलियमणोअकुअकुडुंवाडंवरभगवंतरिहंतवयणारविंदविणिग्गय-
वित्थिण्णसुयपारावारपारपत्तणाणतवपहावपगासियजिणसासणभव्वगणमुद्धरि --
उमुज्जयमोहमल्लिक्कवीरसुमेरुगिरिधीरदुरियरयसमीरपावदावग्गिनीरअज्झप्प --
सत्थाणुराइअप्पडिवद्धविहारिक्कवइनिक्कामपरोवयारिसंतमुद्दभव्वुद्धारगमहारिसि-
प्पवरथविरपयविभूसियणायपुत्तमहावीरजइणसंघाणुयाइगयसग्गपरमपुज्ज १०८
सिरिजइणमुणिफकीरचंदमहारायाणं पुणीयसमरणे हिययविसुद्धभत्तिपुव्वगं
अंगछक्कसंजुयमत्थागमतइयखण्डरूवं समप्पिणोमि ।

पुप्फभिक्खू

समर्पण

अपने धर्माचार्य ज्ञातव्य-ज्ञाता-ज्ञातनंदनानुयायी—वीरवाणीप्रचारक-सुधर्म-प्रसारक-शासनप्रभावक-भव्योद्धारक-अध्यात्मशास्त्रानुरागी-विरागी परमत्यागी-निष्कामपरोपकारी—अनेकगुणधारी--उग्रविहारी—शान्तस्वभावी—परमप्रभावी-महर्षिप्रवर-दुर्द्धरव्रतधर-स्थविरपदविभूषित-अदूषित-गतस्वर्ग-लब्धमार्गापवर्ग-परम-पूज्य १०८ श्री जैनमुनि फकीरचंद जी महाराज की पावन स्मृति में हृदयवि-शुद्धभक्तिपूर्वक ज्ञातादि-अंगषट्कसंयुत इस अर्थागम-तृतीय खण्ड को सादर सम-पित करता हूं।

पुप्फभिक्खू

प्रकाशकीय

श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति की ओर से ३२ सूत्र (मूल पाठ) सुत्तागमे के रूप में छपकर प्रकाशित होने के पश्चात् इनका प्रचार ६० से भी अधिक देशों में सुचारु-रूप से हुआ है। वहां के क्षीर नीर विवेकी कोविदों और प्राध्यापकों ने स्वाध्याय, चिन्तन, मनन करके बड़ा सन्तोष प्रकट किया है और बड़े २ उच्चस्तरीय प्रशंसापत्र[१] भेजकर समाज के गौरव में अभिवृद्धि की है।

हर्ष का विषय है कि सुत्तागमे के पश्चात् अब उसी रूप में अर्थागम का प्रकाशन प्रारंभ हो चुका है। यद्यपि इससे पूर्व कुछ सूत्र आचारांगादि समिति द्वारा हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं[२]। यह अर्थागम का तृतीय खण्ड आपके हाथ में है जिसमें ज्ञाता से लगाकर विपाक तक ६अंग सूत्र हैं। आशा है जिज्ञासु-पाठकों को यह प्रकाशन आत्मा की खुराक का काम देगा, क्योंकि आत्मा की खुराक सुश्रुत-सम्यक्ज्ञान होता है। इसलिए जिज्ञासुओं-स्वाध्यायप्रेमियों को पसन्द आना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त जैन धर्मोपदेष्टा पं० रत्न १०८ श्री फूलचन्द जी महाराज के सम्पादन ने सोंने में सुहागे का काम किया है। म० श्री की पुनीत प्रेरणा से ही समिति की स्थापना हुई* और हम आपकी सेवा करनेमें समर्थ हो सके।

यों तो अब तक सूत्रों के बहुत से अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, परन्तु यह अपनी नाम नामी एक ही वस्तु है। अर्थागम के तीनों खण्डों को श्रुत या अध्यात्म-ज्ञान का महाभंडार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसके अतिरिक्त इसे लोकभाषा के सांचे में ढाल कर म० श्री ने अध्यात्म प्रेमी हिंदी पाठकों के लिए बड़ा सुगम सुनहरी द्वार खोल दिया है। आशा है पाठक वर्ग इसकी कदर करेगा और श्री महावीर भगवान के प्रतिपादित मौलिक एवं अकाट्य सिद्धान्तों को अन्तर में उतार कर कृतकृत्य होने का महालाभ लेने का प्रयत्न करेगा। इसके पढ़ने और चिन्तन के अनन्तर आप इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि हमारा गार्हस्थ्य जीवन कैसा होना चाहिए और सम्पूर्ण त्यागी वर्ग को उनके अपने जीवन का मार्गदर्शन कराते हुए उन्हें यह लगेगा कि सम्पूर्ण त्यागी जीवन कैसा होता है या हमारा संपूर्ण निवृत्तिपरायणता प्राप्त महाव्रती समाज श्री ज्ञातपुत्र महावीर भगवान् के आदेशों का कितना पालन कर रहा है। इसमें चारों अनुयोगों का

---

१. देखिए 'सुत्तागमे पर लोकमत' अर्थागम प्रथम खण्ड।

२. ,, 'प्रकाशकीय' ,, ,, ,,

समावेश है। प्रत्येक विषय १ इसमें आपको मिलेगा। और इस तृतीय खण्ड में तो प्रश्नव्याकरण को छोड़ कर बाकी सब सूत्र कथात्मक हैं। कथाएं उपदेशयुक्त होने के साथ २ रोचक भी हैं।

इसके सतत स्वाध्याय से आपका तीसरा ज्ञाननेत्र अवश्य उघड़ेगा और आपकी आत्मा अपने आत्मीय ज्ञान से अच्छी तरह समृद्ध होकर चमक उठेगी। तथा फिर परवादी समूह और कुदेव, कुगुरु और कुधर्म रूपी तमस्तोम इस परम-ज्ञान रूपी सूर्य के सामने पलायन होता नजर आएगा। इसीलिए आपको अपने गृह-पुस्तकालयों में इसे अवश्य स्थान देना चाहिए। क्योंकि चरित्र संगठन और मनोबल का विकास धर्मशास्त्र के स्वाध्याय से ही होना संभव है।

यद्यपि इस प्रकाशन में कारणवश विलम्ब हुआ२ तथापि यथाशक्य शीघ्रता से हम इस प्रकाशन को आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। शीघ्रता में अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक है। सतर्कता रखते हुए भी छद्मस्थावस्था से त्रुटि रहना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। अतः 'जब तीर छुट गया हाथ से थामे तो फिर कैसे थमे' की कहावत के अनुसार राजहंस के साथी विवेकी पाठकों की सूचना आने पर अगले संस्करण में उन्हें ठीक करने का प्रयत्न किया जा सकेगा।

पूज्य गुरुदेव जैन धर्मोपदेष्टा पं०रत्न मुनि श्री १०८ श्री 'फूलचन्द जी महाराज' जिन्होंने इसका सम्पादन किया, व मुनि श्री सुमित्रदेव जी 'निशाकर' जिन्होंने गुरु सेवा में संलग्न रहते हुए भी प्रूफसंशोधनादि में योग दिया, इनके हम बहुत २ आभारी हैं। इसके अतिरिक्त 'पं० जगप्रसाद त्रिपाठी' जिन्होंने प्रूफ संशोधनादि में योग दिया व प्रेस के व्यवस्थापक व कर्मचारीगण को भी नहीं भुलाया जा सकता जिनके अथक परिश्रम के कारण हम इतनी जल्दी इस ग्रन्थराज को आपकी सेवा में प्रस्तुत कर सके। साथ ही उन सभी महानुभावों का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जिनवाणी की सेवा की है।

आगम एक महान असीम समुद्र है। इसमें तत्वरत्न बड़े दुर्लभ्य और अमूल्य हैं। इसका स्वाध्याय साधक को अन्त से अनन्त में ले जाने का काम कर सकता है। इसमें यही विलक्षण आकर्षण है। साधक वर्ग यदि अनुभव, श्रद्धा, भक्ति और सोपयोगिता गुणग्राहकता द्वारा योग्य अभ्यास एवं चिंतन के गोते लगाकर अनन्त आत्मगुणमय रत्न-राशि के पाने का प्रयत्न करेगा तो हम अपनी ज्ञान सेवा का श्रम सफल समझेंगे।

निवेदक

मंत्री—बाबू रामलाल जैन तहसीलदार

प्रधान—लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

---

*समिति-स्थापना कारण व परिचय के लिए देखिए 'अर्थागम प्रथम खण्ड'।

१. देखिए 'विषयानुक्रमणिका' अर्थागम खण्ड १-२-३।

२. देखिए 'प्रकाशकीय' अर्थागम प्रथम खण्ड।

अब तक के साथी

स्तम्भ—श्री विजयकुमार चुनीलाल फूलपगर, पूना। लाला प्यारेलाल जैन दूगड़, अम्बरनाथ। श्री रतनचन्द भीखमदास बांठिया, पनवेल। मास्टर दुर्गाप्रसाद जैन, गुड़गावां। जैन संघ दोंडायचा। जैन संघ माटुंगा।

संरक्षक—श्री मोहनलाल धनराज कर्णावट, कोयालीकर पूना। श्री धूलचन्द मेहता, ब्यावर। श्री नाथालाल पारख, माटुंगा। श्री चुनीलाल जसराज मुणोत, पनवेल। श्री छबीलदास त्रिभुवनदास, रंगून। श्री जुगराज श्रीश्रीमाल, येवला।

सहायक—श्रीमती लीलादेवी चुनीलाल फूलपगर, पूना। श्रीमती पतासीबाई धनराज कर्णावट, पूना। D. हिम्मतलाल एण्ड कं० बम्बई। श्री वीरचन्द हर्षचन्द मंडलेचा, श्री चांदमल माणिकलाल मंडलेचा, येवला। श्री व० स्था० जैन संघ धरणगांव, हिंगोना। श्री धन जी भाई मूलचन्द दफ्तरी, वडाला। लाला सुमेरचन्द, लक्ष्मीचन्द चन्द्रभान बम्बई, देहली। श्री शिवलाल गुलाबचंद, माटुंगा। श्री मणिलाल लक्ष्मीचन्द बोरा, दादर। श्री चिमनलाल सुखलाल गांधी, शिवमाइन। लाला कस्तूरीलाल बंशीलाल जैन, जम्मू-तवी। श्री अमरनाथ, न्यादरमल जैन, कटरा गौरीशङ्कर-देहली।

सदस्य—श्री धनराज दगड़ूराम संचेती, पूना। श्री फूलचन्द उत्तमचन्द कर्णावट, पूना। श्रीमती शांतादेवी फूलचन्द कर्णावट, पूना। श्री रूपचन्द दगड़ूराम मुथा, पूना। श्री चन्द्रभान रूपचन्द कर्णावट, पूना। श्री माणकचन्द राजमल बाफना, बड़गांव-पूना। श्री मणिलाल केशव जी खेताणी, बम्बई। श्री रामलाल जैन, गुड़गावां। श्री पानाचंद डाह्याभाई, माटुंगा। श्री अमृतलाल अविचल महता, माटुंगा। डाक्टर चुनीलाल दाम जी वैद्य, बम्बई। श्री वेल जी कर्मचन्द कोठारी, बम्बई। श्री कान्तिलाल जे० गांधी, बम्बई। श्री नरभेराम मोरार जी मेहता, अम्बरनाथ। श्री भाईचन्द लाखानी, बम्बई। श्री केसरमल हजारीमल धाड़ीवाल, कोपरगांव। जैन संघ सोनई। मणिलाल रूपचन्द गांधी, बम्बई। त्रिकम जी लाधाजी, जुन्नरदेव। जैन संघ शाहादा। बख्तावरमल चान्दमल भंसाली, खेतिया। श्री धनराज रामचन्द पगारिया, हिंगोना। श्री कीमतराय जैन, B.A. दादर। श्री खींवराज आनन्दराम बांठिया, पनवेल। वेरसी नरसी, त्रंबोऊ-कच्छ। श्री शोभाचन्द घूमरमल बाफणा, घोड़नदी। श्री रविचन्द सुखलाल शाह, बम्बई। श्री भाण जी पालण छेड़ा, डोंबीवली। श्री रामलाल तिलकराज जैन, जम्मू। श्री बशेशरदयाल आनन्दस्वरूप जैन, गुड़गांवा-कैण्ट (हरियाना)। लाला जानकीदास जैन, सोनीपत। लाला ज्योतिप्रसाद जैन, सोनीपत। लाला तुलसीराम परसराम जैन खत्री, रोपड़। मास्टर लखमीचन्द-पाटोदी। बाबू बद्रीप्रसाद जैन, पोलीस इं० जम्मू-तवी। श्री शांतिलाल, तारदेव-बम्बई।

प्रस्तुत प्रकाशन में सहायक

१. श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति ३०००)

स्तम्भ--२. श्रीमती प्रकाशदेवी अग्रवाल (अपने पति स्वर्गीय श्री अमरनाथ अग्रवाल की पुण्य स्मृति में) हौज़ खास देहली। २०००)

सहायक--३. भगत हुकमचंद जैन, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। ५००)

४. प्रकाशचन्द जी जैन फर्म लाला कश्मीरीलाल महावीर-प्रसाद जैन गुणा वाले हाल शक्तिनगर देहली। ५००)

सदस्य--५. मास्टर लखमीचन्द जैन पटौदी वाले हाल बहादुरगढ़ रोड देहली। २५१)

६. श्रीमती शर्वती देवी जैन डिप्टीगंज, देहली। २५१)

७. सेठ शीतलप्रसाद जैन, मेरठ। २५१)

८. सेठ हरिकिशनलाल अग्रवाल, मेरठ। २५१)

९. श्री प्रेमनाथ जी जैन, मेरठ। २५१)

१०. लाला प्यारेलाल ओम्प्रकाश जैन, नयाबांस देहली २५१)

११. मिट्ठनलाल कालूराम जी जैन, पटौदी वाले, शांतिनगर दिल्ली। २५०)

१२. सेठ हरीराम पृथ्वीचन्द जैन, गली नत्थनसिंह पहाड़ी धीरज देहली। २५०)

१३. लाला रामचन्द होशियारसिंह जैन हिसार वाले हाल गुड़गांवा। २५०)

अन्य सेवा प्रदायक

१. सेठ आनन्दराज जी सुराणा, चांदनी चौक देहली (टाइप सेवा)।

२. टेकचन्द जी जैन, रूपनगर दिल्ली (टाइप सेवा)।

३. लाला फूलकुमार जी अग्रवाल, नई सड़क देहली। (२० रिम कागज सेवा)

४. लाला मूलचन्द जी जैन, नया बांस देहली। (१० रिम कागज़ सेवा)

५. बाबू सुमतप्रकाश जी जैन कांसन वाले। (५ रिम कागज सेवा)

सूयणा

एसो णायाधम्मकहा-उवासगदसा-अंतगडदसा-अणुत्तरोववाइय-पण्हावागरण-विवागसुयजुयत्थागमतइयंसो अम्हमायरियाणमक्कुव्व सुयणंवुरुहवोहणअण्णाण-मोहतिमिरभरहरणधम्मुज्जोयकरणेक्कतल्लिच्छाणऽसंतावकराणमग्गिव्व उग्ग-तवतेयदित्ताणऽसव्वभक्खीण ससहरुव्व विवुहजणमणचओराणममंदाणंददायग-भव्वहियकेरववियासगाणं नियसियजसजुण्हाधवलियदियंतराणमण्णउत्थियच-क्कविहडणपयडमाहप्पाणं पावकलंकवंकत्तणविमुक्काणं मयरहरुव्व गंभीरिमा-मेराणाणचरणाइनिम्मलगुणरयणाऊरियाणं किंतु पयइखारत्तपरिचत्ताणं मरा-लुव्व परगुणखीरगहणदोसंवुविवज्जणवियक्खणाणं अद्दिव्व धीरिमापडिहत्थाण-मजडमईणं खं व अणप्पकुवियप्पसंकप्पसुण्णाणं अमरत्तमणुपत्ताणं अज्जपरम-पुज्जवंदणिज्जाणं १०८ सिरिफकीरचन्दमहापुरिसाणं धारणाववहाराणुसारं विज्जइ, जइ दिट्ठिमुद्दणदोसत्तो वा कत्थ वि कावि असुद्धी हुज्ज सोहिज्जउ पेसिज्जउ अस्सोवरि ससम्मई इमस्स सज्झायं कट्टु वुहा णिरावाहं सुहं पाउणंतु त्ति वेइ।

गुरुचलणसयवत्तरसाऊ
पुप्फभिक्खू

सूचना

यह प्रकाशन मेरे धर्माचार्य, साधुकुलशिरोमणि, श्री १०८ श्री श्री श्री फकीरचन्द्र जी महाराज (स्वर्गीय) के धारणा व्यवहार के अनुसार है। यदि कोई दृष्टि-मुद्रणादि दोष रह गया है तो सुधार कर पढ़ने का कष्ट करें। ३२ आगम इसी प्रकार अर्थागम के रूप में हिन्दी में प्रकाशित हो रहे हैं। पाठकगण अपनी सम्मति 'समिति' को भेजें।

पुप्फभिक्खू

किंचित् प्रासाङ्गिक[1]

इस अनादि अनन्त दु:खाकीर्ण जगत में जन्म-जरा-आधि-व्याधि-उपाधि आदि दु:खों से संतप्त जीवों को धर्म के बिना चिर सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि 'धर्मात्सुखं" धर्म से सुख मिलता है। सुख-प्राप्ति में धर्म कारण-भूत है। विना कारण के कार्य की निष्पत्ति कैसे हो सकती है। ज्ञानके अभावमें मुंह पर दो आंखें होने पर भी मनुष्य अंधेके समान हो जाता है, और वह धर्माचरण नहीं कर सकता। इसीलिए तो भगवान् ने फर्माया है, 'पढमं नाणं तओ दया' अर्थात् पहले ज्ञान होना आवश्यक है। हेय, ज्ञेय और उपादेय पदार्थों को जाने विना जीव धर्म का भली-भांति पालन नहीं कर सकता।

पंचविध ज्ञान में श्रुतज्ञान स्वपर हितकारी होने से विशिष्ट स्थान रखता है। श्री तीर्थंकर भगवन्तों ने भव्य जीवों के उद्धार के लिए विविधोपदेश दिया, जिसे सुज्ञ गणधरों ने द्वादशांगी रूप गुंफित करके प्रचारित किया। एक-एक अंग के पुष्टिकर १२ उपांग, साधुओं के आचार-विचार के शुद्धीकरण के लिए चार छेद सूत्र, प्रमाण-नय-निक्षेप व्याकरण प्रमुख विषयों से युक्त मूल गुण पुष्टिकारक ४ मूल सूत्र कहलाए। व्रतधारियों के मूल उत्तरादि गुणों की रक्षा के लिए उभय काल आवश्यक होने से 'आवश्यक सूत्र' नाम पड़ा। १२ वें अंग दृष्टिवाद के विच्छेद होने पर ११ अंग, १२ उपांग, चार छेद, चार मूल, ३२ वां आवश्यक सूत्र ये वत्तीस सूत्र स्थानकवासी जैन समाज द्वारा प्रामाणिक माने जाते हैं।

इन बत्तीसों आगमों में साधु श्रावकादि के ज्ञातव्य-आदेय-हेय विषयों का वर्णन है। आत्मा-कर्म-धर्म-ज्ञान-दर्शन-चरित्र-सम्यक्त्व-तप-संयम-प्रमाण-नय-निक्षेप-निश्चय-व्यवहार-मिथ्यात्व-कषाय-प्रमादाप्रमाद-व्रत-योग-लोकालोक-षड्-द्रव्य-जीवादि ६ तत्त्व-लेश्या-संसार-बंधोदय-उदीरणा-वेदना-निर्जरा-मोक्ष-नरक-तिर्यच-मनुष्य-देव प्रमुख विविध विषय यथा-स्वरूप इन सूत्रों में अनंतज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट हैं। विश्वमें अनेकों धर्म हैं, अनेकों ग्रंथ हैं, और अनेक मत हैं। उन धर्मशास्त्र व मतोंके प्रवर्तक भी अनेक हुए। उपरोक्त प्रत्येक विषय की वक्तव्यता जैसी जैनागमों में पृथक्करणपूर्वक और गूढ़रहस्ययुक्त प्रत्यक्षज्ञानियों द्वारा दर्शित की गई है वैसी अन्यत्र नहीं मिलती। सर्वज्ञोंने लोकमें स्थावर-जंगम-रूपी-अरूपी पदार्थ जैसे केवलदर्शनसे देखे वैसे ही जन-हितार्थ प्ररूपित किए।

---

१. सम्पादकीय बृहत्प्रस्तावना के लिए अर्थागम प्रथम खण्ड देखें।

इन ३२ सूत्रों में आचारांग आदि कुछ सूत्रों का जर्मन अनुवाद डा० हर्मन जैकोबी व प्रो० शुब्रिंग जैसे विद्वानों ने किया। ज्ञाताधर्मकथा-उपासकदशांग व विपाकादि कुछ सूत्रोंका अंग्रेजी अनुवाद डा० ए. एन. उपाध्ये, डा० पी. एल. वैद्य आदि द्वारा अनूदित होकर प्रकाशित हुआ है। जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज ने सभी सूत्रों में से छांटकर विषयानुक्रम से गीता के समान १८ अध्यायों में 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' को संग्रह किया जिसका अंग्रेजी अनुवाद मी उपलब्ध होता है। गुजरातसे कुछ सूत्र गुजराती में भी प्रकाशित हुए हैं। संस्कृत टीकाएं आगमोदय-समिति सूरत द्वारा वर्षों पूर्व प्रकाशित हुई। हिन्दी अनुवाद भी अब तक बहुत से प्रकाशित हुए व हो रहे हैं।[१]

परन्तु दुर्वह होने के कारण मुनिगण विहार में उपरोक्त सकल ग्रन्थों को साथ नहीं रख सकते। प्रत्येक पुस्तकालय में सभी सूत्र उपलब्ध भी नहीं होते। इस कमी को दूर करने के लिए पूज्य गुरुदेव जैन धर्मोपदेष्टा पं० रत्न मुनि श्री १०८ श्री फूलचन्द जी महाराज ने 'सुत्तागमे' के रूप में बतीसों सूत्रों को गुरुधारणानुसार शुद्ध मूल पाठके रूपमें संपादित किया व श्री सूत्रागमप्रकाशकसमितिने प्रकाशित किया। सुत्तागमेको सभी नहीं समझ सकते, इसलिए अर्थागम प्रकाशित करने की योजना बनी व आचारांगादि कई सूत्र अलग २ रूप में समिति द्वारा प्रकाशित हुए।

तत्पश्चात् सुत्तागमे की तरह अर्थागम को अंग-उपांग-मूल-छेदावश्यक चार जिल्दों में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। फलस्वरूप ११ अंग प्रकाशित हो रहे हैं। पृष्ठ संख्या अधिक हो जाने के कारण इनको तीन खण्डों में विभक्त करना पड़ा। प्रस्तुत खण्ड में ज्ञाताधर्मकथांगसे लेकर विपाक तक ६ अंगसूत्र हैं। प्रश्नव्याकरण को छोड़ कर शेष सारे सूत्र कथामय हैं। गृहस्थों के लिए (उपासकदशांगमें गृहस्थ-धर्मका विस्तृत वर्णन होने के कारण), बच्चों के लिए (मनोरंजक व शिक्षाप्रद होने के कारण), साधु-साध्वियोंके लिए (व्याख्यानोपयोगी व प्रेरणात्मक होने के कारण) यह खण्ड विशेष उपयोगी है। वैसे तो साङ्गोपाङ्ग अध्ययन के लिए तीनों खण्ड आवश्यक हैं ही।

ज्ञाताधर्मकथांग के प्रथम श्रुतस्कंध में १९ कथाएं उपनय सहित हैं। जो कि रोचक होने के साथ २ बोधप्रद भी हैं, मेघकुमार की यावत् कंडरीक-पुण्डरीक की। एक बार पुस्तक पकड़ लेने पर पूरी किए बिना छोड़ने का जी नहीं करेगा। दूसरे श्रुतस्कंधमें शिथिलाचार द्वारा होने वाले दोषोंका दिग्दर्शन कराने वाली

---

१ देखिए प्रस्तावना 'सुत्तागमे' प्रथम अंश।
„ „ 'अर्थागम' „ खण्ड।

कथाएं हैं। उपासकदशांगमें ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के १० मुख्य श्रावोंकका वर्णन है। उनमें भी आनन्द और कामदेवका मुख्य स्थान है। अन्तकृद्दशांगमें उन ६० महापुरुषोंका चरित्र है, जिन्होंने कर्मोंका निकंदन करके मोक्ष प्राप्त किया है। इसमें गजसुकुमाल, अर्जुनमाली, अयवन्ता (अतिमुक्त)कुमार, पद्मावती रानी की कथाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। अनुत्तरोपपातिक सूत्रमें अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले महापुरुषों का वर्णन है। जिसमें महा तपोधन धन्य अनगारका वर्णन मुख्य है। प्रश्नव्याकरण के आश्रवद्वार में हिंसा-असत्य-स्तेय-अब्रह्म और परिग्रह इन पांचों का स्वरूप समझाया गया है। इनके कर्ताओं और फल का वर्णन भी है। संवरद्वार में अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह, उनका फल और साथ ही उनकी भावनाएं वर्णित हैं। प्रश्नव्याकरण की भाषा अलंकारिक है फिर भी अनुवाद सरलातिसरल देनेका प्रयत्न किया गया है, ताकि प्रत्येक पाठक सुगमतापूर्वक समझ सके। विपाकसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधमें १० जीवों का वर्णन है, जिन्होंने असीम पाप करके महान कष्ट उठाए, मृगापुत्रका यावत् अंजू का। दूसरे श्रुतस्कंधमें उन १० जीवोंका वर्णन है जिन्होंने सुपात्र दान देकर सुख प्राप्त किया। सुबाहुकुमार का यावत् वरदत्तकुमार का।

इन ग्यारह अंगोंमें धर्मकथानुयोग (प्रथमानुयोग), गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोगके प्रायः सभी विषय वर्णित हैं। इनका अध्ययन—चिन्तन—मनन करके अनेक भव्य आत्माओंने उत्तरोत्तर संसार का अन्त करके मुक्ति प्राप्त की है। इनकी महत्ता बताना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। ये सुभाषितों के महा भण्डार हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन की विशेषता—(१) पाठशुद्धि का पूरा २ ख़याल रक्खा गया है।

(२) इसके संपादन में शुद्ध प्रतियोंका उपयोग किया गया है।

(३) कठिन शब्दोंके विशेपार्थ टिप्पण व कोष्ठक में दे दिए गए हैं, ताकि समझने में आसानी हो।

(४) जहां तक सम्भव हुआ पुनरुक्तिसे बचने का प्रयत्न किया गया है और उसके लिए······चिन्ह का प्रयोग किया गया है अर्थात् पूर्ववत् समझें।

(५) जहां स्पष्टीकरण की आवश्यकता समझी गई वहां यथास्थान स्पष्टीकरण भी दे दिया गया है।

(६) ज्ञाताधर्मकथाकी प्रत्येक कथाके पीछे उपनय व उपासकदशांगादिमें प्रत्येक अध्ययनके पीछे उसका सार भी दे दिया गया है।

(७) अन्तगड़सूत्रके तपोंकी तालिका उसी के परिशिष्ट में दे दी गई है।

(८) परिशिष्ट में *अकारादि अनुक्रमणिका व शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथका मुद्रण-कार्य चैत्र नवरात्र विक्रम नववत्सर से प्रारम्भ हुआ व दीपमालिका के दिन इसकी समाप्ति हुई। इसमें पूज्य गुरुदेवकी प्रेरणा व आशीर्वाद ही मुख्य कारण है, उनका उपकार वर्णनातीत है। मुनि श्री सुमित्र-देव जी महाराज ने प्रूफ संशोधनादि में योग देकर गुरुतमभार को वहुत कुछ हल्का किया। इसके लिए मैं उनका वहुत २ आभारी हूं। प्रेस के व्यवस्थापक श्री नारायणसिंह जी व अन्य कर्मचारीगण भी साधुवादार्ह हैं जिनके निरन्तर परिश्रम से यह विशाल ग्रन्थ जो ५२५०० श्लोकप्रमाण है, व लगभग १८००० पृष्ठों में पूर्ण हुआ है, इतने थोड़े से समय में हम आपके सम्मुख प्रस्तुत कर सके हैं।

इनके अतिरिक्त जिन २ महानुभावों के प्रकाशनों से सहायता ली गई है, उन सबका तथा जिन २ धर्मप्रेमियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस प्रकाशन में सहायता दी है उनका भी मैं आभारी हूं। गुरुदेव के स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण प्रूफ संशोधनादिका अधिकांश भार मेरे ऊपर रहा। अतः कार्यवाहुल्य, शीघ्रता, दृष्टि मुद्रणादि दोष से यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो पाठक सुधार कर पढ़ें।

दीपावली — सुज्ञेषु किं वहुना—

ईश्वर भवन — **ज. प्र. त्रिपाठी**

१७ माडलवस्ती-रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली -५ — ता० १८-१०-७१.

*पारिभाषिक शब्दकोपके लिए अर्थागम प्रथम खण्ड देखें।

विषयानुक्रमणिका

ज्ञाताधर्मकथा

उपासकदशांग

श्री अन्तकृतदशांगसूत्र

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र

प्रश्नव्याकरण सूत्र

विपाकसूत्र

अर्थागम-तृतीय खण्ड

परिशिष्ट नं० १

अकारादि अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१२६६	जसी	जैसी
१२६७	वढ़ा वाला	वढ़ाने वाला
१२७४	करवनी	करधनी
१२७७	अथगम	अर्थागम
१२८१	अभयकुमारक	अभयकुमार के
१२८३	श्र० १ अ० १	श्रु० १ अ० १
१२८४	आष्य	आयुष्य
१३०६,१३२६	पेर	पैर
१३०७	सासें	सांसें
१३२०	सेच्यवन	से च्यवन
१३३०	दिपे	दिए
१३३६	करत	करती
१३४२	ज्ञातार्यमंकथा	ज्ञाताधर्मकथा
१३४४	वहुसख्यक	वहुसंख्यक
१३५१	अ ो क	अनेक
१३८९	जेसा	जैसा
१४००	गंधये	गंध से
१४०९	व्यतोत	व्यतीत
१४११	गजना	गर्जना
१४१३	माकंदोपुत्रों	माकंदीपुत्रों
१४३०	परिणाम न	परिणामन
१४३२	'हे	'है
१४३३	आहलादकारी	आह्लादकारी
१४४२	जाता	जाता
१४४७	अ० १	श्रु० १
१४५१	नहों	नहीं
१४५३	महान्	माहण
१४५६	अर्थागम	अर्थागम
१४८६	नार ने	नारद ने
१५०३	अधययन	अध्ययन
१५१६	पोछे	पीछे
१५२४	पुडरीक-कंडराक	पुंडरीक-कंडरीक
१५२६	विद्युत	विद्युत्
१५२७	दव्य	दिव्य
१५२९	सनूह	समूह
१५३०	कली	काली
१५३९	समात	समाप्त
१५४३	रखोसे	रखने से
१५४६	वठकर	बैठकर
,,	उपासक दशांग	उपासकदशांग
१५४७	तपस्वो	तपस्वी
१५५८	आदमो	आदमी
१५६०	क्षत्र	क्षेत्र
,,	हस्थ	गृहस्थ
१५६४	आन	आनन्द
१५७२	बिच्छ छ	बिच्छू छू
१५८१	उक्खेवों	उक्खेवो
१५८३	जेसे	जैसे
,,	चौड़ो ओर	चौड़ी और
१५८७	अ ो क	अनेक
१५८९	वराग्य	वैराग्य
१६०१	शाम्वकुमारक	शाम्वकुमार की
१६०५	विनाश जाय	विनाश हो जाय
१६१०	अयन्त	अत्यन्त
१६११	अप्यन्त	अत्यन्त
१६१२	श्री अन्तकृतदशांगसूत्र	श्रीअन्तकृत-दशांगसूत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१६१५	का	काली
१६१७	मक्त	मुक्त
१६३१	दोर्घदन्त	दीर्घदन्त
१६३५	पानो	पानी
१६४६,१६५६	अथागम	अर्थागम
१६६८	हे	हैं
१६६६	चारो	चोरी
१६७२	अथाम	अर्थागम
१६७५	मछलो	मछली
१६८२	खाएं	रेखाएं
१६८३	विषा में	विषय में
१६८४	अथागम	अर्थागम
१६८८	जम्वू	जम्वू
१६६२	कतव्य	कर्तव्य
१७०४	ब्रह्मचय	ब्रह्मचर्य
१७०६	तीर्थरूप	तीर्थरूप
१७०७	जुनते	जुलते
,,	ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य
१७१०	वोतराग	वीतराग
१७१२	कल्पनोय	कल्पनीय
१७१६	धुंघरी	घुंघरी
,,	अथागम	अर्थागम
१७२३	मृगापत्र	मृगापुत्र
१७३०	तेजलेश्या	तेजोलेश्या
१७३५	ताला ताड़ना	ताला तोड़ना
१७४४	डडोंसे	डंडों से
१७४६	वांवीं	वांवी
१७५०	घ्याने	ध्याने
१७५७	तोर्थकर	तीर्थकर

———

क्रय, विक्रय, मान, उन्मान का निषेध किया, और ऋणियों को ऋण-मुक्त किया तथा दण्ड और कुदण्ड का निषेध किया। प्रजा के घर में सुभटों के प्रवेश को बन्द कर दिया और धरणा देने का निषेध कर दिया। इसके अतिरिक्त गणिकाओं और नाटिकाओं से युक्त तथा अनेक तालानुचरों से निरन्तर बजाई जाती हुई मृदंगों से युक्त, तथा प्रमोद एवं क्रीड़ापूर्वक सभी लोगों के साथ दस दिन तक पुत्र महोत्सव मनाया जाता रहा। इन दस दिनों में बलराजा सैकड़ों, हजारों, लाखों रुपयोंके खर्च वाले कार्य करता हुआ, दान देता हुआ, दिलवाता हुआ एवं इसी प्रकार सैंकड़ों, हजारों, लाखों रुपयों की भेंट स्वीकार करता हुआ विचरता रहा। फिर बालक के माता-पिता ने पहले दिन कुल मर्यादा के अनुसार क्रिया की। तीसरे दिन बालक को चन्द्र और सूर्य के दर्शन कराये। छठे दिन जागरणारूप उत्सव विशेष किया। ग्यारह दिन व्यतीत होने पर अशुचिकर्म की निवृत्ति की। बारहवें दिन विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार कर (ग्यारहवें शतक के नौवें उद्देशक में कथित शिवराजा के समान) सभी क्षत्रिय ज्ञातिजनों को निमंत्रित कर भोजन कराया। फिर उन सब के समक्ष अपने बाप-दादा आदि से चली आती हुई कुल परम्परा के अनुसार कुल के योग्य, कुलोचित, कुलरूप सन्तान की वृद्धि करने वाला, गुणयुक्त और गुणनिष्पन्न नाम देते हुए कहा-'क्योंकि यह बालक बलराजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिए इसका नाम 'महाबल' रक्खा जाय।' अतएव बालकके माता-पिताने उसका नाम महाबल रखा।

महाबलकुमार का-१ क्षीरधात्री, २ मज्जनधात्री, ३ मण्डनधात्री, ४ क्रीडनधात्री, ५ अंकधात्री-इन पांच धात्रियों द्वारा राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित दृढ़प्रतिज्ञ कुमारके समान पालन किया जाने लगा। वह कुमार वायु और व्याघात रहित स्थानमें रही हुई चम्पक लताके समान अत्यन्त सुखपूर्वक बढ़ने लगा। महाबल कुमारके माता-पिताने अपनी कुल-मर्यादाके अनुसार जन्म-दिनसे लेकर क्रमशः सूर्य-चन्द्र दर्शन, जागरण, नामकरण, घुटनोंके बल चलाना, पैरोंसे चलाना, अन्न भोजन प्रारम्भ करना, ग्रास बढ़ाना, संभाषण करना, कान बिंधाना, वर्षगांठ मनाना, चोटी रखवाना, उपनयन (संस्कृत) करना, इत्यादि बहुत से गर्भधारण जन्म-महोत्सव आदि कौतुक किये।

जब महाबल कुमार आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्रका हुआ, तो माता-पिता ने प्रशस्त, तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्तमें पढ़नेके लिये कलाचार्यके यहां भेजा, इत्यादि सारा वर्णन दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के अनुसार कहना चाहिये यावत् महाबल कुमार भोग भोगनेमें समर्थ हुआ। महाबल कुमार को भोग योग्य जानकर माता-पिताने उसके लिये उत्तम आठ प्रासाद बनवाये। वे प्रासाद 'राजप्रश्नीय' सूत्र में उल्लिखित वर्णन के अनुसार अतिशय ऊंचे यावत् अत्यन्त सुन्दर थे। उनके ठीक

मध्य में एक बड़ा भवन तैयार करवाया। उस भवन में सैंकड़ों खम्भे लगे हुये थे, इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र के प्रेक्षागृह मण्डप वर्णन के समान जान लेना चाहिये यावत् वह अत्यन्त सुन्दर था ॥४२८॥

शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्तमें महाबल कुमार को स्नान करवा कर अलंकारोंसे अलंकृत एवं विभूषित किया। फिर सधवा स्त्रियों के द्वारा अभ्यंगन, विलेपन, मण्डन, गीत, तिलक आदि मांगलिक कार्य किये गये। तत्पश्चात् समान त्वचा वाली, समान उम्र वाली, समान रूप, लावण्य, यौवन और गुणों से युक्त एवं समान राजकुलसे लाई हुई उत्तम आठ राजकन्याओंके साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया गया।

विवाहोपरान्त महाबलकुमार के माता-पिता ने अपनी आठों पुत्रवधुओं के लिए प्रीतिदान दिया। यथा–आठ कोटि हिरण्य(चांदी के सिक्के), आठ कोटि सोनैया (सोने के सिक्के), आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुन्डलयुगल, आठ उत्तम हार, आठ उत्तम अर्द्ध हार, आठ उत्तम एकसरा हार, आठ मुक्तावली हार, आठ कनकावली हार, आठ रत्नावली हार, आठ उत्तम कड़ोंकी जोड़ी, आठ उत्तम त्रुटित (बाजूबन्द) की जोड़ी, उत्तम आठ रेशमी वस्त्र युगल, आठ उत्तम सूती वस्त्रयुगल, आठ टसर वस्त्र युगल, आठ पट्ट युगल, आठ दुकूल युगल, आठ श्री, आठ ह्री, आठ धी, आठ कीर्ति, आठ बुद्धि, और आठ लक्ष्मी देवियों के चित्र, आठ नन्द, आठ भद्र, आठ ताड़ वृक्ष, ये सब रत्नमय जानने चाहिएं। अपने भवन में केतु (चिन्ह रूप) आठ उत्तम ध्वज, दस हजार गायों का एक व्रज (गोकुल) ऐसे आठ उत्तम गोकुल, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है,—ऐसे आठ उत्तम नाटक, आठ उत्तम घोड़े, ये सब रत्नमय जानने चाहिएं। भाण्डागार समान आठ रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, भाण्डागार—श्रीधर समान सर्व रत्नमय आठ उत्तम यान, आठ उत्तम युग्म (एक प्रकार का वाहन), आठ शिविका, आठ स्यन्दमानिका, आठ गिल्ली (हाथी की अम्बाड़ी), आठ थिल्लि (घोड़े का पलाण—काठी), आठ उत्तम विकट (खुले हुए) यान, आठ पारियानिक (क्रीड़ा करने के) रथ, आठ संग्रामिक रथ, आठ उत्तम अश्व, आठ उत्तम हाथी, दस हजार कुल—परिवार जिसमें रहते हों ऐसे आठ गांव, आठ उत्तम दास, आठ उत्तम दासियां, आठ उत्तम किंकर, आठ कंचुकी (द्वार रक्षक), आठ वर्षधर (अन्तःपुरके रक्षक खोजा), आठ महत्तरक (अन्तःपुर के कार्य का विचार करने वाले), आठ सोने के, आठ चांदी के और आठ सोने-चांदी के अवलम्बनदीपक (लटकने वाले दीपक—हण्डियां), आठ सोने के, आठ चांदी के, आठ सोने-चांदी के उत्कञ्चन दीपक (दण्ड युक्त दीपक—मशाल), इसी प्रकार सोना, चांदी और सोना-चांदी, इन तीनों प्रकार के आठ पञ्जर दीपक।

सोना, चांदी और सोना-चांदी के आठ थाल, आठ थालियां, आठ स्थासक (तसलियां), आठ मल्लक (कटोरे), आठ तलिका (रकावियां), आठ कलाचिका (चम्मच), आठ तापिकाहस्तक (संडासियां), आठ तवे, आठ पादपीठ (पैर रखने के वाजोठ), आठ भीपिका (आसन विशेष), आठ करोटिका (लोटा), आठ पलंग, आठ प्रतिशय्या (छोटे पलंग), आठ हंसासन, आठ क्रौंचासन, आठ गरुड़ासन, आठ उन्नतासन, आठ अवनतासन, आठ दीर्घासन, आठ भद्रासन, आठ पक्षासन, आठ मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक्स्वस्तिकासन, आठ तेल के डिब्वे, इत्यादि सभी राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार जानने चाहियें, यावत् आठ सर्षप के डिब्वे, आठ कुब्जा दासियां इत्यादि सभी औपपातिक सूत्रके अनुसार जानने चाहियें, यावत् आठ पारस देश की दासियां, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियां, आठ चामर, आठ चामरधारिणी दासियां, आठ पंखे, आठ पंखाधारिणी दासियां, आठ करोटिका (ताम्बूल के करण्डिए), आठ करोटिकाधारिणी दासियां, आठ क्षीरधात्रियां (दूध पिलाने वाली धाय), यावत् आठ अङ्कधात्रियां, आठ अंगमर्दिका (शरीरका अल्प मर्दन करने वाली दासियां), आठ उन्मर्दिका (शरीर का अधिक मर्दन करने वाली दासियां), आठ स्नान कराने वाली दासियां, आठ अलङ्कार पहनाने वाली दासियां, आठ चन्दन घिसने वाली दासियां, आठ ताम्बूलचूर्ण पीसने वाली, आठ कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ सभा में पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक (साथ जाने वाली), आठ रसोई वनाने वाली, आठ भण्डारकी रक्षा करने वाली, आठ तरुणियां, आठ पुष्प धारण करने वाली (मालिन), आठ पानी भरने वाली, आठ शय्या विछाने वाली, आठ आभ्यन्तर और आठ वाह्य प्रतिहारियां, आठ माला वनाने वाली और आठ पेषण करने वाली दासियां दीं। इसके अतिरिक्त वहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छापूर्वक देने और भोगनेके लिये पर्याप्त था। इसी प्रकार महावल कुमारने भी प्रत्येक स्त्री को एक-एक हिरण्य कोटि, एक-एक स्वर्ण कोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएं दीं, यावत् एक-एक पेषणकारी दासी, तथा वहुतसा हिरण्य-सुवर्णादि विभक्त कर दिया। वह महावलकुमार नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में कथित जमालिकुमार के वर्णन के अनुसार उस उत्तम प्रासाद में अपूर्व भोग भोगता हुआ रहने लगा ॥४२९॥

उस काल उस समय में तेरहवें तीर्थंकर भगवान् विमलनाथ स्वामीके प्रपौत्र (प्रशिष्य-शिष्यानुशिष्य) धर्मघोष नामक अनगार थे। वे जाति-सम्पन्न इत्यादि केशी स्वामीके समान थे, यावत् पांच सौ साधुओंके परिवारके साथ अनुक्रमसे एक गांवसे दूसरे गांव विहार करते हुए हस्तिनापुर नगरके सहस्राम्र वन नामक उद्यान

में पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। हस्तिनापुर निवासियोंको मुनि आगमन ज्ञात हुआ, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

दर्शनार्थ जाते हुए बहुत-से मनुष्यों का कोलाहल सुनकर जमालीकुमारके समान महाबलकुमारने अपने कञ्चुकी पुरुषोंको बुलाकर इसका कारण पूछा। कञ्चुकी पुरुषोंने महाबलकुमारसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया— 'हे देवानुप्रिय ! तीर्थंकर विमलनाथ भगवान्के प्रशिष्य धर्मघोष अनगार यहां पधारे हैं।' महाबलकुमार भी वन्दना करने गया और केशी स्वामीके समान धर्मघोष अनगार ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर महाबलकुमारको वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर आकर माता-पितासे कहा—'हे माता-पिता ! मैं धर्मघोष अनगारके पास अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूं।' जमालीकुमारके समान महाबलकुमार और उसके माता-पिता में उत्तर-प्रत्युत्तर हुए, यावत् उन्होंने कहा—'हे पुत्र ! यह विपुल धन और उत्तम राजकुलमें उत्पन्न हुई, कलाओंमें कुशल, आठ बालाओंको छोड़कर तुम कैसे दीक्षा लेते हो, इत्यादि यावत् माता-पिताने अनिच्छापूर्वक महाबलकुमारसे इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! हम एक दिनके लिए भी तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखना चाहते हैं।" माता-पिता की बात सुनकर महाबलकुमार चुप रहे। इसके पश्चात् माता-पिताने ग्यारहवें शतकके नौवें उद्देशकमें वर्णित शिवभद्रके समान, महाबलका राज्याभिषेक किया और महाबलकुमारको जय-विजय शब्दोंसे बधाई दी, तथा इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! कहो हम तुम्हें क्या देवें ? तुम्हारे लिये क्या करें,' इत्यादि वर्णन जमालीके समान जानना चाहिये। महाबलकुमारने धर्मघोष अनगारके पास प्रव्रज्या अंगीकार कर सामायिक आदि चौदह पूर्वों का ज्ञान पढ़ा और उपवास, बेला, तेला आदि विचित्र तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए सम्पूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण-पर्यायका पालन किया, और मासिक संलेखनासे साठ भक्त अनशन का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, एवं समाधियुक्त कालके समय काल करके ऊर्ध्वलोकमें चन्द्र और सूर्यसे भी ऊपर बहुत दूर, अम्बड़के समान यावत् ब्रह्मदेवलोकमें देवपने उत्पन्न हुआ। वहां कितने ही देवोंकी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, तदनुसार महाबल देव की भी दस सागरोपमकी स्थिति कही गई है। 'हे सुदर्शन ! पूर्वभवमें तेरा जीव महाबल था। वहां ब्रह्मदेवलोक की दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर और देवलोक का आयुष्य, भव और स्थितिका क्षय होने पर वहांसे चवकर सीधे इस वाणिज्यग्राम नगरके सेठ-कुल में तू पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ है' ॥४३०॥

'हे सुदर्शन ! बालभावसे मुक्त होकर तू विज्ञ और परिणत वयवाला हुआ, यौवन वय प्राप्त होकर तथाप्रकारके स्थविरोंके पास केवलिप्ररूपित धर्म

योग्य हाथी, अश्व आदि), पुर (नगर), अन्तःपुर की देखभाल करता रहता था ॥७॥ उस श्रेणिक राजाकी धारिणी नामक देवी (रानी) थी, वह श्रेणिक राजा की वल्लभा थी, यावत् सुख भोगती हुई रहती थी ॥ ८॥

वह किसी समय अपने उत्तम भवन में शय्या पर सो रही थी। वह भवन कैसा था? उसके वाह्य आलन्दक या द्वार पर तथा मनोज्ञ, चिकने, सुन्दर आकार वाले और ऊंचे खंभों पर अतीव उत्तम पुतलियां वनी हुई थीं। उज्ज्वल मणियों, कनक और कर्केतन आदि रत्नों के शिखर, कपोतपाली, गवाक्ष, अर्ध-चंद्राकार सोपान, निर्यूहक (दरवाजे के दोनों ओर निकले हुए काष्ठ), अन्तर या निर्यूहकों के वीच का भाग, कनकाली तथा चन्द्रसालिका (घरके ऊपर की शाला) आदि घर के विभागों की सुन्दर रचनासे युक्त था। स्वच्छ गेरू से उसमें उत्तम रंग किया हुआ था। वाहर से उसमें सफेदी की गई थी, कोमल पाषाण से घिसाई की गई थी, अतएव वह चिकना था। उसके भीतरी भाग में उत्तम और शुचि चित्रों का आलेखन किया गया था। उसका फर्श तरह-तरह की पचरंगी मणियों और रत्नों से जड़ा हुआ था। उसका ऊपरी भाग (छत) पद्म के आकार की लताओं से, पुष्पप्रधान वेलों से तथा उत्तम पुष्पजाति-मालती आदि से चित्रित था। उसके द्वार भागों में चन्दन-चर्चित, मांगलिक घट सुन्दर ढंग से स्थापित किये हुए थे। वे सरस कमलों से सुशोभित थे। प्रतरक स्वर्णमय आभूषणों से एवं मणियों तथा मोतियों की लंवी लटकने वाली मालाओं से उसके द्वार सुशोभित हो रहे थे। उसमें सुगंधित और श्रेष्ठ पुष्पों से कोमल और रुएंदार शय्या का उपचार किया गया था, वह मन एवं हृदय को आनन्दित करने वाला था। कपूर, लौंग, मलयज, चन्दन, कृष्ण अगर, उत्तम कुन्दुरुक्क (चीड़ा), तुरुष्क (लोवान) और अनेक सुगंधित द्रव्यों के संयोग से वने हुए धूप के जलने से उत्पन्न हुई मघमघाती गंध से रमणीय था। उसमें उत्तम चूर्णों की गंध भी विद्यमान थी। सुगंध की अधिकता के कारण वह गंधद्रव्यकी वट्टी (गुटिका)जैसा प्रतीत होता था। मणियोंकी किरणों के प्रकाश से वहां का अन्धकार नष्ट हो गया था। अधिक क्या कहा जाय? वह अपनी चमक-दमक तथा गुणों से उत्तम देवविमान को भी पराजित करता था।

इस प्रकार के उत्तम भवन में एक शय्या थी। उस पर शरीर प्रमाण उपधान विछा था। उसमें दोनों ओर सिरहाने और पांयते की जगह तकिये लगे थे। वह दोनों तरफ ऊंची और मध्य में झुकी हुई थी—गंभीर थी। जैसे गंगा के किनारे की वालू में पांव रखने से पांव धंस जाता है, उसी प्रकार उसमें भी धंस जाता था। कसीदा काढ़े हुए क्षौम दुकूल की चद्दर विछी हुई थी। वह

आस्तरक, मलक, नवत, कुशक्त, लिम्ब और सिंहकेसर नामक आस्तरणों से आच्छादित थी। जब उसका सेवन नहीं किया जाता था तब उस पर सुन्दर बना हुआ रजस्त्राण पड़ा रहता था। उस पर मसहरी लगी हुई थी, वह अतिशय रमणीय थी। उसका स्पर्श आजिनक (चर्म का वस्त्र), रुई, बूर नामक वनस्पति और मक्खन के समान नरम था।

ऐसी सुन्दर शय्या पर मध्य रात्रि के समय धारिणी रानी जब न गहरी नींद में थी और न जाग ही रही थी, बल्कि बार-बार हल्की-सी नींद ले रही थी—ऊंघ रही थी तब उसने एक महान्, सात हाथ ऊंचा, रजतकूट-चांदी के शिखरके सदृश श्वेत, सौम्य, सौम्याकृति, लीला करते हुए, जंभाई लेते हुए हाथी को आकाशतल से अपने मुख में आते देखा। देख कर वह जाग उठी।

तत्पश्चात् वह धारणी देवी इस प्रकारके स्वरूप वाले, उदार-प्रधान, कल्याण-कारी, उपद्रवका नाश करने वाले, धन-धान्य प्राप्ति कराने वाले, मांगलिक-पापविना-शक एवं सुशोभित महास्वप्नको देखकर जागी। उसे हर्ष और संतोष हुआ। चित्त में आनन्द हुआ। मन में प्रीति उत्पन्न हुई। परम प्रसन्नता हुई। हर्ष के वशीभूत होकर उसका हृदय विकसित हो गया। मेघकी धाराओंका आघात पाये कदम्ब फूल के समान उसे रोमांच हो आया। उसने स्वप्नका विचार किया, विचार करके शय्यासे उठी और उठकर पादपीठ से नीचे उतरी। नीचे उतरकर मानसिक त्वरासे रहित, शारीरिक चपलता से रहित, स्खलना से रहित, विलम्बरहित राजहंस जैसी गति से जहां श्रेणिक राजा था, वहीं आती है। आकर श्रेणिक राजा को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (मन को अतिशय प्रिय), उदार—श्रेष्ठ स्वर एवं उच्चार से युक्त, कल्याण-समृद्धिकारक, निर्दोष होने के कारण निरुपद्रव, धन्य, मंगलकारी, सश्रीक—अलंकारोंसे सुशोभित हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली, परिमित अक्षरों वाली, मधुर—स्वरों से मीठी, रिभित—स्वरों की घोलना वाली, शब्द और अर्थ की गंभीरता वाली और गुण रूप लक्ष्मी से युक्त वाणी बोल—बोल कर श्रेणिक राजा को जगाती है। जगाकर श्रेणिक राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन पर बैठती है। बैठ कर आश्वस्त—चलने के श्रम से रहित होकर विश्वस्त—क्षोभरहित होकर सुखद और श्रेष्ठ आसन पर बैठती है और दोनों करतलों से ग्रहणकी हुई और मस्तक के चारों ओर घूमती हुई अंजलि को मस्तक पर धारण करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार निवेदन करती है—

देवानुप्रिय! आज मैं उस पूर्ववर्णित शरीरप्रमाण तकिये वाली शय्या में सो रही थी, तब यावत् अपने मुख में प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न में देख कर जागी हूं। हे देवानुप्रिय! इस उदार यावत् स्वप्न का क्या फल—विशेष होगा?

॥९॥···श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुन कर तथा हृदय में धारण करके हर्षित—हृदय हुआ, मेघ की धाराओं से आहत कदंब वृक्ष के सुगंधित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसे रोमांच हो आया। उसने स्वप्न का अवग्रहण किया—सामान्य रूप से विचार किया। अवग्रहण करके विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया। ईहा में प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धिविज्ञानसे अर्थात् औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया, निश्चय करके धारिणीदेवीसे हृदयको आह्लाद उत्पन्न करने वाली मृदु, मधुर, रिभित, गंभीर और सश्रीक वाणीसे प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये! तुमने उदार—प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने कल्याणकर स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने उपद्रवविनाशक, धन्य—धनकी प्राप्ति कराने वाला, मंगलमय—सुखकारी और सश्रीक-सुशोभन स्वप्न देखा है। देवी! आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करने वाला स्वप्न तुमने देखा है। देवानुप्रिये! इस स्वप्न को देखनेसे तुम्हें अर्थका लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हें पुत्रका लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हें राज्यका लाभ होगा, भोगका तथा सुखका लाभ होगा, निश्चय ही, देवानुप्रिये! तुम पूरे नव मास और साढ़े सात रात्रि-दिन व्यतीत होने पर हमारे कुलकी ध्वजाके समान, कुलके लिए दीपकके समान, कुल में पर्वतके समान, किसीसे पराभूत न होने वाला, कुलका भूषण, कुलका तिलक, कुलकी कीर्त्ति बढ़ाने वाला, कुलकी आजीविका बढ़ाने वाला, कुलको आनन्द प्रदान करने वाला, कुलका यश बढ़ाने वाला, कुलका आधार, कुलमें वृक्षके समान आश्रयणीय, कुलकी वृद्धि करने वाला तथा सुकोमल हाथ—पैर वाला पुत्र यावत् प्रसव करोगी।

वह बालक बाल्यावस्थाको पार करके, कला आदिके ज्ञानमें परिपक्व होकर, यौवनको प्राप्त होकर शूर, वीर और पराक्रमी होगा। वह विस्तीर्ण और विपुल सेना वाला तथा वाहनों वाला होगा। राज्यका अधिपति राजा होगा। अतएव, देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुष्यकारी और कल्याणकारी स्वप्न देखा है। इस प्रकार कह कर राजा बार-बार उसकी प्रशंसा करने लगा ॥१०॥

वह धारिणी देवी श्रेणिक राजाके इस प्रकार कहने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई। उसका हृदय आनन्दित हो गया। वह दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली—

देवानुप्रिय! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है। आपका कथन सत्य है, असत्य नहीं है, यह कथन संशय रहित है। देवानुप्रिय! आपका कथन मुझे इष्ट है, अत्यन्त इष्ट है, और इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट है। आपने मुझसे जो कहा है सो यह

अर्थ सत्य है। इस प्रकार कहकर धारिणी देवी स्वप्न को भली-भांति अंगीकार करती है। अंगीकार करके राजा श्रेणिककी आज्ञा पाकर नाना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचनासे विचित्र भद्रासनसे उठती है। उठ कर जिस जगह शय्या थी, वहीं आती है। आकर शय्या पर बैठती है और बैठकर इस प्रकार (मन ही मन) कहती है—सोचती है—

'मेरा यह स्वरूपसे उत्तम और फल से प्रधान तथा मंगलमय स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नोंसे नष्ट न हो जाय' ऐसा सोच कर धारिणी देवी, देव और गुरुजन संबंधी प्रशस्त धार्मिक कथाओं द्वारा अपने शुभ स्वप्नकी रक्षा करनेके लिए जागरण करती हुई विचरने लगी ॥११॥

इसके बाद श्रेणिक राजाने प्रभात कालके समय कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! आज बाहरकी उपस्थानशाला (सभाभवन) को शीघ्र ही विशेष रूपसे परम रमणीय, गंधोदकसे सिंचित, साफ-सुथरी, लीपी हुई, पांच वर्णोंके सरस सुगंधित एवं बिखरे हुए फूलोंके समूह रूप उपचारसे युक्त, कालागुरु, कुंदुरुक्क, तुरुष्क (लोबान) तथा धूपके जलानेसे महकती हुई, गंधसे व्याप्त होने के कारण मनोहर, श्रेष्ठ सुगंधके चूर्णसे सुगंधित तथा सुगंधकी गुटिका (वट्टी) के समान करो और कराओ। ऐसा करके तथा करवा कर मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दो। तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होंने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी।

स्वप्न वाली रात्रिके अनन्तर दूसरे दिन रात्रि प्रकाशमान प्रभात रूप हुई। प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए, काले मृगके नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए। फिर वह प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण वाला हुआ। लाल अशोककी कान्ति, पलाशके पुष्प, तोतेकी चोंच, चिरमीके अर्द्धभाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, कोकिलाके नेत्र, जासोदके फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगुलु के समूहकी लालिमासे भी अधिक लालिमासे जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमशः उदित हुआ। सूर्यकी किरणों का समूह नीचे उतर कर अंधकार का विनाश करने लगा। बाल—सूर्य रूपी कुंकुमसे मानों जीव-लोक व्याप्त हो गया। नेत्रोंके विषयका प्रचार होनेसे विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूपसे दिखाई देने लगा। सरोवरों में स्थित कमलोंके वनको विकसित करने वाला, हतथा सस्र किरणों वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर राजा श्रेणिक शय्या से उठा।

शय्यासे उठकर राजा श्रेणिक जहां व्यायामशाला थी, वहां आता है। आकर व्यायामशालामें प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक प्रकारके व्यायाम,

योग्य (भारी पदार्थोंको उठाना), वलगन (कूदना), व्यामर्दन (भुजा आदि अङ्गों को परस्पर मरोड़ना), कुश्ती तथा करण (वाहुओंको विशेष प्रकारसे मोड़ना), रूप कसरतसे श्रेणिक राजाने श्रम किया और खूब श्रम किया, अर्थात् सामान्यत: शरीरका और विशेषत: प्रत्येक अङ्गोपाङ्गका व्यायाम किया। तत्पश्चात् शतपाक तथा सहस्रपाक आदि श्रेष्ठ सुगन्धित तेल आदि अभ्यंगनोंसे जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर आदि धातुओंको सम करने वाले, जठराग्निको दीप्त करने वाले, दर्पणीय अर्थात् शरीरका वल वढ़ाने वाले, मदनीय (कामवर्धक), वृंहणीय (मांसवर्धक) तथा समस्त इन्द्रियोंको एवं शरीर को आह्लादित करने वाले थे, राजा श्रेणिकने अभ्यंगन कराया। फिर मालिश किये शरीरके चर्मको, परिपूर्ण हाथ-पैर वाले तथा कोमल तल वाले, छेक (अवसर के ज्ञाता), दक्ष (चटपट कार्य करने वाले), पट्ठे, कुशल (मर्दन करने में चतुर), मेधावी (नवीन कलाको ग्रहण करनेमें समर्थ), निपुण (क्रीड़ा करनेमें कुशल), निपुणशिल्पोपगत (मर्दनके सूक्ष्म रहस्योंके ज्ञाता), परिश्रमको जीतने वाले, अभ्यंगन मर्दन और उद्‌वर्त्तन करनेके गुणमें पूर्ण पुरुषों द्वारा अस्थियोंको सुखकारी, मांसको सुखकारी, त्वचाको सुखकारी, तथा रोमोंको सुखकारी—इस प्रकार चार तरह की संवाधनासे (मर्दनसे) श्रेणिकके शरीरका मर्दन किया गया। इस मालिश और मर्दनसे राजाका परिश्रम दूर हो गया—थकावट मिट गई। वह व्यायामशालासे वाहर निकला।

व्यायामशालासे वाहर निकलकर श्रेणिक राजा जहां मज्जनगृह (स्नानागार) था, वहां आता है। आकर मज्जनगृहमें प्रवेश करता है। प्रवेश करके चारों ओर जालियोंसे मनोहर, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नोंके फर्श वाले तथा रमणीय स्नानमंडपके भीतर विविध प्रकारके मणियों और रत्नोंकी रचना से चित्र-विचित्र स्नान करनेके पीठ--वाजौठ--पर सुखपूर्वक वैठा। उसने पवित्र स्थानसे लाये हुए शुभ जलसे, पुष्पमिश्रित जलसे, सुगंधमिश्रित जलसे और शुद्ध जलसे वार-वार कल्याणकारी और उत्तम स्नान विधिसे स्नान किया। तत्पश्चात् पक्षीके पंखके समान अत्यन्त कोमल, सुगन्धित और कषाय रंगसे रंगे हुए वस्त्रसे शरीरको पोंछा। कोरा वहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किया। सरस और सुगंधित गोशीर्ष चन्दनसे उसके शरीर पर विलेपन किया गया। शुचि पुष्पोंकी माला पहनी। केसर आदिका लेपन किया गया। मणियोंके और स्वर्णके अलंकार धारण किये। अठारह लड़ोंके हार, नौ लड़ोंके अर्धहार, तीन लड़ोंके छोटे हार तथा लम्वे लटकते हुए कटिसूत्रसे शरीरकी सुन्दर शोभा वढ़ाई। कंठमें कंठा पहना। उंगलियोंमें अंगूठियां धारण कीं। सुन्दर अंग पर अन्यान्य सुन्दर आभरण धारण किये। अनेक

मणियोंके बने कटक और त्रुटिक नामक आभूषणोंसे उसके हाथ स्तंभितसे प्रतीत होने लगे। अतिशय रूपके कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हो उठा। कुंडलोंके कारण उसका मुखमंडल उद्दीप्त हो गया। मुकुटसे मस्तक प्रकाशित होने लगा। वक्षस्थल हारसे आच्छादित होनेके कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा। लम्बे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासंग किया। मुद्रिकाओंसे उसकी उंगलियां पीली दीखने लगीं। नाना भांतिकी मणियों सुवर्ण और रत्नोंसे निर्मल, महामूल्यवान्, निपुण कलाकारों द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, सुरचित, भली भांति मिली हुई सन्धियों वाले, विशिष्ट प्रकारके, मनोहर, सुन्दर आकार वाले और प्रशस्त वीरवलय धारण किये। अधिक कहने से क्या लाभ भली भांति मुकुट आदि आभूषणोंसे अलंकृत और वस्त्रोंसे विभूषित राजा श्रेणिक कल्पवृक्षके समान दिखाई देने लगा। कोरंट वृक्षके पुष्पोंकी माला वाला छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। आस-पास चार चामरोंसे उसका शरीर वींजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पड़ते ही लोग 'जय-जय' का मांगलिक घोष करने लगे। अनेक गणनायक (प्रजामें बड़े), दंडनायक (कटकके अधिपति), राजा (मांडलिक राजा), ईश्वर (युवराज अथवा ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त पट्टे वाले), मांडलिक (कतिपय ग्रामोंके अधिपति), कौटुम्बिक (कतिपय कुटुम्बोंके स्वामी), मंत्री, महामंत्री, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट (पैरोंके पास रहने वाले सेवक), पीठमर्द (सभाके समीप रहने वाले सेवकमित्र), नागरिक लोग, व्यापारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपाल—इन सबके साथ घिरा हुआ, ग्रहोंके समूहमें देदीप्यमान तथा नक्षत्रों और ताराओंमें चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन वाला राजा श्रेणिक मज्जनगृहसे इस प्रकार निकला जैसे उज्ज्वल महामेघोंमें से चन्द्रमा निकला हो। मज्जनगृहसे निकलकर जहां बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी, वहीं आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अपने समीप ईशान कोणमें श्वेत वस्त्रसे आच्छादित तथा सरसोंके मांगलिक उपचारसे जिनमें शांतिकर्म किया गया है ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है। रखवा करके नाना मणियों और रत्नों से मंडित, अतिशय दर्शनीय, बहुमूल्य और श्रेष्ठ नगरमें बनी हुई, कोमल एवं सैकड़ों प्रकारकी रचना वाले चित्रोंका स्थानभूत, ईहामृग (भेड़िया), वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु जाति के मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता आदिके चित्रोंसे युक्त, श्रेष्ठ स्वर्णके तारों से भरे हुए सुशोभित किनारों वाली जवनिका (पर्दा) सभाके भीतरी भागमें बंधवाई। जवनिका बंधवा कर उसके भीतरी भागमें धारिणी देवीके लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिये से ढंका था। श्वेत वस्त्र उस पर बिछा हुआ था।

सुन्दर था। स्पर्शसे अंगोंको सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था। इस प्रकार आसन बिछवा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया। बुलवाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! अष्टांग महानिमित्त-ज्योतिषके सूत्र और अर्थ के पाठक तथा विविध शास्त्रोंमें कुशल स्वप्नपाठकोंको शीघ्र ही बुलाओ, और बुलाकर शीघ्र ही इस आज्ञाको वापिस लौटाओ।

वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित यावत् आनन्दित—हृदय हुए। दोनों हाथ जोड़कर दसों नखोंको इकट्ठा करके मस्तक पर घुमाकर अंजलि जोड़कर 'हे देव! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनयके साथ आज्ञाके वचनोंको स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके श्रेणिक राजाके पाससे निकलते हैं। निकलकर राजगृही के बीचोंबीच होकर जहां स्वप्नपाठकोंके घर थे, वहां पहुंचते हैं और पहुँच कर स्वप्नपाठकों को बुलाते हैं।

वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजाके कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुए। उन्होंने स्नान किया, अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणोंसे शरीरको अलंकृत किया, मस्तक पर दूर्वा तथा सरसों मंगलनिमित्त धारण किये। फिर अपने-अपने घरोंसे निकले। निकल कर राजगृहके बीचोंबीच होकर जहां श्रेणिक राजाके मुख्य महल का द्वार था, वहां आये। आकर सब एक साथ मिले। एक साथ मिलकर श्रेणिक राजाके मुख्य महल के द्वारसे भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां बाहरी उपस्थानशाला थी और जहां श्रेणिक राजा था, वहां आए; आकर श्रेणिक राजाको जय और विजय शब्दोंसे वधाया। श्रेणिक राजाने चन्दनादिसे उनकी अर्चना की, गुणोंकी प्रशंसा करके वन्दन किया, पुष्पों द्वारा पूजा की, आदरपूर्ण दृष्टिसे देखकर एवं नमस्कार करके मान किया, फल—वस्त्र आदि देकर सत्कार किया और अनेक प्रकार की भक्ति करके सन्मान किया। फिर वे स्वप्नपाठक पहलेसे विछाए हुए भद्रासनों पर अलग-अलग बैठे।

…श्रेणिक राजाने जवनिकाके पीछे धारिणी देवीको बिठलाया। फिर हाथ में पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनयके साथ उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! आज उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) शय्या पर सोई हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देखकर जागी है। तो देवानुप्रियो! इस उदार यावत् सश्रीक महास्वप्नका क्या कल्याणकारी फलविशेष होगा?

…वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजासे इस अर्थको सुनकर और हृदयमें धारण करके हृष्ट, तुष्ट, आनन्दितहृदय हुए। उन्होंने उस स्वप्नका सम्यक् प्रकारसे अवग्रहण किया, अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया; प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरेके साथ विचार-विमर्श किया। विचार-विमर्श करके स्वप्नका

अपने आपसे अर्थ समझा, दूसरोंका अभिप्राय जान कर विशेष अर्थ समझा, आपस में उस अर्थ को पूछा, अर्थ का निश्चय किया और फिर तथ्य अर्थ का निश्चय किया।...वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजाके सामने स्वप्नशास्त्रों का बार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

...हे स्वामिन् ! हमारे स्वप्नशास्त्रमें बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न इस प्रकार कुल मिलाकर ७२ स्वप्न हमने देखे हैं। अरिहंतकी माता और चक्रवर्ती की माता अरिहन्त और चक्रवर्तीके गर्भमें आने पर इन तीस महास्वप्नोंमें से चौदह स्वप्न देखकर जागती हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) हाथी (२)वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पोंकी माला (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) ध्वजा (६) पूर्णकुंभ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) क्षीरसागर (१२) विमान अथवा भवन (१३) रत्नोंकी राशि और (१४) अग्नि।

जब वासुदेव गर्भमें आते हैं तो वासुदेवकी माता इन चौदह महास्वप्नोंमें से किन्हीं भी सात महास्वप्नोंको देखकर जागृत होती हैं। जब बलदेव गर्भमें आते हैं तो बलदेवकी माता इन चौदह स्वप्नोंमें से किन्हीं चार स्वप्नोंको देखकर जागृत होती हैं। जब मांडलिक राजा गर्भमें आता है तो मांडलिक राजाकी माता इन चौदह स्वप्नोंमें से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

स्वामिन् ! धारिणी देवीने इन महास्वप्नोंमें से एक महास्वप्न देखा है; अतएव स्वामिन् ! धारिणी देवीने उदार स्वप्न देखा है, यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी, स्वामिन् ! धारिणी देवीने स्वप्न देखा है। स्वामिन् ! इससे आपको अर्थका लाभ होगा। स्वामिन् ! सुखका लाभ होगा। स्वामिन् ! भोगका लाभ होगा, पुत्र का लाभ होगा। स्वामिन् ! इस प्रकार धारिणी देवी पूरे नौ मास व्यतीत होने पर यावत् पुत्रको जन्म देगी। वह पुत्र भी बाल-वयको पार करके, गुरु की साक्षी मात्रसे अपने ही बुद्धिवैभवसे समस्त कलाओंका ज्ञाता होकर, युवावस्थाको प्राप्त करके संग्राममें शूर, आक्रमण करने में वीर और पराक्रमी होगा। विस्तीर्ण और विपुल बल-वाहन वाला होगा। राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा अपनी आत्मा को भावित करने वाला अनगार होगा। अतएव हे स्वामिन् ! धारिणी देवीने उदार स्वप्न देखा है, यावत् आरोग्य-कारक,तुष्टिकारक आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाला स्वप्न देखा है। इस प्रकार कहकर स्वप्न-पाठक बार-बार उस स्वप्नकी सराहना करने लगे।

...श्रेणिक राजा उन स्वप्नपाठकोंसे इस अर्थको सुनकर और हृदयमें धारण करके हृष्ट तुष्ट एवं आनन्दितहृदय हो गया और हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रियो ! जो तुम कहते हो सो वैसा ही है—सत्य है; इस प्रकार कहकर उस स्वप्नके फलको सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके उन स्वप्नपाठकोंको विपुल

अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारोंसे सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके जीविकाके योग्य प्रीतिदान देता है और दान देकर विदा करता है।

...श्रेणिक राजा सिंहासनसे उठा और जहां धारिणी देवी थी, वहां आया। आकर धारिणी देवीसे इस प्रकार बोला—देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्रमें बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न कहे हैं, उनमें से तुमने एक महास्वप्न देखा है। इत्यादि स्वप्नपाठकोंके कथनानुसार सब कहता है और बार-बार उसकी अनुमोदना करता है।

...धारिणी देवी, श्रेणिक राजासे इस अर्थ को सुनकर और हृदयमें धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आनन्दितहृदय हुई। उसने उस स्वप्नको सम्यक् प्रकारसे अंगीकार किया। अंगीकार करके जहां अपना वासगृह था वहां आई। आकर स्नान करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी ॥१२॥

...धारिणी देवीके दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था तब उस गर्भके दोहदकालके अवसर पर इस प्रकारका अकालमेघका दोहद उत्पन्न हुआ—जो माताएं अपने अकालमेघके दोहदको पूर्ण करती हैं, वे माताएं धन्य हैं, वे पुण्यवती हैं, वे कृतार्थ हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्यका उपार्जन किया है, वे कृत-लक्षण हैं, अर्थात् उनके शरीरके लक्षण सफल हैं, उनका वैभव सफल है, उन्हें मनुष्य संबंधी जन्म और जीवनका फल प्राप्त हुआ है, अर्थात् उनका जन्म और जीवन सफल है। आकाशमें मेघ उत्पन्न होने पर, क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होने पर, उन्नति को प्राप्त होने पर, बरसनेकी तैयारी में होने पर, गर्जना युक्त होने पर, विद्युत्से युक्त होने पर, छोटी-छोटी बरसती हुई बूंदों से युक्त होने पर, मंद-मंद ध्वनि से युक्त होने पर, अग्नि जलाकर शुद्धकी हुई चांदीके पतरेके समान, अंक नामक रत्न, शंख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प और चावल के आटेके समान शुक्ल वर्ण वाले, चिकुर नामक रंग, हरतालके टुकड़े, चम्पा के फूल, सनके फूल (अथवा सुवर्ण), कोरंट-पुष्प, सरसोंके फूल और कमलके रज के समान पीत वर्ण वाले, लाखके रस, सरस रक्तवर्ण किंशुकके पुष्प, जासु के पुष्प, लाल रंगके बंधुजीवकके पुष्प, उत्तम जातिके हिंगुलू, सरस कंकु, बकरा और खरगोश के रक्त और इन्द्र-गोप (सावनकी डोकरी) के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नीलम मणि, गुलिका (गोली), तोतेके पंख, चाप पक्षीके पंख, भ्रमरके पंख, सासक नामक वृक्ष, या प्रियंगुलता, नील कमलोंके समूह, ताजा शिरीष कुसुम और घासके समान नील

वर्ण वाले, उत्तम अंजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्टरत्न, भ्रमरसमूह, भैंसेके सींग की गोली और कज्जलके समान काले वर्ण वाले, इस प्रकार पांचों वर्णों वाले मेघ हों, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाशमें वायुके कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हों, निर्मल श्रेष्ठ जल धाराओंसे गलित, प्रचंड वायुसे आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर बरस रही हो, जलधारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुकको धारण किया हो, वृक्षोंका समूह नवीन पल्लवोंसे सुशोभित हो गया हो, बेलोंके समूह विस्तार को प्राप्त हुआ हो, उन्नत भूप्रदेश सौभाग्यको प्राप्त हुए हों, अर्थात् पानी से धुलकर साफ सुथरे हो गये हों, अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हों, वैभारगिरिके प्रपात् तट और कटकसे निर्झर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियोंमें तेज बहावके कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षोंके अंकुरों से और छत्राकार (कुकुरमुत्ता) से युक्त हो गया हो, मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचनेकी चेष्टा करने वाले मयूर हर्षके कारण मुक्त कंठसे केकारव कर रहे हों, और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियां नृत्य कर रही हों, उपवन (घरके समीपवर्ती बाग) शिलिंध्र, कुटज, कंदल और कदंब वृक्षों के पुष्पोंकी नवीन एवं सौरभ युक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हों अर्थात् उत्कट सुगंधसे सम्पन्न हो रहे हों, नगरके बाहरके उद्यान कोकिलाओंके स्वरघोलना वाले शब्दोंसे व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीड़ोंसे शोभायमान हो रहे हों, उनके चातक करुण स्वरसे बोल रहे हों, वे नमे हुए तृणों (वनस्पति) से सुशोभित हों, उनमें मेंढक उच्च स्वरसे आवाज कर रहे हों, मदोन्मत्त भ्रमरों और भ्रमरियोंके समूह एकत्र हो रहे हों, तथा उन उद्यान प्रदेशोंमें पुष्प-रसके लोलुप एवं मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हों, आकाश-तलमें चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का समूह मेघोंसे आच्छादित होने के कारण श्याम वर्णका दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो, और उसमें रहा हुआ मेघसमूह बगुलों की कतारोंसे शोभित हो रहा हो, इस भांति कारंडक, चक्रवाक और राजहंस पक्षियों को मानस-सरोवर की ओर जानेके लिए उत्सुक बनाने वाली वर्षाऋतु का समय हो। ऐसे वर्षाकालमें जो माताएं स्नान करके वैभारगिरिके प्रदेशोंमें अपने पतिके साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।

धारिणी देवीने इसके पश्चात् क्या विचार किया, वह बतलाते हैं—वे माताएं धन्य हैं जो पैरोंमें उत्तम नूपुर धारण करती हैं, कमरमें करधनी पहनती हैं, वक्षस्थल पर हार पहरती हैं, हाथोंमें कड़े तथा उंगलियोंमें अंगूठियां पहनती हैं, अपने बाहुओंको विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दोंसे स्तंभित करती हैं, जिनका मुख कुंडलोंसे

चमक रहा है, अंग रत्नोंसे भूषित हो रहा है, जिन्होंने ऐसा वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वासकी वायुसे भी उड़ जाए अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रों को हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाला हो, घोड़ेके मुखसे निकलने वाले फेनसे भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसकी किनारियां सुवर्णके तारोंसे बुनी गई हों, श्वेत होनेके कारण जो आकाश स्फटिकके समान कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो, जिनका मस्तक समस्त ऋतुओं संबंधी सुगंधों पुष्पों और श्रेष्ठ फूलमालाओंसे सुशोभित हो, जो कालागुरु आदि की उत्तम धूपसे धूपित हों और जो लक्ष्मीके समान वेष वाली हों। इस प्रकार सजधज करके जो सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर, कोरंट-पुष्पोंकी मालासे सुशोभित छत्रको धारण करती हैं। चन्द्र-प्रभ वज्र और वैडूर्य रत्नके निर्मल दंड वाले एवं शंख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृतका मथन करनेसे उत्पन्न हुए फेनके समूहके समान उज्ज्वल, चार चामर जिनके ऊपर ढोरे जा रहे हैं, जो हस्तीरत्न के स्कंध पर (महावतके रूपमें) राजा श्रेणिकके साथ बैठी हों। उनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना चल रही हो, अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदलसेना हो। छत्र आदि राजचिन्ह रूप समस्त ऋद्धिके साथ, आभूषणों आदिकी कान्तिके साथ यावत् वाद्योंके निर्घोष शब्दके साथ, राजगृह नगरके शृंगाटक (सिंघाड़ेके आकारके मार्ग), त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलें), चतुष्क (चौक), चत्वर (चबूतरा), चतुर्मुख (चारों ओर द्वार वाले), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्गमें गंधोदक एक वार छिड़का हो, अनेक वार छिड़का हो, शृङ्गाटक आदि को शुचि किया हो, झाड़ा हो, गोबर आदि से लीपा हो यावत् उत्तम गंधके चूर्णसे सुगंधित किया हो और मानों गंध द्रव्योंकी गुटिका ही ह, ऐसें राजगृह नगरको देखती जा रही हों। नागरिक अभिनन्दन कर रहे हों। गुच्छों, लताओं, वृक्षों, गुल्मों (झाड़ियों) एवं वेलोंके समूहोंसे व्याप्त, मनोहर वैभार पर्वतके निचले भागोंके समीप, चारों ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहदको पूर्ण करती हैं। तो मैं भी इसी प्रकार मेघोंका उदय आदि होने पर यावत् अपने दोहद को पूर्ण करूं ॥१३॥

···वह धारिणी देवी उस दोहदके दूर (पूर्ण) न होनेके कारण दोहदके संपन्न न होनेके कारण, दोहदके सम्पूर्ण न होनेके कारण, मेघ आदिका अनुभव न होनेसे दोहदके सम्मानित न होनेके कारण, मानसिक संताप द्वारा रक्तका शोषण हो जाने से शुष्क हो गई। भूख से व्याप्त हो गई। मांससे रहित हो गई। जीर्ण एवं जीर्ण शरीर वाली, स्नान का त्याग करनेसे मलिन शरीर वाली, भोजन त्याग देनेसे दुबली तथा थकी हुई हो गई। उसने मुख और नयन रूपी कमल नीचे कर लिये। उसका मुख फीका पड़ गया। हथेलियों से मसली हुई चम्पक पुष्पोंकी मालाके समान निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विवर्ण हो गया। यथोचित पुष्प, गंध,

वर्ण वाले, उत्तम अंजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्टरत्न, भ्रमरसमूह, भैंसेके सींग की गोली और कज्जलके समान काले वर्ण वाले, इस प्रकार पांचों वर्णो वाले मेघ हों, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाशमें वायुके कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हों, निर्मल श्रेष्ठ जल धाराओंसे गलित, प्रचंड वायुसे आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर बरस रही हो, जलधारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुकको धारण किया हो, वृक्षोंका समूह नवीन पल्लवोंसे सुशोभित हो गया हो, बेलोंके समूह विस्तार को प्राप्त हुआ हो, उन्नत भूप्रदेश सौभाग्यको प्राप्त हुए हों, अर्थात् पानी से धुलकर साफ सुथरे हो गये हों, अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हों, वैभारगिरिके प्रपात् तट और कटकसे निर्झर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियोंमें तेज बहावके कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षोंके अंकुरों से और छत्राकार (कुकुरमुत्ता) से युक्त हो गया हो, मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचनेकी चेष्टा करने वाले मयूर हर्षके कारण मुक्त कंठसे केकारव कर रहे हों, और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियां नृत्य कर रही हों, उपवन (घरके समीपवर्त्ती बाग) शिलिंध्र, कुटज, कंदल और कदंब वृक्षों के पुष्पोंकी नवीन एवं सौरभ युक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हों अर्थात् उत्कट सुगंधसे सम्पन्न हो रहे हों, नगरके बाहरके उद्यान कोकिलाओंके स्वरघोलना वाले शब्दोंसे व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीड़ोंसे शोभायमान हो रहे हों, उनके चातक करुण स्वरसे बोल रहे हों, वे नमे हुए तृणों (वनस्पति) से सुशोभित हों, उनमें मेंढक उच्च स्वरसे आवाज कर रहे हों, मदोन्मत्त भ्रमरों और भ्रमरियोंके समूह एकत्र हो रहे हों, तथा उन उद्यान प्रदेशोंमें पुष्प-रसके लोलुप एवं मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हों, आकाश-तलमें चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का समूह मेघोंसे आच्छादित होने के कारण श्याम वर्णका दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो, और उसमें रहा हुआ मेघसमूह बगुलों की कतारोंसे शोभित हो रहा हो, इस भांति कारंडक, चक्रवाक और राजहंस पक्षियों को मानस-सरोवर की ओर जानेके लिए उत्सुक बनाने वाली वर्षाऋतु का समय हो। ऐसे वर्षाकालमें जो माताएं स्नान करके वैभारगिरिके प्रदेशोंमें अपने पतिके साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।

धारिणी देवीने इसके पश्चात् क्या विचार किया, वह बतलाते हैं—वे माताएं धन्य हैं जो पैरोंमें उत्तम नूपुर धारण करती हैं, कमरमें करधनी पहनती हैं, वक्षस्थल पर हार पहनती हैं, हाथोंमें कड़े तथा उंगलियोंमें अंगूठियां पहनती हैं, अपने बाहुओंको विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दोंसे स्तंभित करती हैं, जिनका मुख कुंडलोंसे

चमक रहा है, अंग रत्नोंसे भूषित हो रहा है, जिन्होंने ऐसा वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वासकी वायुसे भी उड़ जाए अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रों को हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाला हो, घोड़ेके मुखसे निकलने वाले फेनसे भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसकी किनारियां सुवर्णके तारोंसे बुनी गई हों, श्वेत होनेके कारण जो आकाश स्फटिकके समान कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो, जिनका मस्तक समस्त ऋतुओं संबंधी सुगंधों पुष्पों और श्रेष्ठ फूलमालाओंसे सुशोभित हो, जो कालागुरु आदि की उत्तम धूपसे धूपित हों और जो लक्ष्मीके समान वेष वाली हों। इस प्रकार सजधज करके जो सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर, कोरंट-पुष्पोंकी मालासे सुशोभित छत्रको धारण करती हैं। चन्द्रप्रभ वज्र और वैडूर्य रत्नके निर्मल दंड वाले एवं शंख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृतका मथन करनेसे उत्पन्न हुए फेनके समूहके समान उज्ज्वल, चार चामर जिनके ऊपर ढोरे जा रहे हैं, जो हस्तीरत्न के स्कंध पर (महावतके रूपमें) राजा श्रेणिकके साथ बैठी हों। उनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना चल रही हो, अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदलसेना हो। छत्र आदि राजचिन्ह रूप समस्त ऋद्धिके साथ, आभूषणों आदिकी कान्तिके साथ यावत् वाद्योंके निर्घोष शब्दके साथ, राजगृह नगरके शृंगाटक (सिंघाड़ेके आकारके मार्ग), त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलें), चतुष्क (चौक), चत्वर (चबूतरा), चतुर्मुख (चारों ओर द्वार वाले), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्गमें गंधोदक एक बार छिड़का हो, अनेक बार छिड़का हो, शृङ्गाटक आदि को शुचि किया हो, झाड़ा हो, गोबर आदि से लीपा हो यावत् उत्तम गंधके चूर्णसे सुगंधित किया हो और मानों गंध द्रव्योंकी गुटिका ही ह, ऐसें राजगृह नगरको देखती जा रही हों। नागरिक अभिनन्दन कर रहे हों। गुच्छों, लताओं, वृक्षों, गुल्मों (झाड़ियों) एवं वेलोंके समूहोंसे व्याप्त, मनोहर वैभार पर्वतके निचले भागोंके समीप, चारों ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहदको पूर्ण करती हैं। तो मैं भी इसी प्रकार मेघोंका उदय आदि होने पर यावत् अपने दोहद को पूर्ण करूं ॥१३॥

···वह धारिणी देवी उस दोहदके दूर (पूर्ण) न होनेके कारण दोहदके संपन्न न होनेके कारण, दोहदके सम्पूर्ण न होनेके कारण, मेघ आदिका अनुभव न होनेसे दोहदके सम्मानित न होनेके कारण, मानसिक संताप द्वारा रक्तका शोषण हो जाने से शुष्क हो गई। भूख से व्याप्त हो गई। मांससे रहित हो गई। जीर्ण एवं जीर्ण शरीर वाली, स्नान का त्याग करनेसे मलिन शरीर वाली, भोजन त्याग देनेसे दुबली तथा थकी हुई हो गई। उसने मुख और नयन रूपी कमल नीचे कर लिये। उसका मुख फीका पड़ गया। हथेलियों से मसली हुई चम्पक पुष्पोंकी मालाके समान निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विवर्ण हो गया। यथोचित पुष्प, गंध,

माला, अलंकार और हारके विषयमें रुचिरहित हो गई, अर्थात् उसने इन सबका त्याग कर दिया। जल आदि की क्रीड़ा और चौपड़ आदि खेलोंकी क्रियाका परित्याग कर दिया। वह दीन, दुःखी मन वाली, आनन्दहीन एवं भूमि की तरफ दृष्टि किये हुए बैठी। उसके मनका संकल्प नष्ट हो गया। वह यावत् आर्त्तध्यान करने लगी।

…उस धारिणी देवीकी अंगपरिचारिका-शरीरकी सेवा-शुश्रूषा करने वाली आभ्यंतर दासियां धारिणी देवीको जीर्ण-सी एवं जीर्ण शरीर वाली, यावत् आर्त्तध्यान करती हुई देखती हैं। देखकर इस प्रकार कहती हैं—'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण जैसी तथा जीर्ण शरीर वाली क्यों हो ? यावत् आर्त्तध्यान क्यों कर रही हो ?' …धारिणी देवी अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियों द्वारा इस प्रकार कहने पर (अन्यमनस्क होने से) उनका आदर नहीं करती और उन्हें जानती भी नहीं। नहीं आदर करती और नहीं जानती हुई वह मौन ही रहती है। …वे अंग परिचारिका आभ्यन्तर दासियां दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगीं— हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीर्ण-सी, जीर्ण शरीर वाली हो रही हो, यावत् आर्त्त-ध्यान कर रही हो ?…धारिणी देवी उन अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियों द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न आदर करती है और न जानती है, अर्थात् उनकी बात पर ध्यान नहीं देती, तथा न आदर करती हुई और न जानती हुई मौन रहती है।

…वे अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियां धारिणी देवी द्वारा अनादृत एवं अपरिज्ञात की हुई उसी प्रकार संभ्रान्त (व्याकुल) होती हुई धारिणी देवीके पास से निकलती हैं और निकल कर जहां श्रेणिक राजा था, वहां आती हैं। आकर दोनों हाथों को इकट्ठा करके यावत् मस्तक पर अंजलि करके जय-विजयसे बधाती हैं और बधा कर इस प्रकार कहती हैं—'स्वामिन् ! आज धारिणी देवी जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली होकर यावत् आर्त्तध्यानसे युक्त होकर कुछ चिन्तित हो रही है।'

…वह श्रेणिक राजा उन अंगपरिचारिकाओंसे यह अर्थ सुनकर, मनमें धारण करके उसी प्रकार व्याकुल होता हुआ शीघ्र, त्वरा के साथ एवं अत्यन्त शीघ्रतासे जहां धारिणी देवी थी, वहां आता है। आकर धारिणी देवी को जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यानसे युक्त चिन्ता करती देखता है। देखकर इस प्रकार कहता है–'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यानसे युक्त होकर चिन्ता कर रही हो ?'…धारिणी देवी, श्रेणिक राजाके द्वारा इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती–उत्तर नहीं देती, यावत् मौन रहती है।

...श्रेणिक राजाने धारिणी देवीसे दूसरी वार और फिर तीसरी वार भी इसी प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण-सी होकर यावत् चिन्तित क्यों हो' ?

तत्पश्चात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजाके द्वारा दूसरी वार और तीसरी वार भी इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती और नहीं जानती, मौन रहती है। ...श्रेणिक राजा, धारिणी देवीको शपथ दिलाता है और शपथ दिलाकर कहता है—'देवानुप्रिये ! क्या मैं तुम्हारे मनकी बात सुननेके लिए अयोग्य हूं ? जिससे तुम अपने मनमें रहे हुए इस मानसिक दुःखको छिपाती हो ?'

...श्रेणिक राजा द्वारा शपथ सुनकर धारिणी देवी ने श्रेणिक राजासे इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! मुझे वह उदार आदि विशेषणों वाला महास्वप्न आया था। उसे आये तीन मास पूरे हो चुके हैं,-अतएव इस प्रकारका अकाल--मेघ संबंधी दोहद उत्पन्न हुआ है कि—वे माताएं धन्य हैं और वे माताएं कृतार्थ हैं, यावत् जो वैभार पर्वतकी तलहटीमें भ्रमण करती हुई अपने दोहदको पूर्ण करती हैं। अगर मैं भी अपने यावत् दोहदको पूर्ण करूं तो धन्य होऊं। इस कारण हे स्वामिन् ! मैं इस प्रकारके इस दोहदके पूर्ण न होनेसे जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली हो गई हूं, यावत् आर्त्तध्यान करती हुई चिन्तित हो रही हूं। स्वामिन् ! जीर्ण—सी यावत् आर्त्तध्यान से युक्त होकर चिन्ताग्रस्त होनेका यही कारण है।

...श्रेणिक राजा ने धारिणी देवीसे यह बात सुनकर और समझकर धारिणी देवीसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण शरीर वाली मत होओ, यावत् चिन्ता मत करो। मैं वैसा करूंगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूंगा जिससे तुम्हारे इस प्रकारके इस अकाल—दोहदकी पूर्त्ति हो जायगी।' इस प्रकार कहकर धारिणी देवीको इष्ट (प्रिय), कान्त (इच्छित), प्रिय (प्रीति उत्पन्न करने वाली), मनोज्ञ (मनोहर) और मणाम (मन को प्रिय) वाणीसे आश्वासन देता है। आश्वासन देकर जहां बाहर की उपस्थानशाला थी, वहां आता है। आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठता है। धारिणी देवीके इस अकाल—दोहदकी पूर्त्ति करनेके लिए बहुतेरे आयों (लाभों) से, उपायों से, औत्पत्तिकी बुद्धिसे, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धिसे, परिणामिक बुद्धिसे—इस-प्रकार चारों प्रकारकी बुद्धिसे वार-वार विचार करता है। परन्तु विचार करने पर भी उस दोहद के लाभ को, उपाय को, स्थितिको और उत्पत्तिको समझ नहीं पाता, अर्थात् दोहदपूर्त्ति का कोई उपाय नहीं सूझता। अतएव श्रेणिक राजाके मनका संकल्प नष्ट हो गया और वह यावत् चिन्ताग्रस्त हो जाता है ॥१४॥

तदनन्तर अभयकुमार स्नान करके, समस्त अलंकारोंसे विभूषित होकर श्रेणिक राजाके चरणोंमें वन्दना करने के लिए जाने का विचार करता है–रवाना ता है। ...अभयकुमार जहां श्रेणिक राजा है, वहीं आता है। आकर श्रेणिक राजा

को देखता है कि इनके मनके संकल्पको आघात पहुँचा है। यह देखकर अभयकुमार के मनमें इस प्रकारका यह आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा सम्बन्धी, चिन्तित, प्रार्थित (प्राप्त करनेको इष्ट) और मनोगत—मनमें ही रहा हुआ संकल्प उत्पन्न होता है। अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आता देखते थे तो देखकर आदर करते, जानते, वस्त्रादिसे सत्कार करते, आसनादि देकर सन्मान करते तथा आलाप संलाप करते थे, आधे आसन पर बैठनेके लिए निमंत्रण करते और मेरे मस्तक को सूंघते थे। किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं, न सत्कार करते हैं, न सन्मान करते हैं, न इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनोंसे आलाप-संलाप करते हैं, न अर्ध आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करते हैं और न मस्तक को सूङ्घते हैं। उनके मनके संकल्प को कुछ आघात पहुंचा है, अतएव चिन्तित हो रहे हैं। अतएव इस विषयमें कोई कारण होना चाहिए। मुझे श्रेणिक राजा से यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है। अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है और विचार कर जहां श्रेणिक राजा है, वहीं आता है। आकर दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्त्त करके, अंजलि करके जय-विजयसे वधाता है। वधाकर इस प्रकार कहता है—

हे तात! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, जानते, यावत् मेरे मस्तक को सूंघते थे और आसन पर बैठनेके लिए निमन्त्रण करते थे, किन्तु तात! आज आप मुझे आदर नहीं दे रहे हैं, यावत् आसन पर बैठनेके लिए निमन्त्रण नहीं कर रहे हैं और मन का संकल्प नष्ट होनेके कारण कुछ चिन्ता कर रहे हैं। तो इस विषयमें कोई कारण होना चाहिए। तो हे तात! आप इस कारणको छिपाये विना, इष्ट प्राप्तिमें शंका रक्खे विना, अपलाप किये विना, दवाये विना, जैसाका तैसा, सत्य एवं संदेहरहित कहिए। तत्पश्चात् मैं उस कारण का पार पाने का प्रयत्न करूंगा।

तत्पश्चात् अभयकुमारके द्वारा इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजाने अभयकुमारसे इस प्रकार कहा—पुत्र! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी को गर्भस्थिति हुए दो मास वीत गये और तीसरा मास चल रहा है। उसमें दोहद-कालके समय उसे इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएं धन्य हैं, इत्यादि सब पहले की भांति ही कह लेना चाहिए, यावत् अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। तब हे पुत्र! मैं धारिणी देवीके उस अकाल दोहदके आयों (लाभ), उपायों एवं उत्पत्तिको अर्थात् उसकी पूर्त्तिके उपायों को नहीं जानता हूं। इससे मेरे मन का संकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिन्ता कर रहा हूं। इसी से मैंने यह भी नहीं जाना कि तुम आये हो। अतएव पुत्र! मैं इसी कारण नष्ट हुए मनः-संकल्प वाला होकर चिन्ता कर रहा हूं।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार, श्रेणिक राजासे यह अर्थ सुन कर और समझ कर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दितहृदय हुआ। उसने श्रेणिक राजा से इस भांति कहा—हे तात! आप भग्न—मनोरथ होकर चिन्ता न करें। मैं वैसा (कोई उपाय) करूंगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहदके मनोरथको पूर्त्ति होगी। इस प्रकार कहकर (अभयकुमार ने) इष्ट कांत यावत् मनोहर वचनोंसे श्रेणिक राजाको सान्त्वना दी। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, अभयकुमारके इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमारका सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके विदा करता है ॥१५॥

तत्पश्चात् (श्रेणिक राजा द्वारा) सत्कारित एवं सन्मानित होकर विदा किया हुआ वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है। निकल कर जहां अपना भवन है, वहां आता है। आकर सिंहासन पर बैठता है। तत्पश्चात् उस अभयकुमारको इस प्रकार का यह आध्यात्मिक (आंतरिक) संकल्प उत्पन्न हुआ—दिव्य अर्थात् देव सम्बन्धी उपायके विना, केवल मानवीय उपायसे मेरी छोटी माता धारिणी देवीके अकाल दोहदके मनोरथ की पूर्त्ति होना शक्य नहीं है। सौधर्म कल्पमें रहने वाला देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान् ऋद्धिधारक यावत महान् सुख भोगने वाला है। तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि—मैं पौषधशाला में पौषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि-सुवर्ण आदिके अलंकारोंका त्याग करके, माला वर्णक और विलेपनका त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ—समारम्भ को छोड़कर एकाकी (राग-द्वेष से रहित) और अद्वितीय (सेवक आदि की सहायतासे रहित) होकर, डाभके संथारे पर स्थित होकर, तेला की तपस्या ग्रहण करके, पहलेके मित्र देव का मनमें चिन्तन करता हुआ रहूं। ऐसा करने से वह पूर्व का मित्र देव (यहां आकर) मेरी छोटी माता धारिणी देवीके इस प्रकारके इस अकाल-मेघों सम्बन्धी दोहद को पूर्ण कर देगा।

अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है। विचार करके जहां पौषधशाला है, वहां आता है। आकर पौषधशालाका प्रमार्जन करता है। करके उच्चारप्रस्रवण की भूमिका प्रतिलेखन करता है। प्रतिलेखन करके डाभके संथारे का प्रतिलेखन करता है। डाभके संथारे का प्रतिलेखन करके उस पर आसीन होता है। आसीन होकर अष्टम भक्त तप ग्रहण करता है। ग्रहण करके पौषधशालामें पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके यावत् पहलेके मित्र देवका मनमें पुनः पुनः चिन्तन करता है।

तत्पश्चात् अभयकुमारका अष्टमभक्त तप प्रायः पूर्ण होने आया, तब पूर्व-भवके मित्र देवका आसन चलायमान हुआ। तब पूर्वभवका मित्र सौधर्मकल्पवासी देव अपने आसनको चलित हुआ देखता है और देखकर अवधिज्ञानका उपयोग

लगाता है। तब पूर्वभवके मित्र देवको इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—'इस प्रकार मेरा पूर्वभवका मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत में, राजगृह नगरमें, पौषधशालामें, अष्टम-भक्त ग्रहण करके मनमें बार-बार मेरा स्मरण कर रहा है। अतएव मुझे अभय-कुमारके समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।' देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घातसे समुद्घात करता है, अर्थात् उत्तरवैक्रिय शरीर बनानेके लिए जीव-प्रदेशोंको बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशोंको बाहर निकालकर संख्यात योजनका दंड बनाता है। वह इस प्रकार—

(१) कर्केतन रत्न (२) वज्र रत्न (३) वैडूर्य रत्न (४) लोहिताक्ष रत्न (५) मसारगल्ल रत्न (६) हंसगर्भ रत्न (७) पुलक रत्न (८) सौगंधिक रत्न (९) ज्योतिरस रत्न (१०) अंक रत्न (११) अंजन रत्न (१२) रजत रत्न (१३) जातरूप रत्न (१४) अंजनपुलक रत्न (१५) स्फटिक रत्न और (१६) रिष्ट रत्न —इन रत्नोंके यथाबादर अर्थात् असार पुद्गलोंका परित्याग करता है, परित्याग करके यथासूक्ष्म अर्थात सारभूत पुद्गलोंको ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है।) फिर अभयकुमार पर अनुकम्पा करता हुआ, पूर्वभवमें उत्पन्न हुई स्नेह जनित प्रीति के कारण और गुणानुरागके कारण (वियोग का विचार करके) वह खेद करने लगा। फिर उस देवने अपनी रचना अथवा रत्नोंसे उत्तम विमानसे निकलकर पृथ्वीतल पर जानेके लिए शीघ्र ही गतिका प्रचार किया, अर्थात् वह शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। उस समय चलायमान होते हुए, निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कृष्ट आडम्बरसे वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियों, सुवर्ण और रत्नोंके समूहसे शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्रसे उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुण्डलोंसे उज्ज्वल मुख की दीप्तिसे उसका रूप बड़ा ही सौम्य हो गया। कार्तिक की पूर्णिमाकी रात्रि में, शनि और मंगलके मध्यमें स्थित और उदय प्राप्त शारद निशाकरके समान वह देव दर्शकोंके नयनोंको आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह है कि शनि और मंगल ग्रहके समान चमकते हुए दोनों कुण्डलोंके बीचमें उसका मुख शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य औषधियों (जड़ी-बूटियों) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेजसे देदीप्यमान रूपसे मनोहर, समस्त ऋतुओंकी लक्ष्मीसे वृद्धिगत शोभा वाले तथा प्रकृष्ट गंधके प्रसारसे मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देवने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। वह असंख्य-संख्यक और असंख्य नामों वाले द्वीपों और समुद्रों के मध्यमें होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभासे जीव लोकको तथा नगरवर

राजगृह को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव अभयकुमारके पास आ पहुंचा ॥१६॥

तत्पश्चात् दसके आधे अर्थात् पांच वर्ण वाले तथा घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किए हुए वह देव आकाशमें स्थित होकर (अभयकुमारसे इस प्रकार बोला—) यह एक प्रकार का गम-पाठ है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है। वह इस प्रकार है--वह देव उत्कृष्ट, त्वरा वाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्षके कारण चंड–भयानक दृढ़ताके कारण सिंह जैसी, गर्वकी प्रचुरताके कारण उद्धत, शत्रुको जीतने वाली होनेसे जय करने वाली, छेक अर्थात् निपुणता वाली और दिव्य देवगतिसे जहां जम्बूद्वीप था, भारतवर्ष था और जहां दक्षिणार्ध भरत था, उसमें भी जहां राजगृह नगर था और जहां पौषधशाला में अभयकुमार था, वहीं आता है। आकरके आकाशमें स्थित होकर पांच वर्ण वाले एवं घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए वह देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा—

हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारा पूर्वभवका मित्र सौधर्मकल्पवासी महान् ऋद्धिका धारक देव हूं। क्योंकि तुम पौषधशालामें अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मुझे मनमें रखकर स्थित हो, इसी कारण हे देवानुप्रिय ! मैं शीघ्र यहां आया हूं। देवानुप्रिय ! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूं ? तुम्हे क्या दूं ? तुम्हारे किसी संबंधी को क्या दूं ? तुम्हारा मनोवांछित क्या है ?

तत्पश्चात् अभयकुमार ने आकाश में स्थित पूर्व भव के मित्र उस देव को देखा, देखकर वह हृष्ट–तुष्ट हुआ। पौषध को पारा–पूर्ण किया। फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़ कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएं धन्य हैं यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूं। इत्यादि पूर्व के समान सब कथन यहां समझ लेना चाहिए। तो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार दोहद को पूर्ण कर दो।

तत्पश्चात् वह देव अभयकुमार के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर अभयकुमारसे बोला—देवानुप्रिय ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रक्खो। मैं तुम्हारी लघु माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस दोहद की पूर्त्ति किये देता हूं। ऐसा कहकर देव अभयकुमार के पास से निकलता है। निकल कर उत्तरपूर्व दिशामें वैभार गिरि पर जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है। समुद्घात करके संख्यात योजन प्रमाण वाला दंड निकालता है, यावत् दूसरी बार भी वैक्रियसमुद्घात करता है और गर्जना से युक्त, बिजली से युक्त और जल-बिन्दुओं से युक्त पांच वर्ण वाले मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की

लक्ष्मी की विक्रिया करता है। विक्रिया करके जहां अभयकुमार था, वहां आता है, आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है—

देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी प्रीति के लिए गर्जनायुक्त, विन्दु-युक्त और विद्युतयुक्त दिव्य वर्षालक्ष्मी की विक्रिया की है। अतः हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी इस प्रकार के इस दोहद की पूर्त्ति करे। तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूर्व के मित्र देव से यह वात सुन-समझकर हृष्ट-तुष्ट होकर अपने भवन से वाहर निकलता है। निकल कर जहां श्रेणिक राजा वैठा था, वहां आता है। आकर मस्तक पर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहता है। हे तात ! इस प्रकार मेरे पूर्वभव के मित्र सौधर्मकल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, विजली से युक्त और (वूंदों सहित) पांच रंगों के मेघों की ध्वनि से सुशोभित दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा की विक्रिया की है। अतः मेरी लघु माता धारिणी देवी अपने अकालदोहद को पूर्ण करें।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, अभयकुमार से यह वात सुन कर और हृदय में धारण करके हर्षित और संतुष्ट हुआ। यावत् उसने कौटुम्विक पुरुषों (सेवकों) को वुलवाया वुलवाकर इस भांति कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर में शृंगाटक (सिंघाड़े की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहां तीन रास्ते मिलें वह मार्ग), चतुष्क (चौक) और चवूतरे आदि को सींच कर यावत् उत्तम सुगंध से सुगंधित करके गंध की वट्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो। तत्पश्चात् वे कौटुम्विक पुरुष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस सौंपते हैं, अर्थात् आज्ञापूर्त्ति की सूचना देते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा दूसरी वार कौटुम्विक पुरुषों को वुलवाता है और वुलवा कर इस प्रकार कहता है—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही उत्तम अश्व, गज, रथ तथा योद्धाओं (पदातियों) सहित चतुरंगी सेना को तैयार करो और सेचनक नामक गंधहस्ती को भी तैयार करो।' वे कौटुम्विक पुरुष भी आज्ञा-पालन करके यावत् आज्ञा वापिस सौंपते हैं। तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा जहां धारिणी देवी थी, वहां आया। आकर धारिणी देवी से इस प्रकार वोला—हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार गर्जना की ध्वनि से युक्त यावत् वर्षा की सुषमा प्रादुर्भूत हुई है। अतएव हे देवानुप्रिये ! तुम अपने अकाल-दोहद की निवृत्ति करो।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुई और जहां स्नानगृह था, उसी ओर आई। आकर स्नानगृह में प्रवेश किया। प्रवेश करके अन्तःपुर के स्नानगृहमें स्नान किया। फिर क्या किया ? सो कहते हैं—पैरों में उत्तम नूपुर पहन कर यावत् आकाश स्फटिक मणिके समान

प्रभा वाले वस्त्रों को धारण किया। वस्त्र धारण करके सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर, अमृतमन्थन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान श्वेत चामर के वालों रूपी वीजने से विंजाती हुई रवाना हुई। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने स्नान किया, यावत् सुसज्जित होकर श्रेष्ठ गंधहस्ती के स्कंध पर आरूढ़ होकर, कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाले छत्र को मस्तक पर धारण करके, चार चामरों से विंजाते हुए धारिणी देवी का अनुगमन किया।

श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठे हुए श्रेणिक राजा धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले। धारिणी देवी अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओं रूप चतुरंगी सेना से परिवृत थी। उसके चारों ओर महान् सुभटों का समूह घिरा हुआ था। इस प्रकार सम्पूर्ण समृद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ, यावत् दुंदुभि के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि में होकर यावत् राजमार्ग में होकर निकली। नागरिक लोगों ने पुनः पुनः उसका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् वह जहां वैभारगिरि पर्वत था, उसी ओर आई। आकर वैभारगिरि के कटकतट में और तलहटी में, दम्पतियों के क्रीडास्थान आरामों में, पुष्प-फल से सम्पन्न उद्यानों में, सामान्य वृक्षों से युक्त काननों में, नगर से दूरवर्ती वनों में, एक जाति के वृक्षों के समूह वाले वनखंडों में, वृक्षों में, वृन्ताकी आदि के गुच्छों में, वांस की झाड़ी आदि गुल्मों में, आम्र आदि की लताओं अर्थात् पौधों में, नागरवेल आदि की वल्लियों में, गुफाओं में, दरी (शृगाल आदि के रहने के गड़हों में), चुण्ढी (विना खोदे आप ही बनी हुई जल की तलैया) में, ह्रदों-तालावों में, अल्प जल वाले कच्छों में, नदियों में, नदियों के संगमों में और अन्य जलाशयों में, अर्थात् इन सब के आस-पास खड़ी होती हुई, वहां के दृश्यों को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रों, पुष्पों, फलों और पल्लवों (कोंपलों) को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को सूंघती हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और दूसरों को वांटती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि में अपना दोहद पूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करने लगी। तत्पश्चात् धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

…धारिणी देवी सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ हुई। श्रेणिक राजा श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि से घिरी हुई वह जहां राजगृह नगर है, वहां आती है। राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर जहां अपना भवन है, वहां आती है। वहां आकर मनुष्य संबंधी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है ॥ १७॥

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहां पौषधशाला है, वहां आता है। आकर

पूर्व के मित्र देव का सत्कार-सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके उसे विदा करता है। तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना से युक्त पंचरंगी मेघों से सुशोभित दिव्य वर्षा-लक्ष्मी का प्रतिसंहरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है और प्रतिसंहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में चला गया, अर्थात् अपने स्थान पर गया ॥१८॥

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्मानित किया। वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए, गर्भ को बाधा न पहुंचे इस प्रकार यतना-सावधानी से खड़ी होती, यतना से बैठती और यतना से शयन करती। आहार करती हुई ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो, और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (बुद्धि-आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एवं इन्द्रियों को अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्यजनक) हो। वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास न करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, मोह, भय और त्रास से रहित होकर सब ऋतुओं में सुखप्रद भोजन, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार आदिसे सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करती है ॥१९॥

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने नौ मास परिपूर्ण होने पर और साढ़े सात रात्रि-दिवस बीत जाने पर, अर्ध रात्रि के समय, अत्यन्त कोमल हाथ-पैर वाले यावत् सर्वांगसुन्दर शिशु का प्रसव किया। तत्पश्चात् दासियां धारिणी देवी को नौ मास पूर्ण हुए यावत् पुत्र उत्पन्न हुआ देखती हैं। देख कर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली, कायसे चपल एवं वेगवाली वे दासियां जहां श्रेणिक राजा है, वहां आती हैं। आकर श्रेणिक राजा को जय-विजय शब्द कह कर वधाई देती हैं। वधाई देकर, दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर आवर्त्तन करके अंजलि करके इस प्रकार कहती हैं—

हे देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्र का प्रसव किया है। सो हम देवानुप्रिय को प्रिय (समाचार) निवेदन करतीं हैं। आपको प्रिय हो। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा उन दासियों से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ। उसने उन दासियों का मधुर वचनों से तथा विपुल पुष्पों, गंधों, मालाओं और आभूषणों से सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन्हें मस्तकधौत किया—दासीपन से मुक्त कर दिया। उन्हें ऐसी आजीविका कर दी कि उनके पुत्र पौत्र आदि तक चलती रहे। इस प्रकार आजीविका करके विपुल द्रव्य देकर विदा किया। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है। बुलाकर इस प्रकार आदेश देता है-हे देवानुप्रियो !

शीघ्र ही राजगृह नगर में सुगंधित जल छिड़को, यावत् सर्वत्र (मंगल) गान कराओ। कारागार से कैदियों को मुक्त करो। तोल और नाप की वृद्धि करो। यह सब करके यह आज्ञा वापिस सौंपो। यावत् कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा के अनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस देते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कुंभकार आदि जाति रूप अठारह श्रेणियों को और उनके उपविभाग रूप अठारह प्रश्रेणियों को बुलाता है। बुला कर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और राजगृह नगर के भीतर और बाहर दस दिन की स्थितिपतिका (कुलमर्यादा के अनुसार होने वाली पुत्र जन्मोत्सव की विशिष्ट रीति) कराओ। वह इस प्रकार दस दिनों तक शुल्क (चुंगी) बंद किया जाय, गायों वगैरह का प्रतिवर्ष लगने वाला कर माफ किया जाय, कुटुंबियों–किसानों आदि के घर में बेगार आदि लेने के लिए राजपुरुषों का प्रवेश निषिद्ध किया जाय, दंड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य) और कुदंड (अल्पदंड-बड़ा अपराध करने पर भी लिया जाने वाला थोड़ा द्रव्य) न लिया जाय, किसी को ऋणी न रहने दिया जाय, अर्थात् राजा की तरफ से सब का ऋण चुका दिया जाय, किसी देनदार को पकड़ा न जाय, ऐसी घोषणा कर दो। तथा सर्वत्र मृदंग आदि बाजे बजवाओ। चारों ओर विकसित ताजा फूलों की मालाएं लटकाओ। गणिकाएं जिनमें प्रधान हैं ऐसे पात्रों से नाटक करवाओ। अनेक तालाचरों (प्रेक्षाकारियों) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीड़ा करें। इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो–कराओ और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस सौंपो। राजा श्रेणिक का यह आदेश सुन कर वे इसी प्रकार करते हैं और राजाज्ञा वापिस करते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा बाहर की उपस्थानशाला (सभा) में, पूर्व की ओर मुख करके, श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और सैकड़ों, हजारों और लाखों के द्रव्य से याग एवं दान दिया। आय में से अमुक भाग दिया। और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा। तत्पश्चात् उस बालकके माता–पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरण) किया। तीसरे दिन चन्द्र–सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जात कर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवां दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुएं तैयार करवाईं। तैयार करवा कर मित्र, बन्धु आदि ज्ञाति, पुत्र आदि निजक जन, काका आदि स्वजन, श्वसुर आदि संबंधी जन, दास आदि परिजन, सेना और बहुत से गणनायक, दंडनायक आदिको आमंत्रण दिया। उसके पश्चात् स्नान किया, समस्त अलंकारों से विभूषित हुए। फिर बहुत विशाल भोजन-मंडप में, उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन

का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करते हुए विचरने लगे।

इस प्रकार भोजन करनेके पश्चात् बैठने के स्थान पर आये। शुद्ध जलसे आचमन (कुल्ला) किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए। फिर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधीजन, परिजन आदि तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारसे सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके इस प्रकार कहा—क्योंकि हमारा यह पुत्र जब गर्भमें स्थित था, तब इसकी माताको अकाल-मेघ संबंधी दोहद प्रकट हुआ था। अतएव हमारे इस पुत्रका नाम 'मेघकुमार' होना चाहिए। इस प्रकार माता-पिताने इस प्रकारका गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा।

तत्पश्चात् मेघकुमार पांच धायों द्वारा ग्रहण किया गया—पांच धाएं उसका पालन-पोषण करने लगीं। वे इस प्रकार थीं—(१) क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय, (२) मंडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, (३) मज्जनधात्री-स्नान कराने वाली धाय, (४) क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अंकधात्री—गोदमें लेने वाली धाय। इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबड़ी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देशमें उत्पन्न), वामन (बौनी), बडभी (बड़े पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देशमें उत्पन्न), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धोरुकिन ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड़ देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशों की, परदेश–अपने देशसे भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इंगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देशके वेष को धारण करने वाली, निपुणोंमें भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियों के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियों द्वारा और वर्षधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषों), कंचुकियों और महत्तरकों (अन्तःपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालों) के समुदायसे घिरा रहने लगा। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथमें जाता, एक की गोदसे दूसरे की गोदमें जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, उंगली पकड़ कर चलाया जाता, क्रीड़ा आदिसे लालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरिगुफा में स्थित चम्पक वृक्षके समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

तत्पश्चात् उस मेघकुमारके माता-पिता अनुक्रमसे नामकरण, पालनेमें झुलाना, पैरोंसे चलाना, चोटी रखना, आदि संस्कार बड़ी-बड़ी ऋद्धि और सत्कार-

पूर्वक मानवसमूह के साथ करते हैं।''''''तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्षके हुए, अर्थात् गर्भसे आठ वर्षके हुए मेघकुमारको माता-पिताने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्यने मेघकुमारको गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियोंके शब्द) तक की वहत्तर कलाएं सूत्रसे, अर्थसे और प्रयोगसे सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वह कलाएं इस प्रकार हैं--(१)लेखन (२)गणित (३) रूप वदलना(४) नाटक (५) गायन (६) वाद्य वजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल जानना (१०) शतरंज खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासोंसे खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगरकी रक्षा करना (१५) जल और मिट्टीके संयोगसे वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र वनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तुको पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या वनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या छंद को पहचानना और वनाना (२२) पहेलियां वनाना और वूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषामें गाथा आदि वनाना (२४) प्राकृत भाषामें गाथा आदि वनाना (२५) गीति छंद वनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छंद) वनाना (२७) सुवर्ण वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण-गुलाल अवीर आदि वनाना और उनका उपयोग करना (३०) गहने घड़ना, पहनना आदि (३१) तरुणी प्रसाधन करना--सजाना (३२) स्त्रीके लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथीके लक्षण जानना (३६) गायवैलके लक्षण जानना (३७) मुर्गे के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जानना (३९) दंड-लक्षण जानना (४०) खड्गलक्षण जानना (४१) मणिके लक्षण जानना (४२) काकणी रत्नके लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या-मकान दुकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेनाके पड़ाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर वसाने आदिकी कला (४६) व्यूह-मोर्चा वनाना (४७) विरोधीके व्यूहके सामने अपनी सेनाका मोर्चा रचना (४८) सैन्यसंचालन करना (४९) प्रतिचार-शत्रुसेनाके समक्ष अपनी सेनाको चलाना (५०) चक्रव्यूह-चाकके आकारमें मोर्चा वनाना (५१) गरुड़के आकार का व्यूह वनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) यष्टि से युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) वाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०)वहुत को थोड़ा और थोड़ेको वहुत दिखलाना (६१) खड्ग

का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करते हुए विचरने लगे।

इस प्रकार भोजन करनेके पश्चात् बैठने के स्थान पर आये। शुद्ध जलसे आचमन (कुल्ला) किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए। फिर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधीजन, परिजन आदि तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारसे सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके इस प्रकार कहा—क्योंकि हमारा यह पुत्र जब गर्भमें स्थित था, तब इसकी माताको अकाल-मेघ संबंधी दोहद प्रकट हुआ था। अतएव हमारे इस पुत्रका नाम 'मेघकुमार' होना चाहिए। इस प्रकार माता-पिताने इस प्रकारका गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा।

तत्पश्चात् मेघकुमार पांच धायों द्वारा ग्रहण किया गया—पांच धाएं उसका पालन-पोषण करने लगीं। वे इस प्रकार थीं—(१) क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय, (२) मंडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, (३) मज्जनधात्री-स्नान कराने वाली धाय, (४) क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अंकधात्री—गोदमें लेने वाली धाय। इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबड़ी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देशमें उत्पन्न), वामन (बौनी), वडभी (बड़े पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देशमें उत्पन्न), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धोरुकिन ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड़ देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशों की, परदेश-अपने देशसे भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इंगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देशके वेष को धारण करने वाली, निपुणोंमें भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियों के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियों द्वारा और वर्षधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषों), कंचुकियों और महत्तरकों (अन्तःपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालों) के समुदायसे घिरा रहने लगा। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथमें जाता, एक की गोदसे दूसरे की गोदमें जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, उंगली पकड़ कर चलाया जाता, क्रीड़ा आदिसे लालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरिगुफा में स्थित चम्पक वृक्षके समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

तत्पश्चात् उस मेघकुमारके माता-पिता अनुक्रमसे नामकरण, पालनेमें सुलाना, पैरोंसे चलाना, चोटी रखना, आदि संस्कार बड़ी-बड़ी ऋद्धि और सत्कार-

पूर्वक मानवसमूह के साथ करते हैं।······तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्षके हुए, अर्थात् गर्भसे आठ वर्षके हुए मेघकुमारको माता-पिताने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त्त में कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्यने मेघकुमारको गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियोंके शब्द) तक की वहत्तर कलाएं सूत्रसे, अर्थसे और प्रयोगसे सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वह कलाएं इस प्रकार हैं--(१) लेखन (२) गणित (३) रूप वदलना (४) नाटक (५) गायन (६) वाद्य वजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल जानना (१०) शतरंज खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासोंसे खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगरकी रक्षा करना (१५) जल और मिट्टीके संयोगसे वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र वनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तुको पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या वनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या छंद को पहचानना और वनाना (२२) पहेलियां वनाना और बूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषामें गाथा आदि वनाना (२४) प्राकृत भाषामें गाथा आदि वनाना (२५) गीति छंद वनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छंद) वनाना (२७) सुवर्ण वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण-गुलाल अवीर आदि वनाना और उनका उपयोग करना (३०) गहने घड़ना, पहनना आदि (३१) तरुणी प्रसाधन करना--सजाना (३२) स्त्रीके लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथीके लक्षण जानना (३६) गायवैलके लक्षण जानना (३७) मुर्गे के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जानना (३९) दंड-लक्षण जानना (४०) खड्गलक्षण जानना (४१) मणिके लक्षण जानना (४२) काकणी रत्नके लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या-मकान दुकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेनाके पड़ाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर वसाने आदिकी कला (४६) व्यूह-मोर्चा वनाना (४७) विरोधीके व्यूहके सामने अपनी सेनाका मोर्चा रचना (४८) सैन्यसंचालन करना (४९) प्रतिचार-शत्रुसेनाके समक्ष अपनी सेनाको चलाना (५०) चक्रव्यूह-चाकके आकारमें मोर्चा वनाना (५१) गरुड़के आकार का व्यूह वनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) यष्टि से युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) वाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) वहुत को थोड़ा और थोड़ेको वहुत दिखलाना (६१) खड्ग

की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण संबन्धी कौशल होना (६३) चांदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नालका छेदन करना (६८) पत्र छेदन करना (६९) कड़ा कुंडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि की बोली पहचानना ॥२०॥

तत्पश्चात् वह कलाचार्य, मेघकुमार को गणित प्रधान, लेखनसे लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाएं सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोगसे सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवा कर और सिखला कर माता-पिता के पास ले जाता है।

तब मेघकुमारके माता-पिताने कलाचार्यका मधुर वचनोंसे तथा विपुल वस्त्र, गंध,माला और अलंकारोंसे सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविकाके योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया ॥२१॥

तब मेघकुमार बहत्तर कलाओंमें पंडित हो गया। उसके नौ अंग-दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्थाके कारण जो सोये-से थे अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृतसे हो गये। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो गया। वह गीतिमें प्रीति वाला, गीत और नृत्यमें कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओं से विपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमें आ गया। साहसी होने के कारण विकालचारी—आधी रातमें भी चल पड़ने वाला बन गया ॥२२॥

तत्पश्चात् मेघकुमारके माता-पिताने मेघकुमारको बहत्तर कलाओंमें पंडित यावत् विकालचारी हुआ देखा। देखकर आठ उत्तम प्रासाद बनवाये। वे प्रासाद बहुत ऊंचे उठे हुए थे। अपनी उज्ज्वल कान्तिके समूहसे हंसते हुएसे प्रतीत होते थे। मणि सुवर्ण और रत्नोंकी रचनासे विचित्र थे। वायु से फहराती हुई और विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती-पताकाओंसे तथा छत्रातिछत्रों (एक दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रों) से युक्त थे। वे इतने ऊंचे थे कि उनके शिखर आकाशतल को उल्लंघन करते थे। उनकी जालियोंके मध्य में रत्नोंके पंजर ऐसे प्रतीत होते थे, मानों उनके नेत्र हों। उनमें मणियों और कनक की थूभिकाएं थीं। उनमें साक्षात् अथवा चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे। वे तिलक रत्नों एवं अर्द्धचन्द्रों—एक प्रकारके सोपानोंसे युक्त थे, अथवा भित्तियोंमें चन्दन आदिके आलेख (हाथे) से चर्चित थे। नाना प्रकार की

मणिमय मालाओं से अलंकृत थे। भीतर और बाहरसे चिकने थे। उनके आंगन में सुवर्ण की रुचिर वालुका बिछी थी। उनका स्पर्श सुखप्रद था। रूप बड़ा ही शोभन था। उन्हें देखते ही चित्तमें प्रसन्नता होती थी। यावत् वे महल प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे।

और एक महान् भवन* (मेघकुमारके लिए) बनवाया। वह अनेक सैंकड़ों स्तंभोंसे बना हुआ था। उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियां स्थापित की हुई थीं। उसमें ऊंची और सुनिर्मित वज्ररत्नकी वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्य रत्नके स्तंभ थे, वे विविध प्रकारके मणियों सुवर्ण तथा रत्नोंसे खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देते थे। उनका भूमिभाग बिलकुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था। उस भवनमें ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर आदिके चित्र चित्रित किये हुए थे। स्तंभों पर बनी वज्ररत्न की वेदिकासे युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था। समान श्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्र द्वारा चलते दीख पड़ते थे। वह भवन हजारों किरणोंसे व्याप्त और हजारों चित्रोंसे युक्त होनेसे देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान था। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपकसे जाते थे। उसका स्पर्श सुखप्रद था और रूप शोभासम्पन्न था। उसमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की स्तूपिकाएं बनी हुई थीं। उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार की, पांच वर्णों की एवं घंटाओं सहित पताकाओंसे सुशोभित था। वह चहुं ओर देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था। वह लिपा था, घुला था और चंदोवे से युक्त था। यावत् वह भवन गंध की वर्त्ती जैसा जान पड़ता था। वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीव मनोहर था ॥२३॥

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमारका शुभ तिथि करण नक्षत्र और मुहूर्त में, शरीर-परिमाणसे सदृश, समान उम्र वाली, समान त्वचा (कान्ति) वाली, समान लावण्य वाली, समान रूप (आकृति) वाली, समान यौवन और गुणों वाली तथा अपने कुलके समान राजकुलोंसे लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओंके साथ, एक ही दिन—एक ही साथ, आठों अंगोंमें अलंकार धारण करने वाली सुहागिन स्त्रियों द्वारा किये हुए मंगलगान एवं दधि अक्षत आदि मांगलिक पदार्थों के प्रयोग द्वारा पाणिग्रहण करवाया।

तत्पश्चात् मेघकुमारके माता-पिताने (उन आठ कन्याओं को) इस प्रकार

*लम्बाई की अपेक्षा ऊंचाई कुछ कम हो तो वह महल भवन कहलाता है। लम्बाई से ऊंचाई दुगुनी हो तो प्रासाद कहलाता है।

प्रीतिदान दिया—आठ करोड़ हिरण्य (चांदी), आठ करोड़ सुवर्ण, आदि गाथाओं के अनुसार समझ लेना चाहिए,※ यावत् आठ-आठ प्रेक्षणकारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेपणकारिणी (पीसने वाली), तथा और भी विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, रक्त रत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया, जो सात पीढ़ी तक दान देनेके लिए, भोगने के लिए, उपयोग करनेके लिए और वंटवारा करके देनेके लिए पर्याप्त था।

···उस मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नीको एक-एक करोड़ हिरण्य दिया, एक-एक करोड़ सुवर्ण दिया। यावत् एक-एक प्रेक्षणकारिणी या पेपणकारिणी दी। इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन कनक आदि दिया, जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और वंटवारा करने के लिए सात पीढ़ियों तक पर्याप्त था।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानों मृदंगोंके मुख फूट रहे हों, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा किये हुए वत्तीसवद्ध नाटकों द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीड़ा करता हुआ, मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की विपुलता वाले मनुष्य संवंधी कामभोगों को भोगता हुआ विचरने लगा ॥२४॥

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रमसे चलते हुए, एक गांवसे दूसरे गांव जाते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील नामक उद्यान था, यावत् वहीं आकर ठहरते हैं। तत्पश्चात् राजगृह नगरमें शृङ्गाटक-सिंघाड़े के आकारके मार्ग आदिमें वहुतसे लोगोंका शोर होने लगा। यावत् वहुतेरे उग्रकुलके, भोगकुलके आदि सभी लोग यावत् राजगृह नगरके मध्य भागमें होकर एक ही दिशामें, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे। उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद पर था। मानों मृदंगोंका मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था। यावत् मनुष्य संवंधी कामभोग भोग रहा था और राजमार्गका अवलोकन करता हुआ विचर रहा था।

तत्पश्चात् वह मेघकुमार उन वहुतेरे उग्रकुलीन भोगकुलीन यावत् सव लोगोंको एक ही दिशामें मुख किये जाते देखता है। देखकर कंचुकी पुरुपको वुलाता है और वुलाकर इस प्रकार कहता है—'हे देवानुप्रिय! क्या आज राजगृह नगरमें इन्द्र महोत्सव है? स्कंद (कार्तिकेय) का महोत्सव है? या···वैश्रमण (कुवेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तड़ाग, वृक्ष, पर्वत, उद्यान या गिरि (पर्वत) की यात्रा है, जिससे वहुतसे उग्र-कुल तथा भोग-कुल आदिके सव लोग एक ही दिशामें और एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं?'

※टीकाकार ने उल्लेख किया है कि ये गाथाएं आजकल उपलव्ध नहीं हैं, तथापि अन्य ग्रंथों में उन वस्तुओं का उल्लेख है, जो इन कन्याओं को प्रदान की गई थीं।

तत्पश्चात् उस कंचुकी पुरुषने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तान्त जानकर मेघकुमार को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगरमें इन्द्र महोत्सव या यावत् गिरियात्रा आदि नहीं है कि जिसके निमित्त यह उग्रकुलके, भोगकुलके तथा अन्य सब लोग एक ही दिशामें, एकाभिमुख होकर जा रहे हैं। परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्म तीर्थ की आदि करने वाले···स्थापना करने वाले यहां आए हैं, पधार चुके हैं, समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगरमें, गुणशील उद्यानमें यथायोग्य अवग्रहकी याचना करके यावत् विचर रहे हैं ॥२५॥

तत्पश्चात् मेघकुमार कंचुकी पुरुषसे यह बात सुनकर एवं हृदयमें धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होता हुआ कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलवाता है और बुलवा कर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटों वाले अश्वरथको जोतकर उपस्थित करो। वे कौटुम्बिक पुरुष 'बहुत अच्छा' कहकर रथ जोत लाते हैं।

तदनन्तर मेघकुमारने स्नान किया। सर्व अलंकारोंसे विभूषित हुआ। फिर चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। कोरंट वृक्षके फूलोंकी माला वाले छत्र को धारण किया। सुभटोंके विपुल समूह वाले परिवारसे घिरा हुआ, राजगृह नगरके बीचोंबीच होकर निकला। निकलकर जहां गुणशील नामक उद्यान था, वहां आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयोंको देखा तथा विद्याधरों, चारण मुनियों और जृंभक देवोंको नीचे उतरते एवं ऊपर उठते देखा। यह सब देखकर चार घण्टों वाले अश्वरथसे नीचे उतरा। उतरकर पांच प्रकारके अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीरके सन्मुख चला। वह पांच अभिगम इस प्रकार हैं—(१) पुष्प पान आदि सचित्त द्रव्योंका त्याग (२) वस्त्र आभूषण आदि अचित्त द्रव्योंका अत्याग (३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासंग (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़ना और (५) मनको एकाग्र करना। यह अभिग्रह करके जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशासे आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान्‌को स्तुतिरूप वन्दन किया और कायसे नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीरके अत्यन्त समीप नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं ऐसे समुचित स्थान पर बैठ कर, धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनों हाथ जोड़े, सन्मुख रहकर, प्रभु की उपासना करने लगा।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमारको और उस महती परिषद् को मध्यमें स्थित होकर विचित्र प्रकारका श्रुतधर्म और चारित्र धर्म कहा। जिस प्रकार जीव कर्मोंसे बद्ध होते हैं, जिस प्रकार मुक्त होते हैं और जिस प्रकार संक्लेश

को प्राप्त होते हैं, यह सब धर्मकथा औपपातिक सूत्रके अनुसार कहनी चाहिए। यावत् धर्मदेशना सुनकर परिषद् अर्थात् जनसमूह वापिस चला गया ।।२६।।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरके पाससे मेघकुमारने धर्म श्रवण करके और उसे हृदयमें धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओरसे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूं। मैं उस पर प्रतीति करता हूं। मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिन शासनके अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हूं, भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अंगीकार करना चाहता हूं। भगवन्! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन्! मैंने इसकी इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है, भगवन्! यह इच्छित और पुनः पुनः इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते हैं। विशेष बात यह है कि हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिताकी आज्ञा ले लूं, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूंगा।' भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख उपजे वह करो, परन्तु उसमें विलम्ब न करो।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की, नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहां चार—घंटों वाला अश्व-रथ था, वहां आया। आकर चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ होकर महान् सुभटों और विपुल समूह वाले परिवार के साथ राजगृह के बीचोंबीच होकर जहां अपना घर था, वहां आया। आकर चार घंटों वाले अश्व-रथ से उतरा। उतर कर जहां उसके माता-पिता थे, वहां आया। आकर माता-पिता के पैरों में प्रणाम किया। प्रणाम करके इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप धर्म श्रवण किया है और मैंने उस धर्म की इच्छा की है, वार-वार इच्छा की है, वह मुझे रुचा है।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले--हे पुत्र! तुम धन्य हो, पुत्र! तुम पूरे पुण्यवान् हो, हे पुत्र! तुम कृतार्थ हो, कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हें इष्ट, पुनः पुनः इष्ट और रुचिकर हुआ है। तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से दूसरी वार और तीसरी वार इस प्रकार कहने लगा—हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है। उस धर्म की मैंने वार-वार इच्छा की है, वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव माता-पिता! मैं तुम्हारी अनुमति पाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।

तत्पश्चात् धारिणी देवी उस अनिष्ट (अनिच्छित), अप्रिय, अमनोज्ञ (अप्रशस्त) और अमणाम (मन को न रुचने वाली), पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण करके, इस प्रकार के मन ही मन में रहे हुए महान् पुत्र के वियोग के दुःख से पीड़ित हुई। उसके रोमकूपों में पसीना आने से अंगों से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अंग कांपने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। 'मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं' यह शब्द सुनने के क्षण में ही वह दु.खी और दुर्बल हो गई। वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलंकार अत्यन्त ढीले हो गए, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पड़े और चूर-चूर हो गये। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश बिखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चंपकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये। ऐसी वह धारिणी देवी सर्व अंगों से धस्—धड़ाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पड़ी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी, संभ्रम के साथ शीघ्रता से, सुवर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचन की गई। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बांस के पंखे) से, तालवृन्त (ताड़ के पत्ते के पंखे) से तथा वीजनक (जिसकी डंडी अन्दर से पकड़ी जाय, ऐसे बांस के पंखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणों से युक्त वायु से अन्तःपुर के परिजनों द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तब धारिणी देवी मोतियों की लड़ी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनों को सींचने-भिगोने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एवं लार टपकाती हुई, हृदय में शोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी—

हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमें इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने में सम्मत (माना हुआ) है, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणों की पेटी के समान है। मनुष्य जाति में उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है, फिर दर्शन की बात ही क्या है। पुत्र ! हम क्षण भर के

लिए भी तेरा वियोग नहीं सहन करना चाहते। अतएव पुत्र! प्रथम तो जव तक हम जीवित हैं, तव तक मनुष्य-संवंधी विपुल काम-भोगों को भोग। फिर जव हम कालगत हो जाएं और तू परिपक्व उम्र का हो जाय--तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, कुल-वंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तंतु का कार्य वृद्धि को प्राप्त हो जाय, जव सांसारिक कार्य की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीरके पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना ॥२७॥

तत्पश्चात् माता-पिताके द्वारा इस प्रकार कहने पर मेघकुमारने माता-पिता से इस प्रकार कहा--हे माता-पिता! आप मुझसे जो यह कहते हैं कि--हे पुत्र! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इत्यादि सव पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् सांसारिक कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीरके समीप प्रव्रजित होना--सो ठीक है, परन्तु माता-पिता! यह मनुष्यभव ध्रुव नहीं है अर्थात् सूर्योदय के समान नियमित समय पर पुनः पुनः प्राप्त होने वाला नहीं है, नियत नहीं है अर्थात् इस जीवन में उलट-फेर होते रहते हैं, अशाश्वत है अर्थात् क्षण-विनश्वर है, सैंकड़ों व्यसनों एवं उपद्रवों से व्याप्त है, विजली की चमक के समान चंचल है, अनित्य है, जल के वुलवुले के समान है, दूव की नोक पर लटकने वाले जल-विन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के वादलों के सदृश है, स्वप्न-दर्शन के समान है--अभी है और अभी नहीं है, कुष्ठ आदि से सड़ने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होनेके स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है, माता-पिता! कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।

तत्पश्चात् माता-पिताने मेघकुमार से इस प्रकार कहा-हे पुत्र! यह तुम्हारी भार्याएं समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त तथा समान राजकुलों से लाई हुई हैं। अतएव, पुत्र! इनके साथ विपुल मनुष्य-संवंधी कामभोगोंको भोगो। तदनन्तर भुक्त-भोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप यावत् दीक्षा ले लेना।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा--हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं कि--हे पुत्र! तेरी यह भार्याएं समान शरीर वाली हैं इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा लेना, सो ठीक है, किन्तु माता-पिता! मनुष्यों के ये कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत नर-नारियों के शरीर अशुचि हैं, अशाश्वत हैं, वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, कफ को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले तथा शोणित को झराने वाले हैं, गंदे उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं, खराव मूत्र, मल और पीव

से अत्यन्त परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं। यह ध्रुव नहीं, नियत नहीं, शाश्वत नहीं हैं, सड़ने पड़ने और विध्वंस होने के स्वभाव वाले हैं और पहले पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य हैं। माता-पिता! कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मैं यावत् अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—हे पुत्र! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, दूष्य—वस्त्र, मणि, मोती, शंख, सिला, मूङ्गा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान हैं। यह इतना है कि सात पीढ़ियों तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वयं भोग करो और बंटवारा करो। पुत्र! यह जितना मनुष्य संबंधी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है, उतना सब तुम भोगो। उसके बाद अनुभूत—कल्याण होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—···आप जो कहते हैं सो ठीक है कि—हे पुत्र! यह दादा, पड़दादा और पिता के पड़दादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूत कल्याण होकर दीक्षा ले लेना—परन्तु हे माता-पिता! यह हिरण्य सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्नि-साध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बंटवारा करा सकते हैं और मृत्यु आने पर वह अपना नहीं रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिए सामान्य है, अर्थात् जैसे द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है, और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिए भी सामान्य है। यह सड़ने पड़ने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण के) पश्चात् या पहले त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा? अतएव मैं यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं ॥२८॥

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार के विषयों के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेप रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, संज्ञापना (संवोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने, बुझाने, संवोधन करनेमें और अनुनय करनेमें समर्थ न हुए, तब विषयोंके प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त

कराने वाले गुणों से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् सर्वथा न्याययुक्त या मोक्षकी ओर ले जाने वाला है, संशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति-मार्ग (पाप के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है। निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुःखों को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमें दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के सामने पूर में तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले में बांधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ-श्रमणों को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ), दुर्भिक्ष-भक्त (साधु के लिए दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन), कान्तारभक्त (साधु के निमित्त अरण्य में बनाया आहार), वर्दलिकाभक्त (वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कंद का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजों का भोजन अथवा हरितका भोजन करना भी नहीं कल्पता है। इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दुःख सहने योग्य नहीं है। तू शीत सहने में समर्थ नहीं है, उष्ण सहने में समर्थ नहीं है। भूख नहीं सह सकता, प्यास नहीं सह सकता, वात पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगों (कोढ़ आदि को) तथा आतंकों (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊंचे—नीचे इन्द्रिय—प्रतिकूल वचनों को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार सहन नहीं कर सकता। अतएव हे लाल ! तू मनुष्य संबंधी कामभोगों को भोग। बाद में भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अंगीकार करना।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते हैं सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहां

दोहरा लेना चाहिए, यावत् बादमें भुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।' परंतु माता-पिता ! इस प्रकार यह निर्ग्रन्थ प्रवचन क्लीव--हीन संहनन वाले, कायर--चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोक संबंधी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोकके सुख की इच्छा न करने वाले सामान्य जन के लिये ही दुष्कर है। धीर एवं दृढ़ संकल्प वाले पुरुष को इसका पालन करना कठिन नहीं है। इसका पालन करने में कठिनाई क्या है ! अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी अनुमति पाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं ।

तत्पश्चात् जब माता-पिता मेघकुमार को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत-सी आख्यापना, प्रज्ञापना और विज्ञापना से समझाने, संबोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ न हुए, तब इच्छा के बिना भी मेघकुमार से इस प्रकार बोले--हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्यलक्ष्मी देखना चाहते हैं, अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए भी राजा बन जाओ। तत्पश्चात् मेघकुमार माता-पिता (की इच्छा) का अनुसरण करता हुआ मौन रह गया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजाने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलवाया और बुलवाकर कहा—'हे देवानुप्रियो ! मेघकुमार का महान् अर्थ वाले, बहुमूल्य एवं महान् पुरुषोंके योग्य राज्याभिषेक के योग्य सामग्री तैयार करो।' तत्पश्चात् उन कौटुंबिक पुरुषोंने यावत् उसी प्रकार सब सामग्री तैयार की। तत्पश्चात् श्रेणिक राजाने बहुतसे गणनायकों एवं दंडनायकों आदिसे परिवृत होकर मेघकुमार को एक सौ आठ सुवर्ण-कलशों, इस प्रकार एक सौ आठ चांदीके कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-रजतके कलशों, एक सौ आठ मणिमय कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-मणिके कलशों, एक सौ आठ रजत-मणिके कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिके कलशों और एक सौ आठ मिट्टीके कलशों—इस प्रकार आठ सौ चौंसठ कलशोंमें सब प्रकार का जल भर कर तथा सब प्रकारकी मृत्तिकासे, सब प्रकारके पुष्पोंसे, सब प्रकारके गंधोंसे, सब प्रकार की मालाओंसे, सब प्रकार की औषधियोंसे तथा सरसोंसे उन्हें परिपूर्ण करके, सर्वसमृद्धि, द्युति तथा सर्वसैन्यके साथ, दुंदुभिके निर्घोषकी प्रतिध्वनिके शब्दोंके साथ उच्चकोटिके राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके श्रेणिक राजाने दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहा।

हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे जगन्नन्द (जगत्को आनन्द देने वाले) ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम न जीते हुए को जीतो और जीते हुए का पालन करो। जित—आचारवान्के मध्यमें

निवारण करो। नहीं जीते हुए शत्रुपक्ष को जीतो, जीते हुए मित्रपक्षका पालन करो। यावत् मनुष्योंमें भरत चक्रीकी भांति राजगृह नगरका तथा दूसरे बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् सन्निवेशोंका आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करो। इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजाने जय-जय शब्द किया। तत्पश्चात् वह मेघ राजा हो गया और पर्वतोंमें महाहिमवन्त की भांति शोभा पाता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् माता-पिताने राजा मेघसे इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट जनों को क्या दें ? तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे चित्त में क्या चाह-विचार है ?' तत्पश्चात् राजा मेघने माता-पिता से इस प्रकार कहा–हे माता पिता ! मैं चाहता हूं कि कुत्रिकापण (जिसमें सब जगह की सब वस्तुएं मिलती हैं, उस अलौकिक दुकान) से रजोहरण और पात्र मंगवा दो और नापित को बुलवा दो।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजाने अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ, श्रीगृह (खजाने) से तीन लाख स्वर्णमोहरें लेकर दो लाखसे कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाईको बुला लाओ। तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष, राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर श्रीगृहसे तीन लाख मोहरें लेकर कुत्रिका-पणसे दो लाखसे रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख मोहरोंसे उन्होंने नाई को बुलाया।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने स्नान किया, स्वच्छ और राजसभामें प्रवेश करने योग्य मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। थोड़े और बहुमूल्य आभूषणोंसे शरीरको विभूषित किया। फिर जहां श्रेणिक राजा था वहां आया। आकर, दोनों हाथ जोड़ कर श्रेणिक राजासे इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय ! मुझे जो करना है उसकी आज्ञा दीजिए।' तब श्रेणिक राजाने नाईसे इस प्रकार कहा —हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुगंधित गंधोदकसे अच्छी तरह हाथ पैर धो लो। फिर चार तह वाले श्वेत वस्त्रसे मुंह बांध कर मेघकुमारके बाल दीक्षाके योग्य चार अंगुल छोड़कर काट दो। तत्पश्चात् वह नापित श्रेणिक राजाके ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट और आनन्दितहृदय हुआ। उसने यावत् श्रेणिक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके सुगंधित गंधोदकसे हाथ-पैर धोकर शुद्ध वस्त्रसे मुंह बांधा। बांध कर बड़ी सावधानीसे मेघकुमारके चार अंगुल छोड़ कर दीक्षाके योग्य केश काटे।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने उन केशों को बहुमूल्य और हंस के चित्र वाले उज्ज्वल वस्त्र में ग्रहण किया, ग्रहण करके उन्हें सुगंधित गंधोदक से धोया। धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन उन पर छिड़का। छिड़क कर उन्हें श्वेत वस्त्र में बांधा। बांध कर रत्न की डिबिया में रक्खा। रख कर उस डिबिया को मंजूषा (पेटी) में रक्खा। फिर जल की धार, निर्गुंडी के फूल एवं टूटे हुए मोतियों के हार के समान अश्रु त्याग करती-करती रोती-रोती आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—'मेघकुमार के केशों का यह दर्शन राज्यप्राप्ति आदि अभ्युदय के अवसर पर, उत्सव (प्रियसमागम) अवसर पर, प्रसव (पुत्रजन्म आदि) के अवसर पर, तिथियों के अवसर पर, इन्द्रमहोत्सव आदि के अवसर पर, नागपूजा आदि के अवसर पर तथा कार्त्तिकी पूर्णिमा आदि पर्वोंके अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा। तात्पर्य यह है कि इन केशों का दर्शन, केशरहित मेघकुमारका अन्तिम दर्शन रूप होगा।' इस प्रकार कह कर माता धारिणी ने वह पेटी अपने सिरहाने के नीचे रख ली।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो तीन बार श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से नहलाया। नहला कर रुएंदार और अत्यन्त कोमल गंधकाषाय (सुगंधित कसैले रंग से रंगे) वस्त्र से उसके अंग पोंछे। पोंछ कर सरस गोशीर्ष चन्दनसे शरीर पर विलेपन किया। विलेपन करके नासिकाके निःश्वास की वायु से भी उड़ने योग्य-अति बारीक तथा हंस-लक्षण वाला (हंस के चिन्ह वाला अथवा हंस के सदृश श्वेत) वस्त्र पहनाया। पहना कर अठारह लड़ोंका हार पहनाया, नौ लड़ों का अर्द्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, प्रालंब (कंठी), पादप्रलम्ब (पैरों तक लटकने वाला आभूषण), कड़े, तुटिक (भुजा का आभूषण), केयूर, अंगद, दसों उंगलियों में दस मुद्रिकाएं, कंदोरा, कुंडल, चूड़ामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाये। यह सब अलंकार पहना-कर पुष्पमाला पहनाई। फिर *दर्दरमें पकाये हुए चंदनके सुगंधित तेलकी गंध शरीर पर लगाई। तत्पश्चात् मेघकुमारको सूतसे गूंथी हुई, पुष्प आदि से वेष्टित, बांस की सलाई आदिसे पूरितकी गई तथा वस्तु योगसे परस्पर संघात रूपकी हुई-इस तरह चार प्रकारकी पुष्पमालाओंसे कल्पवृक्षके समान अलंकृत और विभूषित किया। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो जो अनेक सैकड़ों स्तंभोंसे बनी हो, जिसमें क्रीड़ा करती हुई पुतलियां बनी हों, जो ईहामृग (भेड़िया),

*मिट्टीके घड़ेका मुंह कपड़ेसे बांधकर अग्निकी आंच से तपाकर तैयार किया गया तेल।

निवास करो। नहीं जीते हुए शत्रुपक्ष को जीतो, जीते हुए मित्रपक्षका पालन करो। यावत् मनुष्योंमें भरत चक्रीकी भांति राजगृह नगरका तथा दूसरे बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् सन्निवेशोंका आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करो। इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजाने जय-जय शब्द किया। तत्पश्चात् वह मेघ राजा हो गया और पर्वतोंमें महाहिमवन्त की भांति शोभा पाता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् माता-पिताने राजा मेघसे इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट जनों को क्या दें ? तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे चित्त में क्या चाह-विचार है ?' तत्पश्चात् राजा मेघने माता-पिता से इस प्रकार कहा–हे माता पिता ! मैं चाहता हूं कि कुत्रिकापण (जिसमें सब जगह की सब वस्तुएं मिलती हैं, उस अलौकिक दुकान) से रजोहरण और पात्र मंगवा दो और नापित को बुलवा दो।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजाने अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ, श्रीगृह (खजाने) से तीन लाख स्वर्णमोहरें लेकर दो लाखसे कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाईको बुला लाओ। तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष, राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर श्रीगृहसे तीन लाख मोहरें लेकर कुत्रिका-पणसे दो लाखसे रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख मोहरोंसे उन्होंने नाई को बुलाया।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने स्नान किया, स्वच्छ और राजसभामें प्रवेश करने योग्य मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। थोड़े और बहुमूल्य आभूषणोंसे शरीरको विभूषित किया। फिर जहां श्रेणिक राजा था वहां आया। आकर, दोनों हाथ जोड़ कर श्रेणिक राजासे इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय ! मुझे जो करना है उसकी आज्ञा दीजिए।' तब श्रेणिक राजाने नाईसे इस प्रकार कहा —हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुगंधित गंधोदकसे अच्छी तरह हाथ पैर धो लो। फिर चार तह वाले श्वेत वस्त्रसे मुंह बांध कर मेघकुमारके बाल दीक्षाके योग्य चार अंगुल छोड़कर काट दो। तत्पश्चात् वह नापित श्रेणिक राजाके ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट और आनन्दितहृदय हुआ। उसने यावत् श्रेणिक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके सुगंधित गंधोदकसे हाथ-पैर धोकर शुद्ध वस्त्रसे मुंह बांधा। बांध कर बड़ी सावधानीसे मेघकुमारके चार अंगुल छोड़ कर दीक्षाके योग्य केश काटे।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने उन केशों को बहुमूल्य और हंस के चित्र वाले उज्ज्वल वस्त्र में ग्रहण किया, ग्रहण करके उन्हें सुगंधित गंधोदक से धोया। धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन उन पर छिड़का। छिड़क कर उन्हें श्वेत वस्त्र में बांधा। बांध कर रत्न की डिबिया में रक्खा। रख कर उस डिबिया को मंजूषा (पेटी) में रक्खा। फिर जल की धार, निर्गुंडी के फूल एवं टूटे हुए मोतियों के हार के समान अश्रु त्याग करती-करती रोती-रोती आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—'मेघकुमार के केशों का यह दर्शन राज्यप्राप्ति आदि अभ्युदय के अवसर पर, उत्सव (प्रियसमागम) अवसर पर, प्रसव (पुत्रजन्म आदि) के अवसर पर, तिथियों के अवसर पर, इन्द्रमहोत्सव आदि के अवसर पर, नागपूजा आदि के अवसर पर तथा कार्त्तिकी पूर्णिमा आदि पर्वोंके अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा। तात्पर्य यह है कि इन केशों का दर्शन, केशरहित मेघकुमारका अन्तिम दर्शन रूप होगा।' इस प्रकार कह कर माता धारिणी ने वह पेटी अपने सिरहाने के नीचे रख ली।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो तीन वार श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से नहलाया। नहला कर रुएंदार और अत्यन्त कोमल गंधकाषाय (सुगंधित कसैले रंग से रंगे) वस्त्र से उसके अंग पोंछे। पोंछ कर सरस गोशीर्ष चन्दनसे शरीर पर विलेपन किया। विलेपन करके नासिकाके निःश्वास की वायु से भी उड़ने योग्य-अति वारीक तथा हंस-लक्षण वाला (हंस के चिन्ह वाला अथवा हंस के सदृश श्वेत) वस्त्र पहनाया। पहना कर अठारह लड़ोंका हार पहनाया, नौ लड़ों का अर्द्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, प्रालंब (कंठी), पादप्रलम्ब (पैरों तक लटकने वाला आभूषण), कड़े, तुटिक (भुजा का आभूषण), केयूर, अंगद, दसों उंगलियों में दस मुद्रिकाएं, कंदोरा, कुंडल, चूड़ामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाये। यह सब अलंकार पहनाकर पुष्पमाला पहनाई। फिर *दर्दरमें पकाये हुए चंदनके सुगंधित तेलकी गंध शरीर पर लगाई। तत्पश्चात् मेघकुमारको सूतसे गूंथी हुई, पुष्प आदि से वेष्टित, बांस की सलाई आदिसे पूरितकी गई तथा वस्तु योगसे परस्पर संघात रूपकी हुई-इस तरह चार प्रकारकी पुष्पमालाओंसे कल्पवृक्षके समान अलंकृत और विभूषित किया। तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो जो अनेक सैंकड़ों स्तंभोंसे बनी हो, जिसमें क्रीड़ा करती हुई पुतलियां बनी हों, जो ईहामृग (भेड़िया),

*मिट्टीके घड़ेका मुंह कपड़ेसे बांधकर अग्निकी आंच से तपाकर तैयार किया गया तेल।

वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (काले मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुन्जर, वनलता और पद्मलता आदिके चित्रोंकी रचनासे युक्त हो, जिससे घंटाके समूहके मधुर और मनोहर शब्द हो रहे हों, जो शुभ, मनोहर और दर्शनीय हो, जो कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित देदीप्यमान मणियों और रत्नों के घुंघुरुओं के समूहसे व्याप्त हो, स्तंभ पर बनी हुई वेदिकासे युक्त होनेके कारण जो मनोहर दिखाई देती हो, जो चित्रित विद्याधर-युगलोसे युक्त हो, चित्रित सूर्यकी हजार किरणोंसे शोभित हो, इस प्रकार हजारों रूपों वाली, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान--जिसे देखते नेत्रोंको तृप्ति न हो, जो सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो, शीघ्र त्वरित चपल और अतिशय चपल हो, अर्थात् जिसे शीघ्रतापूर्वक ले जाया जाय और जो एक हजार पुरुषों द्वारा वहनकी जाती हो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् शिविका (पालकी) उपस्थित करते हैं। तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ़ हुआ और सिंहासन के पास पहुँचकर पूर्वदिशाकी ओर मुख करके बैठ गया। तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, अल्प और बहुमूल्य आभरणोंसे शरीरको अलंकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उस शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमारके दाहिने पार्श्वमें, भद्रासन पर बैठी। तत्पश्चात् मेघकुमारकी धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ होकर मेघकुमारके बायें पार्श्व में भद्रासन पर बैठ गई। तत्पश्चात् मेघकुमारके पीछे शृङ्गारके आगार रूप, मनोहर वेष वाली, सुन्दर गति हास्य वचन चेष्टा विलास संलाप (पारस्परिक वार्त्तालाप) उल्लाप (वर्णन) करनेमें कुशल, योग्य उपचार करनेमे कुशल, परस्पर मिले हुए समश्रेणीमें स्थित गोल ऊंचे पुष्ट प्रीतिजनक और उत्तम आकारके स्तन वाली एक उत्तम तरुणी, हिम (बर्फ) चांदी कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके समान प्रकाश वाले, कोरंटके पुष्पों की मालासे युक्त धवल छत्रको धारण करती हुई लीलापूर्वक खड़ी हुई थी।

तत्पश्चात् मेघकुमारके समीप शृङ्गारके आगारके समान, सुन्दर वेष वाली यावत् उचित उपकार करनेमें कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियां शिविका पर आरूढ़ हुईं। आरूढ़ होकर मेघकुमारके दोनों पार्श्वों में, विविध प्रकारके मणि सुवर्ण रत्न और महान् जनोंके योग्य अथवा बहुमूल्य तपनीयमय (रक्त वर्ण सुवर्ण वाले), उज्ज्वल एवं विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए, पतले उत्तम और लम्बे बालों वाले, शंख कुन्दपुष्प जलकण रजत एवं मथन किये हुए अमृतके फेनके समूह सरीखे (श्वेत वर्ण वाले) दो चामर धारण करके लीलापूर्वक वींजती-वींजती खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमारके समीप शृंगारके आगार रूप यावत् उचित उपचार करनेमें कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमारके पास पूर्व दिशाके सन्मुख चन्द्रकान्त मणि वज्ररत्न और वैडूर्यमय

निर्मल दंडी वाले पंखेको ग्रहण करके खड़ी हुई। तत्पश्चात् मेघकुमारके समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमारसे पूर्वदक्षिण-आग्नेय-दिशामें श्वेत रजतमय निर्मल जलसे परिपूर्ण, मद-माते हाथीके वड़े मुखके समान आकृति वाले भृंगार (झारी) को ग्रहण करके खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमारके पिताने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक सरीखे आभूषणोंसे समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाओ।' (यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषों को बुलाया।) तत्पश्चात् श्रेणिक राजाके कौटुम्बिक पुरुषोंने श्रेष्ठ तरुण सेवक पुरुषोंको बुलाया। वे हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहन कर समान पोशाक पहनी। फिर जहां श्रेणिक राजा था, वहां आये। आकर श्रेणिक राजासे इस प्रकार बोले--हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

...श्रेणिक राजाने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषोंसे कहा—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमारकी पालकीको वहन करो। तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजाके इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमारकी शिविकाको वहन करने लगे। तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमारके आरूढ़ होने पर उसके सामने सर्वप्रथम यह आठ मंगल-द्रव्य अनुक्रमसे चले अर्थात् चलाये गये। वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नंदावर्त्त (४) वर्धमान (सिकोरा या पुरुषारूढ़ पुरुष या पांच स्व-स्तिक या विशेष प्रकार का प्रासाद), (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। यावत् वहुत-से धनके अर्थी (याचक) जन यावत् इष्ट कान्त आदि विशेषणों वाली वाणीसे यावत् निरन्तर अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

'हे नन्द! जय हो, जय हो! हे भद्र! जय हो, जय हो! हे जगत् को आनन्द देने वाले! तुम्हारा कल्याण हो। तुम नहीं जीती हुई पांच इन्द्रियों को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किये) साधुधर्मका पालन करो। हे देव! विघ्नोंको जीतकर सिद्धि में निवास करो। धैर्यपूर्वक कमर कसकर तपके द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लोंका हनन करो। प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्ल ध्यानके द्वारा आठ कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो। अज्ञानान्धकारसे रहित सर्वोत्तम केवलज्ञानको प्राप्त करो। परीषह रूपी सेनाका हनन करके, परीषह और उपसर्गसे निर्भय होकर शाश्वत

एवं अचल परमपद रूप मोक्षको प्राप्त करो, तुम्हारे धर्मसाधनमें विघ्न न हो।' इस प्रकार कहकर वे पुनः पुनः मंगलमय 'जय जय' शब्द का प्रयोग करने लगे।

तत्पश्चात् मेघकुमार राजगृहके बीचोंबीच होकर निकला। निकल कर जहां गुणशील उद्यान था, वहां आया। आकर पुरुषसहस्रवाहिनी पालकीसे नीचे उतरा ॥२६॥

तत्पश्चात् मेघकुमारके माता-पिता मेघकुमारको सामने करके जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आते हैं। आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दक्षिण तरफसे आरम्भ करके प्रदक्षिणा करते हैं। करके वन्दन करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—हे देवानुप्रिय! यह मेघकुमार हमारा इकलौता[1] पुत्र है। यह हमें इष्ट है, कान्त है, प्राणके समान और उच्छ्वासके समान है। हृदयको आनन्द प्रदान करने वाला है। गूलर के पुष्प के समान इसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात ही क्या है? जैसे उत्पल (नील कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल) अथवा कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) कीचमें उत्पन्न होता है और जलमें वृद्धि पाता है, फिर भी पंककी रजसे अथवा जलकी रज (कण) से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार मेघकुमार कामोंमें उत्पन्न हुआ और भोगोंमें वृद्धि पाया है. फिर भी काम-रजसे लिप्त नहीं हुआ, भोगरजसे लिप्त नहीं हुआ। देवानुप्रिय! यह मेघकुमार संसारके भयसे उद्विग्न हुआ है और जन्म जरा-मरणसे भयभीत हुआ है। अतः देवानुप्रिय (आप) के समीप मुंडित होकर, गृहत्याग करके साधुत्वकी प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्यभिक्षा देते हैं। हे देवानुप्रिय! आप शिष्यभिक्षा अंगीकार कीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने मेघकुमारके माता-पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इस अर्थ (बात) को सम्यक् प्रकारसे स्वीकार किया। तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीरके पाससे उत्तरपूर्व अर्थात् ईशान दिशाके भागमें गया। जाकर स्वयं ही आभूषण, माला और अलंकार (वस्त्र) उतार डाले। तत्पश्चात् मेघकुमारकी माताने हंसके लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदुल वस्त्रमें आभूषण, माल्य और अलंकार ग्रहण किये। ग्रहण करके जल की धारा, निर्गुंडी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हारके समान अश्रु टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रंदन और विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

'हे लाल! प्राप्त चारित्रयोगमें यतना करना, हे पुत्र! अप्राप्त चारित्रयोगके लिए घटना करना--प्राप्त करने का प्रयत्न करना, हे पुत्र! पराक्रम करना। संयम-

---

१ यद्यपि अन्य रानियोंसे श्रेणिकके अनेक पुत्र थे, तथापि धारिणी का आत्मज अकेला मेघकुमार ही था।

साधनामें प्रमाद न करना, हमारे लिए भी यही मार्ग हो अर्थात् भविष्यमें हमें भी संयम अंगीकार करने का सुयोग प्राप्त हो !' इस प्रकार कहकर मेघकुमारके माता-पिताने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके जिस दिशासे आये थे, उसी दिशामें लौट गये ॥३०॥

तत्पश्चात् मेघकुमारने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच करके जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओरसे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—'भगवन् ! यह संसार जरा और मरणसे (जरा-मरण रूप अग्निसे) आदीप्त है। हे भगवन् ! यह संसार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति घरमें आग लग जाने पर उस घरमें जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे ग्रहण करके स्वयं एकान्तमे चला जाता है। वह सोचता है कि—'अग्निमें जलनेसे बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए आगे-पीछे हितके लिए, सुखके लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए, कल्याणके लिए और भविष्यमें उपयोगके लिए होगा।' इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्माको मैं निकाल लूंगा—जरा-मरणकी अग्निमें भस्म होनेसे बचा लूंगा तो यह संसारका उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूं कि देवानुप्रिय (आप) स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करें, स्वयं ही मुझे मुंडित करें—मेरा लोच करें, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वयं ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करण-सत्तरी, संयमयात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने मेघकुमारको स्वयं ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वयं ही यावत् आचार-गोचर आदि धर्मकी शिक्षा दी कि-हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके, शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार—वेदना आदि कारणोंसे निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार—हित मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त एवं सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पंचेन्द्रिय) और सत्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिए। इस विषयमें तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघकुमारने श्रमण भगवान् महावीरके निकट इस प्रकार का यह

धर्म सम्बन्धी उपदेश सुनकर और हृदयमें धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अङ्गीकार किया। वह भगवान् की आज्ञाके अनुसार गमन करता, उसी प्रकार बैठता, यावत् उठ-उठ कर अर्थात् प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणों भूतों जीवों और सत्वों की यतना करके संयम की आराधना करने लगा ॥३१॥

जिस दिन मेघकुमार ने मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर चारित्र अङ्गीकार किया, उसी दिनके सन्ध्या कालमें, रात्निक अर्थात् दीक्षापर्यायके अनुक्रमसे श्रमण निर्ग्रन्थों के शय्या-संस्तारकों का विभाजन करते समय मेघकुमार का शय्या—संस्तारक द्वारके समीप हुआ। तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थ अर्थात् अन्य मुनि रात्रिके पहले और पिछले समयमें वाचना के लिए, पृच्छना के लिए, परावर्त्तन (श्रुत की आवृत्ति)के लिए, धर्मके व्याख्यान का चिन्तन करने के लिए, उच्चार (बड़ी नीति) के लिए एवं प्रस्रवण (लघुनीति) के लिए प्रवेश करते थे और बाहर निकलते थे। उनमें से किसी-किसी साधुके हाथ का मेघकुमारके साथ संघट्टन हुआ, इसी प्रकार किसीके पैरकी, किसीके मस्तककी और किसी के पेट की टक्कर हुई। कोई-कोई मेघकुमारको लांघ कर निकले और किसी-किसी ने दो-तीन वार लांघा। किसी-किसी ने अपने पैरों की रजसे उसे भर दिया या पैरोंके वेगसे उड़ी हुई रजसे भर दिया। इस प्रकार लम्बी रात्रिमें मेघकुमार क्षण भर भी आंख न बन्द कर सका।

तब मेघकुमारके मनमें इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'मैं श्रेणिक राजाका पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज (उदरजात) मेघकुमार हूं। यावत् गूलरके पुष्पके समान मेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है। जब मैं घर में रहता था, तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे,'यह कुमार ऐसा है' इस प्रकार जानते थे, सत्कार-सन्मान करते थे, जीवादि पदार्थों को, उन्हें सिद्ध करने वाले हेतुओंको, प्रश्नों को, कारणों को और व्याकरणों (प्रश्नके उत्तरों) को कहते थे और बार-बार कहते थे। इष्ट और मनोहर वाणीसे आलाप—संलाप करते थे। किन्तु जब से मैंने मुण्डित होकर गृहवाससे निकलकर साधु-दीक्षा अङ्गीकार की है, तबसे साधु मेरा आदर नहीं करते, यावत् संलाप नहीं करते। तिस पर भी वे श्रमण निर्ग्रन्थ पहली और पिछली रात्रिके समय वाचना पृच्छना आदि के लिए जाते—आते मेरे संस्तारकको लांघते हैं और मैं इतनी लम्बी रात भरमें आंख भी न मींच सका। अतएव कल रात्रिके प्रभातरूप होने पर यावत् तेजसे जाज्वल्यमान होने पर (सूर्योदय के पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा लेकर पुनः गृहवासमें रहना ही मेरे लिए अच्छा है।' मेघकुमारने ऐसा विचार किया। विचार करके आर्त्तध्यान के कारण दुःखसे पीड़ित और विकल्पयुक्त मानस को प्राप्त होकर मेघकुमारने वह रात्रि नरक की भांति व्यतीत की। रात्रि व्यतीत करके, प्रभात होने पर, सूर्यके तेजसे जाज्वल्यमान होने पर, श्रमण भगवान्

महावीर थे, वहां आया। आकर तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान्को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन—नमस्कार करके यावत् भगवान्की पर्युपासना करने लगा ॥३२॥

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकुमारसे इस प्रकार कहा—'हे मेघ! तुम रात्रिके पहले और पिछले कालके अवसर पर, श्रमण निर्ग्रन्थोंके वाचना पृच्छना आदिके लिए आवागमन करने के कारण, लम्बी रात्रि पर्यन्त थोड़ी देरके लिए भी आंख नहीं मींच सके। मेघ! तव तुम्हारे मनमें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ—'जव मैं गृहवासमें निवास करता था, तव श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे यावत् मुझे जानते थे; परन्तु जवसे मैंने मुण्डित होकर गृहवाससे निकल कर साधुताकी दीक्षा ली है, तव से श्रमण निर्ग्रन्थ न मेरा आदर करते हैं, न मुझे जानते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमण निर्ग्रन्थ रात्रिमें कोई वाचनाके लिए यावत् जाते—आते मेरे विस्तरको लांघते हैं यावत् पैरों की रज से भरते हैं। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात होने पर श्रमण भगवान् महावीरसे पूछकर मैं पुनः गृहवासमें वसने लगूं।' तुमने इस प्रकार विचार किया है। विचार करके आर्त्तध्यानके कारण दुःख से पीड़ित एवं संकल्प—विकल्पसे युक्त मानस वाले होकर यावत् रात्रि व्यतीत की है। रात्रि व्यतीत करके जहां मैं हूं वहां शीघ्रतापूर्वक आए हो। हे मेघ! यह अर्थ समर्थ है—मेरा यह कथन सत्य है?' मेघकुमार ने उत्तर दिया—जी हां, यह अर्थ समर्थ है—आपका कथन यथार्थ है।

भगवान् बोले—हे मेघ! इससे पहले अतीत के तीसरे भव में, वैताढ्य पर्वत के पादमूल में (तलहटी में) तुम गजराज थे। वनचरों ने तुम्हारा नाम 'सुमेरुप्रभ' रक्खा था। उस सुमेरुप्रभ का वर्ण श्वेत था। शंख के दल (चूर्ण) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या गाय के दूध और समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जलकण और चांदी के समूह के समान) रूप था। वह सात हाथ ऊंचा और नौ हाथ लम्वा था। मध्यभाग में दस हाथ का परिमाण वाला था। चार पैर, सूंड़, पूंछ और लिंग—यह सात अंग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पर्श करते थे। सौम्य, प्रमाणोपेत अंगों वाला, सुन्दर रूप वाला, आगे से ऊंचा, ऊंचे मस्तक वाला, शुभ या सुखद आसन (स्कंध आदि) वाला था। उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था। उसकी कूंख बकरी की कूंख जैसी थी और वह छिद्रहीन थी—उसमें गड़हा नहीं पड़ा था तथा लंवी नहीं

थी। वह लम्बे उदर वाला, लंबे होठ वाला और लम्बी सूंड वाला था। उसकी पीठ खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति वाली थी। उसके अन्य अवयव भली-भांति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एवं पुष्ट थे। पूंछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी। पैर कछुए जैसे परिपूर्ण और मनोहर थे। बीसों नाखून, श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत थे। छह दांत थे।

हे मेघ! वहां तुम बहुत-से हाथियों, हथिनियों, लोट्टकों (कुमार अवस्था वाले हाथियों), लोट्टिकाओं, कलभों (हाथी के बच्चों) और कलभिकाओं से परिवृत होकर एक हजार हाथियों के नायक, मार्गदर्शक, अगुवा, प्रस्थापक (काम में लगाने वाले) यूथपति और यूथकी वृद्धि करने वाले थे। इनके अतिरिक्त बहुतसे अन्य अकेले हाथी के बच्चों का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण कर रहे थे।

हे मेघ! तुम निरन्तर प्रमादी, सदा क्रीड़ापरायण, कंदर्परति-क्रीड़ा करने में प्रीति वाले, मैथुनप्रिय, कामभोग में अतृप्त और कामभोग में तृष्णा वाले थे। बहुत-से हाथियों वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पर्वत के पादमूल में, पर्वतों में, दरियों (विशेष प्रकार की गुफाओं) में, कुहरों (पर्वतों के अन्तरों) में, कंदराओं में, उज्झरों (प्रपातों) में, झरनों में, विदरों (नहरों) में, गड़हों में, पल्वलों (तलैयों) में, चिल्ललों (कीचड़ वाली तलैयों) में, कटक (पर्वतों के तटों) में, कटपल्लवों (पर्वतकी समीपवर्त्ती तलैयों) में, तटों में, अटवी में, टंकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) में, कूटों (नीचे चौड़े और ऊपर संकड़े पर्वतों) में, पर्वत के शिखरों पर, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वत के भागों) में, मंचों (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डाल कर बनाये हुए कच्चे पुलों) पर, काननों में, वनों (एक जाति के वृक्षों वाले बगीचों) में, वनखंडों (अनेक जातीय वृक्षों वाले प्रदेशों) में, वनों की श्रेणियों में, नदियों में, नदीकक्षों (नदी के समीपवर्त्ती वनों) में, यूथों (वानर आदिकों के निवास स्थानों) में, नदियों के संगमस्थलों में, चौकोर बावड़ियों में, गोल या कमलों वाली बावड़ियों में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (वक्र बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पंक्तियों में, सरसरपंक्तियों (जहां एक सर से दूसरे सर में पानी का मार्ग बना हो) में, वनचरों द्वारा विचार (विचरण करने की छूट) जिसे दिया गया है ऐसे तुम बहुसंख्यक हाथियों आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवों, पानी और घास का उपभोग करते हुए निर्भय और उद्वेगरहित होकर सुख के साथ विचरते थे।

तत्पश्चात् एक बार कदाचित् प्रावृट्, वर्षा, शरद्, हेमन्त और वसन्त इन पांच ऋतुओं के क्रमशः व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तब

ज्येष्ठ मास में वृक्षों की आपस की रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तों और कचरे से एवं वायु के वेग से दीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्यभाग सुलग उठा। दिशाएं धुएं से व्याप्त हो गईं। प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालाएं टूटने लगीं और चारों ओर गिरने लगीं। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वनप्रदेशों के नदी-नालों का जल मृत मृगादिक के शवों से सड़ने लगा, खराब हो गया। उनका कीचड़ कीड़ों वाला हो गया। उनके किनारों का पानी सूख गया। भृङ्गारक पक्षी दीनतापूर्ण आक्रन्दन करने लगे। उत्तम वृक्षों पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द करने लगे। उन वृक्षों के अग्रभाग अग्निकणों के कारण मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे। पक्षियों के समूह प्यास से पीड़ित होकर पंख ढीले करके, जिव्हा एवं तालु को प्रकट करके तथा मुंह फाड़कर सांसें लेने लगे। ग्रीष्मकाल की उष्णता सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एवं प्रचंड वायु तथा सूखे घास पत्ते और कचरे से युक्त बवंडर के कारण भाग-दौड़ करने वाले, मदोन्मत्त तथा संभ्रम वाले सिंह आदि श्वापदोंके कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल-व्याकुल हो उठा। ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उन पर्वतों पर मृगतृष्णा रूप पट्टबंध बंधा हो। त्रास को प्राप्त मृग, अन्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़फने लगे।

इस भयानक अवसर पर, हे मेघ! तुम्हारा अर्थात् पूर्वभवके सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख-विवर फट गया। जिह्वा का अग्रभाग बाहर निकल आया। बड़े-बड़े दोनों कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए। बड़ी और मोटी सूंड सिकुड़ गई। उसने पूंछ ऊंची कर ली। पीना (मड्डा) के समान विरस अर्राटे के शब्द चीत्कार से वह आकाशतल को फोड़ता हुआ सा, पैरों के आघात से पृथ्वीतल को कम्पित करता हुआ सा, सीत्कार करता हुआ, चहुं ओर सर्वत्र वेलों के समूह को छेदता हुआ, त्रस्त और बहुसंख्यक सहस्रों वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से डोलते हुए जहाज के समान और बवण्डर (बगूले) के समान इधर-उधर भ्रमण करता हुआ एवं बार-बार लींड़ी त्यागता हुआ, बहुत-से हाथियों, हथिनियों आदि के साथ दिशाओं और विदिशाओं में इधर-उधर भागदौड़ करने लगा।

हे मेघ! तुम वहां जीर्ण, जरा से जर्जरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुर्बल, थके-मांदे, बहरे तथा दिङ्मूढ़ होकर अपने यूथ (झुंड) से बिछुड़ गये। वन के दावानल की ज्वालाओं से पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास से, भूख से पीड़ित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए। तुम्हारा आनन्द-रस शुष्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊं, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। तुम्हें पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया। अतएव तुम इधर-उधर दौड़ने और खूब दौड़ने लगे। इसी

समय एक अल्प जल वाला और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा सरोवर तुम्हें दिखाई दिया। उसमें पानी पीने के लिए बिना घाट के तुम उतर गये।

हे मेघ! वहां तुम किनारेसे तो दूर चले गये, परन्तु पानी तक न पहुंच पाये और बीच ही में कीचड़ में फंस गये। मेघ! 'मैं पानी पीऊं' ऐसा सोचकर वहां तुमने अपनी सूंड़ फैलाई, मगर तुम्हारी सूंड़ भी पानी न पा सकी। तब मेघ! तुमने पुनः 'शरीर को बाहर निकालूं' ऐसा विचार कर जोर मारा तो कीचड़ में और गाढ़े फंस गये।

तत्पश्चात् हे मेघ! एकदा कदाचित् एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को तुमने सूंड, पैर और दांत रूपी मूसलों से प्रहार करके मारा था और अपने झुण्ड में से बहुत समय पूर्व निकाल दिया था। वह हाथी पानी पीने के लिए उसी महाद्रह में उतरा। तत्पश्चात् उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा। देखते ही उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उसमें क्रोध के चिन्ह प्रकट हुए। उसका क्रोध बढ़ गया, उसने रौद्र रूप धारण किया और वह क्रोधाग्नि से जल उठा। अतएव वह तुम्हारे पास आया। आकर तीक्ष्ण दांत रूपी मूसलों से तीन बार तुम्हारी पीठ बींध दी और बींध कर पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर पानी पीकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था-आया था, उसी दिशा में वापिस लौट गया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हें तनिक भी चैन न थी, वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त थी और त्रितुला थी (मन वचन काय की तुलना करने वाली थी, अर्थात् उस वेदना में तीनों योग तन्मय हो रहे थे)। वह वेदना कठोर यावत् दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। उस समय तुम इस हालत में रहे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम उस उज्ज्वल—बेचैन बना देने वाली यावत् दुस्सह वेदनाको सात दिन—रात पर्यन्त भोगकर, एक सौ बीस वर्षकी आयु भोग कर, आर्त्तध्यानके वशीभूत एवं दुःखसे पीड़ित हुए, तुम काल मास में (मृत्यु के अवसर पर) काल करके, इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें, दक्षिणार्ध भरत में, गंगा नामक महानदीके दक्षिणी किनारे पर, विंध्याचलके समीप एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गंधहस्ती से, एक श्रेष्ठ हथिनी की कूंख में हाथीके बच्चेके रूपमें उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर वसन्त मास में तुम्हें जन्म दिया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम गर्भावाससे मुक्त होकर गजकलभक (छोटे हाथी) भी हो गये। लाल कमलके समान लाल और सुकुमार हुए। जपा कुसुम, रक्तवर्ण पारिजात नामक वृक्ष, लाखके रस, सरस कुंकुम और सन्ध्या-

कालीन बादलोंके रंगके समान रक्तवर्ण हुए। अपने यूथपतिके प्रिय हुए। गणिकाओंके समान युवती हथिनियोंके उत्तर-प्रदेशमें अपनी सूंड़ डालते हुए कामक्रीड़ामें तत्पर रहने लगे। इस प्रकार सैंकड़ों हाथियोंसे परिवृत होकर तुम पर्वतके रमणीय काननोंमें सुखपूर्वक विचरने लगे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार करके यौवन को प्राप्त हुए। फिर यूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर तुम स्वयं ही उस यूथ को वहन करने लगे अर्थात् यूथपति हो गये। तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रक्खा। तुम चार दांतों वाले हस्तिरत्न हुए। हे मेघ ! तुम सातों अङ्गोंसे भूमि का स्पर्श करने वाले, आदि पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले हुए। हे मेघ ! तुम वहां सात सौ हाथियोंके यूथका अधिपतित्व करते हुए अभिरमण करने लगे। तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् ग्रीष्म कालके अवसर पर, ज्येष्ठ मास में, वनके दावानलकी ज्वालाओंसे वन-प्रदेश जलने लगे। दिशाएं धूम से भर गईं। उस समय तुम ववण्डर की तरह इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे। भयभीत हुए, व्याकुल हुए और बहुत डर गये। तब बहुत-से हाथियों यावत् हथिनियों के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारों ओर एक दिशासे दूसरी दिशामें भागे।

हे मेघ ! उस समय उस वनके दावानलको देखकर तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ—'लगता है जैसे इस प्रकारकी अग्नि की उत्पत्ति मैंने कभी पहले अनुभव की है। तत्पश्चात् हे मेघ ! विशुद्ध होती हुई लेश्याओं, शुभ अध्यवसाय. शुभ परिणाम और जातिस्मरण को आवृत करने वाले कर्मों का क्षयोपशम होनेसे ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए तुम्हें संज्ञो जीवोंको प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि–'निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सुखपूर्वक विचरता था। वहां इस प्रकार का महान् अग्नि का संभव मैंने अनुभव किया है।' तदनन्तर हे मेघ ! तुम उस भवमें उसी दिनके अंतिम प्रहर तक अपने यूथके साथ विचरण करते थे। हे मेघ ! उसके बाद काल करके दूसरे भव में सात हाथ ऊंचे यावत् जातिस्मरण से युक्त, चार दांत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि—'मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे पर विन्ध्याचल की तलहटी में, दावानल से रक्षा करने के लिए अपने यूथ के साथ एक बड़ा मंडल बनाऊं।' इस प्रकार विचार करके तुम सुखपूर्वक विचरने लगे। तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने कदाचित् एक बार प्रथम वर्षाकाल में, खूब वर्षा होने पर गंगा

महानदी के समीप बहुत-से हाथियों यावत् हथिनियों से अर्थात् सात सौ हाथियों से परिवृत होकर एक योजन परिमित बड़े घेरे वाला अत्यन्त विशाल मंडल बनाया। उस मंडल में जो कुछ भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे, लता, बेलें, ठूंठ, वृक्ष या पौधे आदि थे, उन सबको तीन बार हिला-हिला कर पैर से उखाड़ा, सूंड से पकड़ा और एक ओर ले जाकर डाल दिया।

हे मेघ! तत्पश्चात् तुम उसी मंडल के समीप गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे, विन्ध्याचल के पादमूल में, पर्वत आदि पूर्वोक्त स्थानों में विचरण करने लगे। तत्पश्चात् हे मेघ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होने पर तुम उस स्थान पर आये जहां मंडल था। वहां आकर दूसरी वार उस मंडल को ठीक-साफ किया। इसी प्रकार अंतिम वर्षा-रात्रि में घोर वृष्टि होने पर जहां मंडल था, वहां आए। आकर तीसरी वार उस मंडल को साफ किया। वहां जो भी तृण आदि उगे थे, उन सब को उखाड़कर सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

हे मेघ! तुम गजेन्द्र पर्याय में वर्त्त रहे थे कि अनुक्रमसे कमलिनियों के वन का विनाश करने वाला, कुंद और लोध्र के पुष्पों की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिम वाला हेमन्त काल व्यतीत हो गया और अभिनव ग्रीष्मकाल आ पहुँचा। उस समय तुम वनों में विचरण कर रहे थे। वहां क्रीड़ा करते समय वन की हथिनियां तुम्हारे ऊपर विविध प्रकारके कमलों एवं पुष्पोंका प्रहार करती थीं। तुम उस ऋतु में उत्पन्न पुष्पों के बने चामर जैसे कर्ण के आभूषणों से मंडित और मनोहर थे। मद के कारण विकसित गंडस्थलों को आर्द्र करने वाले तथा झरते हुए सुगंधित मदजल से तुम सुगंधमय बन गये थे। हथिनियों से घिरे रहते थे। सब तरह से ऋतुसंबंधी शोभा उत्पन्न हुई थी। उस ग्रीष्मकाल में सूर्य की प्रखर किरणें गिर रही थीं। उस ग्रीष्मऋतु ने श्रेष्ठ वृक्षों के शिखरों को अत्यन्त शुष्क बना दिया था। वह बड़ा ही भयंकर प्रतीत होता था। शब्द करने वाले भृंगार नामक पक्षी भयानक शब्द करते थे। पत्र काष्ठ तृण और कचरे को उड़ाने वाले प्रतिकूल पवन से आकाशतल और वृक्षों का समूह व्याप्त हो गया था। वह बवण्डरों के कारण भयावह दीख पड़ता था। प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषों से दूषित हुए और इसी कारण इधर-उधर भटकते हुए श्वापदों (शिकारी जंगली पशुओं) से युक्त था। देखने में ऐसी भयानक ग्रीष्म ऋतु उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गई।

वह दावानल वायु के कारण प्राप्त हुए प्रचार से फैला हुआ और विकसित हुआ था। उसके शब्द का प्रकार अत्यधिक भयंकर था। वृक्षों से गिरने वाले मधु की धाराओं से सिंचित होने के कारण वह अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ था, धधक रहा था और शब्दके कारण उद्धत था। वह अत्यंत देदीप्यमान, चिनगारियों

से युक्त और धूम की कतार से व्याप्त था। सैकड़ों श्वापदों के प्राणों का अंत करने वाला था। इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्मऋतु अत्यन्त भयंकर दिखाई देती थी।

हे मेघ! तुम उस दावानल की ज्वालाओं से आच्छादित हो गये, रुक गये--इच्छानुसार जाने में असमर्थ हो गये। धुएं के कारण उत्पन्न हुए अंधकार से भयभीत हो गये। अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनों कान अरघट्ट के तुंब के समान स्तब्ध रह गये। तुम्हारी मोटी और बड़ी सूंड सिकुड़ गई। तुम्हारे चमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर-उधर फिरने-देखने लगे। जैसे वायु के कारण महामेघ का विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा। पहले दावानल के भय से भीतहृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए, जिस दिशा में तृण के प्रदेश (मूल आदि) और वृक्ष हटा कर सफाचट प्रदेश बनाया था और जिधर वह मंडल बनाया था उधर ही जाने का तुमने विचार किया। वहीं जाने का निश्चय किया।

यह एक गम है, अर्थात् किसी-किसी आचार्य के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है--हे मेघ! किसी अन्य समय पांच ऋतु व्यतीत हो जाने पर, ग्रीष्मकाल के अवसर पर, ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की परस्पर की रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग पशु पक्षी तथा सरीसृप आदि भाग-दौड़ करने लगे। तब तुम बहुत--से हाथियों आदि के साथ जहां वह मंडल था, वहां जाने के लिये दौड़े। (यह दूसरा गम है, अर्थात् अन्य आचार्य के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह पाठ है।)

उस मंडल में अन्य बहुत से सिंह, बाघ, भेड़िया, द्वीपिक (चीते), रीछ, तरच्छ, पारासर, शरभ, शृगाल, विडाल, श्वान, शूकर, खरगोश, लोमड़ी चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से पराभूत होकर ही आ घुसे थे और एक साथ बिलधर्म से रहे हुए थे, अर्थात् जैसे एक बिल में बहुत से मकोड़े ठसाठस भरे रहते हैं, उसी प्रकार उस मंडल में भी पूर्वोक्त जीव ठसाठस भरे थे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम जहां मंडल था, वहां आये और आकर उन बहुसंख्यक सिंह यावत् चिल्ललक आदि के साथ एक जगह बिलधर्म से ठहर गये। तत्पश्चात् मेघ! तुमने 'पैर से शरीर खुजाऊं' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया। इसी समय उस खाली हुई जगह में अन्य बलवान् प्राणियों द्वारा प्रेरित-धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुमने पैर खुजा कर सोचा कि मैं पैर नीचे रक्खूं, परन्तु शशक को पैर की जगह घुसा हुआ देखा। देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणों की अनुकम्पा से, वनस्पति रूप भूत की अनुकम्पा से, पंचेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा से तथा वन-

स्पति के सिवाय शेष चार स्थावर सत्वों की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही ही रक्खा, नीचे नहीं रक्खा। हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् सत्वानुकम्पा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

तत्पश्चात् वह दावानल अढ़ाई अहोरात्र पर्यन्त उस वन को जलाकर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया। तब उन बहुत से सिंह यावत् चिल्ललक आदि प्राणियों ने उस वन-दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देख कर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए। वे प्यास एवं भूख से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले और निकल कर चहुं ओर फैल गये।

हे मेघ ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से जर्जरित शरीर वाले शिथिल एवं सलों वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निर्बल, सामर्थ्य से रहित और चलने-फिरने की शक्ति से रहित एवं ठूंठ की भांति स्तब्ध रह गये। 'मैं वेग से चलूं' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आघात पाये हुए रजतगिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में उत्कट वेदना उत्पन्न हुई तथा दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तुम ऐसी स्थितिमें रहे। तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अंतमें सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में, राजगृह नगर में, श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कूंख में कुमार के रूप में उत्पन्न हुए॥ ३३॥

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भवास से बाहर आये—तुम्हारा जन्म हुआ। बाल्यावस्था से मुक्त हुए और युवावस्था को प्राप्त हुए। तब मेरे निकट मुंडित होकर गृहवास से मुक्त हो अनगार हुए। तब मेघ ! तुम तिर्यचयोनि रूप पर्याय को प्राप्त थे और जब तुम्हें सम्यक्त्व रत्न का लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियों की अनुकम्पा से प्रेरित होकर यावत् अपना पैर अधर ही रक्खा था, नीचे नहीं टिकाया था, तो फिर हे मेघ ! इस जन्म में तो तुम विशाल कुल में जन्मे हो, तुम्हें उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है, प्राप्त हुई पांचों इन्द्रियों का तुमने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट शारीरिक चेष्टा), बल (शारीरिक शक्ति), वीर्य (आत्मबल), पुरुषकार (विशेष प्रकार का अभिमान) और पराक्रम (कार्य को सिद्ध करने वाला पुरुषार्थ) से युक्त हो और मेरे समीप मुंडित होकर गृहवास त्याग कर अगेही बने हो, फिर भी पहली और पिछली रात्रि के समय श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना के लिए यावत् धर्मानुयोग के चिन्तन के लिये तथा उच्चार-प्रश्रवण के लिए आते जाते थे, उस समय तुम्हें

उनके हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श हुआ, यावत् रजकणों से तुम्हारा शरीर भर गया, उसे तुम सम्यक् प्रकार से सहन न कर सके ! विना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके ! अदीनभाव से तितिक्षा न कर सके ! और शरीर को निश्चल रख कर सहन न कर सके ।

तत्पश्चात् मेघकुमार अनगार को श्रमण भगवान् महावीर के पास से यह वृत्तान्त सुन-समझ कर शुभ परिणामों के कारण, प्रशस्त अध्यवसायोंके कारण, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं के कारण और जातिस्मरण को आवृत करने वाले ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए, संज्ञी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण उत्पन्न हुआ। उससे मेघ मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूर्ववृत्तान्त स्मरण करा दिया गया, इस कारण उसे दुगुना संवेग प्राप्त हुआ । उसका मुख आनन्द के आंसुओं से परिपूर्ण हो गया। हर्ष के कारण मेघधारा से आहत कदंब पुष्प की भांति उसके रोमांच विकसित हो गये । उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भंते ! आज से मैंने अपने दोनों नेत्र छोड़ कर शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये समर्पित किया।' इस प्रकार कह कर मेघकुमार ने पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस भांति कहा—भगवन् ! मेरी इच्छा है कि आप स्वयं ही दूसरी वार मुझे प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करे, यावत् स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचर—गोचरी के लिए भ्रमण, यात्रा—पिण्डविशुद्धि आदि संयमयात्रा तथा मात्रा—प्रमाण-युक्त आहार ग्रहण करना आदि रूप श्रमण धर्म का उपदेश दीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमारको स्वयमेव दीक्षित किया, यावत् स्वयमेव यात्रा-मात्रा रूप धर्म का उपदेश किया कि—'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करना चाहिए अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रख कर चलना चाहिये, इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी का प्रमार्जन करके खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् शरीर एवं भूमि का प्रमार्जन करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार निर्दोष आहार करना चाहिए, और इस प्रकार अर्थात् भाषासमितिपूर्वक बोलना चाहिए। सावधान रह-रह कर प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों की रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि मुनि को प्रत्येक क्रिया यतना के साथ करनी चाहिये ।'

तत्पश्चात् मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके उसी प्रकार वर्त्ताव करने लगे यावत् संयम में उद्यम करने लगे। तब मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए। यहां (औपपातिक-सूत्र के अनुसार) अनगार का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

तत्पश्चात् उन मेघ मुनिने श्रमण भगवान् महावीरके निकट रह कर तथा-प्रकार के स्थविर मुनियों से सामायिक से प्रारंभ करके ग्यारह अंगशास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास, बेला, तेला, चौला, पंचौला आदि से तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से निकले। निकल कर बाहर जनपदों में विहार करने लगे---विचरने लगे ॥ ३४॥

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी अन्य समय श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा— 'भगवन् ! मैं आपकी अनुमति पाकर एक मास की मर्यादा वाली भिक्षु-प्रतिमा को अंगीकार करके विचरने की इच्छा करता हूं।' भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध अर्थात् इच्छित कार्य का विघात न करो—विलम्बन करो।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाये हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। एक मासकी भिक्षुप्रतिमा को यथासूत्र---सूत्र के अनुसार,कल्प (आचार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादि मार्ग या क्षायोपशमिक भाव) के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय से ग्रहण किया, निरंतर सावधान रह कर उसका पालन किया, पारणे के दिन गुरु को देकर शेष बचा भोजन करके शोभित किया, अथवा अतिचारों का निवारण करके शोधन किया, प्रतिमा का काल पूर्ण हो जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा में रहकर तीर्ण किया, पारणे के दिन प्रतिज्ञा संबंधी कार्यों का कथन करके कीर्त्तन किया। इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके पालन करके, शोभित या शोधित करके, तीर्ण करके एवं कीर्त्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दो मास की दूसरी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूं।' भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध मत करो।' जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पांचवीं पांच मासकी, छठी छह मास की, सातवीं सात मासकी,

फिर पहली अर्थात् आठवीं सात अहोरात्र की, दूसरी अर्थात् नौंवी भी सात अहोरात्र की, तीसरी अर्थात् दसवीं भी सात अहोरात्र की और ग्यारहवीं तथा बारहवीं एक-एक अहोरात्र की कहनी चाहिए।

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने बारहों भिक्षुप्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से काय से स्पर्श करके, पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्त्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा--'हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्नसंवत्सर नामक तपःकर्म अंगीकार करके विचरना चाहता हूं।' भगवान् बोले--'हे देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबन्ध मत करो।'

[गुणरत्न संवत्सर नामक तप में तेरह मास और सत्तरह दिन उपवास के होते हैं और तिहत्तर दिन पारणे के। इस प्रकार सोलह मास में इस तप का अनुष्ठान किया जाता है। तपस्या का यंत्र इस प्रकार है—

मास	तप	तपोदिन	पारणा—दिवस	कुल दिन
१	उपवास	१५	१५	३०
२	बेला	२०	१०	३०
३	तेला	२४	८	३२
४	चौला	२४	६	३०
५	पंचोला	२५	५	३०
६	छह उपवास	२४	४	२८
७	सात ,,	२१	३	२४
८	आठ ,,	२४	३	२७
९	नौ ,,	२७	३	३०
१०	दस ,,	३०	३	३३
११	ग्यारह ,,	३३	३	३६
१२	बारह ,,	२४	२	२६
१३	तेरह ,,	२६	२	२८
१४	चौदह ,,	२८	२	३०
१५	पन्द्रह ,,	३०	२	३२
१६	सोलह ,,	३२	२	३४
		४०७	७३	४८०

जिस मास में जितने दिन कम हैं, उसमें अगले मास के उतने दिन समझ लेने चाहियें। इसी प्रकार जिस मास में अधिक हैं, उसके दिन अगले मास में सम्मिलित कर देने चाहिएं।]

तत्पश्चात् मेघ अनगार पहले महीनेमें निरन्तर चतुर्थभक्त अर्थात् एकान्तर उपवासकी तपस्याके साथ विचरने लगे। दिनमें उत्कट (गोदोहन) आसनसे रहते और सूर्यके सन्मुख आतापना लेनेकी भूमिमें आतापना लेते। रात्रिमें प्रावरण (वस्त्र) से रहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

इसी प्रकार दूसरे महीने निरन्तर षष्ठभक्त तप, तीसरे महीने अष्टमभक्त तथा चौथे मासमें दशमभक्त तप करते हुए विचरने लगे। दिन में उत्कट आसन से स्थित रहते, सूर्य के सामने, आतापना भूमिमें आतापना लेते और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते। पांचवें मासमें द्वादशम-द्वादशम (पंचोले-पंचोले) का निरन्तर तप करने लगे। दिनमें उकड़ू आसनसे स्थित होकर, सूर्यके सन्मुख, आतापना-भूमिमें आतापना लेते और रात्रिमें प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते थे। इस प्रकार इसी आलापकके साथ छठे मासमें छह-छह उपवास का, सातवें मासमें सात-सात उपवासका, आठवें मासमें आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ उपवासका, दसवें मासमें दस-दस उपवास का, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवें मास में बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास का,चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास में सोलह—सोलह उपवास का निरन्तर तपकर्म करते हुए विचरने लगे। दिन में उकड़ू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमिमें आतापना लेते थे और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासनसे स्थित रहते थे। तत्पश्चात् मेघ अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तपःकर्म का सूत्रके अनुसार यावत् सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया। सूत्रके अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कीर्त्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन—नमस्कार करके बहुत—से षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशमभक्त आदि तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि विचित्र प्रकार के तपःकर्म करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥३५॥

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार उस उराल—प्रधान, विपुल दीर्घकालीन होने के कारण विस्तीर्ण, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरू द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्न-साध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी नीरोगताजनक, मुक्तिके कारण, धन्य—धन प्रदान करने वाले, मांगल्य—पापविनाशक, उदग्र—तीव्र, उदार—निष्काम होनेके कारण औदार्य वाले, उत्तम अज्ञानान्धकारसे रहित और महान् प्रभाव वाले तपकर्मसे शुष्क—नीरस शरीर वाले भूखे रूक्ष, मांसरहित और रुधिररहित हो गए। उठते-बैठते उनके हाड़ कड़कड़ाने लगे। उनकी हड्डियां केवल चमड़ेसे मढ़ी रह गईं। शरीर कृश और नसोंसे व्याप्त हो गया।

वह अपने जीवके बलसे ही चलते एवं जीवके बलसे ही खड़े रहते । भाषा बोलकर थक जाते, बात करते-करते थक जाते, यहां तक कि 'मैं बोलूंगा' ऐसा विचार करते ही थक जाते थे । तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्याके कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था ।

जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, लकड़ियोंसे भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, तिलों (तिल के डंठलों) से भरी गाड़ी हो, अथवा एरंडके काष्ठोंसे भरी गाड़ी हो, धूपमें डाल कर सुखाई हुई हो, अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हों और फिर गाड़ीमें भरे गये हों, तो वह गाड़ी खड़खड़की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाड़ोंकी खड़खड़ाहटके साथ चलते थे और खड़खड़ाहट के साथ खड़े रहते थे । वे तपस्यासे तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मांस और रुधिरसे अपचित ह्रासको प्राप्त हो गये थे । वे भस्मके समूह से आच्छादित अग्निकी तरह तपस्याके तेज से देदीप्यमान थे । वे तपस्तेज की लक्ष्मीसे अतीव शोभायमान हो रहे थे ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रमसे चलते हुए, एक ग्रामसे दूसरे ग्रामका उल्लङ्घन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील उद्यान था, उसी जगह पधारे । पधार कर यथोचित्त अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को रात्रि में पूर्वरात्रि और पिछली रात्रि के समय अर्थात् मध्यरात्रिमें, धर्म-जागरणा करते हुए इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार मैं इस प्रधान तपके कारण, इत्यादि पूर्वोक्त सब कथन यहां कहना चाहिए, यावत् 'भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार आते ही थक जाता हूं ।' तो अभी मुझमें उठनेकी शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है, तो जब तक मुझमें उत्थान, कार्य करनेकी शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम श्रद्धा, धृति और संवेग है तथा जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर गंधहस्तीके समान जिनेश्वर विचर रहे हैं, तब तक कल रात्रि के प्रभात रूपमें प्रकट होने पर यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीरको वन्दना और नमस्कार करके, श्रमण भगवान् महावीरकी आज्ञा लेकर स्वयं ही पांच महाव्रतोंको पुनः अंगीकार करके, गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थोंको तथा निर्ग्रन्थियों को खमा कर, तथारूपधारी एवं योगवहन आदि क्रियाएं जिन्होंने की हैं ऐसे स्थविर साधुओं के साथ, धीरे-धीरे

विपुलाचल पर आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघके सदृश पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना स्वीकार करके, आहार-पानी का त्याग करके, पादपो-पगमन अनशन धारण करके मृत्युकी भी आकांक्षा न करता हुआ विचरूं।

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन रात्रि के प्रभात रूपमें परिणत होने पर यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओरसे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर-योग्य स्थान पर रह कर भगवान्‌की सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनयके साथ दोनों हाथ जोड़कर उपासना करने लगे अर्थात् बैठ गए।

'हे मेघ!' इस प्रकार संबोधन करके श्रमण भगवान् महावीरने मेघ अनगार से इस भांति कहा—'निश्चित ही मेघ! रात्रिमें, मध्य रात्रि के समय, धर्मजागरणा जागते हुए तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तपके कारण इत्यादि, यावत् जहां मैं हूं वहां तुम तुरन्त आये हो। मेघ! क्या यह अर्थ समर्थ है? अर्थात् यह बात सत्य है?' मेघ मुनि बोले—'हां, यह अर्थ समर्थ है।' तब भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबंध न करो।'

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीरकी आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदयमें आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठ कर श्रमण भगवान् महावीरको तीन वार दक्षिण दिशासे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके स्वयं ही पांच महाव्रतोंका उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओंको तथा साध्वियों को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किये हुए स्थविर सन्तोंके साथ धीरे-धीरे विपुल नामक पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघके समान काले पृथ्वीशिलापट्टकको प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण की-मलमूत्र त्यागने को भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रति-लेखन करके दर्भ का संथारा बिछाया और उस पर आरूढ़ हो गए। पूर्व दिशाके सन्मुख पद्मासन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़कर और उन्हें मस्तक से स्पर्श करके (अंजलि करके) इस प्रकार बोले—

'अरिहन्त भगवन्तोंको यावत् सिद्धिको प्राप्त सब तीर्थंकरोंको नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करनेके इच्छुकको नमस्कार हो। वहां (गुणशील उद्यान में) स्थित भगवान् को यहां (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूं। वहां स्थित भगवान् यहां स्थित

मुझको देखें।' इस प्रकार कह कर भगवान् को वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीरके निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (चुगली), परपरिवाद (पराये दोषोंका प्रकाशन), धर्ममें अरति, अधर्म में रति, मायामृषा (वेष बदल कर ठगाई करना) और मिथ्यादर्शनशल्य, इन सबका प्रत्याख्यान किया है।

अब भी मैं उन्हीं भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपातका प्रत्याख्यान करता हूं, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूं। तथा सब प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकारके आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूं। और यह शरीर, जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, उसे यावत् रोग, शूलादिक आतंक, बाईस परीषह और उपसर्ग स्पर्श करते हैं, अतएव इस शरीरका भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूं।'

इस प्रकार कह कर संलेखनाको अंगीकार करके, भक्तपानका त्याग करके, पादपोपगमन समाधिमरण अंगीकार कर मृत्युकी भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे। तब वह स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगारकी वैयावृत्य करने लगे।

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीरके तथारूप स्थविरों के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन करके लगभग बारह वर्ष तक चारित्रपर्यायका पालन करके, एक मासकी संलेखनाके द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, अनशनसे साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, माया मिथ्यात्व और निदान शल्यों को हटाकर, समाधिको प्राप्त होकर अनुक्रमसे कालधर्मको प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् मेघ अनगारके साथ गये हुए स्थविर भगवंतोंने मेघ अनगारको क्रमशः कालगत देखा। देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनिके मृत देह को परठने के कारणसे किया जाने वाला) कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके मेघ मुनिके उपकरण ग्रहण किये और विपुलपर्वतसे धीरे-धीरे नीचे उतरे। उतर कर जहां गुणशील उद्यान था और जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां पहुंचे। पहुंच कर श्रमण भगवान् महावीरको वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

आप देवानुप्रियके अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभावसे भद्र और न् विनीत थे। वे देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओं

विपुलाचल पर आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघके सदृश पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना स्वीकार करके, आहार-पानी का त्याग करके, पादपोपगमन अनशन धारण करके मृत्युकी भी आकांक्षा न करता हुआ विचरूं।

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन रात्रि के प्रभात रूपमें परिणत होने पर यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां पहुंचे। पहुंच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओरसे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर-योग्य स्थान पर रह कर भगवान्की सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनयके साथ दोनों हाथ जोड़कर उपासना करने लगे अर्थात् बैठ गए।

'हे मेघ !' इस प्रकार संबोधन करके श्रमण भगवान् महावीरने मेघ अनगार से इस भांति कहा—'निश्चित ही मेघ ! रात्रिमें, मध्य रात्रि के समय, धर्मजागरणा जागते हुए तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तपके कारण इत्यादि, यावत् जहां मैं हूं वहां तुम तुरन्त आये हो। मेघ ! क्या यह अर्थ समर्थ है ? अर्थात् यह बात सत्य है ?' मेघ मुनि बोले—'हां, यह अर्थ समर्थ है।'तब भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबंध न करो।'

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीरकी आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदयमें आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठ कर श्रमण भगवान् महावीरको तीन बार दक्षिण दिशासे आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके स्वयं ही पांच महाव्रतोंका उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओंको तथा साध्वियों को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किये हुए स्थविर सन्तोंके साथ धीरे-धीरे विपुल नामक पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघके समान काले पृथ्वीशिलापट्टककी प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण की-मलमूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का संथारा बिछाया और उस पर आरूढ़ हो गए। पूर्व दिशाके सन्मुख पद्मासन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़कर और उन्हें मस्तक से स्पर्श करके (अंजलि करके) इस प्रकार बोले—

'अरिहन्त भगवन्तों को यावत् सिद्धिको प्राप्त सब तीर्थंकरोंको नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करनेके इच्छुकको नमस्कार हो। वहां (गुणशील उद्यान में) स्थित भगवान् को यहां (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूं। वहां स्थित भगवान् यहां स्थित

मुझको देखें।' इस प्रकार कह कर भगवान् को वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीरके निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (चुगली), परपरिवाद (पराये दोषोंका प्रकाशन), धर्ममें अरति, अधर्म में रति, मायामृषा (वेष बदल कर ठगाई करना) और मिथ्यादर्शनशल्य, इन सबका प्रत्याख्यान किया है।

अब भी मैं उन्हीं भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपातका प्रत्याख्यान करता हूं, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूं। तथा सब प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकारके आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूं। और यह शरीर, जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, उसे यावत् रोग, शूलादिक आतंक, बाईस परीषह और उपसर्ग स्पर्श करते हैं, अतएव इस शरीरका भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूं।'

इस प्रकार कह कर संलेखनाको अंगीकार करके, भक्तपानका त्याग करके, पादपोपगमन समाधिमरण अंगीकार कर मृत्युकी भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे। तब वह स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगारकी वैयावृत्य करने लगे।

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीरके तथारूप स्थविरों के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन करके लगभग बारह वर्ष तक चारित्रपर्यायका पालन करके, एक मासकी संलेखनाके द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, अनशनसे साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, माया मिथ्यात्व और निदान शल्यों को हटाकर, समाधिको प्राप्त होकर अनुक्रमसे कालधर्मको प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् मेघ अनगारके साथ गये हुए स्थविर भगवंतोंने मेघ अनगारको क्रमशः कालगत देखा। देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनिके मृत देह को परठने के कारणसे किया जाने वाला) कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके मेघ मुनिके उपकरण ग्रहण किये और विपुलपर्वतसे धीरे-धीरे नीचे उतरे। उतर कर जहां गुणशील उद्यान था और जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां पहुंचे। पहुंच कर श्रमण भगवान् महावीरको वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

आप देवानुप्रियके अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभावसे भद्र और यावत् विनीत थे। वे देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओं

और साध्वियोंको खमाकर हमारे साथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघके समान कृष्ण वर्ण वाले पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके भक्तपानका प्रत्याख्यान कर दिया और अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए। हे देवानुप्रिय! यह हैं मेघ अनगार के उपकरण ॥३६॥

'भगवन्!' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा— देवानुप्रियके अन्तेवासी मेघ अनगार थे। भगवन्! वे मेघ अनगार काल-मासमें अर्थात् मृत्युके अवसर पर काल करके किस गतिमें गये? और किस जगह उत्पन्न हुए?

'हे गौतम!' इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीरने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! मेरा अन्तेवासी मेघ नामक अनगार प्रकृतिसे भद्र यावत् विनीत था। उसने तथारूप स्थविरों से सामायिक से प्रारंभ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बारह भिक्षुप्रतिमाओं का और गुणरत्न संवत्सर नामक तप का काय से स्पर्श करके यावत् कीर्त्तन करके, मेरी आज्ञा लेकर गौतम आदि स्थविरों को खमाया। खमाकर तथारूप यावत् स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर आरोहण किया। दर्भ का संथारा बिछाया। फिर दर्भ के संथारे पर स्थित होकर स्वयं ही पांच महाव्रतों का उच्चारण किया। बारह वर्ष तक साधुत्व-पर्याय का पालन करके एक मास की संलेखना से अपने शरीर को क्षीण करके, साठ भक्त अनशन से छेदन करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, शल्यों का उद्धार करके, समाधि को प्राप्त होकर, काल मास में मृत्यु को प्राप्त करके, ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष चक्र से बहुत योजन,...सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन और बहुत कोड़ाकोड़ी योजन लांघकर ऊपर जाकर सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोक लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरण और अच्युत देवलोकों को तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवेयक के विमानावासों को लांघ कर विजय नामक महाविमान में देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

उस विजय नामक अनुत्तर विमान में किन्हीं-किन्हीं देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उनमें मेघ नामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। भगवन्! वह मेघ देव उस देवलोक से आयु का अर्थात् आयु कर्म के दलिकों का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा क्षय करके तथा भव का अर्थात् देवभव के कारणभूत कर्मों का क्षय करके तथा देवभव के शरीर का त्याग करके अथवा देवलोक से च्यवन करके किस गतिमें जायेगा? किस स्थान पर उत्पन्न होगा? गौतम! महाविदेह वर्षमें (जन्म लेकर) सिद्धि प्राप्त करेगा

समस्त मनोरथों को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थोंको जानेगा, समस्त कर्मोंसे मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, अर्थात् कर्मजनित समस्त विकारों से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा और समस्त दुःखों का अंत करेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं–'इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने जो प्रवचन की आदि करने वाले, तीर्थ की संस्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, [आप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि वह अविनीत शिष्य को उपालंभ दे, इस प्रयोजन से] प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूं—अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् ने जैसा फर्माया है, वैसा ही मैं तुमसे कहता हूं ॥३७॥

गाथार्थ:—जैसे भगवान् महावीर ने सदुपदेश द्वारा मेघमुनि को धर्म में स्थिर किया उसी प्रकार शिष्य के स्खलित होने पर आचार्य निपुण एवं मधुर वचनों से उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं।

प्रथम अध्ययन समाप्त

—०—

संघाट नामक द्वितीय अध्ययन

श्रीजम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह (आपके द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो हे भगवन्! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है? श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए, द्वितीय अध्ययन के अर्थ की भूमिका प्रतिपादित करते हैं—'इस प्रकार हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन कह लेना चाहिए। उस राजगृह नगर में श्रेणिक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन भी औपपातिकसूत्रसे समझ लेना चाहिए। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में—ईशान कोण में गुणशील नामक उद्यान था। उसका वर्णन भी कह लेना चाहिए।

उस गुणशील उद्यानसे न अधिक दूर और न अधिक समीप, एक भागमें एक गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। वह उद्यान नष्ट हो चुका था। उसमें के द्वारों आदि के तोरण और दूसरे गृह भग्न हो गये थे। नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों (बांस आदि की झाड़ियों), अशोक आदि की लताओं, ककड़ी आदि की वेलों तथा आम्र आदि के वृक्षों से वह उद्यान व्याप्त था। सैंकड़ों वन्य पशुओं के कारण वह भय उत्पन्न करता था।

उस जीर्ण उद्यान के बीचोंबीच एक बड़ा टूटा-फूटा कूप भी था। उस भग्न कूप से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक जगह एक बड़ा मालुकाकच्छ था। वह अंजन के समान कृष्ण वर्ण वाला था और देखने वालों को कृष्णवर्ण ही दिखाई देता था, यावत् रमणीय और महामेघ के समूह जैसा था। वह बहुत—से वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, बेलों, तृणों, कुशों (दर्भ) और ठूंठों से व्याप्त था और चारों ओर से ढंका हुआ था। वह अन्दर से पोला अर्थात् विस्तृत था और बाहर से गंभीर था, अर्थात् अन्दर दृष्टि का संचार न हो सकने के कारण सघन था। अनेक सैंकड़ों हिंसक पशुओं अथवा सर्पों के कारण शंकाजनक था ॥३८॥

उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह था। वह समृद्धिशाली था, तेजस्वी था और उसके घर बहुत-सा भोजन पानी तैयार होता था। उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नाम की पत्नी थी। उसके हाथ पैर सुकुमार थे। पांचों इन्द्रियां हीनता से रहित परिपूर्ण थीं। वह स्वस्तिक आदि लक्षणों तथा तिल मसा आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त थी। मान-उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थी। अच्छी तरह उत्पन्न हुए—सुन्दर सब अवयवों के कारण वह सुन्दरांगी थी। उसका आकार चन्द्रमा के समान सौम्य था। वह अपने पति के लिए मनोहर थी। देखने में प्रिय लगती थी। सुरूपवती थी। मुट्ठी में समा जाने वाला उसका मध्यभाग (कटि प्रदेश) त्रिवलिसे सुशोभित था। कुंडलों से उसके कनपटों की रेखा घिसती रहती थी। उसक मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सौम्य था। वह शृङ्गार का आगार थी। उसका वेप सुन्दर था। यावत् वह प्रतिरूप थी—उसका रूप प्रत्येक दर्शक को नया-नया ही दिखाई देता था। मगर वह वन्ध्या थी, प्रसव करने के स्वभाव से रहित थी। जानु और कूर्पर की ही माता थी, अर्थात् सन्तान न होने से जानु और कूर्पर ही उसके स्तनों का स्पर्श करते थे। या उसकी गोद में जानु और कूर्पर ही स्थित होते थे—पुत्र नहीं ॥३९॥

उस धन्य सार्थवाह का पंथक नामक दास-चेटक था। वह सर्वाङ्ग सुन्दर था, मांस से पुष्ट था और बालकों को खिलाने में कुशल था। वह धन्य सार्थवाह राजगृह नगर में बहुत से नगर के व्यापारियों में, श्रेष्ठियों और सार्थवाहों के तथा अठारहों श्रेणियों (जातियों) और प्रश्रेणियों के बहुत-से कार्यों में, कुटुम्बों में और मंत्रणाओं में यावत् चक्षु के समान मार्ग-दर्शक था और अपने कुटुम्ब में भी बहुत-से कार्यों में यावत् चक्षु के समान था ॥४०॥

उस राजगृह नगर में विजय नामक एक चोर था। वह पाप कर्म करने वाला, चाण्डाल के समान रूप वाला, अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने वाला

था। क्रुद्ध हुए पुरुषके समान देदीप्यमान और लाल उसके नेत्र थे। उसकी दाढ़ी या दाढ़ें अत्यन्त कठोर, मोटी, विकृत और बीभत्स (डरावनी) थीं। उसके होठ आपस में मिलते नहीं थे, अर्थात् दांत बड़े और बाहर निकले हुए थे और होंठ छोटे थे। उसके मस्तक के केश हवा से उड़ते रहते थे, बिखरे रहते थे और लम्बे थे। वह भ्रमर अथवा राहु के समान काला था। वह दया और पश्चात्ताप से रहित था। दारुण (रौद्र) था और इसी कारण भय उत्पन्न करता था। वह नृशंस-नरघातक था। उसे प्राणियों पर अनुकम्पा नहीं थी। वह सांप की भांति एकान्त दृष्टि वाला था, अर्थात् किसी भी कार्य के लिए पक्का निश्चय कर लेता था। वह छुरे की तरह एक धार वाला था, अर्थात् जिसके घर चोरी करने का निश्चय करता, उसी में पूरी तरह संलग्न हो जाता था। वह गिद्ध की तरह मांस का लोलुप था और अग्नि के समान सर्वभक्षी था अर्थात् जिसकी चोरी करता, उसका सर्वस्व हरण कर लेता था। जल के समान सर्वग्राही था, अर्थात् नजर पर चढ़ी सब वस्तुओं का अपहरण कर लेता था। वह उत्कंचन में (हीन गुण वाली वस्तु को अधिक मूल्य लेने के लिए उत्कृष्ट गुण वाली बनाने में), वंचन—दूसरों को ठगने में, माया (पर को धोखा देने की बुद्धि) में, विकृति-बगुले के समान ढोंग करने में, कूट में अर्थात् तोल—नाप को कम-ज्यादा करने में और कपट करने अर्थात् वेष और भाषा को बदलने में अति निपुण था। सातिसंप्रयोग में उत्कृष्ट वस्तु में मिलावट करने में भी निपुण था या अविश्वास करने में चतुर था। वह चिरकाल से नगर में उपद्रव कर रहा था। उसका शील, आकार और चरित्र अत्यन्त दूषित था। वह द्यूत में आसक्त था, मदिरापान में अनुरक्त था, अच्छा भोजन करने में गृद्ध था और मांस में लोलुप था। लोगों के हृदय को विदारण कर देने वाला, साहसी-परिणाम का विचार न करके कार्य करने वाला, सेंध लगाने वाला, गुप्त कार्य करने वाला, विश्वासघाती और आग लगा देने वाला था। तीर्थ रूप देवद्रोणी आदि का भेदन करने वाला और हस्त-लाघव वाला था। पराया द्रव्य हरण करने में सदैव तैयार रहता था। तीव्र वैर वाला था।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बहुत-से प्रवेश करने के मार्गों, निकलने के मार्गों, दरवाजों, पीछे की खिड़कियों, छेड़ियों, किले की छोटी खिड़कियों, मोरियों, रास्ते मिलने की जगहों, रास्ते अलग-अलग होने के स्थानों, जुए के अखाड़ों, मदिरापान के स्थानों, वेश्या के घरों, उनके घरों के द्वारों (चोरों के अड्डों), चोरों के घरों, शृङ्गाटकों—सिंघाड़के आकार के मार्गों, तीन मार्ग मिलने के स्थानों, चौकों, अनेक मार्ग मिलने के स्थानों, नागदेव के गृहों, भूतों के गृहों, यक्षगृहों, सभास्थानों, प्याउओं, दुकानों और शून्यगृहों को देखता फिरता था।

उनकी मार्गणा करता था—उनके विद्यमान गुणों का विचार करता था, उनकी गवेषणा करता था, अर्थात् उनकी कमियों का विचार करता था। बहुतों के छिद्रों का विचार करता था, अर्थात् थोड़े जनों का परिवार हो तो चोरी करने में सुविधा हो, ऐसा विचार करता था। विषम रोग की तीव्रता, इष्ट जनों के वियोग, व्यसन-राज्य आदि की ओर से आये हुए संकट, अभ्युदय—राज्यलक्ष्मी आदि के लाभ, उत्सवों, प्रसव—पुत्रादि के लाभ, मदनत्रयोदशी आदि तिथियों क्षण-बहुत लोगों के भोज आदि यज्ञ—नाग आदि की पूजा, कौमुदी आदि पर्वणी में अर्थात् इन सब प्रसंगों पर बहुत से लोग मत्त हो गये हों, प्रमत्त हुए हों, अमुक कार्य में व्यस्त हों, विविध कार्यों में आकुल—व्याकुल हों, सुख में हों, दुःख में हों, परदेश गये हों, परदेश जाने की तैयारी में हों, ऐसे अवसरों पर वह लोगों के छिद्र का विरह (एकान्त) का और अंतर (अवसर) का विचार करता हुआ और गवेषणा करता हुआ विचरता था।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बाहर भी आरामों में अर्थात् दम्पति के क्रीड़ा करने के लिये माधवीलतागृह आदि जहां बने हों ऐसे बगीचों में, उद्यानों में अर्थात् पुष्पों वाले वृक्ष जहां हों और लोग जहां जाकर उत्सव मनाते हों ऐसे बागोंमें, चौकोर बावड़ियोंमें, कमलवाली पुष्करिणी में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (टेढ़ी बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पंक्तियों में, सर-सर पंक्तियों में, (एक जीर्ण तालाब का पानी दूसरे तालावमें जा सके, ऐसे सरोवरोंकी पंक्तियों) में, उद्यानों में, भग्न कूपों में, मालुकाकच्छों की झाड़ियोंमें, श्मशानोंमें, पर्वतकी गुफाओं में, लयनों अर्थात् पर्वतस्थित पाषाणगृहों में तथा उपस्थानों अर्थात् पर्वत पर स्थित पाषाणमंडपों में उपर्युक्त बहुत लोगों के छिद्र आदि देखता हुआ विचरता था ॥४१॥

धन्य सार्थवाह की भार्या भद्रा एक बार कदाचित् मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता कर रही थी कि उसे इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—बहुत वर्षो से मैं धन्य सार्थवाहके साथ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप ये पांचों प्रकारके मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भोगती हुई विचर रही हूं, परन्तु मैंने एक भी पुत्र या पुत्रीको जन्म नहीं दिया।

वे माताएं धन्य हैं, यावत् उन माताओं को मनुष्य-जन्म और जीवन का फल भली-भांति प्राप्त हुआ है, जो माताएं, मैं मानती हूं कि अपनी कूंखसे उत्पन्न हुए, स्तनोंका दूध पीनेमें लुब्ध, मीठे बोल बोलने वाले, तुतला-तुतला कर बोलने वाले और स्तनके मूल से कांखके प्रदेशकी ओर सरकने वाले मुग्ध बालकोंको स्तनपान कराती हैं। और फिर कोमल कमलके समान हाथोंसे उनको पकड़ कर अपनी गोदमें बिठलाती हैं और बार बार अतिशय प्रिय वचन वाले मधुर उल्लाप देती हैं।

अतः मैं अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, कुलक्षणा हूं और पापिनी हूं कि इनमें से एक भी (विशेषण) न पा सकी। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रिके प्रभात रूपमें प्रकट होने पर और सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाहसे पूछ कर, धन्य सार्थवाह की आज्ञा पाकर मैं वहुत अधिक अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार कराके वहुत-से पुष्प वस्त्रगंध माला और अलंकार ग्रहण करके वहुसंख्यक मित्रों, ज्ञातिजनों, निजजनों, स्वजनों, संवंधियों, परिजनों की महिलाओं के साथ परिवृत होकर, राजगृह नगर के वाहर जो नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र···और वैश्रमण आदि देवों के आयतन हैं और उनमें जो नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा है, उनकी वहुमूल्य पुष्पादि से पूजा करके घुटने और पैर झुका कर अर्थात् उनको नमस्कार करके इस प्रकार कहूं—हे देवानुप्रिय! यदि मैं एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी, पर्व के दिन दान दूंगी, भाग-द्रव्य के लाभ का हिस्सा दूंगी और तुम्हारी अक्षय निधि की वृद्धि करूंगी इस प्रकार अपनी इष्ट वस्तु की याचना करूं।

भद्रा ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् सूर्योदय होने पर जहां धन्य सार्थवाह थे, वहीं आई। आकर इस प्रकार वोली—हे देवानुप्रिय! मैंने आपके साथ वहुत वर्षों तक कामभोग भोगे हैं। यावत् अन्य स्त्रियां वार-वार अति मधुर वचन वाले उल्लाप देती हैं—अपने वच्चोंकी लोरियां गाती हैं, किन्तु मैं अधन्य, पुण्य-हीन और लक्षणहीन हूं, जिससे पूर्वोक्त विशेषणों में से एक भी विशेषण न पा सकी। तो देवानुप्रिय! मैं चाहती हूं कि आपकी आज्ञा पाकर विपुल अशन आदि तैयार कराकर नाग आदिकी पूजा करूं यावत् उनकी अक्षय निधिकी वृद्धि करूं, ऐसी मनौती मनाऊं। (पूर्वसूत्रके अनुसार यहां भी सव कह लेना चाहिए।)

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने भद्रा भार्यासे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! निश्चय ही मेरा भी यही मनोरथ है कि किस प्रकार तुम पुत्र या पुत्रीका प्रसव करो।' इस प्रकार कहकर भद्रा सार्थवाहीको (उस अर्थको—उसने) वैसा करनेकी अनुमति दे दी।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही धन्य सार्थवाहसे अनुमति पाई हुई हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लितहृदय होकर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराती है। तैयार कराकर वहुतसे पुष्प गंध वस्त्र माला और अलंकारों को ग्रहण करती है और फिर अपने घर से वाहर निकलती है। राजगृह नगर के वीचोंवीच होकर निकलती है। निकल कर जहां पुष्करिणी थी, वहां पहुँचती है। पहुंच कर पुष्करिणीके किनारे वहुत—से पुष्प यावत् मालाएं और अलंकार रख दिये। रख कर पुष्करिणीमें प्रवेश किया, जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, स्नान

किया। तत्पश्चात् ओढ़ने-पहनने के दोनों गीले वस्त्र धारण किये हुए भद्रा सार्थवाही ने वहां जो उत्पल—कमल और सहस्रपत्र—कमल थे, उन्हें ग्रहण किया। फिर पुष्करिणी से बाहर निकली। निकल कर पहले रक्खे हुए बहुत—से पुष्प, गंध माला आदि लिये और उन्हें लेकर जहां नागगृह था यावत् वैश्रमणगृह था, वहां पहुंची। पहुंच कर उनमें स्थित नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें नमस्कार किया। कुछ नीचे झुकी। मोर—पिच्छी लेकर उससे नागप्रतिमा यावत् वैश्रमणप्रतिमाका प्रमार्जन किया। जल की धार छोड़कर अभिषेक किया। अभिषेक करके रुएंदार और कोमल कषाय—रंग वाले सुगंधित वस्त्र से प्रतिमा के अंग पोंछे। पोंछ कर बहु मूल्य वस्त्रों का आरोहण किया—वस्त्र पहनाए पुष्पमाला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढ़ाया और शोभाजनक वर्णका स्थापन किया, यावत् धूप जलाई। तत्पश्चात् घुटने और पैर टेक कर, दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—

'अगर मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी, यावत् अक्षय निधि की वृद्धि करूंगी।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने मनौती करके जहां पुष्करिणी थी, वहां आई और विपुल अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम का आस्वादन करती हुई यावत् विचरने लगी। भोजन करने के पश्चात् शुचि होकर अपने घर आ गई।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करती और तैयार करके बहुत-से नागायतनों में यावत् वैश्रमण-आयतनों में देवों की मनौती करती -भोग चढ़ाती थी और उन्हें नमस्कार करती हुई विचरती थी॥४२॥

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही कुछ समय व्यतीत हो जाने पर एकदा कदाचित् गर्भवती हो गई।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही को (गर्भवती हुए) दो मास बीत गये। तीसरा मास चल रहा था, तब इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—'वे माताएं धन्य हैं, यावत् वे माताएं शुभ लक्षण वाली हैं, जो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम, यह चार प्रकार का आहार तथा बहुत-सारे पुष्प, वस्त्र, गंध और माला तथा अलंकार ग्रहण करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परि-जनों की स्त्रियों के साथ परिवृत होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर निकलती हैं। निकल कर जहां पुष्करिणी है वहां आती हैं, आकर पुष्करिणी में अवगाहन करती हैं, अवगाहन करके स्नान करती हैं, और सब अलंकारों से विभूषित होती हैं। फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण

करती हैं।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने विचार किया। विचार करके कल—दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह के पास आई। आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मुझे उस गर्भके प्रभावसे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएं धन्य और सुलक्षणा हैं जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं, आदि, अतएव हे देवानुप्रिय! आपके द्वारा आज्ञा पाई हुई मैं भी दोहद पूर्ण करके विचरूं।' सार्थवाहने कहा—'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो। उसमें ढील न करो।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह से आज्ञा पाई हुई भद्रा सार्थवाही हृष्ट-तुष्ट हुई। यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके, यावत् स्नान करके, यावत् पहनने और ओढ़ने का गीला वस्त्र धारण करके जहां नागायतन आदि थे, वहां आई। यावत् धूप जलाई, प्रणाम किया। प्रणाम करके जहां पुष्करिणी थी, वहां आई। आने पर उन मित्र ज्ञाति यावत् नगर की स्त्रियों ने भद्रा सार्थवाही को सर्व आभूषणों से अलंकृत किया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहीने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संवन्धी, परिजन एवं नगरकी स्त्रियोंके साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिमका यावत् परिभोग करके अपने दोहदको पूर्ण किया। पूर्ण करके जिस दिशासे वह आई थी, उसी दिशामें लौट गई। तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही दोहद पूर्ण करके यावत् उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी। तत्पश्चात् उस भद्रा सार्थवाहीने नौ मास सम्पूर्ण हो जाने पर और साढ़े सात दिन रात व्यतीत हो जाने पर सुकुमार हाथों--पैरों वाले वालकका प्रसव किया। तत्पश्चात् उस वालकके माता-पिताने पहले दिन जातकर्म नामक संस्कार किया। करके उसी प्रकार यावत् अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया। तैयार करवाकर उसी प्रकार मित्र ज्ञातिजनों आदिको भोजन कराकर इस प्रकारका गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा—'क्योंकि हमारा यह पुत्र वहुत-सी नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रमणप्रतिमाओं की मनौती करनेसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' नाम से हो, अर्थात् इसका नाम देवदत्त रक्खा जाय। तत्पश्चात् उस वालकके माता-पिताने उन देवताओंकी पूजा की, उन्हें दान दिया, प्राप्त धनका विभाग किया और अक्षय निधिकी वृद्धि की ॥४३॥

तत्पश्चात् वह पंथक नामक दासचेटक देवदत्त वालकका वालग्राही (बच्चेको खिलाने वाला) नियुक्त हुआ। वह देवदत्त वालकको कमर पर ले लेता और लेकर वहुत-से वालकों, वालिकाओं, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ परिवृत होकर खेलता-खिलाता रहता था। तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहीने किसी

किया। तत्पश्चात् ओढ़ने-पहनने के दोनों गीले वस्त्र धारण किये हुए भद्रा सार्थवाही ने वहां जो उत्पल—कमल और सहस्रपत्र—कमल थे, उन्हें ग्रहण किया। फिर पुष्करिणी से बाहर निकली। निकल कर पहले रक्खे हुए बहुत—से पुष्प, गंध माला आदि लिये और उन्हें लेकर जहां नागगृह था यावत् वैश्रमणगृह था, वहां पहुंची। पहुंच कर उनमें स्थित नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें नमस्कार किया। कुछ नीचे झुकी। मोर—पिच्छी लेकर उससे नागप्रतिमा यावत् वैश्रमणप्रतिमाका प्रमार्जन किया। जल की धार छोड़कर अभिषेक किया। अभिषेक करके रुएंदार और कोमल कषाय—रंग वाले सुगंधित वस्त्र से प्रतिमा के अंग पोंछे। पोंछ कर बहु मूल्य वस्त्रों का आरोहण किया—वस्त्र पहनाए पुष्पमाला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढ़ाया और शोभाजनक वर्णका स्थापन किया, यावत् धूप जलाई। तत्पश्चात् घुटने और पैर टेक कर, दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—

'अगर मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी, यावत् अक्षय निधि की वृद्धि करूंगी।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने मनौती करके जहां पुष्करिणी थी, वहां आई और विपुल अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम का आस्वादन करती हुई यावत् विचरने लगी। भोजन करने के पश्चात् शुचि होकर अपने घर आ गई।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करती और तैयार करके बहुत-से नागायतनों में यावत् वैश्रमण-आयतनों में देवों की मनौती करती -भोग चढ़ाती थी और उन्हें नमस्कार करती हुई विचरती थी ॥४२॥

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही कुछ समय व्यतीत हो जाने पर एकदा कदाचित् गर्भवती हो गई।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही को (गर्भवती हुए) दो मास बीत गये। तीसरा मास चल रहा था, तब इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—'वे माताएं धन्य हैं, यावत् वे माताएं शुभ लक्षण वाली हैं, जो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम, यह चार प्रकार का आहार तथा बहुत-सारे पुष्प, वस्त्र, गंध और माला तथा अलंकार ग्रहण करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों की स्त्रियों के साथ परिवृत होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर निकलती हैं। निकल कर जहां पुष्करिणी है वहां आती हैं, आकर पुष्करिणी में अवगाहन करती हैं, अवगाहन करके स्नान करती हैं, और सब अलंकारों से विभूषित होती हैं। फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण

करती हैं।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने विचार किया। विचार करके कल—दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह के पास आई। आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मुझे उस गर्भके प्रभावसे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएं धन्य और सुलक्षणा हैं जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं, आदि, अतएव हे देवानुप्रिय! आपके द्वारा आज्ञा पाई हुई मैं भी दोहद पूर्ण करके विचरूं।' सार्थवाहने कहा-'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो। उसमें ढील न करो।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह से आज्ञा पाई हुई भद्रा सार्थवाही हृष्ट-तुष्ट हुई। यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके, यावत् स्नान करके, यावत् पहनने और ओढ़ने का गीला वस्त्र धारण करके जहां नागायतन आदि थे, वहां आई। यावत् धूप जलाई, प्रणाम किया। प्रणाम करके जहां पुष्करिणी थी, वहां आई। आने पर उन मित्र ज्ञाति यावत् नगर की स्त्रियों ने भद्रा सार्थवाही को सर्व आभूषणों से अलंकृत किया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहीने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी, परिजन एवं नगरकी स्त्रियोंके साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिमका यावत् परिभोग करके अपने दोहदको पूर्ण किया। पूर्ण करके जिस दिशासे वह आई थी, उसी दिशामें लौट गई। तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही दोहद पूर्ण करके यावत् उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी। तत्पश्चात् उस भद्रा सार्थवाहीने नौ मास सम्पूर्ण हो जाने पर और साढ़े सात दिन रात व्यतीत हो जाने पर सुकुमार हाथों--पैरों वाले बालकका प्रसव किया। तत्पश्चात् उस बालकके माता-पिताने पहले दिन जातकर्म नामक संस्कार किया। करके उसी प्रकार यावत् अशन,पान,खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया। तैयार करवाकर उसी प्रकार मित्र ज्ञातिजनों आदिको भोजन कराकर इस प्रकारका गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा—'क्योंकि हमारा यह पुत्र बहुत-सी नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रमणप्रतिमाओं की मनौती करनेसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' नाम से हो, अर्थात् इसका नाम देवदत्त रक्खा जाय। तत्पश्चात् उस बालकके माता-पिताने उन देवताओंकी पूजा की, उन्हें दान दिया, प्राप्त धनका विभाग किया और अक्षय निधिकी वृद्धि की॥४३॥

तत्पश्चात् वह पंथक नामक दासचेटक देवदत्त बालकका बालग्राही (बच्चेको खिलाने वाला) नियुक्त हुआ। वह देवदत्त बालकको कमर पर ले लेता और लेकर बहुत-से बालकों, बालिकाओं, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ परिवृत होकर खेलता-खिलाता रहता था। तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहीने किसी

समय स्नान किये हुए यथा समस्त अलंकारों से विभूषित हुए देवदत्त बालक को, दासचेटक पंथकके हाथमें सौंपा।

तत्पश्चात् पंथक दासचेटकने भद्रा सार्थवाहीके हाथसे देवदत्त बालक को लेकर अपनी कटि पर ग्रहण किया। ग्रहण करके वह अपने घर से बाहर निकला। बाहर निकल कर बहुत-से बालकों, बालिकाओं यावत् कुमारिकाओंसे परिवृत होकर जहां राजमार्ग था, वहां आया। आकर देवदत्त बालक को एकान्तमें—एक ओर बिठला दिया। बिठला कर बहुसंख्यक बालकों यावत् कुमारिकाओंके साथ (देवदत्तकी ओर से) असावधान होकर खेलने लगा—विचरने लगा।

इसी समय विजय चोर राजगृह नगरके बहुतसे द्वारों एवं अपद्वारों आदि को यावत् देखता हुआ, उनकी मार्गणा करता हुआ, गवेषणा करता हुआ जहां देवदत्त बालक था, वहां आ पहुंचा। आकर देवदत्त बालकको सभी आभूषणोंसे भूषित देखा। देखकर बालक देवदत्तके आभरणों और अलंकारोंमें मूर्छित (मूढ़—विवेकहीन) हो गया, ग्रथित (लोभसे ग्रस्त) हो गया, गृद्ध (आकांक्षायुक्त) हो गया और अध्युपपन्न (उसमें अत्यन्त तन्मय) हो गया। उसने दासचेटक पंथकको बेखबर देखा और चारों ओर दिशाओंका अवलोकन किया। फिर बालक देवदत्त को उठाया और उठाकर कांखमें दबा लिया। ओढ़नेके कपड़ेसे उसे छिपा लिया—ढंक लिया। फिर शीघ्र, त्वरित, चपल और उतावलके साथ राजगृह नगरके अपद्वारसे बाहर निकल गया। निकल कर जहां जीर्ण उद्यान था और जहां टूटा-फूटा कुआं था, वहां पहुंचा। वहां पहुंच कर देवदत्त बालकको जीवनसे रहित कर दिया। उसे निर्जीव करके उसके सब आभरण और अलंकार ले लिये। फिर बालक देवदत्तके प्राणहीन, चेष्टाहीन एवं निर्जीव शरीरको उस भग्नकूपमें पटक दिया। इसके अनन्तर वह मालुकाकच्छमें घुस गया और निश्चल अर्थात् गमनागमनरहित, निस्पन्द—हाथों-पैरों को भी न हिलाता हुआ और मौन रहकर दिन समाप्त होनेकी राह देखने लगा ॥४४॥

तत्पश्चात् वह पंथक नामक दासचेटक थोड़ी देर बाद जहां बालक देवदत्त को बिठलाया था, वहां पहुंचा। पहुंचने पर उसने देवदत्त बालकको उस स्थान पर न देखा। वह रोला, चिल्लाता और विलाप करता हुआ सब जगह उसकी ढूंढ़-खोज करने लगा। मगर कहीं भी उसे बालक देवदत्तकी खबर न लगी, छींक वगैरह का शब्द न सुनाई दिया, न पता चला। तब वह जहां अपना घर था और जहां धन्य सार्थवाह था, वहां पहुंचा। पहुंच कर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहने लगा—'स्वामिन्! इस प्रकार भद्रा सार्थवाहीने स्नान किये हुए बालक देवदत्त को यावत् मेरे हाथ में दिया। तत्पश्चात् मैंने बालक देवदत्त को कमर पर ले लिया। लेकर (बाहर ले गया, एक जगह बिठलाया। थोड़ी देर बाद

वह दिखाई न दिया) यावत् सब जगह उसकी ढूंढ़—खोज की, परन्तु नहीं मालूम स्वामिन् ! कि देवदत्त बालक को कोई मित्रादि अपने घर ले गया है, चोर ने अपहरण कर लिया है अथवा किसी ने ललचा लिया है ?' इस प्रकार धन्य सार्थवाहके पैरोंमें पड़कर उसने अर्थ निवेदन किया।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह पंथक दासचेटककी यह बात सुनकर और हृदय में धारण करके महान् पुत्रशोकसे व्याकुल होकर, कुल्हाड़ेसे काटे हुए चम्पक वृक्ष की तरह धड़ामसे पृथ्वी पर सब अंगोंसे गिर पड़ा-मूर्छित हो गया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह थोड़ी देर बाद आश्वस्त हुआ—होशमें आया, उसके प्राण मानों वापिस लौटे, उसने देवदत्त बालककी सब ओर ढूंढ़-खोज की, मगर कहीं भी देवदत्त बालकका पता न चला, छींक आदि का शब्द भी न सुन पड़ा और न समाचार मिला। तब वह अपने घर पर आया। आकर बहुमूल्य भेंट ली और जहां नगर-रक्षक—कोतवाल थे, वहां पहुंच कर वह बहुमूल्य भेंट सामने रक्खी और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! मेरा पुत्र और भद्रा भार्या का आत्मज देवदत्त नामक बालक हमें इष्ट है, यावत् गूलरके फूलके समान उसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन का तो कहना ही क्या है।—

तत्पश्चात् भद्राने देवदत्तको स्नान करा कर और समस्त अलंकारोंसे विभूषित करके पंथकके हाथमें सौंप दिया। यावत् पंथकने मेरे पैरोंमें गिर कर मुझसे निवेदन किया। (यहां पिछला सब वृत्तान्त कह लेना चाहिए।) तो हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता हूं कि आप देवदत्त बालककी सब जगह मार्गणा-गवेषणा करें। तत्पश्चात् उन नगररक्षकोंने धन्य सार्थवाहके ऐसा कहने पर कवच (बख्तर) तैयार किया, उसे कसोंसे बांधा और शरीर पर धारण किया। धनुष रूपी पट्टिका पर प्रत्यंचा चढ़ाई अथवा भुजाओं पर चमड़े का पट्टा बांधा। आयुध (शस्त्र) और प्रहरण (तीर आदि) ग्रहण किये। फिर धन्य सार्थवाहके साथ राजगृह नगरके बहुतसे निकलनेके मार्गों यावत् प्याऊ आदिमें ढूंढ़-खोज करते हुए राजगृह नगरसे बाहर निकले। निकल कर जहां जीर्ण उद्यान था और जहां भग्न कूप था, वहां आये। आकर उस कूप में निष्प्राण, निश्चेष्ट एवं निर्जीव देवदत्तका शरीर देखा, देखकर 'हा, हा, अहो अकार्य !' इस प्रकार कह कर उन्होंने देवदत्त कुमारको उस भग्न कूपसे बाहर निकाला और धन्य सार्थवाहके हाथमें सौंप दिया ॥४५॥

तत्पश्चात् वे नगररक्षक विजय चोरके पैरोंके निशानोंका अनुसरण करते हुए मालुकाकच्छमें पहुंचे। उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर विजय चोर को पंचोंकी साक्षीपूर्वक, चोरीके माल के साथ गर्दन में बांधा और जीवित

पकड़ लिया। फिर यष्टि (लकड़ी), मुष्टि, घुटनों और कोहनियोंके प्रहार करके उसके शरीर को भग्न और मथित कर दिया—ऐसी मार मारी कि उसका सारा शरीर ढीला पड़ गया। उसकी गर्दन और दोनों हाथ पीठ की तरफ बांध दिये। फिर बालक देवदत्त के आभरण कब्जेमें किये। तत्पश्चात् विजय चोरको गर्दनसे बांधा और मालुकाकच्छसे बाहर निकले। निकल कर जहां राजगृह नगर था, वहां आये। वहां आकर राजगृह नगरमें प्रविष्ट हुए और नगर के त्रिक, चतुष्क, चत्वर एवं महापथ आदि मार्गोंमें कोड़ोंके प्रहार, छड़ियोंके प्रहार, छिवा (कंबा) के प्रहार करते-करते और उसके ऊपर राख, धूल और कचरा डालते हुए तेज आवाजसे घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रियो! (लोको!) यह विजय नामक चोर यावत् गीधके समान मांसभक्षी, बालघातक और बालकका हत्यारा है। देवानुप्रियो! कोई राजा, राजपुत्र अथवा राजाका अमात्य इसके लिए अपराधी नहीं है—कोई निष्कारण ही इसे दंड नहीं दे रहा है। इस विषयमें इसके अपने किये कार्य ही अपराधी हैं।' इस प्रकार कह कर जहां चारकशाला (कारागार) थी, वहां पहुंचे वहां पहुँच कर उसे बेड़ियोंसे जकड़ दिया। भोजन-पानी बंद कर दिया। और तीनों संध्याकालों में—प्रातः, मध्यान्ह और सूर्यास्तके समय चाबुक आदि के प्रहार करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिवार के साथ रोते-रोते यावत् विलाप करते-करते बालक देवदत्तके शरीरका महान् ऋद्धि-सत्कारके समूहके साथ नीहरण किया, अर्थात् अग्नि-संस्कारके लिए श्मशानमें ले गया। तत्पश्चात् अनेक लौकिक मृतककृत्य किये। मृतककृत्य करके कुछ समयके अनन्तर वह उस शोकसे रहित हो गया ॥४६॥

तत्पश्चात् किसी समय धन्य सार्थवाहको चुगलखोरोंने छोटा-सा राजकीय अपराध लगा दिया। तब नगररक्षकोंने धन्य सार्थवाहको गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार करके जहां कारागार था, वहां ले गये। ले जाकर कारागारमें प्रवेश किया और प्रवेश करके विजय चोरके साथ एक ही बेड़ीमें बांध दिया। तत्पश्चात् भद्रा भार्याने दूसरे दिन यावत् सूर्यके जाज्वल्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार किया। भोजन तैयार करके भोजन रखनेका पिटक (बांसकी छाबड़ी) ठीकठाक किया और उसमें भोजनके पात्र रख दिये। फिर उस पिटकको लांछित और मुद्रित कर दिया, अर्थात् उस पर रेखा आदिके चिन्ह बना दिये और मोहर लगा दी। सुगंधित जलसे परिपूर्ण छोटा-सा घड़ा तैयार किया। फिर पंथक दासचेटकको आवाज दी और कहा—हे देवानुप्रिय! तू जा। यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम लेकर कारागारमें धन्य सार्थवाहके पास ले जा।

तत्पश्चात् पंथकने भद्रा सार्थवाहीके इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर

उस भोजन-पिटकको और उत्तम सुगंधित जलसे परिपूर्ण घटको ग्रहण किया। ग्रहण करके अपने घरसे निकला। निकल कर राजगृहके मध्यभागमें होकर जहां कारागार था और जहां धन्य सार्थवाह था, वहां पहुंचा। पहुँच कर भोजन का पिटक रख दिया। उसे लांछन और मुद्रासे रहित किया, अर्थात् उस पर बना हुआ चिन्ह हटाया और मोहर हटा दी। फिर भोजनके पात्र लिये, उन्हें धोया और फिर हाथ धोनेका पानी दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन परोसा। उस समय विजय चोरने धन्य सार्थ-वाहसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम मुझे इस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजनमें से संविभाग करो—हिस्सा दो।'

तब धन्य सार्थवाहने विजय चोरसे इस प्रकार कहा—हे विजय ! भले ही मैं यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम काकों और कुत्तोंको दे दूंगा अथवा उकरडे (कूड़ा डालनेके स्थान)में फेंक दूंगा, परन्तु तुझ पुत्रघातक, पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी (सानुवन्ध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले एवं प्रत्यमित्र—प्रत्येक वातमें विरोधी—को इस अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यमें से संविभाग नहीं करूंगा। इसके पश्चात् धन्य सार्थवाहने उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यका आहार किया। आहार करके पंथकको लौटा दिया। पंथक दासचेटने भोजनका वह पिटक लिया और लेकर जिस ओरसे आया था उसी ओर लौट गया।

तत्पश्चात् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन किये हुए धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र की वाधा उत्पन्न हुई। तब धन्य सार्थवाहने विजय चोर से कहा—विजय ! चलो, एकान्त में चलें; जिससे मैं मल-मूत्रका त्याग कर सकूं। तब विजय चोरने धन्य सार्थवाह से कहा-देवानुप्रिय ! तुमने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया है, अतएव तुम्हें मल और मूत्रकी वाधा उत्पन्न हुई है। देवानुप्रिय ! मैं तो इन वहुत चावुकोंके प्रहारोंसे, यावत् लता के प्रहारों से तथा प्यास और भूखसे पीड़ित हो रहा हूं। मुझे मल-मूत्र की वाधा नहीं है। देवानुप्रिय ! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मल-मूत्र का त्याग करो।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह विजय चोर के इस प्रकार कहने पर मौन रह गया। थोड़ी देर में धन्य सार्थवाह उच्चार-प्रस्रवण की वाधा से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ विजय चोरसे वोला—'विजय ! चलो, यावत् एकान्त में चलें।' तव विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय ! यदि तुम उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें से संविभाग करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्तमें चलूं।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने विजय से कहा—मैं तुम्हें उस विपुल अशन पान खादिम और स्वादिममें से संविभाग करूंगा—हिस्सा दूंगा। तत्पश्चात् विजय

पकड़ लिया। फिर यष्टि (लकड़ी), मुष्टि, घुटनों और कोहनियोंके प्रहार करके उसके शरीर को भग्न और मथित कर दिया—ऐसी मार मारी कि उसका सारा शरीर ढीला पड़ गया। उसकी गर्दन और दोनों हाथ पीठ की तरफ वांध दिये। फिर बालक देवदत्त के आभरण कब्जेमें किये। तत्पश्चात् विजय चोरको गर्दनसे बांधा और मालुकाकच्छसे बाहर निकले। निकल कर जहां राजगृह नगर था, वहां आये। वहां आकर राजगृह नगरमें प्रविष्ट हुए और नगर के त्रिक, चतुष्क, चत्वर एवं महापथ आदि मार्गोंमें कोड़ोंके प्रहार, छड़ियोंके प्रहार, छिवा (कंबा) के प्रहार करते-करते और उसके ऊपर राख, धूल और कचरा डालते हुए तेज आवाजसे घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रियो! (लोको!) यह विजय नामक चोर यावत् गीधके समान मांसभक्षी, बालघातक और बालकका हत्यारा है। देवानुप्रियो! कोई राजा, राजपुत्र अथवा राजाका अमात्य इसके लिए अपराधी नहीं है—कोई निष्कारण ही इसे दंड नहीं दे रहा है। इस विषयमें इसके अपने किये कार्य ही अपराधी हैं।' इस प्रकार कह कर जहां चारकशाला (कारागार) थी, वहां पहुंचे वहां पहुँच कर उसे बेड़ियोंसे जकड़ दिया। भोजन-पानी बंद कर दिया। और तीनों संध्याकालों में—प्रातः, मध्यान्ह और सूर्यास्तके समय चाबुक आदि के प्रहार करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिवार के साथ रोते-रोते यावत् विलाप करते-करते बालक देवदत्तके शरीरका महान् ऋद्धि-सत्कारके समूहके साथ नीहरण किया, अर्थात् अग्नि-संस्कारके लिए श्मशानमें ले गया। तत्पश्चात् अनेक लौकिक मृतककृत्य किये। मृतककृत्य करके कुछ समयके अनन्तर वह उस शोकसे रहित हो गया ॥४६॥

तत्पश्चात् किसी समय धन्य सार्थवाहको चुगलखोरोंने छोटा-सा राजकीय अपराध लगा दिया। तब नगररक्षकोंने धन्य सार्थवाहको गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार करके जहां कारागार था, वहां ले गये। ले जाकर कारागारमें प्रवेश किया और प्रवेश करके विजय चोरके साथ एक ही बेड़ीमें बांध दिया। तत्पश्चात् भद्रा भार्याने दूसरे दिन यावत् सूर्यके जाज्वल्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार किया। भोजन तैयार करके भोजन रखनेका पिटक (बांसकी छाबड़ी) ठीकठाक किया और उसमें भोजनके पात्र रख दिये। फिर उस पिटकको लांछित और मुद्रित कर दिया, अर्थात् उस पर रेखा आदिके चिन्ह बना दिये और मोहर लगा दी। सुगंधित जलसे परिपूर्ण छोटा-सा घड़ा तैयार किया। फिर पंथक दासचेटकको आवाज दी और कहा—हे देवानुप्रिय! तू जा। यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम लेकर कारागारमें धन्य सार्थवाहके पास ले जा।

तत्पश्चात् पंथकने भद्रा सार्थवाहीके इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर

उस भोजन-पिटकको और उत्तम सुगंधित जलसे परिपूर्ण घटको ग्रहण किया। ग्रहण करके अपने घरसे निकला। निकल कर राजगृहके मध्यभागमें होकर जहां कारागार था और जहां धन्य सार्थवाह था, वहां पहुंचा। पहुँच कर भोजन का पिटक रख दिया। उसे लांछन और मुद्रासे रहित किया, अर्थात् उस पर वना हुआ चिन्ह हटाया और मोहर हटा दी। फिर भोजनके पात्र लिये, उन्हें धोया और फिर हाथ धोनेका पानी दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन परोसा। उस समय विजय चोरने धन्य सार्थवाहसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम मुझे इस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजनमें से संविभाग करो—हिस्सा दो।'

तव धन्य सार्थवाहने विजय चोरसे इस प्रकार कहा—हे विजय! भले ही मैं यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम काकों और कुत्तोंको दे दूंगा अथवा उकरडे (कूड़ा डालनेके स्थान)में फैंक दूंगा, परन्तु तुझ पुत्रघातक, पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी (सानुवन्ध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले एवं प्रत्यमित्र—प्रत्येक वातमें विरोधी—को इस अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यमें से संविभाग नहीं करूंगा। इसके पश्चात् धन्य सार्थवाहने उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यका आहार किया। आहार करके पंथकको लौटा दिया। पंथक दासचेटने भोजनका वह पिटक लिया और लेकर जिस ओरसे आया था उसी ओर लौट गया।

तत्पश्चात् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन किये हुए धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र की वाधा उत्पन्न हुई। तव धन्य सार्थवाहने विजय चोर से कहा—विजय! चलो, एकान्त में चलें; जिससे मैं मल-मूत्रका त्याग कर सकूं। तव विजय चोरने धन्य सार्थवाह से कहा-देवानुप्रिय! तुमने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया है, अतएव तुम्हें मल और मूत्रकी वाधा उत्पन्न हुई है। देवानुप्रिय! मैं तो इन वहुत चावुकोंके प्रहारोंसे, यावत् लता के प्रहारों से तथा प्यास और भूखसे पीडित हो रहा हूं। मुझे मल-मूत्र की बाधा नहीं है। देवानुप्रिय! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मल-मूत्र का त्याग करो।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह विजय चोर के इस प्रकार कहने पर मौन रह गया। थोड़ी देर में धन्य सार्थवाह उच्चार-प्रस्रवण की वाधा से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ विजय चोरसे वोला—'विजय! चलो, यावत् एकान्त में चलें।' तव विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय! यदि तुम उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें से संविभाग करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्तमें चलूं।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने विजय से कहा—मैं तुम्हें उस विपुल अशन पान खादिम और स्वादिममें से संविभाग करूंगा—हिस्सा दूंगा। तत्पश्चात् विजय

ने धन्य सार्थवाहके इस अर्थको स्वीकार किया। फिर विजय धन्य सार्थवाहके साथ एकान्तमें गया। धन्य सार्थवाहने मल–मूत्रका परित्याग किया। फिर जलसे चोखा और परम पवित्र होकर उसी स्थान पर आ गये।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके पंथकके साथ भेजा। यावत् पंथक ने धन्य को परोसा। तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से भाग दिया। फिर धन्य सार्थवाह ने पंथक दासचेटक को रवाना कर दिया।

तदनन्तर वह पंथक भोजन–पिटक लेकर कारागारसे बाहर निकला। निकल कर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर जहां अपना घर था और जहां भद्रा भार्या थी, वहां पहुँचा। वहां पहुँच कर उसने भद्रा सार्थवाहीसे कहा—'देवानुप्रिये ! धन्य सार्थवाह ने तुम्हारे पुत्रके घातक यावत् प्रत्यमित्र को उस विपुल अशन पान खादिम और स्वादिममें से हिस्सा दिया है ॥४७॥

तब भद्रा सार्थवाही दासचेटक पंथक के पाससे यह अर्थ सुनकर तत्काल लाल हो गई, रुष्ट हुई, यावत् मिसमिसाती हुई धन्य सार्थवाह पर प्रद्वेष करने लगी। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहको किसी समय मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिवारके लोगोंने अपने (धन्य सार्थवाह के) सारभूत अर्थसे, राजदंड से मुक्त कराया, मुक्त होकर वह कारागारसे बाहर निकला। निकल कर जहां अलंकारिकसभा (हजामत बनवाना, नाखून कटवाना आदि शरीर—श्रृङ्गार करने की नाई की दुकान) थी, वहां पहुँचा। पहुंच कर अलंकारिक—कर्म किया। फिर जहां पुष्करिणी थी, वहां आया। आकर नीचेकी धोनेकी मिट्टी ली और पुष्करिणी में अवगाहन किया, जलमें मज्जन किया, स्नान किया, यावत् राजगृह नगरमें प्रवेश किया। राजगृह नगरके मध्यमें होकर जहां अपना घर था, वहां जानेके लिए रवाना हुआ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहको आता देखकर राजगृह नगरमें बहुत-से आत्मीय श्रेष्ठी सार्थवाह आदिने आदर किया, सन्मानसे बुलाया, वस्त्र आदि से सत्कार किया, नमस्कार आदि करके सन्मान किया, खड़े होकर मान किया और शरीर की कुशल पूछी। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर पहुँचा। वहां जो बाहर की सभा थी, जैसे—दास (दासीपुत्र), प्रेष्य (काम—काज के लिए बाहर भेजे जाने वाले नौकर), भृतक (जिनका बाल्यावस्था से पालन—पोषण किया हो) और व्यापार के हिस्सेदार। उन्होंने भी धन्य सार्थवाह को आते देखा। देख कर पैरों में गिर कर क्षेम—कुशल की पृच्छा की।

और वहां जो आभ्यन्तर सभा थी, जैसे कि—माता, पिता, भाई, बहिन आदि, उन्होंने भी धन्य सार्थवाह को आते देखा। देखकर वे आसन से उठ खड़े हुए, उठकर गलेसे गला मिलाकर हर्षके आंसू बहाये। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह भद्रा भार्याके पास पहुँचा। तब भद्रा सार्थवाहीने धन्य सार्थवाहको आते देखा। देखकर उसने न आदर किया न माना जाना। न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मौन रहकर और पीठ फेर कर (विमुख होकर) बैठी रही।

तब धन्य सार्थवाह ने भद्रा भार्यासे इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये! मेरे आने से तुम्हें सन्तोष क्यों नहीं है? हर्ष क्यों नहीं है? आनन्द क्यों नहीं है? मैंने अपने सारभूत अर्थसे राजकार्य (राजदंड)से अपने आपको छुड़ाया है। तत्पश्चात् भद्राने धन्य सार्थवाहसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! मुझे क्यों सन्तोष यावत् आनन्द होगा, जब कि तुमने मेरे पुत्रके घातक यावत् प्रत्यमित्र (विजय चोर)को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन में से संविभाग किया?

तब धन्य सार्थवाहने भद्रा से कहा—देवानुप्रिये! धर्म समझ कर, तप समझ कर, किये उपकारका बदला समझ कर, लोकयात्रा—लोकदिखावा—समझ कर, न्याय समझ कर या नायक समझ कर, सहचर समझ कर, सहायक समझ कर अथवा सुहृद् (मित्र) समझ कर मैंने उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से संविभाग नहीं किया है। सिवाय शरीरचिन्ता (मल-मूत्र की बाधा) के और किसी प्रयोजनसे संविभाग नहीं किया। धन्य सार्थवाहके इस प्रकार कहने पर भद्रा हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आसनसे उठी, गले लगाया और क्षेम-कुशल पूछी फिर स्नान किया, यावत् पांचों इन्द्रियोंके विपुल भोग भोगती हुई रहने लगी।

तत्पश्चात् विजय चोर कारागारमें बन्ध, वध, चाबुकोंके प्रहार, यावत् प्यास और भूखसे पीड़ित होता हुआ, मृत्यु के अवसर पर काल करके नारक रूप से नरक में उत्पन्न हुआ। नरकमें उत्पन्न हुआ वह काला और अतिशय काला दीखता था, यावत् वेदनाका अनुभव कर रहा था। वह नरकसे निकल कर अनादि, अनन्त दीर्घ मार्ग या दीर्घ काल वाले चतुर्गति रूप संसार-कान्तारमें पर्यटन करेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी उपसंहार करते हुए जम्बू स्वामी से कहते हैं-हे जम्बू! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्यायके पास मुण्डित होकर, गृहत्याग कर साधुत्वकी दीक्षा अंगीकार करके विपुल मणि मौक्तिक धन कनक और रत्नों के सारमें लुब्ध होता है, वह भी ऐसा ही होता है—उसकी दशा भी विजय चोर जैसी होती है॥४८॥

उस काल और उस समयमें धर्मघोष नामक स्थविर भगवंत जातिसे सम्पन्न यावत् अनुक्रमसे चलते हुए जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील उद्यान था, वहां आये। यावत् यथायोग्य उपाश्रयकी याचना करके संयम और तपसे अपनी

में वंदनीय यावत् उपासनीय होता है। परलोकमें भी वह हस्तछेदन (हाथों का काटा जाना), कर्णछेदन और नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदयके उत्पाटन एवं वृषणों (अंडकोषों) के उत्पाटन और उद्बंधन (ऊंचा बांध कर लटकाना) आदि कष्टोंको प्राप्त नहीं करेगा। वह अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाले संसारको यावत् पार करेगा, जैसे धन्य सार्थवाहने किया। इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय ज्ञाताध्ययनका यह अर्थ कहा है ।।५०।।

गाथार्थ-निराहार शरीर मोक्ष के कारणों—प्रतिलेखन आदि क्रियाओंमें प्रवृत्त नहीं होता, अतएव जैसे धन्य सार्थवाह ने विजय चोरका पोषण किया, उसी प्रकार साधु शरीरका पोषण करे।

।। द्वितीय अध्ययन समाप्त ।।

तृतीय अण्डक अध्ययन

श्री जम्बू० अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न करते है—भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीरने ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फर्माया है तो तीसरे अध्ययनका क्या अर्थ फरमाया है? श्रीसुधर्मा उत्तर देते हैं–इस प्रकार हे जम्बू! उस काल और उस समयमें चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस चम्पा नगरीसे वाहर उत्तरपूर्व दिशामें सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था। वह सभी ऋतुओंके फूलों-फलोंसे सम्पन्न था। नंदन-वनके समान शुभ या सुखकारक था तथा सुगंधयुक्त और शीतल छायासे व्याप्त था।

आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। उनका आगमन जानकर परिषद् निकली। धर्मघोष स्थविरने धर्मदेशना की। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहको बहुत लोगोंसे यह अर्थ (वृत्तान्त) सुनकर और समझ कर इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'उत्तम जातिसे सम्पन्न स्थविर भगवान् यहां आये हैं, यहां प्राप्त हुए हैं। तो मैं चाहता हूं कि स्थविर भगवान्को वंदना करूं, नमस्कार करूं।' इस प्रकार विचार कर धन्य ने स्नान किया, शुद्ध-साफ बहुमूल्य, अल्प, मांगलिक वस्त्र धारण किये। फिर पैदल चलकर जहां गुणशील उद्यान था और जहां स्थविर भगवान् थे, वहां पहुँचा। पहुँच कर उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् स्थविर भगवान्ने धन्य सार्थवाहको विचित्र धर्म का उपदेश दिया अर्थात् ऐसे धर्मका उपदेश दिया जो जिनशासनके सिवाय अन्यत्र सुलभ नहीं है।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह धर्मोपदेश सुनकर यावत् बोला—'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं।' यावत् वह प्रव्रजित हो गया। यावत् बहुत वर्षो तक श्रामण्य-पर्याय पालकर, भोजन का प्रत्याख्यान करके एक मास की संलेखनासे अनशनसे साठ भक्तोंको छेद कर, कालमासमें काल करके सौधर्म देवलोकमें देवके रूपमें उत्पन्न हुआ। सौधर्म देवलोकमें किन्हीं-किन्हीं देवोंकी चार पल्योपम की स्थिति कही है। धन्य नामक देव की भी चार पल्योपमकी स्थिति कही है। वह धन्य नामक देव आयुके दलिकोंका क्षय करके, आयु कर्मकी स्थिति का क्षय करके तथा भव (देवभव के कारण गति आदि कर्मो) का क्षय करके, अनन्तर ही देहका त्याग करके महा-विदेह क्षेत्रमें (मनुष्य होकर) सिद्धि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करेगा ॥४६॥

श्रीसुधर्मा स्वामीने जम्बू स्वामीसे कहा—हे जम्बू! जैसे धन्य सार्थवाहने 'धर्म है' ऐसा समझ कर यावत् विजय चोरको उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें से संविभाग नहीं किया था, सिवाय शरीरकी रक्षा करनेके अर्थात् धन्य सार्थवाहने केवल शरीररक्षाके लिए ही विजयको अपने आहारमें से हिस्सा दिया था, धर्म या उपकार आदि समझ कर नहीं; इसी प्रकार जम्बू! हमारा जो साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर स्नान, उपमर्दन, पुष्प, गंध, माला, अलंकार आदि शृङ्गारका त्याग करके अशन पान खादिम और स्वादिम आहार करता है सो इस औदारिक शरीरके वर्णके लिए, रूपके लिए या विषय-सुखके लिए नहीं करता। सिवाय ज्ञान, दर्शन और चारित्रको वहन करनेके उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता। वह साधुओं साध्वियों श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा इस लोक

में वंदनीय यावत् उपासनीय होता है। परलोकमें भी वह हस्तछेदन (हाथों का काटा जाना), कर्णछेदन और नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदयके उत्पाटन एवं वृषणों (अंडकोषों) के उत्पाटन और उद्‌बंधन (ऊंचा बांध कर लटकाना) आदि कष्टोंको प्राप्त नहीं करेगा। वह अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाले संसारको यावत् पार करेगा, जैसे धन्य सार्थवाहने किया। इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय ज्ञाताध्ययनका यह अर्थ कहा है ॥५०॥

गाथार्थ-निराहार शरीर मोक्ष के कारणों—प्रतिलेखन आदि क्रियाओंमें प्रवृत्त नहीं होता, अतएव जैसे धन्य सार्थवाह ने विजय चोरका पोषण किया, उसी प्रकार साधु शरीरका पोषण करे।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अण्डक अध्ययन

श्री जम्बू० अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न करते है—भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीरने ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फर्माया है तो तीसरे अध्ययनका क्या अर्थ फरमाया है? श्रीसुधर्मा उत्तर देते हैं-इस प्रकार हे जम्बू! उस काल और उस समयमें चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस चम्पा नगरीसे बाहर उत्तरपूर्व दिशामें सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था। वह सभी ऋतुओंके फूलों-फलोंसे सम्पन्न था। नंदन-वनके समान शुभ या सुखकारक था तथा सुगंधयुक्त और शीतल छायासे व्याप्त था।

उस सुभूमिभाग उद्यानके उत्तरमें, एक प्रदेश में, एक मालुकाकच्छ था, अर्थात् मालुका नामक वृक्षोंका वनखण्ड था। उसका वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए। उस मालुकाकच्छमें एक श्रेष्ठ मयूरीने पुष्ट पर्यायागत प्रसवकालके अनुक्रमसे प्राप्त, चावलोंके पिंडके समान श्वेत वर्ण वाले, व्रण अर्थात् छिद्र या घावसे रहित, वायु आदिके उपद्रवसे रहित तथा पोली मुट्ठीके बराबर दो मयूरीके अंडोंका प्रसव किया। प्रसव करके वह अपने पाँखोंकी वायु से उनकी रक्षा करती उनका संगोपन-सारसंभाल करती और संवेष्टन-पोषण करती हुई रहती थी।

उस चम्पा नगरीमें दो सार्थवाह—पुत्र निवास करते थे। वे इस प्रकार—जिनदत्तका पुत्र और सागरदत्तका पुत्र। वे दोनों साथ ही जन्मे थे, साथ ही बड़े हुए थे, साथ ही धूलमें खेले थे, साथ ही विवाहित हुए थे अथवा एक साथ रहते हुए एक—दूसरेके द्वारको देखने वाले थे-साथ साथ घरमें प्रवेश करते थे। दोनोंका परस्पर अनुराग था। एक दूसरेका अनुसरण करता था, एक दूसरे की इच्छाके अनुकूल चलता था। दोनों एक दूसरेके हृदय का इच्छित कार्य करते थे और एक दूसरेके घरोंमें नित्यकृत्य और नैमित्तिक कार्य करते हुए रहते थे ॥५१॥

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र किसी समय इकट्ठे हुए, एकके घरमें आये और एक साथ बैठे थे। उस समय उनमें आपसमें इस प्रकार वार्त्तालाप हुआ--'हे देवानुप्रिय! जो भी हमें सुख, दुःख, प्रव्रज्या अथवा विदेश-गमन प्राप्त हो, उस सबका हमें एक दूसरेके साथ ही निर्वाह करना चाहिए।' इस प्रकार कह कर दोनोंने आपसमें इस प्रकार की प्रतिज्ञा अंगीकार की। प्रतिज्ञा अंगीकार करके अपने-अपने कार्यमें लग गये ॥५२॥

उस चम्पा नगरी में देवदत्ता नामक गणिका निवास करती थी। वह समृद्ध थी, यावत् बहुत भोजन पान वाली थी। चौंसठ कलाओं में पंडिता थी। गणिका के चौंसठ गुणों से युक्त थी। उनतीस प्रकार की विशेष क्रीड़ा से क्रीड़ा करने वाली थी। कामक्रीड़ा के इक्कीस गुणों से श्रेष्ठ थी। बत्तीस प्रकार के पुरुष के उपचार करने में कुशल थी। सोते हुए नौ अंगों (दो कान, दो नेत्र, दो नासिकापुट, जिव्हा, त्वचा, और मन) को जागृत करने वाली अर्थात् युवावस्था को प्राप्त थी। अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में निपुण थी। वह ऐसा सुन्दर वेष धारण करती थी, मानो शृङ्गाररस का स्थान हो। सुन्दर गति, उपहास, वचन, चेष्टा, विलास (नेत्रों की चेष्टा) एवं ललित संलाप (बात-चीत) करने में कुशल थी। योग्य उपचार (व्यवहार) करनेमें चतुर थी। उसके घर पर ध्वजा फहराती थी। एक हजार देने वाले को वह प्राप्त होती थी, अर्थात् उसका एक दिन का शुल्क एक हजार रुपया था। राजा के द्वारा उसे छत्र, चामर और बालव्यजन (विशेष प्रकार का चामर) प्रदान किया गया था। वह कर्णीरथ नामक वाहन पर आरूढ़ होकर आती जाती थी, यावत् हजार गणिकाओं का आधिपत्य करती हुई रहती थी।

तत्पश्चात् वे दोनों सार्थवाहपुत्र किसी समय मध्यान्हकाल में भोजन करने के अनन्तर, आचमन करके, हाथ-पैर धोकर-स्वच्छ होकर एवं परम पवित्र होकर सुखद आसनों पर बैठे। उस समय उन दोनों में आपस में इस प्रकार की बात-चीत हुई—'हे देवानुप्रिय! अपने लिए यह अच्छा होगा कि कल यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गंध, और वस्त्र साथ में लेकर, देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग नामक उद्यान में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरें।' इस प्रकार कह कर दोनों ने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम को तथा धूप, पुष्प आदि को लेकर जहां सुभूमिभाग नामक उद्यान है और जहां नन्दा पुष्करिणी है, वहां जाओ। जाकर नन्दा पुष्करिणी के समीप स्थूणा-मण्डप

(वस्त्र से आच्छादित मंडप) तैयार करो। जल सींच कर, झाड़-बुहार कर, लीप कर यावत् सुगंधित श्रेष्ठ धूप जलाकर उस स्थान को सुगंधयुक्त बनाओ। यह सब करके हमारी बाट देखते रहो।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुप आदेशानुसार कार्य करके यावत् उनकी बाट देखते रहे।

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रों ने दूसरी बार (दूसरे) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा-'शीघ्र ही एकसमान खुर और पूंछ वाले, एक-से चित्रित, तीखे सींगों वाले, चांदी की घंटियों वाले, स्वर्णजटित सूत की डोरी की नाथ से बंधे हुए तथा नील कमलकी कलंगी से युक्त श्रेष्ठ जवान बैल जिसमें जुते हों, नाना प्रकार की मणियों की रत्नों की और स्वर्ण की घंटियों के समूह से युक्त तथा श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त रथ ले आओ।' वे कौटुम्बिक पुरुप आदेशानुसार रथ उपस्थित करते हैं।

तत्पश्चात् उन सार्थवाहपुत्रोंने स्नान किया, यावत् शरीरको वस्त्राभरणों से अलंकृत किया और वे रथ पर आरूढ़ हुए, रथ पर आरूढ होकर जहां देवदत्ता गणिका का घर था, वहां आये। आकर वाहन (रथ) से नीचे उतरे और उतर कर देवदत्ता गणिका के घरमें प्रविष्ट हुए। उस समय देवदत्ता गणिकाने सार्थवाहपुत्रोंको आते देखा, देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होकर आसनसे उठी और उठकर सात-आठ कदम सामने गई। सामने जाकर उसने सार्थवाहपुत्रों से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! आज्ञा दीजिए, आपके यहां आने का क्या प्रयोजन है?

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रों ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विचरना चाहते हैं। तत्पश्चात् देवदत्ता ने उन सार्थवाहपुत्रों की इस बात को स्वीकार किया। स्वीकार करके स्नान किया, अधिक क्या कहें? यावत् लक्ष्मी के समान श्रेष्ठ वेष धारण किया। जहां सार्थवाहपुत्र थे वहां आ गई।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान पर आरूढ हुए और चम्पा नगरी के बीचोंबीच होकर जहां सुभूमिभाग उद्यान था और जहां नन्दा पुष्करिणी थी, वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर यान (रथ) से नीचे उतरे। उतरकर नंदा पुष्करिणी में अवगाहन किया। अवगाहन करके जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, स्नान किया और देवदत्ता के साथ बाहर निकले। जहां स्थूणामंडप था वहां आये। आकर स्थूणामंडप में प्रवेश किया। सब अलंकारों से विभूषित हुए, आश्वस्त (स्वस्थ) हुए, विश्वस्त (विश्रान्त) हुए, श्रेष्ठ आसन पर बैठे। देवदत्ता गणिका के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प,

गंध और वस्त्र का आस्वादन करते हुए, विशेष रूप से आस्वादन करते हुए एवं भोगते हुए विचरने लगे। भोजन के पश्चात् देवदत्ता के साथ मनुष्य संबंधी विपुल कामभोग भोगते हुए विचरने लगे ॥५३॥

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र दिन के पिछले पहर में देवदत्ता गणिका के साथ स्थूणामंडप से बाहर निकले। बाहर निकल कर हाथ में हाथ डाल कर सुभूमिभाग उद्यान में बने हुए आलि वृक्षों के गृहों में, कदलीगृहों में, लतागृहों में, आसन (बैठने के) गृहों में, प्रेक्षणगृहों में, मण्डन करने के गृहों में, मैथुनगृहों में, साल वृक्षों के गृहों में, जाली वाले गृहों में, पुष्पगृहों में, उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरने लगे ॥५४॥

तत्पश्चात् वे सार्थवाहदारक जहां मालुकाकच्छ था, वहां जाने के लिए प्रवृत्त हुए। तब उस वनमयूरी ने सार्थवाहपुत्रों को आते देखा। देख कर वह डर गई और घबरा गई। वह जोर–जोर से आवाज करके केकारव करती हुई मालुकाकच्छ से बाहर निकली। निकल कर एक वृक्ष की डाली पर स्थित होकर उन सार्थवाहपुत्रों को तथा मालुकाकच्छ को अपलक दृष्टि से देखने लगी।

तत्पश्चात् उन सार्थवाहपुत्रों ने आपस में एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय ! यह वनमयूरी हमें आते देखकर भयभीत हुई, स्तब्ध रह गई, त्रास को प्राप्त हुई, उद्विग्न हुई, भाग (उड़) गई और जोर–जोर की आवाज करके यावत् हम लोगों को तथा मालुकाकच्छ को पुनः पुनः देखती हुई ठहरी है, अतएव यहां कोई कारण होना चाहिए।' इस प्रकार कह कर वे मालुकाकच्छ के भीतर घुसे। घुस कर उन्होंने वहां दो पुष्ट और अनुक्रम से वृद्धि प्राप्त मयूरी–अंडे यावत् देखे, देख कर एक दूसरे को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! वनमयूरी के इन अंडों को अपनी उत्तम जाति की मुर्गी के अंडों में डलवा देना अपने लिए अच्छा रहेगा। ऐसा करने से अपनी जातिवन्त मुर्गियां इन अंडों को और अपने अंडों को अपने पंखों की हवा से रक्षण करती और संभालती रहेंगी। तो हमारे दो क्रीड़ा करने के मयूर–बालक हो जाएंगे।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके अपने–अपने दासपुत्रों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा— हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ। इन अंडों को लेकर अपनी उत्तम जाति की मुर्गियों के अंडों में डाल (मिला) दो।' यावत् उन दासपुत्रों ने उन दोनों अंडों को मुर्गियों के अंडों में मिला दिया।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरण करके उसी यान पर आरूढ़ होते

हुए जहां चम्पा नगरी थी और जहां देवदत्ता गणिका का घर था, वहां आये। आकर देवदत्ता के घर में प्रवेश किया। प्रवेश करके देवदत्ता गणिका को विपुल जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसका सत्कार किया, सत्कार करके सन्मान किया। सन्मान करके दोनों देवदत्ता के घर से बाहर निकले। निकल कर जहां अपने-अपने घर थे, वहां आये। आकर अपने कार्य में संलग्न हो गये ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् उनमें जो सागरदत्त का पुत्र सार्थवाहदारक था, वह कल (दूसरे दिन), सूर्य के देदीप्यमान होने पर जहां वनमयूरीका अंडा था, वहां आया। आकर उस मयूरी के अंडे में शंकित हुआ, अर्थात् सोचने लगा कि यह अंडा निपजेगा या नहीं ? उसके फल की आकांक्षा करने लगा कि कब इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी ? विचिकित्सा को प्राप्त हुआ अर्थात् मयूरी—बालक हो जाने पर भी इससे क्रीड़ा रूप फल प्राप्त होगा या नहीं, इस प्रकार फल में संदेह करने लगा। भेद को प्राप्त हुआ, अर्थात् सोचने लगा कि इस अंडे में बच्चा है या नहीं ? कलुषता को अर्थात् बुद्धि की मलिनता को प्राप्त हुआ। अतएव वह विचार करने लगा कि मेरे इस अण्डे में से क्रीड़ा करने का मयूरी—बालक उत्पन्न होगा अथवा नहीं होगा ?

इस प्रकार विचार करके वह बार-बार उस अंडे को उद्वर्त्तन करने लगा अर्थात् नीचे का भाग ऊपर करके फिराने लगा, घुमाने लगा, आसारण करने लगा, अर्थात् एक जगह से दूसरी जगह रखने लगा, संसारण करने लगा, अर्थात् बार-बार स्थानान्तरित करने लगा, चलाने लगा, हिलाने लगा, घट्टन-हाथ से स्पर्श करने लगा, क्षोभण-भूमि को कुछ खोद कर उसमें रखने लगा और बार-बार उसे कान के पास ले जाकर बजाने लगा। तदनन्तर वह मयूरी—अंडा बार-बार उद्वर्त्तन करने से यावत् बजाने से पोला हो गया।

तत्पश्चात् सागरदत्त का पुत्र सार्थवाहदारक किसी समय जहां मयूरी का अंडा था, वहां आया। आकर उस मयूरी—अंडे को उसने पोचा देखा। देख कर 'ओह ! यह मयूरी का बच्चा मेरी क्रीड़ा करने के लिए न हुआ' ऐसा विचार करके खेदखिन्नचित्त होकर चिन्ता करने लगा।

आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्याय के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करके पांच महाव्रतों के विषय में, यावत् षट् जीवनिकाय के विषय में अथवा निर्ग्रन्थ प्रवचन के विषय में शंका करता है यावत् कलुपता को प्राप्त होता है, वह इसी भव में बहुत-से साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं के द्वारा हीलना करने योग्य—गच्छ से पृथक् करने योग्य, मन से निन्दा करने योग्य, लोकनिन्दनीय, समक्ष में ही गर्हा (निन्दा) करने योग्य और

परिभव (अनादर) के योग्य होता है। परभव में भी वह बहुत दंड पाता है, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है ॥५६॥

तत्पश्चात् जिनदत्त का पुत्र जहां मयूरी का अंडा था, वहां आया। आकर उस मयूरीके अंडे के विषय में निःशंक रहा। 'मेरे इस अंडेमें से क्रीड़ा करनेके लिए बढ़िया गोलाकार मयूरी—बालक होगा' इस प्रकार निश्चय करके, उस मयूरी के अंडे को उसने बार—बार उलटा—पलटा नहीं यावत् बजाया नहीं। इस कारण उलट—पुलट न करने से और न बजाने से उस काल और उस समय में अर्थात् समय का परिपाक होने पर वह अंडा फूटा और मयूरी के बालक का जन्म हुआ।

तत्पश्चात् जिनदत्त के पुत्र ने उस मयूरी के बच्चे को देखा। देख कर हृष्ट-तुष्ट होकर मयूरपोषकोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम मयूर के इस बच्चे को अनेक मयूर को पोषण देने योग्य पदार्थों से, अनुक्रम से संरक्षण करते हुए और संगोपन करते हुए बड़ा करो और नृत्यकला सिखलाओ।

तब उन मयूरपोषकोंने जिनदत्तके पुत्रकी यह बात स्वीकार की। उस मयूर-बालकको ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां अपना घर था वहां आये। आकर उस मयूर-बालक को यावत् नृत्यकला सिखलाने लगे। तत्पश्चात् मयूरी का वह बच्चा बचपन से मुक्त हुआ। उसमें विज्ञान का परिणमन हुआ। युवावस्था को प्राप्त हुआ। लक्षणों और तिल आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त हुआ। चौड़ाई रूप मान, स्थूलता रूप उन्मान और लम्बाई रूप प्रमाण से उसके पंखों और पिच्छों का समूह परिपूर्ण हुआ। उसके पिच्छ रंग-बिरंगे हो गए। उनमें सैकड़ों चन्द्रक थे। वह नीले कंठ वाला और नृत्य करने के स्वभाव वाला हुआ। एक चुटकी बजाने से अनेक प्रकार के सैंकड़ों केकारव करता हुआ विचरण करने लगा।

तत्पश्चात् मयूरपालकों ने उस मयूर के बच्चे को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता हुआ देखा, देखकर उस मयूर-बच्चे को ग्रहण किया। ग्रहण करके जिनदत्त के पुत्र के पास ले गये। तब जिनदत्त के पुत्र सार्थवाहदारक ने मयूर-बालक को बचपनसे मुक्त यावत् केकारव करता देखकर, हृष्ट-तुष्ट होकर उन्हें जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया यावत् विदा किया।

तत्पश्चात् वह मयूर-बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर लांगूल के भंग के समान अर्थात् जैसे सिंह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था। उसके शरीर पर पसीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो गये थे। वह बिखरे पिच्छों वाले दोनों पंखों को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हें फैला देता था। वह चन्द्रक

आदि से युक्त पिच्छों के समूह को ऊंचा कर लेता था और सैंकड़ों केकारव करता हुआ नृत्य करता था।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर-बालक के द्वारा चम्पा नगरी के शृङ्गाटक आदि मार्गों में सैंकड़ों, हजारों और लाखों की होड़ में विजय प्राप्त करता हुआ विचरता था। हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी दीक्षित होकर पांच महाव्रतों में, षट् जीवनिकाय में तथा निर्ग्रन्थ प्रवचनमें शंका से रहित, कांक्षा से रहित तथा विचिकित्सासे रहित होता है. वह इसी भव में वहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों में मान-सम्मान प्राप्त करके यावत् संसार रूप अटवी को पार करेगा। हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फरमाया है ॥५७॥

उपनय

बुद्धिमान जिनेन्द्रभाषित भावों में सन्देह न करे, क्यों कि सन्देह अनर्थ का कारण है। निस्सन्देहत्व गुण का कारण है,अतः उसका समाचरण करना चाहिए। इस पर दो श्रेष्ठिपुत्रों का उदाहरण है। कहीं मतिदौर्बल्य से, ज्ञानी आचार्य के अभाव में, ज्ञान की गहनता से, ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से, हेतु उदाहरण की असम्भावना में, यदि कोई वात भली भांति न जान सके तो भी वुद्धिमान ऐसा सोचे—'सर्वज्ञ—प्ररूपित मत सत्य है' क्यों कि रागद्वेषमोहविजेता जगत्श्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान् परमोपकारी हैं अतः वे अन्यथावादी नहीं हो सकते।

॥ तृतीय अ(ज्ञाता)ध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ कूर्माध्ययन

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञातांग के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फर्माया है तो ज्ञातांग के चौथे ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ फर्माया है ?' श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें वाणारसी (वनारस) नामक नगरी थी। यहां उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरी—वर्णन के समान कहना चाहिए।

उस वाणारसी नगरी के वाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में, गंगा नामक महानदी में मृतगंगातीर द्रह नामक एक द्रह था। उसके अनुक्रम से सुन्दर सुशोभित तट थे। उसका जल गहरा और शीतल था। वह द्रह स्वच्छ एवं निर्मल जल से परिपूर्ण था। कमलिनियों के पत्तों और फूलों की पांखुड़ियों से आच्छादित था। वहुत से उत्पलों (नीले कमलों), पद्मों (लाल कमलों), कुमुदों (चन्द्रविकाशी कमलों), नलिनों तथा सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक,

शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से तथा केसर प्रधान अन्य पुष्पों से समृद्ध था। इस कारण वह आनन्दजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

उस द्रहमें सैंकड़ों, सहस्रों और लाखों मच्छों, कच्छों, ग्राहों, मगरों और सुंसुमार जातिके जलचर जीवोंके समूह भयसे रहित, उद्वेगसे रहित सुखपूर्वक रमते-रमते विचरण करते थे। उस मृतगंगातीर द्रहके समीप एक बड़ा मालुका-कच्छ था। उसका वर्णन यहां कहना चाहिए। उस मालुकाकच्छमें दो पापी शृगाल निवास करते थे। वे पापी, चंड (क्रोधी), रौद्र (भयंकर), इष्ट वस्तुको प्राप्त करने में दत्तचित्त और साहसी थे। उनके हाथ अर्थात् अगले पैर रक्तरंजित रहते थे। वे मांसके अर्थी, मांसाहारी, मांसप्रिय एवं मांसलोलुप थे। मांस की गवेषणा करते हुए रात्रि और सन्ध्याके समय घूमते थे और दिनमें छिपे रहते थे। तत्पश्चात् मृतगंगातीर नामक द्रहमें से किसी समय, सूर्य के बहुत समय पहले अस्त हो जाने पर, संध्याकाल व्यतीत हो जाने पर, जब कोई विरले मनुष्य ही चलते-फिरते थे और सब मनुष्य अपने-अपने घरोंमें विश्राम कर रहे थे अथवा सब लोग चलने-फिरनेसे विरत हो चुके थे, तब आहारके अभिलाषी दो कछुए निकले। वे मृतगंगातीर द्रहके आसपास चारों ओर फिरते हुए अपनी आजीविका करते हुए विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् आहारके अर्थी यावत् आहारकी गवेषणा करते हुए वे दोनों पापी शृगाल मालुकाकच्छसे बाहर निकले। निकल कर जहां मृतगंगातीर नामक द्रह था, वहां आए। आकर उसी मृतगंगातीर द्रहके पास इधर-उधर चारों ओर फिरने लगे और आजीविका करते हुए विचरण करने लगे। तत्पश्चात् उन पापी सियारोंने उन दो कछुओंको देखा। देखकर जहां दोनों कछुए थे, वहां आनेके लिए प्रवृत्त हुए। तत्पश्चात् उन कछुओंने उन पापी सियारोंको आते देखा। देखकर वे डरे, त्रास को प्राप्त हुए, भागने लगे, उद्वेग को प्राप्त हुए और बहुत भयभीत हुए। उन्होंने अपने हाथ, पैर और ग्रीवाको अपने शरीरमें गोपित कर लिया-छिपा लिया। गोपन करके निश्चल, निस्पंद (हलन-चलनसे रहित) और मौन रह गए।

तत्पश्चात् वे पापी सियार जहां वे कछुए थे, वहां आए। आकर उन कछुओंको सब तरफसे फिराने लगे, स्थानान्तरित करने लगे, सरकाने लगे, हटाने लगे, चलाने लगे, स्पर्श करने लगे, हिलाने लगे, क्षुब्ध करने लगे, नाखूनोंसे फाड़ने लगे और दांतोंसे चींथने लगे, किन्तु उन कछुओंके शरीर को थोड़ी बाधा, अधिक बाधा या विशेष बाधा उत्पन्न करनेमें अथवा उनकी चमड़ी छेदनेमें समर्थ न हो सके। तत्पश्चात् उन पापी सियारोंने उन कछुओंको दूसरी बार और तीसरी बार सब ओरसे घुमाया-फिराया, किन्तु यावत् उनकी चमड़ी छेदनेमें समर्थ न हुए। तब वे श्रान्त हो गये—शरीरसे थक गये, तान्त हो गये—मानसिक ग्लानि

को प्राप्त हुए और शरीर तथा मन—दोनोंसे थक गये तथा खेदको प्राप्त हुए। धीमे-धीमे पीछे लौट गये, एकान्तमें चले गए और निश्चल, निस्पंद तथा मूक होकर ठहर गये।

उन दोनोंमें से एक कछुएने उन पापी सियारों को बहुत समय पहले और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपना एक पैर बाहर निकाला। तत्पश्चात् उन पापी शृगालोंने देखा कि उस कछुएने धीरे-धीरे एक पैर निकाला है। यह देखकर वे दोनों उत्कृष्ट गतिसे शीघ्र, चपल, त्वरित, चंड, जय और वेगयुक्त रूपसे जहां वह कछुआ था, वहां आये। आकर उन्होंने कछुए का वह पैर नाखूनोंसे विदारण किया और दांतोंसे तोड़ा। तत्पश्चात् उसके मांस और रक्तका आहार किया। आहार करके वे कछुए को उलटपलट कर देखने लगे, किन्तु यावत् उसकी चमड़ी छेदनेमें समर्थ न हुए। तब वे दूसरी बार हट गये। इसी प्रकार क्रमशः चारों पैरोंके विषयमें कहना चाहिए। फिर उस कछुए ने ग्रीवा बाहर निकाली। उन पापी सियारोंने देखा कि कछुएने ग्रीवा बाहर निकाली है। यह देखकर वे शीघ्र ही उसके समीप आये। उन्होंने नाखूनोंसे विदारण करके और दांतोंसे तोड़कर उसके कपाल को अलग कर दिया। अलग करके कछुएको जीवन-रहित कर दिया। जीवनरहित करके उसके मांस और रुधिर का आहार किया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य या उपाध्यायके निकट दीक्षित होकर पांचों इन्द्रियोंका गोपन नहीं करते, वे इसी भवमें बहुत से साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा हीलना करने योग्य होते हैं और परलोकमें भी बहुत दंड पाते हैं, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करते हैं, जैसे अपनी इन्द्रियोंका गोपन न करने वाला वह कछुआ मृत्युको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों पापी सियार जहां दूसरा कछुआ था, वहां आये। आकर उस कछुएको चारों तरफसे सब दिशाओंसे उलट-पलट कर देखने लगे यावत् दांतोंसे तोड़ने लगे, परन्तु यावत् उसकी चमड़ी का छेदन करने में समर्थ न हो सके।

तत्पश्चात् वे पापी सियार दूसरी बार और तीसरी बार दूर चले गये किन्तु कछुएने अपने अंग बाहर न निकाले, अतः वे उस कछुए को कुछ भी आबाधा या विबाधा अर्थात् थोड़ी या बहुत पीड़ा न कर सके यावत् उसकी चमड़ी छेदनेमें भी समर्थ न हो सके। तब वे श्रान्त, तान्त और परितान्त होकर तथा खिन्न होकर जिस दिशासे आये थे, उसी दिशामें लौट गये। तत्पश्चात् उस कछुएने उन पापी सियारोंको चिरकालसे गया और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपनी ग्रीवा बाहर निकाली। ग्रीवा निकाल कर सब दिशाओंमें अवलोकन किया, अव-लोकन करके एक साथ चारों पैर बाहर निकाले और उत्कृष्ट कूर्मगतिसे अर्थात्

कछुएके योग्य अधिकसे अधिक तेज चालसे दौड़ता-दौड़ता जहां मृतगंगातीर नामक द्रह था, वहां आ पहुंचा। वहां आकर मित्र ज्ञाति निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनके साथ मिल गया।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो श्रमण या श्रमणी पांचों इन्द्रियोंका गोपन करता है, जैसे उस कछुएने अपनी इन्द्रियोंको गुप्त रक्खा था, वह इस संसारको तर जाता है। अध्ययनका उपसंहार करते हुए सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीरने चौथे ज्ञाताध्ययनका यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने भगवान्से सुना है, वैसा ही मैं कहता हूं ॥५८॥

उपनय

विषयोन्मुखी इन्द्रियोंका निरोध करने वाले रागद्वेषसे विमुक्त जीव कछुए के समान द्रह रूपी मुक्ति सुखको प्राप्त करते हैं। दूसरे शृगालग्रसित कछुएके समान पापकर्मवश संसार सागरमें अनर्थ परम्परा को प्राप्त होते हैं।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पांचवां शैलक अध्ययन

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न करते हैं-भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने चौथे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! पांचवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारवती (द्वारिका) नामक नगरी थी। वह पूर्व पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी थी। नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी थी। वह कुवेर की मति से निर्मित हुई थी। सुवर्ण के श्रेष्ठ प्राकार से और पंचरंगी नाना मणियों के बने कंगूरों से शोभित थी। अलकापुरी के समान जान पड़ती थी। उसके निवासी जन प्रमोदयुक्त एवं क्रीड़ा करने में तत्पर रहते थे। वह साक्षात् देवलोक सरीखी थी।

उस द्वारिका नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था। वह बहुत ऊंचा था। उसके शिखर गगन-तल को स्पर्श करते थे। वह नाना प्रकारके गुच्छों, गुल्मों, लताओं और वल्लियों से व्याप्त था। हंस मृग मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनसारिका और कोयल आदि पक्षियों के झुंडों से व्याप्त था। उसमें अनेक तट और गंडशैल थे। बहुसंख्यक गुफाएं, झरने, प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नमे हुए गिरिप्रदेश) और शिखर थे। वह पर्वत अप्सराओं के समूहों, देवों के समूहों, चारण मुनियों और विद्याधरों के मिथुनों (जोड़ों) से युक्त था। उसमें दशार वंश के समुद्रविजय आदि वीर पुरुषों के, जो कि नेमिनाथ के साथ होने के कारण तीनों लोकों से भी अधिक बलवान्

थे, नित्य नये उत्सव होते रहते थे। वह पर्वत सौम्य, सुभग, देखने में प्रिय, सुरूप, प्रसन्नता प्रदान करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था।

उस रैवतक पर्वत से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक नन्दनवन नामक उद्यान था। वह सब ऋतुओं संबंधी पुष्पों और फलों से समृद्ध था, मनोहर था। नन्दनवन के समान आनन्दप्रद, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

उस द्वारिका नगरी में कृष्ण नामक वासुदेव राजा निवास करते थे। वह वासुदेव वहां समुद्रविजय आदि दश दशारों, बलदेव आदि पांच महावीरों, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं, वीरसेन आदि इक्कीस हजार पुरुषों, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान पुरुषों, रुक्मिणी आदि बत्तीस हजार रानियों, अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं तथा अन्य बहुत से ईश्वरों (ऐश्वर्यवान् धनाढ्य सेठों), तलवरों (कोतवालों) यावत् सार्थवाहों आदि का उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा अन्य तीन दिशाओंमें समुद्र पर्यन्त दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का और द्वारिका नगरी का अधिपतित्व करते हुए और पालन करते हुए विचरते थे ।।५६।।

द्वारिका नगरी में थावच्चा नामक एक गाथापत्नी (गृहस्थ महिला) निवास करती थी। वह समृद्धि वाली थी यावत् किसी से पराभव पाने वाली नहीं थी। उस थावच्चा गाथापत्नी का थावच्चापुत्र नामक सार्थवाह का बालक पुत्र था। उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुकुमार थे। यावत् वह सुन्दर रूपवान था।

तत्पश्चात् उस थावच्चा गाथापत्नी ने उस पुत्र को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जान कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त में कलाचार्य के पास भेजा। फिर भोग भोगने में समर्थ (युवा) हुआ जान कर इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण कराया। प्रासाद आदि बत्तीस-बत्तीस का दायजा दिया अर्थात् थावच्चापुत्र की बत्तीसों पत्नियों के लिए बत्तीस महल आदि सामग्री प्रदान की। वह इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ विपुल शब्द, स्पर्श, रस, रूप, वर्ण और गंधका भोग यावत् करता हुआ विचरने लगा।

उस काल और उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि पधारे। धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, आदि वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन के समान ही उनका यहां समझना चाहिए। विशेष यह कि भगवान् अरिष्टनेमि दस धनुष ऊंचे थे, नील कमल, भैंस के सींग, गुलिका और अलसी के फूलके समान श्याम कान्ति वाले थे। अठारह हजार साधुओं से परिवृत थे और चालीस हजार साध्वियां से परिवृत थे। वे भगवान् अरिष्टनेमि अनुक्रम से विहार करते हुए यावत् जहां द्वारिका नगरी थी, जहां गिरनार पर्वत था, जहां नन्दनवन नामक

उद्यान था, और जहां अशोक वृक्ष था, वहीं पधारे। पधार कर यथोचित अव-ग्रह को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। नगरी से परिषद् निकली। भगवान् ने उसे धर्मोपदेश दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने यह कथा (वृत्तान्त) सुनकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही सुधर्मा सभा में जाकर मेघों के समूह जैसे शब्द वाली, गंभीर तथा मधुर शब्द वाली कौमुदी नामक भेरी बजाओ।' तब वे कौटुम्बिक पुरुष, कृष्ण वासुदेव द्वारा आज्ञा देने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। यावत् मस्तक पर अंजलि करके 'इस प्रकार हे स्वामिन्! बहुत अच्छा' ऐसा कह कर उन्होंने अंगीकार की। अंगीकार करके कृष्ण वासुदेव के पास से निकले। निकल कर जहां सुधर्मा सभा थी और जहां कौमुदी नामक भेरी थी, वहां आए। आकर मेघसमूह के समान शब्द वाली, गंभीर एवं मधुर ध्वनि वाली भेरी बजाई।

उस समय स्निग्ध, मधुर और गंभीर प्रतिध्वनि करता हुआ, शरद्ऋतु के मेघ के समान भेरी का शब्द हुआ। तत्पश्चात् उस कौमुदी भेरी के ताड़न करने पर नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरी के शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, कंदरा, गुफा, विवर, कुहर, गिरिशिखर, नगर के गोपुर, प्रासाद, द्वार, भवन, देवकुल—आदि समस्त स्थानों में लाखों प्रतिध्वनियों से युक्त, भीतर और बाहर के विभागों सहित द्वारिका नगरी को शब्दायमान करता हुआ चारों ओर वह शब्द फैल गया।

तत्पश्चात् नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरी में समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् अनेक सार्थवाह उस कौमुदी भेरी का शब्द सुन कर एवं हृदय में धारण करके हृष्ट—तुष्ट हुए। यावत् सब ने स्नान किया। लम्बी लटकने वाली फूलमालाओं के समूह को धारण किया। कोरे—नवीन वस्त्रों को धारण किया। शरीर पर चन्दन का लेप किया। कोई अश्व पर आरूढ़ हुए, इसी प्रकार कोई गज पर आरूढ़ हुए, कोई रथ पर, कोई पालकी में और कोई म्याने में बैठे। कोई—कोई पैदल ही पुरुषों के समूह के साथ चले और कृष्ण वासुदेव के पास प्रकट हुए—आए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने समुद्रविजय आदि दसारों को तथा पूर्ववर्णित अन्य सब को यावत् निकट प्रकट हुआ देखा। देख कर वे हृष्ट—तुष्ट हुए, यावत् उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना सजाओ और विजय नामक गंधहस्ती को उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने 'बहुत अच्छा' कह कर विजय गंधहस्ती को उपस्थित किया। यावत् कृष्ण वासुदेव सब के साथ भगवान् अरिष्टनेमि

को वन्दना करने गए। वन्दना नमस्कार करके भगवान् की उपासना करने लगे ॥६०॥

मेघकुमारकी तरह थावच्चापुत्र भी भगवान्को वन्दना करने के लिए निकला। उसी प्रकार धर्मको श्रवण करके और हृदयमें धारण करके जहां थावच्चा गाथा-पत्नी थी, वहां आया। आकर माताके पैरों को ग्रहण किया-चरण स्पर्श किया। जैसे मेघकुमार ने अपने वैराग्य का निवेदन किया, उसी प्रकार थावच्चापुत्रकी भी वैराग्य निवेदना समझ लेनी चाहिए। माता जब विषयोंके अनुकूल और विषयोंके प्रतिकूल बहुत-सी आघवणा-सामान्य कथन से, पन्नवणा-विशेष कथनसे, सन्नवणा धन-वैभव आदि का लालच दिखला कर, विन्नवणा-आजीजी करके, सामान्य कहने, विशेष कहने, ललचाने और मनाने में समर्थ न हुई, तब इच्छा न होने पर भी माताने थावच्चापुत्र बालकका निष्क्रमण स्वीकार किया। विशेष यह कहा कि—'मैं तुम्हारा दीक्षा—महोत्सव देखूं।' तब थावच्चापुत्र मौन रह गया, अर्थात् उसने माताकी बात मान ली।

तत्पश्चात् वह थावच्चा सार्थवाही आसन से उठी। उठ कर महान् अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य तथा राजा के योग्य भेंट ग्रहण की। ग्रहण करके मित्र ज्ञाति आदिसे परिवृत होकर जहां कृष्ण वासुदेवके श्रेष्ठ भवनका मुख्य द्वार का देशभाग था, वहां आई। आकर प्रतिहार द्वारा दिखलाये मार्गसे जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर कृष्ण वासुदेवको बधाई दी। बधाई देकर वह महा अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषोंके योग्य और राजाके योग्य भेंट सामने रक्खी। सामने रख कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मेरा थावच्चापुत्र नामक एक ही पुत्र है। वह मुझे इष्ट है, यावत् वह संसार के भय से उद्विग्न होकर अरिहन्त अरिष्टनेमिके समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूं। अतएव हे देवानुप्रिय! प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले थावच्चापुत्रके लिए आप छत्र मुकुट और चामर प्रदान करें, यह मेरी अभिलाषा है। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वस्त रहो। मैं स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का दीक्षासत्कार करूंगा। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव चतुरङ्गिणी सेनाके साथ विजय नामक उत्तम हाथी पर आरूढ़ होकर जहां थावच्चा सार्थवाही का भवन था वहां आए। आकर थावच्चापुत्रसे इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय! तुम मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो। मेरी भुजाओं की छायाके नीचे रह कर मनुष्य-संबंधी विपुल कामभोगों को भोगो। मैं केवल

देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर जाने वाले वायुकायको रोकने में समर्थ नहीं हूं। इसके सिवाय देवानुप्रिय को (तुम्हें) जो कोई भी सामान्य पीड़ा या विशेष पीड़ा उत्पन्न होगी, उस सब का निवारण करूंगा।'

तब कृष्ण वासुदेवके इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्रने कृष्ण वासुदेवसे इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय ! यदि तुम मेरे जीवनका अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक दो और शरीर पर आक्रमण करने वाली एवं शरीरके रूपका विनाश करने वाली जरा को रोक दो, तो मैं तुम्हारी भुजाओं की छायाके नीचे रह कर मनुष्य-संबंधी विपुल कामभोग भोगता हुआ विचरूं।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय ! मरण और जरा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता। हां, अपने कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है। कृष्ण वासुदेवके कथनके उत्तरमें थावच्चापुत्र ने कहा—तो हे देवानुप्रिय ! इसी कारण मैं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति और कषायसे संचित, आत्माके कर्मों का क्षय करना चाहता हूं।

थावच्चापुत्रके द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और द्वारिका नगरीके शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि स्थानों में, यावत् श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ होकर ऊंची-ऊंची ध्वनिसे उद्घोष करते, उद्घोष करते ऐसी उद्घोषणा करो–इस प्रकार हे देवानुप्रियो ! संसार के भय से उद्विग्न और जन्म–मरण से भयभीत थावच्चापुत्र अर्हन्त अरिष्टनेमिके निकट मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता है। तो देवानुप्रियो ! जो राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडंबिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति अथवा सार्थवाह दीक्षित होते हुए थावच्चापुत्रके साथ दीक्षा ग्रहण करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव अनुज्ञा देते हैं और पीछे रहे हुए उसके मित्र, ज्ञाति, निजक, संबंधी या परिवारमें कोई भी दुखी होगा तो उसके वर्त्तमान काल संबंधी योग (अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त पदार्थका रक्षण) का निर्वाह करेंगे। इस प्रकारकी घोषणा करो।' यावत् कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार की घोषणा कर दी।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र पर अनुराग होनेके कारण एक हजार पुरुष निष्क्रमणके लिए तैयार हुए। वे स्नान करके, सब अलंकारोंसे विभूषित होकर प्रत्येक प्रत्येक—अलग-अलग—हजार पुरुषों द्वारा वहनकी जाने वाली पालकियों पर सवार होकर मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदिसे परिवृत होकर थावच्चापुत्रके समीप

आये। तब कृष्ण वासुदेवने एक हजार पुरुषोंको आया हुआ देखा। देखकर कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—(देवानुप्रियो! जाओ, थावच्चापुत्रको स्नान कराओ, अलंकारोंसे विभूषित करो और पुरुष-सहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ़ करो इत्यादि) जैसा मेघकुमारके दीक्षाभिषेक का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। फिर श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोनेके कलशोंसे उसे स्नान कराया, यावत् सर्व अलंकारोंसे विभूषित किया।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र उन हजार पुरुषोंके साथ शिविका पर आरूढ़ होकर यावत् वाद्योंकी ध्वनिके साथ द्वारिका नगरीके बीचोंबीच होकर जहां अरिहन्त अरिष्टनेमिके छत्र पर छत्र और पताका पर पताका (आदि अतिशय) देखता है और देखकर विद्याधर एवं चारण मुनियों वगैरहको देखता है वहीं शिविकासे उतर जाता है। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्रको आगे करके जहां अरिहन्त अरिष्टनेमि थे, वहां आये। इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् थावच्चापुत्रने ईशान दिशामें जाकर आभरण पुष्पमाला और अलंकारोंका परित्याग किया।

तत्पश्चात् थावच्चा सार्थवाहीने हंसके चिन्ह वाले वस्त्रमें आभरण, माला और अलंकारोंको ग्रहण किया। ग्रहण करके मोतियोंके हार, जलकी धार, सिन्दुवारके फूलों तथा छिन्न हुई मोतियोंकी श्रेणीके समान आंसू त्यागती हुई इस प्रकार कहने लगी—'हे पुत्र! इस प्रव्रज्याके विषयमें यत्न करना, पुत्र! शुद्ध क्रिया करनेमें घटना करना और पुत्र! चारित्र का पालन करनेमें पराक्रम करना। इस अर्थमें तनिक भी प्रमाद न करना। इस प्रकार कह कर वह जिस दिशासे आई थी उसी दिशामें लौट गई। तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने हजार पुरुषोंके साथ स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार की। उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार हो गया। ईर्यासमितिसे युक्त, भाषासमितिसे युक्त होकर यावत् विचरने लगा।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने अरिहन्त अरिष्टनेमिके तथारूप स्थविरोंके पाससे सामायिकसे आरम्भ करके चौदह पूर्वोका अध्ययन किया। अध्ययन करके वे बहुत से अष्टमभक्त षष्ठभक्त यावत् चतुर्थभक्त (उपवास) आदि करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमिने थावच्चापुत्र अनगारको वह इभ्य आदि एक हजार अनगार शिष्यके रूपमें प्रदान किये। तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने अन्यदा कदाचित् अरिहन्त अरिष्टनेमिको वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं हजार साधुओंके साथ जनपदमें विहार करना चाहता हूं।' भगवान् ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र एक हजार

देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर जाने वाले वायुकायको रोकने में समर्थ नहीं हूं। इसके सिवाय देवानुप्रिय को (तुम्हें) जो कोई भी सामान्य पीड़ा या विशेप पीड़ा उत्पन्न होगी, उस सब का निवारण करूंगा।'

तब कृष्ण वासुदेवके इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्रने कृष्ण वासुदेवसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! यदि तुम मेरे जीवनका अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक दो और शरीर पर आक्रमण करने वाली एवं शरीरके रूपका विनाश करने वाली जरा को रोक दो, तो मैं तुम्हारी भुजाओं की छायाके नीचे रह कर मनुष्य-संबंधी विपुल कामभोग भोगता हुआ विचरूं।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय ! मरण और जरा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता। हां, अपने कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है। कृष्ण वासुदेवके कथनके उत्तरमें थावच्चापुत्र ने कहा—तो हे देवानुप्रिय ! इसी कारण मैं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति और कषायसे संचित, आत्माके कर्मों का क्षय करना चाहता हूं।

थावच्चापुत्रके द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और द्वारिका नगरीके शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि स्थानों में, यावत् श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ होकर ऊंची-ऊंची ध्वनिसे उद्घोष करते, उद्घोष करते ऐसी उद्घोषणा करो—इस प्रकार हे देवानुप्रियो ! संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भयभीत थावच्चापुत्र अर्हन्त अरिष्टनेमिके निकट मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता है। तो देवानुप्रियो ! जो राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडंबिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति अथवा सार्थवाह दीक्षित होते हुए थावच्चापुत्रके साथ दीक्षा ग्रहण करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव अनुज्ञा देते हैं और पीछे रहे हुए उसके मित्र, ज्ञाति, निजक, संबंधी या परिवारमें कोई भी दुखी होगा तो उसके वर्त्तमान काल संबंधी योग (अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त पदार्थका रक्षण) का निर्वाह करेंगे। इस प्रकारकी घोषणा करो।' यावत् कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार की घोषणा कर दी।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र पर अनुराग होनेके कारण एक हजार पुरुष निष्क्रमणके लिए तैयार हुए। वे स्नान करके, सब अलंकारोंसे विभूषित होकर प्रत्येक प्रत्येक—अलग-अलग—हजार पुरुषों द्वारा वहनकी जाने वाली पालकियों पर सवार होकर मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदिसे परिवृत होकर थावच्चापुत्रके समीप

आये। तब कृष्ण वासुदेवने एक हजार पुरुषोंको आया हुआ देखा। देखकर कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—(देवानुप्रियो! जाओ, थावच्चापुत्रको स्नान कराओ, अलंकारोंसे विभूषित करो और पुरुष-सहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ़ करो इत्यादि) जैसा मेघकुमारके दीक्षाभिषेक का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। फिर श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोनेके कलशोंसे उसे स्नान कराया, यावत् सर्व अलंकारोंसे विभूषित किया।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र उन हजार पुरुषोंके साथ शिविका पर आरूढ़ होकर यावत् वाद्योंकी ध्वनिके साथ द्वारिका नगरीके बीचोंबीच होकर जहां अरिहन्त अरिष्टनेमिके छत्र पर छत्र और पताका पर पताका (आदि अतिशय) देखता है और देखकर विद्याधर एवं चारण मुनियों वगैरहको देखता है वहीं शिविकासे उतर जाता है। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्रको आगे करके जहां अरिहन्त अरिष्टनेमि थे, वहां आये। इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् थावच्चापुत्रने ईशान दिशामें जाकर आभरण पुष्पमाला और अलंकारोंका परित्याग किया।

तत्पश्चात् थावच्चा सार्थवाहीने हंसके चिन्ह वाले वस्त्रमें आभरण, माला और अलंकारोंको ग्रहण किया। ग्रहण करके मोतियोंके हार, जलकी धार, सिन्दुवारके फूलों तथा छिन्न हुई मोतियोंकी श्रेणीके समान आंसू त्यागती हुई इस प्रकार कहने लगी—'हे पुत्र! इस प्रव्रज्याके विषयमें यत्न करना, पुत्र! शुद्ध क्रिया करनेमें घटना करना और पुत्र! चारित्र का पालन करनेमें पराक्रम करना। इस अर्थमें तनिक भी प्रमाद न करना। इस प्रकार कह कर वह जिस दिशासे आई थी उसी दिशामें लौट गई। तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने हजार पुरुषोंके साथ स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार की। उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार हो गया। ईर्यासमितिसे युक्त, भाषासमितिसे युक्त होकर यावत् विचरने लगा।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने अरिहन्त अरिष्टनेमिके तथारूप स्थविरोंके पाससे सामायिकसे आरम्भ करके चौदह पूर्वोंका अध्ययन किया। अध्ययन करके वे बहुत से अष्टमभक्त षष्ठभक्त यावत् चतुर्थभक्त (उपवास) आदि करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमिने थावच्चापुत्र अनगारको वह इभ्य आदि एक हजार अनगार शिष्यके रूपमें प्रदान किये। तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने अन्यदा कदाचित् अरिहन्त अरिष्टनेमिको वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं हजार साधुओंके साथ जनपदमें विहार करना चाहता हूं।' भगवान् ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र एक हजार

अनगारोंके साथ उस प्रधान, तीव्र, प्रयत्न वाले-प्रमादरहित और बहुमानपूर्वक ग्रहण किये हुए चारित्र एवं तपसे युक्त होकर बाहर जनपद (देश) में विचरण करने लगे ।।६१।।

उस काल और उस समय में शैलकपुर नामक नगर था। सुभूमिभाग नामक उद्यान था। शैलक वहां का राजा था। पद्मावती रानी थी। उनका मंडुक नामक कुमार था। वह युवराज था। उस शैलक राजाके पंथक आदि पांच सौ मंत्री थे। वे औत्पत्तिकी, वैनयिकी, पारिणामिकी और कार्मिकी—इस प्रकार चार तरह की बुद्धिसे सम्पन्न थे और राज्यकी धुराके चिन्तक भी थे। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार हजार मुनियोंके साथ जहां शैलकपुर था, और जहां सुभूमिभाग नामक उद्यान था वहां पधारे। शैलक राजा भी उन्हें वन्दना करने के लिए निकला। थावच्चापुत्रने धर्मका उपदेश किया।

धर्म सुनकर शैलक राजाने कहा—जैसे देवानुप्रिय के समीप बहुतसे उग्रकुलके, भोगकुलके तथा अन्य कुलोंके पुरुषोंने हिरण्य-सुवर्ण आदि का त्याग करके दीक्षा अंगीकार की है, उस प्रकार मैं दीक्षित होनेमें समर्थ नहीं हूं। अतएव मैं देवानुप्रियके पास से पांच अणुव्रतोंको, सात शिक्षाव्रतोंको यावत् धारण करके श्रावक बनना चाहता हूं। यावत् राजा श्रमणोपासक यावत् जीवअजीवका ज्ञाता हो गया, यावत् अपनी आत्माको भावित करता हुआ विचरने लगा। इसी प्रकार पंथक आदि पांच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक हो गये। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार वहांसे विहार करके जनपदमें विचरण करने लगे। उस काल और उस समय सौगंधिका नामक नगरी थी उसका वर्णन समझ लेना चाहिए। उस नगरीके बाहर नीलाशोक नामक उद्यान था। उसका भी वर्णन कह लेना चाहिए। उस सौगंधिका नगरीमें सुदर्शन नामक नगरश्रेष्ठी निवास करता था। वह समृद्धिशाली था, यावत् किसी से पराभूत नहीं हो सकता था।

उस काल और उस समयमें शुक नामक एक परिव्राजक था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद तथा षष्ठितंत्र (सांख्यशास्त्र) में कुशल था। सांख्य मतके शास्त्रोंमें कुशल था। पांच यमों और पांच नियमोंसे युक्त दस प्रकारके शौचमूलक परिव्राजक धर्मका, दानधर्मका, शौचधर्मका और तीर्थस्नानका उपदेश और प्ररूपणा करता था। गेरूसे रंगे हुए श्रेष्ठ वस्त्रोंको धारण करता था। त्रिदंड, अंकुश (वृक्षके पत्ते तोड़नेका एक उपकरण), कुण्डिका-कमंडलु, मयूरपिच्छ का छत्र, छन्नालिक (काष्ठ का एक उपकरण), पवित्री (ताम्र धातुकी बनी अंगूठी) और केसरी (प्रमार्जन करनेका वस्त्रखण्ड), यह सात उपकरण उसके हाथमें रहते थे। एक हजार परिव्राजकोंसे परिवृत वह शुक परिव्राजक जहां सौगंधिका नगरी थी और जहां परिव्राजकोंका आवसथ

(मठ) था, वहां आया। आकर परिव्राजकोंके उस मठमें उसने अपने उपकरण रक्खे और सांख्यमतके अनुसार अपनी आत्माको भावित करता हुआ विचरने लगा।

तब उस सौगंधिका नगरीके शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि स्थानोंमें अनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर ऐसा कहने लगे–'इस प्रकार निश्चय ही शुक परिव्राजक यहां आये हैं यावत् आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं।' पर्षदा निकली। सुदर्शन भी निकला। तत्पश्चात् शुक परिव्राजकने उस परिषद्को, सुदर्शन को तथा अन्य बहुतसे श्रोताओंको सांख्यमतका उपदेश दिया। यथा–हे सुदर्शन! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है, वह शौच दो प्रकार का है–द्रव्यशौच और भावशौच। द्रव्यशौच जलसे और मिट्टीसे होता है। भाव-शौच दर्भसे और मंत्रसे होता है। हे देवानुप्रिय! हमारे यहां जो कोई वस्तु अशुचि होती है, वह सब तत्काल पृथ्वी (मिट्टी) से मांज दी जाती है और फिर शुद्ध जलसे धो ली जाती है। तब अशुचि शुचि हो जाती है। इसी प्रकार निश्चय ही जीव जलस्नानसे अपनी आत्माको पवित्र करके बिना विघ्नके स्वर्ग प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् सुदर्शन, शुक परिव्राजकके समीप धर्मको श्रवण करके हर्षित हुआ। उसने शुकसे शौचमूलक धर्मको ग्रहण किया। ग्रहण करके परिव्राजकोंको विपुल अशन पान खादिम स्वादिम और वस्त्रसे प्रतिलाभित करता हुआ अर्थात् अशन आदि दान करता हुआ विचरने लगा। तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक सौगंधिका नगरीसे बाहर निकला। निकलकर जनपद-विहारसे विचरने लगा।

उस काल और उस समयमें थावच्चापुत्र नामक अनगार एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम में से विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए और सुख पूर्वक विचरते हुए जहां सौगंधिका नामक नगरी थी और जहां नीलाशोक नामक उद्यान था, वहां पधारे। थावच्चापुत्र अनगार का आगमन जानकर परिषद् निकली। सुदर्शन भी निकला। उसने थावच्चापुत्र अनगार को दक्षिण तरफ से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके वह इस प्रकार बोला—आपके धर्म का मूल क्या कहा गया है?

तब सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन! धर्म विनयमूलक कहा गया है। वह विनय (चारित्र) भी दो प्रकार का कहा है—अगारविनय अर्थात् गृहस्थ का चारित्र और अनगारविनय अर्थात् मुनि का चारित्र। इनमें जो अगारविनय है, वह पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमा रूप है। जो अनगारविनय है, वह पांच महाव्रत रूप है, यथा—समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण,

समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त मैथुन से विरमण, समस्त परिग्रह से विरमण, इसके अतिरिक्त समस्त रात्रिभोजन से विरमण, यावत् समस्त मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण, दस प्रकार का प्रत्याख्यान और बारह भिक्षुप्रतिमाएं। इस प्रकार दो तरह के विनयमूलक धर्म से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों को क्षय करके जीव लोक के अग्रभाग में—मोक्ष में प्रतिष्ठित होते हैं।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा—सुदर्शन! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है? (सुदर्शन ने उत्तर दिया—)देवानुप्रिय! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है। इस धर्म से यावत् जीव स्वर्ग में जाते हैं। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन! जैसे कुछ भी नाम वाला कोई पुरुष एक बड़े रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोए, तो सुदर्शन! उस रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि होगी?

(सुदर्शन ने कहा)—यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार हे सुदर्शन! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य से शुद्धि नहीं हो सकती, जैसे उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की शुद्धि नहीं होती। सुदर्शन! जैसे यथानामक (कुछ भी नामवाला) कोई पुरुष एक बड़े रुधिरलिप्त वस्त्र को सज्जी के खार के पानी में भिगावे, फिर पाकस्थान (चूल्हे) पर चढ़ावे, चढ़ाकर उष्णता ग्रहण करावे (उबाले) और फिर स्वच्छ जलसे धोवे, तो निश्चय ही सुदर्शन! वह रुधिरसे लिप्त वस्त्र, सज्जी-खार के पानी में भीग कर, चूल्हे पर चढ़ कर, उबल कर और शुद्ध जल से प्रक्षालित होकर शुद्ध हो जाता है?

(सुदर्शन कहता है—) 'हां, हो जाता है।' इसी प्रकार हे सुदर्शन! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात विरमण से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के विरमण से शुद्धि होती है, जैसे उस रुधिर लिप्त वस्त्र की यावत् शुद्ध जल से धोये जाने पर शुद्धि होती है। तत्पश्चात् सुदर्शन प्रतिबोध को प्राप्त हुआ। उसने थावच्चा-पुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं धर्म को सुनकर जानना अंगीकार करना चाहता हूं।' यावत् वह श्रमणोपासक हो गया, जीवाजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् निर्ग्रन्थ श्रमणों को आहार आदि का दान करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक को इस कथा का अर्थ अर्थात् समाचार जान कर इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—सुदर्शन ने शौच धर्म का परित्याग करके विनयमूल धर्म अंगीकार किया है। अतएव सुदर्शन की दृष्टि श्रद्धा का

वमन (त्याग) कराना और पुनः शौचमूलक धर्म का उपदेश करना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके एक हजार परिव्राजकों के साथ जहां सौगन्धिका नगरी थी और जहां परिव्राजकों का मठ था, वहां आया। आकर उसने परिव्राजकों के मठ में उपकरण रक्खे। रख कर गेरू से रंगे वस्त्र धारण किये हुए वह थोड़े से परिव्राजकों के साथ घिरा हुआ परिव्राजक-मठ से निकला। निकल कर सौगंधिका नगरी के मध्यभाग में होकर जहां सुदर्शन का घर था और जहां सुदर्शन था, वहां आया।

तत्पश्चात् उस सुदर्शन ने शुक को आता देखा। देखकर वह खड़ा नहीं हुआ, सामने नहीं गया, उसका आदर नहीं किया, उसे जाना नहीं, वन्दना नहीं की, किन्तु मौन बना रहा। तब उस परिव्राजक ने सुदर्शन को न खड़ा हुआ देख कर इस प्रकार कहा—सुदर्शन! पहले तुम मुझे आता देखकर खड़े होते थे, यावत् वन्दना करते थे, परन्तु सुदर्शन! अब तुम मुझे आता देखकर न खड़े हुए, यावत् न वन्दना की, तो सुदर्शन! किसके समीप तुमने विनयमूल धर्म अंगीकार किया है?

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर सुदर्शन आसन से उठ कर खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़े और शुक परिव्राजक से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! अरिहंत अरिष्टनेमि के अंतेवासी थावच्चापुत्र नामक अनगार यावत् यहां आये हैं और यहीं नीलाशोक उद्यानमें विचर रहे हैं। उनके पाससे मैंने विनय-मूल धर्म अंगीकार किया है।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—सुदर्शन चलें, हम तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के समीप प्रकट हों—चलें और इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को तथा व्याकरणों को पूछें। अगर वे मेरे इन अर्थों आदि का उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वन्दना करूंगा, नमस्कार करूंगा। और यदि वे मेरे इन अर्थों यावत् व्याकरणों को नहीं कहेंगे—इनका उत्तर नहीं देंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों तथा हेतुओं आदि से निरुत्तर कर दूंगा।

तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक, एक हजार परिव्राजकों के और सुदर्शन सेठ के साथ जहां नीलाशोक उद्यान था, और जहां थावच्चापुत्र अनगार थे, वहां आया। आकर थावच्चापुत्र से कहने लगा—'भगवन्! तुम्हारी यात्रा चल रही है? यापनीय है? तुम्हारे अव्याबाध है? और तुम्हारा प्रासुक विहार हो रहा है?' तब थावच्चापुत्र ने शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर शुक से कहा—हे शुक! मेरी यात्रा भी हो रही है, यापनीय भी वर्त्त रहा है, अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी हो रहा है।

तत्पश्चात् शुक ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—' भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?' (थावच्चापुत्र—) हे शुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि योगों से षट्काय के जीवों की यतना करना हमारी यात्रा है। शुक—'भगवन् ! यापनीय क्या है ?' थावच्चापुत्र—शुक ! यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिययापनीय।

'इन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?' 'शुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय बिना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती हैं, वही हमारा इन्द्रिययापनीय है।' ' नोइन्द्रिययापनीय क्या है ?' 'हे शुक ! क्रोध मान माया लोभ रूप कषाय क्षीण हो गये हों, उपशांत हो गये हों, उदय में न आ रहे हों, वही हमारा नोइन्द्रिययापनीय कहलाता है।' शुक ने कहा—'भगवन् ! अव्याबाध क्या है ?' 'हे शुक ! जो वात पित्त कफ और सन्निपात (दो अथवा तीन का मिश्रण) आदि सम्बन्धी विविध प्रकार के रोग (उपायसाध्य व्याधि) और आतंक(तत्काल प्राणनाशक व्याधि) उदय में न आवें, वह हमारा अव्याबाध है।'

'भगवन्' ! प्रासुक विहार क्या है ?' 'हे शुक ! हम जो आराम में, उद्यान में, देवकुल में, सभा में, प्याऊ में तथा स्त्री पशु और नपुंसक से रहित उपाश्रय में पडिहारी (वापिस लौटा देने योग्य) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि ग्रहण करके विचरते हैं, सो वह हमारा प्रासुक विहार है।' शुक परिव्राजक ने प्रश्न किया—'भगवन् ! आपके लिये 'सरिसवया' भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं ?'

थावच्चापुत्र ने उत्तर दिया—'हे शुक ! 'सरिसवया' हमारे लिए भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।' शुक ने पुनः प्रश्न किया—'भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हो कि 'सरिसवया' भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ?' थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—हे शुक ! सरिसवया दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—मित्र-सरिसवया और धान्यसरिसवया (सरसों)। इनमें जो मित्रसरिसवया हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार—(१) साथ जन्मे हुए, (२) साथ बढ़े हुए और (३) साथ-साथ धूल में खेले हुए। ये तीनों प्रकार के मित्रसरिसवया श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

उनमें जो धान्यसरिसवया(सरसों) हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार-शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमें जो अशस्त्रपरिणत हैं अर्थात् जिनको अचित्त करने के लिए अग्नि आदि शस्त्रोंका प्रयोग नहीं किया गया है, अतएव जो अचित्त नहीं हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। उनमें जो शस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार—प्रासुक और अप्रासुक। हे शुक ! अप्रासुक भक्ष्य नहीं हैं। उनमें जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के कहे हैं। वह इस प्रकार—याचित

(याचना किये हुए) और अयाचित (नहीं याचना किये हुए)। उनमें जो अयाचित हैं, वे अभक्ष्य हैं। उनमें जो याचित हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार-एपणीय और अनेषणीय। उनमें जो अनेपणीय हैं वे अभक्ष्य हैं। जो एपणीय हैं, वे दो प्रकार के कहे हैं। वह इस प्रकार-लब्ध (प्राप्त) और अलब्ध (अप्राप्त)। उनमें जो अलब्ध हैं, वे अभक्ष्य हैं। जो लब्ध हैं वे निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं। हे शुक! इस अभिप्राय से कहा है कि सरिसवया भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।'

इसी प्रकार 'कुलत्था' भी कहना चाहिए, अर्थात् जैसे सरिसवया के संबंध में प्रश्न और उत्तर ऊपर कहे हैं, वैसे ही कुलत्थाके विपयमें कहने चाहिएं। विशेषता इस प्रकार है—कुलत्थाके दो भेद हैं—स्त्रीकुलत्था (कुलमें स्थित महिला) और धान्यकुलत्था अर्थात् कुलत्थ नामक धान्य। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की है, वह इस प्रकार-कुलवधू, कुलमाता और कुलपुत्री। ये अभक्ष्य हैं। धान्य-कुलत्था भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं, इत्यादि सरिसवया के समान समझना चाहिए। मास संवंधी प्रश्नोत्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए, विशेपता इस प्रकार है—मास तीन प्रकार के कहे गये हैं। वह इस प्रकार–कालमास, अर्थमास और धान्यमास। इसमें से कालमास वारह प्रकार के कहे हैं। वे इस प्रकार–श्रावण यावत् आषाढ़, अर्थात् श्रावणमास से लगा कर आषाढ़ मास तक। वे सव अभक्ष्य हैं। अर्थमास अर्थात् अर्थरूप माशा दो प्रकार के कहे हैं–चांदी का माशा और सोनेका माशा। वे भी अभक्ष्य हैं। धान्यमास अर्थात् उड़द भक्ष्य भी हैं इत्यादि सरिसवया के समान कहना चाहिए।

शुक परिव्राजकने पुनः प्रश्न किया–'आप एक हैं? आप दो हैं? आप अनेक हैं? आप अक्षय हैं? आप अव्यय हैं? आप अवस्थित हैं? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं?' (यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थाव–च्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकताका प्रतिपादन करके एकता का खंडन करूंगा। अगर वे आत्माका द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम् मैं' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीतिसे विरोध वतलाऊंगा। इसी प्रकार आत्माकी नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यताका प्रतिपादन करके खंडन करूंगा। यदि अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूंगा। मगर परिव्राजकके अभिप्रायको असफल वनाते हुए, अनेकान्तवादका आश्रय लेकर थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं–)

हे शुक! मैं द्रव्यकी अपेक्षा से एक हूं क्योंकि जीवद्रव्य एक ही है। (यहां द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्यायकी अपेक्षा अनेकत्व माननेमें विरोध नहीं रहा।) ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षासे मैं दो भी हूं। प्रदेशोंकी अपेक्षासे मैं अक्षय

भी हूं, अव्यय भी हूं, अवस्थित भी हूं। (क्योंकि आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं होता, थोड़े से प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसका असंख्यातप्रदेशीपन सदैव अवस्थित—नित्य रहता है।) और उपयोगकी अपेक्षासे अनेक भूत (अतीतकालीन), भाव (वर्त्तमानकालीन) और भावी (भविष्यत्कालीन) भी हूं, अर्थात् अनित्य भी हूं। तात्पर्य यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मासे कथंचित् अभिन्न है। और वह भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्कालीन विषयों को जानता है और सदैव पलटता रहता है। इस प्रकार उपयोग अनित्य होनेसे आत्मा भी कथंचित् अनित्य है।

थावच्चापुत्र के उत्तर से उस शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपके पास से केवली प्ररूपित धर्म सुनने की अभिलाषा करता हूं।' यहां धर्मकथा कहनी चाहिए। तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्म सुन कर और उसे हृदय में धारण करके इस प्रकार बोला—'भगवन् ! मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ देवानुप्रिय के निकट, मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूं।'

थावच्चापुत्र अनगार बोले—'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो।' यह सुनकर यावत् उत्तरपूर्व दिशामें जाकर शुक परिव्राजक ने त्रिदंड यावत् गेरू से रंगे वस्त्र एकान्त में उतार डाले। अपने ही हाथ से शिखा उखाड़ ली। उखाड़ कर जहां थावच्चापुत्र अनगार थे वहां आया। मुंडित होकर यावत् दीक्षित हो गया। फिर सामायिकसे आरंभ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् थावच्चापुत्रने शुकको एक हजार अनगार शिष्य के रूपमें प्रदान किये।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार सौगंधिका नगरी से और नीलाशोक उद्यान से निकले। निकलकर जनपदविहार अर्थात् विभिन्न देशोंमें विचरण करने लगे। तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र (अपना अन्तिम समय सन्निकट समझ कर) हजार साधुओं के साथ जहां पुण्डरीक—शत्रुंजयपर्वत था, वहां आये। आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर उन्होंने मेघघटाके समान श्याम और जहां देवों का आगमन होता था, ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक पर आरूढ़ होकर यावत् पादपोपगमन अनशन ग्रहण किया।

तत्पश्चात् वे थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पाल कर, एक मास की संलेखना करके, साठ भक्तों का अनशन करके यावत् केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न करके तत्पश्चात् सिद्ध हुए, यावत् सर्व दुःखोंसे मुक्त हुए ॥६२॥

तत्पश्चात् शुक अनगार किसी समय जहां शैलकपुर नगर था और जहां सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहां पधारे। उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद्

निकली। शैलक राजा भी निकला। धर्म सुन कर उसे प्रतिबोध प्राप्त हुआ। विशेष यह कि राजा ने निवेदन किया—'हे देवानुप्रिय! मैं पंथक आदि पांच सौ मंत्रियों से पूछ लूं—उनकी अनुमति ले लूं, और मंडुक कुमार को राज्य पर स्थापित,कर दूं। उसके पश्चात् आप देवानुप्रिय के समीप मुंडित होकर गृहवास से निकल कर अनगारदीक्षा अंगीकार करूंगा।' यह सुन कर शुक अनगार ने कहा—'जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

तत्पश्चात् शैलक राजा ने शैलकपुर नगरमें प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां अपना घर था और जहां वाहर की उपस्थानशाला (राजसभा) थी, वहां आया। आकर सिंहासन पर बैठा।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पांच सौ मंत्रियों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! मैंने शुक अनगार से धर्म सुना है और उस धर्म की मैंने इच्छा की है। वह धर्म मुझे रुचा है। अतएव हे देवानुप्रियो! मैं संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा ग्रहण कर रहा हूं। देवानुप्रियो! तुम क्या करोगे? कहां रहोगे? तुम्हारा हित और इच्छित क्या है?

तत्पश्चात् वे पंथक आदि मंत्री शैलक राजा से इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय! यदि आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् प्रव्रजित होना चाहते हैं, तो देवानुप्रिय! हमारा दूसरा आधार कौन है? हमारा आलंबन कौन है? अतएव देवानुप्रिय! हम भी संसार के भय से उद्विग्न होकर दीक्षा अंगीकार करेंगे। देवानुप्रिय! जैसे हम यहां गृहस्थावस्था में वहुत—से कार्यो में तथा कारणों में यावत् आपके मार्गदर्शक हैं, उसी प्रकार दीक्षित होकर भी आपके वहुत—से कार्य—कारणों में यावत् चक्षुभूत (मार्ग प्रदर्शक) होंगे।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक प्रभृति पांच सौ मंत्रियों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो,यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो देवानुप्रियो! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों में अपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों को कुटुम्ब के मध्य में स्थापित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रकट होओ।' यह सुन कर पांच सौ मंत्री गये, राजा के आदेशानुसार कार्य करके शिविकाओं पर आरूढ़ होकर राजा के पास प्रकट हुए-आये।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पांच सौ मंत्रियों को अपने पास आया देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही मंडुक कुमार के महान् अर्थ वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया। शैलक राजा ने राज्याभिषेक किया। मंडुक राजा हो गया, यावत् सुखपूर्वक विचरने लगा।

तत्पश्चात् शैलक ने मंडुक राजा से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। तब मंडुक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'शीघ्र ही शैलकपुर नगर को स्वच्छ और सिंचित करके सुगंध की वट्टी के समान करो और कराओ। ऐसा करके और कराकर यह आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।'

तत्पश्चात् मंडुक राजा ने दुबारा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'शीघ्र ही शैलक महाराजा के महान् अर्थ वाले (बहुव्यय-साध्य) यावत् दीक्षाभिषेक की तैयारी करो।' जिस प्रकार मेघकुमार के अध्ययन में कहा था, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पद्मावती देवी ने शैलक के अग्रकेश ग्रहण किये। सभी दीक्षार्थी प्रतिग्रह—पात्र आदि ग्रहण करके शिविका पर आरूढ़ हुए। शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् राजर्षि शैलक ने दीक्षित होकर सामायिकसे आरंभ करके ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास आदि करते हुए यावत् विचरने लगे।

तत्पश्चात् शुक अनगार ने शैलक अनगार को पंथक प्रभृति पांच सौ अनगार शिष्य रूप में प्रदान किये। तत्पश्चात् शुक मुनि किसी समय शैलकपुर नगर से और सुभूमिभाग उद्यान से निकले। निकल कर बाहर जनपद विहार से विचरने लगे। तत्पश्चात् वे शुक अनगार एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना अन्तिम समय समीप आया जान कर पुंडरीक पर्वत पर पधारे यावत् सिद्ध हुए ॥६३॥

तत्पश्चात् प्रकृतिसे सुकुमार और सुखभोगके योग्य शैलक राजर्षिके शरीर में अन्त (चना आदि), प्रान्त (ठंडा या बचा-खुचा), तुच्छ (अल्प), रूक्ष (रूखा), अरस (हींग आदिके संस्कारसे रहित), विरस (स्वादहीन), ठंडा-गरम, कालातिक्रान्त (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) और प्रमाणातिक्रान्त (कम या ज्यादा) भोजन-पान नित्य मिलनेके कारण वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कट यावत् दुस्सह थी। उनका शरीर खुजली और दाह उत्पन्न करने वाले पित्तज्वरसे व्याप्त हो गया। तब वे शैलक राजर्षि उस रोगातंकसे शुष्क हो गये, अर्थात् उनका शरीर सूख गया।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि किसी समय अनुक्रमसे विचरते हुए यावत् जहां सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहां आकर विचरने लगे। उन्हें वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली। मंडुक राजा भी निकला। शैलक अनगारको सबने वंदन किया, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके उपासना की। उस समय मंडुक राजाने शैलक अनगारका शरीर शुष्क, निस्तेज यावत् सब प्रकार की पीड़ा वाला

और रोगयुक्त देखा। देखकर इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं आपकी साधुके योग्य चिकित्सकोंसे साधुके योग्य औषध और भेषजके द्वारा तथा भोजन-पान द्वारा चिकित्सा कराऊं। हे भगवन्! आप मेरी यानशालामें पधारिए और प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या तथा संस्तारक ग्रहण करके विचरिए।

तत्पश्चात् शैलक अनगारने मंडुक राजाके इस अर्थको (विज्ञप्ति को) 'ठीक है' ऐसा कहकर स्वीकार किया। तब मंडुक राजाने शैलकको वन्दना की, नमस्कार किया और वन्दना नमस्कार करके जिस दिशासे आया था उसी दिशा में लौट गया। तत्पश्चात् वे शैलक राजर्षि कल (दूसरे दिन) सूर्यके देदीप्यमान होने पर भंडमात्र (पात्र) और उपकरण लेकर पंथक प्रभृति पांच सौ मुनियोंके साथ शैलकपुरमें प्रविष्ट हुए। प्रवेश करके जहां मंडुक राजा की यानशाला थी, वहां आये। आकर प्रासुक पीठ फलक आदि ग्रहण करके विचरने लगे। तत्पश्चात् मंडुक राजाने चिकित्सकोंको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम शैलक राजर्षि की प्रासुक और एषणीय औषध आदिसे यावत् चिकित्सा करो। तब चिकित्सक मंडुक राजाके इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने साधुके योग्य औषध, भेषज एवं भोजन-पानसे चिकित्सा की। तत्पश्चात् साधुके योग्य औषध आदिसे शैलक राजर्षि का रोगातंक शान्त हो गया। वे हृष्टपुष्ट यावत् बलवान् शरीर वाले हो गए। उनके रोगातंक पूरी तरह दूर हो गये।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि उस रोगातंकके उपशान्त हो जाने पर उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें मूर्छित, मत्त, गृद्ध और अत्यन्त आसक्त हो गये। वे अवसन्न-आलसी अर्थात् आवश्यक आदि क्रिया सम्यक् प्रकारसे न करने वाले, अवसन्नविहारी अर्थात् लगातार बहुत दिनों तक आलस्यमय जीवन यापन करने वाले हो गये। इसी प्रकार पार्श्वस्थ (ज्ञान दर्शन चारित्र को एक किनारे रख देने वाले) तथा पार्श्वस्थविहारी अर्थात् बहुत समय तक ज्ञानादिको एक किनारे रख देने वाले, कुशील अर्थात् काल विनय आदि भेद वाले ज्ञान दर्शन और चारित्रके आचारोंके विराधक, बहुत समय तक इनके विराधक होनेके कारण कुशीलविहारी तथा प्रमत्त (पांच प्रकारके प्रमादसे युक्त), प्रमत्तविहारी, संसक्त (कदाचित् संविग्नके और कदाचित् पार्श्वस्थके गुणोंसे युक्त तथा तीन गौरव वाले) तथा संसक्तविहारी हो गये। शेष (वर्षाऋतुके सिवाय) कालमें भी शय्या-संस्तारक के लिएं पीठ-फलक रखने वाले प्रमादी हो गये। वे प्रासुक तथा एषणीय पीठ फलक आदि को वापिस देकर और मंडुक राजासे अनुमति लेकर बाहर यावत् जनपद-विहार करनेमें असमर्थ हो गए ॥६४॥

तत्पश्चात् पंथकको छोड़कर वे पांच सौ अनगार किसी समय इकट्ठे हुए। यावत् मध्य रात्रिके समय धर्मजागरणा करते हुए उन्हें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ

कि—'शैलक राजर्षि राज्य का त्याग करके यावत् दीक्षित हुए, किन्तु अब विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें मूर्च्छित हो गये हैं। वे जनपदविहार करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवानुप्रियो ! श्रमणोंको प्रमादी होकर रहना नहीं कल्पता है। अतएव देवानुप्रियो ! हमारे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल शैलक राजर्षिसे आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ फलक शय्या एवं संस्तारक वापिस सौंपकर पंथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित करके अर्थात् सेवामें नियुक्त करके बाहर जनपदमें अभ्युद्यत अर्थात् उद्यम सहित विचरण करें।' उन मुनियोंने ऐसा विचार किया। विचार करके कल अर्थात् दूसरे दिन शैलक राजर्षि के समीप जाकर उनकी आज्ञा लेकर प्रतिहारी पीठ फलक शय्या संस्तारक वापिस दे दिये। वापिस देकर पंथक अनगारको वैयावृत्यकारी नियुक्त किया—उनकी सेवामें रक्खा। रख कर बाहर यावत् विचरने लगे ॥६५॥

तत्पश्चात् वह पंथक अनगार शैलक राजर्षि की शय्या संस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म संघाण (नासिका-मल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार, पानी आदिसे बिना ग्लानि, विनयपूर्वक वैयावृत्य करने लगे। तत्पश्चात् किसी समय शैलक राजर्षि कार्तिकी चौमासी के दिन विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार करके सायंकालके समय आराम से सो रहे थे। उस समय पंथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके, दैवसिक प्रतिक्रमण करके, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से, शैलक राजर्षि को खमाने के लिए अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया। पंथक शिष्य के द्वारा मस्तक से चरणों का स्पर्श करने पर शैलक राजर्षि तत्काल रुष्ट हुए, यावत् क्रोध से मिसमिसाने लगे और उठ गये। उठ कर बोले—अरे, कौन है यह अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा आदि से रहित, जिसने सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पैरों का स्पर्श किया ?

शैलक ऋषि के इस प्रकार कहने पर पंथक मुनि भयभीत हो गये, त्रास को और खेद को प्राप्त हुए। दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे—भगवन् ! मैं पंथक हूं। मैंने कायोत्सर्ग करके दैवसिक प्रतिक्रमण किया है और चौमासी प्रतिक्रमण करता हूं। अतएव चौमासी खामणा देने के लिए, आप देवानुप्रिय को वन्दना करते समय, मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है। सो देवानुप्रिय ! क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। देवानुप्रिय ! फिर ऐसा नहीं करूंगा।' इस प्रकार कह कर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से, विनयपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिए पुनः पुनः खमाने लगे।

पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ—'मैं राज्य आदि का त्याग करके भी यावत् अवसन्न-

आलसी आदि होकर शेष कालमें भी पीठ फलक आदि रख कर विचर रहा हूं—रह रहा हूं। श्रमण निर्ग्रन्थों को पार्श्वस्थ—शिथिलाचारी होकर रहना नहीं कल्पता। अतएव कल मंडुक राजा से पूछ कर पडिहारी पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक वापिस देकर, पंथक अनगार के साथ, बाहर अभ्युद्यत (उग्र) विहार से विचरना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उन्होंने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् उसी प्रकार करके विहार कर दिया ॥६६॥

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आलसी होकर, संस्तारक आदि के विषय में प्रमादी होकर रहता है, वह इसी लोक में बहुत-से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की हीलना का पात्र होता है। यावत् वह चिरकाल पर्यन्त संसार-भ्रमण करता है। इस प्रकार संसार कहना चाहिए।

तत्पश्चात् पंथक को छोड़ कर पांच सौ अनगारों (अर्थात् ४९९ मुनियों) ने वृत्तान्त जाना। तब उन्होंने एक दूसरे को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'शैलक राजर्षि पंथक मुनि के साथ बाहर यावत् विचर रहे हैं, तो हे देवानुप्रियो ! हमें शैलक राजर्षि के समीप जाकर विचरना उचित है।' उन्होंने ऐसा विचार किया, विचार करके राजर्षि शैलक के निकट जाकर विचरने लगे ॥६७॥

तत्पश्चात् शैलक प्रभृति पांच सौ मुनि बहुत वर्षों तक संयमपर्याय पाल कर जहां पुंडरीक पर्वत था, वहां आये। आकर थावच्चापुत्र की भांति सिद्ध हुए। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु या साध्वी इस तरह विचरेगा, वह सिद्धि प्राप्त करेगा। हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ फर्माया है। उनके कथनानुसार मैं कहता हूं ॥ ६८ ॥

गाथार्थ—किसी कारण संयम मार्ग में शिथिल होकर बाद में शुद्धिपूर्वक वैराग्य भाव से मोक्ष पुरुषार्थ में उद्यम करने वाले शैलक राजर्षि के समान आराधक होते हैं।

पंचम अध्ययन समाप्त

—०—

छठा तुंबक अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! छठे ज्ञाताध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने क्या अर्थ कहा है ? श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न के

कि—'शैलक राजर्षि राज्य का त्याग करके यावत् दीक्षित हुए, किन्तु अब विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिममें मूर्च्छित हो गये हैं। वे जनपदविहार करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवानुप्रियो! श्रमणों को प्रमादी होकर रहना नहीं कल्पता है। अतएव देवानुप्रियो! हमारे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल शैलक राजर्षिसे आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ फलक शय्या एवं संस्तारक वापिस सौंपकर पंथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित करके अर्थात् सेवामें नियुक्त करके वाहर जनपदमें अभ्युद्यत अर्थात् उद्यम सहित विचरण करें।' उन मुनियोंने ऐसा विचार किया। विचार करके कल अर्थात् दूसरे दिन शैलक राजर्षि के समीप जाकर उनकी आज्ञा लेकर प्रतिहारी पीठ फलक शय्या संस्तारक वापिस दे दिये। वापिस देकर पंथक अनगारको वैयावृत्यकारी नियुक्त किया—उनकी सेवामें रक्खा। रख कर बाहर यावत् विचरने लगे ॥६५॥

तत्पश्चात् वह पंथक अनगार शैलक राजर्षि की शय्या संस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म संघाण (नासिका-मल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार, पानी आदिसे विना ग्लानि, विनयपूर्वक वैयावृत्य करने लगे। तत्पश्चात् किसी समय शैलक राजर्षि कार्तिकी चौमासी के दिन विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार करके सायंकालके समय आराम से सो रहे थे। उस समय पंथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके, दैवसिक प्रतिक्रमण करके, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से, शैलक राजर्षि को खमाने के लिए अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया। पंथक शिष्य के द्वारा मस्तक से चरणों का स्पर्श करने पर शैलक राजर्षि तत्काल रुष्ट हुए, यावत् क्रोध से मिसमिसाने लगे और उठ गये। उठ कर बोले—अरे, कौन है यह अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा आदि से रहित, जिसने सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पैरों का स्पर्श किया?

शैलक ऋषि के इस प्रकार कहने पर पंथक मुनि भयभीत हो गये, त्रास को और खेद को प्राप्त हुए। दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे—भगवन्! मैं पंथक हूं। मैंने कायोत्सर्ग करके दैवसिक प्रतिक्रमण किया है और चौमासी प्रतिक्रमण करता हूं। अतएव चौमासी खामणा देने के लिए, आप देवानुप्रिय को वन्दना करते समय, मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है। सो देवानुप्रिय! क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। देवानुप्रिय! फिर ऐसा नहीं करूंगा।' इस प्रकार कह कर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से, विनयपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिए पुनः पुनः खमाने लगे।

पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ—'मैं राज्य आदि का त्याग करके भी यावत् अवसन्न-

आलसी आदि होकर शेष कालमें भी पीठ फलक आदि रख कर विचर रहा हूं—रह रहा हूं। श्रमण निर्ग्रन्थों को पार्श्वस्थ—शिथिलाचारी होकर रहना नहीं कल्पता। अतएव कल मंडुक राजा से पूछ कर पडिहारी पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक वापिस देकर, पंथक अनगार के साथ, बाहर अभ्युद्यत (उग्र) विहार से विचरना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उन्होंने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् उसी प्रकार करके विहार कर दिया ॥६६॥

हे आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आलसी होकर, संस्तारक आदि के विषय में प्रमादी होकर रहता है, वह इसी लोक में बहुत-से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की हीलना का पात्र होता है। यावत् वह चिरकाल पर्यन्त संसार-भ्रमण करता है। इस प्रकार संसार कहना चाहिए।

तत्पश्चात् पंथक को छोड़ कर पांच सौ अनगारों (अर्थात् ४९९ मुनियों) ने वृत्तान्त जाना। तब उन्होंने एक दूसरे को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'शैलक राजर्षि पंथक मुनि के साथ बाहर यावत् विचर रहे हैं, तो हे देवानुप्रियो! हमें शैलक राजर्षि के समीप जाकर विचरना उचित है।' उन्होंने ऐसा विचार किया, विचार करके राजर्षि शैलक के निकट जाकर विचरने लगे ॥६७॥

तत्पश्चात् शैलक प्रभृति पांच सौ मुनि बहुत वर्षों तक संयमपर्याय पाल कर जहां पुंडरीक पर्वत था, वहां आये। आकर थावच्चापुत्र की भांति सिद्ध हुए। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो साधु या साध्वी इस तरह विचरेगा, वह सिद्धि प्राप्त करेगा। हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ फर्माया है। उनके कथनानुसार मैं कहता हूं ॥ ६८ ॥

गाथार्थ—किसी कारण संयम मार्ग में शिथिल होकर बाद में शुद्धिपूर्वक वैराग्य भाव से मोक्ष पुरुषार्थ में उद्यम करने वाले शैलक राजर्षि के समान आराधक होते हैं।

पंचम अध्ययन समाप्त

—०—

छठा तुंबक अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन्! छठे ज्ञाताध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने क्या अर्थ कहा है? श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न के

उत्तर में कहा—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में-ईशान कोण में गुणशील नामक उद्यान था।

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रमसे विचरते हुए, यावत् जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील उद्यान था, वहां पधारे। यथा-योग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला। भगवान् ने धर्म कहा। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीरके ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर यावत् शुक्ल ध्यान में लीन होकर विचर रहे थे। उस समय, जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार कहा—'भगवन् ! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता अथवा लघुता को प्राप्त होते हैं ?'

हे गौतम ! यथानामक—कुछ भी नाम वाला, कोई पुरुष एक बड़े, सूखे, छिद्ररहित और अखंडित तूंबे को दर्भ (डाभ) से और कुश (दूब) से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लीपे फिर धूप में रख दे। सूख जाने पर दूसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लीप दे। लीप कर धूप में सूख जाने पर तीसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप चढ़ा दे। इसी प्रकार, इसी उपाय से बीच-बीच में दर्भ और कुश से लपेटता जाय, बीच-बीच में लेप चढ़ाता जाय और बीच-बीच में सुखाता जाय, यावत् आठ मिट्टी के लेप उस तूंबे पर चढ़ावे। फिर उसे अथाह, जिसे तिरा न जा सके अपौरुषिक (जिसे पुरुष की ऊंचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाय। तो निश्चय ही हे गौतम ! वह तूंबा मिट्टी के आठ लेपों के कारण गुरुता को प्राप्त होकर, भारी होकर तथा गुरु एवं भारी होकर ऊपर रहे हुए जल को लांघ कर, नीचे धरती के तल भाग में स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! जीव भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से अर्थात् अठारह पापस्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों का उपार्जन करते हैं। उन कर्मप्रकृतियों की गुरुता के कारण, भारीपन के कारण और गुरुता के भार के कारण, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त होकर, इस पृथ्वीतल को लांघ कर नीचे नरक तल में स्थित होते हैं। इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं। अब हे गौतम ! उस तूंबे का पहला (ऊपर का) मिट्टी का लेप गीला हो जाय, गल जाय और परिशटित (नष्ट) हो जाय तो वह तूंबा पृथ्वीतल से

कुछ ऊपर आकर ठहरता है। तदनन्तर दूसरा मृत्तिकालेप हट जाय तो तूंवा कुछ और ऊपर आ जाता है इस प्रकार इस उपायसे उन आठों मृत्तिकालेपों के गीले हो जाने पर यावत् हट जाने पर तूंवा वन्धन मुक्त होकर धरणीतल को लांघ कर ऊपर जल की सतह पर स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! प्राणांतिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविरमण से क्रमशः आंठ कर्मप्रकृतियों को खपा कर आकाशतल की ओर उड़ कर लोकाग्र भाग में स्थित हो जाते हैं । इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र लघुत्व को पाते हैं। श्री सुधर्मास्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'इस प्रकार हे जम्वू ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैं तुमसे कहता हूं' ॥६६॥

उपनय

जिस प्रकार मिट्टी के लेप से भारी तूंवा नीचे जाता है उसी प्रकार आस्रवकृतकर्मगुरुता से जीव अधोगति को प्राप्त होते हैं।

जैसे लेप के हटने से वही तूम्बा हलका होकर पानी के ऊपर आ जाता है उसी प्रकार कर्मों से मुक्त होकर जीव लोकाग्र में प्रतिष्ठित होते हैं।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवां रोहिणीज्ञात अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने छठे ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! सातवें ज्ञात—अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—इस प्रकार हे जम्वू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के वाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण में गुणशील (सुभूमिभाग) नामक उद्यान था। उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था, वह समृद्धिशाली था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या थी। उसकी पांचों इन्द्रियां और शरीर के अवयव परिपूर्ण थे, यावत् वह सुन्दर रूप वाली थी।

उस धन्य सार्थवाहके पुत्र और भद्रा भार्याके आत्मज (उदरजात) चार सार्थवाह-पुत्र थे। वे इस प्रकार—धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित। उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार भार्याएं—सार्थवाहकी पुत्रवधुएं थीं। वे इस प्रकार—उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय-मध्य रात्रिके समय इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'इस

उत्तर में कहा—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में-ईशान कोण में गुणशील नामक उद्यान था।

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रमसे विचरते हुए, यावत् जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील उद्यान था, वहां पधारे। यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला। भगवान् ने धर्म कहा। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीरके ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर यावत् शुक्ल ध्यान में लीन होकर विचर रहे थे। उस समय, जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार कहा—'भगवन् ! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता अथवा लघुता को प्राप्त होते हैं ?'

हे गौतम ! यथानामक—कुछ भी नाम वाला, कोई पुरुष एक बड़े, सूखे, छिद्ररहित और अखंडित तूंबे को दर्भ (डाभ) से और कुश (दूब) से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लीपे फिर धूप में रख दे। सूख जाने पर दूसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लीप दे। लीप कर धूप में सूख जाने पर तीसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप चढ़ा दे। इसी प्रकार, इसी उपाय से बीच-बीच में दर्भ और कुश से लपेटता जाय, बीच-बीच में लेप चढ़ाता जाय और बीच-बीच में सुखाता जाय, यावत् आठ मिट्टी के लेप उस तूंबे पर चढ़ावे। फिर उसे अथाह, जिसे तिरा न जा सके अपौरुपिक (जिसे पुरुष की ऊंचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाय। तो निश्चय ही हे गौतम ! वह तूंबा मिट्टी के आठ लेपों के कारण गुरुता को प्राप्त होकर, भारी होकर तथा गुरु एवं भारी होकर ऊपर रहे हुए जल को लांघ कर, नीचे धरती के तल भाग में स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! जीव भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से अर्थात् अठारह पापस्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों का उपार्जन करते हैं। उन कर्मप्रकृतियों की गुरुता के कारण, भारीपन के कारण और गुरुता के भार के कारण, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त होकर, इस पृथ्वीतल को लांघ कर नीचे नरक तल में स्थित होते हैं। इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं। अब हे गौतम ! उस तूंबे का पहला (ऊपर का) मिट्टी का लेप गीला हो जाय, गल जाय और परिशटित (नष्ट) हो जाय तो वह तूंबा पृथ्वीतल से

कुछ ऊपर आकर ठहरता है। तदनन्तर दूसरा मृत्तिकालेप हट जाय तो तूंबा कुछ और ऊपर आ जाता है इस प्रकार इस उपायसे उन आठों मृत्तिकालेपों के गीले हो जाने पर यावत् हट जाने पर तूंबा बन्धन मुक्त होकर धरणीतल को लांघ कर ऊपर जल की सतह पर स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम! प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविरमण से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों को खपा कर आकाशतल की ओर उड़ कर लोकाग्र भाग में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार हे गौतम! जीव शीघ्र लघुत्व को पाते हैं। श्री सुधर्मास्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैं तुमसे कहता हूं' ॥६९॥

उपनय

जिस प्रकार मिट्टी के लेप से भारी तूंबा नीचे जाता है उसी प्रकार आस्रवकृतकर्मगुरुता से जीव अधोगति को प्राप्त होते हैं।

जैसे लेप के हटने से वही तूम्बा हलका होकर पानी के ऊपर आ जाता है उसी प्रकार कर्मों से मुक्त होकर जीव लोकाग्र में प्रतिष्ठित होते हैं।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवां रोहिणीज्ञात अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने छठे ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन्! सातवें ज्ञात—अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—इस प्रकार हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण में गुणशील (सुभूमिभाग) नामक उद्यान था। उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था, वह समृद्धिशाली था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या थी। उसकी पांचों इन्द्रियां और शरीर के अवयव परिपूर्ण थे, यावत् वह सुन्दर रूप वाली थी।

उस धन्य सार्थवाहके पुत्र और भद्रा भार्याके आत्मज (उदरजात) चार सार्थवाह-पुत्र थे। वे इस प्रकार—धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित। उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार भार्याएं—सार्थवाहकी पुत्रवधुएं थीं। वे इस प्रकार—उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय-मध्य रात्रिके समय इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'इस

प्रकार निश्चय ही मैं राजगृह नगरमें राजा ईश्वर यावत् तलवर आदि के और अपने कुटुम्बके अनेक कार्योमें, करणीयोमें, कुटुम्बोंमें, मंत्रणाओंमें, गुप्त वातोंमें, रहस्यमय वातोंमें, निश्चय करनेमें, व्यवहारों (व्यापार) में पूछने योग्य, वारम्वार पूछने योग्य, मेढ़ीके समान, प्रमाणभूत, आधार, आलम्वन, चक्षुके समान पथदर्शक मेढ़ीभूत और सब कार्यों की प्रवृत्ति कराने वाला हूं। अर्थात् राजा आदि सभी श्रेणियोंके लोग सब प्रकारके कार्योमें मुझसे सलाह लेते हैं, मैं सबका विश्वास-भाजन हूं। परन्तु न जाने मेरे कहीं दूसरी जगह चले जाने पर, किसी अनाचारके कारण अपने स्थानसे च्युत हो जाने पर, मर जाने पर, भग्न हो जाने पर अर्थात् वायु आदिके कारण लूला-लंगड़ा कुवड़ा होकर असमर्थ हो जाने पर, रुग्ण हो जाने पर, किसी रोग विशेषसे विशीर्ण हो जाने पर, प्रासाद आदिसे गिर जाने पर या बीमारीसे खाटमें पड़ जाने पर, परदेशमें जाकर रहने पर अथवा घरसे निकल कर विदेश जानेके लिए प्रवृत्त होने पर मेरे कुटुम्वका पृथ्वीकी तरह आधार, रस्सीके समान अवलम्वन और बुहारू की सलाइयोंके समान प्रतिवन्ध करने वाला—सब में एकता रखने वाला कौन होगा ?

अतएव मेरे लिए यह उचित होगा कि कल यावत् सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम—यह चार प्रकार का आहार तैयार करवा कर मित्र, ज्ञाति, निजक और स्वजन सम्वन्धी आदि को तथा चारों वधुओंके कुलगृह (मैके) के समुदायको आमंत्रित करके और उन मित्र ज्ञाति निजक स्वजन आदि तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृह वर्गका अशन पान खादिम स्वादिमसे तथा धूप पुष्प वस्त्र एवं गंध आदिसे सत्कार करके, सन्मान करके उन्हीं मित्र ज्ञाति आदिके समक्ष तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्ग (मैके के सभी लोगों) के समक्ष पुत्रवधुओंकी परीक्षा करनेके लिए पांच-पांच शालि-अक्षत (धान) दूं। इससे जान सकूंगा कि कौन पुत्रवधू किस प्रकार उनकी रक्षा करती है सार—संभाल रखती है या वढ़ाती है ?

धन्य सार्थवाहने इस प्रकार विचार करके दूसरे दिन मित्र, ज्ञाति आदिको तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गको आमंत्रित किया। आमंत्रित करके विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। उसके वाद धन्य सार्थवाहने स्नान किया। वह भोजन मंडपमें उत्तम सुखासन पर वैठा। फिर मित्र, ज्ञाति आदि के तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गके साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन करके यावत् उन सबका सत्कार किया, सन्मान किया; सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदिके तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गके सामने पांच धानके दाने लिये। लेकर वड़ी पुत्रवधू उज्झिकाको वुलाया। वुलाकर इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! तुम मेरे हाथसे यह पांच धानके

दाने लो। इन्हें लेकर अनुक्रमसे इनका संरक्षण और संगोपन करती रहो। पुत्री! जब मैं तुमसे ये पांच धानके दाने मांगू, तब तुम ये पांच धान के दाने मुझे वापिस लौटाना।' इस प्रकार कह कर पुत्रवधू के हाथमें वे दाने दे दिये। देकर उसे विदा किया।

तत्पश्चात् उस उज्झिकाने धन्य सार्थवाहके इस अर्थ-आदेशको 'तहत्ति-बहुत अच्छा' इस प्रकार कह कर अंगीकार किया। अंगीकार करके धन्य सार्थवाहके हाथसे पांच शालि-अक्षत ग्रहण किये। ग्रहण करके एकान्त में गई। वहां जाकर उसे इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार निश्चय ही पिता (श्वसुर) के कोठारमें शालिसे भरे हुए बहुत से पल्य विद्यमान हैं। सो जब पिता मुझसे यह पांच शालिअक्षत मांगेंगे, तब मैं दूसरे पल्यसे दूसरे शालि—अक्षत लेकर दे दूंगी।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने उन पांच धानके दानोंको एकान्तमें डाल दिया और डाल कर अपने काममें लग गई।

इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू भोगवतीको भी बुलाकर पांच दाने दिये, इत्यादि। विशेष यह है कि उसने वह दाने छीले और छील कर निगल गई। निगल कर अपने काममें लग गई। इसी प्रकार रक्षिकाके विषयमें जानना चाहिए। विशेषता यह है कि—उसने वे दाने लिये। लेने पर उसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि—मेरे पिता (श्वसुर) ने मित्र ज्ञाति आदिके तथा चारों बहुओंके कुल-गृहवर्गके सामने मुझे बुलाकर यह कहा है कि—'पुत्री! तुम मेरे हाथसे ये पांच दाने लो यावत् जब मैं मांगू तो लौटा देना, यह कहकर मेरे हाथमें पांच दाने दिये हैं। तो यहां कोई कारण होना चाहिए।' उसने इस प्रकार विचार किया। विचार करके वे धानके पांच दाने शुद्ध वस्त्रमें बांधे। बांधकर रत्नोंकी डिबिया में रख लिये। रखकर सिरहानेके नीचे स्थापित किये। स्थापित करके तीनों संध्याओंके समय उनकी सार संभाल करती हुई रहने लगी।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने उन्हीं मित्रों आदि के समक्ष चौथी पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया। बुला कर उसे भी वही कह कर पांच दाने दिये। यावत् उसने सोचा—इस प्रकार पांच दाने देने में कोई कारण होना चाहिए। अतएव मेरे लिए उचित है कि इन पांच धान के दानों का संरक्षण करूं, संगोपन करूं और इनकी वृद्धि करूं। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके अपने कुलगृह के पुरुषों को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो! तुम इन पांच शालि—अक्षतों को ग्रहण करो। ग्रहण करके पहली वर्षाऋतु में अर्थात् वर्षाके आरम्भमें जब खूब वर्षा हो तब एक छोटी-सी क्यारी को अच्छी तरह साफ करना। साफ करके ये पांच शालि-अक्षत बो देना। बोकर दूसरी बार और तीसरी बार उत्क्षेप-निक्षेप करना, अर्थात् एक जगह से

उखाड़ कर दूसरी जगह रोपना। फिर क्यारी के चारों ओर वाड़ लगाना। इनकी रक्षा और संगोपना करते हुए अनुक्रम से वढ़ाना। तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने रोहिणी के अर्थ को स्वीकार किया स्वीकार करके उन शालि के पांच दानों को ग्रहण किया। ग्रहण करके अनुक्रम से उनका संरक्षण, संगोपन करते हुए रहने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वर्षाऋतु के प्रारम्भ में महावृष्टि पड़ने पर छोटी-सी क्यारी साफ की। साफ करके पांच धान के दाने बोये। बोकर दूसरी और तीसरी वार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, करके वाड़ का परिक्षेप किया। करके अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् संरक्षित, संगोपित और संवर्धित किये जाते हुए वे शालि-अक्षत अनुक्रम से शालि हो गये। वे श्याम, श्याम कान्ति वाले यावत् निकुरंबभूत-समूह रूप होकर प्रसन्नता प्रदान करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गये।

तत्पश्चात् उन शालि के पौधों में पत्ते आ गये, वे वर्त्तित गोल हो गये, छाल वाले हो गए, गर्भित हो गए–डौंड़ी लग गई, प्रसूत हुए-पत्तों के भीतर से दाने वाहर आ गये, सुगंध वाले हुए, दूध वाले हुए, बद्धफल–बंधे हुए फल वाले हुए, पक गये, तैयार हो गये, शल्यकित हुए-पत्ते सूख जाने के कारण सलाई जैसे हो गये, पत्रकित हुए–विरले पत्त रह गये और हरितपर्वकाण्ड–नीली नाल वाले हो गये। इस प्रकार वे शालि उत्पन्न हुए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्विक पुरुषों ने वे शालि पत्र वाले यावत् शलाका वाले तथा विरल पत्र वाले जान कर तीखे और पजाये हुए (जिन पर नयी धार चढ़ाई हो ऐसे) हंसियों (दात्रों) से काटे। काट कर उनका हथेलियों से मर्दन किया। मर्दन करके साफ किया। इससे वे चोखे-निर्मल, शुचि–पवित्र, अखंड और *अस्फोटित—बिना टूटे-फूटे और सूपसे झटक—झटक कर साफ किये हुए हो गये।* वे मगधदेश में प्रसिद्ध एक प्रस्थक* प्रमाण हो गये।

तत्पश्चात् कौटुम्विक पुरुषों ने उन प्रस्थ प्रमाण शालि–अक्षतों को नवीन घड़े में भरा। भर कर उसके मुख पर मिट्टी का लेप कर दिया। लेप करके उसे लांछित—मुद्रित किया–उस पर सील लगा दी। फिर उसे कोठारके एक भाग में रख दिया। रख कर उसका रक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्विक पुरुषों ने दूसरी वर्षाऋतुमें, वर्षाकाल के प्रारम्भ

---

*दो असंई की एक पसई, दो पसई की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुड़व और चार कुड़व का एक प्रस्थक होता है। यह मगधदेश का तत्कालीन नाप है।

में महावृष्टि पड़ने पर एक छोटी क्यारी को साफ किया। साफ करके वे शालि बो दिये। दूसरी बार और तीसरी बार उनका उत्क्षेप—निक्षेप किया, यावत् लुनाई की-उन्हें काटा। यावत् पैरों के तलुवों से उनका मर्दन किया, उन्हें साफ किया। अब शालि के बहुत-से कुड़व हो गये। यावत् उन्हें कोठार के एक भाग में रख दिया। कोठार में रख कर उनका संरक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने तीसरी वर्षाऋतु में, महावृष्टि होने पर

बहुत—सी क्यारियां अच्छी तरह साफ कीं। यावत् उन्हें बोकर काट लिया। काटकर भारा बांध कर वहन किया। वहन करके खलिहान में रक्खा। उन्हें मर्दन किया। यावत् बहुत—से कुम्भ प्रमाण शालि हो गये। तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वे शालि कोठारमें रक्खे, यावत् उनकी रक्षा करने लगे। चौथी वर्षाऋतु में इसी प्रकार करने से सैंकड़ों कुम्भ प्रमाण शालि हो गये।

तत्पश्चात् जब पांचवां वर्ष चल रहा था, तब धन्य सार्थवाह को मध्य रात्रि के समय में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—मैंने इससे पहले के —अतीत, पांचवें वर्ष में चारों पुत्रवधुओं को, परीक्षा करने के निमित्त, वे पांच शालि के दाने हाथ में दिये थे। तो कल यावत् सूर्योदय होने पर पांच दाने मांगना मेरे लिए उचित होगा। यावत् जानूं तो सही कि किसने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किया है? धन्य सार्थवाह ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। मित्रों ज्ञातिजनों आदि को तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गको आमंत्रित यावत् सम्मानित करके उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष, जेठी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—

'हे पुत्री! इससे अतीत पांचवें संवत्सर में इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष मैंने तुम्हारे हाथ में पांच शालि-अक्षात दिये थे, और यह कहा था कि पुत्री! जब में पांच शालिअक्षात मांगूं, तब तुम मेरे ये पांच शालि-अक्षात मुझे वापिस सौंपना। तो यह अर्थ समर्थ है—यह बात सत्य है?' उज्झिका ने कहा—'हां सत्य है।' धन्य सार्थवाह बोले—'तो पुत्री! मेरे वे शालिअक्षत वापिस दो।'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके जहां कोठार था वहां पहुंची। पहुँच कर पल्य में से पांच शालिअक्षत ग्रहण किये और ग्रहण करके धन्य सार्थवाह के समीप आकर बोली—'ये हैं वे पांच शालिअक्षत।' यों कह कर धन्य सार्थवाह के हाथ में पांच शालि के दाने दिये।

उखाड़ कर दूसरी जगह रोपना। फिर क्यारी के चारों ओर वाड़ लगाना। इनकी रक्षा और संगोपना करते हुए अनुक्रम से बढ़ाना। तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने रोहिणी के अर्थ को स्वीकार किया स्वीकार करके उन शालि के पांच दानों को ग्रहण किया। ग्रहण करके अनुक्रम से उनका संरक्षण, संगोपन करते हुए रहने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वर्षाऋतु के प्रारम्भ में महावृष्टि पड़ने पर छोटी-सी क्यारी साफ की। साफ करके पांच धान के दाने वोये। वोकर दूसरी और तीसरी वार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, करके वाड़ का परिक्षेप किया। करके अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् संरक्षित, संगोपित और संवधित किये जाते हुए वे शालि-अक्षत अनुक्रम से शालि हो गये। वे श्याम, श्याम कान्ति वाले यावत् निकुरंबभूत-समूह रूप होकर प्रसन्नता प्रदान करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गये।

तत्पश्चात् उन शालि के पौधों में पत्ते आ गये, वे वत्तित गोल हो गये, छाल वाले हो गए, गर्भित हो गए–डौंडी लग गई, प्रसूत हुए-पत्तों के भीतर से दाने वाहर आ गये, सुगंध वाले हुए, दूध वाले हुए, वद्धफल–बंधे हुए फल वाले हुए, पक गये, तैयार हो गये, शल्यकित हुए-पत्ते सूख जाने के कारण सलाई जैसे हो गये, पत्रकित हुए–विरले पत्ते रह गये और हरितपर्वकाण्ड–नीली नाल वाले हो गये। इस प्रकार वे शालि उत्पन्न हुए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वे शालि पत्र वाले यावत् शलाका वाले तथा विरल पत्र वाले जान कर तीखे और पजाये हुए (जिन पर नयी धार चढ़ाई हो ऐसे) हंसियों (दात्रों) से काटे। काट कर उनका हथेलियों से मर्दन किया। मर्दन करके साफ किया। इससे वे चोखे-निर्मल, शुचि–पवित्र, अखंड और अस्फोटित—विना टूटे-फूटे और सूपसे झटक—झटक कर साफ किये हुए हो गये। वे मगधदेश में प्रसिद्ध एक प्रस्थक* प्रमाण हो गये।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने उन प्रस्थ प्रमाण शालि–अक्षतों को नवीन घड़े में भरा। भर कर उसके मुख पर मिट्टी का लेप कर दिया। लेप करके उसे लांछित—मुद्रित किया–उस पर सील लगा दी। फिर उसे कोठारके एक भाग में रख दिया। रख कर उसका रक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दूसरी वर्षाऋतुमें, वर्षाकाल के प्रारम्भ

*दो असंई की एक पसई, दो पसई की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुड़व और चार कुड़व का एक प्रस्थक होता है। यह मगधदेश का तत्कालीन नाप है।

में महावृष्टि पड़ने पर एक छोटी क्यारी को साफ किया। साफ करके वे शालि बो दिये। दूसरी बार और तीसरी बार उनका उत्क्षेप—निक्षेप किया, यावत् लुनाई की–उन्हें काटा। यावत् पैरों के तलुवों से उनका मर्दन किया, उन्हें साफ किया। अब शालि के बहुत–से कुड़ब हो गये। यावत् उन्हें कोठार के एक भाग में रख दिया। कोठार में रख कर उनका संरक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने तीसरी वर्षाऋतु में, महावृष्टि होने पर बहुत—सी क्यारियां अच्छी तरह साफ कीं। यावत् उन्हें बोकर काट लिया। काटकर भारा बांध कर वहन किया। वहन करके खलिहान में रक्खा। उन्हें मर्दन किया। यावत् बहुत—से कुम्भ प्रमाण शालि हो गये। तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वे शालि कोठारमें रक्खे, यावत् उनकी रक्षा करने लगे। चौथी वर्षाऋतु में इसी प्रकार करने से सैंकड़ों कुम्भ प्रमाण शालि हो गये।

तत्पश्चात् जब पांचवां वर्ष चल रहा था, तब धन्य सार्थवाह को मध्य रात्रि के समय में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—मैंने इससे पहले के —अतीत, पांचवें वर्ष में चारों पुत्रवधुओं को, परीक्षा करने के निमित्त, वे पांच शालि के दाने हाथ में दिये थे। तो कल यावत् सूर्योदय होने पर पांच दाने मांगना मेरे लिए उचित होगा। यावत् जानूं तो सही कि किसने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किया है? धन्य सार्थवाह ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। मित्रों ज्ञातिजनों आदि को तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गको आमंत्रित यावत् सम्मानित करके उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष, जेठी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—

'हे पुत्री! इससे अतीत पांचवें संवत्सर में इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष मैंने तुम्हारे हाथ में पांच शालि-अक्षत दिये थे, और यह कहा था कि पुत्री! जब में पांच शालिअक्षत मांगूं, तब तुम मेरे ये पांच शालि-अक्षत मुझे वापिस सौंपना। तो यह अर्थ समर्थ है—यह बात सत्य है?' उज्झिका ने कहा—'हां सत्य है।' धन्य सार्थवाह बोले—'तो पुत्री! मेरे वे शालिअक्षत वापिस दो।'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके जहां कोठार था वहां पहुंची। पहुँच कर पल्य में से पांच शालिअक्षत ग्रहण किये और ग्रहण करके धन्य सार्थवाह के समीप आकर बोली—'ये हैं वे पांच शालिअक्षत।' यों कह कर धन्य सार्थवाह के हाथ में पांच शालि के दाने दिये।

तब धन्य सार्थवाह ने उज्झिका को सौगंध दिलाई और कहा—'पुत्री ! क्या यही वे शालि के दाने हैं अथवा ये दूसरे हैं ?'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'तात ! इससे पहले के पांचवें वर्ष में इन मित्रों एवं ज्ञातिजनों के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने पांच दाने देकर आपने उनका संरक्षण संगोपन और संवर्धन करती हुई विचरना, ऐसा कहा था। उस समय मैंने आपकी बात स्वीकार की। स्वीकार करके वे पांच शालि के दाने ग्रहण किये और एकान्त में चली गई। तब मुझे इस तरह का विचार उत्पन्न हुआ कि—पिताजी के कोठार में बहुत से शालि भरे हैं, जब मांगेंगे तो दे दूंगी। ऐसा विचार कर मैंने वे दाने फेंक दिये और अपने काममें लग गई। अतएव हे तात ! ये वेही शालि के दाने नहीं हैं। ये दूसरे हैं।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उज्झिकाके पाससे यह अर्थ सुनकर और हृदयमें धारण करके क्रुद्ध हुए। यावत् क्रोधमें आकर मिसमिसाने लगे। उन्होंने उज्झिका को उन मित्रों, ज्ञातिजनों आदिके तथा चारों पुत्रवधुओंके कुलगृहवर्गके सामने अपने कुलगृहकी राख फेंकने वाली, छाणे डालने या थापने वाली, कचरा झाड़ने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नानके लिए पानी देने वाली और बाहरके दासीके कार्य करने वाली नियुक्त की। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु और साध्वी यावत् प्रव्रज्या लेकर पांच (दानोंके समान पांच) महाव्रतोंका परित्याग कर देता है, वह उज्झिका की तरह इसी भवमें बहुतसे श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है यावत् अनन्त संसारमें पर्यटन करेगा।

इसी प्रकार भोगवतीके विषयमें जानना चाहिए। विशेषता यह है कि (वह पांचों दाने खा गई थी, अतएव उसे) खांडने वाली, कूटने वाली, पीसने वाली, जांतेमें दलकर धान्यके छिलके उतारने वाली, रांधने वाली, परोसने वाली, त्यौहारोंके प्रसंग पर स्वजनोंके घर जाकर ल्हावणी बांटने वाली, घरमें भीतरकी दासी का काम करने वाली एवं रसोईदारिनका कार्य करने वालीके रूपमें नियुक्त किया। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु अथवा साध्वी पांच महाव्रतोंको फोड़ने वाला अर्थात् रसनेन्द्रियके वशीभूत होकर नष्ट करने वाला होता है, वह इसी भवमें बहुतसे साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुतसे श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओंकी अवहेलनाका पात्र बनता है, जैसे वह भोगवती।

इसी प्रकार रक्षिकाके विषयमें जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि—(पांच दाने मांगने पर) वह जहां उसका निवासगृह था वहां आई। आकर उसने मंजूषा खोली। खोलकर रत्नकी डिबियामें से वे पांच शालिके दाने ग्रहण किये।

ग्रहण करके जहां धन्य सार्थवाह था वहां आई। आकर धन्य सार्थवाहके हाथमें वे शालिके पांच दाने दे दिये। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने रक्षिकासे इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! क्या ये वही पांच शालि-अक्षत हैं ?' तब रक्षिकाने धन्य सार्थवाहसे ऐसा कहा—'तात ! ये वही शालिअक्षत हैं, दूसरे नहीं हैं। धन्य ने पूछा—'पुत्री ! कैसे ?'

रक्षिका बोली—'तात ! आपने इससे अतीत पांचवें वर्षमें शालिके पांच दाने दिये थे। तब मैंने विचार किया कि इसमें कोई कारण होना चाहिए। ऐसा विचार करके इन पांच शालिके दानोंको शुद्ध वस्त्रमें बांधा, यावत् तीनों संध्याओं में सार-संभाल करती हुई विचरती हूं। अतएव इस कारणसे हे तात ! ये वही शालिके दाने हैं, दूसरे नहीं हैं। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह रक्षिकाके पाससे यह अर्थ सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसे अपने घरके हिरण्य की (आभूषणों की), कांसा आदि बर्तनोंकी, दूष्य—रेशमी वस्त्रों की, विपुल, धन, धान्य, कनक, मुक्ता आदि स्वापतेयकी भाण्डागारिणी (भंडारी) के रूपमें नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! यावत् हमारा जो साधु या साध्वी पांच महाव्रतोंकी रक्षा करता है, वह इसी भवमें बहुतसे साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुतसे श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओंका अर्चनीय(पूज्य) होता है जैसे वह रक्षिका।

रोहिणीके विषयमें भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि—जब धन्य सार्थवाहने पांच दाने मांगे तो उसने कहा—'तात ! आप मुझे बहुतसे गाड़े-गाड़ियां दो, जिससे मै आपको वे पांच शालिके दाने लौटाऊं। तब धन्य सार्थवाहने रोहिणीसे कहा—पुत्री ! तू मुझे वे पांच शालिके दाने गाड़ा-गाड़ीमें भरकर कैसे देगी ? तब रोहिणीने धन्य सार्थवाहसे कहा—'तात ! इससे पहलेके पांचवें वर्षमें इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदिके समक्ष आपने पांच दाने दिये थे। यावत् वे अब सैंकड़ों कुम्भ हो गये हैं, इत्यादि पूर्वोक्त क्रमानुसार कहना। इस प्रकार तात ! मैं आपको वे पांच शालिके दाने गाड़ा-गाड़ियोंमें भरकर दूंगी।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने रोहिणीको बहुतसे छकड़ा-छकड़ी दिये। रोहिणी उन छकड़ा-छकड़ियों को लेकर जहां अपना कुलगृह (मैका) था, वहां आई। आकर कोठार खोला, कोठार खोलकर कोठी खोली, खोलकर छकड़ा-छकड़ी भरे। भरकर राज-गृह नगरके मध्यभागमें होकर जहां अपना घर (सुसराल) था और जहां धन्य सार्थवाह था, वहां आ पहुँची। तब राजगृह नगरमें शृङ्गाटक आदि मार्गोंमें बहुतसे लोग आपस में इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह धन्य है, जिसकी पुत्रवधू रोहिणी है, जिसने पांच शालिके दाने छकड़ा-छकड़ियोंमें भरकर लौटाये !'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उन पांच शालि के दानों को छकड़ा-छकड़ियों द्वारा लौटाये देखता है। देखकर हृष्ट और तुष्ट होकर उन्हें स्वीकार करता है। स्वीकार करके उसने उन्हीं मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष रोहिणी पुत्रवधू को, उस कुलगृहवर्ग के अनेक कार्यों में यावत् रहस्यों में पूछने योग्य यावत् गृह का कार्य चलाने वाली और प्रमाणभूत नियुक्त किया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु-साध्वी अपने पांच महाव्रतोंको बढ़ाते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणों आदि के पूज्य होकर यावत् संसार से मुक्त हो जाते हैं। जैसे वह रोहिणी। इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है ॥ ७० ॥

उपनय

श्रेष्ठि के समान गुरु हैं, ज्ञातिजन के समान श्रमणसंघ है, वधुओं के समान भव्य हैं, शालिकण के समान व्रत हैं। जैसे यथार्थनामा उज्झिका शालिकणों को छोड़कर दासीकर्म में नियुक्त होकर असंख्यदुःखभागिनी बनी। उसी प्रकार जो संघ के समक्ष गुरु-प्रदत्त महाव्रतों को महामोहवश छोड़ता है वह इस लोक में धिक्कारपात्र बनता है, परलोक में भी दुःखी होकर नाना योनियों में परिभ्रमण करता है।

जैसे भोगवती शालिकणों को खाकर दुःखी हुई। इसी प्रकार जो आहारादि में आसक्त होकर मोक्षसाधना छोड़ महाव्रतों का जीविकारूप में उपभोग करता है। उसे यहां पर द्रव्यलिंग से आहारादि की प्राप्ति तो होती है परन्तु सुज्ञ लोग उसका आदर नहीं करते और वह परलोक में दुःखी होता है। जैसे रक्षिता ने धान्यकणों की रक्षा की और वह परिजन—सम्माननीया होकर सुखी हुई इसी प्रकार जो जीव पांच महाव्रतों को अंगीकार करके लेशमात्र भी प्रमाद न करता हुआ उनका निरतिचार पालन करता है, वह आत्महितैषी इस लोकमें विद्वद् वर्ग से सम्मानित होकर एकान्त सुखी होता है। परलोकमें भी उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जैसे रोहिणी शालिकणों को बोकर उनमें वृद्धि करके सर्वस्व की स्वामिनी बनी। उसी प्रकार जो भव्य स्वयं महाव्रतोंको सम्यक् रूपसे पालता हुआ उन्हें अन्य अनेकों भव्यों को हितार्थ प्रदान करता है। वह इस लोक में भी संघ-प्रधान व युगप्रधान पद को प्राप्त होता है और गौतम स्वामी के समान स्वपरकल्याणकारी होता है। वह संघ की वृद्धि करने वाला कुतीर्थियों का मान मर्दन करने वाला विद्वद्जन सेवित क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम मल्ली अध्ययन

जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो आठवें का क्या अर्थ कहा है? हे जम्बू! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) में, मेरु पर्वत से पश्चिम में, निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीतोदा महानदी से दक्षिण में, सुखावह नामक वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में और पश्चिम लवण समुद्र से पूर्व में—इस स्थान पर, सलिलावती नामक विजय कहा गया है। उस सलिलावती विजयमें वीतशोका नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी, यावत् साक्षात् देवलोक के समान थी।

उसके उत्तरपूर्व दिक्कोणमें इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था। उस वीतशोका राजधानीमें बल नामक राजा था। उसके अन्तःपुरमें धारिणी-प्रमुख एक सहस्र रानियां थीं। वह धारिणी देवी किसी दिन सिंहको स्वप्नमें देखकर जागृत हुई यावत् महाबल नामक पुत्र हुआ, बाल्यावस्था यावत् भोगसमर्थ०। तब माता पिता ने कुमारका सदृश-परिमाण-वय वाली कमलश्री प्रमुख पांच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन-एक साथ पाणिग्रहण करवाया। पांच सौ प्रासाद पंचशत दान यावत् विचरने लगा।

उस काल उस समयमें धर्मघोष नामक स्थविर पांच सौ साधुओंके साथ परिवृत, अनुक्रमसे चलते हुए, एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विचरण करते हुए सुखे सुखे विहार करते हुए जहां इन्द्रकुम्भ उद्यान था वहां पधारे यावत् विचरने लगे। परिषद् निकली। बल राजा भी गए। धर्मोपदेश सुनकर महाबल कुमार को राज्य देकर यावत् ग्यारह-अंगज्ञाता बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय पालन करके चारुपर्वत पर एक मासका निर्जल संथारा करके केवलज्ञान पाकर यावत् सिद्ध हुए।

तत्पश्चात् वह कमलश्री किसी दिन सिंहको स्वप्नमें देखकर जगी यावत् बलभद्र कुमार हुए व युवराज बने। उन महाबल राजाके ये छः राजा बालमित्र थे—अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण, अभिचन्द्र। साथ ही उत्पन्न हुए, बड़े हुए, एक ही साथ समस्त कार्य करने का निश्चय किया, सुखपूर्वक रहने लगे।

इन्द्रकुम्भ उद्यानमें स्थविरोंका पधारना हुआ। परिषद् निकली। महाबल राजा भी गए। धर्मकथा सुनकर कहा--"मैं अपने छहों मित्रोंसे पूछ लूं और बलभद्र कुमारको राज्य दे दूं यावत् उन्होंने छहों मित्रोंसे पूछा। वे छहों मित्र महाबल राजासे ऐसा बोले—"देवानुप्रिय! यदि आप दीक्षा लेंगे तो हमारा आपके सिवाय दूसरा कौन सहारा है। यावत् हम भी दीक्षा लेंगे।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उन पांच शालि के दानों को छकड़ा-छकड़ियों द्वारा लौटाये देखता है। देखकर हृष्ट और तुष्ट होकर उन्हें स्वीकार करता है। स्वीकार करके उसने उन्हीं मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष रोहिणी पुत्रवधू को, उस कुलगृहवर्ग के अनेक कार्यों में यावत् रहस्यों में पूछने योग्य यावत् गृह का कार्य चलाने वाली और प्रमाणभूत नियुक्त किया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु–साध्वी अपने पांच महाव्रतोंको बढ़ाते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणों आदि के पूज्य होकर यावत् संसार से मुक्त हो जाते हैं। जैसे वह रोहिणी। इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है ।। ७० ।।

उपनय

श्रेष्ठि के समान गुरु हैं, ज्ञातिजन के समान श्रमणसंघ है, वधुओं के समान भव्य हैं, शालिकण के समान व्रत हैं। जैसे यथार्थनामा उज्झिका शालिकणों को छोड़कर दासीकर्म में नियुक्त होकर असंख्यदुःखभागिनी बनी। उसी प्रकार जो संघ के समक्ष गुरु-प्रदत्त महाव्रतों को महामोहवश छोड़ता है वह इस लोक में धिक्कारपात्र बनता है, परलोक में भी दुःखी होकर नाना योनियों में परिभ्रमण करता है।

जैसे भोगवती शालिकणों को खाकर दुःखी हुई। इसी प्रकार जो आहारादि में आसक्त होकर मोक्षसाधना छोड़ महाव्रतों का जीविकारूप में उपभोग करता है। उसे यहां पर द्रव्यलिंग से आहारादि की प्राप्ति तो होती है परन्तु सुज्ञ लोग उसका आदर नहीं करते और वह परलोक में दुःखी होता है। जैसे रक्षिता ने धान्यकणों की रक्षा की और वह परिजन—सम्माननीया होकर सुखी हुई इसी प्रकार जो जीव पांच महाव्रतों को अंगीकार करके लेशमात्र भी प्रमाद न करता हुआ उनका निरतिचार पालन करता है, वह आत्महितैषी इस लोकमें विद्वद् वर्ग से सम्मानित होकर एकान्त सुखी होता है। परलोकमें भी उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जैसे रोहिणी शालिकणों को बोकर उनमें वृद्धि करके सर्वस्व की स्वामिनी बनी। उसी प्रकार जो भव्य स्वयं महाव्रतोंको सम्यक् रूपसे पालता हुआ उन्हें अन्य अनेकों भव्यों को हितार्थ प्रदान करता है। वह इस लोक में भी संघ-प्रधान व युगप्रधान पद को प्राप्त होता है और गौतम स्वामी के समान स्वपरकल्याणकारी होता है। वह संघ की वृद्धि करने वाला कुतीर्थियों का मान मर्दन करने वाला विद्वद्जन सेवित क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है।

।। सप्तम अध्ययन समाप्त ।।

———

अष्टम मल्ली अध्ययन

जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमरण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो आठवें का क्या अर्थ कहा है ? हे जम्बू ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) में, मेरु पर्वत से पश्चिम में, निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीतोदा महानदी से दक्षिण में, सुखावह नामक वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में और पश्चिम लवण समुद्र से पूर्व में—इस स्थान पर, सलिलावती नामक विजय कहा गया है। उस सलिलावती विजयमें वीतशोका नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी, यावत् साक्षात् देवलोक के समान थी।

उसके उत्तरपूर्व दिक्कोणमें इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था। उस वीतशोका राजधानीमें वल नामक राजा था। उसके अन्त:पुरमें धारिणी-प्रमुख एक सहस्र रानियां थीं। वह धारिणी देवी किसी दिन सिंहको स्वप्नमें देखकर जागृत हुई यावत् महावल नामक पुत्र हुआ, वाल्यावस्था यावत् भोगसमर्थ०। तव माता पिता ने कुमारका सदृश-परिमाण-वय वाली कमलश्री प्रमुख पांच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन-एक साथ पाणिग्रहण करवाया। पांच सौ प्रासाद पंचशत दान यावत् विचरने लगा।

उस काल उस समयमें धर्मघोप नामक स्थविर पांच सौ साधुओंके साथ परिवृत, अनुक्रमसे चलते हुए, एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विचरण करते हुए सुखे सुखे विहार करते हुए जहां इन्द्रकुम्भ उद्यान था वहां पधारे यावत् विचरने लगे। परिपद् निकली। वल राजा भी गए। धर्मोपदेश सुनकर महावल कुमार को राज्य देकर यावत् ग्यारह-अंगज्ञाता वहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय पालन करके चारुपर्वत पर एक मासका निर्जल संथारा करके केवलज्ञान पाकर यावत् सिद्ध हुए।

तत्पश्चात् वह कमलश्री किसी दिन सिंहको स्वप्नमें देखकर जगी यावत् वलभद्र कुमार हुए व युवराज वने। उन महावल राजाके ये छ: राजा वालमित्र थे—अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण, अभिचन्द्र। साथ ही उत्पन्न हुए, वड़े हुए, एक ही साथ समस्त कार्य करने का निश्चय किया, सुखपूर्वक रहने लगे।

इन्द्रकुम्भ उद्यानमें स्थविरोंका पधारना हुआ। परिपद् निकली। महावल राजा भी गए। धर्मकथा सुनकर कहा—"मैं अपने छहों मित्रोंसे पूछ लूं और वलभद्र कुमारको राज्य दे दूं यावत् उन्होंने छहों मित्रोंसे पूछा। वे छहों मित्र महावल राजासे ऐसा वोले—"देवानुप्रिय ! यदि आप दीक्षा लेंगे तो हमारा आपके सिवाय दूसरा कौन सहारा है। यावत् हम भी दीक्षा लेंगे।

इस प्रकार इस क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप की पहली परिपाटी छह मासों और सात अहोरात्रों में सूत्र के अनुसार यावत् आराधित होती है। (इसमें १५४ उपवास और तेतीस पारणे किये जाते हैं।) तत्पश्चात् दूसरी परिपाटी में एक उपवास करते हैं, इत्यादि सब पहले के समान समझना। विशेषता यह है कि इसमें विकृतिरहित पारणा करते हैं, अर्थात् पारणे में विगय का सेवन नहीं करते। इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी समझनी चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि अलेपकृत से पारणा करते हैं। चौथी परिपाटी में भी ऐसा ही करते हैं। उसमें आयंबिल से पारणा किया जाता है।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार क्षुल्लक (लघु) सिंहनिष्क्रीडित तप को (चारों परिपाटी सहित) दो वर्ष और अट्ठाइस अहोरात्र में, सूत्र के कथनानुसार यावत् तीर्थङ्कर की आज्ञा से आराधन करके, जहां स्थविर भगवान् थे, वहां आये। आकर उन्होंने वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

भगवन् ! हम महत् (बड़ा) सिंहनिष्क्रीडित नामक तपकर्म करना चाहते हैं। यह तप क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमें चौंतीस भक्त अर्थात् सोलह उपवास तक पहुंच कर वापिस लौटा जाता है। एक परिपाटी एक वर्ष, छह मास और अठारह अहोरात्र में समाप्त होती है। सम्पूर्ण महासिंहनिष्क्रीडित तप छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र में समाप्त होता है। (प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन लगते हैं, ४९७ उपवास और ६१ पारणे होते हैं।)

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों मुनि महासिंहनिष्क्रीडित तपकर्म का सूत्र के अनुसार यावत् आराधन करके जहां स्थविर भगवान् थे, वहां आते हैं। आकर स्थविर भगवान् को वन्दना करते है, नमस्कार करते हैं। वन्दना और नमस्कार करके बहुत से उपवास बेला आदि करते हुए विचरते हैं। तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति अनगार उस प्रधान तप के कारण शुष्क अर्थात् मांस-रक्त से हीन तथा रूक्ष अर्थात् निस्तेज हो गये, जैसे भगवतीसूत्र में कथित स्कन्दक मुनि। विशेषता यह है कि स्कंदक मुनि ने भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त की थी, पर इन सात मुनियों ने स्थविर भगवान् से आज्ञा ली। आज्ञा लेकर चारु पर्वत (चारु नामक वक्षस्कार पर्वत) पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर यावत् दो मास की संलेखना करके—एक सौ बीस भक्त का अनशन करके, चौरासी लाख वर्षों तक संयम का पालन करके, चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोग कर जयंत नामक तीसरे अनुत्तर विमान में देव-पर्याय से उत्पन्न हुए ॥७१॥

उस जयन्त विमान में कितनेक देवों की बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमें से महाबल को छोड़ कर दूसरे छह देवों की कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति और महाबल देव की पूरे बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। तत्पश्चात् महाबल देव के अतिरिक्त छहों देव जयन्त देवलोक से, देव संबंधी आयु का क्षय होने से देवलोक में रहने की स्थिति का क्षय होने से और देव संबंधी भव का क्षय होने से, अन्तर रहित, शरीर का त्याग करके अथवा च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप के भरत वर्ष (क्षेत्र) में विशुद्ध माता-पिता के वंश वाले राजकुलों में, अलग-अलग कुमार के रूप में उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार—(१) पहला मित्र प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकु वंश अथवा इक्ष्वाकु देश का राजा हुआ। (इक्ष्वाकु देश को कोशल देश भी कहते हैं, जिसकी राजधानी अयोध्या थी।) (२) दूसरा चंद्रच्छाय अंगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी। (३) तीसरा मित्र शंख काशी देशका राजा, हुआ जिसकी राजधानी वाराणसी नगरी थी। (४) चौथा रुक्मि कुणाल देश का राजा, हुआ जिसकी नगरी श्रावस्ती थी। (५) पांचवां अदीनशत्रु कुरुदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। (६) छठा जितशत्रु पंचाल देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी कांपिल्यपुर थी।

तत्पश्चात् वह महाबल देव तीन—मति, श्रुत और अवधि—ज्ञान से युक्त होकर, जब समस्त ग्रह उच्च स्थान में रहे हुए थे, सभी दिशाएं सौम्य—उत्पात से रहित, वितिमिर—अंधकार से रहित और विशुद्ध—धूल आदि से रहित थीं, पक्षियों के शब्द आदि रूप शकुन विजयकारक थे, वायु दक्षिण की ओर चल रहा था और अनुकूल अर्थात् शीत मंद और सुगंध रूप होकर पृथ्वी पर प्रसार कर रहा था, पृथ्वी पर धान्य निष्पन्न हो गया था, इस कारण लोग अत्यन्त हर्षयुक्त होकर क्रीड़ा कर रहे थे, ऐसे समय में, धर्म रात्रि के अवसर पर, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, हेमन्त ऋतु के चौथे मास, आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, चतुर्थी तिथि के पश्चात् भाग-रात्रि भाग में, बत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले जयन्त नामक विमान से, अनन्तर, शरीर त्याग कर, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, मिथिला नामक राजधानीमें, कुंभ राजा की प्रभावती देवी की कूंख में, देवगति संबंधी आहार का त्याग करके, वैक्रिय शरीर का त्याग करके एवं देवभव का त्याग करके गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ।

उस रात्रि में प्रभावती देवी उस प्रकार के उस पूर्ववर्णित वासभवन में, पूर्ववर्णित शय्या पर यावत् अर्ध रात्रि के समय, जब न गहरी सोई थी और न जाग ही रही थी वार—वार ऊंघ रही थी तब इस प्रकार के प्रधान, कल्याणरूप, उपद्रवरहित, धन्य, मांगलिक और सश्रीक चौदह महास्वप्न देख कर

जागी। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं-(१) गज (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पमाला (६) चन्द्रमा (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) कुम्भ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) सागर (१२) विमान (१३) रत्नों की राशि (१४) धूमरहित अग्नि।

ये चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् प्रभावती रानी जहां राजा कुम्भ थे, वहां आई। आकर पति से स्वप्नों का वृत्तान्त कहा। कुम्भ राजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। यावत् प्रभावती देवी हर्षित एवं संतुष्ट होकर विचरने लगी। तत्पश्चात् प्रभावती देवी को तीन मास बराबर पूर्ण हुए तो इस प्रकार का दोहद (मनोरथ) उत्पन्न हुआ—वे माताएं धन्य हैं जो जल और थल में उत्पन्न हुए, देदीप्यमान, अनेक पंचरंगे पुष्पों से आच्छादित और पुनः पुनः आच्छादित की हुई शय्या पर सुखपूर्वक बैठी हुई और सुख से सोई हुई विचरती हैं। तथा पाटला, मालती, चम्पा, अशोक, पुंनाग के फूलों, मरूवा के पत्तों, दमनक के फूलों, निर्दोष शतपत्रिका के फूलों एवं कोरंट के उत्तम पत्तों से गूंथे हुए, परम-सुखदायक स्पर्श वाले, देखने में सुन्दर तथा अत्यन्त सौरभ छोड़ने वाले श्रीदाम-काण्ड (सुन्दर माला) के समूह को सूंघती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ देख कर पास में रहे हुए वाणव्यन्तर देवों ने शीघ्र जल और थल में उत्पन्न हुए यावत् पांच वर्ण वाले पुष्प, कुम्भों और भारों के प्रमाण में अर्थात् बहुत—से पुष्प कुम्भ राजा के भवन में लाकर डाल दिए। इनके अतिरिक्त सुखप्रद एवं सुगंध फैलाता हुआ एक श्रीदामकांड भी लाकर डाल दिया। तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने जल और थल में उत्पन्न यावत् फूलों की माला से अपना दोहला पूर्ण किया। तब प्रभावती देवी प्रशस्तदोहला होकर विचरने लगी।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने नौ मास और साढ़े सात दिवस पूर्ण होने पर, हेमन्त के प्रथम मास में, दूसरे पक्ष में अर्थात् मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, मध्य रात्रि में, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, सभी ग्रहों के उच्च स्थान पर स्थित होने पर, जब देश के सब लोग प्रमुदित होकर क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे समय में, आरोग्य-आरोग्य पूर्वक अर्थात् विना किसी बाधा के उन्नीसवें तीर्थङ्कर को जन्म दिया ॥७२॥

उस काल और उस समय में अधोलोक में वसने वाली महत्तरिका दिशा-कुमारिकाएं आईं, इत्यादि जन्म का जो वर्णन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में आया है, वह सब यहां समझ लेना चाहिए, विशेषता यह है कि—मिथिला नगरी में, कुंभ राजा के भवन में, प्रभावती देवी का आलापक कहना—नाम कहना चाहिए। यावत् देवों ने जन्माभिषेक करके नंदीश्वर द्वीप में जाकर (अठाई) महोत्सव किया।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने एवं बहुत-से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने तीर्थङ्कर का जन्माभिषेक किया, फिर जातकर्म आदि संस्कार किये, यावत् नामकरण किया कि-क्योंकि हमारी यह पुत्री माता के गर्भ में आई थी, तब माल्य (पुष्प) की शय्या में सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था और वह पूर्ण हुआ था, अतएव इसका नाम 'मल्ली' हो। ऐसा कह कर उसका मल्ली नाम रक्खा। जैसे भगवतीसूत्र में महाबल नाम रखने का वर्णन है, वैसा ही यहां जानना। यावत् मल्ली कुमारी वृद्धि को प्राप्त हुई।

देवलोक से च्युत हुई वह भगवती मल्ली वृद्धि को प्राप्त हुई तो अनुपम शोभा वाली हुई, दासियों और दासों से परिवृत हुई और सखियों से घिरी रहने लगी। उसके मस्तक के केश काले थे, नयन सुन्दर थे, होठ बिम्बफल के समान लाल थे, धवल दांतोंकी कतार थी और शरीर श्रेष्ठ कमलके गर्भके समान सुकुमाल था। उसका श्वासोच्छ्वास विकस्वर कमल के समान गंध वाला था ॥७३॥

तत्पश्चात् विदेहराज की वह श्रेष्ठ कन्या बाल्यावस्था से मुक्त हुई यावत् रूप, यौवन यावत् लावण्य से अतीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हुई। तत्पश्चात् विदेहराज की वह उत्तम कन्या मल्ली कुछ कम सौ वर्ष की हो गई, तब वह उन (पूर्व के बालमित्र) छहों राजाओं को अपने विपुल अवधिज्ञान से देखती हुई रहने लगी। वे इस प्रकार-प्रतिबुद्धि यावत् पंचाल देश का राजा जितशत्रु।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो! जाओ और अशोकवाटिका में एक बड़ा मोहनगृह (मोह उत्पन्न करने वाला अतिशय रमणीय घर) बनाओ, जो अनेक सैंकड़ों खंभों से बना हुआ हो। उस मोहनगृह के एकदम मध्य भाग में छह गर्भ-गृह (कमरे) बनाओ। उन छहों गर्भगृहों के ठीक बीच में एक जालगृह (जिसके चारों ओर जाली लगी हो और जिसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हों ऐसा घर) बनाओ। उस जालगृह के मध्य में एक मणिमय पीठिका बनाओ।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार बना कर आज्ञा वापिस सौंपी।

तत्पश्चात् उस मल्ली कुमारी ने मणिपीठिका के ऊपर अपने जैसी, अपने जैसी त्वचा वाली, अपने सरीखी उम्र वाली, समान लावण्य, यौवन और गुणों से युक्त एक सुवर्ण की प्रतिमा बनवाई। उस प्रतिमा के मस्तक पर छिद्र था और उस पर कमल का ढक्कन था। इस प्रकार की प्रतिमा बनवा कर जो विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वह खाती थी, उस मनोज्ञ अशन पान खाद्य और स्वाद्य

में से प्रतिदिन एक-एक पिण्ड (कवल) लेकर उस स्वर्णमयी, मस्तक में छेद वाली यावत् प्रतिमा में मस्तक में से डालती रहती थी। तत्पश्चात् उस स्वर्णमयी यावत् मस्तक में छिद्र वाली प्रतिमा में एक-एक पिंड डाल-डाल कर कमल का ढक्कन ढंक देती थी। इससे उसमें ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी जैसे सर्प के मृतकलेवर की हो, यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट और अमनाम गंध उत्पन्न होती थी ॥ ७४ ॥

उस काल और उस समय में कौशल नामक देश था। उसमें साकेत नामक नगर था। उस नगर के उत्तर पूर्व (ईशान) दिशामें एक नागगृहसे युक्त उद्यान था।

उस साकेत नगर में प्रतिबुद्धि नामक इक्ष्वाकु वंश का राजा निवास करता था। पद्मावती उसकी पटरानी थी, सुबुद्धि अमात्य था, जो साम, दाम, भेद और दंड नीतियों में कुशल था यावत् राज्य-धुरा की चिन्ता करने वाला था। किसी समय एक बार पद्मावती देवी की नागपूजा का उत्सव आया। तब पद्मावती देवी नागपूजा का उत्सव आया जान कर प्रतिबुद्धि राजा के पास गई। पास जाकर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली—'स्वामिन्! कल मुझे नागपूजा करनी है। अतएव आपकी अनुमति पाकर मैं नागपूजा करने के लिए जाना चाहती हूं। स्वामिन्! आप भी मेरी नागपूजा में पधारो, ऐसी मेरी इच्छा है।'

तब प्रतिबुद्धि राजा ने पद्मावती देवी की यह बात स्वीकार की। तत्पश्चात् पद्मावती देवी, प्रतिबुद्धि राजा की अनुमति पाकर हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियो! कल मेरे नागपूजा होगी, सो तुम मालाकारों को बुलाओ और उन्हें इस प्रकार कहो—

'इस प्रकार निश्चय ही पद्मावतीदेवी के कल नागपूजा होगी। अतएव हे देवानुप्रियो! तुम जल और थल में उत्पन्न हुए पांचों रंगों के फूल नागगृह में ले जाओ। और एक श्रीदामकाण्ड (शोभित मालाओं का समूह) बना कर लाओ। तत्पश्चात् जल और थल में उत्पन्न होने वाले पांच वर्णों के फूलों से विविध प्रकार की रचना करके उसे सजाओ। उस रचना में हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनशाल (मैना) और कोकिल के समूह से युक्त तथा ईहामृग, वृषभ, तुरग आदि की रचना वाले चित्र बना कर महामूल्यवान् महान् जनों के योग्य और विस्तार वाला एक पुष्पमण्डप बनाओ। उस पुष्पमण्डप के मध्य भाग में एक महान् और गंध के समूह को छोड़ने वाला 'श्रीदामकाण्ड उल्लोच (छत-अगासी) पर लटकाओ। लटका कर पद्मावती देवी की राह देखते हुए ठहरो।' तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार कार्य करके यावत् पद्मावती की राह देखते हुए नागगृह में ठहरते हैं। तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही साकेत नगर में भीतर और बाहर पानी सींचो, सफाई करो और लिपाई करो' यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार कार्य करके आज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा--'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही लघुकरण से युक्त (द्रुतगामी अश्वों वाले) यावत् रथ को जोड़ कर उपस्थित करो।' तब वे भी उसी प्रकार रथ उपस्थित करते हैं। तत्पश्चात् पद्मावती देवी अन्तःपुर के अन्दर स्नान करके यावत् धार्मिक (धर्म कार्य के लिए काम में आने वाले) यान पर अर्थात् रथ पर आरूढ़ हुई।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अपने परिवार से परिवृत होकर साकेत नगर के बीच में होकर निकली। निकल कर जहां पुष्करिणी थी वहां आई। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। यावत् अत्यन्त शुचि होकर गीली साड़ी पहन कर वहां जो कमल आदि थे, उन्हें यावत् ग्रहण किया, ग्रहण करके जहां नागगृह था, वहां जाने के लिए विचार किया। तत्पश्चात् पद्मावती देवी की बहुत-सी दास--चेटियां (दासियां) फूलों की छाबड़ियां लेकर तथा धूप की कड़छियां हाथ में लेकर पीछे चलने लगीं।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी सर्व ऋद्धि के साथ--पूरे ठाठ के साथ--जहां नागगृह था, वहां आई। आकर नागगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर यावत् धूप खेई। धूप खेकर प्रतिबुद्धि राजा की प्रतीक्षा करती हुई वहीं ठहरी। तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा स्नान करके श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आसीन हुआ। कोरंट के फूलों सहित अन्य पुष्पों की मालाएं जिसमें लपेटी हुई थीं, ऐसा छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। यावत् उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। उसके आगे--आगे विशाल घोड़े, हाथी, रथ और पैदल योद्धा--यह चतुरंगी सेना चली। सुभटों के समूह के समूह चले। वह साकेत नगर के मध्यभाग में होकर निकला, निकल कर जहां नागगृह था, वहां आया। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरा। उतर कर नाग पर दृष्टि पड़ते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके पुष्प--मंडप में प्रवेश किया, प्रवेश करके वहां एक महान् श्रीदामकाण्ड देखा।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा उस श्रीदामकाण्ड को बहुत देर तक देखता रहा। देख कर उस श्रीदामकाण्ड के विषय में उसे आश्चर्य उत्पन्न हुआ। उसने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् सन्निवेशों आदि में घूमते हो, और बहुत से राजाओं एवं ईश्वरों आदि के गृह में प्रवेश करते हो; तो क्या तुमने ऐसा सुन्दर श्रीदामकाण्ड कहीं पहले देखा है, जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?

तब सुबुद्धि अमात्य ने प्रतिबुद्धि राजा से कहा--हे स्वामिन् ! मैं एक बार किसी समय अपके दौत्यकार्य से मिथिला राजधानी गया था। वहां मैंने कुंभ राजा

की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा, विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली के संवत्सर प्रतिलेखनउत्सव (जन्मगांठ के महोत्सव) के समय दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था। उस श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवां अंश भी नहीं पाता।

तत्पश्चात् प्रतिवुद्धि राजा ने सुवुद्धि मंत्री से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली कैसी है, जिसकी जन्मगांठ के उत्सव में बनाये गये श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवां अंश भी नहीं पाता ?' तब सुवुद्धि मंत्री ने इक्ष्वाकुराज प्रतिवुद्धि से कहा–इस प्रकार स्वामिन् ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली सुप्रतिष्ठित और कछुए के समान उन्नत एवं सुन्दर चरण वाली है। इत्यादि वर्णन जंवूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि के अनुसार जान लेना चाहिए।

तत्पश्चात् प्रतिवुद्धि राजा ने सुवुद्धि अमात्य के पास से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके और श्रीदामकाण्ड की बात से हर्षित होकर दूत को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहां कुंभ राजा की पुत्री, पद्मावती देवी की आत्मजा और विदेह की प्रधान राजकुमारी मल्ली को मेरी पत्नी के रूप में मंगनी करो। फिर भले ही उसके लिए सारा राज्य शुल्क–मूल्य में देना पड़े। तत्पश्चात् उस दूत ने प्रतिवुद्धि राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर उसकी आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके जहां अपना घर था, और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आया। आकर (आगे, पीछे और अगल–वगल में) चार घंटों वाले अश्वरथ को तैयार कराया। तैयार करवा कर उस पर आरूढ़ हुआ। यावत् घोड़ों, हाथियों और वहुत से सुभटों के समूह के साथ साकेत नगर से निकला। निकल कर जहां विदेह जनपद था और जहां मिथिला राजधानी थी, वहां जाने का विचार किया–चल दिया ॥७५॥

उस काल और उस समयमें अंग नामक जनपद था। उसमें चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरीमें चन्द्रछाय नामक अंगराज-अंग देशका राजा था। उस चम्पा नगरीमें अर्हन्नक प्रभृति वहुतसे सांयात्रिक (परदेश जाकर व्यापार करने वाले) नौवणिक (नौकाओंसे व्यापार करने वाले) रहते थे। वे ऋद्धि-सम्पन्न थे और किसीसे पराभूत होने वाले नहीं थे। उनमें अर्हन्नक श्रमणोपासक (श्रावक) भी था, वह जीव अजीव आदि तत्त्वोंका ज्ञाता था। यहां श्रावक का वर्णन जान लेना चाहिए। तत्पश्चात् वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौवणिक् किसी समय एक वार एक जगह इकट्ठे हुए, तब उनमें आपसमें इस प्रकार कथासंलाप (वार्तालाप) हुआ—

'हमें गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर बेचने योग्य घृत आदि), मेय (पायली आदिमें माप कर-भरकर बेचने योग्य अनाज आदि) और परिच्छेद्य (काटकर बेचने योग्य वस्त्र आदि), यह चार प्रकार का भांड (सौदा) लेकर, जहाज द्वारा लवणसमुद्रमें प्रवेश करना योग्य है।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने परस्परमें यह बात अंगीकार की, अंगीकार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भांड को ग्रहण किया। ग्रहण करके छकड़ा-छकड़ी तैयार किये। तैयार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भांडके छकड़ी-छकड़े भरे। भर कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्तमें अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। बनवाकर भोजन की वेलामें मित्रों एवं ज्ञातिजनोंको जिमाया, यावत् उनकी अनुमति ली। अनुमति लेकर गाड़ी-गाड़े जोते। जोतकर चम्पा नगरीके बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहां गंभीर नामक पोतपट्टन (बन्दरगाह) था, वहां आये।

गंभीर नामक पोतपट्टनमें आकर उन्होंने गाड़ी-गाड़े छोड़ दिये। छोड़कर जहाज सज्जित किये। सज्जित करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-चार प्रकारका भांड भरा। भर कर उसमें चावल, आटा, तेल, घी, गोरस (दही), पानी, पानीके बरतन, औषध, भेषज, घास, लकड़ी, वस्त्र, शस्त्र और भी जहाज में रखने योग्य अन्य वस्तुएं जहाज में भरीं। भरकर प्रशस्त तिथि करण नक्षत्र और मुहूर्त्तमें, विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवा कर मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि को जिमा कर उनसे अनुमति ली। अनुमति लेकर जहां नौका का स्थान था, वहां (समुद्र किनारे) आये।

तत्पश्चात् उन अर्हन्नक आदि यावत् नौका वणिकोंके परिजन (परिवार के लोग) यावत् उस प्रकारके मनोहर वचनोंसे अभिनन्दन करते हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार बोले–'हे आर्य (पितामह)! तात! भ्रात! मामा! भागिनेय! आप इस भगवान् समुद्र द्वारा पुनः पुनः रक्षण किये जाते हुए चिरजीवी हों। आपका मंगल हो! हम आपको अर्थका लाभ करके, इष्ट कार्य करके निर्दोष और ज्योंके त्यों घर पर आया शीघ्र देखें।' इस प्रकार कह कर निर्विकार, स्नेहमय, दीर्घ, पिपासा वाली—सतृष्ण और अश्रुप्लावित दृष्टिसे देखते-देखते वे लोग मुहूर्त्त मात्र—थोड़ी देर—वहीं खड़े रहे।

तत्पश्चात् नौकामें यथायोग्य कार्य समाप्त होने पर, सरस रक्तचंदन का पांचों उंगलियों का थापा (छापा) लगाने पर, धूप खेई जाने पर, समुद्रकी वायु को ध्यानमें रखकर, वलयवाहा (लम्बे काष्ठ–वल्ले) यथास्थान संभाल कर रख लेने पर, श्वेत पताकाएं ऊपर फहरा देने पर, वाद्यों की मधुर ध्वनि होने पर, विजयकारक सब शकुन होने पर, यात्राके लिए राजा का आदेश पत्र प्राप्त हो जाने पर,

महान और उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् ध्वनि से, अत्यंत क्षुब्ध हुए महासमुद्रकी गर्जना के समान पृथ्वीको शब्दमय करते हुए यावत् वे वणिक एक तरफसे नौका पर चढ़े। तत्पश्चात् वन्दीजनने इस प्रकार वचन कहा—हे व्यापारियो! तुम सब को अर्थकी सिद्धि हो, तुम्हें कल्याण प्राप्त हुए हैं, तुम्हारे समस्त पाप (विघ्न) नष्ट हुए हैं। इस समय पुष्य नक्षत्र चन्द्रमा से युक्त है और 'विजय' नामक मुहूर्त्त है अतः यह देश और काल यात्रा के लिए उत्तम है।

तत्पश्चात् वंदीजनके द्वारा इस प्रकार वाक्य कहने पर हृष्टतुष्ट हुए कुक्षिधार-नौका की बगलमें रहकर वल्ले चलाने वाले, कर्णधार (खिवैया), गर्भज-नौकाके मध्यमें रहकर छोटे-मोटे कार्य करने वाले और वे सांयात्रिक नौकावणिक अपने-अपने कार्यमें लग गये। फिर भांडोंसे परिपूर्ण मध्य भाग वाली और मंगल से परिपूर्ण अग्रभाग वाली उस नौका को बंधनोंसे मुक्त किया। तत्पश्चात् वह नौका बन्धनोंसे मुक्त हुई, एवं पवनके बलसे प्रेरित हुई। उस पर सफेद कपड़े का पाल चढ़ा हुआ था, अतएव ऐसी जान पड़ती थी जैसे पंख फैलाये कोई गरुड़-युवती हो। वह गंगाके जलके तीव्र प्रवाह के वेगसे क्षुब्ध होती हुई हजारों मोटी तरंगों और छोटी तरंगों के समूह को उल्लंघन करती हुई—उल्लंघन करती हुई वह कुछ अहोरात्रोंमें लवणसमुद्रमें कई सौ योजन दूर चली गई।

तत्पश्चात् कई सौ योजन लवणसमुद्र में पहुँचे हुए उन अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौकावणिकों को बहुत से सैकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत हुए—होने लगे। वे उत्पात इस प्रकार थे—अकाल में गर्जना होने लगी, अकाल में बिजली चमकने लगी, अकाल में गंभीर गड़गड़ाहट होने लगी। बार-बार आकाश में देवता (मेघ) नृत्य करने लगे। एक महान् पिशाच का रूप दिखाई दिया।

वह पिशाच ताड़ के समान लंबी जांघों वाला था और उसकी बाहु आकाश तक पहुँची हुई थीं। वह कज्जल, काले चूहे और भैंसे के समान काला था। उसका वर्ण जल—भरे मेघ के समान था। उसके होठ लम्बे थे और दांतों के अग्रभाग बाहर निकले थे। उसने अपनी एक सी दोनों जीभें मुंह से बाहर निकाल रक्खी थीं। उसके गाल मुंह में धंसे हुए थे। उसकी नाक छोटी और चपटी थी। भृकुटि डरावनी और अत्यन्त वक्र थी। नेत्रों का वर्ण जुगनू के समान चमकता हुआ-लाल था। देखने वाले को घोर त्रास पहुंचाने वाला था। छाती चौड़ी थी, कुक्षि विशाल और लंबी थी। हंसते और चलते समय उसके अवयव ढीले दिखाई देते थे। वह नाच रहा था, आकाश को मानों फोड़ रहा था, सामने आ रहा था, गर्जना कर रहा था और बहुत—बहुत ठहाका मार रहा था। काले कमल, भैंस के सींग, नील, अलसी के फूल के समान काली तथा छुरे की धार की

तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर आते हुए ऐसे पिशाच को देखा।

(पूर्ववर्णित तालपिशाचका ही यहां विशेष वर्णन किया है। यह दूसरा गम है)तत्पश्चात् अर्हन्नक के सिवाय दूसरे सांयात्रिक नौका-वणिकों ने एक बड़े तालपिशाच को देखा। उसकी जांघें ताड़ वृक्ष के समान लम्बी थीं और बाहुएं आकाश तक पहुँची हुई खूब लम्बी थीं। उसका मस्तक फूटा हुआ था, अर्थात् मस्तक के केश बिखरे थे। वह भ्रमरों के समूह, उत्तम उड़द के ढर और भैंसे के समान काला था। जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था। उसके नाखून सूप (छाज) के समान थे। उसकी जीभ हल के फाल के समान थी—अर्थात् बावन पल प्रमाण अग्नि में तपाये गये लोहे के फाल के समान लाल, चमचमाती और लम्बी थी। उसके होठ लंबे थे। उसका मुख धवल गोल, पृथक् पृथक्, तीखी, स्थिर, मोटी और टेढ़ी दाढोंसे व्याप्त था। उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग बिना म्यान की धारदार तलवार-युगलके समान थे, पतले थे, चपल थे, उनमें से निरन्तर लार टपक रही थी। वे रस-लोलुप थे, चंचल थे, लपलपा रहे थे और मुख से बाहर निकले हुए थे। मुख फटा होने से उसका लाल २ तालु खुला दिखाई देता था और वह बड़ा विकृत, वीभत्स और लार झराने वाला था। उसके मुख से अग्नि की ज्वालाएं निकल रही थीं, अतएव वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे हिंगुलु से व्याप्त अंजनगिरि की गुफा रूप बिल हो। सिकुड़े हुए मोठ (चरस) के समान उसके गाल सिकुड़े हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियां, शरीर की चमड़ी, होठ और गाल—सब सल वाले थे। उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी, टेढ़ी थी और भग्न थी, अर्थात् ऐसी जान पड़ती थी जैसे लोहे के घन से कूटपीट दी गई हो। उसके दोनों नथुनों (नासिकापुटों) से क्रोध के कारण निकलता हुआ श्वासवायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था। उसका मुख मनुष्य आदि के घात के लिए रचित होने से भीषण दिखाई देता था। उसके दोनों कान चपल और लम्बे थे, उनकी शष्कुली ऊंचे मुख वाली थी, उन पर लम्बे-लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के पास की हड्डी (शंख) तक को छूते थे। उसके नेत्र पीले और चमकदार थे। उसके ललाट पर भृकुटि चढ़ी थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी। उसकी ध्वजा के चारों ओर मनुष्यों के मुंडों की माला लिपटी हुई थी। विचित्र प्रकार के गोनस जाति के सर्पों का उसने बख्तर बना रक्खा था। उसने इधर-उधर फिरते और फुफकारने वाले सर्पों, बिच्छुओं, गोहों, चूहों, नकुलों और गिरगिटोंकी विचित्र प्रकार की उत्तरासंग जैसी माला पहनी थी। उसने भयानक फन वाले और धमधमाते हुए दो काले सांपों के लम्बे लटकते कुंडल धारण किये थे। अपने दोनों कंधों पर बिलाव और सियार रक्खे थे। अपने मस्तक पर देदीप्यमान एवं घू-घू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था।

ए

भीम और भयंकर प्रतीत होता था। कायर जनों के हृदय को दलन करने वाला था। वह देदीप्यमान अट्टहास कर रहा था। उसका शरीर चर्बी, रक्त, मवाद, मांस और मल से मलिन और लिप्त था। वह प्राणियों को त्रास उत्पन्न करता था। उसकी छाती चौड़ी थी। उसने श्रेष्ठ व्याघ्र का ऐसा चित्र विचित्र चमड़ा पहन रक्खा था, जिसमें (व्याघ्र के) नाखून (रोम), मुख, नेत्र और कान आदि अवयव पूरे और साफ दिखाई पड़ते थे। उसने ऊपर उठाये हुए दोनों हाथों पर रस और रुधिर से लिप्त हाथी का चमड़ा फैला रक्खा था। वह पिशाच नौका पर बैठे हुए लोगों की अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, अनिष्ट, उत्तापजनक, स्वरूप से ही अशुभ, अप्रिय तथा अकान्त-अनिष्ट स्वर वाली (अमनोहर) वाणी से तर्जना कर रहा था। ऐसा भयानक पिशाच उन लोगों को दिखाई दिया।

उन लोगों ने तालपिशाच के रूप को नौका की ओर आते देखा। देखकर वे डर गये, अत्यन्त भयभीत हुए, एक दूसरे के शरीर से चिपट गए और बहुत से इन्द्रों की, स्कंदों (कार्तिकेय) की तथा रुद्र, वैश्रमण, और नागदेवों की, भूतों की, यक्षों की, दुर्गा की तथा कोट्टक्रिया (महिषवाहिनी दुर्गा) देवी की बहुत—बहुत सैंकड़ों मनौतियां मनाने लगे।

उस समय अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाचरूप को आते देखा। उसे देख कर वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ, त्रास को प्राप्त नहीं हुआ, चलायमान नहीं हुआ, संभ्रान्त नहीं हुआ, व्याकुल नहीं हुआ, उद्विग्न नहीं हुआ। उसके मुख का राग और नेत्रों का वर्ण बदला नहीं। उसके मन में दीनता या खिन्नता उत्पन्न नहीं हुई। उसने पोतवहन के एक भाग में जाकर वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके उस स्थान पर बैठ गया और दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—

'अरिहन्त भगवंत यावत् सिद्धि को प्राप्त प्रभुको नमस्कार हो (इस प्रकार नमोत्थुणं का पूरा पाठ उच्चारण किया)। फिर कहा—'यदि मैं इस उपसर्गसे मुक्त हो जाऊं तो मुझे यह कायोत्सर्ग पारना कल्पता है, और यदि इस उपसर्गसे मुक्त न होऊं तो यही प्रत्याख्यान कल्पता है, अर्थात् कायोत्सर्ग पारना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कह कर उसने सागारी अनशनको ग्रहण किया। तत्पश्चात् वह पिशाचरूप वहां आया, जहां अर्हन्नक श्रमणोपासक था। आकर अर्हन्नक से इस प्रकार बोला—'अरे अप्रार्थित-मौत की प्रार्थना (इच्छा) करने वाले! यावत् लज्जा कीर्त्ति बुद्धि और लक्ष्मीसे परिवर्जित! तुझे शीलव्रत-अणुव्रत, गुणव्रत, विरमण-रागादिकी विरति का प्रकार, नवकारसी आदि प्रत्याख्यान और पौषधोपवाससे चलायमान होना अर्थात् जिस

भांगेसे जो व्रत ग्रहण किया हो उसे वदल कर दूसरे भांगेसे कर लेना, क्षोभयुक्त होना अर्थात् 'इस व्रत को इसी प्रकार पालूं या त्याग दूं' ऐसा सोचकर क्षुब्ध होना, एक देशसे खंडित करना, पूरी तरह भंग करना, देशविरति का सर्वथा त्याग करना अथवा सम्यक्त्वका भी परित्याग करना नहीं कल्पता है। परन्तु यदि तू शीलव्रत आदि का परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस पोतवहन को दो उंगलियों पर उठाए लेता हूं और सात आठ तल की ऊंचाई तक आकाशमें उछाले देता हूं और उछाल कर इसे जलमें डुबाए देता हूं, जिससे तू आर्त्तध्यानके वशीभूत होकर, असमाधिको प्राप्त होकर जीवनसे रहित हो जायेगा।

तव अर्हन्नक श्रमणोपासकने उस देवको मन ही मन इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! मैं अर्हन्नक नामक श्रावक हूं और जड़-चेतनके स्वरूप का ज्ञाता हूं (मुझे कुछ ऐसा—वैसा अज्ञानी या कायर मत समझना)। निश्चय ही मुझे कोई देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचनसे चलायमान नहीं कर सकता, क्षुब्ध नहीं कर सकता और विपरीत भाव उत्पन्न नहीं कर सकता। तुम्हारी जो श्रद्धा (इच्छा) हो सो करो।' इस प्रकार कह कर अर्हन्नक निर्भय, अपरिवर्त्तित मुख के रंग और नेत्रोंके वर्ण वाला, दैन्य और मानसिक खेदसे रहित, निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्म-ध्यानमें लीन वना रहा।

तत्पश्चात् वह दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक श्रमणोपासकसे दूसरी वार और तीसरी वार कहने लगा—'अरे अर्हन्नक!' इत्यादि पूर्ववत्। यावत् अर्हन्नकने वही उत्तर दिया और वह दीनता एवं मानसिक खेदसे रहित, निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्मध्यानमें लीन वना रहा। तत्पश्चात् उस दिव्य पिशाचरूपने अर्हन्नकको धर्म-ध्यानमें लीन देखा। देखकर उसने और अधिक कुपित होकर उस पोतवहनको दो उंगलियोंसे ग्रहण किया। ग्रहण करके सात-आठ मंजिल की या ताड़ वृक्षोंकी ऊंचाई तक ऊपर उठा कर अर्हन्नकसे कहा—'अरे अर्हन्नक! मौतकी इच्छा करने वाले! तुझे शीलव्रत आदिका त्याग करना नहीं कल्पता है, इत्यादि पूर्ववत्। इस प्रकार कहने पर भी अर्हन्नक किंचित् भी चलायमान न हुआ और धर्मध्यानमें ही लीन वना रहा।

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप जब अर्हन्नकको निर्ग्रन्थप्रवचनसे चलायमान करनेमें समर्थ न हुआ, तव वह उपशान्त हो गया, यावत् मनमें खेद को प्राप्त हुआ। फिर उसने उस पोतवहन को धीरे-धीरे उतार कर जलके ऊपर रक्खा। रखकर पिशाचके दिव्य रूपका संहरण किया और दिव्य देवके रूप की विक्रिया की। विक्रिया करके, अधर स्थिर होकर घुंघुरुओं की छम्-छम् की ध्वनिसे युक्त

वस्त्राभूषण धारण करके अर्हन्नक श्रमणोपासकसे इस प्रकार कहा—'हे अर्हन्नक ! तुम धन्य हो। हे देवानुप्रिय ! तुम्हारा जीवन सफल है कि जिसको अर्थात् तुमको निर्ग्रन्थप्रवचनमें इस प्रकार की प्रतिपत्ति लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और आचरण में लानेके कारण सम्यक् प्रकारसे सन्मुख आई है। देवानुप्रिय ! देवों के इन्द्र और देवोंके राजा शक्रने सौधर्म कल्पमें, सौधर्मावतंसक नामक विमानमें और सुधर्मा सभामें, बहुतसे देवोंके मध्यमें स्थित होकर महान् शब्दोंसे इस प्रकार कहा—इस प्रकार निस्सन्देह जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें, भरत क्षेत्रमें, चम्पा नगरीमें अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक जीव अजीव आदि तत्त्वोंका ज्ञाता है। उसे निश्चय ही कोई देव या दानव निर्ग्रन्थप्रवचनसे चलायमान करनेमें यावत् सम्यक्त्वसे च्युत करनेमें समर्थ नहीं है।'

'तब देवानुप्रिय ! देवेन्द्र शक्रकी इस बात पर मुझे श्रद्धा नहीं हुई। यह बात रुची नहीं। तब मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं जाऊं और अर्हन्नकके समीप प्रकट होऊं। पहले जानूं कि अर्हन्नक को धर्म प्रिय है अथवा धर्म प्रिय नहीं है। वह दृढ़धर्मा है अथवा दृढ़धर्मा नहीं है ? वह शीलव्रत और गुणव्रत आदिसे चलायमान होता है, यावत् उनका परित्याग करता है, अथवा नहीं करता ? मैंने इस प्रकार विचार किया। विचार करके अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। उपयोग लगाकर देवानुप्रिय ! मैंने जाना। जानकर ईशान कोणमें जाकर उत्तरवैक्रिय करनेके लिए वैक्रिय समुद्घात किया। तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्र गतिसे जहां लवणसमुद्र था और जहां देवानुप्रिय (तुम) थे, वहां मैं आया। आकर मैंने देवानुप्रिय को उपसर्ग किया। मगर देवानुप्रिय भयभीत न हुए, त्रासको प्राप्त न हुए। अतः देवेन्द्र देवराजने जो कहा था, वह अर्थ सत्य सिद्ध हुआ। मैंने देखा कि देवानुप्रिय को ऋद्धि-गुणरूप समृद्धि, द्युति—तेजस्विता, यश, शारीरिक बल यावत् पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका भली भांति सेवन किया गया है। तो हे देवानुप्रिय ! मैं आपको खमाता हूं। आप क्षमा करें। देवानुप्रिय ! पुनः (पुनः) मैं ऐसा नहीं करूंगा।' इस प्रकार कह कर दोनों हाथ जोड़कर देव अर्हन्नक के पांवों में गिर गया और इस घटनाके लिए बार-बार विनयपूर्वक क्षमायाचना करने लगा। क्षमायाचना करके अर्हन्नक को दो कुंडल—युगल भेंट किये। भेंट करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशामें लौट गया ॥७६॥

तत्पश्चात् अर्हन्नकने उपसर्गरहित जानकर प्रतिमा पारी अर्थात् कायोत्सर्ग पारा। तदनन्तर वे अर्हन्नक आदि यावत् नौकावणिक दक्षिण दिशाके अनुकूल पवन के कारण जहां गम्भीर नामक पोतपट्टन था, वहां आये। आकर उस पोत (नौका या जहाज) को रोककर गाड़ी-गाड़े तैयार किये। तैयार करके वह गणिम,

धरिम, मेय और पारिच्छेद्य भांडको गाड़ी-गाड़ोंमें भरा। भरकर गाड़ी-गाड़े जोते। जोतकर जहां मिथिला नगरी थी, वहां आये। आकर मिथिला नगरीके वाहर उत्तम उद्यानमें गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़कर मिथिला नगरीमें जानेके लिए वह महान् अर्थ वाला, महामूल्य वाला, महान् जनोंके योग्य, विपुल और राजाके योग्य भेंट और कुंडलोंकी की जोड़ी ली। लेकर मिथिला नगरीमे प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कुंभ राजा था, वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़कर—मस्तक पर अंजलि करके यावत् वह महान् अर्थ वाली भेंट और वह दिव्य कुंडलयुगल राजाके समीप ले गये, यावत् राजाके सामने रख दिया।

तत्पश्चात् कुंभ राजाने उन नौकावणिकोंकी वह भेंट यावत् अंगीकार की। अंगीकार करके विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्लीको वुलाया। वुलाकर वह दिव्य कुंडलयुगल विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली को पहनाया। पहना कर उसे विदा कर दिया। तत्पश्चात् कुंभ राजाने उन अर्हन्नक आदि यावत् वणिकों का विपुल अशन आदिसे तथा वस्त्र गंध, माला और अलंकारसे सत्कार किया। उनका शुल्क माफ कर दिया। राजमार्गके मध्यमें उनको उतारा दिया और फिर उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक वणिक् जहां राजमार्ग के मध्य में आवास था, वहां आये। आकर भांड का व्यापार करने लगे। व्यापार करके उन्होंने प्रतिभांड (सौदे के वदले में दूसरा सौदा) खरीदा। खरीद कर उसके गाड़ी-गाड़े भरे। भर कर जहां गंभीर पोतपट्टन था, वहां आये। आकर के पोत-वहन सजाया—तैयार किया। तैयार करके उसमें सव भांड भरा। भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल वायु के कारण जहां चम्पा नगरी का पोतस्थान (वन्दरगाह) था, वहां आये। आकर पोत को रोक कर गाड़ी-गाड़े ठीक किये। ठीक करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—चार प्रकार का भांड उनमें भरा। भर कर यावत् वड़ी भेंट और दिव्य कुंडलयुगल ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां अंगराज चन्द्रछाय था, वहां आये। आकर वह वड़ी भेंट यावत् राजा के सामने रक्खी।

तत्पश्चात् चन्द्रछाय अंगराज ने उस दिव्य एवं महार्थ कुंडलयुगल (आदि) को स्वीकार किया। स्वीकार करके अर्हन्नक आदि से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! आप वहुत-से ग्रामों, आकरों आदि में भ्रमण करते हो तथा वार-वार लवणसमुद्र में जहाज द्वारा प्रवेश करते हो तो आपने किसी जगह कोई भी आश्चर्य पहले देखा है?'

तव उन अर्हन्नक आदि वणिकों ने चन्द्रच्छाय नामक अंग देश के राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन्! हम अर्हन्नक आदि वहुत-से सांयात्रिक नौकावणिक् इसी चम्पा नगरी में निवास करते हैं। एक वार किसी समय हम

गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भाण्ड भर कर—इत्यादि सब पहले की भांति ही न्यूनता—अधिक के बिना कहना—यावत् कुंभ राजा के पास पहुँचे और भेंट उसके सामने रक्खी। उस समय कुंभ राजा ने मल्ली नामक विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या को वह दिव्य कुंडलयुगल पहनाया। पहना कर उसे विदा कर दिया। तो हे स्वामिन्! हमने कुंभ राजा के भवन में विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली आश्चर्य रूप में देखी है। मल्ली नामक विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या जैसी सुन्दर है, वैसी दूसरी कोई देव कन्या, आदि भी नहीं है।

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाय राजा ने अर्हन्नक आदि का सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके विदा किया। तदनन्तर वणिकों के कथन से उत्पन्न हुआ है हर्ष जिसको ऐसे चन्द्रच्छाय ने दूत को बुलाकर कहा—इत्यादि सब पहले के समान कहना। यावत् भले ही वह कन्या मेरे सारे राज्य के मूल्य की हो, तो भी स्वीकार करना। दूत हर्षित होकर मल्ली कुमारी की मंगनी के लिए चल दिया।।७७।।

उस काल और उस समय में कुणाल नामक जनपद था। उस जनपद में श्रावस्ती नामक नगरी थी। उसमें कुणाल देश का अधिपति रुक्मि नामक राजा था। उस रुक्मि राजा की पुत्री और धारिणी देवी की कूंख से जन्मी सुबाहु नामक कन्या थी। उसके हाथ-पैर आदि सब अवयव सुन्दर थे। वह रूप में यौवन में और लावण्य में उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी। उस सुबाहु बालिका का किसी समय चातुर्मासिक स्नान (जलक्रीड़ा) का उत्सव आया।

तब कुणालाधिपति रुक्मि राजा ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया जाना। जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! कल सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा। अतएव तुम राजमार्ग के मध्य में, चौक में, (पुष्प मंडप में) जल और थल में उत्पन्न होने वाले पांच वर्णों के फूल लाओ और एक श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) लटकाओ।' यह आज्ञा सुन कर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार कार्य किया।

तत्पश्चात् कुणाल देश के अधिपति रुक्मि राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया। उसे बुला कर कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजमार्ग के मध्य में, पुष्पमंडप में विविध प्रकार के पंचरंगे चावलों से नगर का आलेखन करो। उसके ठीक मध्य भाग में एक पाट (बाजौठ) रक्खो।' यह सुन कर उन्होंने उसी प्रकार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तत्पश्चात् कुणालाधिपति रुक्मि हाथी के श्रेष्ठ स्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। चतुरंगी सेना, बड़े-बड़े योद्धाओं और अंतःपुर के परिवार आदि से परिवृत होकर, सुबाहुकुमारी को आगे करके, जहां राजमार्ग था और जहां पुष्पमंडप था, वहां

आया। आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरा। उतर कर पुष्पमंडप में प्रवेश किया। प्रवेश करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् अन्त:पुर की स्त्रियों ने सुबाहुकुमारी को उस पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने आदि के कलशों से उसे स्नान कराया, स्नान करा कर सब अलंकारों से विभूषित किया। फिर पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिये लाई। तब सुबाहुकुमारी रुक्मि राजा के पास आई। आ करके उसने पिता के चरणों का स्पर्श किया।

उस समय रुक्मि राजा ने सुबाहुकुमारी को अपनी गोद में बिठा लिया। बिठा कर सुबाहुकुमारी के रूप, यौवन और लावण्य को देखने से उसे विस्मय हुआ। विस्मित होकर उसने वर्षधर को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुत-से ग्रामों, आकरों, नगरों और गृहों मे प्रवेश करते हो, तो तुमने कहीं भी किसी राजा या ईश्वर (धनवान्)के यहां ऐसा मज्जनक (स्नान महोत्सव) पहले देखा है, जैसा इस सुबाहुकुमारी का मज्जन—महोत्सव है?'

तत्पश्चात् वर्षधर (अन्त:पुर के रक्षक पंढ—विशेष) ने रुक्मि राजा से हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—हे स्वामिन्! एक बार मैं आपके दूत के रूप में मिथिला गया था। मैंने वहां कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली का स्नानमहोत्सव देखा था। सुबाहुकुमारी का यह मज्जन-उत्सव उस मज्जनमहोत्सव के लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता।

तत्पश्चात् वर्षधर से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके, मज्जन—महोत्सव का वृत्तांत सुनने से जनित हर्ष वाले रुक्मि राजा ने दूत को बुलाया। शेष सब वृत्तान्त पहले के समान समझना (दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—मिथिला नगरी में जाकर मेरे लिए मल्ली कुमारी की मंगनी करो, बदले में सारा राज्य देना पड़े तो उसे भी देना स्वीकार करना, आदि) यह सुन कर दूत ने मिथिला नगरी जाने का निश्चय किया—चल दिया॥ ७८॥

उस काल और उस समय में काशी नामक जनपद था। उस जनपद में वाराणसी नामक नगरी थी। उसमें काशीराज शंख नामक राजा था। तत्पश्चात् किसी समय विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली के उस दिव्य कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया। तब कुंभ राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया और कहा—देवानुप्रियो! इस दिव्य कुंडलयुगल के जोड़ को सांध दो।

तत्पश्चात् सुवर्णकारोंकी श्रेणीने 'तथा-ठीक है' इस प्रकार कह कर इस अर्थ

को स्वीकार किया। स्वीकार करके उस दिव्य कुंडलयुगल को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां सुवर्णकारों के स्थान (औजार रखने के स्थान) थे, वहां आये। आकर के उन स्थानों पर कुंडलयुगल रक्खा। रख कर बहुत-से उपायों से उस कुंडलयुगल को परिणत करते हुए उसका जोड़ सांधना चाहा, परन्तु उसे सांधने में समर्थ न हो सके।

तत्पश्चात् वह सुवर्णकार श्रेणी कुंभ राजा के पास आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर और जय-विजय शब्दों से वधा कर इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! आज आपने हम लोगों को बुलाया था। बुला कर यह आदेश दिया था कि कुंडल-युगल की संधि जोड़कर मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ। तब हमने वह दिव्य कुंडल-युगल लिया। हम अपने स्थानों पर गये, बहुत उपाय किये, परन्तु उस संधि को जोड़ने के लिए शक्तिमान न हो सके। अतएव हे स्वामिन्! हम इस दिव्य कुंडल-युगल के समान दूसरा कुंडलयुगल बना दें।'

सुवर्णकारों का कथन सुन कर और हृदय में धारण करके कुम्भराजा क्रुद्ध हो गया। ललाट में तीन सलवट डाल कर इस प्रकार कहने लगा—'तुम कैसे सुनार हो जो इस कुंडलयुगल का जोड़ भी सांध नहीं सकते? अर्थात् तुम लोग बड़े मूर्ख हो! ऐसा कह कर उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् कुंभ राजा द्वारा देश निर्वासनको आज्ञा पाये हुए वे स्वर्णकार अपने-अपने घर आये। आ करके अपने भांड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहां काशी जनपद था और जहां वाराणसी नगरी थी, वहां आये। वहां आकर अग्र (उत्तम) उद्यानमें गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़ कर महान् अर्थ वाला यावत् उपहार लेकर, वाराणसी नगरी के बीचोंबीच होकर जहां काशीराज शंख था वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् जय-विजय शब्दों से वधाया। वधा कर वह उपहार राजा के सामने रक्खा। रख कर शंख राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

'हे स्वामिन्! राजा कुंभ के द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित किये हुए हम शीघ्र यहां आये हैं। स्वामिन्! हम आपकी भुजाओं की छाया में ग्रहण किये हुए होकर अर्थात् आपके संरक्षण में रह कर निर्भय और उद्वेगरहित होकर सुखपूर्वक निवास करना चाहते हैं।' तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से कहा—'देवानुप्रियो! कुंभ राजा ने तुम्हें देश-निकाले की आज्ञा क्यों दी?'

तब सुवर्णकारों ने शंख राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया था। तब कुंभ राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया। बुलाकर

(उसे सांधने के लिए कहा। हम उसे सांध न सके, अतः) यावत् देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

तत्पश्चात् शंख राजाने सुवर्णकारों से कहा—'देवानुप्रियो! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या कैसी है?' तब सुवर्णकारों ने शंखराज से कहा—'स्वामिन्! जैसी विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है, वैसी कोई देवकन्या अथवा गंधर्वकन्या भी नहीं है।' तत्पश्चात् कुंडल की जोड़ी से जनित हर्ष वाले शंख राजा ने दूत को बुलाया। इत्यादि सब वृत्तांत पूर्ववत् जानें; अर्थात् शंख राजा ने भी मल्ली कुमारी की मंगनी के लिए दूत भेज दिया और उससे कह दिया कि मल्ली कुमारी के शुल्क रूप में सारा राज्य देना पड़े तो दे देना। दूत ने मिथिला जाने का निश्चय कर लिया॥ ७९॥
उस काल और उस समय में कुरु नामक जनपद था, उसमें हस्तिनापुर नगर था। अदीनशत्रु नामक वहां राजा था। यावत् वह सुखपूर्वक विचरता था। उस मिथिला नगरी में कुंभ राजा का पुत्र, प्रभावती का आत्मज और मल्ली कुमारी का अनुज मल्लदिन्न नामक कुमार यावत् युवराज था। उस समय एक बार मल्लदिन्न कुमार ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—तुम जाओ और मेरे प्रमद वन (घर के उद्यान) में एक बड़ी चित्रसभा का निर्माण करो, जो अनेक स्तंभों से युक्त हो, इत्यादि। यावत् उन्होंने ऐसा ही करके आज्ञा वापिस लौटा दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने चित्रकारों की श्रेणी को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम लोग चित्रसभा को *हाव, भाव, विलास और विब्बोक से युक्त रूपों से चित्रित करो। चित्रित करके यावत् मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।' तत्पश्चात् चित्रकारों की श्रेणी ने 'तथा—बहुत ठीक' इस प्रकार कह कर कुमार की आज्ञा शिरोधार्य की। फिर वे अपने-अपने घर गये। घर जाकर उन्होंने तूलिकाएं लीं और रंग लिये। लेकर जहां चित्रसभा थी वहां आये। आकर चित्रसभा में प्रवेश किया, प्रवेश करके भूमिके विभागों का विभाजन किया। विभाजन करके अपनी-अपनी भूमि को सज्जित किया—चित्रों के योग्य बनाया। सज्जित करके चित्रसभा को हाव—भाव आदिसे युक्त चित्र अंकित करने में लग गये।

---

* हाव-भाव आदि साधारणतया स्त्रियों की चेष्टाओं को कहते हैं। उनका परस्पर अन्तर यह है—हाव अर्थात् मुख का विकार, भाव अर्थात् चित्त का विकार, विलास अर्थात् नेत्र-विकार और विब्बोक अर्थात् इष्ट अर्थ की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाला अभिमान का भाव।

उन चित्रकारों में से एक चित्रकार को ऐसी चित्रकारलब्धि (योग्यता) लब्ध थी, प्राप्त थी और बार-बार उपयोग में आ चुकी थी कि वह जिस किसी द्विपद, चतुष्पद और अपद का एक अवयव भी देख ले तो उस अवयव के अनुसार उसका पूरा चित्र बना सकता था। उस समय एक बार एक चित्रकारदारक ने यवनिका की ओट में रही हुई मल्ली कुमारीके पैर का अंगूठा जाली (छिद्र) में से देखा।

तत्पश्चात् उस चित्रकारदारक को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ, यावत् मल्ली कुमारी के पैर के अंगूठे के अनुसार उसका हूबहू यावत् गुणयुक्त–सुन्दर चित्र बनाना उचित है। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके भूमि के हिस्से को ठीक किया। ठीक करके मल्ली के पैर के अंगूठे का अनुसरण करके यावत् चित्र बनाया। तत्पश्चात् चित्रकारों की उस मंडली (जाति) ने चित्रसभा को यावत् हाव भाव आदि से चित्रित किया। चित्रित करके जहां मल्लदिन्न कुमार था, वहां गई। जाकर यावत् कुमार की आज्ञा वापिस लौटाई–आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

तत्पश्चात् मल्लदत्त कुमार ने चित्रकारों की मंडलीका सत्कार किया, सन्मान किया; सत्कार–सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। दे करके विदा कर दिया। तत्पश्चात् किसी समय मल्लादिन्न कुमार स्नान करके, वस्त्राभूषण धारण करके, अन्तःपुर एवं परिवार सहित, धायमाता को साथ लेकर, जहां चित्रसभा थी, वहां आया। आकर चित्रसभा के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके हाव, भाव, विलास और विब्बोक से युक्त रूपों (चित्रों) को देखता हुआ जहां विदेह की श्रेष्ठ राजकन्या मल्ली का, उसी के अनुरूप चित्र बना था, वहां जाने को तैयार हुआ।

तत्पश्चात् मल्लादिन्न कुमार ने विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली का, उसके अनुरूप बना हुआ चित्र देखा। देख कर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–'अरे, यह तो विदेहवरराजकन्या मल्ली है!' यह विचार आते ही वह लज्जित हो गया, व्रीडित हो गया और व्यर्दित हो गया; अर्थात् उसे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हुई। अतएव वह धीरे–धीरे वहां से हट गया। तत्पश्चात् हटते हुए मल्लादिन्न को देख कर धाय माता ने कहा–'हे पुत्र! तुम लज्जित, व्रीडित और व्यर्दित होकर धीरे-धीरे क्यों हटे?'

तब मल्लदिन्न ने धाय माता से इस प्रकार कहा–'माता! मेरी गुरु और देवता के समान ज्येष्ठ भगिनी के, जिससे मुझे लज्जित होना चाहिए, सामने, चित्रकारों की बनाई इस सभा में प्रवेश करना क्या योग्य है?' तब धाय माता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा–'हे पुत्र! निश्चय ही यह साक्षात् मल्ली

नहीं है; परन्तु यह विदेह की उत्तम कुमारी मल्ली चित्रकार ने उसके अनुरूप वनाई है-चित्रित की है।'

तब मल्लदिन्न कुमार धाय माता के इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके एकदम क्रुद्ध हो उठा और वोला-'कौन है वह चित्रकार मौत की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा बुद्धि आदि से रहित, जिसने गुरु और देवता के समान मेरी ज्येष्ठ भगिनी का यावत् चित्र बनाया है?' इस प्रकार कह कर उसने चित्रकार के वध की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् चित्रकारों की वह श्रेणी इस कथा—वृत्तान्तका अर्थ सुन कर और समझ कर जहां मल्लदिन्न कुमार था, वहां आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके कुमार को वधाया। वधा कर इस प्रकार कहा—

'स्वामिन्! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकारलब्धि लब्ध हुई, प्राप्त हुई और अभ्यास में आई है कि वह जिस किसी द्विपद आदि के एक अवयव को देखता है, यावत् वह वैसा ही पूरा रूप बना देता है। अतएव हे स्वामिन्! आप उस चित्रकारके वधकी आज्ञा मत दीजिए। हे स्वामिन्! आप उस चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दंड दे दीजिए।' तत्पश्चात् मल्लदिन्न ने उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेद करवा दिया और उसे देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न के द्वारा देशनिर्वासन की आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भांड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकल कर वह विदेह जनपद के मध्य में होकर जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां कुरु नामक जनपद था और जहां अदीनशत्रु नामक राजा था, वहां आया। आकर उसने अपनी भांड आदि वस्तुएं रक्खीं। रख कर एक चित्रफलक ठीक किया। ठीक करके विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के पैर के अंगूठे के अनुसार उसका समग्र रूप चित्रित किया। चित्रित करके वह चित्रफलक (जिस पर चित्र बना था वह पट) अपनी कांख में दवा लिया। फिर महान् अर्थ वाला यावत् उपहार ग्रहण किया। ग्रहण करके हस्तिनापुर नगर के मध्य में होकर अदीनशत्रु राजा के पास आया। आकर दोनों हाथ जोड़ कर उसे वधाया और वधा कर उपहार उसके सामने रख दिया। फिर चित्रकार ने कहा—स्वामिन्! मिथिला राजधानी में कुम्भ राजा के पुत्र और प्रभावती देवी के आत्मज मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देशनिकाले की आज्ञा दी, इस कारण मैं शीघ्र यहां आया हूं। हे स्वामिन्! आपकी वाहुओं की छायासे परिगृहीत होकर यावत् मैं यहां वसना चाहता हूं।

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने चित्रकारपुत्रसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मल्लदिन्न कुमार ने तुम्हें किस कारण देशनिर्वासन की आज्ञा दी?

तत्पश्चात् चित्रकारपुत्रने अदीनशत्रु राजासे इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! मल्लदिन्न कुमारने एक वार किसी समय चित्रकारोंकी श्रेणीको बुलाकर इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! तुम मेरी चित्रसभाको चित्रित करो; आदि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् कुमारने मेरा संडासक कटवा दिया। कटवा कर देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हे स्वामिन् ! मल्लदिन्न कुमारने मुझे देश-निर्वासन की आज्ञा दी है।

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजाने उस चित्रकारसे इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय ! तुमने मल्ली कुमारीका उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया था ?' तब चित्रकारने अपनी कांखमें से चित्रफलक निकाला। निकाल कर अदीनशत्रु राजाके पास रख दिया। और रख कर कहा-हे स्वामिन्! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उसीके अनुरूप यह चित्र मैंने कुछ आकार, भाव और प्रतिबिम्बके रूपमें चित्रित किया है। विदेहराजकी श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का हूबहू रूप तो कोई देव अथवा दानव भी चित्रित नहीं कर सकता। तत्पश्चात् चित्र को देखकर हर्ष उत्पन्न होनेके कारण अदीनशत्रु राजाने दूतको बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा-(अपने लिए मल्ली कुमारी की मंगनी करने के लिए भेजा) इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् दूत जानेके लिए तैयार हुआ ॥८०॥

उस काल और उस समयमें पंचाल नामक जनपदमें काम्पिल्यपुर नामक नगर था। वहां जितशत्रु नामक राजा था, वही पंचाल देश का अधिपति था। उस जितशत्रु राजाके अन्तःपुरमें एक हजार रानियां थीं। मिथिला नगरीमें चोक्खा (चोक्षा) नामक परिव्राजिका रहती थी। वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरीमें बहुतसे राजा, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली धनाढ्य या युवराज) यावत् सार्थवाह आदिके सामने दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थस्नान का कथन करती, प्रज्ञापना करती, प्ररूपणा करती और उपदेश करती हुई रहती थी।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड, कुंडिका यावत् धातु (गेरू) से रंगे वस्त्र लेकर परिव्राजिकाओंके मठसे निकली। निकल कर थोड़ी—परिव्राजिकाओंके साथ घिरी हुई मिथिला राजधानीके मध्यमें होकर जहां कुम्भ राजाका भवन था, जहा कन्याओं का अन्तःपुर था और जहां विदेहकी उत्तम राजकन्या मल्ली थी, वहां आई। आकर भूमि पर पानी छिड़का, उस पर डाभ बिछाया और उस पर आसन रख कर बैठी। बैठ कर विदेहवर-राजकन्या मल्लीके सामने दानधर्म आदि का उपदेश देती हुई विचरने लगी—उपदेश देने लगी।

तब विदेहराजवरकन्या मल्लीने चोक्खा परिव्राजिकासे पूछा-'हे चोक्खा ! तुम्हारे धर्मका मूल क्या कहा गया है ?' तब चोक्खा परिव्राजिकाने विदेहराजवर-

कन्या मल्लीको उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! मैं शौचमूलक धर्मका उपदेश करती हूं। हमारे मतमें जो कोई भी वस्तु अशुचि होती है, उसे जलसे और मिट्टीसे शुद्ध किया जाता है, यावत् इस धर्मका पालन करनेसे हम निर्विघ्न स्वर्ग जाते हैं।' तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्लीने चोक्खा परिव्राजिकासे कहा—'चोक्खा ! जैसे कोई अमुक नामधारी पुरुष रुधिरसे लिप्त वस्त्र को रुधिरसे ही धोवे, तो हे चोक्खा ! उस रुधिरलिप्त और रुधिरसे ही धोये जाने वाले वस्त्र की कुछ शुद्धि होती है ?' परिव्राजिकाने उत्तर दिया—'नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता।'

मल्लीने कहा—इसी प्रकार चोक्खा ! तुम्हारे मतमें प्राणातिपात (हिंसा) से यावत् मिथ्यादर्शनशल्यसे अर्थात् अठारह पापोंके सेवन का निषेध न होनेसे कोई शुद्धि नहीं है, जैसे रुधिरसे लिप्त और रुधिरसे ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि नहीं होती। तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्लीके ऐसा कहने पर उस चोक्खा परिव्राजिकाको शंका उत्पन्न हुई, कांक्षा (अन्य धर्मकी आकांक्षा) हुई और विचिकित्सा (अपने धर्मके फलमें संदेह) हुई और वह भेद को प्राप्त हुई अर्थात् उसके मनमें तर्क-वितर्क होने लगा। वह मल्लीको कुछ भी उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हो सकी, अतएव मौन रह गई। तत्पश्चात् मल्लीकी बहुतसी दासियां चोक्खा परिव्राजिकाकी (जाति आदि प्रकट करके) हीलना करने लगीं, मनसे निन्दा करने लगीं, खिंसा (वचन से निन्दा) करने लगीं, गर्हा (उसके सामने ही दोष कथन) करने लगीं, कितनीक दासियां उसे क्रोधित करने लगीं—चिढ़ाने लगीं, कोई-कोई मुंह मटकाने लगीं, कोई-कोई उपहास करने लगीं, कोई उंगलियोंसे तर्जना करने लगीं, कोई ताड़ना करने लगीं और किसी-किसीने अर्धचन्द्र देकर उसे बाहर कर दिया।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली की दासियों द्वारा यावत् गर्हा की गई और अवहेलना की गई वह चोक्खा एकदम क्रुद्ध हो गई और क्रोध से मिसमिसाती हुई विदेहराजवरकन्या मल्लीके प्रति द्वेष को प्राप्त हुई। उसने अपना आसन उठाया और कन्याओंके अन्तःपुरसे निकल गई। वहां से निकल कर मिथिला नगरीसे भी निकली और परिव्राजिकाओं के साथ जहां पंचाल जनपद था, जहां काम्पिल्यपुर नगर था वहां आई और बहुतसे राजाओं एवं ईश्वरों आदिके सामने यावत् अपने धर्म की प्ररूपणा करने लगी।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा एक बार किसी समय अपने अन्तःपुर और परिवारसे परिवृत होकर यावत् बैठा था। तत्पश्चात् परिव्राजिकाओंसे परिवृत वह चोक्खा जहां जितशत्रु राजा का भवन था और जहां जितशत्रु राजा था;

वहां आई। आकर भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जय-विजयके शब्दोंसे जितशत्रु का अभिनन्दन किया—उसे बधाया। तब जितशत्रु राजाने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा। देखकर सिंहासनसे उठा। उठ कर चोक्खा परिव्राजिका का सत्कार किया। सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके आसनसे निमंत्रण किया—बैठने को आसन दिया।

तत्पश्चात् वह चोक्खा परिव्राजिका जल छिड़क कर यावत् अपने आसन पर बैठी। फिर उसने जितशत्रु राजासे राज्य यावत् अन्त:पुरके कुशल-समाचार पूछे। इसके बाद चोक्खाने जितशत्रु राजाको दानधर्म आदि का उपदेश किया। तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा अपने रनवासमें अर्थात् रनवास की रानियोंके सौन्दर्य आदि में विस्मय युक्त था, अत: उसने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा—'हे देवानुप्रिये ! तुम बहुतसे गांवों, आकरों आदिमें यावत् पर्यटन करती हो और बहुतसे राजाओं एवं ईश्वरोंके घरोंमें प्रवेश करती हो तो किसी भी राजा आदि का ऐसा अन्त:पुर तुमने कभी पहले देखा है, जैसा मेरा यह अन्त:पुर है ?'

तब चोक्खा परिव्राजिका ने जितशत्रु राजा (से कहा) के प्रति मुस्करा कर कहा—'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूपमंडूक के समान हो।' जितशत्रु ने पूछा—देवानुप्रिय ! कौन-सा वह कूपमंडूक ? चोक्खा बोली—जितशत्रु ! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कुएं का मेंढक था। वह मेंढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था, उसी में बढ़ा था। उसने दूसरा कूप, तालाव, ह्रद, सर अथवा समुद्र देखा नहीं था। अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है—इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

तत्पश्चात् किसी समय उस कूप में एक समुद्री मेंढक एकदम आ गया। तब कूप के मेंढक ने कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? कहां से एकदम यहां आये हो ? तब समुद्र के मेंढक ने कूप के मेंढक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेंढक हूं।' तब कूप-मण्डूक ने समुद्रमण्डूकसे कहा—'देवानुप्रिय ! वह समुद्र कितना बड़ा है ?' तब समुद्री मण्डूकने कूपमण्डूकसे कहा—'देवानुप्रिय समुद्र बहुत बड़ा है।' तब कूपमण्डूक ने अपने पैर से एक लकीर खींची और कहा—'देवानुप्रिय ! क्या इतना बड़ा है ?'

समुद्री मण्डूक बोला—'यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् समुद्र तो इससे बहुत बड़ा है।' तब कूपमण्डूक पूर्व दिशा के किनारे से उछल कर दूर गया और फिर बोला—'देवानुप्रिय ! वह समुद क्या इतना बड़ा है ?' समुद्री मेंढक ने कहा—'यह अर्थ समर्थ नहीं'।) इसी प्रकार इससे भी अधिक कूद-कूद कर कूपमण्डूकने समुद्र की विशालताके विषयमें पूछा, मगर समुद्र—मण्डूक हर बार उसी प्रकार उत्तर देता गया।)

'इसी प्रकार हे जितशत्रु ! दूसरे बहुत से राजाओं एवं ईश्वरों यावत् सार्थवाह आदि की पत्नी, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू तुमने देखी नहीं। इस कारण समझते हो कि जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरे का नहीं है। सो हे जितशत्रु ! मिथिला नगरी में कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और यौवन में जैसी है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या वगैरह भी नहीं है। विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या के पैरके अंगुल के लाखवें अंश के बराबर भी तुम्हारा यह अन्तःपुर नहीं है।' इस प्रकार कह कर वह परिव्राजिका जिस दिशा से प्रकट हुई थी—आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् परिव्राजिकाके द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितशत्रु ने दूतको बुलाया। बुलाकर पहलेके समान ही सब कहा। यावत् उस दूतने मिथिला जाने का निश्चय किया। [इस प्रकार मल्ली कुमारी के पूर्वभव के साथी छहों राजाओं ने अपने-अपने लिए कुमारी की मंगनी करने के लिए अपने दूत रवाना किये।] ॥८१॥

इस प्रकार उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं के दूत जहां मिथिला नगरी थी वहां जाने के लिए रवाना हो गये। तत्पश्चात् छहों दूत जहां मिथिला थी, वहां आये। आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में सब ने अलग-अलग पड़ाव डाले। फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके कुम्भ राजा के पास आये। आकर प्रत्येक-प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़े और अपने-अपने राजाओं के वचन निवेदन किये। (मल्ली कुमारी की मांग की।)

तत्पश्चात् कुम्भ राजा उन दूतों से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हुआ। यावत् ललाट पर तीन सल डाल कर उसने कहा—'मैं तुम्हें (छह में से किसी भी राजा को) विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता।' ऐसा कह कर छहों दूतों का सत्कार—सम्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) से निष्कासित वे छहों राजाओं के दूत जहां अपने—अपने जनपद थे, जहां अपने-अपने नगर थे और जहां अपने—अपने राजा थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर हाथ जोड़ कर एवं मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहने लगे—

'इस प्रकार हे स्वामिन् ! हम जितशत्रु वगैरह छह राजाओं के दूत एक ही साथ जहां मिथिला नगरी थी, वहां पहुंचे। मगर यावत् राजा कुम्भ ने सत्कार—सन्मान न करके हमें अपद्वार से निकाल दिया। सो हे स्वामिन् ! कुम्भ राजा विदेहराजवरकन्या मल्ली आप को नहीं देता।' दूतों ने अपने—अपने राजाओं से यह अर्थ—वृत्तान्त निवेदन किया।

वहां आई। आकर भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जय-विजयके शब्दोंसे जितशत्रु का अभिनन्दन किया—उसे बधाया। तब जितशत्रु राजाने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा। देखकर सिंहासनसे उठा। उठ कर चोक्खा परिव्राजिका का सत्कार किया। सम्मान किया। सत्कार-सन्मान करके आसनसे निमंत्रण किया—बैठने को आसन दिया।

तत्पश्चात् वह चोक्खा परिव्राजिका जल छिड़क कर यावत् अपने आसन पर बैठी। फिर उसने जितशत्रु राजासे राज्य यावत् अन्तःपुरके कुशल-समाचार पूछे। इसके बाद चोक्खाने जितशत्रु राजाको दानधर्म आदि का उपदेश किया। तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा अपने रनवासमें अर्थात् रनवास की रानियोंके सौन्दर्य आदि में विस्मय युक्त था, अतः उसने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा—'हे देवानुप्रिये! तुम बहुतसे गांवों, आकरों आदिमें यावत् पर्यटन करती हो और बहुतसे राजाओं एवं ईश्वरोंके घरोंमें प्रवेश करती हो तो किसी भी राजा आदि का ऐसा अन्तःपुर तुमने कभी पहले देखा है, जैसा मेरा यह अन्तःपुर है?'

तब चोक्खा परिव्राजिका ने जितशत्रु राजा (से कहा) के प्रति मुस्करा कर कहा—'हे देवानुप्रिय! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूपमंडूक के समान हो।' जितशत्रु ने पूछा–देवानुप्रिय! कौन-सा वह कूपमंडूक? चोक्खा बोली–जितशत्रु! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कुएं का मेंढक था। वह मेंढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था, उसी में बढ़ा था। उसने दूसरा कूप, तालाब, ह्रद, सर अथवा समुद्र देखा नहीं था। अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है—इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

तत्पश्चात् किसी समय उस कूप में एक समुद्री मेंढक एकदम आ गया। तब कूप के मेंढक ने कहा—हे देवानुप्रिय! तुम कौन हो? कहां से एकदम यहां आये हो? तब समुद्र के मेंढक ने कूप के मेंढक से कहा—'देवानुप्रिय! मैं समुद्र का मेंढक हूं।' तब कूप–मण्डूक ने समुद्रमण्डूकसे कहा–'देवानुप्रिय! वह समुद्र कितना बड़ा है?' तब समुद्री मण्डूकने कूपमण्डूकसे कहा–'देवानुप्रिय समुद्र बहुत बड़ा है।' तब कूपमण्डूक ने अपने पैर से एक लकीर खींची और कहा—'देवानुप्रिय! क्या इतना बड़ा है?'

समुद्री मण्डूक बोला—'यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् समुद्र तो इससे बहुत बड़ा है।' तब कूपमण्डूक पूर्व दिशा के किनारे से उछल कर दूर गया और फिर बोला—'देवानुप्रिय! वह समुद्र क्या इतना बड़ा है?' समुद्री मेंढक ने कहा—'यह अर्थ समर्थ नहीं'।) इसी प्रकार इससे भी अधिक कूद-कूद कर कूपमण्डूकने समुद्र की विशालताके विषयमें पूछा, मगर समुद्र—मण्डूक हर बार उसी प्रकार उत्तर देता गया।)

'इसी प्रकार हे जितशत्रु ! दूसरे बहुत से राजाओं एवं ईश्वरों यावत् सार्थवाह आदि की पत्नी, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू तुमने देखी नहीं। इस कारण समझते हो कि जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरे का नहीं है। सो हे जितशत्रु ! मिथिला नगरी में कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और यौवन में जैसी है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या वगैरह भी नहीं है। विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या के पैरके अंगुल के लाखवें अंश के बराबर भी तुम्हारा यह अन्तःपुर नहीं है।' इस प्रकार कह कर वह परिव्राजिका जिस दिशा से प्रकट हुई थी—आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् परिव्राजिकाके द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितशत्रु ने दूतको बुलाया। बुलाकर पहलेके समान ही सब कहा। यावत् उस दूतने मिथिला जाने का निश्चय किया। [इस प्रकार मल्ली कुमारी के पूर्वभव के साथी छहों राजाओं ने अपने-अपने लिए कुमारी की मंगनी करने के लिए अपने दूत रवाना किये।] ॥८१॥

इस प्रकार उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं के दूत जहां मिथिला नगरी थी वहां जाने के लिए रवाना हो गये। तत्पश्चात् छहों दूत जहां मिथिला थी, वहां आये। आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में सब ने अलग-अलग पड़ाव डाले। फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके कुम्भ राजा के पास आये। आकर प्रत्येक-प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़े और अपने-अपने राजाओं के वचन निवेदन किये। (मल्ली कुमारी की मांग की।)

तत्पश्चात् कुम्भ राजा उन दूतों से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हुआ। यावत् ललाट पर तीन सल डाल कर उसने कहा—'मैं तुम्हें (छह में से किसी भी राजा को) विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता।' ऐसा कह कर छहों दूतों का सत्कार—सम्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) से निष्कासित वे छहों राजाओं के दूत जहां अपने—अपने जनपद थे, जहां अपने-अपने नगर थे और जहां अपने—अपने राजा थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर हाथ जोड़ कर एवं मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहने लगे—

'इस प्रकार हे स्वामिन् ! हम जितशत्रु वगैरह छह राजाओं के दूत एक ही साथ जहां मिथिला नगरी थी, वहां पहुंचे। मगर यावत् राजा कुम्भ ने सत्कार—सन्मान न करके हमें अपद्वार से निकाल दिया। सो हे स्वामिन् ! कुम्भ राजा विदेहराजवरकन्या मल्ली आप को नहीं देता।' दूतों ने अपने—अपने राजाओं से यह अर्थ—वृत्तान्त निवेदन किया।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा उन दूतों से इस अर्थ को सुन कर और समझ कर एकदम कुपित हुए। उन्होंने एक दूसरे के पास दूत भेजे और इस प्रकार कहलाया-'हे देवानुप्रिय ! हम छहों राजाओं के दूत एक साथ (मिथिला पहुँचे और अपमानित करके) यावत् निकाल दिये गये। अतएव हे देवानुप्रिय ! हम लोगों को कुम्भ राजा की ओर प्रयाण करना (चढ़ाई करना) योग्य है।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके स्नान किया (वस्त्रादि धारण किये,) सन्नद्ध हुए अर्थात् कवच आदि पहन कर तैयार हुए। हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाला छत्र धारण किया। श्वेत चामर उन पर ढोरे जाने लगे। बड़े-बड़े घोड़ों, हाथियों, रथों और उत्तम योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर, सर्व ऋद्धि के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ अपने—अपने नगरों से निकले। निकल कर एक जगह इकट्ठे हुए। इकट्ठे होकर जहां मिथिला नगरी थी, वहां जाने के लिए तैयार हुए।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने इस कथा का अर्थ जान कर अर्थात् छह राजाओं की चढ़ाईका समाचार जान कर अपने सैनिक कर्मचारी (सेनापति)को बुलाया। बुलाकर कहा--'हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही घोड़ों हाथियों आदिसे युक्त यावत् चतुरंगी सेना तैयार करो।' यावत् सेनापति ने सेना तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने स्नान किया। कवच धारण करके सन्नद्ध हुआ। श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुआ। कोरंट के फूलों की माला का छत्र धारण किया। उसके ऊपर श्रेष्ठ और श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। यावत् विशाल चतुरंगी सेना के साथ मिथिला राजधानी के मध्य में होकर निकला। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहां अपने देश का अंत (सीमा-भाग) था, वहां आया। आकर वहां पड़ाव डाला, पड़ाव डाल कर जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं की प्रतीक्षा करता हुआ, युद्ध के लिए सज्ज होकर ठहर गया।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु प्रभृति छहों राजा, जहां कुम्भ राजा था, वहां आये। आकर कुंभ राजा के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गए। तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओंने कुंभ राजा का हनन किया अर्थात् उसके सैन्य का हनन किया, मथन किया अर्थात् मान का मर्दन किया, उसके अत्युत्तम योद्धाओं का घात किया, उसकी चिन्ह रूप ध्वजा और पताका को छिन्नभिन्न करके नीचे गिरा दिया। उसके प्राण संकटमें पड़ गये। उसकी सेना चारों दिशाओंमें भाग निकली। तत्पश्चात् वह कुंभ राजा जितशत्रु आदि छह राजाओंके द्वारा हत, मानमर्दित यावत् जिसकी सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई है ऐसा होकर, सामर्थ्यहीन, बलहीन, पराक्रमहीन यावत् शत्रुसेनाका सामना

करनेमें असमर्थ हो गया। अतः वह शीघ्रतापूर्वक, त्वरा के साथ यावत् वेगके साथ जहां मिथिला नगरी थी, वहां आया। मिथिला नगरीमें प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर उसने मिथिला के द्वार वन्द कर लिये। द्वार वन्द करके किले का रोध करनेमें सज्ज होकर ठहरा।

तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छहों नरेश जहां मिथिला नगरी थी, वहां आये। आकर मिथिला राजधानी को मनुष्योंके गमनागमनसे रहित कर दिया, यहां तक कि कोटके ऊपरसे भी आवागमन रोक दिया, अथवा मल त्यागनेके लिए भी आना-जाना रोक दिया। वे नगरीको चारों ओरसे घेर करके ठहरे। तत्पश्चात् कुंभ राजा मिथिला राजधानीको घिरी जान कर आभ्यन्तर उपस्थानशाला (अन्दर की सभा) में श्रेष्ठ सिंहासन पर वैठा। वह जितशत्रु आदि छहों राजाओं के छिद्रोंको, विवरोंको और मर्म को पा नहीं सका। अतएव वहुतसे आयोंसे, उपायोंसे तथा औत्पत्तिकी आदि चारों प्रकारों की बुद्धिसे विचार करते-करते कोई भी आय या उपाय न पा सका। तव उसके मन का संकल्प क्षीण हो गया, यावत् वह आर्त्तध्यान करने लगा।

इधर विदेहराजवरकन्या मल्लीने स्नान किया, वस्त्राभूषण धारण किये, यावत् वहुत सी कुब्जा आदि दासियोंसे परिवृत होकर जहां कुंभ राजा था, वहां आई। आकर उसने कुंभ राजाके चरण ग्रहण किये—पैर छुए। तव कुंभ राजाने विदेहराजवरकन्या मल्ली का आदर नहीं किया, उसे उसका आना भी मालूम नहीं हुआ, अतएव वह मौन ही रहा। तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्लीने राजा कुम्भसे इस प्रकार कहा--'हे तात ! दूसरे समय मुझे आती देखकर आप यावत् गोद में विठलाते थे, परन्तु क्या कारण है कि आज आप अवहत मानसिक संकल्प वाले होकर चिन्ता कर रहे हैं ?'

तव राजा कुम्भने विदेहराजवरकन्या मल्लीसे इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! इस प्रकार तुम्हारे लिए—मंगनी करने के लिए जितशत्रु प्रभृति छह राजाओंने दूत भेजे थे। मैंने उन दूतोंको अपमानित करके यावत् निकलवा दिया। तव वे जितशत्रु वगैरह राजा उन दूतोंसे यह वृत्तान्त सुनकर कुपित हो गये। उन्होंने मिथिला राजधानीको गमनागमनहीन वना दिया है, यावत् वे चारों ओर घेरा डालकर वैठे हैं। अतएव हे पुत्री ! मैं उन जितशत्रु प्रभृति नरेशों के अन्तर—छिद्र आदि न पाता हुआ यावत् चिन्ता कर रहा हूं।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्लीने राजा कुम्भसे इस प्रकार कहा—'तात ! आप अवहत मानसिक संकल्प वाले होकर चिन्ता न कीजिए। हे तात ! आप उन जितशत्रु आदि छहों राजाओंमें से प्रत्येकके पास गुप्त रूपसे दूत भेज दीजिए और प्रत्येक को यह कह दीजिए कि—'मैं विदेहराजवरकन्या तुम्हें देता

हूं।' ऐसा कहकर संध्याकालके अवसर पर जब विरले मनुष्य गमनागमन करते हों और विश्रामके लिए अपने-अपने घरोंमें मनुष्य बैठे हों, उस समय प्रत्येक २ राजाका मिथिला राजधानीके भीतर प्रवेश कराइए। प्रवेश करा कर उन्हें गर्भगृहके अन्दर ले जाइए। फिर मिथिला राजधानीके द्वार बंद करा दीजिए और नगरीके रोधमें सज्ज होकर ठहरिए।'

तत्पश्चात् राजा कुम्भने इसी प्रकार किया। यावत् छहों राजाओं का मिथिलाके भीतर प्रवेश कराया। वह नगरीके रोधमें सज्ज होकर ठहरा। तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा कल अर्थात् दूसरे दिन प्रातःकाल (उन्हें जिस मकानमें ठहराया था उसकी) जालियोंमें से वह स्वर्णमयी मस्तक पर छिद्र-वाली और कमलके ढक्कन वाली मल्लीकी प्रतिमा देखने लगे। 'यही विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है' ऐसा जान कर विदेहराजवरकन्या मल्लीके रूप यौवन और लावण्यमें मूर्छित, गृद्ध यावत् अत्यन्त लालायित होकर अनिमेष दृष्टिसे बार-बार उसे देखने लगे।...विदेहराजवरकन्या मल्लीने स्नान किया, वह समस्त अलंकारोंसे विभूषित होकर बहुत सी कुब्जा आदि दासियोंसे यावत् परिवृत होकर जहां जालगृह था और स्वर्ण की वह प्रतिमा थी, वहां आई। आकर उस स्वर्णप्रतिमाके मस्तकसे वह कमल का ढक्कन हटा दिया। ढक्कन हटाते ही उसमें से ऐसी दुर्गन्ध छूटी कि जैसे मरे सांप की दुर्गंध हो, यावत् उससे भी अधिक अशुभ!

तत्पश्चात् जितशत्रु वगैरहने उस अशुभ गंधसे अभिभूत होकर—घबरा कर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रोंसे मुंह ढंक लिया। मुंह ढंक कर वे मुख फेर कर खड़े हो गये। तब विदेहराजवरकन्या मल्लीने उन जितशत्रु आदिसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! किस कारण आप अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रसे मुंह ढंक कर यावत् मुंह फेर कर खड़े हो गये?' तब जितशत्रु आदि ने विदेहराजवर-कन्या मल्लीसे कहा—'देवानुप्रिये! हम इस अशुभ गंधसे घबरा कर अपने-अपने यावत् वस्त्रसे मुख ढंककर विमुख हुए हैं।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्लीने उन जितशत्रु आदि राजाओंसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! इस स्वर्णमयी यावत् प्रतिमामें प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहारमें से एक-एक पिण्ड डालते-डालते यह ऐसा अशुभ पुद्गल का परिणमन हुआ है, तो यह औदारिक शरीर तो कफ को झराने वाला है, पित्त को झराने वाला है, शुक्र, शोणित और पीवको झराने वाला है, खराब उच्छ्वास और निश्वास निकालने वाला है, अमनोज्ञ मूत्र एवं दुर्गंधित मलसे परिपूर्ण है, सड़ना (पड़ना और नष्ट होना) यावत् इसका स्वभाव है, तो इसका परिणमन कैसा होगा? अतएव हे देवानुप्रियो! आप मनुष्य संबंधी

कामभोगोंमें राग मत करो, गृद्धि मत करो मोह मत करो, और अतीव आसक्त मत होओ।'

मल्ली कुमारीने पूर्वभवका स्मरण कराते हुए आगे कहा—'इस प्रकार हे देवानुप्रियो! तुम और हम इससे पहलेके तीसरे भवमें, पश्चिम महाविदेहवर्षमें, सलिलावती विजयमें, वीतशोका नामक राजधानीमें महावल आदि सातों मित्र राजा थे। हम सातों साथ जन्मे थे, यावत् साथ ही दीक्षित हुए थे। देवानुप्रियो! उस समय इस कारणसे मैंने स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपार्जन किया था—अगर तुम लोग एक उपवास करके विचरते थे, तो मैं वेला करके विचरती थी। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिए।

तत्पश्चात् देवानुप्रियो! तुम कालमासमें काल करके जयन्त विमानमें उत्पन्न हुए। वहां तुम्हारी कुछ कम वत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई। तत्पश्चात् तुम उस देवलोकसे अनन्तर (तुरंत ही) शरीर त्याग करके—चय करके—इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें उत्पन्न हुए, यावत् अपने अपने राज्य प्राप्त करके विचर रहे हो। तत्पश्चात् मैं उस देवलोकसे आयुका क्षय होनेसे कन्याके रूपमें आई हूं—जन्मी हूं। 'क्या तुम वह भूल गये? जिस समय देवानुप्रियो! तुम जयन्त नामक अनुत्तर विमान में वास करते थे? वहां रहते हुए 'हमें एक दूसरे को प्रतिवोध देना चाहिए' ऐसा परस्परमें संकेत किया था। तो तुम उस देवभव का स्मरण करो।'

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से यह पूर्वभव का वृत्तान्त सुनने और हृदय में धारण करने से, शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण, ईहा-अपोह (सद्भूत-असद्भूत धर्मों की पर्यालोचना) करने से जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे वे संज्ञी अवस्था के अपने भव को देख सकें। इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ को उन्होंने सम्यक् प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत ने जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर गर्भगृहों के द्वार खुलवा दिये। तव जितशत्रु वगैरह छहों राजा मल्ली अरिहंत के पास आये। उस समय (पूर्वजन्म के) महावल आदि सातों (अथवा इस भव के जितशत्रु आदि छहों) वालमित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने जितशत्रु वगैरह छहों राजाओं से कहा—'हे

देवानुप्रियो ! इस प्रकार निश्चित रूप से मैं संसार के भय से (जन्म-जरा-मरण से) उद्विग्न हुई हूं, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तो आप क्या करेंगे ? कैसे रहेंगे ? आपके हृदय का सामर्थ्य कैसा है ? अर्थात् भाव या उत्साह कैसा है ?'

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्ली अरिहंत से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये ! अगर आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा लेती हो, तो हे देवानुप्रिये ! हमारे लिए दूसरा क्या आलंबन, आधार या प्रतिबंध है ? हे देवानुप्रिये ! जैसे आप इस भव से पूर्व के तीसरे भव में, बहुत कार्यों में मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत और धर्म की धुरा के रूप में थीं उसी प्रकार हे देवानुप्रिये ! अब (इस भव में) भी होओ। हे देवानुप्रिये ! हम भी संसार के भय से उद्विग्न हैं, यावत् जन्म-मरण से भीत हैं; अतएव देवानुप्रिया के साथ मुण्डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण करेंगे।

तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं से कहा—'अगर तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो, तो देवानुप्रियो ! अपने-अपने राज्य में जाओ और ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करो। प्रतिष्ठित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ़ होओ। आरूढ़ होकर मेरे समीप आओ।' तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं ने मल्ली अरिहंत के इस अर्थ को अंगीकार किया।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त उन जितशत्रु वगैरह को साथ लेकर जहां कुंभ राजा था, वहां आईं। आकर उन्हें कुम्भ राजा के चरणों में नमस्कार कराया। तब कुम्भ राजा ने उन जितशत्रु वगैरह का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से तथा पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य और अलंकारों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके यावत् उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् कुंभ द्वारा विदा किये हुए जितशत्रु आदि जहां अपने-अपने राज्य थे, जहां अपने-अपने नगर थे, वहां आये। आकर अपने-अपने राज्यों को भोगते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् अरिहन्त मल्ली ने अपने मन में ऐसी धारणा की कि—'एक वर्ष के अंत में मैं दीक्षा ग्रहण करूंगी ॥ ८२ ॥'

उस काल और उस समय में शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने अपना आसन चलायमान हुआ देखा। देख कर अवधिज्ञान से जाना। जान कर इन्द्र को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्ष में, मिथिला राजधानी में कुम्भ राजा की (पुत्री) मल्ली अरहन्त ने एक वर्ष के अन्त में 'दीक्षा लूंगी' ऐसा विचार किया है।

(शक्रेन्द्र ने आगे विचार किया—) तो अतीत काल, वर्त्तमान काल और भविष्यत् काल के शक्र देवेन्द्र देवराजों का यह परम्परागत आचार है कि—अरि-

हन्त भगवंत जब दीक्षा अंगीकार करने को हों, तो उन्हें इतनी अर्थ—सम्पदा (दान देने के लिए) देनी चाहिए। वह इस प्रकार—'तीन सौ अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख द्रव्य (स्वर्ण-मोहरें) इन्द्र अरिहंतों को देते हैं।'

शक्रेन्द्र ने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने वैश्रमण देव को बुलाया और बुला कर कहा—'देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में' भारतवर्ष में यावत् तीन सौ अठासी करोड़ और अस्सी लाख...देना उचित है। सो हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, कुंभ राजा के भवन में इतने द्रव्य का संहरण करो—इतना धन लेकर डाल दो। संहरण करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो।'

तत्पश्चात् वैश्रमण देव, शक्र देवेन्द्र देवराज के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। हाथ जोड़ कर उसने यावत् आज्ञा स्वीकार की। स्वीकार करके जृंभक देवों को बुलाया। बुला कर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में और मिथिला राजधानी में जाओ और कुंभ राजा के भवन में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख अर्थ सम्प्रदान का संहरण करो, अर्थात् इतनी सम्पत्ति वहां पहुंचा दो। संहरण करके यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।'

तत्पश्चात् वे जृंभक देव, वैश्रमण देवकी आज्ञा सुन कर उत्तरपूर्व दिशा में गये, जाकर उत्तरवैक्रिय रूपोंकी विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके देव संबंधी उत्कृष्टगति से जाते हुए जहां जम्बूद्वीप नामक द्वीप था, भरत क्षेत्र था, जहां मिथिला राजधानी थी और जहां कुंभ राजा का भवन था, वहां पहुंचे। पहुँच कर कुंभ राजा के भवन में तीन सौ ८८ करोड़ आदि पूर्वोक्त द्रव्यसम्पत्ति पहुंचा दी। पहुंचा कर वे जृंभक देव, वैश्रमण देव के पास आये और उसकी आज्ञा वापिस लौटाई। तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव जहां शक्र देवेन्द्र देवराज था, वहां आया। आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् उसने इन्द्र की आज्ञा वापिस सौंपी।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत ने प्रतिदिन प्रातःकाल से प्रारम्भ करके मगध देश के प्रातराश (प्रातःकालीन भोजन) के समय तक अर्थात् दोपहर पर्यन्त बहुत-से सनाथों, अनाथों, पांथिकों—निरन्तर मार्ग पर चलने वाले पथिकों, राहगीरों अथवा किसी के द्वारा किसी प्रयोजन से भेजे गये पुरुषों, करोटिक—कपाल हाथ में लेकर भिक्षा मांगने वालों, कार्पटिक-कंथा कोपीन या गेरुए धारण करने वालों अथवा कपट से भिक्षा मांगने वालों अथवा एक प्रकार के भिक्षुकविशेषों को पूरी एक करोड़ आठ लाख स्वर्णमोहरें दान में देना आरम्भ किया।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने मिथिला राजधानी में तत्र तत्र अर्थात् विभिन्न मुहल्लों या उपनगरों में, तहिं तहिं अर्थात् महामार्गों में तथा अन्य अनेक स्थानों

में, देशे देशे अर्थात् त्रिक चतुष्क आदि स्थानों-स्थानों में बहुत-सी भोजनशालाएं बनवाईं। उन भोजनशालाओं में बहुत-से मनुष्य, जिन्हें, भृति-धन, भक्त-भोजन और वेतन-मूल्य दिया जाता था, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे। बना करके जो लोग जैसे-जैसे आते जाते थे जैसे कि—पांथिक (निरंतर रास्ता चलने वाले), पथिक (मुसाफिर), करोटिक (कपाल-खोपड़ी लेकर भीख मांगने वाले), कार्पटिक (कंथा, कोपीन या कषायवस्त्र धारण करने वाले), पाखण्डी (साधु, बाबा, सन्यासी) अथवा गृहस्थ, उन्हें आश्वासन देकर, विश्राम देकर और सुखद आसन पर बिठला कर विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य दिया जाता था, परोसा जाता था। वे मनुष्य वहां भोजन आदि देते हुए रहते थे।

तत्पश्चात् मिथिला राजधानी में शृङ्गाटक, त्रिक आदि मार्गों में बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! कुम्भ राजा के भवन में सर्वकामगुणित अर्थात् सब प्रकार के रूप रस गंध और स्पर्श वाले मनोवांछित रसपर्याय वाला तथा इच्छानुसार दिया जाने वाला विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बहुत-से श्रमणों आदि को यावत् परोसा जाता है।' तात्पर्य यह है कि कुम्भ राजा द्वारा जगह-जगह भोजनशालाएं खुलवा देने और भोजनदान देने की सर्वत्र चर्चा होने लगी।

वैमानिक, भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवों तथा नरेन्द्रों अर्थात् चक्रवर्ती आदि राजाओं द्वारा पूजित तीर्थंकरों की दीक्षा के अवसर पर वरवरिका की घोषणा कराई जाती है, और याचकों को यथेष्ट दान दिया जाता है। अर्थात् 'जिसे जो वरदान मांगना हो सो मांगो' ऐसी घोषणा करवा दी जाती है और 'तुम्हें क्या चाहिए...'इस प्रकार पूछ कर याचक की इच्छा के अनुसार दान दिया जाता है। तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख जितनी अर्थसम्पदा दान देकर 'मैं दीक्षा ग्रहण करूं' ऐसा मन में निश्चय किया ॥ ८३ ॥

उस काल और उस समय में लोकान्तिक देव ब्रह्मदेवलोक नामक पांचवें स्वर्गमें, अरिष्ट नामक विमानके पाथड़ेमें, अपने-अपने विमानोंसे, अपने-अपने उत्तम प्रासादों से, प्रत्येक-प्रत्येक चार-चार हजार सामानिक देवों से, तीन-तीन परिषदों से, सात-सात अनीकों से, सात-सात अनीकाधिपतियों (सेनापतियों) से, सोलह-सोलह हजार आत्मरक्षक देवों से तथा अन्य अनेक लोकान्तिक देवों से युक्त—परिवृत होकर खूब जोर से बजाये हुए नृत्य—गीत के वाद्यों के यावत् शब्द के साथ भोग भोगते हुए विचर रहे थे। उन लोकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सारस्वत (२) आदित्य (३) वन्हि (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय (९) रिष्ट।

तत्पश्चात् उन लोकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए; इत्यादि उसी प्रकार जानना, यावत् दीक्षा लेने की इच्छा करने वाले तीर्थकरों को संबोधन करना हमारा आचार है; अतः हम जाएं और अरहन्त मल्ली को संबोधन करें; ऐसा लोकान्तिक देवों ने विचार किया। ऐसा विचार करके उन्होंने ईशान दिशा में जाकर वैक्रियसमुद्घात् से विक्रिया की—उत्तरवैक्रिय शरीर धारण किया। समुद्घात् करके संख्यात योजन उल्लंघन करके, जृंभक देवों की तरह जहां मिथिला राजधानी थी, जहां कुंभ राजा का भवन था और मल्ली नामक अरहंत थे, वहां आये। आकर के आकाश-अधर में स्थित रहे हुए घुंघरुओं के शब्द सहित यावत् श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके, दोनों हाथ जोड़कर, इष्ट यावत् वाणी से इस प्रकार बोले—

'हे लोकनाथ! हे भगवन्! बूझो–बोध पाओ। धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करो। वह धर्मतीर्थ जीवों के लिए हितकारी, सुखकारी और निश्रेयसकारी (मोक्षकारी) होगा।' इस प्रकार कह कर दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा। कह कर अरहन्त मल्ली को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये। तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों द्वारा संबोधित हुए मल्ली अरहन्त जहां माता-पिता थे, वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़कर कहा—'हे माता-पिता! आपकी आज्ञासे मुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करने की मेरी इच्छा है।' तब माता-पिता ने कहा—हे देवानुप्रिये! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबंध—विलम्ब मत करो।'

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा—'शीघ्र ही एक हजार आठ सुवर्णकलश यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलश लाओ। इसके अतिरिक्त महान् अर्थ वाली यावत् तीर्थङ्कर के अभिषेक की सब सामग्री उपस्थित करो।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया, अर्थात् अभिषेक की समस्त सामग्री तैयार कर दी। उस काल और उस समय चमर नामक असुरेन्द्र से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के इन्द्र—सभी अर्थात् चौसठ इन्द्र वहां आ गये। तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—शीघ्र ही एक हजार आठ स्वर्णकलश आदि यावत् दूसरी अभिषेक के योग्य सामग्री उपस्थित करो। यह सुन कर आभियोगिक देवों ने भी सब सामग्री उपस्थित की। वे देवों के कलश उन्हीं मनुष्यों के कलशों में (दैवी माया से) समा गये।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुंभ राजा ने मल्ली अरहन्त को पूर्वाभिमुख बिठलाया। फिर सुवर्ण आदि के एक हजार आठ कलशों से यावत्

अभिषेक किया। तत्पश्चात् जब मल्ली भगवान् का अभिषेक हो रहा था, उस समय कोई—कोई देव मिथिला नगरी के भीतर और बाहर यावत् सब दिशाओं—विदिशाओं में दौड़ने लगे इधर-उधर फिरने लगे। तत्पश्चात् कुंभ राजा ने दूसरी बार उत्तर दिशा में जाकर यावत् भगवान् मल्ली को सर्व अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'शीघ्र ही मनोरमा नाम की शिविका (तैयार करके) लाओ।'

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-'शीघ्र ही अनेक खंभों वाली यावत् मनोरमा नामक शिविका उपस्थित करो।' तब वे देव भी मनोरमा शिविका लाये और वह शिविका भी उसी मनुष्यों की शिविका में समा गई। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त सिंहासन से उठे। उठ कर जहां मनोरमा शिविका थी, वहां आये। आकर मनोरमा शिविका को प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् कुंभ राजाने अठारह जातियों—उपजातियोंको बुलवाया। बुलवाकर कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग स्नान करके यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्ली कुमारी की शिविका वहन करो।' यावत् उन्होंने शिविका वहन की।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने मनोरमा शिविका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की (वहन की), ईशानेन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपर की बाहा ग्रहण की, चमरेन्द्र ने दक्षिण तरफ की निचली बाहा ग्रहण की। शेष देवों ने यथायोग्य उस मनोरमा शिविकाको वहन किया। जिनके रोम कूप (रोंगटे) हर्ष के कारण विकस्वर हो गये हैं ऐसे मनुष्योंने सर्वप्रथम वह शिविका उठाई। उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र ने उसे वहन किया ॥ १ ॥

चलायमान चपल कुण्डलों को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा के अनुसार विक्रिया से बनाये हुए आभरणों को धारण करने वाले देवेन्द्रों और दानवेन्द्रों ने जिनेन्द्र देव की शिविका वहन की। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त जब मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुए, उस समय उनके आगे आठ—आठ मंगल अनुक्रम से चले। भगवतीसूत्र में वर्णित जमालि के निर्गमन की तरह यहां मल्ली अरहंतके निर्गमन का वर्णन कहना चाहिए। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त जब दीक्षा धारण करने के लिए निकले तो किन्हीं-किन्हीं देवों ने मिथिला नगरी पानी से सींच दी साफ कर दी और भीतर तथा बाहर की विधि करके यावत् चारों ओर दौड़ धूप करने लगे। (यह सब वर्णन राजप्रश्नीय आदि सूत्रों से जान लेना चाहिए।)

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत जहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था और जहां श्रेष्ठ अशोकवृक्ष था वहां आये। आकर शिविका से नीचे उतरे। नीचे उतर कर समस्त आभरणों का त्याग किया। प्रभावती देवी ने वे आभरण ग्रहण किये। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। तब शक्र देवेन्द्र देवराज ने मल्लीके केशोंको ग्रहण किया, ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्रमें प्रक्षेप कर दिया। तत्पश्चात् मल्ली अरिहन्त ने 'नमोऽत्थु णं सिद्धाणं' अर्थात् 'सिद्धों को नमस्कार हो' इस प्रकार कह कर सामायिक चारित्र अंगीकार किया।

जिस समय अरहंत मल्ली ने चारित्र अंगीकार किया, उस समय देवों और मनुष्यों के निर्घोष (शब्द—कोलाहल) वाद्यों की ध्वनि और गाने—बजाने का शब्द शक्रेन्द्र के आदेश से बिलकुल बन्द हो गये। अर्थात् शक्रेन्द्र ने सब को शान्त रहने का आदेश दिया, अतएव चारित्र ग्रहण करते समय पूर्ण नीरवता व्याप्त हो गई। जिस समय मल्ली अरहन्त ने सामायिक चारित्र अंगीकार किया, उसी समय मल्ली अरहन्त को मनुष्य धर्म से ऊपर का अर्थात् साधारण अव्रती मनुष्यों को न होने वाला—लोकोत्तर, अथवा मनुष्य क्षेत्र संबंधी उत्तम, मन:पर्यय ज्ञान (मनुष्य क्षेत्र—अढ़ाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मन के पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान) उत्पन्न हो गया।

मल्ली अरहन्त ने हेमन्त ऋतु के दूसरे मास में, चौथे पखवाड़े में अर्थात् पौष मास के शुद्ध (शुक्ल) पक्ष में और पौष मासके शुद्ध पक्ष की एकादशी के पक्ष में अर्थात् अर्द्धभाग में (रात्रि का भाग छोड़ कर दिन में), पूर्वाह्न काल के समय में, निर्जल अष्टमभक्त तप करके, अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग प्राप्त होने पर, तीन सौ आभ्यन्तर परिषद् की स्त्रियों के साथ और तीन सौ बाह्य परिषद्के पुरुषों के साथ मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की।

मल्ली अरहन्त का अनुसरण करके ये आठ ज्ञातकुमार दीक्षित हुए। वे इस प्रकार हैं—(१) नन्द (२) नन्दिमित्र (३) सुमित्र (४) बलमित्र (५) भानुमित्र (६) अमरपति (७) अमरसेन और (८) आठवें महासेन। इन आठ ज्ञातकुमारों (इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों) ने दीक्षा अंगीकार की।

तत्पश्चात् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इन चार निकाय के देवों ने मल्ली अरहन्त का दीक्षा—महोत्सव किया। महोत्सव करके जहां नंदीश्वर द्वीप था, वहां गये। जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया। महोत्सव करके यावत् अपने स्थान पर लौट गये।

अभिषेक किया। तत्पश्चात् जब मल्ली भगवान् का अभिषेक हो रहा था, उस समय कोई—कोई देव मिथिला नगरी के भीतर और बाहर यावत् सब दिशाओं —विदिशाओं में दौड़ने लगे इधर-उधर फिरने लगे। तत्पश्चात् कुंभ राजा ने दूसरी बार उत्तर दिशा में जाकर यावत् भगवान् मल्ली को सर्व अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'शीघ्र ही मनोरमा नाम की शिविका (तैयार करके) लाओ।'

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-'शीघ्र ही अनेक खंभों वाली यावत् मनोरमा नामक शिविका उपस्थित करो।' तब वे देव भी मनोरमा शिविका लाये और वह शिविका भी उसी मनुष्यों की शिविका में समा गई। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त सिंहासन से उठे। उठ कर जहां मनोरमा शिविका थी, वहां आये। आकर मनोरमा शिविका को प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् कुंभ राजाने अठारह जातियों—उपजातियोंको बुलवाया। बुलवाकर कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग स्नान करके यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्ली कुमारी की शिविका वहन करो।' यावत् उन्होंने शिविका वहन की।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने मनोरमा शिविका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की (वहन की), ईशानेन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपर की बाहा ग्रहण की, चमरेन्द्र ने दक्षिण तरफ की निचली बाहा ग्रहण की। शेष देवों ने यथायोग्य उस मनोरमा शिविकाको वहन किया। जिनके रोम कूप (रोंगटे)हर्ष के कारण विकस्वर हो गये हैं ऐसे मनुष्योंने सर्वप्रथम वह शिविका उठाई। उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र ने उसे वहन किया ॥ १ ॥

चलायमान चपल कुण्डलों को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा के अनुसार विक्रिया से बनाये हुए आभरणों को धारण करने वाले देवेन्द्रों और दानवेन्द्रों ने जिनेन्द्र देव की शिविका वहन की। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त जब मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुए, उस समय उनके आगे आठ—आठ मंगल अनुक्रम से चले। भगवतीसूत्र में वर्णित जमालि के निर्गमन की तरह यहां मल्ली अरहंतके निर्गमन का वर्णन कहना चाहिए। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त जब दीक्षा धारण करने के लिए निकले तो किन्हीं-किन्हीं देवों ने मिथिला नगरी पानी से सींच दी साफ कर दी और भीतर तथा बाहर की विधि करके यावत् चारों ओर दौड़ धूप करने लगे। (यह सब वर्णन राजप्रश्नीय आदि सूत्रों से जान लेना चाहिए।)

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत जहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था और जहां श्रेष्ठ अशोकवृक्ष था वहां आये। आकर शिविका से नीचे उतरे। नीचे उतर कर समस्त आभरणों का त्याग किया। प्रभावती देवी ने वे आभरण ग्रहण किये। तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। तब शक्र देवेन्द्र देवराज ने मल्लीके केशोंको ग्रहण किया, ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्रमें प्रक्षेप कर दिया। तत्पश्चात् मल्ली अरिहन्त ने 'नमोऽत्थु णं सिद्धाणं' अर्थात् 'सिद्धों को नमस्कार हो' इस प्रकार कह कर सामायिक चारित्र अंगीकार किया।

जिस समय अरहंत मल्ली ने चारित्र अंगीकार किया, उस समय देवों और मनुष्यों के निर्घोष (शब्द—कोलाहल) वाद्यों की ध्वनि और गाने—बजाने का शब्द शक्रेन्द्र के आदेश से बिलकुल बन्द हो गये। अर्थात् शक्रेन्द्र ने सब को शान्त रहने का आदेश दिया, अतएव चारित्र ग्रहण करते समय पूर्ण नीरवता व्याप्त हो गई। जिस समय मल्ली अरहन्त ने सामायिक चारित्र अंगीकार किया, उसी समय मल्ली अरहन्त को मनुष्य धर्म से ऊपर का अर्थात् साधारण अव्रती मनुष्यों को न होने वाला—लोकोत्तर, अथवा मनुष्य क्षेत्र संबंधी उत्तम, मन:पर्यय ज्ञान (मनुष्य क्षेत्र—अढ़ाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मन के पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान) उत्पन्न हो गया।

मल्ली अरहन्त ने हेमन्त ऋतु के दूसरे मास में, चौथे पखवाड़े में अर्थात् पौष मास के शुद्ध (शुक्ल) पक्ष में और पौष मासके शुद्ध पक्ष की एकादशी के पक्ष में अर्थात् अर्द्धभाग में (रात्रि का भाग छोड़ कर दिन में), पूर्वाह्न काल के समय में, निर्जल अष्टमभक्त तप करके, अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग प्राप्त होने पर, तीन सौ आभ्यन्तर परिषद् की स्त्रियों के साथ और तीन सौ बाह्य परिषद्के पुरुषों के साथ मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की।

मल्ली अरहन्त का अनुसरण करके ये आठ ज्ञातकुमार दीक्षित हुए। वे इस प्रकार हैं—(१) नन्द (२) नन्दिमित्र (३) सुमित्र (४) बलमित्र (५) भानुमित्र (६) अमरपति (७) अमरसेन और (८) आठवें महासेन। इन आठ ज्ञातकुमारों (इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों) ने दीक्षा अंगीकार की।

तत्पश्चात् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इन चार निकाय के देवों ने मल्ली अरहन्त का दीक्षा—महोत्सव किया। महोत्सव करके जहां नंदीश्वर द्वीप था, वहां गये। जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया। महोत्सव करके यावत् अपने स्थान पर लौट गये।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने जिस दिन दीक्षा अंगीकार की, उसी दिन के प्रत्यपराह्नकाल के समय अर्थात् दिन के अन्तिम भाग में, श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक के ऊपर बैठे हुए थे, उस समय शुभ परिणामों के कारण, प्रशस्त अध्यवसाय के कारण तथा विशुद्ध एवं प्रशस्त लेश्याओं के कारण, तदावरण (ज्ञानावरण और दर्शनावरण) कर्म की रज को दूर करने वाले, अपूर्व करण (आठवें गुणस्थान) को प्राप्त हुए अरहन्त मल्ली को अनन्त यावत् केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ।।८४।।

उस काल और उस समय में सब देवों के आसन चलायमान हुए। तब वे सब वहां आये। सब ने धर्मोपदेश श्रवण किया। नंदीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया। फिर जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में लौट गये। कुम्भ राजा भी वन्दना करने के लिए निकला। तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य पर स्थापित करके, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरूढ़होकर समस्त ऋद्धि (पूरे ठाठ) के साथ यावत् गीत-वादित्र के शब्दों के साथ जहां मल्ली अरहन्त थे, यावत् वहां आकर उनकी उपासना करने लगे।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने उस बड़ी भारी परिषद् को, कुम्भ राजा को और उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं को धर्म का उपदेश दिया। परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई। कुम्भ राजा श्रमणोपासक हुआ। वह भी लौट गया। प्रभावती श्रमणोपासिका हुई। वह भी वापिस चली गई। तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने धर्म श्रवण करके कहा—'भगवन्! यह संसार आदीप्त है' प्रदीप्त है इत्यादि। यावत् वे दीक्षित हो गए। चौदह पूर्वोके ज्ञानी हुए, फिर अनन्त केवलज्ञान प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त सहस्राम्रवन उद्यान से बाहर निकले। निकल कर जनपद में विहार करने लगे। मल्ली अरहन्त के भिषक (या किंशुक) आदि अट्ठाइस गण और अट्ठाइस गणधर थे। मल्ली अरहन्त की चालीस हजार साधुओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। बंधुमती आदि पचपन हजार आर्यिकाओं की सम्पदा थी। मल्ली अरहन्त की एक लाख चौरासी हजार श्रावकों की उत्कृष्ट संपदा थी। मल्ली अरहंत की तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। मल्ली अरहंत की छह सौ चौदहपूर्वी साधुओं की, दो हजार अवधिज्ञानी, बत्तीस सौ केवलज्ञानी, पैंतीस सौ वैक्रियलब्धिधारी, आठ सौ मनःपर्यायज्ञानी, चौदह सौ और वीस सौ अनुत्तरौपपातिक (सर्वार्थसिद्ध विमान में जाकर फिर एक भव मोक्ष जाने वाले) साधुओं की संपदा थी।

मल्ली अरहंत के तीर्थ में दो प्रकार की अन्तकर भूमि हुई। वह इस

प्रकार-युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि। इनमें से शिष्य-प्रशिष्य आदि वीस पुरुषों रूप युगों तक अर्थात् बीसवें पाट तक युगांतकर भूमि हुई, अर्थात् वीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की। (वीसवें पाट के पश्चात् उनके तीर्थ में किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया।) और दो वर्ष का पर्याय होने पर अर्थात् मल्ली अरहंत को केवलज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर पर्यायान्त-करभूमि हुई-भवपर्याय का अन्त करने वाले-मोक्ष जाने वाले साधु हुए। (इससे पहले कोई जीव मोक्ष नहीं गया।)

मल्ली अरहंत पच्चीस धनुष ऊंचे थे। उनके शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था। समचतुरस्र संस्थान और वज्रऋषभनाराच संहनन था। वह मध्यदेश में सुखपूर्वक विचर कर जहां सम्मेदशिखर पर्वत था, वहां आये। आकर उन्होंने सम्मेदशैल के शिखर पर पादोपगमन अनशन अंगीकार कर लिया।

मल्ली अरहंत एक सौ वर्ष गृहवास में रहे। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवलीपर्याय पाल कर, इस प्रकार कुल पचपन हजार वर्ष की आयु पाल कर, ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष अर्थात् चैत्र मासके शुक्ल पक्ष और उस की चौथ तिथिमें, भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, अर्द्धरात्रिके समय आभ्यन्तर परिषद्की पांच सौ साध्वियों और वाह्य परिषद् के पांच सौ साधुओंके साथ, निर्जल एक मासके अनशनपूर्वक दोनों हाथ लम्बे रखकर, वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर सिद्ध हुए। इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें वर्णित निर्वाणमहोत्सव यहां भी कहना चाहिए। फिर देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निक महोत्सव किया। महोत्सव करके अपने-अपने स्थान पर चले गये।

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—इस प्रकार निश्चय ही, हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने आठवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपण किया है। मैंने जो सुना, वही कहता हूं ॥८५॥

गाथार्थ—उग्रतपसंयमव्रती उत्कृष्ट साधकके लिए भी धर्मविषयक सूक्ष्म माया भी अनर्थकारिणी होती है। जैसे मल्लीके लिए महाबलके भवमें तीर्थंकर नाम गोत्र कर्मका बंध होने पर भी तपश्चरणमें की हुई अल्प माया भी स्त्रीत्वका कारण बनी।

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

नौवां माकन्दी अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया--हे भगवन्! यदि श्रमण यावत् निर्वाणको प्राप्त भगवान् महावीरने आठवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त)

अर्थ कहा है, तो भगवन् ! नौवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीरने क्या अर्थ प्ररूपण किया है ? श्री सुधर्मा स्वामीने उत्तर दिया—इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरीमें कोणिक राजा था। उस चम्पा नगरीके वाहर उत्तरपूर्व-ईशान-दिक्कोण में पूर्णभद्र नामक उद्यान था। उस चम्पा नगरीमें माकंदी नामक सार्थवाह निवास करता था। वह यावत् समृद्धिशाली था। उसकी भद्रा नामक भार्या थी। उस भद्रा भार्याके आत्मज (कूंखसे उत्पन्न) दो सार्थवाहपुत्र थे। उनके नाम इस प्रकार थे—जिनपालित और जिनरक्षित। तत्पश्चात् वे दोनों माकंदीपुत्र एक वार किसी समय इकट्ठे हुए तो उनमें आपसमें इस प्रकार कथासमुल्लाप (वार्तालाप) हुआ—

'हम लोगोंने पोतवहन (जहाज) से लवणसमुद्रको ग्यारह वार अवगाहन किया है। सभी वार हम लोगोंने अर्थ (धन) की प्राप्ति की, करने योग्य कार्य किये और फिर शीघ्र विना विघ्नके अपने घर आ गये। तो हे देवानुप्रिय ! वारहवीं वार भी पोतवहनसे लवण समुद्रमें अवगाहन करना हमारे लिए अच्छा रहेगा।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने परस्पर इस अर्थ (विचार) को स्वीकार किया ···करके जहां माता-पिता थे, वहां आये और आकर इस प्रकार वोले—'हे माता-पिता ! हम लोगोंने···ग्यारह वार···यावत् घर आ गए। तो आप हमें वारहवीं वार भी पोतवहनके द्वारा लवण समुद्र का अवगाहन करने की आज्ञा प्रदान करें।'

तत्पश्चात् माता-पिताने उन माकंदीपुत्रोंसे इस प्रकार कहा—हे पुत्रो ! यह तुम्हारे वाप-दादा आदिके द्वारा उपार्जित प्रचुर धन है, जो यावत् भोगने एवं वंटवारा करने के लिए पर्याप्त है। अतएव पुत्रो ! मनुष्य संवंधी विपुल ऋद्धि-सत्कारके समुदाय वाले भोगोंको भोगो। विघ्न-वाधाओंसे युक्त और जिसमें कोई आलंवन नहीं, ऐसे लवणसमुद्रमें उतरनेसे क्या लाभ है ? हे पुत्रो ! वारहवीं (वार की) यात्रा सोपसर्ग (कष्टकारी) भी होती है। अतएव हे पुत्रो ! तुम दोनों वारहवीं वार लवणसमुद्रमें प्रवेश मत करो, जिससे तुम्हारे शरीर को व्यापत्ति (विनाश या पीड़ा) न हो।

तत्पश्चात् माकंदीपुत्रोंने माता-पिता से दूसरी वार और तीसरी वार इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! हमने ग्यारह वार···लवणसमुद्र में प्रवेश किया है, वारहवीं वार प्रवेश करने की हमारी इच्छा है।' इत्यादि। तत्पश्चात् माता-पिता जव उन माकंदीपुत्रोंको सामान्य कथन और विशेष कथन के द्वारा, सामान्य या विशेष रूपसे समझानेमें समर्थ न हुए, तव इच्छा न होने पर भी उन्होंने उस वात की अनुमति दे दी। तत्पश्चात् वे माता-पिता की अनुमति पाये हुए माकंदी-

पुत्र, गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—चार प्रकार का माल जहाजमें भरकर अर्हन्नक की भांति लवणसमुद्रमें अनेक सैंकड़ों योजन तक चले गये ॥८६॥

तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रोंके अनेक सैंकड़ों योजन तक अवगाहन कर जाने पर सैंकड़ों उत्पात (उपद्रव) उत्पन्न हुए। वे उत्पात इस प्रकार थे—अकालमें गर्जना होने लगी, यावत् अकालमें स्तनित शब्द (गहरी गर्जना की ध्वनि) होने लगी। प्रतिकूल तेज हवा चलने लगी।

तत्पश्चात् वह नौका (पोतवहन) प्रतिकूल तूफानी वायुसे वार-वार कांपने लगी, वार-वार एक जगहसे दूसरी जगह चलायमान होने लगी, वार-वार संक्षुब्ध होने लगी—नीचे डूबने लगी, जलके तीक्ष्ण वेगसे वार-वार टकराने लगी, हाथसे भूतल पर पछाड़ी हुई गेंदके समान जगह-जगह नीची ऊंची होने लगी। जिसे विद्या सिद्ध हुई है ऐसी विद्याधर-कन्या जैसे पृथ्वीतलसे ऊपर उछलती है उसी प्रकार वह ऊपर उछलने लगी और विद्यासे भ्रष्ट विद्याधर-कन्या जैसे आकाशतल से नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी। जैसे महान् गरुड़ के वेगसे त्रास पाई नाग की उत्तम कन्या भय की मारी भागती है, उसी प्रकार वह भी इधर-उधर दौड़ने लगी। जैसे अपने स्थानसे विछुड़ी हुई बछेरी बहुत लोगोंके (बड़ी भीड़के) कोलाहल से त्रस्त होकर इधर-उधर भागती है, उसी प्रकार वह भी इधर-उधर दौड़ने लगी। माता-पिताके द्वारा जिसका अपराध (दुराचार) जान लिया गया है, ऐसी सज्जन-पुरुषके कुल की कन्याके समान नीचे नमने लगी। तरंगोंके सैंकड़ों प्रहारोंसे ताड़ित होकर वह थरथराने लगी। जैसे बिना आलंबन की वस्तु आकाशसे नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी। जिसका पति मर गया हो ऐसी नवविवाहिता वधू जैसे आंसू बहाती है, उसी प्रकार पानीसे भीगी ग्रन्थियों (जोड़ों)में से झरने वाली जलधाराके कारण वह नौका भी अश्रुपात-सा करती प्रतीत होने लगी। पर-चक्री (शत्रु) राजाके द्वारा अवरुद्ध (घिरी हुई) और इस कारण घोर महा भयसे पीड़ित किसी उत्तम महानगरीके समान वह नौका विलाप करती हुई सी प्रतीत होने लगी। कपट (वेषपरिवर्तन) से किये प्रयोग (परवंचना रूप व्यापार) से युक्त, योग साधने वाली परिव्राजिका जैसे ध्यान करती है, उसी प्रकार वह भी कभी-कभी स्थिर हो जाने के कारण ध्यान करती-सी जान पड़ती थी। किसी बड़े जंगलमें से चलकर निकली हुई और थकी हुई बड़ी उम्र वाली माता (पुत्रवती स्त्री) जैसे हांफती है, उसी प्रकार वह नौका भी निश्वाससे छोड़ने लगी, या नौकारूढ़ लोगों के निश्वास के कारण नौका भी निश्वास छोड़ती-सी दिखाई देने लगी। तपश्चरण के फल स्वरूप प्राप्त स्वर्गके भोग क्षीण होने पर जैसे श्रेष्ठ देवी अपने च्यवनके समय शोक करती है, उसी प्रकार वह नौका भी शोक-सा करने लगी, अर्थात्

नौका पर सवार लोग शोक करने लगे। उसके काष्ठ और मुखभाग चूर-चूर हो गये। उसकी मेढ़ी१ भंग हो गई और माल२ सहसा मुड़ गई, या सहस्रों मनुष्यों की आधार भूत माल मुड़ गई। वह नौका पर्वतके शिखर पर चढ़ जाने के कारण ऐसी मालूम होने लगी मानों शूली पर चढ़ गई हो। उसे जल का स्पर्श वक्र (वांका) होने लगा, अर्थात् नौका टेढ़ी हो गई। एक दूसरे के साथ जुड़े पाटियों में तड़-तड़ शब्द होने लगा, उनके जोड़ टूटने लगे, लोहे की कीलें निकल गईं, उसके सब भाग अलग-अलग हो गये। उसके पटियों के साथ बंधी रस्सियां गीली होकर (गल कर) टूट गईं, अतएव उसके सब हिस्से बिखर गये। वह कच्चे सिकोरे जैसी हो गई—पानी में विलीन हो गई। अभागे मनुष्य के मनोरथ के समान वह अत्यन्त चिन्तनीय हो गई। नौका पर आरूढ़ कर्णधार, मल्लाह, वणिक और कर्मचारी हाय-हाय करके विलाप करने लगे। वह नाना प्रकार के रत्नों और मालों से भरी हुई थी। इस विपदा के समय सैकड़ों मनुष्य रुदन करने लगे—रुदन शब्द के साथ अश्रुपात करने लगे, आक्रन्दन करने लगे, शोक करने लगे, भय के कारण उनका पसीना झरने लगा, वे विलाप करने लगे, अर्थात् आर्त्त-ध्वनि करने लगे। उसी समय जल के भीतर विद्यमान एक बड़े पर्वत के शिखर के साथ टकरा कर नौका का मस्तूल और तोरण भग्न हो गया और ध्वजदंड मुड़ गया। नौका के वलय जैसे सैकड़ों टुकड़े हो गये। वह नौका 'कड़ाक' का शब्द करके उसी जगह नष्ट हो गई, अर्थात् डूब गई।

तत्पश्चात् उस नौका के भग्न होकर डूब जाने पर बहुत-से लोग बहुत-से रत्नों, भांडों और माल के साथ जल में डूब गये। दोनों माकन्दीपुत्र चतुर, दक्ष, अर्थ को प्राप्त, कुशल, बुद्धिमान्, निपुण, शिल्प को प्राप्त, बहुत-से पोतवहन के युद्ध जैसे खतरनाक कार्यों में कृतार्थ, विजयी, मूढ़तारहित और फुर्त्तीले थे। अतएव उन्होंने एक बड़ा-सा पटिये का टुकड़ा पा लिया। जिस प्रदेशमें वह पोतवहन नष्ट हुआ था, उसी प्रदेश में—उसके पास ही, एक रत्नद्वीप नामक बड़ा द्वीप था। वह अनेक योजन लम्बा-चौड़ा और अनेक योजनके घेरे वाला था। उसके प्रदेश अनेक प्रकारके वृक्षोंके वनों से मंडित थे। वह द्वीप सुन्दर सुषमा वाला,प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, दर्शनीय, मनोहर और प्रतिरूप था अर्थात् दर्शकों को नये-नये रूप में दिखाई देता था। उस द्वीप के एकदम मध्यभाग में एक उत्तम प्रासाद था। उसकी ऊंचाई प्रकट थी—वह बहुत ऊंचा था। वह भी सश्रीक, प्रसन्नताप्रदायी, दर्शनीय मनोहर रूप वाला और प्रतिरूप था।

१-एक बड़ा और मोटा लट्ठा, जो सब पटियों का आधार होता है।

२-मनुष्योंके बैठने का ऊपरी भाग।

उस उत्तम प्रासाद में रत्नद्वीपदेवी नाम की एक देवी रहती थी। वह पापिनी, चंडा-अति पापिनी, भयंकर, तुच्छ स्वभाव वाली और साहसिक थी। (इस देवी के शेष विशेषण विजय चोर के समान जान लेने चाहिएं।) उस उत्तम प्रासाद की चारों दिशाओं में चार वनखंड थे। वे श्याम वर्ण वाले और श्याम कांति वाले थे (यहां वनखंड के अन्य विशेषण जान लेने चाहिएं)। तत्पश्चात् वे दोनों माकन्दीपुत्र (जिनपालित और जिनरक्षित) पटिये के सहारे तिरते-तिरते रत्नद्वीप के समीप आ पहुंचे।

तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों को थाह मिली। थाह पाकर उन्होंने घड़ी भर विश्राम किया। विश्राम करके पटिये के टुकड़े को छोड़ दिया। छोड़ कर रत्नद्वीप में उतरे। उतर कर फलों की मार्गणा-गवेषणा (खोज-ढूंढ) की। फिर फलों को ग्रहण किया। ग्रहण करके फल खाये। खाकर नारियलोंकी मार्गणा-गवेषणा की। नारियल फोड़े। फिर उनके तेल से दोनों ने आपस में मालिश की। मालिश करके बावड़ी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। स्नान करके बावड़ी से बाहर निकले। एक पृथ्वी-शिला रूप पाट पर बैठे। बैठ कर शान्त हुए, विश्राम लिया और श्रेष्ठ सुखासन पर आसीन हुए। वहां बैठे-बैठे चम्पा नगरी, माता-पिता से आज्ञा लेना, लवणसमुद्र में उतरना, तूफानी वायु का उत्पन्न होना, नौका का भग्न होकर डूब जाना, पटिये का टुकड़ा मिल जाना और अन्त में रत्न द्वीप में आना, इन सब बातों का बार-बार विचार करते हुए भग्नमनःसंकल्प होकर चिन्ता में डूब गये।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकंदीपुत्रों को अवधिज्ञान से देखा। देख कर उसने हाथ में ढाल और तलवार ली। सात-आठ ताड़ जितनी ऊंचाई पर आकाश में उड़ी। उड़ कर उत्कृष्ट यावत् देवगति से चलती-चलती जहां माकंदीपुत्र थे, वहां आई। आकर तत्काल कुपित हुई और माकंदीपुत्रों को तीखे, कठोर और निष्ठुर वचनों से इस प्रकार कहने लगी—

'अरे माकंदी के पुत्रो! अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वालो! यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए रहोगे तो तुम्हारा जीवन है—तुम जीते बचोगे, और यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए नहीं रहोगे, तो इस नीलकमल, भैंस के सींग और नील द्रव्य की गुटिका (गोली) के समान काली और छुरे की धार के समान तीखी तलवार से तुम्हारे इन मस्तकों को ताड़फल की तरह काट कर एकान्त में डाल दूंगी, जो गंडस्थलों को और दाढ़ी-मूंछों को लाल करने वाले हैं और मूंछों से सुशोभित हैं, अथवा जो माता आदि के द्वारा संवार कर सुशोभित किये हुए केशों से शोभायमान हैं।'

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र रत्नद्वीप की देवी से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके भयभीत हुए। उन्हें भय उत्पन्न हुआ। उन्होंने दोनों हाथ जोड़

कर इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिया ! जो कहेंगी' हम आपकी आज्ञा, उपपात सेवा, वचन-आदेश और निर्देश (कार्य करने) में तत्पर रहेंगे ।' अर्थात् आपके सभी आदेशों का पालन करेंगे । तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवीने उन माकन्दीपुत्रों को ग्रहण किया । ग्रहण करके जहां अपना उत्तम प्रासाद था, वहां आई । आकर अशुभ पुद्गलोंको दूर किया और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण किया और फिर उनके साथ विपुल काम-भोगों का सेवन करने लगी । प्रतिदिन उनके लिए अमृत जैसे मधुर फल लाने लगी ।। ८७ ।।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की उस देवी को शक्रेन्द्र के वचन-आदेश से सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपति देव ने कहा—'तुम्हें इक्कीस बार लवणसमुद्र का चक्कर काटना है । वह इसलिए कि वहां जो कुछ भी तृण (घास), पत्ता, काष्ठ, कचरा, अशुचि (अपवित्र वस्तु), सड़ी-गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु और गंदी चीज हो, वह सब इक्कीस बार हिला-हिलाकर, समुद्रसे निकाल कर एक तरफ डाल देना ।' इस प्रकार कह कर उस देवी को समुद्र की सफाई के कार्य में नियुक्त किया ।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दीपुत्रों से कहा—'हे देवानुप्रियो ! मैं शक्रेन्द्र के वचनादेश (आज्ञा) से, सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपति देव द्वारा यावत् (पूर्वोक्त प्रकार से सफाई के कार्य में) नियुक्त की गई हूं । सो हे देवानुप्रियो ! मैं जब तक लवणसमुद्र में से यावत् कचरा आदि दूर करने जाऊ, तब तक तुम इसी उत्तम प्रासाद में आनन्द के साथ रमण करते हुए रहना । यदि तुम इस बीच में ऊब जाओ, उत्सुक होओ, या कोई उपद्रव हो, तो तुम पूर्व-दिशा के वनखण्ड में चले जाना ।

उस पूर्वदिशा के वनखण्ड में दो ऋतुएं सदा स्वाधीन हैं—विद्यमान रहती हैं । वे यह हैं—प्रावृष् ऋतु अर्थात् आषाढ़ और श्रावण का मौसम तथा वर्षारात्र अर्थात् भाद्रपद और आश्विन का मौसम । उनमें—(उस वनखण्ड में सदैव) प्रावृष ऋतु रूपी हाथी स्वाधीन है । कंदल—नवीन लताएं और सिलिंध्र-भूमि—फोड़ा उस प्रावृष्—हाथी के दांत हैं । निउर नामक वृक्ष के उत्तम पुष्प ही उसकी उत्तम सूंड़ है । कुटज, अर्जुन और नीप वृक्षों के पुष्प ही उसका सुगंधित मदजल है । (यह सब वृक्ष प्रावृष् ऋतु में फूलते हैं, किन्तु उस वनखण्ड में सदैव फूले रहते हैं । इस कारण प्रावृष् को वहां सदा स्वाधीन कहा है ।) और—उस वनखण्ड में वर्षाऋतु रूपी पर्वत भी सदा स्वाधीन—विद्यमान रहता है, क्योंकि वह इन्द्रगोप (सावन की डोकरी) रूपी पद्मराग आदि मणियों से विचित्र वर्ण वाला रहता है, और उसमें मेंढकों के समूह के शब्द रूपी झरने की ध्वनि होती रहती है । वहां मयूरों के समूह सदैव शिखरों पर विचरते रहते हैं । हे देवानुप्रियो ! उस

पूर्व दिशा के उद्यान में तुम बहुतसी वावड़ियों में, यावत् बहुत-सी सरोवरों की श्रेणियों में, बहुत-से लतामण्डपों में, वल्लियों के मंडपों में यावत् बहुत-से पुष्प-मंडपों में सुखे-सुखे रमण करते हुए समय व्यतीत करना।

अगर तुम वहां भी ऊब जाओ, उत्सुक हो जाओ, या कोई उपद्रव हो जाय—भय हो जाय, तो तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड में चले जाना। वहां दो ऋतुएं सदा स्वाधीन हैं। वे यह हैं—शरद् और हेमन्त। उनमें से शरद् (कार्तिक और मार्गशीर्ष) इस प्रकार है—शरद् ऋतु रूपी गोपति—वृषभ सदा स्वाधीन है। सन और सप्तच्छद वृक्षोंके पुष्प उसका ककुद (कंधा) है, नीलोत्पल पद्म और नलिन उसके सींग हैं, सारस और चक्रवाक पक्षियों का कूजन ही उसका घोष (दलांक) है। उसमें—हेमन्तऋतु रूपी चन्द्रमा उस वन में सदा स्वाधीन है। श्वेत कुन्द के फूल उसकी धवल ज्योत्स्ना—चांदनी है। प्रफुल्लित लोध्र वाला वनप्रदेश उसका मंडलतल (बिम्ब) है और तुषारके जलबिन्दु की धाराएं उसकी स्थूल किरणें हैं। हे देवानुप्रियो! तुम उत्तर दिशा के उस वनखण्ड में यावत् क्रीड़ा करना।

यदि तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड में भी उद्विग्न हो जाओ, यावत् मुझ से मिलने के लिए उत्सुक हो जाओ, तो तुम पश्चिम दिशा के वनखण्डमें चले जाना। उस वनखण्ड में भी दो ऋतुएं सदा स्वाधीन हैं। वे यह हैं—वसन्त और ग्रीष्म। उसमें—वसन्त ऋतु रूपी राजा सदा विद्यमान रहता है। वसन्त—राजा के आम्र के पुष्पों का मनोहर हार है, किंशुक (पलाश), कर्णिकार (कनेर) और अशोकके पुष्पों का मुकुट है तथा ऊंचे-ऊंचे तिलक और बकुल के फूलों का छत्र है। और उसमें-उस वनखण्ड में ग्रीष्मऋतु रूपी सागर सदा विद्यमान रहता है। वह ग्रीष्म-सागर पाटल और शिरीष के पुष्पों रूपी जल से परिपूर्ण रहता है। मल्लिका और वासन्तिकी लताओं के कुसुम ही उसकी उज्ज्वल वेला—ज्वार है। उसमें जो शीतल और सुरभित पवन है, वही मगरों का विचरण है।

देवानुप्रियो! यदि तुम वहां भी ऊब जाओ या उत्सुक हो जाओ तो इस उत्तम प्रासाद में ही आ जाना। यहां आकर मेरी प्रतीक्षा करते—करते यहीं ठहरना। दक्षिण दिशा के वनखण्ड की तरफ मत चले जाना। दक्षिण दिशा के वनखण्डमें एक बड़ा सर्प रहता है। उसका विष उग्र अर्थात् दुर्जर है, प्रचंड अर्थात् शीघ्र ही फैल जाता है, घोर है अर्थात् परम्परा से हजार मनुष्यों का घातक है, उसका विष महान् है, अर्थात् जम्बूद्वीप के बराबर शरीर हो तो उसमें भी फैल सकता है, अन्य सब सर्पों से बढ़ कर उसका शरीर बड़ा है। इस सर्प के अन्य विशेषण 'जहा तेयनिसग्गे' अर्थात् गोशालक के वर्णनमें कहे अनुसार जान लेने चाहिएं। वे इस प्रकार हैं—वह काजल, भैंसा और कसौटी—पाषाण के समान काला है, नेत्र के विष से और क्रोध से परिपूर्ण है। उसकी आभा काजलके ढेर के

समान काली है। उसकी आंखें लाल हैं। उसकी दोनों जीभें चपल एवं लपलपाती रहती हैं। वह पृथ्वी रूपी स्त्री की वेणी के समान (काला, चमकदार और पृष्ठ भाग में स्थित) है। वह सर्प उत्कट—अन्य बलवान् के द्वारा भी न रोका जा सकने योग्य, स्फुट—प्रयत्न—कृत होने के कारण प्रकट, कुटिल—वक्र, जटिल—सिंह की अयाल के सदृश, कर्कश—कठोर और विकट—विस्तार वाला फटाटोप करने (फण फैलाने) में दक्ष है। लोहार की भट्ठी में धौंका जाने वाला लोहा जैसे धम—धम शब्द करता है, उसी प्रकार वह सर्प भी ऐसा ही 'धम—धम' शब्द करता रहता है। उसके प्रचंड एवं तीव्र रोप को कोई रोक नहीं सकता। शीघ्रता एवं चपलतासे वह धम्-धम् शब्द करता रहता है। उसकी दृष्टि में विप है, अर्थात् वह जिसे देख ले, उसी पर उसके विप का असर हो जाता है। अतएव कहीं ऐसा न हो कि तुम वहां चले जाओ और तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय!

रत्नद्वीप की देवी ने यह बात दो बार और तीन बार उन माकन्दीपुत्रों से कही। कह कर उसने वैक्रिय समुद्घात से विक्रिया की। विक्रिया करके उत्कृष्ट-उतावली देवगति से इक्कीस बार लवणसमुद्र का चक्कर काटने के लिए प्रवृत्त हो गई ॥८८॥

तत्पश्चात् वे माकन्दीपुत्र देवी के चले जाने पर एक मुहूर्त्त में ही (थोड़ी ही देर में) उस उत्तम प्रासाद में सुखद स्मृति, रति और धृति नहीं पाते हुए आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रिय! रत्नद्वीप की देवी ने हम से इस प्रकार कहा है कि शक्रेन्द्र के वचनादेशसे लवणसमुद्रके अधिपति देव सुस्थित ने मुझे यह कार्य सौंपा है, यावत् तुम दक्षिण दिशाके वनखण्ड में मत जाना, ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय।' तो हे देवानुप्रिय! हमें पूर्व दिशा के वनखण्ड में चलना चाहिए।' दोनों भाइयों ने आपसके इस विचारको अंगीकार किया। वे पूर्व दिशाके वनखण्ड में आये। आकर उस वन के अंदर बावड़ी आदि में यावत् क्रीड़ा करते हुए वल्ली मंडप आदि में यावत् विहार करने लगे।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र वहां भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए उत्तर दिशा के वनखण्ड में गये। वहां जाकर बावड़ियों में यावत् वल्लीमंडपों में विहार करने लगे। तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र वहां भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए पश्चिम दिशा के वनखण्ड में गये। जाकर यावत् विहार करने लगे।

तब वे माकंदीपुत्र वहां भी स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए आपस में इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय! रत्नद्वीप की देवी ने हमसे ऐसा कहा है कि—'देवानुप्रियो! शक्र के वचनादेश से लवणाधिपति सुस्थित ने मुझे समुद्र की स्वच्छता के कार्य में नियुक्त किया है। यावत् तुम दक्षिण दिशा के वनखण्ड में

मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय।' तो इसमें कोई कारण होना चाहिए।' अतएव हमें दक्षिण दिशा के वनखण्ड में भी जाना चाहिए। इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे के इस विचार को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन्होंने दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जानेका संकल्प किया—रवाना हुए।

तत्पश्चात् दक्षिण दिशा से दुर्गंध फूटने लगी, जैसे कोई सांप का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट दुर्गन्ध आने लगी। तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों ने उस अशुभ दुर्गन्ध से घबरा कर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुंह ढंक लिये। मुंह ढक कर वे दक्षिण दिशा के वनखण्ड में पहुंचे।

वहां उन्होंने एक बड़ा वधस्थान देखा। देख कर सैंकड़ों हाड़ों के समूह से व्याप्त और देखने में भयंकर उस स्थान पर शूली पर चढ़ाये हुए एक पुरुषको करुण, विरस और कष्टमय शब्द करते देखा। उसे देख कर वे डर गये। उन्हें बड़ा भय उत्पन्न हुआ। फिर वे जहां शूली पर चढ़ाया पुरुष था, वहां पहुंचे और शूली पर चढ़े पुरुषसे इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय! यह वधस्थान किसका है? तुम कौन हो? किसलिए यहां आये थे? किसने तुम्हें इस विपत्ति को पहुँचाया है?'

तब शूली पर चढ़े उस पुरुष ने माकन्दीपुत्रोंसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! यह रत्नद्वीपकी देवीका वधस्थान है। देवानुप्रियो! मैं जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्रमें स्थित काकंदी नगरीका निवासी अश्वोंका व्यापारी हूं। मैं बहुत-से अश्व और भाण्डोपकरण पोतवहन में भर कर लवणसमुद्र में चला। तत्पश्चात् पोत-वहन के भंग हो जाने से मेरा सब उत्तम भाण्डोपकरण डूब गया। मुझे पटियेका एक टुकड़ा मिल गया। उसी के सहारे तिरता-तिरता मैं रत्नद्वीपके समीप आ पहुँचा। उसी समय रत्नद्वीपकी देवी ने मुझे अवधिज्ञान से देखा। देखकर उसने मुझे ग्रहण कर लिया, वह मेरे साथ विपुल कामभोग भोगने लगी।

तत्पश्चात् रत्नद्वीपकी वह देवी एक बार, किसी समय, एक छोटे-से अपराध पर अत्यन्त कुपित हो गई और उसी ने मुझे इस विपदा में पहुंचाया है। हे देवानुप्रियो! नहीं मालूम तुम्हारे इस शरीर को भी कौन-सी आपत्ति प्राप्त होगी?'

तत्पश्चात् वे माकन्दीपुत्र शूली पर चढ़े उस पुरुष से यह अर्थ (वृत्तांत) सुनकर और हृदय में धारण करके और अधिक भयभीत हो गए और उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। तब उन्होंने शूली पर चढ़े पुरुष से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! हम लोग रत्नद्वीपकी देवीके हाथसे, किस प्रकार अपने हाथ से–अपने-आप निस्तार पाएं—छुटकारा पा सकते हैं ?'

तत्पश्चात् शूली पर चढ़े पुरुषने उन माकन्दीपुत्रोंसे कहा—'देवानुप्रियो ! इस पूर्व दिशा के वनखण्डमें शैलक यक्षका यक्षायतन है। उसमें अश्वका रूप धारण किये शैलक नामक यक्ष निवास करता है। वह शैलक यक्ष चौदस, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमाके दिन आगत समय और प्राप्त समय होकर अर्थात् एक नियत समय आने पर जोर के शब्द कह कर इस प्रकार बोलता है—'किसको तारूं ? किसको पालूं ?'

तो हे देवानुप्रियो ! तुम लोग पूर्व दिशाके वनखण्डमें जाना और शैलक यक्ष की महान् जनों के योग्य पुष्पोंसे पूजा करना। पूजा करके घुटने और पैर नमा कर, दोनों हाथ जोड़ कर, विनय के साथ, उसकी सेवा करते हुए ठहरना। जब शैलक यक्ष आगत समय और प्राप्त समय होकर—नियत समय आने पर कहे कि—'किसे तारूं, किसे पालूं' तब तुम कहना—'हमें तारो, हमें पालो।' इस प्रकार शैलक यक्ष ही केवल रत्नद्वीपकी देवीके हाथसे, अपने हाथ से स्वयं तुम्हारा निस्तार करेगा। अन्यथा मैं नहीं जानता कि तुम्हारे इस शरीरको क्या आपत्ति हो जाएगी ?' ॥८६॥

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र शूली पर चढ़े पुरुष से इस अर्थ को सुन कर और मन में धारण करके शीघ्र, प्रचण्ड, चपल, त्वरा वाली और वेग वाली गति से जहां पूर्व दिशा का वनखण्ड था और उसमें पुष्करिणी थी, वहां आये। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। स्नान करने के बाद वहां जो कमल आदि थे, उन्हें ग्रहण किया। ग्रहण करके शैलक यक्ष के यक्षायतन में आए। यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। फिर महान् जनोंके योग्य पुष्प-पूजा की। वे घुटने और पैर नमा कर यक्ष की सेवा करते हुए, नमस्कार करते हुए उपासना करने लगे।

जिसका समय समीप आया है और साक्षात् प्राप्त हुआ है ऐसे शैलक यक्ष ने कहा—'किसे तारूं, किसे पालूं ?' तत्पश्चात् माकंदीपुत्रोंने खड़े होकर और हाथ जोड़ कर कहा—'हमें तारिए, हमें पालिए।' तब शैलक यक्षने माकंदीपुत्रोंसे कहा—देवानुप्रियो ! तुम मेरे साथ लवण समुद्रके बीचोंबीच गमन करोगे, तब वह पापिनी, चण्डा, रुद्रा, क्षुद्रा और साहसिका रत्नद्वीप की देवी तुम्हें कठोर, कोमल, अनुकूल, प्रतिकूल, शृङ्गारमय और मोहजनक उपसर्गोंसे उपसर्ग करेगी। हे देवानुप्रियो ! अगर तुम रत्नद्वीपकी देवीके उस अर्थ का आदर करोगे, उसे अंगीकार करोगे या अपेक्षा करोगे, तो मैं तुम्हें अपनी पीठसे नीचे गिरा दूंगा। और यदि तुम रत्नद्वीप की देवीके उस अर्थका आदर न करोगे, अंगीकार न

करोगे और अपेक्षा न करोगे तो मैं अपने हाथसे, रत्नद्वीप की देवीसे तुम्हारा निस्तार कर दूंगा। तब माकन्दीपुत्रोंने शैलक यक्षसे कहा—'देवानुप्रिय! आप जो कहेंगे, हम उसके उपपात-सेवन, वचन-आदेश और निर्देशमें रहेंगे। अर्थात् हम सेवक की भांति आपकी आज्ञाका पालन करेंगे।'

तत्पश्चात् शैलक यक्ष उत्तरपूर्व दिशामें गया। वहां जाकर उसने वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजनका दंड किया। दूसरी बार और तीसरी बार भी वैक्रिय समुद्घातसे विक्रिया की। समुद्घात करके एक बड़े अश्वके रूप की विक्रिया की और फिर माकंदीपुत्रोंसे इस प्रकार कहा--'हे माकन्दीपुत्रो! देवानुप्रियो! मेरी पीठ पर चढ़ जाओ।' तब माकंदीपुत्रोंने हर्षित और सन्तुष्ट होकर शैलक यक्ष को प्रणाम किया। प्रणाम करके वे शैलक की पीठ पर आरूढ़ हो गये। तत्पश्चात् अश्वरूपधारी शैलक यक्ष माकंदीपुत्रों को पीठ पर आरूढ़ हुआ जान कर सात-आठ ताड़के बराबर ऊंचा आकाशमें उड़ा। उड़कर उत्कृष्ट, शीघ्रता वाली देव संबंधी दिव्य गतिसे लवणसमुद्रके बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था, भरत क्षेत्र था और जिधर चम्पा नगरी थी, उसी ओर रवाना हो गया ॥६०॥

तत्पश्चात् रत्नद्वीपकी देवीने लवणसमुद्रके चारों तरफ इक्कीस चक्कर लगा कर, उसमें जो कुछ भी तृण आदि था, वह सब यावत् दूर किया। दूर करके अपने उत्तम प्रासादमें आई। आकर माकंदीपुत्रोंको उत्तम प्रासादमें न देखकर पूर्व दिशा के वनखण्डमें गई वहां सब जगह उसने मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करने पर उन माकंदीपुत्रोंकी कहीं भी श्रुति आदि न पाती हुई उत्तर दिशाके वनखंडमें गई। इसी प्रकार पश्चिमके वनखंडमें भी गई, पर वे कहीं दिखाई न दिये। तब उसने अवधिज्ञानका प्रयोग किया। प्रयोग करके उसने माकंदीपुत्रों को शैलकके साथ लवणसमुद्रके बीचोंबीच होकर चले जाते देखा। देखते ही वह तत्काल क्रुद्ध हुई। उसने ढाल-तलवार ली और सात-आठ ताड़ जितनी ऊंचाई पर आकाशमें उड़कर उत्कृष्ट एवं शीघ्र गति करके जहां माकंदीपुत्र थे, वहां आई। आकर इस प्रकार कहने लगी—

अरे माकंदी के पुत्रो! अरे मौतकी कामना करने वालो! क्या तुम समझते हो कि मेरा त्याग करके, शैलक यक्षके साथ, लवण समुद्रके मध्यमें होकर तुम चले जाओगे? इतने चले जाने पर भी (इतना होने पर भी) अगर तुम मेरी अपेक्षा रखते हो तो तुम जीवित रहोगे, और यदि मेरी अपेक्षा न रखते होओ तो इस नील कमल एवं भैंसके सींग जैसी काली तलवार से यावत् तुम्हारा मस्तक काट कर फैंक दूंगी। तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र रत्नद्वीप की देवीके इस कथनको सुनकर और मनमें धारण करके भयभीत नहीं हुए, त्रासको प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, संभ्रान्त नहीं हुए। अतएव उन्होंने रत्नद्वीपकी देवीके इस अर्थका आदर

नहीं किया, उसे अंगीकार नहीं किया, उसकी पर्वाह नहीं की। वे आदर न करते हुए शैलक यक्षके साथ लवण समुद्रके मध्यमें होकर चले जाने लगे।

तत्पश्चात् वह रत्नद्वीपकी देवी जब उन माकंदीपुत्रोंको बहुतसे प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा चलित करने, क्षुब्ध करने, पलटने और लुभानेमें समर्थ न हुई, तब अपने मधुर शृङ्गारमय और अनुरागजनक अनुकूल उपसर्गोंसे उन पर उपसर्ग करनेमें प्रवृत्त हुई। देवी कहने लगी—'हे माकंदीपुत्रो! हे देवानुप्रियो! तुमने मेरे साथ हास्य किया है, चौपड़ आदि खेल खेले हैं, मनोवांछित क्रीड़ा की है, क्रीडित-झूला आदि झूलकर मनोरंजन किया है, उद्यान आदिमें भ्रमण किया है और रतिक्रीड़ा की है, इन सबको कुछ भी न गिनते हुए, मुझे छोड़कर तुम शैलक यक्षके साथ लवण समुद्रके मध्यमें होकर जा रहे हो?'

तत्पश्चात् रत्नद्वीपकी देवीने जिनरक्षित का मन अवधिज्ञानसे (कुछ शिथिल) देखा। यह देखकर वह इस प्रकार कहने लगी—'मैं सदैव जिनपालित के लिए अनिष्ट, अकान्त आदि थी और जिनपालित मेरे लिए अनिष्ट अकान्त आदि था, परन्तु जिनरक्षितको तो मैं सदैव इष्ट आदि थी और जिनरक्षित मुझे इष्ट आदि था। अतएव जिनपालित यदि मुझे रोती, आक्रन्दन करती, शोक करती अनुताप करती और विलाप करती हुई की परवाह नहीं करता, तो हे जिनरक्षित! तुम भी मुझ रोती हुई की यावत् परवाह नहीं करते?'

तत्पश्चात्—वह श्रेष्ठ रत्नद्वीपकी देवी अवधिज्ञान द्वारा जिनरक्षितका मन जान कर, दोनों माकंदीपुत्रोंके प्रति, उनका वध करनेके निमित्त (कपटसे इस प्रकार बोली।) द्वेषसे युक्त वह देवी लीला सहित, विविध प्रकारके चूर्णवाससे मिश्रित, दिव्य, नासिका और मनको तृप्ति देने वाले और सर्व ऋतुओं संबंधी सुगंधित फूलोंकी वृष्टि करती हुई (बोली) ॥१-२॥ नाना प्रकारके मणि, सुवर्ण और रत्नोंकी घंटियों, घुंघरुओं, नूपुरों और मेखला-इन सब आभूषणोंके शब्दोंसे समस्त दिशाओं और विदिशाओंको व्याप्त करती हुई वह पापिनी देवी इस प्रकार कहने लगी ॥३॥

हे होल! वसुल गोल[१] नाथ! दयित (प्यारे)! प्रिय! रमण! कान्त (मनोहर)! स्वामिन् (अधिपति)! निर्घृण (मुझ स्नेहवती का त्याग करनेके कारण निर्दय)! हे नित्थक्क (अकस्मात् मेरा परित्याग करनेके कारण अवसर को न जानने वाले)! स्त्यान (मेरे हार्दिक रागसे भी तेरा हृदय आर्द्र न हुआ, अतएव कठोर हृदय)! निष्कृप (दयाहीन)! हे अकृतज्ञ! शिथिलभाव (अकस्मात् मेरा त्याग कर देनेके कारण ढीले मन वाले)! निर्लज्ज (मुझे स्वीकार करके त्याग देनेके के कारण लज्जाहीन)! हे रूक्ष (स्नेहहीन हृदय वाले)! अकरुण!

---

१ इन तीनों शब्दों का निन्दा—स्तुति गर्भित अर्थ होता है।

जिनरक्षित ! हे मेरे हृदयके रक्षक (वियोग व्यथासे फटते हुए हृदयको फिर अंगीकार करके बचाने वाले) ! ॥४॥

मुझ अकेली, अनाथ, बान्धवविहीन, तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली और अधन्या (हतभागिनी) को त्याग देना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है। हे गुणोंके समूह ! तुम्हारे विना मैं क्षण भर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूं ॥५॥ अनेक सैंकड़ों मत्स्य, मगर और विविध क्षुद्र जलचर प्राणियोंसे व्याप्त गृह रूप या मत्स्य आदिके घर-स्वरूप इस रत्नाकरके मध्यमें तुम्हारे सामने मैं अपना वध करती हूं। (अगर तुम ऐसा नहीं चाहते तो) आओ, वापिस लौट चलो। अगर तुम कुपित हो गये होओ तो मेरा एक अपराध क्षमा करो ॥६॥

तुम्हारा मुख मेघ–विहीन विमल चन्द्रमा के समान है। तुम्हारे नेत्र शरद्-ऋतु के सद्यःविकसित कमल (सूर्यविकासी), कुमुद (चन्द्रविकासी) और कुवलय (नीलकमल) के पत्तों के समान अत्यन्त शोभायमान हैं। ऐसे नेत्र वाले तुम्हारे मुख के दर्शन की प्यास (इच्छा) से मैं यहां आई हूं। तुम्हारे मुख को देखने की मेरी अभिलाषा है। हे नाथ ! तुम इस ओर मुझे देखो, जिससे मैं तुम्हारा मुख–कमल देख लूं ॥७॥

इस प्रकार प्रेम पूर्ण, सरल और मधुर वचन वार–वार वोलती हुई वह पापिनी और पापपूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में उसके पीछे–पीछे चलने लगी ॥८॥ तत्पश्चात् पूर्वोक्त कानों को सुख देने वाले और मन को हरण करने वाले आभूषणों के शब्द से तथा उन प्रणययुक्त, सरल और मधुर वचनों से जिनरक्षित का मन चलायमान हो गया। उसे पहले की अपेक्षा उस पर दुगुना राग उत्पन्न हो गया। वह रत्नद्वीप की देवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर और नेत्र के लावण्य की, रूप (शरीर के सौन्दर्य) की और यौवन की लक्ष्मी (शोभा--सुन्दरता) को स्मरण करने लगा। उसके द्वारा हर्ष या उतावली के साथ किये गये आलिंगनों को, विब्बोकों (चेष्टाओं) को, विलासों (नेत्र के विकारों) को, विहसित (मुस्कराहट) को, कटाक्षों को, कामक्रीड़ाजनित निःश्वासोंको, स्त्री के इच्छित अंग के मर्दन को, उपललित (विशेष प्रकार की क्रीड़ा) को, स्थित (गोद में या भवन में वैठने) को, गति को, प्रणय कोप को तथा प्रसादित (कुपित को रिझाने) को, स्मरण करते हुए जिनरक्षित की मति राग से मोहित हो गई। वह विवश हो गया–अपने पर कावू न रख सका, कर्म के आधीन हो गया और वह लज्जाके साथ, पीछे की ओर, उसके मुख की तरफ देखने लगा।

तत्पश्चात् जिनरक्षित को देवी पर अनुराग उत्पन्न हुआ, अतएव मृत्यु रूपी राक्षस ने उसके गले में हाथ डाल कर उसकी मति फेर दी, अर्थात् उसकी वुद्धि मृत्यु की तरफ जाने की हो गई। उसने देवी की ओर देखा, यह वात

शैलक यक्ष ने अवधिज्ञान से जान ली और स्वस्थता से रहित उसको धीरे-धीरे अपनी पीठ से फैंक दिया। तत्पश्चात् उस निर्दय और पापिनी रत्नद्वीप की देवी ने दयनीय जिनरक्षित को शैलक की पीठ से गिरता देख कर कहा—'रे दास ! तू मरा।' इस प्रकार कह कर समुद्र के जल तक पहुँचने से पहले ही, दोनों हाथों से पकड़ कर चिल्लाते हुए जिनरक्षित को ऊपर उछाला। जब वह नीचे की ओर आने लगा तो उसे तलवार की नोक पर झेल लिया। नीलकमल, भैंस के सींग और अलसी के फूल के समान श्याम रंग की श्रेष्ठ तलवार से विलाप करते हुए उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। टुकड़े-टुकड़े करके अभिमान-रस से वध किये हुए जिनरक्षित के रुधिर से व्याप्त अंगोपांगों को ग्रहण करके, दोनों हाथों की अंजलि करके, हर्षित होकर उसने उत्क्षिप्त बलि—देवता को उद्देश्य करके आकाश में फैंकी हुई बलि की तरह, चारों दिशाओं को बलिदान दिया ॥९१॥

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारे निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथी के समीप प्रव्रजित होकर, फिर से मनुष्य संबंधी कामभोगों का आश्रय लेता है, याचना करता है, स्पृहा करता है अर्थात् कोई बिना मागे कामभोग के पदार्थ दे दे, ऐसी अभिलाषा करता है, या दृष्ट अथवा अदृष्ट शब्दादिक के भोग की इच्छा करता है, वह मनुष्य इसी भव में बहुत—से साधुओं, बहुत—सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं द्वारा निन्दनीय होता है, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। उसकी दशा जिनरक्षित जैसी होती है।

पीछे देखने वाला जिनरक्षित छला गया और पीछे नहीं देखने वाला जिन-पाल निर्विघ्न अपने स्थान पर पहुंच गया। अतएव प्रवचनसार (चारित्र) में आसक्तिरहित होना चाहिए, अर्थात् चरित्रवान् को अनासक्त रह कर चारित्र का पालन करना चाहिए ॥१॥ चारित्र ग्रहण करके भी जो भोगों की इच्छा करते हैं, वे घोर संसार-सागर में गिरते हैं और जो भोगों की इच्छा नहीं करते, वे संसार रूपी कान्तार को पार कर जाते हैं ॥२॥९२॥ तत्पश्चात् वह रत्नद्वीप की देवी जिनपालित के पास आई। आकर बहुत-से अनुकूल, प्रतिकूल, कठोर, मधुर, शृङ्गार वाले और करुणाजनक उपसर्गों द्वारा जब उसे चलायमान करने, क्षुब्ध करने एवं मन को पलटने में असमर्थ रही, तब वह मन में थक गई, शरीर से थक गई, सर्वथा ग्लानि को प्राप्त हुई और अतिशय खिन्न हो गई। तब जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् वह शैलक यक्ष, जिनपालितके साथ, लवण समुद्र के बीचों-बीच होकर चला। चल कर जहां चम्पा नगरी थी, वहां आया। आकर चम्पा नगरी के बाहर श्रेष्ठ उद्यान में जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे उतारा। उतार कर उसने इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! देखो, यह चम्पा नगरी दिखाई देती

है। यह कह कर उसने जिनपालित से छुट्टी ली, छुट्टी लेकर जिधर से आया था, उधर ही लौट गया ॥६३॥ तत्पश्चात् जिनपालित ने और उसके माता-पिता ने मित्र, ज्ञाति स्वजन यावत् परिवार के साथ रोते रोते—बहुत से लौकिक मृतक-कृत्य किए···करके वे कुछ समय बाद शोकरहित हुए। तत्पश्चात् एक बार किसी समय सुखासन पर बैठे जिनपालितसे उसके माता-पिता ने इस प्रकार प्रश्न किया—'हे पुत्र! जिनरक्षित किस प्रकार कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुआ?'

तब जिनपालित ने माता-पिता से अपना लवण समुद्र में प्रवेश करना, तूफानी हवा का उठना, पोतवहन का नष्ट होना, पटिये का टुकड़ा मिलना, रत्नद्वीपमें जाना, रत्नद्वीप की देवीके घर जाना, वहां के भोगों का वैभव, रत्नद्वीप की देवी का समुद्र की सफाई के लिए जाना, शूली पर चढ़े पुरुष को देखना, शैलक यक्ष की पीठ पर आरूढ़ होना, रत्नद्वीप की देवी द्वारा उपसर्ग होना, जिन-रक्षित का मरण होना, लवणसमुद्र को पार करना, चम्पा में आना और शैलक यक्ष के द्वारा छुट्टी लेना, आदि सर्व वृत्तान्त ज्यों का त्यों, सच्चा और असंदिग्ध कह सुनाया। तत्पश्चात् जिनपालित यावत् शोकरहित होकर यावत् विपुल काम-भोग भोगता हुआ रहने लगा ॥६४॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर, जहां चम्पा नगरी थी और जहां पूर्णभद्र उद्यान था, वहां पधारे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। कूणिक राजा भी निकला। जिनपालित ने धर्मोपदेश श्रवण करके दीक्षा अंगीकार की। क्रमशः ग्यारह अंग के ज्ञाता होकर, अन्त में एक मास का अनशन करके यावत् सौधर्म कल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहां दो सागरोपमकी उसकी स्थिति कही गई है। वहांसे च्यवन करके यावत् महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो मनुष्य यावत् मनुष्य संबंधी काम-भोगों की (दीक्षित होकर) पुनः अभिलाषा नहीं करता, वह जिनपालित की भांति यावत् संसार-समुद्रको पार करेगा। इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ प्ररूपण किया है। जैसा मैंने सुना है, उसी प्रकार तुमसे कहता हूं। (ऐसा सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा।) ॥६५॥

उपनय

इस संसार में रत्नद्वीप की देवी के समान महापापिनी अविरति है। लाभार्थी माकंदीपुत्रोंके समान सुखाभिलाषी संसारी जीव हैं। जैसे माकंदीपुत्रोंको शूली पर चढ़ा पुरुष उद्धार का मार्ग बताने वाला मिला, उसी प्रकार संसार के दुखी जीवों को सद्गुरु[१] की प्राप्ति होती है। जैसे उसने देवी को उनके लिए घोर

१. धर्मकथा।

दुःखों का कारण बताया और शैलक यक्ष के सिवाय दूसरा निस्तारक नहीं यों कहा। वैसे ही सकल दुःखहेतुभूत अविरतिस्वभावज्ञाता धर्मोपदेशक विषयों से जीवों को विरत करते हैं। और जीवों के लिए त्राणभूत आनन्दधाम-मोक्षसाधक जिनेन्द्रप्ररूपित चारित्र धर्मका उपदेश करते हैं। जैसे माकंदीपुत्रोंको लवणसमुद्र पार करके अपने घर पहुँचना था, उसी प्रकार संसारी जीवों को संसार—सागर पार करके निर्वाण प्राप्त करना है। जैसे जिनरक्षित मोहवश होकर शैलक की पीठ से गिरा, व अनेक जलजन्तुयुत समुद्र में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार जीव अविरतिवश चारित्र से भ्रष्ट होकर अनेक दुःखाकीर्ण दारुण स्वरूप संसार सागर में गोते लगाते हैं। जैसे जिनपालित देवी के वचनों से क्षुभित न होकर स्वस्थान व सुखको प्राप्त हुआ उसी प्रकार दृढ़ संयमी साधु मोक्ष प्राप्त करते हैं।

॥ नौवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

दशम चन्द्र-अध्ययन

श्री जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न करते हैं—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने नौवें ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो दसवें ज्ञात—अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?' श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—'हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय ही उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा-ईशान कोण में गुणशील नामक उद्यान था। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां गुणशील उद्यान था, वहीं पधारे। भगवान् की वन्दना—उपासना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला। धर्मोपदेश सुन कर परिषद् लौट गई।

तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा (प्रश्न किया)—'भगवन् ! जीव किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं और किस प्रकार हानि को प्राप्त होते हैं ?' (जीव शाश्वत, अनादि और अनन्त हैं, अतएव उनकी संख्या में वृद्धि-हानि नहीं होती। एक—एक जीव असंख्यात—असंख्यात प्रदेश वाला है। उसके प्रदेशों में भी कभी वृद्धि—हानि नहीं होती। तथापि गौतम स्वामी ने वृद्धि—हानि के कारणों के संबंध में प्रश्न किया है। अतएव इस प्रश्न का आशय गुणों के विकास और ह्रास से है। जीव के गुणों का विकास ही जीव की वृद्धि और गुणों का ह्रास ही जीव की हानि है।)

भगवान्, गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हैं—'हे गौतम ! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र, पूर्णिमा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण (शुक्लता) से हीन होता है, सौम्यता से हीन होता है, स्निग्धता (अरूक्षता) से हीन होता है, कान्ति (मनोहरता) से हीन होता है, इसी प्रकार दीप्ति (चमक) से, युक्ति (आकाश के साथ संयोग) से, छाया (प्रतिविम्ब या शोभा) से, प्रभा (उदय काल में कान्ति की स्फुरणा) से, ओजस (दाहशमन आदि करने के सामर्थ्य) से, लेश्या (किरण-रूप लेश्या) से और मंडल (गोलाई) से हीन होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा, प्रतिपद् के चन्द्रमा की अपेक्षा वर्ण से हीन होता है यावत् मंडल से भी हीन होता है। तत्पश्चात् तृतीयाका चन्द्र द्वितीयाके चन्द्र की अपेक्षा भी वर्ण से हीन यावत् मंडल से हीन होता है। इस प्रकार आगे-आगे इसी क्रमसे हीन—हीन होता हुआ यावत् अमावस्या का चन्द्र, चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण आदि से सर्वथा नष्ट होता है, यावत् मंडल से नष्ट होता है, अर्थात् उसमें वर्ण आदि का अभाव हो जाता है।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर क्षान्ति—क्षमा से हीन होता है, इसी प्रकार मुक्ति (निर्लोभता) से, आर्जव से, मार्दव से, लाघव से, सत्य से, तप से, त्याग से, आकिंचन्य से और ब्रह्मचर्य से, अर्थात् दस मुनिधर्मों से हीन होता है, वह उसके पश्चात् क्षान्ति से हीन और अधिक हीन होता जाता है, यावत् ब्रह्मचर्य से भी हीन अतिहीन होता जाता है। इस प्रकार इसी क्रम से हीन—हीनतर होते हुए उसके क्षमा आदि गुण नष्ट हो जाते हैं, यावत् उसका ब्रह्मचर्य भी नष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमण ! जो हमारा साधु या साध्वी यावत् दीक्षित होकर क्षमा से अधिक—वृद्धि प्राप्त होता है, यावत् ब्रह्मचर्य से अधिक होता है, तत्पश्चात् वह क्षमा से यावत् ब्रह्मचर्य से और अधिक—अधिक होता है। निश्चय ही इस क्रम से बढ़ते—बढ़ते यावत् वह क्षमा आदि एवं ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार जीव वृद्धि को और हानि को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि सद्गुरु की उपासना से, निरन्तर प्रमादहीन रहने से तथा चारित्रावरण कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से क्षमा आदि गुणों की वृद्धि होती है और क्रमशः वृद्धि होते-होते अन्त में वे गुण पूर्णता को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दसवें ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है। मैंने जैसा सुना, वैसा ही मैं कहता हूं ॥६६॥

उपनय

इस अध्ययन का उपनय स्पष्ट है। चन्द्रमा के स्थान पर साधु समझना चाहिए। प्रमाद साधु—चन्द्रमा के लिए राहु के समान है। वर्णादि गुणों के समान क्षमा आदि श्रमण धर्म हैं। जैसे चन्द्रमा प्रतिपूर्ण होकर भी क्रमशः हानि को प्राप्त होता हुआ सर्वथा क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार गुणों से प्रतिपूर्ण साधु भी कुशील जनों के संसर्ग आदि से प्रमादी बनकर क्षमा आदि गुणों से चारित्र-हीन होता हुआ अन्ततः चारित्र से सर्वथा हीन हो जाता है, एवं दुःख पाता है। किन्तु हीन गुण वाला होकर भी सद्गुरु[1] का संसर्ग आदि पाकर क्रमशः बढ़ते हुए चन्द्रमा के समान पूर्ण गुणों वाला बन जाता है।

॥ दसवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

ग्यारहवाँ दावद्रव—अध्ययन

जम्बू स्वामी अपने गुरु श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन्! यदि दसवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन्! ग्यारहवें अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है? इस प्रकार हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में गुणशील नामक उद्यान था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विचरते हुए, यावत् गुणशील नामक उद्यान में समवसृत हुए—आये। वन्दना करने के लिए राजा श्रेणिक निकला। भगवान् ने धर्म का उपदेश किया। जनसमूह वापिस लौट गया। तत्पश्चात् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से कहा—'भगवन्! जीव किस प्रकार आराधक अथवा विराधक होते हैं?'

भगवान् उत्तर देते हैं—हे गौतम! जैसे एक समुद्र के किनारे दावद्रव नामक वृक्ष कहे गये हैं। वे कृष्ण वर्ण वाले यावत् निकुरंब (गुच्छा) रूप हैं। पत्तों वाले, फलों वाले, फूलों वाले, अपनी हरियालीके कारण मनोहर और श्रीसे अत्यंत शोभित २ होते हुए स्थित हैं। जब द्वीप संबंधी ईषत् पुरोवात अर्थात् कुछ-कुछ स्निग्ध अथवा पूर्व दिशा संबंधी वायु, पथ्यवात अर्थात् सामान्यतः वनस्पति के लिए हितकारक या पछाहीं वायु, मंद (धीमी-धीमी) वायु और महावात-प्रचण्डवायु चलती है, तब बहुत से दावद्रव नामक वृक्ष पत्रयुक्त यावत् होकर खड़े रहते हैं। उनमें से कोई-कोई दावद्रव वृक्ष जीर्ण जैसे हो जाते हैं, झोड अर्थात् सड़े पत्तों वाले हो जाते हैं, अतएव

---

१. सुशील साधु।

वे खिरे हुए पीले पत्तों पुष्पों और फलों वाले हो जाते हैं और सूखे पेड़ों की तरह मुरझाते हुए खड़े रहते हैं।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु या साध्वी यावत् दीक्षित होकर बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं के प्रतिकूल वचनों को सम्यक् प्रकार से सहन करता है, यावत् विशेष रूप से सहन करता है, किन्तु बहुत-से अन्यतीर्थिकों के तथा गृहस्थों के दुर्वचन को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता है यावत् विशेष रूप से सहन नहीं करता है, ऐसे पुरुष को, हे आयुष्मन् श्रमणो! मैंने देश विराधक कहा है।

जब समुद्र सम्बन्धी ईषत्पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, मंदवात और महावात बहती है, तब बहुत-से दावद्रव वृक्ष जीर्ण—से हो जाते हैं, झोड हो जाते हैं, यावत् मुरझाते हुए खड़े रहते हैं। किन्तु कोई-कोई दावद्रव वृक्ष पत्रित, पुष्पित यावत् अत्यन्त शोभायमान होते हुए रहते हैं। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो हमारा साधु अथवा साध्वी दीक्षित होकर बहुत-से अन्यतीर्थिकों के और बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन करता है और बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों तथा बहुत-सी श्राविकाओं के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, उस पुरुष को मैंने देशाराधक कहा है।

आयुष्मन् श्रमणो! जब द्वीप संबंधी और समुद्र संबंधी एक भी ईषत्-पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, यावत् महावात नहीं बहती, तब सब दावद्रव वृक्ष जीर्ण सरीखे हो जाते हैं, यावत् मुरझाये-मुरझाते रहते हैं। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो हमारा साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों, बहुत-सी श्राविकाओं, बहुत-से अन्यतीर्थियों एवं बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन शब्दों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, उस पुरुष को, हे आयुष्मन् श्रमणो! मैंने सर्वविराधक कहा है। जब द्वीप संबंधी भी और समुद्र संबंधी भी ईषत्पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, यावत् बहती है, तब सभी दावद्रव वृक्ष पत्रित पुष्पित फलित यावत् सुशोभित रहते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार जो हमारा साधु या साध्वी बहुत-से श्रमणों के, बहुत-सी श्रमणियों के, बहुतसे श्रावकोंके, बहुत-सी श्राविकाओं के, बहुत-से अन्यतीर्थिकों के और बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन करता है, उस पुरुष को मैंने सर्वाराधक कहा है। इस प्रकार हे गौतम! जीव आराधक और विराधक होते हैं। श्रीसुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने ग्यारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसे ही कहता हूं ॥९७॥

उपनय

इस अध्ययन में कथित दावद्रव वृक्षों के समान साधु हैं। द्वीप की वायु के समान स्वपक्षी साधु आदि के वचन, समुद्री वायु के समान अन्यतीर्थिकों के वचन और पुष्प-फल आदि के समान मोक्षमार्ग की आराधना समझनी चाहिए। पुष्प आदि के नाशके समान मोक्षमार्ग की विराधना समझनी चाहिए।

जैसे द्वीप की वायु के संसर्ग से वृक्षों की समृद्धि बताई, उसी प्रकार साधर्मी के दुर्वचन सहने से मोक्षमार्ग की आराधना और दुर्वचन न सहने से विराधना समझनी चाहिए। अन्यतीर्थियों के दुर्वचन न सहन करने से मोक्षमार्ग की अल्प विराधना होती है। जैसे समुद्री वायु से पुष्प आदि की थोड़ी समृद्धि और बहुत असमृद्धि बताई, उसी प्रकार परतीर्थिकों के दुर्वचन सहन करने और स्वपक्ष के सहन न करने से थोड़ी आराधना और बहुत विराधना होती है। दोनों के दुर्वचन सहन न करने क्रोध आदि करने से सर्वथा विराधना और सहन करने से सर्वथा आराधना होती है। अतएव सम्पूर्ण श्रमणधर्माराधनाभिलाषी साधु को सभी के दुर्वचन क्षमाभाव से सहन करने चाहिएं।

॥ ग्यारहवां अध्ययन समाप्त ॥

—०—

बारहवाँ उदक ज्ञाताध्ययन

श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी के प्रति प्रश्न करते हैं—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ग्यारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो बारहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक उद्यान था। उस चम्पा नगरी में जितशत्रु नामक राजा था। उसकी धारिणी नामक रानी थी, वह परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों वाली यावत् सुन्दर रूप वाली थी। जितशत्रु राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज अदीनशत्रु नामक कुमार युवराज था। सुबुद्धि नामक मंत्री था। वह यावत् राज्य की धुरा का चिन्तक श्रमणोपासक और जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता था।

चम्पा नगरीके बाहर उत्तरपूर्व (ईशान) दिशामें एक खाई का पानी था। वह चर्बी, नसों, मांस, रुधिर और पीपके समूहसे युक्त था। मृतकशरीरोंसे व्याप्त था। वर्णसे यावत् स्पर्शसे अमनोज्ञ था। वह जैसे कोई सर्प का मृत कलेवर हो, गाय का कलेवर हो, यावत् मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ोंसे व्याप्त और जानवरोंके खाये हुए किसी मृत कलेवरके समान दुर्गन्ध वाला था। कृमियोंके समूहसे परिपूर्ण था। जीवोंसे भरा हुआ था। अशुचि विकृत और बीभत्स-डरा-

वना दिखाई देता था। क्या वह ऐसे स्वरूप वाला था ? नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं। वह जल इससे भी अधिक अनिष्ट यावत् गंध आदि वाला था। अर्थात् खाई का वह पानी इससे भी अधिक अमनोज्ञ रूप, रस, गंध, वर्ण वाला कहा गया है ॥९८॥

तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा एक वार किसी समय स्नान करके, यावत् अल्प किन्तु वहुमूल्य आभरणोंसे शरीर को अलंकृत करके, अनेक राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह आदिके साथ, भोजनके समय सुखद आसन पर वैठकर, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन जीम रहा था। यावत् भोजन जीमनेके अनन्तर, हाथ-मुंह धोकर शुचि होकर, उस विपुल अशन पान आदि भोजनके विषयमें वह विस्मयको प्राप्त हुआ। अतएव उन वहुतसे ईश्वर यावत् सार्थवाह आदिसे इस प्रकार कहने लगा—

'देवानुप्रियो ! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्णसे युक्त है यावत् उत्तम स्पर्शसे युक्त है, अर्थात् इसका रूप, रस, गंध और वर्ण सभी कुछ श्रेष्ठ है, यह आस्वादन करने योग्य है, विशेष रूपसे आस्वादन करने योग्य है। पुष्टिकारक है, वल को दीप्त करने वाला है, दर्प उत्पन्न करने वाला है, काम-मद का जनक है और वलवर्धक है तथा समस्त इन्द्रियोंको और गात्र को विशिष्ट आह्लाद उत्पन्न करने वाला है।' तत्पश्चात् वहुतसे ईश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति जितशत्रुसे इस प्रकार कहने लगे—'आप जो कहते हैं, वात वैसी ही है। अहा, यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त है, यावत् विशिष्ट आह्लादजनक है।'

तत्पश्चात् जितशत्रु राजाने सुवुद्धि अमात्यसे कहा—'अहो सुवुद्धि ! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्णादिसे युक्त और यावत् समस्त इन्द्रियोंको एवं गात्रको विशिष्ट आह्लादजनक है।' तव सुवुद्धि अमात्यने जितशत्रु के इस अर्थ (कथन) का आदर (अनुमोदन) नहीं किया। यावत् वह चुप रहा।

जितशत्रु राजाके द्वारा दूसरी वार और तीसरी वार भी इसी प्रकार कहने पर सुवुद्धि अमात्यने जितशत्रु राजासे इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! मैं इस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिममें कुछ भी विस्मित नहीं हूं। हे स्वामिन् ! सुरभि (उत्तम-शुभ) शब्द वाले पुद्गल भी दुरभि (अशुभ) शब्दके रूपमें परिणत हो जाते हैं और दुरभि शब्द वाले पुद्गल भी सुरभि शब्दके रूपमें परिणत हो जाते हैं। उत्तम रूप वाले पुद्गल भी खराव रूपके रूपमें परिणत हो जाते हैं और खराव रूप वाले पुद्गल उत्तम रूपके रूपमें परिणत हो जाते हैं। सुरभि गंध वाले पुद्गल भी दुरभिगंधके रूपमें परिणत हो जाते हैं और दुरभिगंध वाले पुद्गल भी सुरभिगंधके रूपमें परिणत हो जाते हैं। सुन्दर रस वाले पुद्गल भी खराव

रसके रूपमें परिणत होते हैं और खराब रस वाले भी सुन्दर रसके रूपमें परिणत हो जाते है। शुभ स्पर्श वाले पुद्गल भी अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल बन जाते हैं और अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल भी शुभ स्पर्श वाले बन जाते हैं। हे स्वामिन्! सब पुद्गलोंमें प्रयोग (जीव के प्रयत्न) से और विस्रसा (स्वाभाविक रूप से) परिणमन होता ही रहता है।

उस समय राजा जितशत्रु ने ऐसा कहते हुए सुबुद्धि अमात्यके इस कथन का आदर नहीं किया, अनुमोदन नहीं किया और वह चुपचाप बना रहा। तत्पश्चात् एक बार किसी समय जितशत्रु स्नान करके, विभूषित होकर उत्तम अश्व की पीठ पर सवार होकर, बहुतसे भटों सुभटोंके साथ, घुड़सवारीके लिए निकला और उसी खाईके पानीके पास पहुंचा। तत्पश्चात् जितशत्रु राजाने खाईके पानीकी अशुभ गंधसे घबरा कर अपने उत्तरीय वस्त्रसे मुंह ढंक लिया। वह एक तरफ चला गया और साथके राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह वगैरहसे इस प्रकार कहने लगा—'अहो देवानुप्रियो! यह खाईका पानी वर्ण, गंध, रस और स्पर्शसे अमनोज्ञ—अत्यन्त अशुभ है। जैसे किसी सर्प का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अमनोज्ञ है।'

तत्पश्चात् वे राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि इस प्रकार बोले—हे स्वामिन्! आप जो ऐसा कहते हैं वह सत्य ही है कि—अहो! यह खाई का पानी वर्ण, गंध, रस और स्पर्शसे अमनोज्ञ है। यह ऐसा अमनोज्ञ है, जैसे सांपका मृतक कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अतीव अमनोज्ञ है। तत्पश्चात् अर्थात् राजा ईश्वर आदिने जब जितशत्रु की हां में हां मिलादी तब राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्यसे इस प्रकार कहा—'अहो सुबुद्धि! इस खाईका पानी वर्ण आदिसे अमनोज्ञ है, जैसे किसी सर्प आदि का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अत्यन्त अमनोज्ञ है।' तब सुबुद्धि अमात्य यावत् मौन रहा।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजाने सुबुद्धि अमात्यसे दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—'अहो सुबुद्धि! इस खाईका पानी अमनोज्ञ है' इत्यादि पूर्ववत्। तब सुबुद्धि अमात्यने जितशत्रुके दूसरी बार और तीसरी बार ऐसा कहने पर इस प्रकार कहा—स्वामिन्! मुझे इस खाईके पानी के विषयमें इसके मनोज्ञ या अमनोज्ञ होने में कोई विस्मय नहीं है। क्योंकि शुभ शब्दके पुद्गल भी अशुभ रूपसे परिणत हो जाते हैं, इत्यादि पहलेके समान सब कथन यहां समझ लेना चाहिए, यावत् मनुष्यके प्रयत्नसे और स्वाभाविक रूपसे भी पुद्गलोंमें परिणाम न होता रहता है, ऐसा कहा है।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजाने सुबुद्धि अमात्यसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम अपने आपको, दूसरेको और स्व-पर दोनोंको, असत् वस्तु या वस्तुधर्म

की उद्भावना करके अर्थात् असत् को सत्के रूपमें प्रकट करके और मिथ्या अभिनिवेश (दुराग्रह) करके भ्रममें मत डालो, चतुर मत समझो।' जितशत्रु की वात सुननेके पश्चात् सुबुद्धिको इस प्रकार का अध्यवसाय-विचार उत्पन्न हुआ-अहो, जितशत्रु राजा सत् (विद्यमान), तत्त्वरूप (वास्तविक), तथ्य (सत्य), अवितथ (अमिथ्या) और सद्भूत (विद्यमान स्वरूप वाले) जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित भावोंको नहीं जानता-नहीं अंगीकार करता। अतएव मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि मैं जितशत्रु राजाको सत्, तत्त्वरूप, तथ्य, अवितथ और सद्भूत जिनेन्द्रप्ररूपित भावों (अर्थों) को समझाऊं और इस वात को अंगीकार कराऊं।

सुवुद्धि अमात्यने इस प्रकार विचार किया। विचार करके विश्वासपात्र पुरुषोंसे खाईके मार्गके वीचकी कुंभारकी दुकानसे नये घड़ों का समूह (वहुतसे कोरे घड़े) लिये। घड़े लेकर जव कोई बिरले मनुष्य चल रहे थे और जव लोग अपने-अपने घरोंमें विश्राम लेने लगे थे, ऐसे संध्याकालके अवसर पर जहां खाई का पानी था, वहां आया। आकर खाई का वह पानी ग्रहण करवाया। ग्रहण करवा कर उसे नये घड़ोंमें छनवाया, छनवाकर नये घड़ोंमें डलवाया। डलवा कर उन घड़ोंको लांछित-मुद्रित करवाया, अर्थात् मुंह बंद करके उन पर निशान लगवा कर मोहर लगवाई, फिर सात रात्रि-दिन उन्हें रहने दिया। सात रात्रि-दिनके वाद उस पानी को दूसरी वार कोरे घड़ोंमें छनवाया और नये घड़ोंमें डलवाया। डलवा कर उनमें ताजा राख डलवाई और फिर उन्हें लांछित-मुद्रित करवा दिया। सात रात-दिन तक उन्हें रहने दिया। सात-रात दिन रखनेके वाद फिर तीसरी वार नवीन घड़ोंमें वह पानी डलवाया, यावत् सात रात-दिन उसे रहने दिया।

इस तरह इस उपाय से बीच-वीच में गलवाया, वीच-वीच में कोरे घड़ों में डलवाया और वीच-वीच में रखवाया जाता हुआ वह पानी सात-सात रात्रि-दिन तक रख छोड़ा जाता था। तत्पश्चात् वह खाई का पानी सात सप्ताह में परिणत होता हुआ उदक-रत्न (उत्तम जल) वन गया। वह स्वच्छ, पथ्य-आरोग्यकारी, जात्य (उत्तमजाति का), हल्का हो गया; मनोज्ञ वर्ण से युक्त, गंध से युक्त, रस से युक्त और स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य यावत् सव इन्द्रियों तथा गात्र को अति आह्लाद उत्पन्न करने वाला हो गया।

तत्पश्चात् सुबुद्धि अमात्य उस उदकरत्न के पास पहुंचा। पहुंच कर हथेली में लेकर उसका आस्वादन किया। आस्वादन करके उसे मनोज्ञ वर्ण से युक्त, गंध से युक्त, रस से युक्त, स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य यावत् सव इन्द्रियों को और गात्र को अतिशय आह्लादजनक जान कर हृष्ट-तुष्ट हुआ। फिर उसने जल को संवारने (सुस्वादु वनाने) वाले द्रव्यों से उसे संवारा-सुस्वादु और सुगंधित

बनाया। संवार कर जितशत्रु राजा के जलगृह के कर्मचारी को बुलवाया। बुलवा कर कहा—'देवानुप्रिय ! तुम यह उदकरत्न लो। इसे लेकर राजा जितशत्रु के भोजन की वेला में उन्हें देना।'

तत्पश्चात् जलगृह के उस कर्मचारी ने सुबुद्धिके इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके वह उदकरत्न ग्रहण किया और ग्रहण करके जितशत्रु राजा के भोजन की वेला में उपस्थित किया। तत्पश्चात् जितशत्रु राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आस्वादन करता हुआ विचर रहा था। जीम चुकने के अनन्तर अत्यन्त शुचि–स्वच्छ होकर जलरत्न का पान करने से राजा को विस्मय हुआ। उसने बहुत-से राजा, ईश्वर आदि से यावत् कहा—'अहो देवानुप्रियो ! यह उदकरत्न स्वच्छ है यावत् समस्त इन्द्रियों को और गात्र को आह्लाद उत्पन्न करने वाला है।' तब वे बहुत-से राजा, ईश्वर आदि यावत् इस प्रकार कहने लगे—'स्वामिन् ! जैसा आप कहते हैं, बात ऐसी ही है। यह जल-रत्न यावत् आह्लादजनक है।'

तत्पश्चात् राजा जितशत्रु ने जलगृह के कर्मचारी को बुलवाया और बुलवा कर पूछा-'देवानुप्रिय ! तुमने यह जल–रत्न कहांसे पाया ?' तब जलगृहके कर्मचारी ने जितशत्रु से कहा—'स्वामिन् ! यह जलरत्न मैंने सुबुद्धि अमात्य के पास से पाया है।' तत्पश्चात् राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा—'अहो सुबुद्धि ! किस कारण से मैं तुम्हें अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम हूं, जिससे तुम मेरे लिए प्रतिदिन, भोजन के समय यह उदकरत्न नहीं भेजते ? देवानुप्रिय ! तुमने यह उदकरत्न कहां से पाया है ?' तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु से कहा—'स्वामिन् ! यह वही खाई का पानी है।'

तब जितशत्रु ने सुबुद्धि से कहा—'हे सुबुद्धि ! किस कारण से यह वही खाई का पानी है ?' तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा—'हे स्वामिन् ! उस समय अर्थात् खाई के पानी का वर्णन करते समय मैंने आपको पुद्गलों का परिणमन कहा था, परन्तु आपने उस पर श्रद्धा नहीं की थी। तब मेरे मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'अहो ! जितशत्रु राजा सत् यावत् भावों पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं रखता, अतएव मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि जितशत्रु राजा को सत् यावत् सद्भूत जिनभाषित भावों को समझा कर, पुद्गलोंके परिणमन रूप अर्थ को अंगीकार कराऊं।' मैंने ऐसा विचार किया। विचार करके पहले कहे अनुसार पानी को संवार कर तैयार किया। यावत् आपके जलगृह के कर्मचारी को बुलाया और उससे कहा—'देवानुप्रिय ! यह उदकरत्न तुम भोजन की वेला राजा जितशत्रु को देना।' इस कारण हे स्वामिन् ! यह वही खाई का पानी है।'

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के कहे पूर्वोक्त अर्थ पर श्रद्धा न की, प्रतीति न की और रुचि न की। श्रद्धा न करते हुए, प्रतीति न करते हुए और रुचि न करते हुए उसने अपनी अभ्यन्तर परिषद् के पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुला कर कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और खाई के जल के रास्ते वाली कुंभार की दुकान से नये घड़े लाओ और यावत् जल को संवारने—सुन्दर बनाने वाले द्रव्यों से उस जल को संवारो।' उन पुरुषों ने राजा के कथनानुसार पूर्वोक्त विधि से जल को संवारा और संवार कर वे जितशत्रु के समीप लाये। तब जितशत्रु राजाने उस उदकरत्न को हथेली में लेकर आस्वादन किया। उसे आस्वादन करने योग्य यावत् सब इन्द्रियों और गात्र को आह्लादकारी जान कर सुबुद्धि अमात्य को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'सुबुद्धि! तुमने यह सत्, तथ्य यावत् सद्-भूत भाव (पदार्थ) कहां से जाने?' तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा—'स्वामिन्! मैंने यह सत् यावत् भाव जिन भगवान् के वचन से जाने हैं।'

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि से कहा—'देवानुप्रिय! तो मैं तुमसे जिनवचन सुनना चाहता हूं।' तब सुबुद्धि मंत्री ने जितशत्रु राजा को केवली—भाषित चातुर्याम रूप अद्भुत धर्म कहा। जिस प्रकार जीव कर्म बंध करते हैं, यावत् पांच अणुव्रत हैं, इत्यादि धर्म का कथन किया।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से धर्म सुन कर और मन में धारण करके, हर्षित और संतुष्ट होकर सुबुद्धि अमात्य से कहा—'देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं। जैसा तुम कहते हो वह वैसा ही है। सो मैं तुम से पांच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को यावत् ग्रहण करके विचरने की अभिलाषा करता हूं।' तब सुबुद्धि प्रधान ने कहा—हे देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबंध मत करो।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से पांच अणुव्रत वाले और (सात शिक्षाव्रत वाले) यावत् बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार किया। तत्पश्चात् जितशत्रु श्रावक हो गया, जीव-अजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् निर्ग्रन्थ साधु-साध्वियों को आहार आदि का प्रतिलाभ देता हुआ रहने लगा। उस काल और उस समय में जहां चम्पा नगरी और पूर्णभद्र उद्यान था, वहां स्थविर पधारे। जितशत्रु राजा और सुबुद्धि उनको वन्दना करने के लिए निकले। सुबुद्धि ने धर्मोपदेश सुनकर निवेदन किया--'मैं जितशत्रु राजा से पूछ लूं--उनकी आज्ञा ले लूं और फिर दीक्षा अंगीकार करूंगा।' तब स्थविर मुनि ने कहा—'देवानु-प्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

तत्पश्चात् सुबुद्धि अमात्य जितशत्रु राजा के पास गया और बोला—'स्वामिन्! मैंने स्थविर मुनि से धर्मोपदेश श्रवण किया है और उस धर्मकी मैंने पुनः पुनः इच्छा की है। इस कारण हे स्वामिन्! मैं संसार के भयसे उद्विग्न हुआ हूं। तथा जन्म-मरण से भयभीत हुआ हूं। यावत् आपकी आज्ञा पाकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं।' तब जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! अभी कुछ वर्षों तक यावत् भोग भोगते हुए ठहरो, उसके अनन्तर हम दोनों साथ-साथ स्थविर मुनि के निकट मुंडित होकर प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे। तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजा के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् सुबुद्धि प्रधान के साथ, जितशत्रु राजा को मनुष्य संबंधी कामभोग भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

तत्पश्चात् उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ। तब जितशत्रु धर्मोपदेश सुन कर प्रतिबोध पाया किन्तु उसने कहा—'हे देवानुप्रिय! मैं सुबुद्धि अमात्य को दीक्षा के लिए आमंत्रित करता हूं और ज्येष्ठ पुत्र को राज-सिंहासन पर स्थापित करता हूं, तदनन्तर आपके निकट दीक्षा अंगीकार करूंगा।' तब स्थविर मुनि ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख उपजे वही करो।'

तब जितशत्रु राजा अपने घर आया। आकर सुबुद्धि को बुलवाया और कहा—'मैंने स्थविर भगवान् से—धर्मोपदेश श्रवण किया है। यावत् मैं प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा करता हूं। तुम क्या करोगे—तुम्हारी क्या इच्छा है? तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा—'यावत् आपके सिवाय मेरा दूसरा कौन आधार है? यावत् मैं भी प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा।'

राजा जितशत्रु ने कहा—देवानुप्रिय! यदि तुम्हें प्रव्रज्या अंगीकार करनी है तो जाओ देवानुप्रिय! अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो और शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रकट होओ-आओ। तब सुबुद्धि अमात्य शिविका पर आरूढ़ होकर यावत् आ गया। तत्पश्चात् जितशत्रु ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा—'जाओ देवानुप्रियो! अदीन-शत्रु कुमार के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित-तैयार करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने सामग्री तैयार की, यावत् कुमार का अभिषेक किया, यावत् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् जितशत्रु मुनि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक दीक्षापर्याय पाल कर अंत में एक मास की संलेखना करके सिद्धि प्राप्त की। दीक्षा अंगीकार करने के अनन्तर सुबुद्धि मुनि ने भी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय पाली, अन्त में एक मास की संलेखना करके सिद्धि पाई। श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी से कहते हैं—

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने वारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (उपर्युक्त) अर्थ कहा है। मैंने जैसा सुना, वैसा कहा ॥ ६६ ॥

उपनय

गाथार्थ–जो मिथ्यादृष्टि हैं, जो पाप में आसक्त हैं और जो गुणहीन हैं, वे भी सद्गुरु की कृपा (सत्संग) से खाई के जल के समान उज्ज्वल, पवित्र और गुणवान् वन जाते हैं।

॥ बारहवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

तेरहवां दर्दुर-अध्ययन

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया–भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने वारहवें ज्ञाताध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो सिद्धि को प्राप्त भगवान् ने तेरहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देना प्रारंभ किया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। राजगृह के वाहर उत्तरपूर्व दिशा में गुणशील नामक उद्यान था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर चौदह हजार साधुओं के यावत् साथ अनुक्रमसे विचरते हुए, एक गांव से दूसरे गांव जाते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था और गुणशील उद्यान था, वहां पधारे। यथायोग्य अवग्रह (स्थानक) की याचना करके संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। परिषद् निकली।

उस काल उस समयमें सौधर्म कल्पमें, दर्दुरावतंसक नामक विमानमें, सुधर्मा सभामें, दर्दुर नामक सिंहासन पर दर्दुर देव चार हजार सामानिक देवों के साथ सपरिषद् चार अग्रमहिषियोंके साथ... जिस प्रकार राजप्रश्नीयमें सूर्याभ का वर्णन किया गया है यावत् दिव्य और भोगने योग्य भोगोंको भोगता हुआ विचरता था। उसने अपने विपुल अवधिज्ञानके द्वारा केवलकल्प जंबूद्वीप को देखा यावत् नाट्यविधि दिखाकर सूर्याभ की तरह लौट गया।

इसके पश्चात् हे भदन्त ! इस प्रकार सम्बोधित करके गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! अहो ! ! दर्दुर देव ऐसी महा ऋद्धि वाला है ६। हे भगवन् ! दर्दुर देव की वह दिव्य देवऋद्धि ३ कहां गई और कहां प्रविष्ट हुई ? हे गौतम ! वह दिव्य देवऋद्धि शरीरमें गई और शरीरमें ही प्रविष्ट हुई। यहां कूटाकारशाला का दृष्टान्त कहना चाहिए।

हे भगवन् ! दर्दुर देवको वह दिव्य देवऋद्धि ३ किस प्रकार लब्ध हुई, यावत् अभिसमन्वागत हुई (सम्मुख आई) ? हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीपमें भारतवर्षमें राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक उद्यान था। श्रेणिक राजा था। उस राजगृह नगरमें नन्द नामक मणियार सेठ रहता था—धनधान्यादिसे समृद्ध··· । उस काल उस समय में हे गौतम ! मैं (भगवान् महावीर) वहां समवसृत हुआ। परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी वन्दनाके लिए निकला। तव वह नन्द मणियार सेठ यह वृत्तान्त सुनकर नहा धोकर सज्जित होकर पैदल यावत् पर्युपासना करने लगा। धर्मकथा सुनकर वह श्रमणोपासक वन गया। तव मैं (भ० म०) राजगृह से निकल कर वाहर जनपद में विचरने लगा।

तव वह नन्द मणियार श्रेष्ठी किसी समय साधुओंके दर्शन न होने से, सेवा का लाभ न मिलनेसे, उपदेश प्राप्त न होने से, अशुश्रूपासे, सम्यक्त्व पर्यवोंके घटनेसे, मिथ्यात्व पर्यवोंके वढ़नेसे मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् एक वार वह किसी समय ग्रीष्मकालमें तेला करके पौषधशालामें यावत् विचरने लगा। तव उस तेले (तीन दिनका उपवास) में भूख और प्यास से व्याकुल होने पर उस नन्द मणियार को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ-- 'वे···यावत् ईश्वर प्रभृति धन्य हैं, जिनकी राजगृह नगरके वाहर वहुत सी वावड़ियां पुष्करिणियां यावत् सरसरपंक्तियां हैं, जिनमें वहुतसे लोग स्नान करते हैं, पानी पीते हैं और पानी भर कर ले जाते हैं। तो मेरे लिए श्रेयस्कर है कि मैं कल प्रातः श्रेणिक राजासे पूछकर राजगृह नगर के वाहर उत्तरपूर्व दिशामें वैभार पर्वतके न वहुत दूर न वहुत निकट वस्तुपाठकों (शिल्पशास्त्रके ज्ञाताओं) द्वारा पसन्द किए हुए भूमिभागमें नंदा नामक पुष्करिणी खुदवाऊं' ऐसा विचार करके दूसरे दिन प्रातः उसने तेला पूर्ण (पौषध पार) कर नहा धोकर सज्जित होकर मित्र ज्ञाति यावत् परिवृत होकर वहुमूल्य यावत् राजायोग्य भेंट ग्रहण की व जहां श्रेणिक राजा था वहां गया यावत् भेंट प्रस्तुत की और कहा— 'हे स्वामी ! मैं आपकी आज्ञासे राजगृह नगरके वाहर यावत् खुदवाना चाहता हूं।'···'हे देवानु-प्रिय! जैसे सुख हो··· ।

तव वह नन्द मणियार श्रेणिक राजा की आज्ञा मिलने पर प्रसन्न होकर राजगृह नगरके वीचोंवीचसे निकला व वस्तु शास्त्र—के पाठकों द्वारा पसंद किए हुए भूमि भागमें नंदा नामक पुष्करिणी खुदवाने में प्रवृत्त हो गया—उसने पुष्क-रिणी का खनन कार्य प्रारंभ करवा दिया। तत्पश्चात् नन्दा पुष्करिणी अनुक्रमसे खुदती-खुदती चतुष्कोण और समान किनारों वाली पूरी पुष्करिणी हो गई। अनु-क्रमसे उसके चारों ओर घूमा हुआ परकोटा वन गया, उसका जल शीतल हुआ।

जल पत्तों, विसतंतुओं और मृणालोंसे आच्छादित हो गया। वह वापी वहुतसे खिले हुए उत्पल (कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल), कुमुद (चन्द्रविकासी कमल), नलिनी (कमलिनी-सुन्दर कमल), सुभग जातीय कमल, सौगंधिक कमल, पुण्डरीक (श्वेत कमल), महापुण्डरीक, शतपत्र (सौ पांखुड़ियों वाले) कमल, सहस्रपत्र (हजार पांखुड़ियों वाले) कमलकी केसरसे युक्त हुई। परिहत्थ नामक जल-जंतुओं, भ्रमण करते हुए मदोन्मत्त भ्रमरों और अनेक पक्षियोंके युगलों द्वारा किये हुए शब्दोंसे उन्नत और मधुर स्वरसे वह पुष्करिणी गूंजने लगी। वह प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गई।

तत्पश्चात् नंद मणिकार श्रेष्ठीने नंदा पुष्करिणीकी चारों दिशाओंमें चार वनखण्ड रुपवाये—लगवाये। उन वनखण्डोंकी क्रमशः अच्छी रखवाली की गई, संगोपन-सार-संभाल की गई—अच्छी तरह उन्हें वढ़ाया गया, अतएव वे वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाले तथा गुच्छा रूप हो गये—खूब घने हो गये। वे पत्तों वाले, पुष्पों वाले यावत् पुनः २ शोभायमान हो गये। तत्पश्चात् नन्द मणियार सेठने पूर्व दिशा के वनखण्डमें एक विशाल चित्रसभा वनवाई। वह कई सौ खंभोंकी वनी हुई थी, प्रसन्नताजनक थी, दर्शनीय थी, अभिरूप थी और प्रतिरूप थी। उस चित्रसभामें वहुतसे कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म थे-पुतलियां वगैरह वनी थीं, पुस्त कर्म-वस्त्रोंके पर्दे आदि थे, चित्रकर्म थे, लेप्यकर्म—मिट्टीके पुतले आदि थे, ग्रंथित कर्म थे—डोरा गूंथ कर वनाई हुई कलाकृतियां थीं, वेष्टित कर्म-फूलोंकी गेंदकी तरह लपेट-लपेटकर बनाई हुई कलाकृतियां थीं, इसी प्रकार पूरिम कर्म (स्वर्ण प्रतिमाके समान) और संघातिम कर्म-जोड़-जोड़कर वनाई कलाकृतियां थीं। वह कलाकृतियां इतनी सुन्दर थीं कि दर्शकगण उन्हें एक दूसरे को दिखा-दिखा कर वर्णन करते थे।

उस चित्रसभामें वहुतसे आसन (वैठने योग्य) और शयन (लेटने-सोने के योग्य) निरन्तर विछे रहते थे। वहां वहुतसे नाटक करने वाले और नृत्य करने वाले जीविका, भोजन एवं वेतन देकर रक्खे हुए थे। वे तालाचर (एक प्रकार का नाटक) किया करते थे। राजगृहसे वाहर सैर करनेके लिए निकले हुए वहुतसे लोग उस जगह आकर पहलेसे ही विछे हुए आसनों और शयनों पर वैठकर और लेटकर कथा-वार्त्ता सुनते थे और नाटक आदि देखते थे और शोभा (आनन्द) का अनुभव करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते थे। तत्पश्चात् नंद मणियार सेठने दक्षिण तरफके वनखंडमें एक वड़ी भोजनशाला वनवाई। वह भी अनेक सैंकड़ों खंभों वाली यावत् प्रतिरूप थी। वहां भी वहुतसे लोग जीविका, भोजन और वेतन देकर रक्खे थे। विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार पकाते थे और वहुतसे श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रों और भिखारियोंको देते हुए रहते थे।

तत्पश्चात् नंद मणिकार सेठ ने पश्चिम दिशाके वनखंड में एक विशाल चिकित्साशाला (औपधालय) वनवाई। वह भी अनेक सौ खंभों वाली यावत् मनोहर थी। उस चिकित्साशाला में वहुत-से वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक (वैद्यकशास्त्र न पढ़ने पर भी अनुभवके आधारसे चिकित्सा करने वाले अनुभवी), ज्ञायकपुत्र, कुशल (अपने तर्कसे ही चिकित्साके ज्ञाता) और कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त किये हुए थे। वे वहुत-से व्याधितों (शोक आदि से उत्पन्न चित्त-पीड़ा से पीड़ितों) की, ग्लानों (अशक्तों) की, रोगियों (ज्वर आदिसे ग्रस्तों) की और दुर्वलों की चिकित्सा करते रहते थे। उस चिकित्साशालामें दूसरे भी वहुत-से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर रक्खे थे। वे उन व्याधितों, रोगियों, ग्लानों और दुर्वलों की औपध, भेपज, भोजन और पानीसे सेवा-शुश्रूपा करते थे।

तत्पश्चात् नंद मणियार सेठ ने उत्तर दिशाके वनखंडमें एक वड़ी अलंकारसभा (हजामत आदिकी सभा) वनवाई। वह भी अनेक सैंकड़ों स्तंभों वाली यावत् मनोहर थी। उसमें वहुत-से आलंकारिक पुरुप (शरीरका शृङ्गार करने वाले प्रभृति) पुरुप जीविका, भोजन और वेतन देकर रक्खे गये थे। वे वहुत-से श्रमणों, अनाथों, ग्लानों, रोगियों और दुर्वलों का अलंकार कर्म (शरीर की शोभा वढ़ाने के कार्य) करते थे।

उस नंदा पुष्करिणीमें वहुत सनाथ, अनाथ, पथिक, पांथिक, करोटिका (कावड़) उठाने वाले, कारीगर, घसियारे, पत्तोंके भारे वाले, लकड़हारे आदि आते थे; उनमें से कोई-कोई स्नान करते थे, कोई-कोई पानी पीते थे और कोई-कोई पानी भर ले जाते थे; कोई-कोई पसीने, जल्ल (प्रवाही मैल), मल (जमा हुआ मैल), परिश्रम, निद्रा, क्षुधा और पिपासाको दूर करके सुखपूर्वक रहते थे। नंदा पुष्करिणीमें राजगृह नगरसे भी निकले-आये हुए वहुत-से लोग क्या करते थे? वे लोग जल में रमण करते थे, विविध प्रकारसे स्नान करते थे, कदलीगृहों, लतागृहों, पुष्पशय्या और अनेक पक्षियोंके समूहके मनोहर शब्दों से युक्त नन्दा पुष्करिणी और चारों वनखंडों में क्रीड़ा करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् नंदा पुष्करिणीमें स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ले जाते हुए वहुत-से लोग आपसमें इस प्रकार कहते थे-- 'हे देवानुप्रिय! नन्द मणियार सेठ धन्य है, कृतार्थ है, यावत् उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसकी इस प्रकारकी चौकोर यावत् मनोहर यह नन्दा पुष्करिणी है, जिसकी पूर्व दिशामें वनखंड है--इत्यादि पूर्वोक्त चारों वनखंडों और उनमें वनी हुई चारों शालाओंका वर्णन यहां कहना चाहिये। यावत् राजगृह नगरसे भी

बाहर निकल कर बहुत--से लोग आसनों पर बैठते हैं, शयनीयों पर लेटते हैं, नाटक आदि देखते हैं और कथा--वार्त्ता कहते हैं और सुखपूर्वक विहार करते हैं। अतएव नन्द मणियार धन्य है, कृतार्थ है । लोगो ! नन्द मणियार का मनुष्य भव सुलब्ध--सराहनीय है और उसका जन्म तथा जीवन भी सफल है।'

उस समय राजगृहमें भी शृङ्गाटक आदि मार्गों में गली-गलीमें बहुतेरे लोग परस्पर इस प्रकार कहते थे --देवानुप्रिय ! नंद मणियार धन्य है, इत्यादि पूर्ववत् ही कहना चाहिए, यावत् जहां आकर लोग सुखपूर्वक विचरते हैं। तब नंद मणियार बहुत लोगोंसे यह अर्थ (अपनी प्रशंसा की बातें) सुन कर हृष्ट-तुष्ट हुआ । मेघ की धारासे आहत कदम्ब वृक्षके समान उसके रोमकूप विकसित हो गये--उसकी कली--कली खिल उठी। वह साताजनित परम सुखका अनुभव करने लगा ॥१००॥

कुछ समय के पश्चात् किसी समय नंद मणियार सेठ के शरीर में सोलह रोगातंक अर्थात् ज्वर आदि रोग और शूल आदि आतंक उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार—(१) श्वास (२) कास(३)खांसी (ज्वर) (४) दाह--जलन (५)कुक्षि-शूल--कूंख का शूल (६) भगंदर (७) अर्श--बवासीर (८) अजीर्ण (९) नेत्रशूल (१०) मस्तकशूल (११) भोजन विषयक अरुचि (१२) नेत्र-वेदना (१३)कर्ण-वेदना (१४) कंडू--खाज (१५) दकोदर—जलोदर और (१६) कोढ़ ।

नंद मणियार सेठ इन सोलह रोगातंकों से पीड़ित हुआ। तब उसने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और राजगृह नगरमें शृङ्गाटक यावत् छोटे--मोटे मार्गोंमें ऊंची आवाज से घोषणा करते हुए कहो कि—'हे देवानुप्रियो ! नंद मणियार श्रेष्ठी के शरीर में सोलह रोगातंक उत्पन्न हुए हैं, यथा—श्वास से कोढ़ तक । तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकारका पुत्र, कुशल या कुशलका पुत्र, नंद मणियार के उन सोलह रोगातंकोंमें से एक भी रोगातंक को उपशान्त करना चाहे—मिटा देगा, देवानुप्रियो ! नंद मणियार उसे विपुल धनसम्पत्ति प्रदान करेगा।' इस प्रकार दूसरी बार और तीसरी बार घोषणा करो । घोषणा करके मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।' कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी ।

राजगृह नगरमें इस प्रकारकी घोषणा सुनकर और हृदयमें धारण करके वैद्य, वैद्यपुत्र, यावत् कुशलपुत्र हाथमें शस्त्रकोश (शस्त्रों की पेटी) लेकर, कोशक का पात्र हाथमें लेकर, शिलिका (शस्त्रों को तीखा करने का पाषाण) हाथमें लेकर, गोलियां हाथमें लेकर और औषध तथा भैषज हाथमें लेकर अपने-अपने घरों से निकले। निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर नंद मणियारके घर आये।

उन्होंने नंद मणियारके शरीरको देखा और नंद मणियार सेठसे रोग उत्पन्न होने का कारण पूछा। फिर उद्वलन (एक विशेष प्रकार के लेप) द्वारा, उद्वर्तन (उबटन जैसे लेप) द्वारा, स्नेहपान (औषधियां डाल कर पकाये हुए घी—तेल आदि) द्वारा, वमन द्वारा, विरेचन द्वारा, स्वेदन से (पसीना निकाल कर), अवदहनसे (डाभ लगाकर), अपस्नान (जलमें चिकनापन दूर करने वाली वस्तुएं मिलाकर किये हुए स्नान)से, अनुवासनासे (गुदा मार्गसे चमड़ेके यंत्र द्वारा उदरमें तेल आदि पहुँचाकर),वस्तिकर्मसे(गुदामें वत्ती आदि डालकर भीतरी सफाई करके), निरुह द्वारा(चर्म यंत्रका प्रयोग करके अनुवासनाकी तरह गुदामार्गसे पेटमें कोई वस्तु पहुंचा कर), शिरावेधसे (नस काटकर रक्त निकालकर या रक्त ऊपरसे डालकर), तक्षणसे (छुरा आदिसे चमड़ी आदि छील कर), प्रक्षण (थोड़ी चमड़ी काटने)से, शिरोवस्तिसे (मस्तक पर वांधे चमड़े पर पकाये हुए तेल आदि के सिंचन से), तर्पण (स्निग्ध पदार्थों के चुपड़ने)से, पुटपाक (आग में पकाई औषधों)से, रोहिणी आदि की छालों से, गिलोय आदि वेलों से, मूलों से, कंदों से, पत्तों से, पुष्पों से, फलों से, वीजों से, शिलिका (घास विशेष) से, गोलियों से, औषधों से, भेपजोंसे, (अनेक औषधें मिला कर तैयार की हुई दवाओं से,) उन सोलह रोगातंकों में से एक—एक रोगातंकको उन्होंने शान्त करना चाहा, परन्तु वे एक भी रोगातंक को शान्त करने में समर्थ न हो सके।

तत्पश्चात् वहुतसे वैद्य, वैद्यपुत्र, जानकार, जानकारों के पुत्र, कुशल और कुशलपुत्र, जब उन सोलह रोगों में से एक भी रोग को उपशान्त करने में समर्थ न हुए तो थक गये, खिन्न हुए, यावत् अपने-अपने घर लौट गये। तत्पश्चात् नन्द मणियार उन सोलह रोगातंकोंसे अभिभूत हुआ और नन्दा पुष्करिणी में अतीव मूर्च्छित हुआ। इस कारण उसने तिर्यंच योनि संबंधी आयु का बंध किया, प्रदेशों का वंध किया। आर्त्तध्यानके वशीभूत होकर मृत्यु के समयमें काल करके, उसी नन्दा पुष्करिणी में, एक मेंढकी की कुंखमें मेंढक के रूप में उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् नंद मण्डूक गर्भ से वाहर निकला और अनुक्रम से वाल्यावस्था से मुक्त हुआ। उसका ज्ञान परिणत हुआ—वह समझदार हो गया और यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ। तव नंदा पुष्करिणीमें रमण करता हुआ विचरने लगा। तत्पश्चात् नन्दा पुष्करिणीमें वहुतसे लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ले जाते हुए आपस में इस प्रकार कहते थे—'देवानुप्रिय! नंद मणियार धन्य है, जिसकी यह चतुष्कोण यावत् मनोहर पुष्करिणी है, जिसके पूर्व के वनखंडमें अनेक सैंकड़ों खंभों की वनी चित्रसभा है। इसी प्रकार चारों वनखंडों और चारों सभाओं के विषय में कहना चाहिए। यावत् नन्द मणियार का जन्म और जीवन सफल है।'

तत्पश्चात् वार—वार वहुत लोगोंके पाससे यह वात सुनकर और मन में समझ कर उस मेंढक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'जान पड़ता है कि मैंने इस प्रकारके शब्द पहले भी कहीं सुने हैं।' इस तरह विचार करने से, शुभ परिणामके कारण उसे यावत् जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे अपना पूर्व जन्म अच्छी तरह याद हो आया। तत्पश्चात् उस मेंढक को इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ—'मैं इसी राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार सेठ था—धन—धान्य आदि से समृद्ध था। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का आगमन हुआ। तव मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत यावत् अंगीकार किये थे। कुछ समय पश्चात् किसी समय साधु के दर्शन न होने से मैं यावत् मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् एक वार किसी समय ग्रीष्म कालके अवसर पर मैं तेले की तपस्या करके विचर रहा था। तव मुझे पुष्करिणी खुदवाने का विचार हुआ, श्रेणिक राजासे आज्ञा ली, नन्दा पुष्करिणी खुदवाई, वनखण्ड लगवाये, चार सभाएं वनवाईं, इत्यादि सव पूर्ववत् समझना चाहिए; यावत् पुष्करिणी के प्रति आसक्ति होने के कारण मैं नन्दा पुष्करिणी में मेंढक पर्यायमें उत्पन्न हुआ। अतएव मैं अधन्य हूं, अपुण्य हूं, मैंने पुण्य नहीं किया, अतः मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से नष्ट हुआ, भ्रष्ट हुआ और एकदम भ्रष्ट हो गया। तो अव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि पहले अंगीकार किये पांच अणुव्रतों को और सात शिक्षाव्रतों को मैं स्वयं ही पुनः अंगीकार करके विचरूं।'

नंद मणियार के जीव उस मेंढकने इस प्रकार विचार किया। विचार करके पहले अंगीकार किये हुए पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को पुनः अंगीकार किया। अंगीकार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—'आज से जीवन—पर्यन्त मुझे वेले—वेले की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरना कल्पता है। वेले के पारणे में भी नंदा पुष्करिणी के पर्यन्त भागों में, प्रासुक (अचित्त) हुए स्नान के जल से और मनुष्यों के उन्मर्दन आदि द्वारा उतारे मैल से अपनी आजीविका चलाना कल्पता है।' उसने ऐसा अभिग्रह धारण किया। अभिग्रह धारण करके वेले—वेले की तपस्या करता हुआ विचरने लगा।

हे गौतम ! उस काल और उस समयमें मैं गुणशील उद्यानमें आया। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। उस समय नन्दा पुष्करिणीमें वहुतसे जन नहाते, पानी पीते और पानी ले जाते हुए आपसमें इस प्रकार वातें करने लगे कि—यावत् श्रमण भगवान् महावीर यहीं गुणशील उद्यानमें समवसृत हुए हैं। सो, हे देवानु-

प्रिय ! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करें, यावत् उनकी उपासना करें। यह हमारे लिए इह भवमें और परभवमें हितके लिए एवं सुखके लिए होगा और अनुगामीपनके लिए होगा—साथ जाएगा।

तत्पश्चात् बहुत जनोंसे यह वृत्तान्त सुनकर और हृदयमें धारण करके उस मेंढकको ऐसा विचार यावत् उत्पन्न हुआ—निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर यावत् पधारे हैं, तो मैं जाऊं और भगवान् को वन्दना करूं। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके वह धीरे-धीरे नन्दा पुष्करिणीसे बाहर निकला। निकल कर जहां राजमार्ग था, वहां आया। आकर उस उत्कृष्ट यावत् दर्दु रगतिसे अर्थात् मेंढकके योग्य तीव्र चालसे चलता हुआ मेरे पास आनेके लिए कृत संकल्प हुआ। इधर भंभसार अपरनाम श्रेणिक राजाने स्नान किया एवं वह सब अलंकारोंसे विभूषित हुआ और श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुआ। कोरंट वृक्षके फूलोंकी माला वाले छत्रसे, श्वेत चामरोंसे शोभित होता हुआ, अश्व, हाथी, रथ और बड़े-बड़े सुभटोंके समूह रूप चतुरंगिणी सेनासे परिवृत होकर मेरे चरणोंकी वन्दना करनेके लिए शीघ्र आ रहा था। तब वह मेंढक श्रेणिक राजाके एक अश्वकिशोर (नौजवान घोड़े) के बाएं पैरसे दब गया। उसकी आंतें बाहर निकल गईं।

घोड़ेके पैरके नीचे दबनेके अनन्तर वह मेंढक शक्तिहीन, बलहीन, वीर्य (उद्यम) हीन और पुरुषकार-पराक्रमसे हीन हो गया। 'अब इस जीवनको धारण करना शक्य नहीं है' ऐसा जानकर वह एक तरफ गया। वहां दोनों हाथ जोड़कर, तीन बार मस्तक पर आवर्त्तन करके, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला—'अरुहंत (जिन्हें संसारमें पुनः उत्पन्न नहीं होना है ऐसे) यावत् निर्वाण को प्राप्त समस्त तीर्थकर भगवन्तोंको नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य यावत् मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीरको नमस्कार हो। पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीरके समीप स्थूल प्राणातिपातका प्रत्याख्यान किया था, यावत् स्थूल परिग्रहका प्रत्याख्यान किया था, तो अब भी मैं उन्हींके निकट समस्त प्राणातिपातका प्रत्याख्यान करता हूं, यावत् समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूं, जीवन पर्यन्तके लिए सर्व अशन, पान, खादिम और स्वादिम—चारों प्रकारके आहार का प्रत्याख्यान करता हूं। यह जो मेरा इष्ट और कान्त शरीर है, जिसके विषय में चाहा था कि इसे रोग आदि स्पर्श न करें, इसे भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक त्यागता हूं।' इस प्रकार कहकर दर्दु रने पूर्ण प्रत्याख्यान किया।*

---

*तिर्यंचगतिमें देशविरति हो सकती है, सर्वविरति नहीं, फिर मेंढकने सर्व-विरति रूप प्रत्याख्यान कैसे कर लिया? इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है कि यद्यपि तिर्यंचों का कहीं-कहीं महाव्रतों का धारण करना आगममें सुना जाता है तो भी उनमें चारित्र रूप परिणाम संभव नहीं है।

तत्पश्चात् वह मेंढक मृत्युके समय काल करके, यावत् सौधर्म कल्प में, दर्दु रावतंसक नामक विमानमें, उपपातसभामें, दर्दु रदेवके रूपमें उत्पन्न हुआ। हे गौतम ! दर्दु रदेवने इस प्रकार वह दिव्य देवर्द्धि लब्ध की है, प्राप्त की है और पूर्णरूपेण प्राप्त की है—उसके समक्ष आई है।

गौतम स्वामीने प्रश्न किया—'भगवन् ! दर्दु र देव की उस देवलोकमें कितनी स्थिति कही है ?' भगवान् उत्तर देते हैं—गौतम ! चार पल्योपम की स्थिति कही गई है। तत्पश्चात् वह दर्दु र देव आयुके क्षयसे, भवके क्षयसे और स्थितिके क्षयसे, तुरंत वहां से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्रमें सिद्ध होगा, वुद्ध होगा, यावत् जन्म-मरण का अन्त करेगा। श्रीसुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं—इस प्रकार निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीरने तेरहवें ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा कहता हूं ॥१०१॥

उपनय

सम्यक्त्व पाकर भी जीव सुसाधुओंके दर्शन और समागमके अभाव में मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं जैसे–नन्द-मणियार। ममत्व दुर्गतिका कारण है। भावशुद्धि से सद्गति प्राप्त होती है। जैसे दर्दु रने तीर्थंकरवन्दनभावसे वैमानिक-देवत्व प्राप्त किया।

॥ तेरहवां अध्ययन समाप्त ॥

———

चौदहवाँ तेतलिपुत्र-अध्ययन

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न करते हैं--'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने तेरहवें ज्ञात-अध्ययनका यह (पूर्वोवत) अर्थ कहा है, तो चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?' श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं--'हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें तेतलिपुर नामक नगर था। उस तेतलिपुर नगरसे बाहर उत्तरपूर्व-ईशानदिशामें प्रमदवन नामक उद्यान था। उस तेतलिपुर नगरमें कनकरथ नामक राजा था। कनकरथ राजा की पद्मावती नामक देवी (रानी) थी। कनकरथ राजा का तेतलिपुत्र नामक अमात्य था, जो साम, दाम, भेद और दंड-इन चार नीतियोंमें निष्णात था।

तेतलिपुर नगरमें कलाद नामक एक मूषिकारदारक (स्वर्णकार) था। वह धनाढ्य था और किसीसे पराभूत होने वाला नहीं था। उसकी पत्नीका नाम भद्रा था। उस कलाद मूषिकारदारककी पुत्री और भद्रा की आत्मजा (उदरजात) पोट्टिला नामकी लड़की थी। वह रूप, यौवन और लावण्यसे उत्कृष्ट और शरीर से भी उत्कृष्ट थी। एक वार किसी समय पोट्टिला दारिका (लड़की) स्नान करके

और सब अलंकारोंसे विभूषित होकर, दासियोंके समूहसे परिवृत होकर, प्रासादके ऊपर रही हुई छत की भूमिमें सोनेकी गेंदसे क्रीड़ा कर रही थी। इधर तेतलिपुत्र अमात्य स्नान करके, उत्तम अश्वके स्कंध पर आरूढ़ होकर, बड़े—सुभटोंके समूह के साथ घुड़सवारीके लिए निकला। वह कलाद मूषिकारदारकके घरके कुछ समीप होकर जा रहा था। तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने मूषिकारदारकके घरके कुछ पाससे जाते हुए प्रासादकी भूमि पर अगासीमें सोनेकी गेंदसे क्रीड़ा करती पोट्टिला दारिका को देखा। देखकर पोट्टिला दारिकाके रूप, यौवन और लावण्यमें यावत् अतीव मोहित होकर कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया और उनसे पूछा—'देवानुप्रियो! यह किसकी लड़की है? इसका नाम क्या है?'

तब कौटुम्बिक पुरुषोंने तेतलिपुत्रसे कहा—'स्वामिन्! यह कलाद मूषिकारदारककी पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नामक लड़की है। रूप, यौवन और लावण्यसे उत्तम है और उत्कृष्ट शरीर वाली है।' तत्पश्चात् तेतलिपुत्र घुड़सवारी से वापस लौटा तो उसने अभ्यन्तरस्थानीय (खानगी काम करने वाले) पुरुषोंको बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और कलाद मूषिकारदारककी पुत्री भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की मेरी पत्नी के रूप में मंगनी करो। तब वे अभ्यन्तरस्थानीय पुरुष तेतलिपुत्र के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। यावत् दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके 'तह त्ति' (बहुत अच्छा) कहकर मूषिकारदारक कलाद के घर आये। मूषिकारदारक कलाद ने उन पुरुषों को आते देखा तो वह हृष्ट-तुष्ट हुआ, आसनसे उठ खड़ा हुआ, सात—आठ कदम सामने गया; उसने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रण किया। जब वे आसन पर बैठे स्वस्थ हुए और विश्राम ले चुके तो कलाद ने पूछा—'देवानुप्रियो! आज्ञा दीजिए। आपके आने का क्या प्रयोजन है?'

तब उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों ने कलाद मूषिकारदारक से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! हम तुम्हारी दुहिता भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की, तेतलिपुत्र की पत्नी के रूप में मंगनी करते हैं। देवानुप्रिय! अगर तुम समझते हो कि यह संबंध उचित है, प्राप्त या पात्र है, प्रशंसनीय है, दोनों का संयोग सदृश है, तो तेतलिपुत्रको पोट्टिला दारिका प्रदान करो। प्रदान करते हो तो, देवानुप्रिय! कहो, इसके बदले क्या शुल्क (धन) देवें?'

तत्पश्चात् कलाद मूषिकारदारक ने उन अभ्यन्तर—स्थानीय पुरुषों से कहा—'देवानुप्रियो! यही मेरे लिए शुल्क है जो तेतलिपुत्र, दारिका के निमित्त से मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं।' इस प्रकार कहकर उसने उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से, पुष्प, वस्त्र आदि से यावत् माला

और अलंकार से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार—सन्मान करके उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् वे अभ्यन्तरस्थानीय पुरुष कलाद मूषिकारदारक के घर से निकले। निकल कर तेतलिपुत्र अमात्य के पास पहुँचे। तेतलिपुत्र को यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया। तत्पश्चात् कलाद मूषिकारदारक ने अन्यदा कदाचित् शुभ तिथि नक्षत्र और मुहूर्त्त में पोट्टिला दारिका को स्नान करा कर और समस्त अलंकारों से विभूषित करके शिविका में आरूढ़ किया। वह मित्रों और ज्ञातिजनों से परिवृत होकर अपने घर से निकल कर, पूरे ठाठके साथ, तेतलिपुरके बीचोंबीच होकर तेतलिपुत्र अमात्यके पास पहुंचा। पहुँच कर पोट्टिला दारिका को स्वयमेव तेतलिपुत्र की पत्नीके रूपमें प्रदान किया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टिला दारिका भार्या के रूप में आई देखी। देख कर वह पोट्टिला के साथ पट्ट पर बैठा। बैठ कर श्वेत—पीत (चांदी सोने के) कलशों से उसने स्वयं स्नान किया। स्नान करके अग्निमें होम किया। तत्पश्चात् पोट्टिला भार्याके मित्रजनों, ज्ञातिजनों यावत् परिजनों को अशन पान खादिम स्वादिम से तथा पुष्प वस्त्र और अलंकार आदिसे सत्कार—सन्मान करके विदा किया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अमात्य पोट्टिला भार्यामें अनुरक्त होकर अविरक्त-आसक्त होकर यावत् उदार भोग भोगने लगा ॥१०२॥

...वह कनकरथ राजा राज्य में, राष्ट्रमें, बल (सेना)में, वाहनोंमें, कोषमें, कोठारमें तथा अन्त:पुरमें अत्यन्त आसक्त हो गया। अतएव वह जो जो पुत्र उत्पन्न होते उन्हें विकलांग कर देता था। किन्हीं की हाथ की अंगुलियां काट देता, किन्हीं के हाथ का अंगूठा काट देता, इसी प्रकार पैर की उंगलियां, पैर का अंगूठा, कर्णशष्कुली (कान की पपड़ी) और किसी का नासिकापुट काट देता था। इस प्रकार उसने सभी पुत्रों को अवयवविकल कर दिया।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी को एक बार मध्य रात्रिके समय इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'कनकरथ राजा राज्य आदिमें आसक्त होकर यावत् पुत्रों को विकलांग कर देता है, यावत् उनके अंगोपांग काट देता है, तो यदि मेरे अब पुत्र उत्पन्न हो तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि उस पुत्र को मैं कनकरथ से छिपा कर पालूं—पोसूं।' पद्मावती देवीने ऐसा विचार किया और विचार करके तेतलिपुत्र अमात्य को बुलवाया, बुलवा कर उससे कहा—

'हे देवानुप्रिय! कनकरथ राजा राज्य और राष्ट्र आदिमें अत्यन्त आसक्त होकर सब पुत्रों को अपंग कर देता है, अत: मैं यदि अब पुत्रको जन्म दूं तो तुम कनकरथ से छिपाकर ही अनुक्रमसे उसका संरक्षण, संगोपन एवं संवर्धन करना। ऐसा करनेसे वह बालक बाल्यावस्था पार करके, यौवन को प्राप्त होकर तुम्हारे

और सब अलंकारोंसे विभूषित होकर, दासियोंके समूहसे परिवृत होकर, प्रासादके ऊपर रही हुई छत की भूमिमें सोनेकी गेंदसे क्रीड़ा कर रही थी। इधर तेतलिपुत्र अमात्य स्नान करके, उत्तम अश्वके स्कंध पर आरूढ़ होकर, बड़े—सुभटोंके समूह के साथ घुड़सवारीके लिए निकला। वह कलाद मूषिकारदारकके घरके कुछ समीप होकर जा रहा था। तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने मूषिकारदारकके घरके कुछ पाससे जाते हुए प्रासादकी भूमि पर अगासीमें सोनेकी गेंदसे क्रीड़ा करती पोट्टिला दारिका को देखा। देखकर पोट्टिला दारिकाके रूप, यौवन और लावण्यमें यावत् अतीव मोहित होकर कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया और उनसे पूछा—'देवानुप्रियो ! यह किसकी लड़की है ? इसका नाम क्या है ?'

तब कौटुम्बिक पुरुषोंने तेतलिपुत्रसे कहा—'स्वामिन् ! यह कलाद मूषिकारदारककी पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नामक लड़की है। रूप, यौवन और लावण्यसे उत्तम है और उत्कृष्ट शरीर वाली है।' तत्पश्चात् तेतलिपुत्र घुड़सवारी से वापस लौटा तो उसने अभ्यन्तरस्थानीय (खानगी काम करने वाले) पुरुषोंको बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कलाद मूषिकारदारककी पुत्री भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की मेरी पत्नी के रूप में मंगनी करो। तब वे अभ्यन्तरस्थानीय पुरुष तेतलिपुत्र के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। यावत् दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके 'तह त्ति' (बहुत अच्छा) कहकर मूषिकारदारक कलाद के घर आये। मूषिकारदारक कलाद ने उन पुरुषों को आते देखा तो वह हृष्ट-तुष्ट हुआ, आसनसे उठ खड़ा हुआ, सात—आठ कदम सामने गया; उसने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रण किया। जब वे आसन पर बैठे स्वस्थ हुए और विश्राम ले चुके तो कलाद ने पूछा—'देवानुप्रियो ! आज्ञा दीजिए। आपके आने का क्या प्रयोजन है ?'

तब उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों ने कलाद मूषिकारदारक से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! हम तुम्हारी दुहिता भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की, तेतलिपुत्र की पत्नी के रूप में मंगनी करते हैं। देवानुप्रिय ! अगर तुम समझते हो कि यह संबंध उचित है, प्राप्त या पात्र है, प्रशंसनीय है, दोनों का संयोग सदृश है, तो तेतलिपुत्रको पोट्टिला दारिका प्रदान करो। प्रदान करते हो तो, देवानुप्रिय ! कहो, इसके बदले क्या शुल्क (धन) देवें ?'

तत्पश्चात् कलाद मूषिकारदारक ने उन अभ्यन्तर—स्थानीय पुरुषों से कहा—'देवानुप्रियो ! यही मेरे लिए शुल्क है जो तेतलिपुत्र, दारिका के निमित्त से मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं।' इस प्रकार कहकर उसने उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से, पुष्प, वस्त्र आदि से यावत् माला

और अलंकार से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार—सन्मान करके उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् वे अभ्यन्तरस्थानीय पुरुष कलाद मूपिकारदारक के घर से निकले। निकल कर तेतलिपुत्र अमात्य के पास पहुँचे। तेतलिपुत्र को यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया। तत्पश्चात् कलाद मूपिकारदारक ने अन्यदा कदाचित् शुभ तिथि नक्षत्र और मुहूर्त्त में पोट्टिला दारिका को स्नान करा कर और समस्त अलंकारों से विभूषित करके शिविका में आरूढ़ किया। वह मित्रों और ज्ञातिजनों से परिवृत होकर अपने घर से निकल कर, पूरे ठाठके साथ, तेतलिपुरके वीचोंवीच होकर तेतलिपुत्र अमात्यके पास पहुंचा। पहुँच कर पोट्टिला दारिका को स्वयमेव तेतलिपुत्र की पत्नीके रूपमें प्रदान किया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टिला दारिका भार्या के रूप में आई देखी। देख कर वह पोट्टिला के साथ पट्ट पर बैठा। बैठ कर श्वेत—पीत (चांदी सोने के) कलशों से उसने स्वयं स्नान किया। स्नान करके अग्निमें होम किया। तत्पश्चात् पोट्टिला भार्याके मित्रजनों, ज्ञातिजनों यावत् परिजनों को अशन पान खादिम स्वादिम से तथा पुष्प वस्त्र और अलंकार आदिसे सत्कार—सन्मान करके विदा किया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अमात्य पोट्टिला भार्यामें अनुरक्त होकर अविरक्त-आसक्त होकर यावत् उदार भोग भोगने लगा ॥१०२॥

···वह कनकरथ राजा राज्य में, राष्ट्रमें, बल (सेना)में, वाहनोंमें, कोपमें, कोठारमें तथा अन्तःपुरमें अत्यन्त आसक्त हो गया। अतएव वह जो जो पुत्र उत्पन्न होते उन्हें विकलांग कर देता था। किन्हीं की हाथ की अंगुलियां काट देता, किन्हीं के हाथ का अंगूठा काट देता, इसी प्रकार पैर की उंगलियां, पैर का अंगूठा, कर्णशष्कुली (कान की पपड़ी) और किसी का नासिकापुट काट देता था। इस प्रकार उसने सभी पुत्रों को अवयवविकल कर दिया।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी को एक बार मध्य रात्रिके समय इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'कनकरथ राजा राज्य आदिमें आसक्त होकर यावत् पुत्रों को विकलांग कर देता है, यावत् उनके अंगोपांग काट देता है, तो यदि मेरे अब पुत्र उत्पन्न हो तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि उस पुत्र को मैं कनकरथ से छिपा कर पालूं—पोसूं।' पद्मावती देवीने ऐसा विचार किया और विचार करके तेतलिपुत्र अमात्य को वुलवाया, वुलवा कर उससे कहा—

'हे देवानुप्रिय! कनकरथ राजा राज्य और राष्ट्र आदिमें अत्यन्त आसक्त होकर सब पुत्रों को अपंग कर देता है, अतः मैं यदि अब पुत्रको जन्म दूं तो तुम कनकरथ से छिपाकर ही अनुक्रमसे उसका संरक्षण, संगोपन एवं संवर्धन करना। ऐसा करनेसे वह वालक वाल्यावस्था पार करके, यौवन को प्राप्त होकर तुम्हारे

लिए भी और मेरे लिए भी भिक्षा का भाजन बनेगा, अर्थात् वह तुम्हारा—हमारा पालन—पोषण करेगा।' तब तेतलिपुत्र अमात्य ने पद्मावती के इस अर्थको अंगीकार किया। अंगीकार करके वह वापिस लौट गया।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने और पोट्टिला नामक अमात्यी (अमात्य की पत्नी) ने एक ही साथ गर्भ धारण किया, एक ही साथ गर्भ वहन किया और साथ-साथ ही गर्भ की वृद्धि की। तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने नौ मास और साढ़े सात दिन पूर्ण हो जाने पर देखनेमें प्रिय और सुन्दर रूप वाले पुत्रको जन्म दिया। जिस रात्रिमें पद्मावती ने पुत्रको जन्म दिया, उसी रात्रिमें पोट्टिला अमात्यपत्नी ने भी नौ मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर मरी हुई बालिका का प्रसव किया।

तत्पश्चात् पद्मावती देवीने अपनी धायमाताको बुलाया और कहा—'मां, तुम तेतलिपुत्र के घर जाओ और तेतलिपुत्र को गुप्त रूपसे बुला लाओ।' तब धायमाताने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहकर पद्मावती का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके वह अन्तःपुर के पिछले द्वारसे निकल कर तेतलिपुत्र के घर पहुँची। वहां पहुँच कर दोनों हाथ जोड़ कर उसने यावत् इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिय! आप को पद्मावती देवी ने बुलाया है।'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र, धायमातासे यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट होकर धायमाताके साथ अपने घरसे निकला। निकलकर अन्तःपुर पिछले द्वारसे, गुप्त रूपसे उसने प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां पद्मावती देवी थी, वहां आया। आकर दोनों हाथ जोड़कर बोला–'देवानुप्रिये! मुझे जो करना है उसके लिए आज्ञा दीजिए।' तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने तेतलिपुत्रसे इस प्रकार कहा—'इस प्रकार कनकरथ राजा यावत् सब पुत्रोंको विकलांग कर देता है, तो हे देवानुप्रियो! तुम इस बालकको ग्रहण करो—संभालो। यावत् यह बालक तुम्हारे लिए और मेरे लिए भिक्षाका भाजन सिद्ध होगा।' ऐसा कहकर उसने वह बालक तेतलिपुत्रके हाथमें सौंप दिया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पद्मावती के हाथसे उस बालक को ग्रहण किया और अपने उत्तरीय वस्त्रसे ढंक लिया। ढंककर गुप्त रूपसे अन्तःपुरके पिछले द्वारसे बाहर निकल गया। निकल कर जहां अपना घर था और जहां पोट्टिला भार्या थी, वहां आया। आकर पोट्टिलासे इस प्रकार कहने लगा—

'इस प्रकार हे देवानुप्रिय! कनकरथ राजा राज्य आदि में यावत् अतीव आसक्त होकर अपने पुत्रों को यावत् अपंग कर देता है। और यह बालक कनकरथ का पुत्र और पद्मावती का आत्मज है, अतएव देवानुप्रिय! इस बालक का, कनकरथ से गुप्त रख कर, अनुक्रम से, संरक्षण संगोपन और संवर्धन करना। इससे यह बालक बाल्यावस्था से मुक्त होकर तुम्हारे लिए, मेरे लिए,

और पद्मावती के लिए आधारभूत होगा।' इस प्रकार कह कर उस बालक को पोट्टिला के पास रख दिया और पोट्टिला के पास से मरी हुई लड़की उठा ली। उठा कर उसे उत्तरीय वस्त्र से ढंक कर अन्तःपुर के पिछले छोटे द्वार से प्रविष्ट हुआ और पद्मावती देवी के पास पहुँचा। मरी लड़की पद्मावती देवी के पास रख दी और वह यावत् वापिस चला गया।

तत्पश्चात् पद्मावती की अंगपरिचारिकाओं ने पद्मावती देवी को और विनिघात को प्राप्त (मृत) जन्मी हुई बालिका को देखा। देखकर वे जहां कनकरथ राजा था, वहां पहुंचीं। पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगीं—'हे स्वामिन्! पद्मावती देवीने मृत बालिका का प्रसव किया है।' तत्पश्चात् कनकरथ राजा ने मरी हुई लड़की का नीहरण किया उसे श्मशान में ले गया। बहुत-से मृतक संबंधी लौकिक कार्य किये। कुछ समय के पश्चात् राजा शोक-रहित हो गया।

तत्पश्चात् दूसरे दिन तेतलिपुत्र ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा-'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चारक शोधन करो, अर्थात् कैदियोंको कारागार से मुक्त करो। यावत् दस दिनों की स्थितिपतिका करो-पुत्र-जन्म का उत्सव करो। हमारा यह बालक राजा कनकरथ के राज्य में उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालक का नाम कनकध्वज हो।' धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हुआ, कलाओं में कुशल हुआ, यौवन को प्राप्त होकर भोग भोगने में समर्थ हो गया ॥१०३॥

तत्पश्चात् किसी समय पोट्टिला तेतलिपुत्र को अप्रिय हो गई। तेतलिपुत्र उसका नाम--गोत्र भी सुनना पसन्द नहीं करता था, तो दर्शन और भोग की तो बात ही क्या? तब एक बार मध्यरात्रि के समय पोट्टिला के मनमें यह विचार आया कि—'तेतलिपुत्र को मैं पहले प्रिय थी, किन्तु आजकल अप्रिय हो गई हूं। अतएव तेतलिपुत्र मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहते, तो यावत् परिभोग तो चाहेंगे ही क्या?' इस प्रकार जिसके मनके संकल्प नष्ट हो गये हैं ऐसी वह पोट्टिला चिन्ता में डूब गई।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने भग्नमनोरथा पोट्टिला को चिन्ता में डूबी देखकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये! भग्नमनोरथ मत होओ। तुम मेरी भोजनशाला में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाओ और तैयार करवा कर बहुतसे श्रमणों, ब्राह्मणों, यावत् भिखारियों को दान देती--दिलाती हुई रहा करो।'

तेतलिपुत्र के ऐसा कहने पर पोट्टिला हर्षित और संतुष्ट हुई उसने तेतलि-पुत्र के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके प्रतिदिन भोजनशाला में

वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवा कर दान देती और दिलाती रहती थी ॥१०४॥

उस काल और उस समयमें ईर्यासमिति से युक्त, यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी बहुश्रुत, बहुत परिवार वाली सुव्रता नामक आर्या अनुक्रम से विहार करती-करती तेतलिपुर नगर में आई। आकर यथोचित उपाश्रय ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगीं।

तत्पश्चात् उन सुव्रता आर्या के एक संघाड़े ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और दूसरे प्रहरमें ध्यान किया। तीसरे प्रहर में भिक्षा के लिए यावत् अटन करती हुई वे साध्वियां तेतलिपुत्रके घरमें प्रविष्ट हुई। पोट्टिला उन आर्याओं को आती देख कर हृष्ट-तुष्ट हुई, अपने आसन से उठ खड़ी हुई, वंदना की, नमस्कार किया और विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य-आहार बहराया। आहार बहरा (दे) कर उसने कहा—

'हे आर्याओ! मैं पहले तेतलिपुत्र की इष्ट (कान्त आदि) थी, किन्तु अब अनिष्ट (अकान्त, अप्रिय आदि) हो गई हूं। यावत् दर्शन और परिभोग की तो बात ही दूर। आर्याओ! तुम शिक्षित हो, बहुत जानकार हो, बहुत पढ़ी हो, बहुतसे नगरों और ग्रामोंमें यावत् भ्रमण करती हो, राजाओं और ईश्वरों के घरोंमें प्रवेश करती हो, तो हे आर्याओ! तुम्हारे पास कोई चूर्णयोग, मंत्रयोग, कार्मण योग, हृदयोड्डयन—हृदय को हरण करने वाला, काया का आकर्षण करने वाला, आभियोगिक—पराभव करने वाला, वशीकरण, कौतुक कर्म—सौभाग्य प्रदान करने वाला स्नान आदि, भूतिकर्म—भभूत का प्रयोग, अथवा कोई मूल कंद छाल बेल शिलिका (एक प्रकार का घास), गोली, औषध या भेषज ऐसी है, जो पहले जानी हुई हो? जिससे मैं फिर तेतलिपुत्र की इष्ट हो सकूं?'

पोट्टिला के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन आर्याओं ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये। कान बन्द करके उन्होंने पोट्टिलासे कहा—'देवानुप्रिये! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियां हैं, यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणियां हैं। अतएव ऐसा वचन हमें कानों से सुनना भी नहीं कल्पता तो इस विषय का उपदेश देना या आचरण करना तो कल्प ही कैसे सकता है? हां, देवानुप्रिये! हम तुम्हें अद्भुत या अनेक प्रकार के केवली-प्ररूपित धर्म का भली भांति उपदेश दे सकती हैं।

तत्पश्चात् पोट्टिला ने उन आर्याओं से कहा—'हे आर्याओ! मैं आपके पास से केवलिप्ररूपित धर्म सुनना चाहती हूं।' तब उन आर्याओं ने पोट्टिला को अद्भुत या अनेक प्रकारके धर्मका उपदेश दिया। पोट्टिला धर्म का उपदेश सुन-कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट होकर इस प्रकार बोली—'आर्याओ!

मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूं। जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है। अतएव मैं आपके पास से पांच अणुव्रतों को यावत् श्रावक के धर्म को अंगीकार करना चाहती हूं।' तव आर्याओं ने कहा—'जैसे सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओंसे पांच अणुव्रत यावत् श्रावक-धर्म अंगीकार किया। उन आर्याओं को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् पोट्टिला श्रमणोपासिका हो गई, यावत् साधु–साध्वियों को आहार आदि प्रदान करती हुई विचरने लगी ॥१०५॥

तत्पश्चात् एक वार किसी समय, मध्य रात्रि के समय, जव वह कुटुम्ब के विषयमें चिन्ता करती हुई जाग रही थी तव उसे इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ —'मैं पहले तेतलिपुत्र को इष्ट थी, अव अनिष्ट हो गई हूं; यावत् दर्शन और और परिभोग का तो कहना ही क्या है? अतएव मेरे लिए सुव्रता आर्या के निकट दीक्षा ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।' पोट्टिला ने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन, प्रभात होने पर, वह तेतलिपुत्र के पास गई। जाकर दोनों हाथ जोड़ कर वोली—हे देवानुप्रिय! मैंने सुव्रता आर्या से धर्म सुना है, यावत् आपकी आज्ञा पाकर मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं।

तव तेतलिपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय! तुम मुंडित और प्रव्रजित होकर मृत्यु के समय काल करके किसी भी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होओगी, सो यदि देवानुप्रिये! तुम उस देवलोक से आकर मुझे केवलि-प्ररूपित धर्म का वोध करो तो मैं तुम्हें छुट्टी देता हूं; अगर तुम मुझे प्रतिवोध न दो तो मैं आज्ञा नहीं देता।' तव पोट्टिला ने तेतलिपुत्र का अर्थ स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार वनवाया। मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित किया। यावत् उनका यथोचित सन्मान किया। सन्मान करके पोट्टिला को स्नान कराया यावत् हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरूढ़ करा कर मित्रों तथा ज्ञातिजनों-आदि से परिवृत होकर, समस्त ऋद्धि–लवाजमे--के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनिके साथ तेतलिपुर के मध्य में होकर सुव्रता के उपाश्रयमें आया। वहां आकर सुव्रता आर्या को वन्दना की, नमस्कार मिया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! यह मेरी पोट्टिला भार्या मुझे इष्ट है। यह संसार के भय से उद्वेग को प्राप्त हुई है, यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। सो हे देवानुप्रिये! मैं आपको शिष्या रूप भिक्षा देता हूं। इसे आप अंगीकार कीजिए।'

सुव्रता आर्या ने कहा--'जैसे सुख उपजे वैसा करो; प्रतिवंध मत करो-विलम्व न करो।' तत्पश्चात् सुव्रता आर्या के इस प्रकार कहने पर पोट्टिला हृष्ट–तुष्ट हुई।

वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवा कर दान देती और दिलाती रहती थी ॥१०४॥

उस काल और उस समयमें ईर्यासमिति से युक्त, यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी बहुश्रुत, बहुत परिवार वाली सुव्रता नामक आर्या अनुक्रम से विहार करती-करती तेतलिपुर नगर में आई। आकर यथोचित उपाश्रय ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगीं।

तत्पश्चात् उन सुव्रता आर्या के एक संघाड़े ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और दूसरे प्रहरमें ध्यान किया। तीसरे प्रहर में भिक्षा के लिए यावत् अटन करती हुई वे साध्वियां तेतलिपुत्रके घरमें प्रविष्ट हुई। पोट्टिला उन आर्याओं को आती देख कर हृष्ट-तुष्ट हुई, अपने आसन से उठ खड़ी हुई, वंदना की, नमस्कार किया और विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य-आहार बहराया। आहार बहरा (दे) कर उसने कहा—

'हे आर्याओ! मैं पहले तेतलिपुत्र की इष्ट (कान्त आदि) थी, किन्तु अब अनिष्ट (अकान्त, अप्रिय आदि) हो गई हूं। यावत् दर्शन और परिभोग की तो बात ही दूर। आर्याओ! तुम शिक्षित हो, बहुत जानकार हो, बहुत पढ़ी हो, बहुतसे नगरों और ग्रामोंमें यावत् भ्रमण करती हो, राजाओं और ईश्वरों के घरोंमें प्रवेश करती हो, तो हे आर्याओ! तुम्हारे पास कोई चूर्णयोग, मंत्रयोग, कार्मण योग, हृदयोड्डयन—हृदय को हरण करने वाला, काया का आकर्षण करने वाला, आभियोगिक—पराभव करने वाला, वशीकरण, कौतुक कर्म—सौभाग्य प्रदान करने वाला स्नान आदि, भूतिकर्म—भभूत का प्रयोग, अथवा कोई मूल कंद छाल बेल शिलिका (एक प्रकार का घास), गोली, औषध या भेषज ऐसी है, जो पहले जानी हुई हो? जिससे मैं फिर तेतलिपुत्र की इष्ट हो सकूं?'

पोट्टिला के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन आर्याओं ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये। कान बन्द करके उन्होंने पोट्टिलासे कहा—'देवानुप्रिये! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियां हैं, यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणियां हैं। अतएव ऐसा वचन हमें कानों से सुनना भी नहीं कल्पता तो इस विषय का उपदेश देना या आचरण करना तो कल्प ही कैसे सकता है? हां, देवानुप्रिये! हम तुम्हें अद्भुत या अनेक प्रकार के केवली-प्ररूपित धर्म का भली भांति उपदेश दे सकती हैं।

तत्पश्चात् पोट्टिला ने उन आर्याओं से कहा—'हे आर्याओ! मैं आपके पास से केवलिप्ररूपित धर्म सुनना चाहती हूं।' तब उन आर्याओं ने पोट्टिला को अद्भुत या अनेक प्रकारके धर्मका उपदेश दिया। पोट्टिला धर्म का उपदेश सुन-कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट होकर इस प्रकार बोली—'आर्याओ!

मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूं। जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है। अतएव मैं आपके पास से पांच अणुव्रतों को यावत् श्रावक के धर्म को अंगीकार करना चाहती हूं।' तब आर्याओं ने कहा—'जैसे सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओंसे पांच अणुव्रत यावत् श्रावक-धर्म अंगीकार किया। उन आर्याओं को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् पोट्टिला श्रमणोपासिका हो गई, यावत् साधु-साध्वियों को आहार आदि प्रदान करती हुई विचरने लगी ॥१०५॥

तत्पश्चात् एक बार किसी समय, मध्य रात्रि के समय, जब वह कुटुम्ब के विषयमें चिन्ता करती हुई जाग रही थी तब उसे इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ —'मैं पहले तेतलिपुत्र को इष्ट थी, अब अनिष्ट हो गई हूं; यावत् दर्शन और और परिभोग का तो कहना ही क्या है? अतएव मेरे लिए सुव्रता आर्या के निकट दीक्षा ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।' पोट्टिला ने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन, प्रभात होने पर, वह तेतलिपुत्र के पास गई। जाकर दोनों हाथ जोड़ कर बोली—हे देवानुप्रिय! मैंने सुव्रता आर्या से धर्म सुना है, यावत् आपकी आज्ञा पाकर मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं।

तब तेतलिपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय! तुम मुंडित और प्रव्रजित होकर मृत्यु के समय काल करके किसी भी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होओगी, सो यदि देवानुप्रिये! तुम उस देवलोक से आकर मुझे केवलि-प्ररूपित धर्म का बोध करो तो मैं तुम्हें छुट्टी देता हूं; अगर तुम मुझे प्रतिबोध न दो तो मैं आज्ञा नहीं देता।' तब पोट्टिला ने तेतलिपुत्र का अर्थ स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाया। मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित किया। यावत् उनका यथोचित सन्मान किया। सन्मान करके पोट्टिला को स्नान कराया यावत् हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरूढ़ करा कर मित्रों तथा ज्ञातिजनों-आदि से परिवृत होकर, समस्त ऋद्धि-लवाजमे--के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनिके साथ तेतलिपुर के मध्य में होकर सुव्रता के उपाश्रयमें आया। वहां आकर सुव्रता आर्या को वन्दना की, नमस्कार मिया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! यह मेरी पोट्टिला भार्या मुझे इष्ट है। यह संसार के भय से उद्वेग को प्राप्त हुई है, यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। सो हे देवानुप्रिये! मैं आपको शिष्या रूप भिक्षा देता हूं। इसे आप अंगीकार कीजिए।'
सुव्रता आर्या ने कहा--'जैसे सुख उपजे वैसा करो; प्रतिबंध मत करो-विलम्ब न करो।' तत्पश्चात् सुव्रता आर्या के इस प्रकार कहने पर पोट्टिला हृष्ट-तुष्ट हुई।

उसने उत्तरपूर्व--ईशान दिशा में जाकर अपने आप आभरण, माला और अलंकार उतार डाले, उतारकर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। यह सब करके जहां सुव्रता आर्या थी, वहां आई। आकर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन--नमस्कार करके इस प्रकार कहा--'हे भगवती (पूज्ये)! यह संसार चारों ओरसे जल रहा है।' इत्यादि भगवती सूत्रमें कथित देवानन्दा की दीक्षा के समान वर्णन कह लेना चाहिए। यावत् पोट्टिला ने दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक चारित्रका पालन किया। पालन करके एक मास की संलेखना करके, अपने शरीरको कृश करके, साठ भक्त का अनशन करके, पापकर्म की आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिपूर्वक मृत्यु के अवसर पर काल करके, किसी देव-लोकमें देवताके रूप में उत्पन्न हुई ॥१०६॥

तत्पश्चात् किसी समय कनकरथ राजा कालधर्मसे युक्त हो गया—मर गया। तब राजा, ईश्वर आदिने उसका नीहरण किया—मृतककृत्य किए। मृतककृत्य करके वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रियो! कनकरथ राजाने राज्य आदि में आसक्त होनेके कारण अपने पुत्रोंको विकलांग कर दिया है। देवानुप्रियो! हम लोग तो राजाके आधीन हैं, राजासे अधिष्ठित होकर रहने वाले हैं और राजाके आधीन रह कर कार्य करने वाले हैं। और तेतलिपुत्र अमात्य, राजा कनकरथ का सब स्थानोंमें और सब भूमिकाओंमें विश्वासपात्र रहा है, परामर्श-विचार देने वाला—विचारक है और सब काम चलाने वाला है। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्यसे कुमारकी याचना करना उचित है।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने आपसकी यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके जहां तेतलिपुत्र अमात्य था, वहां आये। आकर तेतलिपुत्रसे इस प्रकार कहने लगे—

'हे देवानुप्रिय! इस प्रकार कनकरथ राजा राज्यमें तथा राष्ट्र आदिमें आसक्त था, अतएव उसने सब पुत्रों को विकलांग कर दिया है। और हम लोग तो देवानु-प्रिय! राजाके आधीन रहने वाले यावत् राजाके आधीन रह कर कार्य करने वाले हैं। देवानुप्रिय! तुम कनकरथ राजाके सभी स्थानोंमें विश्वास-पात्र रहे हो, यावत् राज्यकी धुरा के चिन्तक हो। अतएव हे देवानुप्रिय! यदि कोई कुमार राजलक्षणों से युक्त और अभिषेकके योग्य हो तो हमें दो, जिससे महान् २ राज्याभिषेकसे हम उसका अभिषेक करें।'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने उन ईश्वर आदिके इस कथन को अंगीकार किया। अंगीकार करके कनकध्वज कुमारको स्नान कराया और विभूषित किया। फिर उसे उन ईश्वर आदिके पास लाया। लाकर कहा—'देवानुप्रियो! यह कनकरथ राजाका पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज कनकध्वज कुमार अभिषेकके योग्य है और राजलक्षणोंसे सम्पन्न है। मैंने कनकरथ राजासे छिपा कर इसका संवर्धन

किया है। तुम लोग महान्-महान् राज्याभिषेकसे इसका अभिषेक करो।' इस प्रकार कह कर उसने कुमार के जन्म का और पालन-पोषण आदिका वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तत्पश्चात् उन ईश्वर आदिने कनकध्वज कुमार का महान्-महान् राज्याभिषेक किया। तब कनकध्वज कुमार राजा हो गया। महाहिमवान् और मलय पर्वतके समान, इत्यादि राजाका वर्णन यहां कहना चाहिए। यावत् वह राज्य का पालन करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् पद्मावती देवीने कनकध्वज राजा को बुलाया और बुलाकर कहा—'पुत्र! तुम्हारा यह राज्य यावत् अन्तःपुर और स्वयं तू भी तेतलिपुत्रके प्रभाव से ही है। अतएव तू तेतलिपुत्र अमात्य का आदर करना, उन्हें अपना हितैषी जानना, उनका सत्कार करना, सन्मान करना, उन्हें आते देखकर खड़े होना, आकर खड़ा होने पर उनकी उपासना करना, उनके जाने पर पीछे-पीछे जाना, बोलने पर वचनों की प्रशंसा करना, उन्हें आधे आसन पर बिठलाना और उनके भोग की (वेतन तथा जागीर आदि की) वृद्धि करना।' तत्पश्चात् कनकध्वजने पद्मावती देवीके कथनको 'बहुत अच्छा' कहकर अंगीकार किया। यावत् तेतलिपुत्रके भोग की वृद्धि कर दी ॥१०७॥

तत्पश्चात् पोट्टिल देवने तेतलिपुत्रको बार-बार केवलि-प्ररूपित धर्म का प्रतिबोध दिया, परन्तु तेतलिपुत्रको प्रतिबोध हुआ ही नहीं। तब पोट्टिल देवको इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार कनकध्वज राजा, तेतलिपुत्र का आदर करता है, यावत् उसने भोग बढ़ा दिया है, इस कारण तेतलिपुत्र बार-बार प्रतिबोध देने पर भी धर्ममें प्रतिबुद्ध नहीं होता। अतएव यह उचित होगा कि कनकध्वज को तेतलिपुत्रसे विरुद्ध (विमुख) कर दिया जाय। देव ने ऐसा विचार किया और कनकध्वजको तेतलिपुत्रसे विरुद्ध कर दिया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र दूसरे दिन स्नान करके, श्रेष्ठ अश्वकी पीठ पर सवार होकर और बहुतसे पुरुषोंसे परिवृत होकर अपने घरसे निकला। निकलकर जहां कनकध्वज राजा था, उसी ओर रवाना हुआ। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अमात्यको (मार्गमें) जो जो बहुत से राजा, ईश्वर या तलवर आदि देखते हैं, वे उसी तरह अर्थात् सदैव की भांति उसका आदर करते हैं, उसे हितकारक जानते हैं और खड़े होते हैं। खड़े होकर हाथ जोड़ते हैं और हाथ जोड़कर इष्ट एवं कान्त यावत् वाणीसे बोलते हैं और बार-बार बोलते हैं। वे सब उसके आगे, पीछे और अगल-बगलमें अनुसरण करके चलते हैं।

तत्पश्चात् वह तेतलिपुत्र जहां कनकध्वज था, वहां आया। कनकध्वजने तेतलिपुत्र को आते देखा, मगर देखकर उसका आदर नहीं किया, उसे हितैषी नहीं जाना, खड़ा नहीं हुआ, बल्कि आदर न करता हुआ, न जानता हुआ और खड़ा न

होता हुआ पराङ्‌मुख (पीठ फेर कर) बैठा रहा। तब तेतलिपुत्र, कनकध्वज को विपरीत हुआ जान कर भयभीत हुआ। उसके हृदयमें खूब भय उत्पन्न हो गया। वह इस प्रकार बोला—कनकध्वज राजा मुझसे रुष्ट हो गया है, कनकध्वज राजा मुझ पर हीन हो गया है, कनकध्वज राजाने मेरा बुरा सोचा है। सो न मालूम यह मुझे किस बुरी मौतसे मारेगा। इस प्रकार विचार करके वह डर गया, त्रास को प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे वहांसे खिसक गया। खिसक कर उसी अश्व की पीठ पर सवार हुआ। सवार होकर तेतलिपुरके मध्यभागमें होकर अपने घर की तरफ रवाना हुआ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्रको वे ईश्वर आदि जैसे देखते हैं, तो वे पहले की तरह उसका आदर नहीं करते, उसे नहीं जानते, सामने नहीं खड़े होते, हाथ नहीं जोड़ते, और इष्ट यावत् वाणीसे बात नहीं करते। आगे, पीछे और अगल बगलमें उसके साथ नहीं चलते। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र जिधर अपना घर था, उधर आया। बाहर की जो परिषद् होती है, जैसे कि दास, प्रेष्य (बाहर जाने-आने का काम करने वाले), तथा भागीदार आदि, उस बाहर की परिषद्ने भी उसका आदर नहीं किया, उसे नहीं जाना और न खड़ी हुई। और जो आभ्यन्तर परिषद् होती है, जैसे कि पिता, माता, पुत्रवधू आदि, उसने भी उसका आदर नहीं किया, उसे नहीं जाना और न उठ कर खड़ी हुई।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र, जहां उसका अपना वासगृह था और जहां शय्या थी, वहां आया। आकर शय्या पर बैठा। बैठ कर (मन ही मन) इस प्रकार कहने लगा—'इस प्रकार मैं अपने घरसे निकला और राजाके पास गया। मगर राजाने आदर-सत्कार नहीं किया। लौटते समय मार्गमें भी किसीने आदर नहीं किया। घर आया तो बाह्य परिषद्ने भी आदर नहीं किया, यावत् आभ्यन्तर परिषद्ने भी आदर नहीं किया, नहीं जाना और खड़ी नहीं हुई। ऐसी दशामें मुझे अपने को जीवनसे रहित कर लेना ही श्रेयस्कर है।' इस प्रकार तेतलिपुत्रने विचार किया। विचार करके तालपुट विष अपने मुखमें डाला। परन्तु उस विषने संक्रमण नहीं किया—असर नहीं किया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने नीलकमलके समान श्याम यावत् तलवार अपने कंधे पर वहनकी--तलवार का प्रहार किया, मगर वह भी खंडित हो गई। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अशोकवाटिकामें गया। वहां जाकर उसने अपने गलेमें पाश बांधा। फिर वृक्ष पर चढ़ा। चढ़ कर वह पाश वृक्षसे बांधा। फिर अपने शरीरको छोड़ा—लटका दिया। वहां भी वह रस्सी टूट गई। तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने बहुत बड़ी शिला गर्दनमें बांधी। बांधकर अथाह, न तिरने योग्य और अपौरुष (कितने पुरुष प्रमाण है, यह न जाना जा सके ऐसे) जलमें अपना शरीर छोड़ दिया। पर वहां

भी वह जल थाह-छिछला हो गया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने सूखे घासके ढेरमें आग लगाई और अपने शरीर को उसमें डाल दिया। मगर वहां भी वह अग्नि-काय बुझ गया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र मन ही मन इस प्रकार बोला—'श्रमण श्रद्धा करने योग्य वचन बोलते हैं, महान् श्रद्धा करने योग्य वचन बोलते हैं, श्रमण और महान् श्रद्धा करने योग्य वचन बोलते हैं। मैं ही एक हूं जो अश्रद्धेय वचन कहता हूं। मैं पुत्रों सहित होने पर भी पुत्रहीन हूं, कौन मेरे इस कथन पर श्रद्धा करेगा? मैं मित्रों सहित होने पर भी मित्रहीन हूं, कौन मेरी इस बात पर विश्वास करेगा? इसी प्रकार धन, स्त्री, दास और परिवारसे सहित होने पर भी मैं इनसे रहित हूं, कौन मेरी इस बात पर श्रद्धा करेगा? इसी प्रकार राजा कनकध्वजके द्वारा जिसका बुरा विचारा गया है, ऐसे तेतलिपुत्र अमात्यने अपने मुखमें विष डाला, मगर उस विष ने कुछ प्रभाव न दिखलाया, मेरे इस कथन पर कौन विश्वास करेगा? तेतलिपुत्र ने अपने गलेमें नीलकमल जैसी तलवार का प्रहार किया, मगर उसकी धार खंडित हो गई, कौन मेरी इस बात पर श्रद्धा करेगा? तेतलिपुत्रने अपने गलेमें फांसी लगाई, मगर रस्सी टूट गई, मेरी इस बात पर कौन भरोसा करेगा? तेतलिपुत्रने गलेमें भारी शिला यावत् बांध कर अथाह यावत् जलमें अपने आपको छोड़ दिया, मगर वह पानी थाह-छिछला हो गया, मेरी यह बात कौन मानेगा? तेतलिपुत्र सूखे घासमें आग लगा कर उसमें कूद गया, मगर आग बुझ गई, कौन इस बात पर विश्वास करेगा? इस प्रकार तेतलिपुत्र भग्नमनोरथ होकर चिन्ता करने लगा।

तत्पश्चात् पोट्टिल देवने पोट्टिलाके रूपकी विक्रिया की। विक्रिया करके तेतलिपुत्रसे न बहुत दूर और न बहुत पास स्थित होकर तेतलिपुत्रसे इस प्रकार कहा—'तेतलिपुत्र! आगे प्रपात (गड़हा) है और पीछे हाथी का भय है। दोनों बगलोंमें ऐसा घोर अंधकार है कि आंखोंसे दिखाई नहीं देता। मध्य भागमें बाणों की वर्षा हो रही है। गांवमें आग लगी है और वन धधक रहा है। तो आयुष्मन् तेतलिपुत्र! हम कहां जाएं? कहां शरण लें? अभिप्राय यह है कि जिसके चारों ओर घोर भय का वायुमंडल हो और कहीं भी क्षेम-कुशल न दिखाई दे, उसे क्या करना चाहिए? उसके लिए हितकर मार्ग क्या है? तत्पश्चात् तेतलिपुत्रने पोट्टिल देवसे इस प्रकार कहा—अहो! इस प्रकार सर्वत्र भयग्रस्त पुरुषके लिए दीक्षा ही शरणभूत है। जैसे उत्कंठित हुए पुरुषके लिए स्वदेशगमन शरणभूत है, भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, बीमार को औषध, मायावीको गुप्तता, अभियुक्त (जिस पर आरोप लगाया गया हो उसे) को विश्वास उपजाना, थके-मांदे को वाहन पर चढ़ कर गमन करना, तिरनेके इच्छुक को जहाज और शत्रु का पराभव करने को

इच्छा करने वाले को सहायकृत्य (मित्रों की सहायता) शरणभूत है।

सर्वत्र भयग्रस्त को दीक्षा क्यों शरणभूत है ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि क्रोध का निग्रह करने वाले क्षमाशील, इन्द्रियों का और मन का दमन करने वाले तथा जितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंके विषयमें राग न रखने वाले पुरुष को इनमें से एक भी भय नहीं है। (भय काया को न होकर मायाके लिए ही होता है। जिसने दोनों की ममता त्याग दी, वह सदैव और सर्वत्र निर्भय है।) तत्पश्चात् पोट्टिल देवने तेतलिपुत्र अमात्यसे इस प्रकार कहा—'हे तेतलिपुत्र ! तुम ठीक कहते हो। अर्थात् भयग्रस्तके लिए प्रव्रज्या शरणभूत है, यह तुम्हारा कथन सत्य है। मगर इस अर्थ को तुम भली भांति जानो, अर्थात् इस समय तुम भयभीत हो तो अनुष्ठान करके यह बात समझो-दीक्षा ग्रहण करो।' इस प्रकार कह कर देवने दूसरी बार भी ऐसा ही कहा। कह कर देव जिस दिशासे प्रकट हुआ था, उसी दिशामें वापिस लौट गया ॥१०८॥

तत्पश्चात् तेतलिपुत्रको शुभ परिणाम उत्पन्न होनेसे जातिस्मरण ज्ञानकी प्राप्ति हुई। तब तेतलिपुत्रके मनमें इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार निश्चय ही मैं इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती विजयमें, पुण्डरीकिणी राजधानीमें महापद्म नामक राजा था। फिर मैंने स्थविर मुनिके निकट मुंडित होकर यावत् चौदह पूर्वोका अध्ययन करके, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय (चारित्र) का पालन करके, अन्तमें एक मासकी संलेखना करके महाशुक्र कल्पमें देव रूपसे जन्म लिया। तत्पश्चात् आयु का क्षय होने पर मैं उस देवलोकसे (च्यवन करके) यहां तेतलिपुरमें तेतलि अमात्य की भद्रा नामक भार्याके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। तो मेरे लिए, पहले स्वीकार किये हुए महाव्रतों को स्वयं ही अंगीकार करके विचरना श्रेयस्कर है।' ऐसा तेतलिपुत्रने विचार किया। विचार करके स्वयं ही महाव्रतोंको अंगीकार करके जिधर प्रमदवन उद्यान था, उधर आया। आकर श्रेष्ठ अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर सुखपूर्वक बैठे हुए और विचारणा करते हुए उसे पहले अध्ययन किये हुए चौदह पूर्व स्वयं ही स्मरण हो आये।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अनगार ने शुभ परिणामसे यावत् तदावरणीय-ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय आदि कर्मोके क्षयोपशमसे, कर्म-रजका नाश करने वाले अपूर्व करणमें प्रवेश किया अर्थात् क्षपक श्रेणी प्रारम्भ की और चार घातिकर्मोका क्षय किया, और उत्तम केवलज्ञान तथा केवलदर्शन उत्पन्न हुए ॥१०९॥

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र नगरके निकट रहे हुए वाणव्यन्तर देवों और देवियों ने देवदुंदुभियां बजाई। पांच वर्णके फूलोंकी और दिव्य गीत-गंधर्वका निनाद

किया अर्थात् केवलज्ञान संबंधी महोत्सव मनाया। तत्पश्चात् कनकध्वज राजा इस कथा का अर्थ जानता हुआ अर्थात् यह वृत्तान्त जानकर (मन ही मन बोला—) 'निस्सन्देह मेरे द्वारा अपमानित होकर तेतलिपुत्रने मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की है। अतएव मैं जाऊं और तेतलिपुत्र अनगार को वंदना करूं, नमस्कार करूं और वन्दना नमस्कार करके इस बातके लिए विनयपूर्वक बार-बार खमाऊं।' कनकध्वजने ऐसा विचार किया। विचार करके स्नान किया। फिर चतुरंगिणी सेनाके साथ जहां प्रमद वन उद्यान था और जहां तेतलिपुत्र अनगार थे, वहां पहुंचा। पहुंच कर तेतलिपुत्र अनगारको वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस बातके लिए विनयके साथ पुनः पुनः क्षमायाचना की। न अधिक दूर और न अधिक समीप—यथायोग्य स्थान पर बैठ कर वह उपासना करने लगा।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अनगारने कनकध्वज राजाको और उपस्थित महती परिषद्को धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् कनकध्वज राजाने तेतलिपुत्र केवली से धर्म सुनकर और उसे हृदयमें धारण करके पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया।...करके वह यावत् जीव-अजीव आदि तत्त्वोंका ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र केवली बहुत वर्षों तक केवली-अवस्थामें रह कर यावत् सिद्ध हुए। श्री सुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं--हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महा-वीरने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा ही कहा ॥११०॥

उपनय

प्राणी जब तक किसी प्रकारके दुःखके शिकार नहीं होते या किसी कारण से उनके मान—सन्मान को ठेस नहीं लगती, तब तक वे तेतलिपुत्रके समान बार-बार प्रतिबोध पा करके भी धर्मकी शरण ग्रहण नहीं करते।

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ नन्दीफल-अध्ययन

श्रीजम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीरने चौदहवें ज्ञात-अध्ययनका यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययनका श्रमण भगवान् महावीरने क्या अर्थ कहा है?' श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू! उस काल और उस समय चम्पा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक उद्यान था। जितशत्रु नामक राजा था। उस चम्पा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो सम्पन्न था यावत् किसीसे पराभूत होने वाला नहीं था। उस चम्पा नगरीसे उत्तर-पूर्व दिशामें

इच्छा करने वाले को सहायकृत्य (मित्रों की सहायता) शरणभूत है।

सर्वत्र भयग्रस्त को दीक्षा क्यों शरणभूत है ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि क्रोध का निग्रह करने वाले क्षमाशील, इन्द्रियों का और मन का दमन करने वाले तथा जितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंके विषयमें राग न रखने वाले पुरुष को इनमें से एक भी भय नहीं है। (भय काया को न होकर मायाके लिए ही होता है। जिसने दोनों की ममता त्याग दी, वह सदैव और सर्वत्र निर्भय है।)तत्पश्चात् पोट्टिल देवने तेतलिपुत्र अमात्यसे इस प्रकार कहा—'हे तेतलिपुत्र ! तुम ठीक कहते हो। अर्थात् भयग्रस्तके लिए प्रव्रज्या शरणभूत है, यह तुम्हारा कथन सत्य है। मगर इस अर्थ को तुम भली भांति जानो, अर्थात् इस समय तुम भयभीत हो तो अनुष्ठान करके यह बात समझो-दीक्षा ग्रहण करो।' इस प्रकार कह कर देवने दूसरी बार भी ऐसा ही कहा। कह कर देव जिस दिशासे प्रकट हुआ था, उसी दिशामें वापिस लौट गया ॥१०८॥

तत्पश्चात् तेतलिपुत्रको शुभ परिणाम उत्पन्न होनेसे जातिस्मरण ज्ञानकी प्राप्ति हुई। तब तेतलिपुत्रके मनमें इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार निश्चय ही मैं इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती विजयमें, पुण्डरीकिणी राजधानीमें महापद्म नामक राजा था। फिर मैंने स्थविर मुनिके निकट मुंडित होकर यावत् चौदह पूर्वोका अध्ययन करके, बहुत वर्षो तक श्रमण पर्याय (चारित्र) का पालन करके, अन्तमें एक मासकी संलेखना करके महाशुक्र कल्पमें देव रूपसे जन्म लिया। तत्पश्चात् आयु का क्षय होने पर मैं उस देवलोकसे (च्यवन करके) यहां तेतलिपुरमें तेतलि अमात्य की भद्रा नामक भार्याके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। तो मेरे लिए, पहले स्वीकार किये हुए महाव्रतों को स्वयं ही अंगीकार करके विचरना श्रेयस्कर है।' ऐसा तेतलिपुत्रने विचार किया। विचार करके स्वयं ही महाव्रतोंको अंगीकार करके जिधर प्रमदवन उद्यान था, उधर आया। आकर श्रेष्ठ अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर सुखपूर्वक बैठे हुए और विचारणा करते हुए उसे पहले अध्ययन किये हुए चौदह पूर्व स्वयं ही स्मरण हो आये।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अनगार ने शुभ परिणामसे यावत् तदावरणीय-ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय आदि कर्मोंके क्षयोपशमसे, कर्म-रजका नाश करने वाले अपूर्व करणमें प्रवेश किया अर्थात् क्षपक श्रेणी प्रारम्भ की और चार घातिकर्मोंका क्षय किया, और उत्तम केवलज्ञान तथा केवलदर्शन उत्पन्न हुए ॥१०९॥

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र नगरके निकट रहे हुए वाणव्यन्तर देवों और देवियों ने देवदुंदुभियां बजाई। पांच वर्णोके फूलोंकी और दिव्य गीत-गंधर्वका निनाद

किया अर्थात् केवलज्ञान संबंधी महोत्सव मनाया। तत्पश्चात् कनकध्वज राजा इस कथा का अर्थ जानता हुआ अर्थात् यह वृत्तान्त जानकर (मन ही मन बोला—) 'निस्सन्देह मेरे द्वारा अपमानित होकर तेतलिपुत्रने मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की है। अतएव मैं जाऊं और तेतलिपुत्र अनगार को वंदना करूं, नमस्कार करूं और वन्दना नमस्कार करके इस वातके लिए विनयपूर्वक वार-वार खमाऊं।' कनकध्वजने ऐसा विचार किया। विचार करके स्नान किया। फिर चतुरंगिणी सेनाके साथ जहां प्रमद वन उद्यान था और जहां तेतलिपुत्र अनगार थे, वहां पहुंचा। पहुंच कर तेतलिपुत्र अनगारको वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस वातके लिए विनयके साथ पुनः पुनः क्षमायाचना की। न अधिक दूर और न अधिक समीप—यथायोग्य स्थान पर बैठ कर वह उपासना करने लगा।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अनगारने कनकध्वज राजाको और उपस्थित महती परिषद्को धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् कनकध्वज राजाने तेतलिपुत्र केवली से धर्म सुनकर और उसे हृदयमें धारण करके पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप वारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया।···करके वह यावत् जीव-अजीव आदि तत्वोंका ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया। तत्पश्चात् तेतलिपुत्र केवली वहुत वर्षों तक केवली-अवस्थामें रह कर यावत् सिद्ध हुए। श्री सुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं--हे जम्वू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीरने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा ही कहा ॥११०॥

उपनय

प्राणी जव तक किसी प्रकारके दुःखके शिकार नहीं होते या किसी कारण से उनके मान—सन्मान को ठेस नहीं लगती, तव तक वे तेतलिपुत्रके समान वार-वार प्रतिवोध पा करके भी धर्मकी शरण ग्रहण नहीं करते।

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ नन्दीफल-अध्ययन

श्रीजम्वू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने चौदहवें ज्ञात-अध्ययनका यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययनका श्रमण भगवान् महावीरने क्या अर्थ कहा है?' श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्वू ! उस काल और उस समय चम्पा नामक नगरी थी। उसके वाहर पूर्णभद्र नामक उद्यान था। जितशत्रु नामक राजा था। उस चम्पा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो सम्पन्न था यावत् किसीसे पराभूत होने वाला नहीं था। उस चम्पा नगरीसे उत्तर-पूर्व दिशामें

अहिच्छत्रा नामक नगरी थी। वह भवनों आदिसे युक्त तथा समृद्धिसे परिपूर्ण थी। यहां नगरीका वर्णन कह लेना चाहिए। उस अहिच्छत्रा नगरीमें कनककेतु नामक राजा था। वह महा हिमवन्त पर्वतके समान आदि विशेषणोंसे युक्त था। यहां राजा का वर्णन कहना चाहिए।

अन्यदा कदाचित् धन्य सार्थवाहके मनमें मध्य रात्रिके समय इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तित (मनमें स्थित), प्रार्थित (मनको इष्ट), मनोगत (मन में ही गुप्त रहा हुआ), संकल्प (विचार) उत्पन्न हुआ—'विपुल घी तेल गुड़ खांड आदि माल लेकर मुझे अहिच्छत्रा नगरीमें व्यापार करनेके लिए जाना श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर बेचने योग्य), मेय (पायली आदिसे माप कर बेचने योग्य—अन्न आदि और पारिच्छेद्य (काट-काट कर बेचने योग्य वस्त्र वगैरह) मालको ग्रहण किया, ग्रहण करके गाड़ी-गाड़े तैयार किये। तैयार करके गाड़ी-गाड़े भरे। भर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो! तुम जाओ। चम्पा नगरीके शृङ्गाटक यावत् सब मार्गों में घोषणा कर दो कि 'हे देवानुप्रियो! धन्य सार्थवाह विपुल माल भर कर अहिच्छत्र नगर में वाणिज्य के निमित्त जानेकी इच्छा करता है। अतएव हे देवानुप्रियो! जो भी चरक (चरक मत का भिक्षुक), चीरिक (गली में पड़े चीथड़ों को पहनने वाला), चर्मखंडिक (चमड़े का टुकड़ा पहनने वाला), भिक्षांड (बौद्ध-भिक्षुक), पांडुरक (शैवमतावलम्बी भिक्षाचर), गोतम (बैल को विचित्र प्रकारकी करामात सिखा कर उससे आजीविका चलाने वाला), गोव्रती (जब गाय खाय तो आप खाय, गाय पानी पीए तो आप पानी पिए, गाय सोए तो आप सोए, गाय चले तो आप चले, इस प्रकार के व्रत का आचरण करने वाला), गृहिधर्मा (गृहस्थधर्म को श्रेष्ठ मानने वाला), गृहस्थधर्मका चिन्तन करने वाला, अविरुद्ध (विनयवान्), विरुद्ध (अक्रियावादी—नास्तिक आदि), वृद्ध--तापस, श्रावक-ब्राह्मण, अथवा वृद्धश्रावक अर्थात् ब्राह्मण, रक्तपट (परिव्राजक), निर्ग्रन्थ (साधु) आदि व्रतवान् या गृहस्थ जो भी कोई-धन्य सार्थवाहके साथ अहिच्छत्रा नगरीमें जाना चाहे, उसे धन्य सार्थवाह अपने साथ ले जायगा। जिसके पास छतरी न होगी उसे छतरी दिलाएगा, वह बिना जूते वालेको जूते दिलाएगा, जिसके पास कमंडलु नहीं होगा, उसे कमंडलु दिलाएगा, जिसके पास पथ्यदन (मार्ग में खाने के लिए भोजन) न होगा उसे पथ्यदन दिलाएगा, जिसके पास प्रक्षेप (चलते-चलते पथ्यदन समाप्त हो जाने पर रास्ते में पथ्यदन खरीदने के लिए आवश्यक धन) न होगा, उसे प्रक्षेप दिलाएगा, जो पड़ जायगा, भग्न हो जायगा या रुग्ण हो जायगा, उसकी सहायता

करेगा और सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचाएगा।' दो वार और तीन वार ऐसी घोषणा कर दो। घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ।'

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् इस प्रकार घोषणा की–हे चम्पा नगरी के निवासी भगवंतो! चरक आदि! सुनो............यावत् घोषणा करके उन्होंने धन्य सार्थवाह की आज्ञा उसे वापिस सौंपी।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषोंकी घोषणा सुन कर चम्पा नगरीके वहुतसे चरक यावत् गृहस्थ धन्य सार्थवाहके समीप पहुंचे। तत्पश्चात् उन चरक यावत् गृहस्थों में से जिनके पास जूते नहीं थे, उन्हें धन्य सार्थवाह ने जूते दिलवाये, यावत् पथ्यदन दिलवाया। फिर उनसे कहा–'देवानुप्रियो! तुम जाओ और चम्पा नगरीके वाहर प्रधान उद्यानमें मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।'

तत्पश्चात् वे चरक यावत् गृहस्थ धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर यावत् प्रधान उद्यान में उसकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने शुभ तिथि करण और नक्षत्र में, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन वनवाया। बनवा कर मित्रों, ज्ञातिजनों आदिको आमंत्रित करके उन्हें भोजन जिमाया। जिमा कर उनसे अनुमति ली। अनुमति लेकर गाड़ी-गाड़े जुतवाये। जुतवा कर चम्पा नगरीसे वाहर निकला। निकल कर वहुत दूर-दूर पर पड़ाव न करता हुआ अर्थात् थोड़ी--थोड़ी दूरी पर मार्ग में वसता--वसता, सुखजनक वसति और प्रातराश (प्रातःकालीन भोजन) करता हुआ अंग देश के वीचोंवीच होकर देश की सीमा पर जा पहुंचा। वहां पहुंच कर गाड़ी-गाड़े खोले। पड़ाव डाला। फिर कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहा–

हे देवानुप्रियो! तुम लोग मेरे साथ के पड़ाव में, ऊंचे ऊंचे शब्द से बार-वार उद्घोषणा करते हुए ऐसा कहो कि हे देवानुप्रियो! आगे आने वाली अटवी में मनुष्यों का आवागमन नहीं होता और वह बहुत लम्बी है। उस अटवी के मध्य भाग में नन्दीफल नामक वृक्ष हैं। वे गहरे हरे (काले) वर्ण वाले, यावत् पत्तों वाले, पुष्पों वाले, फलों वाले, हरे, शोभायमान और सौन्दर्य से अतीव-अतीव शोभित हैं। उनका रूप—रंग मनोज्ञ है यावत् स्पर्श मनोहर है और छाया भी मनोहर है। किन्तु देवानुप्रियो! जो कोई भी मनुष्य उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल वीज या हरित का भक्षण करेगा, अथवा उनकी छाया में भी वैठेगा, उसे आपाततः (थोड़ी सी देर--क्षण भर) तो अच्छा लगेगा, मगर वादमें उसका परिणमन होने पर अकाल में वह मृत्यु को प्राप्त होगा। अतएव देवानुप्रियो! कोई उन नंदीफलोंके मूल आदि का सेवन न करे यावत् उनकी छाया में विश्राम भी न करे, जिससे अकाल में ही जीवन का नाश न हो। देवानु-

प्रियो ! तुम दूसरे वृक्षों के मूल यावत् हरित का भक्षण करना और उनकी छाया में विश्राम लेना। इस प्रकार की आघोषणा कर दो और मेरी आज्ञा वापिस लौटा दो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञानुसार घोषणा करके आज्ञा वापिस लौटा दी।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने गाड़ी-गाड़े जुतवाए। जुतवाकर जहां नंदीफल नामक वृक्ष थे, वहां आ पहुंचा। उन नंदीफल वृक्षों से न बहुत दूर न समीप में पड़ाव डाला। फिर दूसरी वार और तीसरी वार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे पड़ाव में ऊंची-ऊंची ध्वनि से पुनः पुनः घोषणा करते हुए कहो, कि हे देवानुप्रियो ! वे नंदीफल वृक्ष ये हैं, जो कृष्ण वर्ण वाले, मनोज्ञ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले और मनोहर छाया वाले हैं। अतएव देवानुप्रियो ! इन नंदीफल वृक्षों के मूल, कंद, पुष्प, त्वचा, पत्र या फल आदिका सेवन मत करना; क्योंकि ये यावत् अकाल में ही जीवन से रहित कर देते हैं। अतएव कहीं ऐसा न हो कि इनका सेवन करके जीवन का नाश कर लो। इनसे दूर ही रह कर विश्राम करना, जिससे ये जीवन का नाश न करें। हां, दूसरे वृक्षों के मूल आदि का भले सेवन करना और उनकी छाया में विश्राम करना।' कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापिस सौंपी।

उनमें से किन्हीं पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस वात पर श्रद्धा की, यावत् रुचि की। वे इस वात पर श्रद्धा करते हुए, उन नन्दीफलों का दूर ही दूर से त्याग करते हुए, दूसरे वृक्षों के मूल आदि का सेवन करते थे और उन्हीं की छाया में विश्राम करते थे। उन्हें तात्कालिक भद्र (सुख) तो प्राप्त न हुआ, किन्तु उसके पश्चात् ज्यों-ज्यों उनका परिणमन होता चला, त्यों-त्यों वे वार-वार सुख रूप ही परिणत होते चले गये।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् पांच इन्द्रियों के कामभोगों में आसक्त नहीं होता और अनुरक्त नहीं होता, वह इसी भव में बहुत—से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होता है और परलोक में दुःख नहीं पाता यावत् अनुक्रम से संसारकान्तार को पार कर जाता है। उनमें से कितनेक पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस वात पर श्रद्धा नहीं की, रुचि नहीं की; वे धन्य सार्थवाह की वात पर श्रद्धा न करते हुए जहां नन्दीफल वृक्ष थे, वहां आये। आकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षोंके मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया में विश्राम किया। उन्हें तात्कालिक सुख प्राप्त हुआ, किन्तु वादमें उनका परिणमन होने पर यावत् जीवनसे मुक्त होना पड़ा।

इसी प्रकार आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर पांच इन्द्रियों के विषय भोगों में आसक्त होता है, वह उन पुरुषों की भांति यावत्

चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण करता है। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाहने गाड़ी-गाड़े जुतवाये। जुतवा कर वह जहां अहिच्छत्रा नगरी थी, वहां पहुँचा। पहुँच कर अहिच्छत्रा नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में पड़ाव डाला और गाड़ी—गाड़े खुलवा दिये।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने महामूल्यवान् और राजा के योग्य उपहार लिया और बहुत पुरुषों के साथ, उनसे परिवृत होकर अहिच्छत्रा नगरी में मध्य-भाग में होकर प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास गया। वहां जाकर, दोनों हाथ जोड़ कर यावत् राजाका अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करने के पश्चात् वह बहुमूल्य उपहार उसके समीप रख दिया।

तत्पश्चात् राजा कनककेतु हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसने धन्य सार्थवाह के उस मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया। स्वीकार करके धन्य सार्थवाह का सत्कार-सम्मान किया। सत्कार—सम्मान करके शुल्क (जकात) माफ कर दिया और उसे विदा किया। फिर धन्य सार्थवाह ने अपने भाण्ड (माल) का विनिमय किया। विनिमय करके अपने माल के बदले में दूसरा माल लिया। फिर सुखपूर्वक चम्पा नगरी में आ पहुँचा। आकर अपने मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि से मिला और मनुष्य संबंधी विपुल भोगोपभोग भोगता हुआ रहने लगा।

उस काल और उस समय में स्थविर भगवन्त का आगमन हुआ। धन्य सार्थवाह उन्हें वन्दना करने के लिए निकला। धर्मदेशना सुनकर और ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुम्बमें स्थापित करके (कुटुम्ब का प्रधान बनाकर) दीक्षित हो गया। सामायिकसे लेकर ग्यारह अंगोंका अध्ययन करके और बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके, एक मासकी संलेखना करके, साठ भक्तका अनशन करके किसी एक देवलोकमें देव रूपसे उत्पन्न हुआ। वह देव उस देवलोकसे आयुका क्षय होने पर च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म-मरणका अन्त करेगा। इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीरने पन्द्रहवें ज्ञात—अध्ययनका यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है। जैसे मैंने सुना, वैसै कहा है ॥१११॥

उपनय

चम्पा नगरी के समान यह मनुष्यगति है। धन्य सार्थवाहके समान परम-कारुणिक तीर्थङ्कर भगवान् हैं। घोषणाके समान प्रभुकी देशना है। अहिच्छत्रा नगरीके समान मुक्ति है। चरक आदिके समान मुमुक्षु जीव हैं। शिवपथगामियों के लिए इन्द्रियोंके विषयभोग नन्दीफल हैं, जो तात्कालिक सुख प्रदान करते हैं परन्तु परिणाम उनका मृत्यु है—विषयभोगोंके सेवनसे पुनः पुनः जन्म—मरण करना पड़ता है। जैसे नन्दीफलों से दूर रहनेसे सार्थके लोग सकुशल अहिच्छत्रा

नगरी में जा पहुंचे, उसी प्रकार विषयोंसे दूर रहने वाले मुमुक्षु परमानन्दधाम-मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

सोलहवाँ अमरकंका अध्ययन

श्री जम्बू स्वामीने श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने पन्द्रहवें ज्ञात—अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो सोलहवें अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीरने क्या अर्थ कहा है ?' श्री सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—'हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरीसे बाहर उत्तरपूर्व (ईशान) दिशाभाग में सुभूमिभाग नामक उद्यान था। उस चम्पा नगरी में तीन ब्राह्मणबन्धु निवास करते थे। वे इस प्रकार—सोम, सोमदत्त और सोमभूति। वे धनाढ्य थे यावत् ऋग्वेद आदि ब्राह्मणशास्त्रों में यावत् अत्यन्त प्रवीण थे। उन तीन ब्राह्मणों की तीन पत्नियां थीं। वे इस प्रकार—नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री। वे सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवों वाली यावत् उन ब्राह्मणों की इष्ट थीं। वे मनुष्य सम्बन्धी विपुल यावत् कामभोग भोगती हुई रहती थीं।

तत्पश्चात् किसी समय एक बार एक साथ मिले हुए उन तीनों ब्राह्मणों में इस प्रकार का कथासमुल्लाप(वार्त्तालाप)उत्पन्न हुआ—'हे देवानुप्रियो ! हमारे पास प्रभूत धन यावत् स्वापतेय-स्वर्ण आदि विद्यमान है। सात पीढ़ियों तक खूब दिया जाय, खूब भोगा जाय, और खूब बांटा जाय तो भी पर्याप्त है। अतएव देवानुप्रियो ! हम लोगों का एक-दूसरेके घरों में, प्रतिदिन, बारी--बारी से, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम-यह चार प्रकार का आहार बनवा-बनवा कर एक साथ बैठ कर भोजन करना अच्छा रहेगा।' तीनों ब्राह्मणबन्धुओं ने आपस की यह बात स्वीकार की। वे प्रतिदिन एक-दूसरे के घरों में प्रचुर अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाने लगे और बनवा कर साथ-साथ भोजन करने लगे।

तत्पश्चात् एक बार नागश्री ब्राह्मणी के यहां भोजन की बारी आई। तब नागश्री ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाया। भोजन बना कर एक बड़ा-सा शरद् ऋतु संबंधी अथवा सार (रस) युक्त तूंबा (तूंबेका शाक) बहुत-से मसाले डाल कर और तेलसे व्याप्त (छौंक) कर तैयार किया। उस शाकमें से एक बूंद अपनी हथेली में लेकर चखा तो मालूम हुआ कि यह खारा, कड़वा, अखाद्य और विष जैसा है। यह जानकर वह मन ही मन कहने लगी-'मुझ अधन्या, पुण्यहीना, अभागिनी, भाग्यहीन सत्त्व वाली और निबोलीके समान

अनादरणीय नागश्री को धिक्कार है, जो मैंने शरद्ऋतु संबंधी या रसदार तूंबा बहुत-से मसालोंसे युक्त और तेलसे छौंका हुआ तैयार किया। इसके लिए बहुत-सा द्रव्य बिगाड़ा और तेल का भी सत्यानाश किया।

सो यदि मेरी देवरानियां यह वृत्तान्त जानेंगी तो मेरी निन्दा करेंगी। अतएव जब तक मेरी देवरानियां न जान पाएं तब तक मेरे लिए यही उचित होगा कि इस शरद्ऋतु संबंधी, बहुत मसालेदार और स्नेह (तेल) से युक्त कटुक तूंबे को किसी स्थान पर छिपा दिया जाय। और दूसरा शरद्ऋतु संबंधी या सारयुक्त मीठा तूंबा यावत् बहुत-से तेल से छौंक कर तैयार किया जाय।' नागश्री ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके उस कटुक शरद्ऋतु संबंधी तूंबे को यावत् छिपा दिया और मीठा तूंबा तैयार किया।

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण स्नान करके यावत् सुखासन पर बैठे। उन्हें वह प्रचुर अशन, पान, खादिम और स्वादिम परोसा गया। तत्पश्चात् वे ब्राह्मण भोजन कर चुकने के पश्चात् आचमन करके स्वच्छ होकर और परम शुचि होकर अपने-अपने काम में संलग्न हो गये। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणियों ने स्नान किया यावत् शृङ्गार किया। फिर वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार जीमा। जीम कर वे अपने-अपने घर चली गई। जाकर वे भी अपने-अपने काम में लग गई ॥११२॥

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर यावत् बहुत बड़े परिवार के साथ चम्पा नामक नगरी के सुभूमिभाग उद्यान में पधारे। पधार कर साधु के योग्य उपाश्रय की याचना करके यावत् विचरने लगे। उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुन कर परिषद् वापिस चली गई।

उन धर्मघोष स्थविर के शिष्य धर्मरुचि नामक अनगार थे। वे उदार-प्रधान यावत् तेजोलेश्या से सम्पन्न थे और मास-मास का तप करते हुए विचरते थे। तत्पश्चात् उन धर्मरुचि अनगार के मासक्षपण के पारणे का दिन आया। उन्होंने पहली पौरुषी में स्वाध्याय किया, दूसरी में ध्यान किया। इत्यादि सब वृत्तान्त गौतम स्वामी के समान कहना चाहिए कि तीसरे प्रहर में पात्रों का प्रतिलेखन करके उन्हें ग्रहण किया। ग्रहण करके धर्मघोष स्थविर से आज्ञा प्राप्त की। यावत् वे चम्पा नगरी में उच्च, नीच और मध्यम कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए नागश्री ब्राह्मणी के घर में प्रविष्ट हुए।

तत्पश्चात् नागश्री···ने धर्मरुचि अनगार को आते देखा। देखकर वह उस शरद ऋतु संबंधी, बहुत से मसालों वाले और तेल से युक्त तूंबे के शाक को निकाल देने के लिए हृष्ट-तुष्ट हुई और खड़ी हुई। खड़ी होकर भोजनगृह में

गई। वहां जाकर उसने वह शरद्ऋतु संबंधी तिक्त और कड़वा बहुत तेल वाला सब का सब शाक धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

तत्पश्चात् धर्मरुचि अनगार 'आहार पर्याप्त है' ऐसा जानकर नागश्री० के घर से बाहर निकले। निकलकर चम्पा नगरी के बीचोंबीच होकर सुभूमिभाग उद्यान में आये। आकर उन्होंने धर्मघोष स्थविर के समीप ईर्यापथ का प्रतिक्रमण करके अन्न-पानीका प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके, हाथ में अन्न-पानी लेकर गुरु को दिखलाया।

तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने उस शरद्ऋतु संबंधी, तेलसे व्याप्त शाक की गंधसे पराभवको प्राप्त होकर, उस शरद्ऋतु संबंधी एवं तेलसे व्याप्त शाकमें से एक बूंद हाथमें लेकर चखा। तब उसे तिक्त, खारा, कड़वा, अखाद्य, अभोज्य और विषके समान जानकर धर्मरुचि अनगारसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! यदि तुम यह शरद्ऋतु संबंधी यावत् तेल वाला तूम्बे का शाक खाओगे तो तुम असमयमें ही जीवसे रहित हो जाओगे, अतएव हे देवानुप्रिय! तुम इस शरद् संबंधी शाकको यावत् मत खाना। ऐसा न हो कि असमय में ही तुम्हारे प्राण चले जाएं। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और यह शरद् संबंधी तूम्बेका शाक एकान्त, आवागमन से रहित, अचित्त भूमि में परठ दो। इसे परठकर दूसरा प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ग्रहण करके उसका आहार करो।'

तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर के ऐसा कहने पर धर्मरुचि अनगार धर्मघोष स्थविर के पास से निकले। निकल कर सुभूमिभाग उद्यानसे न अधिक दूर न अधिक समीप अर्थात् कुछ दूर पर उन्होंने स्थंडिल (भूभाग) की प्रतिलेखना करके उस शरद् संबंधी तूंबेके शाक की एक बून्द ली और उस भूभागमें डाली। तत्पश्चात् उस शरद् संबंधी तिक्त कटुक और तेलसे व्याप्त शाक की गंध से बहुत सी (हजारों) कीड़ियां वहां आ गई। उनमें से जिस कीड़ी ने जैसे ही वह शाक खाया, वैसे ही वह असमयमें ही मृत्युको प्राप्त हुई।

तत्पश्चात् धर्मरुचि अनगारके मनमें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ— यदि इस शरद् संबंधी यावत् शाक का एक बिन्दु डालने पर अनेक कीड़ियां मर गई, तो यदि मैं सबका सब यह शाक भूमि पर डाल दूंगा तो यह बहुत-से प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वोंके वधका कारण होगा। अतएव इस शरद् संबंधी यावत् तेल वाले शाकको स्वयं ही खा जाना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। यह शाक इसी (मेरे) शरीर से ही समाप्त हो जाय--झर जाय। धर्मरुचि अनगार ने ऐसा विचार करके मुख-वस्त्रिका की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके मस्तक सहित ऊपर

के शरीर का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके वह शरद् संवन्धी तूम्वे का तिक्त, कटुक और वहुत तेल से व्याप्त शाक स्वयं ही, विलमें सांप की भांति, अपने शरीर के कोठे में डाल लिया।

उस शरद् संवंधी तूम्वे का यावत् तेल वाला शाक खाने पर धर्मरुचि अनगारके शरीरमें, एक मुहूर्त्तमें (थोड़ी सी देर में) ही वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कृष्ट थी, यावत् दुस्सह थी। शाक पेटमें डाल लेनेके पश्चात् धर्मरुचि अनगार स्थाम (उठने-बैठने की शक्ति) से रहित, बलहीन वीर्य से रहित, तथा पुरुषकार और पराक्रम से हीन हो गये। अव यह शरीर धारण नहीं किया जा सकता, ऐसा जानकर उन्होंने आचारके भाण्ड-पात्र एक जगह रख दिये। उन्हें रख कर स्थंडिल का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का संथारा विछाया और वह उस पर आसीन हो गये। पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंक आसन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'अरिहंतों यावत् सिद्धिगतिको प्राप्त भगवन्तोंको नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक धर्मघोष स्थविरको नमस्कार हो। पहले भी मैंने धर्मघोष स्थविरके पास सम्पूर्ण प्राणातिपातका जीवन पर्यन्तके लिए प्रत्याख्यान किया था, यावत् परिग्रहका भी; इस समय भी मैं उन्हीं भगवंतों के समीप सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं यावत् परिग्रहका प्रत्याख्यान करता हूं, जीवन पर्यन्तके लिए। जैसे स्कंदक मुनि ने किया, उसी प्रकार यहां जानना चाहिए। यावत् अन्तिम श्वासोच्छ्वासके साथ अपने इस शरीर का भी परित्याग करता हूं।' इस प्रकार कह कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिको प्राप्त होकर मृत्युको प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने धर्मरुचि अनगारको चिरकाल से गया जान कर निर्ग्रंथ श्रमणोंको बुलाया। बुला कर उनसे कहा—'हे देवानुप्रियो! धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में शरद् संबंधी यावत् तेल वाला कटुक तूम्वे का शाक मिला था। उसे परठनेके लिए वे बाहर गये थे। वहुत समय हो चुका है। अतएव हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और धर्मरुचि अनगार की सव ओर मार्गणा-गवेषणा (तलाश) करो।'

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थों ने अपने गुरुका आदेश अंगीकार किया। अंगीकार करके वे धर्मघोष स्थविरके पाससे वाहर निकले। वाहर निकल कर सव ओर धर्मरुचि अनगारकी मार्गणा-गवेषणा करते हुए जहां स्थंडिल भूमि थी, वहां आये। आकर देखा-धर्मरुचि अनगारका शरीर निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव पड़ा है! उसे देख कर उनके मुख से सहसा निकल पड़ा—'हा हा! अहो! यह अकार्य हुआ—वुरा हुआ!' इस प्रकार कहकर उन्होंने धर्मरुचि अनगार के काल धर्मके निमित्त

कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके धर्मरुचि अनगारके आचार भांडक (पात्र) ग्रहण किये और जहां धर्मघोष नामक स्थविर थे, वहां पहुँचे। पहुंच कर गमनागमनका प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण करके बोले—

'आपका आदेश पा करके हम आपके पाससे निकले थे। निकल कर सुभूमिभाग उद्यान के चारों तरफ धर्मरुचि अनगार की यावत् सब प्रकार मार्गणा-गवेषणा करते हुए स्थंडिल भूमि में गये। जाकर यावत् जल्दी ही यहां लौट आये हैं। सो हे भगवन्! धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। यह उनके आचार भांड हैं। (इस प्रकार कहकर पात्र आदि उपकरण गुरु महाराज के सामने रख दिये।)

तत्पश्चात् स्थविर धर्मघोष ने पूर्व दिशा में उपयोग लगाया। उपयोग लगा कर श्रमण निर्ग्रन्थों को और निर्ग्रन्थियों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा-'हे आर्यो! इस प्रकार मेरा अन्तेवासी धर्मरुचि नामक अनगार स्वभाव से भद्र यावत् विनीत था। वह मासखमण की तपस्या कर रहा था। यावत् वह नागश्री० के घर पारणक के लिए गया। तब नागश्री० ने उसके पात्र में यावत् सब का सब कटुक विष-सदृश तूंबे का शाक उंडेल दिया। तब धर्मरुचि अनगार अपने लिए पर्याप्त आहार जान कर यावत् काल की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगे। (अर्थात् स्थविर ने पिछला समग्र वृत्तान्त अपने शिष्यों को सुना दिया।)

धर्मरुचि अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पाल कर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि में लीन होकर काल-मास में काल करके, उपर सौधर्म आदि देवलोकों को लांघ कर, यावत् सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान में देवरूप से उत्पन्न हुए हैं। वहां जघन्य-उत्कृष्ट भेद से रहित-एक ही समान तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। वह धर्मरुचि देव उस सर्वार्थसिद्ध देवलोक से च्युत होकर यावत् महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

तो हे आर्यो! उस अधन्य, अपुण्य यावत् निंबोली के समान कटुक नागश्री··· को धिक्कार है, जिसने उस प्रकार के साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में शरद् संबंधी यावत् तेल से व्याप्त कटुक तूंबे का शाक देकर असमय में ही मार डाला' ॥११३॥

तत्पश्चात् उन निर्ग्रन्थ श्रमणों ने, धर्मघोष स्थविर के पास से यह वृत्तान्त सुन कर और समझ कर चम्पा नगरी के शृङ्गाटक, त्रिक आदि मार्गों में जाकर यावत् बहुत लोगों से इस प्रकार कहा-'धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी यावत् निंबोली के समान कटुक को! जिसने उस प्रकार के साधु और साधु रूप धारी

मासखमण का तप करने वाले धर्मरुचि नामक अनगार को शरद् संबंधी यावत् विष सदृश कटुक शाक देकर मार डाला!' तब उन श्रमणों से इस वृत्तान्त को सुन कर और समझ कर बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहने और बातचीत करने लगे—'धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी को, यावत् जिसने मुनि को मार डाला।'

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण, चम्पा नगरी में, बहुत-से लोगों से यह वृत्तान्त सुनकर और समझ कर कुपित हुए यावत् क्रोध से मिसमिसाने (जलने) लगे। वे वहीं जा पहुंचे जहां नागश्री थी। उन्होंने वहां जाकर नागश्री से इस प्रकार कहा—'अरी नागश्री! अप्रार्थित (मरण) की प्रार्थना करने वाली! दुष्ट और अशुभ लक्षणों वाली! निकृष्ट कृष्ण चतुर्दशी में जन्मी हुई! तुझ अधन्य, अपुण्य यावत् निंबोली के समान कटुक को धिक्कार है; जिसने तथारूप साधु और साधु रूप धारी को मासखमण के पारणक में शरद् संबंधी यावत् शाक बहरा कर मार डाला!'

इस प्रकार कह कर उन ब्राह्मणों ने ऊंचे-नीचे आक्रोश वचन कह कर आक्रोश किया अर्थात् गालियां दीं, ऊंचे-नीचे उद्धंसना (तू नीच कुल की है, आदि) वचन कह कर उद्धंसना की, ऊंचे-नीचे भर्त्सना (निकल जा हमारे घर से, आदि) वचन कह कर भर्त्सना की, तथा ऊंचे-नीचे निश्छोटन (हमारे गहने, कपड़े उतार दे, इत्यादि) वचन कह कर निश्छोटना की, हे पापिनी! तुझे पाप का फल भुगतना पड़ेगा' इत्यादि वचनों से तर्जना की और थप्पड़ आदि मार-मार कर ताड़ना की। इस प्रकार तर्जना और ताड़ना करके उसे घर से निकाल दिया।

तत्पश्चात् वह नागश्री अपने घर से निकाली हुई चंपा नगरी में, शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार के मार्ग) में, त्रिक (तीन रास्ते जहां मिलते हों ऐसे मार्ग) में, चतुष्क (चौक) में, चत्वर (चबूतरे) तथा चतुर्मुख (चार द्वार वाले देवकुल आदि) में, बहुत जनों द्वारा अवहेलना की पात्र होती हुई, कुत्सा (बुराई) की जाती हुई, निन्दा और गर्हा की जाती हुई, उंगली दिखा दिखा कर तर्जना की जाती हुई, डंडों आदि की मार से व्यथित की जाती हुई, धिक्कारी जाती हुई तथा थूकी जाती हुई न कहीं भी ठिकाना पा सकी और न कहीं रहने की जगह पा सकी। टुकड़े-टुकड़े सांधे हुए वस्त्र पहने, भोजन के लिए सिकोरे का टुकड़ा लिये, पानी पीने के लिए घड़े का टुकड़ा हाथ में लिये, मस्तक पर अत्यन्त बिखरे बालों को धारण किये, जिसके पीछे मक्खियों के झुंड भिनभिना रहे थे ऐसी वह नागश्री

घर-घर देहवलि (अपने-अपने घरों पर फेंकी हुई रोटी आदि) के द्वारा अपनी जीविका चलाती हुई भटकने लगी।

तत्पश्चात् उस नागश्री ब्राह्मणी को उसी भव में सोलह रोगातंक उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार—श्वास, कास, योनिशूल यावत् कोढ़*। तत्पश्चात् नागश्री ब्राह्मणी सोलह रोगातंकोंसे पीड़ित होकर, अतीव दुःखके वशीभूत होकर, कालमासमें काल करके, छठी पृथ्वी (नरकभूमि) में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् नरक से सीधी निकल कर वह नागश्री मत्स्य योनिमें उत्पन्न हुई। वहां उसका शस्त्रसे वध किया गया। अतएव दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल करके, नीचे सातवीं पृथ्वी (नरकभूमि) में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

तत्पश्चात् नागश्री सातवीं पृथ्वीसे निकल कर सीधी दूसरी बार मत्स्ययोनिमें उत्पन्न हुई। वहां भी उसका शस्त्र से वध किया गया और दाह की उत्पत्ति होने से मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः नीचे सातवीं पृथ्वी में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की आयु वाले नारकों में उत्पन्न हुई। सातवीं पृथ्वीसे निकलकर तीसरी बार भी मत्स्य-योनिमें उत्पन्न हुई। वहां भी उसका शस्त्र से वध किया गया। यावत् काल करके दूसरी बार छठी पृथ्वी में बाईस सागरोपमकी उत्कृष्ट आयु वाले नारकोंमें नारक रूपसे उत्पन्न हुई।

वहां से निकल कर उरगयोनि में उत्पन्न हुई, इस प्रकार जैसे गोशालकके विषय में कहा है, वही सब वृत्तान्त समझना चाहिए, यावत् रत्नप्रभा आदि सातों नरकभूमियोंमें उत्पन्न हुई। वहां से निकलकर यावत् ये जो खेचर की योनियां हैं, उनमें उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् खर (कठिन) बादर पृथ्वीकाय के रूप में अनेक लाख बार उत्पन्न हुई ॥११४॥

तत्पश्चात् वह पृथ्वीकाय से निकल कर इसी जम्बूद्वीप में, भारत वर्ष में, चम्पा नगरी में, सागरदत्त सार्थवाह की भद्रा भार्या की कूंख में बालिका के रूपमें उत्पन्न हुई। तब भद्रा सार्थवाही ने नौ मास पूर्ण होने पर बालिका का प्रसव किया। वह बालिका हाथीके तालुके समान अत्यन्त सुकुमार और कोमल थी। उस बालिका के बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता—पिता ने उसका यह गुण वाला और गुण से बना हुआ नाम रक्खा—'क्योंकि हमारी यह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त कोमल है, अतएव हमारी इस पुत्री का नाम सुकुमालिका रहे।' तब उस बालिका के माता-पिता ने उसका 'सुकुमालिका' ऐसा नाम रख दिया।

---

*देखो नन्दन मणियार अध्ययन।

तदनन्तर सुकुमालिका बालिकाको पांच धायों ने ग्रहण किया अर्थात् पांच धायें उसका पालन-पोषण करने लगीं। वे इस प्रकार थीं—(१) दूध पिलाने वाली धाय (२) स्नान कराने वाली० (३) आभूषण पहनाने वाली० (४) गोदमें लेने वाली० और (५) खिलाने वाली०। यावत् पर्वतकी गुफामें रही हुई चंपकलता जैसे वायुविहीन प्रदेशमें व्याघात रहित बढ़ती है, उसी प्रकार वह भी बढ़ने लगी। तत्पश्चात् सुकुमालिका बाल्यावस्थासे मुक्त हुई, यावत् रूपसे यौवनसे और लावण्यसे उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई ॥११५॥

चम्पा नगरी में जिनदत्त नामक एक धनिक सार्थवाह निवास करता था। उस जिनदत्त की भद्रा नामक पत्नी थी। वह सुकुमारी थी, जिनदास को प्रिय थी यावत् मनुष्य संबंधी कामभोगों का आस्वादन करती हुई रहती थी। उस जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र और भद्रा भार्या का उदरजात सागर नामक लड़का था। वह भी सुकुमार यावत् सुन्दर रूप से सम्पन्न था। तत्पश्चात् एक बार किसी समय जिनदत्त सार्थवाह अपने घर से निकला। निकल कर सागरदत्त के घर के कुछ पास से जा रहा था। इधर सुकुमालिका लड़की नहा—धोकर, दासियों के समूह से घिरी हुई, भवनके ऊपर छत पर सुवर्णकी गेंदसे क्रीड़ा करती हुई विचर रही थी।

तब जिनदत्त सार्थवाहने सुकुमालिका लड़कीको देखा। देखकर सुकुमालिका लड़की के रूप पर, यौवन और लावण्य पर उसे आश्चर्य हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला कर पूछा—'देवानुप्रियो! वह किसकी लड़की है? उसका नाम क्या है?' जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर इस प्रकार उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका नामक लड़की है। सुकुमार हाथ—पैर आदि अवयवों वाली यावत् उत्कृष्ट है।'

जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुम्बिक पुरुषों के पास से इस अर्थ को सुन कर अपने घर चला गया। फिर नहा—धोकर तथा मित्रजनों एवं ज्ञातिजनोंसे परिवृत्त होकर चम्पा नगरी के मध्यभाग में होकर वहां आया जहां सागरदत्त का घर था। तब सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह को आता देखा। आता देख कर वह आसन से उठ खड़ा हुआ। उठ कर उसने जिनदत्त को आसन ग्रहण करने के लिए निमंत्रित किया। निमंत्रित करके विश्रान्त एवं विश्वस्त हुए तथा सुखद आसन पर आसीन हुए जिनदत्त से पूछा—'कहिए देवानुप्रिय! आपके आगमन का क्या प्रयोजन है?'

तब जिनदत्त सार्थवाह ने सागरदत्त सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय! मैं आपकी पुत्री, भद्रा सार्थवाही की आत्मजा सुकुमालिका की सागरदत्त की पत्नी के रूप में मंगनी करता हूं। देवानुप्रिय! अगर आप यह युक्त समझें, पात्र समझें,

श्लाघनीय समझें और यह समझें कि यह संयोग समान है, तो सुकुमालिका सागरदत्त को दीजिए। अगर आप यह संयोग इष्ट समझते हैं तो देवानुप्रिय ! सुकुमालिका के लिए क्या शुल्क देवें ?'

तत्पश्चात् सागरदत्त ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! सुकुमालिका पुत्री हमारी इकलौती सन्तति है, एक ही उत्पन्न हुई है, हमें प्रिय है। उसका नाम सुनने से भी हमें हर्ष होता है तो देखने की तो बात ही क्या है ? अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं क्षण भर के लिए भी सुकुमालिका का वियोग नहीं चाहता। देवानुप्रिय ! यदि सागरपुत्र हमारा गृह—जामाता (घर-जमाई) बन जाय तो मैं सागरदारक को सुकुमालिका दे दूं।'

तत्पश्चात् जिनदत्त सार्थवाह, सागरदत्त सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर अपने घर गया। घर जाकर सागर नामक अपने पुत्रको बुलाया और उससे कहा- हे पुत्र ! सागरदत्त सार्थवाहने मुझसे ऐसा कहा है कि 'हे देवानुप्रिय ! सुकुमालिका लड़की मेरी प्रिय है, इत्यादि पूर्वोक्त यहां दोहरा लेना चाहिए। सो यदि सागरपुत्र मेरा गृहजामाता बन जाय तो मैं अपनी लड़की दूं।' जिनदत्त सार्थवाहके ऐसा कहने पर सागरपुत्र मौन रहा। (मौन रह कर अपनी स्वीकृति प्रकट की।)

तत्पश्चात् एक बार किसी समय शुभ तिथि और करण में जिनदत्त सार्थवाह ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाया। तैयार करवा कर मित्रों और ज्ञातिजनों को आमंत्रित किया, यावत् जिमाने के पश्चात् सम्मानित किया। फिर सागरपुत्र को नहला-धुला कर यावत् सब अलंकारों से विभूषित किया। पुरुषसहस्रवाहिनी पालकी पर आरूढ़ किया। आरूढ़ करके मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदिसे परिवृत होकर यावत् पूरे ठाठके साथ अपने घरसे निकला। निकल कर चम्पा नगरी के मध्यभाग में होकर जहां सागरदत्त का घर था, वहां पहुँचा। वहां पहुंच कर सागरपुत्र को पालकी से नीचे उतारा। फिर उसे सागरदत्त सार्थवाह के समीप ले गया।

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाहने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन तैयार करवाया। तैयार करवा कर यावत् उनका सन्मान करके सागरपुत्र को सुकुमालिका पुत्रीके साथ पाट पर बिठलाया, बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोनेके कलशों से स्नान करवाया। स्नान करवा कर सागरपुत्रको सुकुमालिका पुत्री का पाणि ग्रहण करवाया। (विवाह की विधि सम्पन्न करवाई) ॥११६॥

उस समय सागरपुत्र सुकुमालिका पुत्री के इस प्रकार के हाथके स्पर्शको ऐसा अनुभव करने लगा, मानों कोई तलवार हो अथवा यावत् मुर्मुर आग हो,

वल्कि इससे भी अधिक अनिष्ट हस्त-स्पर्श का अनुभव करने लगा। किन्तु उस समय वह सागर विना इच्छाके, विवश होकर, उस हस्तस्पर्श का अनुभव करता हुआ मुहूर्त मात्र (थोड़ी देर) बैठा रहा। तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाहने सागरपुत्र के माता-पिता को तथा मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजनसे तथा पुष्प वस्त्र आदिसे यावत् सम्मानित करके विदा किया। तत्पश्चात् सागरपुत्र, सुकुमालिकाके साथ जहां वासगृह (शयनागार) था, वहां आया। आकर सुकुमालिका पुत्रीके साथ शय्या पर सोया।

तत्पश्चात् सागरपुत्रने सुकुमालिका पुत्रीके इस प्रकारके अंगस्पर्शको ऐसा अनुभव किया जैसे कोई तलवार हो, यावत् वह अत्यन्त ही अमनोज्ञ अंगस्पर्श को अनुभव करता रहा। तत्पश्चात् वह सागरपुत्र उस अंगस्पर्शको सहन न कर सकता हुआ विवश होकर मुहूर्त मात्र कुछ समय तक-वहां रहा। तत्पश्चात् वह सागरपुत्र सुकुमालिका दारिका को सुखपूर्वक सोई जान कर उसके पाससे उठा और जहां अपनी शय्या थी, वहां आ गया। आकर अपनी शय्या पर सो गया। तदनन्तर सुकुमालिका पुत्री एक मुहूर्त में—थोड़ी देरमें जाग उठी। वह पतिव्रता थी और पतिमें अनुराग वाली थी, अतएव पति को अपने पासमें न देखती हुई शय्यासे उठ बैठी। उठ कर वहां गई जहां उसके पति की शय्या थी। वहां पहुंच कर वह सागरके पास सो गई।

तत्पश्चात् सागरदारकने दूसरी वार भी सुकुमालिका दारिकाके इस प्रकार के इस अंगस्पर्शको अनुभव किया। यावत् वह विना इच्छाके पराधीन होकर थोड़ी देर तक वहां रहा। तत्पश्चात् सागरदारक, सुकुमालिका दारिकाको सुख-पूर्वक सोई जान कर शय्यासे उठा। उसने अपने वासगृह (शयनागार) का द्वार उघाड़ा। द्वार उघाड़ कर वह मरणसे अथवा मारने वाले पुरुषसे छुटकारा पाये काक की तरह-शीघ्रताके साथ-जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें लौट गया ॥११७॥

तत्पश्चात् सुकुमालिका दारिका थोड़ी देर में जागी। वह पतिव्रता यावत् पतिको अपने पास न देखती हुई शय्यासे उठी। उसने सागरदारक की सब तरफ मार्गणा गवेषणा की। गवेषणा करते-करते शयनागारका द्वार खुला देखा तो कहा—'वह सागर तो चल दिया!' उसके मन का संकल्प मारा गया, अतएव वह चिन्ता करने लगी। तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहीने कल (दूसरे दिन) प्रभात प्रकट होने पर दासचेटी (दासी) को बुलाया और उससे कहा-'हे देवानुप्रिये! तू जा और वधू-वर के लिए मुख-शोधनिका (दातौन-पानी) ले जा।' तत्पश्चात् उस दासचेटीने भद्रा सार्थवाही के इस प्रकार कहने पर, इस अर्थ को 'बहुत अच्छा' कहकर अंगीकार किया। उसने मुखशोधनिका ग्रहण की। ग्रहण करके जहां वासगृह था, वहां

पहुँची। वहां पहुँच कर सुकुमालिका दारिका को चिन्ता करती देख कर पूछा-'देवानुप्रिये! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यों कर रही हो?'

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका दारिका ने दासचेटीसे इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिये! सागरदारक मुझे सुखसे सोया जानकर मेरे पाससे उठा और वासगृह का द्वार उघाड़ कर यावत् वापिस चला गया। तदनन्तर मैं थोड़ी देरमें उठी, यावत् द्वार उघड़ा देखा तो मैंने सोचा—सागर चला गया। इसी कारण भग्नमनोरथ होकर मैं चिन्ता कर रही हूं।' तत्पश्चात् वह दासचेटी सुकुमालिका दारिका के इस अर्थ (वृत्तान्त) को सुनकर वहां गई जहां सागरदत्त था, वहां जाकर उसने सागरदत्त सार्थवाहसे यह वृत्तान्त निवेदन किया। तत्पश्चात् दासचेटीसे यह वृत्तान्त सुन-समझ कर सागरदत्त कुपित होकर जहां जिनदत्त सार्थवाह का घर था, वहां आया। आकर उसने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! क्या यह योग्य है? प्राप्त-उचित है? यह कुलके अनुरूप और कुलके सदृश है, कि सागरदारक, सुकुमालिका दारिका को, जिसका कोई दोष नहीं देखा गया और जो पतिव्रता है, छोड़कर यहां आ गया है? यह कहकर बहुत-सी खेदयुक्त क्रियाएं करके तथा रुदन की चेष्टाएं करके उसने उलहना दिया।

तब जिनदत्त, सागरदत्तके इस अर्थको सुनकर जहां सागरदारक था, वहां आया। आकर सागरदारकसे बोला—'हे पुत्र! तुमने बुरा किया जो सागरदत्त के घरसे यहां एकदम चले आये। अतएव पुत्र! ऐसा होने पर भी अब तुम सागरदत्त के घर चले जाओ।' तब सागरपुत्रने जिनदत्तसे इस प्रकार कहा—हे तात! मुझे पर्वतसे गिरना स्वीकार है, वृक्षसे गिरना स्वीकार है, मरु प्रदेश (रेगिस्तान) में पड़ना स्वीकार है, जलमें डूब जाना, आगमें प्रवेश करना, विष भक्षण करना, अपने शरीर को श्मशानमें या जंगल में छोड़ देना कि जिससे जानवर या प्रेत खा जाएं, गृध्रपृष्ठ मरण (हाथी आदिके मुर्दे में प्रवेश कर जाना कि जिससे गीध आदि खा जाएं), इसी प्रकार दीक्षा ले लेना या परदेशमें चला जाना स्वीकार है, परन्तु निश्चय ही मैं सागरदत्तके घर नहीं जाऊंगा।

उस समय सागरदत्त सार्थवाहने दीवार के पीछेसे सागरपुत्रके इस अर्थको सुन लिया। सुनकर वह ऐसा लज्जित हुआ कि धरती फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊं! वह जिनदत्तके घरसे बाहर निकल आया। निकल कर अपने घर आया। घर आकर सुकुमालिका पुत्री को बुलाया और उसे अपनी गोदमें बिठलाया। फिर उसे इस प्रकार कहा-'हे पुत्री! सागरदारकने तुझे त्याग दिया तो क्या हो गया? अब तुझे मैं ऐसे पुरुषको दूंगा, जिसे तू इष्ट और मनोज्ञ होगी।' इस प्रकार कह कर सुकुमालिका दारिका को इष्ट वाणी द्वारा आश्वासन दिया। आश्वासन देकर उसे विदा कर दिया। तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह किसी समय ऊपर भवन की

छत पर सुखपूर्वक बैठा हुआ वार-वार राजमार्ग को देख रहा था। उस समय सागरदत्तने एक बड़ा भिखारी पुरुष देखा। वह सांधे हुए टुकड़ों का वस्त्र पहने था। उसके हाथमें सिकोरे का टुकड़ा और पानी का घड़ा था। हजारों मक्खियां उसके मार्ग का अनुसरण कर रही थीं--उसके पीछे भिनभिनाती हुई उड़ रही थीं।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा-'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और उस द्रमक पुरुष (भिखारी) को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का लोभ दो। लोभ देकर घर के भीतर लाओ। भीतर लाकर सिकोरे के टुकड़े को और घट के टुकड़े को एक तरफ फैंक दो। फैंक कर अलंकारिक कर्म (हजामत आदि विभूषा) कराओ। फिर स्नान करवा कर, यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित करो। फिर मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन जिमाओ। भोजन जिमा कर मेरे निकट ले आना।'

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके वे उस भिखारी पुरुष के पास गये। जाकर उस भिखारी को अशन, पान, खादिम और स्वादिम का प्रलोभन दिया। प्रलोभन देकर उसे अपने घर में ले आये। लाकर उसके सिकोरे के टुकड़े को तथा घड़े के ठीकरे को एक तरफ डाल दिया। सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा एक जगह डाल देने पर वह भिखारी जोर-जोर से आवाज़ करके रोने-चिल्लाने लगा।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने उस भिखारी पुरुष के ऊंचे स्वर से रोने-चिल्लाने का शब्द सुन कर और समझ कर कौटुम्बिक पुरुषों को कहा-'देवानुप्रियो ! यह भिखारी पुरुष क्यों जोर-जोर से चिल्ला रहा है ?' तब कौटुम्बिक पुरुषों ने इस प्रकार कहा--'स्वामिन् ! उस सिकोरे के टुकड़े और घट के ठीकरे को एक ओर डाल देने पर वह जोर-जोर से चिल्ला रहा है।' तब सागरदत्त सार्थवाह ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से कहा-'देवानुप्रियो ! तुम उस भिखारी के उस सिकोरे के खंड को यावत् एक ओर मत डालो, उसके पास रख दो, जिससे उसे प्रतीति हो।' यह सुन कर उन्होंने उसी प्रकार वे टुकड़े उसके पास रख दिये।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस भिखारी का अलंकारकर्म (हजामत आदि) कराया। फिर शतपाक और सहस्रपाक (सौ या हजार मोहरें खर्च करके या सौ या हजार औषध डालकर बनाये गये) तेल से अभ्यंगन (मर्दन) किया। अभ्यंगन हो जाने पर सुवासित गंधद्रव्य के उवटन से उसके शरीर का उवटन किया। फिर उष्णोदक, गंधोदक और शीतोदक से स्नान कराया। स्नान करवा कर वारीक और सुकोमल गंधकाषाय वस्त्रसे शरीर पोंछा। फिर हंस-लक्षण (श्वेत) वस्त्र पहनाया। वस्त्र पहनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित किया। विपुल

अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन कराया। भोजन के बाद उसे सागरदत्त के समीप ले गये।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने सुकुमालिका दारिका को स्नान करा कर यावत् समस्त अलंकारोंसे अलंकृत करके, उस भिखारी पुरुष से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय! यह मेरी पुत्री मुझे इष्ट है। इसे मैं तुम्हारी भार्या के रूप में देता हूं। तुम इस कल्याणकारिणी के लिए कल्याणकारी होना।' तत्पश्चात् उस द्रमक (भिखारी) पुरुष ने सागरदत्त की बात स्वीकार की। स्वीकार करके सुकुमालिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ और सुकुमालिका दारिका के साथ एक शय्या में सोया।

उस समय उस द्रमक पुरुष ने सुकुमालिका के उस प्रकार के अंगस्पर्श का अनुभव किया। शेष वृत्तान्त सागरदारक के समान समझें यावत् वह शय्या से उठा। उठ कर शयनागार से बाहर निकला। बाहर निकल कर अपना वही सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा ग्रहण करके जिधर से आया था, उधर ही ऐसा चला गया मानों किसी कसाईखाने से मुक्त हुआ हो या मारने वाले पुरुष से छुटकारा पाकर भागा हो! 'वह द्रमक पुरुष चल दिया' यह सोचकर सुकुमालिका भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी॥११८॥

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन प्रभात होने पर दासचेटी को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए; यावत् दासचेटी ने सागरदत्त सार्थवाह को यह अर्थ निवेदन किया। तब सागरदत्त उसी प्रकार संभ्रान्त होकर वासगृह में आया। आकर सुकुमालिका को गोद में बिठलाकर कहने लगा—'हे पुत्री! तू पूर्वकृत यावत् पापकर्मों को भोग रही है। अतएव बेटी! भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता मत कर। पुत्री! तू मेरी भोजनशाला में तैयार हुए विपुल अशन, पान खाद्य और स्वाद्य आहार को—पोट्टिला की तरह कहना चाहिए यावत् श्रमणों आदि को देती हुई रहना।' तब सुकुमालिका दारिका ने यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके भोजनशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार दान देती हुई रहने लगी।

उस काल और उस समय में गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या, जैसे तेतलीज्ञात नामक अध्ययनमें सुव्रता साध्वी के विषयमें कहा है, उसी प्रकार पधारीं। उसी प्रकार उनके संघाड़े ने यावत् सुकुमालिका के घर में प्रवेश किया। उसी प्रकार सुकुमालिका ने यावत् आहार वहरा कर इस प्रकार कहा—'हे आर्याओ! मैं सागर०के लिए अनिष्ट हूं यावत् अमनोज्ञ हूं। सागर०मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहता, यावत् परिभोग भी नहीं चाहता। जिस–जिस को भी मैं दी गई, उसी-

उसी को भी अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ होती हूं। आर्याओ ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हो। इस प्रकार पोट्टिला ने जो कहा था, वह यहां भी जानना चाहिए। यावत् आपने कोई मंत्र-तंत्र आदि प्राप्त किया है, जिससे मैं सागरदारक की इष्ट, कान्त यावत् प्रिय हो जाऊं ?'

आर्याओं ने उसी प्रकार--सुव्रता की आर्याओं के समान–उत्तर दिया। अर्थात् उन्होंने कहा कि ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता, तो फिर उपदेश करने--इष्ट होने का उपाय बताने की तो बात ही दूर रही। तब वह उसी प्रकार (पोट्टिला की भांति) श्राविका हो गई। उसने उसी प्रकार चिन्ता की और उसी प्रकार सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा ली। यावत् वह गोपालिका आर्या के निकट दीक्षित हुई। तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या हो गई। ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

तत्पश्चात् सुकुमालिका आर्या किसी समय एक बार गोपालिका आर्या के पास गई। जाकर उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया।···करके इस प्रकार कहा—हे आर्ये (गुरुणी जी) ! आप की आज्ञा पाकर मैं चंपा नगरी से बाहर, सुभूमिभाग उद्यान से न बहुत दूर और न बहुत समीप के भाग में, बेले-बेले का निरन्तर तप करके, सूर्यके सन्मुख आतापना लेती हुई विचरना चाहती हूं। तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा-'हे आर्ये ! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियां हैं, ईर्यासमिति वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं। अतएव हमको गांव यावत् सन्निवेश से बाहर जाकर बेले-बेले की तपस्या करके विचरना नहीं कल्पता। किन्तु बाड़ से घिरे हुए उपाश्रय के अन्दर ही, संघाटी (वस्त्र) से शरीर को आच्छादित करके या साध्वियों के परिवार के साथ रहकर तथा पृथ्वी पर पद-तल समान रख कर आतापना लेना कल्पता है। तब सुकुमालिका को गोपालिका आर्या की इस बात पर श्रद्धा नहीं हुई, प्रतीति नहीं हुई, रुचि नहीं हुई। वह सुभूमिभाग उद्यान के कुछ समीप में निरंतर बेले-बेले का तप करती हुई यावत् विचरने लगी ।।११६।।

वहां चम्पा नगरी में देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह सुकुमाल थी। अंडक अध्ययन के अनुसार उसका वर्णन समझना चाहिए। एक बार उस ललिता गोष्ठी के पांच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग उद्यान की लक्ष्मी (शोभा) का अनुभव करते हुए विचर रहे थे। उनमें से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोद में बिठलाया, एक ने पीछे से छत्र धारण किया, एक ने उसके मस्तक पर पुष्पों का शेखर रचा, एक उसके पैर (महावर से) रंगने लगा और एक उस पर चामर ढोरने लगा।

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को पांच गोष्ठिक पुरुषों के साथ उदार मनुष्य संबंधी कामभोग भोगते देखा। देख कर उसे इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-'अहा! यह स्त्री पूर्व में आचरण किये हुए शुभ कर्मों का अनुभव कर रही है। सो यदि अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कुछ भी कल्याणकारी फल-विशेष हो, तो मैं भी आगामी भव में इसी प्रकार के कामभोग को भोगती हुई विचरूं।' उसने इस प्रकार निदान किया। निदान करके आतापनाभूमि से वापिस लौटी ॥१२०॥

तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या शरीर-बकुश हो गई, अर्थात् शरीर की शोभा करने में आसक्त हो गई। वह वार-वार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर (छाती) धोती, बगलें धोती तथा गुप्त अंग धोती थी। जिस स्थान पर वह खड़ी होती या कायोत्सर्ग करती, सोती, स्वाध्याय करती, वहां भी पहले ही जमीन पर जल छिड़कती थी और फिर खड़ी होती कायोत्सर्ग करती, सोती या स्वाध्याय करती थी।

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिये! आर्ये! हम निर्ग्रन्थ साध्वियां हैं, ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हैं। हमें शरीरबकुश होना नहीं कल्पता, किन्तु आर्ये! तुम शरीरबकुश हो गई हो, वार-वार हाथ धोती हो, यावत् फिर स्वाध्याय आदि करती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम बकुशचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो।

तब सुकुमालिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस अर्थ (कथन) का आदर नहीं किया, उसे अंगीकार नहीं किया। वरन् अनादर करती हुई और अस्वीकार करती हुई विचरने लगीं। तत्पश्चात् दूसरी आर्याएं सुकुमालिका आर्या की वार-वार अवहेलना करने लगीं, यावत् अनादर करने लगीं और वार-वार इस अर्थ (अनाचार) के लिए रोकने लगीं।

निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा अवहेलना की गई और रोकी गई उस सुकुमालिका-के मन में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ--'जब मैं गृहस्थवास में वसती

थी, तव मैं स्वाधीन थी। जव मैं मुंडित होकर दीक्षित हुई तव मैं पराधीन हो गई। पहले ये श्रमणियां मेरा आदर करती थीं किन्तु अव आदर नहीं करती। अतएव कल प्रभात होने पर गोपालिका के पास से निकल कर, अलग उपाश्रय में जा करके रहना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर गोपालिका आर्याके पाससे निकल गई। निकलकर अलग उपाश्रयमें जाकर रहने लगी।

तत्पश्चात् कोई हटकने--मना करने वाला न होनेसे, रोकने वाला न होने से सुकुमालिका स्वच्छंदवुद्धि होकर वार--वार हाथ धोने लगी यावत् जल छिड़क कर स्थान आदि करने लगी। तिस पर भी वह पार्श्वस्थ अर्थात् शिथिलाचारिणी हो गई। पार्श्वस्थ की तरह विहार करने–रहने लगी। वह अवसन्न हो गई अर्थात् ज्ञान दर्शन और चारित्र के विपयमें आलसी हो गई और आलस्यमय विहार वाली हो गई। कुशीला अर्थात् अनाचार का सेवन करने वाली और कुशीलोंके समान व्यवहार करने वाली हो गई। संसक्ता अर्थात् ऋद्धि, रस और साता रूप गारवों में आसक्त और संसक्तविहारिणी हो गई। इस प्रकार उसने वहुत वर्षों तक साध्वी--पर्याय का पालन किया। अन्त में अर्ध मास की संलेखना करके, अपने अनुचित आचरण की आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना ही काल--मासमें काल करके ईशान कल्प में, किसी विमानमें देवगणिकाके रूपमें उत्पन्न हुई। वहां किन्हीं--किन्हीं देवियों की नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है। सुकुमालिका देवी की भी नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है ॥१२१॥

उस काल और उस समय में, इसी जम्वूद्वीप नामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, पंचाल देश में काम्पिल्यपुर नामक नगर था। उसका वर्णन कहना चाहिए। वहां द्रुपद राजा था। उसका वर्णन कहना चाहिए। द्रुपद राजा की चुलनी नामक पटरानी थी और धृष्टद्युम्न नामक युवराज था। तत्पश्चात् सुकुमालिका देवी उस देवलोक से, आयु का क्षय करके यावत् देवीशरीर का त्याग करके इसी जंवूद्वीपमें, भारत वर्ष में, पंचाल जनपद में, काम्पिल्यपुर नगर में, द्रुपद राजा की चुलनी रानी की कूंख में लड़की के रूप में उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् चुलनी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्री को जन्म दिया।

तत्पश्चात् वारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस वालिका का ऐसा नाम रक्खा गया—क्योंकि यह वालिका द्रुपद राजा की पुत्री है और चुलनी रानी की आत्मजा है, अतः हमारी इस वालिका का नाम द्रौपदी हो। तव उसके माता-पिता ने इस प्रकार का यह गुण वाला एवं गुणनिष्पन्न नाम द्रौपदी रक्खा। तत्पश्चात् पांच धायों द्वारा ग्रहण की हुई वह द्रौपदी दारिका पर्वत की गुफामें स्थित चम्पकलताके समान वायु आदिके व्याघातसे रहित होकर सुखपूर्वक वढ़ने लगी।

वहां चम्पा नगरी में देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह सुकुमाल थी। अंडक अध्ययन के अनुसार उसका वर्णन समझना चाहिए। एक बार उस ललिता गोष्ठी के पांच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग उद्यान की लक्ष्मी (शोभा) का अनुभव करते हुए विचर रहे थे। उनमें से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोद में विठलाया, एक ने पीछे से छत्र धारण किया, एक ने उसके मस्तक पर पुष्पों का शेखर रचा, एक उसके पैर (महावर से) रंगने लगा और एक उस पर चामर ढोरने लगा।

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को पांच गोष्ठिक पुरुषों के साथ उदार मनुष्य संबंधी कामभोग भोगते देखा। देख कर उसे इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-'अहा! यह स्त्री पूर्व में आचरण किये हुए शुभ कर्मों का अनुभव कर रही है। सो यदि अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कुछ भी कल्याणकारी फल-विशेष हो, तो मैं भी आगामी भव में इसी प्रकार के कामभोग को भोगती हुई विचरूं।' उसने इस प्रकार निदान किया। निदान करके आतापनाभूमि से वापिस लौटी ॥१२०॥

तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या शरीर-वकुश हो गई, अर्थात् शरीर की शोभा करने में आसक्त हो गई। वह बार-बार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर (छाती) धोती, बगलें धोती तथा गुप्त अंग धोती थी। जिस स्थान पर वह खड़ी होती या कायोत्सर्ग करती, सोती, स्वाध्याय करती, वहां भी पहले ही जमीन पर जल छिड़कती थी और फिर खड़ी होती कायोत्सर्ग करती, सोती या स्वाध्याय करती थी।

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! आर्ये! हम निर्ग्रन्थ साध्वियां हैं, ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हैं। हमें शरीरवकुश होना नहीं कल्पता, किन्तु आर्ये! तुम शरीरवकुश हो गई हो, बार-बार हाथ धोती हो, यावत् फिर स्वाध्याय आदि करती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम वकुशचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो।

तब सुकुमालिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस अर्थ (कथन) का आदर नहीं किया, उसे अंगीकार नहीं किया। वरन् अनादर करती हुई और अस्वीकार करती हुई विचरने लगीं। तत्पश्चात् दूसरी आर्याएं सुकुमालिका आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगीं, यावत् अनादर करने लगीं और बार-बार इस अर्थ (अनाचार) के लिए रोकने लगीं।

निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा अवहेलना की गई और रोकी गई उस सुकुमालिका-के मन में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ--'जब मैं गृहस्थवास में वसती

थी, तब मैं स्वाधीन थी। जब मैं मुंडित होकर दीक्षित हुई तब मैं पराधीन हो गई। पहले ये श्रमणियां मेरा आदर करती थीं किन्तु अब आदर नहीं करती। अतएव कल प्रभात होने पर गोपालिका के पास से निकल कर, अलग उपाश्रय में जा करके रहना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर गोपालिका आर्याके पाससे निकल गई। निकलकर अलग उपाश्रयमें जाकर रहने लगी।

तत्पश्चात् कोई हटकने--मना करने वाला न होनेसे, रोकने वाला न होने से सुकुमालिका स्वच्छंदबुद्धि होकर बार--बार हाथ धोने लगी यावत् जल छिड़क कर स्थान आदि करने लगी। तिस पर भी वह पार्श्वस्थ अर्थात् शिथिलाचारिणी हो गई। पार्श्वस्थ की तरह विहार करने–रहने लगी। वह अवसन्न हो गई अर्थात् ज्ञान दर्शन और चारित्र के विषयमें आलसी हो गई और आलस्यमय विहार वाली हो गई। कुशीला अर्थात् अनाचार का सेवन करने वाली और कुशीलोंके समान व्यवहार करने वाली हो गई। संसक्ता अर्थात् ऋद्धि, रस और साता रूप गारवों में आसक्त और संसक्तविहारिणी हो गई। इस प्रकार उसने बहुत वर्षों तक साध्वी--पर्याय का पालन किया। अन्त में अर्ध मास की संलेखना करके, अपने अनुचित आचरण की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल--मासमें काल करके ईशान कल्प में, किसी विमानमें देवगणिकाके रूपमें उत्पन्न हुई। वहां किन्हीं--किन्हीं देवियों की नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है। सुकुमालिका देवी की भी नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है ॥१२१॥

उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, पंचाल देश में काम्पिल्यपुर नामक नगर था। उसका वर्णन कहना चाहिए। वहां द्रुपद राजा था। उसका वर्णन कहना चाहिए। द्रुपद राजा की चुलनी नामक पटरानी थी और धृष्टद्युम्न नामक युवराज था। तत्पश्चात् सुकुमालिका देवी उस देवलोक से, आयु का क्षय करके यावत् देवीशरीर का त्याग करके इसी जंबूद्वीपमें, भारत वर्ष में, पंचाल जनपद में, काम्पिल्यपुर नगर में, द्रुपद राजा की चुलनी रानी की कूंख में लड़की के रूप में उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् चुलनी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्री को जन्म दिया।

तत्पश्चात् बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालिका का ऐसा नाम रक्खा गया--क्योंकि यह बालिका द्रुपद राजा की पुत्री है और चुलनी रानी की आत्मजा है, अतः हमारी इस बालिका का नाम द्रौपदी हो। तब उसके माता-पिता ने इस प्रकार का यह गुण वाला एवं गुणनिष्पन्न नाम द्रौपदी रक्खा। तत्पश्चात् पांच धायों द्वारा ग्रहण की हुई वह द्रौपदी दारिका पर्वत की गुफामें स्थित चम्पकलताके समान वायु आदिके व्याघातसे रहित होकर सुखपूर्वक बढ़ने लगी।

तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ राजकन्या बाल्यावस्थासे मुक्त होकर यावत् उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई। तत्पश्चात् राजकन्या द्रौपदी को एक वार अन्तःपुर की रानियों ने स्नान कराया यावत् सर्व अलंकारोंसे विभूषित किया। फिर द्रुपद राजाके चरणों की वन्दना करनेके लिए उसके पास भेजा। तब श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी द्रुपद राजाके पास गई। वहां जाकर उसने द्रुपद राजाके चरणोंका स्पर्श किया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजाने द्रौपदी दारिका को अपनी गोदमें विठलाया। फिर राजवरकन्या द्रौपदीके रूप, यौवन और लावण्य को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसने राजवरकन्या द्रौपदीसे कहा—'हे पुत्री! मैं स्वयं किसी राजा अथवा युवराज की भार्याके रूपमें तुझे दूंगा और वहां तू सुखी या दुःखी होगी तो मुझे जिंदगी भर हृदयमें दाह होगा। अतएव पुत्री! मैं आजसे तेरा स्वयंवर रचता हूं। आजसे मैंने तुझे स्वयंवर में दी। अतएव तू अपनी इच्छा से जिस किसी राजा या युवराज का वरण करेगी, वही तेरा भर्तार होगा। इस प्रकार कहकर वाणीसे यावत् द्रौपदी को आश्वासन दिया, आश्वासन देकर विदा कर दिया ॥१२२॥

तत्पश्चात् द्रुपद राजाने दूत बुलवाया। बुलवा कर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ। वहां तुम कृष्ण वासुदेवको, समुद्रविजय आदि दस दसारों को, वलदेव आदि पांच महावीरों को, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं को, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों को, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्तों (उद्धत-बलवानों) को, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर पुरुषोंको, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्ग को, तथा अन्य बहुतसे राजाओं, युवराजों, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह प्रभृति को दोनों हाथ जोड़कर, दसों नख मिलाकर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके और 'जय-विजय' कह कर वधाना—अभिनन्दन करना। अभिनन्दन करके इस प्रकार कहना—

'इस प्रकार हे देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न कुमारकी भगिनी श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदीका स्वयंवर होने वाला है। अतएव देवानुप्रियो! तुम सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, कालका विलम्ब किये बिना—उचित समय पर कांपिल्यपुर नगरमें पधारना।' तत्पश्चात् दूतने दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके द्रुपद राजा का यह अर्थ (कथन) विनयके साथ स्वीकार किया। स्वीकार करके अपने घर आया। घर आकर कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा--'देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत् रथ उपस्थित किया।

तत्पश्चात् स्नान किये हुए और अलंकारों से विभूषित शरीर वाले उस

दूतने चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरोहण किया। आरोहण करके, कवच आदि धारण करके तैयार हुए और अस्त्रशस्त्रधारी बहुतसे पुरुषोंके साथ कांपिल्य-पुर नगरके मध्यभागमें होकर निकला। वहां से निकल कर पंचाल देशके मध्यभाग में होकर देशकी सीमा पर आया, फिर सुराष्ट्र जनपदके बीचमें होकर जिधर द्वारवती नगरी थी, उधर चला। चल कर द्वारवती नगरीके मध्यमें प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कृष्ण वासुदेवकी बाहरी सभा थी, वहां आया। चार घंटों वाले अश्वरथ को रोका। रथसे नीचे उतरा। फिर मनुष्योंके समूहसे परिवृत होकर पैदल चलता हुआ कृष्ण वासुदेवके पास पहुँचा। वहां पहुँच कर कृष्ण वासुदेव को. समुद्रविजय आदि दस दसारोंको यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्गको दोनों हाथ जोड़कर द्रुपद राजाके कथनानुसार अभिनन्दन करने यावत् स्वयंवरमें पधारने का निमंत्रण दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव उस दूतसे यह वृत्तान्त सुनकर और समझ कर प्रसन्न हुए यावत् उनके हृदयमें संतोष हुआ। उन्होंने उस दूत का सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करनेके पश्चात् उसे बिदा किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषको बुलाया। बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुधर्मा सभामें रक्खी हुई सामुदानिक भेरी बजाओ।' तब उस कौटुम्बिक पुरुषने दोनों हाथ जोड़कर यावत् कृष्ण वासुदेवके इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके जहां सुधर्मा सभामें सामुदानिक भेरी थी, वहां आया। आकर जोर-जोरके शब्दसे उसे ताड़न किया। तत्पश्चात् उस सामुदानिक भेरीके ताड़न करने पर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् नहा-धोकर यावत् विभूषित होकर अपने-अपने वैभवके अनुसार ठाठ एवं सत्कारके समुदायके अनुसार कोई-कोई रथ पर तथा कोई-कोई अश्व आदि पर आरूढ़ होकर और कोई-कोई पैदल चलकर जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां पहुंचे। पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर सबने कृष्ण वासुदेव का जय-विजय के शब्दोंसे अभिनन्दन किया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेवने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पट्टाभिषेक किये हुए हस्तीरत्न (सर्वोत्तम हाथी) को तैयार करो तथा घोड़ों, हाथियों, रथों और पदातियों की चतुरंगी सेना सज्जित करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' यह आज्ञा सुनकर कौटुम्बिक पुरुषोंने तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव मज्जनगृह (स्नानागार) में गए। मोतियोंके गुच्छों से मनोहर उस मज्जनगृहमें स्नान करके, विभूषित होकर तथा भोजन करके यावत् अंजनगिरिके शिखर के समान (श्याम और ऊंचे) गजपति पर वे नरपति आरूढ़ हुए। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव,समुद्रविजय

तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ राजकन्या बाल्यावस्थासे मुक्त होकर यावत् उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई। तत्पश्चात् राजकन्या द्रौपदी को एक बार अन्तःपुर की रानियों ने स्नान कराया यावत् सर्व अलंकारोंसे विभूषित किया। फिर द्रुपद राजाके चरणों की वन्दना करनेके लिए उसके पास भेजा। तब श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी द्रुपद राजाके पास गई। वहां जाकर उसने द्रुपद राजाके चरणोंका स्पर्श किया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजाने द्रौपदी दारिका को अपनी गोदमें बिठलाया। फिर राजवरकन्या द्रौपदीके रूप, यौवन और लावण्य को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसने राजवरकन्या द्रौपदीसे कहा—'हे पुत्री! मैं स्वयं किसी राजा अथवा युवराज की भार्याके रूपमें तुझे दूंगा और वहां तू सुखी या दुःखी होगी तो मुझे जिंदगी भर हृदयमें दाह होगा। अतएव पुत्री! मैं आजसे तेरा स्वयंवर रचता हूं। आजसे मैंने तुझे स्वयंवर में दी। अतएव तू अपनी इच्छा से जिस किसी राजा या युवराज का वरण करेगी, वही तेरा भर्त्तार होगा। इस प्रकार कहकर वाणीसे यावत् द्रौपदी को आश्वासन दिया, आश्वासन देकर विदा कर दिया॥१२२॥

तत्पश्चात् द्रुपद राजाने दूत बुलवाया। बुलवा कर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ। वहां तुम कृष्ण वासुदेवको, समुद्रविजय आदि दस दसारों को, बलदेव आदि पांच महावीरों को, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं को, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों को, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्तों (उद्धत-बलवानों) को, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर पुरुषोंको, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्ग को, तथा अन्य बहुतसे राजाओं, युवराजों, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह प्रभृति को दोनों हाथ जोड़कर, दसों नख मिलाकर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके और 'जय-विजय' कह कर वधाना—अभिनन्दन करना। अभिनन्दन करके इस प्रकार कहना—

'इस प्रकार हे देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न कुमारकी भगिनी श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदीका स्वयंवर होने वाला है। अतएव देवानुप्रियो! तुम सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, कालका विलम्ब किये बिना—उचित समय पर कांपिल्यपुर नगरमें पधारना।' तत्पश्चात् दूतने दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके द्रुपद राजा का यह अर्थ (कथन) विनयके साथ स्वीकार किया। स्वीकार करके अपने घर आया। घर आकर कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत् रथ उपस्थित किया।

तत्पश्चात् स्नान किये हुए और अलंकारों से विभूषित शरीर वाले उस

दूतने चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरोहण किया। आरोहण करके, कवच आदि धारण करके तैयार हुए और अस्त्रशस्त्रधारी बहुतसे पुरुषोंके साथ कांपिल्य-पुर नगरके मध्यभागमें होकर निकला। वहां से निकल कर पंचाल देशके मध्यभाग में होकर देशकी सीमा पर आया, फिर सुराष्ट्र जनपदके बीचमें होकर जिधर द्वारवती नगरी थी, उधर चला। चल कर द्वारवती नगरीके मध्यमें प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कृष्ण वासुदेवकी बाहरी सभा थी, वहां आया। चार घंटों वाले अश्वरथ को रोका। रथसे नीचे उतरा। फिर मनुष्योंके समूहसे परिवृत होकर पैदल चलता हुआ कृष्ण वासुदेवके पास पहुँचा। वहां पहुँच कर कृष्ण वासुदेव को. समुद्रविजय आदि दस दसारोंको यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्गको दोनों हाथ जोड़कर द्रुपद राजाके कथनानुसार अभिनन्दन करने यावत् स्वयंवरमें पधारने का निमंत्रण दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव उस दूतसे यह वृत्तान्त सुनकर और समझ कर प्रसन्न हुए यावत् उनके हृदयमें संतोष हुआ। उन्होंने उस दूत का सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करनेके पश्चात् उसे बिदा किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषको बुलाया। बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुधर्मा सभामें रक्खी हुई सामुदानिक भेरी बजाओ।' तब उस कौटुम्बिक पुरुषने दोनों हाथ जोड़कर यावत् कृष्ण वासुदेवके इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके जहां सुधर्मा सभामें सामुदानिक भेरी थी, वहां आया। आकर जोर-जोरके शब्दसे उसे ताड़न किया। तत्पश्चात् उस सामुदानिक भेरीके ताड़न करने पर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् नहा-धोकर यावत् विभूषित होकर अपने-अपने वैभवके अनुसार ठाठ एवं सत्कारके समुदायके अनुसार कोई-कोई रथ पर तथा कोई-कोई अश्व आदि पर आरूढ़ होकर और कोई-कोई पैदल चलकर जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां पहुंचे। पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर सबने कृष्ण वासुदेव का जय-विजय के शब्दोंसे अभिनन्दन किया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेवने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पट्टाभिषेक किये हुए हस्तीरत्न (सर्वोत्तम हाथी) को तैयार करो तथा घोड़ों, हाथियों, रथों और पदातियों की चतुरंगी सेना सज्जित करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' यह आज्ञा सुनकर कौटुम्बिक पुरुषोंने तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव मज्जनगृह (स्नानागार) में गए। मोतियोंके गुच्छों से मनोहर उस मज्जनगृहमें स्नान करके, विभूषित होकर तथा भोजन करके यावत् अंजनगिरिके शिखर के समान (श्याम और ऊंचे) गजपति पर वे नरपति आरूढ़ हुए। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव, समुद्रविजय

आदि दस दसारोंके साथ यावत् सार्थवाह प्रभृति के साथ परिवृत होकर पूरे ठाठ के साथ यावत् वाद्यों की ध्वनिके साथ द्वारवती नगरीके मध्यमें होकर निकले। निकल कर सुराष्ट्र जनपदके मध्यमें होकर देश की सीमा पर पहुंचे। वहां पहुंच कर पंचाल जनपदके मध्यमें होकर जिस ओर कांपिल्यपुर नगर था, उसी ओर जानेके लिए उद्यत हुए।

तत्पश्चात् (प्रथम दूत को द्वारिका भेजने के तुरन्त बाद) द्रुपद राजा ने दूसरे दूत को बुलाया। बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ। वहां तुम पुत्रों सहित पाण्डु राजा को, उनके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को, सौ भाइयां समेत दुर्योधन को, गांगेय, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, क्लीव (कर्ण) और अश्वत्थामा को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके, उसी प्रकार (पहले के समान) कहना यावत् समय पर स्वयंवर में पधारिए।' तत्पश्चात् दूत ने हस्तिनापुर जाकर उसी प्रकार कहा। तब जैसा कृष्ण वासुदेव ने किया, वैसा ही पाण्डु राजा ने किया। विशेषता यह है कि हस्तिनापुरमें भेरी नहीं थी। (अतएव दूसरे उपायसे सब को सूचना देकर और साथ लेकर) यावत् पाण्डु राजा भी कांपिल्यपुर नगरकी ओर गमन करने को उद्यत हुए। इसी क्रम से तीसरे दूत को चम्पा नगरी भेजा और उससे कहा--'तुम वहां जाकर अंगराज कृष्ण को, सेल्लक राजा को और नंदिराज को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् कहना कि स्वयंवर में पधारिये।'

चौथा दूत शुक्तिमती नगरी भेजा और उसे आदेश दिया--'तुम दमघोष के पुत्र और पांच सौ भाइयों से परिवृत शिशुपाल राजाको हाथ जोड़ कर, इस प्रकार कहना, यावत् पधारिए।' पांचवां दूत हस्तिशीर्ष नगर भेजा और कहा—'तुम दमदंत राजा को हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहना यावत् पधारिए।' छठा दूत मथुरा नगरी भेजा। उससे कहा--'तुम धर नामक राजा को हाथ जोड़ कर यावत् कहना--स्वयंवर में पधारिए।' सातवां दूत राजगृह नगर भेजा। उससे कहा--'तुम जरासिन्धु के पुत्र सहदेव राजा को हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहना--'यावत् स्वयंवर में पधारिए।'

आठवां दूत कौडिन्य नगर भेजा। उससे कहा--'तुम भीष्मक के पुत्र रुक्मि राजा को हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।' नौवां दूत विराट नगर भेजा। उससे कहा--'तुम सौ भाइयों सहित कीचक राजा को हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।' दसवां दूत शेष ग्राम, आकर और नगर आदि में भेजा। उससे कहा--'तुम वहां के अनेक सहस्र राजाओं को इस प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।' तत्पश्चात् वह दूत उसी प्रकार निकला, और जहां ग्राम आकर, नगर आदि थे, वहां जाकर सब राजाओं को

उसी प्रकार कहा--यावत् 'स्वयंवर में पधारो।'

तत्पश्चात् अनेक हजार राजाओं ने उस दूत से यह अर्थ सुनकर और समझ कर हृष्ट-तुष्ट होकर उस दूत का सत्कार-सन्मान करके उसे विदा किया। तत्पश्चात् आमंत्रित किये हुए वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजाओं में से प्रत्येक-प्रत्येक ने स्नान किया। वे सजाये हुए श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुए। फिर घोड़ों, हाथियों, रथ और बड़े-बड़े भटों के समूह के समूह रूप चतुरंगिणी सेनाके साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकल कर पंचाल जनपद की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए ॥१२३॥

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा- 'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कांपिल्यपुर नगर के बाहर, गंगा नदी से न अधिक दूर और न अधिक समीप में, एक विशाल स्वयंवरमंडप बनाओ, जो अनेक सैंकड़ों स्तंभों से बना हो और जिसमें लीला करती हुई पुतलियां हों, यावत् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मंडप तैयार करके आज्ञा वापिस सौंपी। तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही वासुदेव वगैरह बहुसंख्यक सहस्रों राजाओं के लिए आवास तैयार करो।' उन्होंने उसी प्रकार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा वासुदेव प्रभृति बहुत से राजाओं का आगमन जान कर, प्रत्येक राजा का स्वागत करने के लिए, हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर यावत् सुभटों के परिवार से परिवृत होकर, अर्घ्य और पाद्य (पैर धोने के लिए पानी) लेकर, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ, कांपिल्यपुर से बाहर निकला। निकल कर जिधर वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजा थे, उधर गया। वहां जाकर उन वासुदेव प्रभृति का अर्घ्य और पाद्य से सत्कार--सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन वासुदेव आदि को अलग--अलग आवास दिये। तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रभृति नृपति अपने--अपने आवासों में पहुँचे। पहुँच कर हाथियों के स्कंध से नीचे उतरे। उतर कर सब ने अपने--अपने पड़ाव डाले और अपने-अपने आवासों में प्रविष्ट हुए। आवासों में प्रवेश करके अपने-अपने आवासों में, आसनों पर बैठे और शय्याओं पर सोये हुए, बहुत-से गंधर्वो से गान कराते हुए और नटों से नाटक करवाते हुए विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् अर्थात् सब आगन्तुक अतिथि राजाओं को यथास्थान ठहरा कर द्रुपद राजा ने कांपिल्यपुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया। फिर कौटुंबिक पुरुषोंको बुला कर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और यह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तथा प्रचुर पुष्प, वस्त्र, गंध, मालाएं एवं अलंकार वासुदेव आदि हजारों राजाओं

के आवासों में ले जाओ।' यह सुन कर वे वह सब वस्तुए' ले गये। तत्पश्चात् वासुदेव आदि राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम का पुनः पुनः आस्वादन करते हुए विचरने लगे। भोजन करने के पश्चात् आचमन करके यावत् सुखद आसनों पर आसीन होकर बहुत से गंधर्वो से संगीत कराते हुए यावत् विचरने लगे।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पूर्वापरान्ह काल (सायंकाल) के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कांपिल्यपुर नगर के शृंगाटक आदि मार्गों में तथा वासुदेव आदि हजारों राजाओं के आवासों में, हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर, बुलंद आवाज से यावत् बार—बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'हे देवानुप्रियो ! कल प्रभात काल में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्नकी भगिनी द्रौपदी राजवरकन्या का स्वयंवर होगा। अतएव हे देवानुप्रियो ! आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, स्नान करके यावत् विभूषित होकर, हाथीके स्कंध पर आरूढ़ होकर, कोरंट वृक्ष की पुष्पमाला सहित छत्र को धारण करके, उत्तम श्वेत चामरों से विंजाते हुए, घोड़ों, हाथियों, रथों तथा बड़े-बड़े सुभटों के समूह से परिवृत होकर जहां स्वयंवर—मंडप है, वहां पहुंचें। वहां पहुंच कर अलग-अलग अपने नामांकित आसनों पर बैठें और राजवरकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करें। इस प्रकार की घोषणा करो और मेरी आज्ञा वापिस करो।' तब वे कौटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार घोषणा करके यावत् राजा द्रुपद की आज्ञा वापिस करते हैं।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम स्वयंवरमंडप में जाओ और उसमें जल का छिड़काव करो, उसे झाड़ो, लीपो और श्रेष्ठ सुगंधित द्रव्य से सुगंधित करो। पांच वर्ण के फूलों के समूह से व्याप्त करो। कृष्ण अगर श्रेष्ठ कुंद्रुक (चीड़ा) और तुरुष्क (लोबान) आदि की धूप से गंध की वर्त्ती (वाट) जैसा कर दो। उसे मंचों (मचानों) और उनके ऊपर मंचों (मचानों) से युक्त करो। फिर वासुदेव आदि हजारों राजाओं के नामों से अंकित अलग-अलग आसन श्वेत वस्त्र से आच्छादित करके तैयार करो। यह सब करके मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।' वे कौटुम्बिक पुरुष भी सब कार्य करके यावत् आज्ञा लौटाते हैं।

तत्पश्चात् वासुदेव प्रभृति बहुत हजार राजा कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर स्नान करके सर्वालंकार विभूषित हुए। श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाले छत्र को धारण किया। उन पर चामर ढोरे जाने लगे। अश्व, हाथी, भटों आदि से परिवृत होकर सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ यावत् वाद्यध्वनि के साथ जिधर स्वयंवरमंडप था, उधर पहुँचे। मंडप में प्रविष्ट हुए।

प्रविष्ट होकर पृथक्-पृथक् अपने-अपने नामों से अंकित आसनों पर बैठ गये और राजवरकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा दूसरे दिन स्नान करके, सर्वालङ्कार विभूषित होकर, हाथी के स्कंध पर सवार होकर, कोरंट वृक्ष के फूलोंकी माला वाले छत्रको धारण करके, चतुरंगिणी सेना के साथ, कांपिल्यपुरके मध्य में होकर निकला। निकल कर जहां स्वयंवरमंडप था और जहां वासुदेव आदि बहुत-से हजारों राजा थे, वहां आया। आकर और उन वासुदेव आदि का हाथ जोड़ कर अभिनन्दन करके कृष्ण वासुदेव पर श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोरने लगा ॥१२४॥

तत्पश्चात् वह राजवरकन्या द्रौपदी दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर स्नान-गृह की ओर गई। वहां स्नानगृह में प्रविष्ट हुई। ···स्नान किया। शुद्ध और सभा में प्रवेश करने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्र धारण किये। स्नानगृह से बाहर निकली, निकल कर अन्तःपुर में चली गई।

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजवरकन्या द्रौपदी को सब अलंकारों से विभूषित किया। किस प्रकार? पैरों में श्रेष्ठ नूपुर पहनाये, (इसी प्रकार सब अंगों में भिन्न-भिन्न आभूषण पहनाये) यावत् वह दासियोंके समूहसे परिवृत होकर अन्तःपुर से बाहर निकली। बाहर निकल कर जहां बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आई। आकर क्रीड़ा कराने वाली धाय और लेखिका (लिखने वाली) दासी के साथ उस चार घण्टों वाले रथ पर आरूढ़ हुई।

उस समय धृष्टद्युम्न कुमारने द्रौपदी कुमारीका सारथ्य किया, अर्थात् सारथी का कार्य किया। तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी कांपिल्यपुर नगर के मध्य में होकर जिधर स्वयंवर-मंडप था, उधर गई। वहां पहुँच कर रथको रोका गया और वह रथ से नीचे उतरी। नीचे उतर कर क्रीड़ा कराने वाली धाय और लेखिका दासी के साथ उसने स्वयंवरमण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश करके दोनों हाथ जोड़ कर वासुदेव प्रभृति बहुसंख्यक हजारों राजाओं को प्रणाम किया।

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी ने एक बड़ा श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) ग्रहण किया। वह कैसा था? पाटल, मल्लिका, चम्पक आदि यावत् सप्तपर्ण आदि के फूलों से गूंथा हुआ था। गंध की तृप्ति को फैला रहा था। अत्यन्त सुखद स्पर्श वाला था और दर्शनीय था।

तत्पश्चात् उस क्रीड़ा कराने वाली यावत् सुन्दर रूप वाली धाय ने बाएं हाथमें चिलचिलाता हुआ दर्पण लिया। उस दर्पणमें जिस-जिस राजाका प्रतिबिम्ब

पड़ता था, उस प्रतिबिम्ब द्वारा दिखाई देने वाले श्रेष्ठ सिंह के समान राजा को अपने दाहिने हाथसे द्रौपदी को दिखलाती थी। वह धाय स्फुट (प्रकट अर्थ वाले), विशद (निर्मल अक्षरों वाले), विशुद्ध (शब्द एवं अर्थ के दोषों से रहित), रिभित (स्वर की घोलना सहित), मेघ की गर्जना के समान गंभीर और मधुर (कानों को सुखदायी) वचन बोलती हुई, उन सब राजाओंके माता-पिताके वंश, सत्त्व (दृढ़ता एवं धीरता), सामर्थ्य (शारीरिक बल), गोत्र, पराक्रम, कान्ति, नाना प्रकार के ज्ञान, माहात्म्य, रूप, यौवन, गुण, लावण्य, कुल और शील को जानने वाली होने के कारण उनका बखान करने लगी।

उनमें से सर्वप्रथम वृष्णि (यादवों) में प्रधान समुद्रविजय आदि दस दसारों अथवा दसार-के श्रेष्ठ वीर पुरुषों के, जो तीन लोकों में बलवान् थे, लाखों शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले थे, भव्य जीवों में श्रेष्ठ श्वेतकमलके समान प्रधान थे, तेजसे देदीप्यमान थे, बल, वीर्य, रूप, यौवन, गुण और लावण्य का कीर्त्तन करने वाली उस धाय ने कीर्त्तन किया। और फिर कहा-' ये यादव सौभाग्य और रूपसे सुशोभित हैं और श्रेष्ठ पुरुषों में गंधहस्ती के समान हैं। इनमें से कोई तेरे हृदय को प्रिय हो तो उसे वरण कर।'

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी बहुत हजार श्रेष्ठ राजाओं के मध्य में होकर, उनका अतिक्रमण करती-करती, पूर्वकृत निदान से प्रेरित होती-होती जहां पांचों पाण्डव थे, वहां आई। वहां आकर उसने उन पांचों पाण्डवों को, पंचरंगे कुसुमदाम-फूलों की माला-श्रीदामकाण्ड-से चारों तरफ से वेष्ठित कर दिया। वेष्ठित करके कहा-'मैंने इन पांचों पाण्डवों का वरण किया।'

तत्पश्चात् उन वासुदेव प्रभृति बहुत०राजाओं ने ऊंचे-ऊंचे शब्दोंसे बार-बार उद्घोषणा करते हुए कहा-'अहो राजवरकन्या द्रौपदी ने अच्छा वरण किया।' इस प्रकार कह कर वे स्वयंवरमंडपसे बाहर निकले। निकलकर अपने-अपने आवासोंमें चले गये। तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न कुमार ने पांचों पाण्डवों को और राजवरकन्या द्रौपदी को चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ किया और कांपिल्यपुर के मध्य में होकर यावत् अपने भवन में प्रवेश किया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पांचों पाण्डवों को तथा राजवरकन्या द्रौपदी को पट्ट पर आसीन किया। आसीन करके श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से स्नान कराया। स्नान करवा कर फिर पांचों पाण्डवों का द्रौपदी के साथ विधिवत् पाणिग्रहण कराया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने राजवरकन्या द्रौपदी को इस प्रकार प्रीतिदान (दहेज) दिया-आठ करोड़, हिरण्य आदि यावत् आठ प्रेषणकारिणी (इधर-उधर जाने-आने का काम करने वाली) दासचेटियां। इनके अतिरिक्त अन्य

भी बहुत-सा धन, कनक आदि यावत् प्रदान किया। तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने उन वासुदेव प्रभृति राजाओं को, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा वस्त्र, गंध और अलंकार आदि से सत्कार करके विदा किया ॥१२५॥

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वासुदेव प्रभृति बहुत से राजाओं से हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार कहा-'देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में पांच पाण्डवों और द्रौपदी देवी का कल्याणकारण महोत्सव (मांगलिक क्रिया) होगा। अतएव देवानुप्रियो ! तुम सब मुझ पर अनुग्रह करके यथा समय-विलंब किये बिना पधारें।' तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि नृपतिगण अलग-अलग यावत् गमन करने के लिए उद्यत हुए।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार आदेश दिया-'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर में पांच पाण्डवों के लिए उत्तम प्रासाद बनवाओ, वे प्रासाद खूब ऊंचे हों और सात भूमि (मंजिल) के हों, इत्यादि वर्णन यहां कहना चाहिए, यावत् अत्यन्त मनोहर हों।' तब कौटुम्बिक पुरुषों ने यह आदेश अंगीकार किया, यावत् उसी प्रकार के प्रासाद बनवाये। तब पाण्डु राजा पांचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्वसेना, गजसेना आदि से परिवृत होकर कांपिल्यपुर नगर से निकला। निकल कर जहां हस्तिनापुर था, वहां आ पहुँचा ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वासुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव आदि बहुत से राजाओं के लिए आवास तैयार कराओ जो अनेक सैकड़ों स्तंभों आदि से युक्त हों, इत्यादि वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस करते हैं।

तत्पश्चात् वे वासुदेव वगैरह बहुत से राजा नगर में आये। तब पाण्डु राजा उन वासुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, और द्रुपद राजा के समान उनके सामने जाकर सत्कार किया, यावत् उन्हें यथायोग्य आवास दिये। तब वे वासुदेव आदि बहुत से राजा जहां अपने-अपने आवास थे, वहां गये और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार संगीत-नाटक आदि से मनोविनोद करते हुए) यावत् विचरने लगे।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा--'हे देवानुप्रियो ! तुम विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराओ।' उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार किया यावत् वे भोजन तैयार करवा कर ले गये। तब उन वासुदेव आदि बहुत-से राजाओं ने स्नान··· करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का

आहार किया और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार) विचरने लगे।

तत्पश्चात् पांडु राजाने पांच पाण्डवोंको तथा द्रौपदी देवी को पाट पर विठलाया। बिठलाकर श्वेत और पीत कलशोंसे उनका अभिषेक किया—उन्हें नहलाया। फिर कल्याणकर उत्सव किया। उत्सव करके उन वासुदेव आदि बहुत से राजाओं का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिमसे तथा पुष्पों और वस्त्रों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके यावत् उन्हें विदा किया। तब वे वासुदेव आदि बहुतसे राजा यावत् अपने-अपने नगरों को लौट गये ॥१२६॥

तत्पश्चात् वे पांचों पाण्डव, द्रौपदी देवीके साथ, अन्तःपुर के परिवार सहित, एक-एक दिन बारीके अनुसार उदार कामभोग भोगते हुए यावत् रहने लगे। उस समय पाण्डु राजा एक बार किसी समय पांच पाण्डवों, कुन्तीदेवी और द्रौपदी देवीके साथ तथा अन्तःपुरके भीतरके परिवारके साथ परिवृत होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन होकर विचर रहे थे। इधर कच्छुल्ल नामक नारद वहां जा पहुंचे। वे देखनेमें अत्यन्त भद्र और विनीत जान पड़ते थे, परन्तु भीतरसे उनका हृदय कलुषित था। ब्रह्मचर्य व्रतके धारक होनेसे वे मध्यस्थता को प्राप्त थे। आश्रित जनोंको उनका दर्शन प्रिय लगता था। उनका रूप मनोहर था। उन्होंने उज्ज्वल एवं सकल (अखंड अथवा शकल अर्थात् वस्त्र खंड) पहन रक्खा था। काला मृगचर्म उत्तरासंगके रूपमें वक्षस्थलमें धारण किया था। हाथमें दंड और कमण्डलु था। जटा रूपी मुकुटसे उनका मस्तक देदीप्यमान था। उन्होंने यज्ञोपवीत एवं रुद्राक्ष की मालाके आभरण, मूंज की कटिमेखला और वल्कल वस्त्र धारण किये थे। उनके हाथमें कच्छपी नामकी वीणा थी। उन्हें संगीतसे प्रीति थी। आकाशमें गमन करने की शक्ति होनेसे वे पृथ्वी पर बहुत कम गमन करते थे। संचरणी (चलने की), आवरणी (ढंकने की), अवतरणी (नीचे उतरने की), उत्पतनी (ऊंचे उड़ने की), श्लेषणी (चिपट जाने की), संक्रामणी (दूसरे के शरीरमें प्रवेश करने की), अभियोगिनी (सोना चांदी आदि बनाने की), प्रज्ञप्ति (परोक्ष वृत्तान्त को बतला देने की), गमनी (दुर्गम स्थानमें भी जा सकने की) और स्तंभिनी (स्तब्ध कर देने की) आदि बहुत-सी विद्याधर-संबंधी विद्याओंमें प्रवीण होने से उनकी कीर्ति फैली हुई थी। वे बलदेव और वासुदेवके प्रेमपात्र थे। प्रद्युम्न, प्रदीप, सांब, अनिरुद्ध, निषध, उन्मुख, सारण, गजसुकुमाल, सुमुख और दुर्मुख आदि यादवोंके साढ़े तीन करोड़ कुमारोंके हृदयके प्रिय थे और उनके द्वारा प्रशंसनीय थे। कलह (वाग्युद्ध), युद्ध (शस्त्रों का समर) और कोलाहल उन्हें प्रिय था। वे भांड के समान वचन बोलनेके अभिलाषी थे। अनेक समर और सम्पराय (युद्ध विशेष) देखनेके रसिक थे। चारों ओर दक्षिणा देकर (दान देकर) भी कलह की खोज किया करते थे, अर्थात् कलह कराने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। कलह करा

कर दूसरोंके चित्तमें असमाधि उत्पन्न करते थे। ऐसे वे नारद तीन लोकमें बलवान् श्रेष्ठ दसारवंशके वीर पुरुषोंसे वार्तालाप करके, उस भगवती (पूज्य) प्राकाम्य नामक विद्या का, जो आकाशमें गमन करनेमें दक्ष थी, स्मरण करके उड़े और आकाशको लांघते हुए हजारों ग्राम, आकर (खान), नगर, खेट, कर्बट, मडंब द्रोणमुख, पट्टन और संबाधसे शोभित और भरपूर देशोंसे व्याप्त पृथ्वी का अवलोकन करते-करते रमणीय हस्तिनापुरमें आये और बड़े वेगके साथ पाण्डु राजा के महलमें उतरे।

उस समय पाण्डु राजाने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देखकर पांचों पांडवों तथा कुन्ती देवी सहित वे आसन से उठ खड़े हुए। खड़े होकर सात-आठ कदम कच्छुल्ल नारदके सामने गये। सामने जाकर तीन बार दक्षिण दिशासे आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके महान् पुरुषके योग्य अथवा बहुमूल्य आसन ग्रहण करनेके लिए आमंत्रण किया। तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारदने जल छिड़क कर और दर्भ बिछाकर उस पर अपना आसन बिछाया और वे उस पर बैठे। बैठकर पांडु राजा, राज्य यावत् अन्तःपुर के कुशल-समाचार पूछे। उस समय पाण्डु राजाने, कुन्ती देवीने और पांचों पाण्डवोंने कच्छुल्ल नारद का आदर-सत्कार किया। यावत् वे उनकी पर्युपासना (सेवा) करने लगे। उस समय द्रौपदी देवीने कच्छुल्ल नारद को असंयमी, अविरत तथा पूर्वकृत पाप कर्म का निन्दादि द्वारा नाश न करने वाला तथा आगेके पापोंका प्रत्याख्यान न करने वाला जानकर उनका आदर नहीं किया, उन्हें आया भी न जाना, उनके आने पर वह खड़ी नहीं हुई और उनकी उपासना भी नहीं की ॥१२७॥

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद को इस प्रकारका अध्यवसाय, चिन्तित (विचार), प्रार्थित (इष्ट), मनोगत (मन में स्थित) संकल्प उत्पन्न हुआ कि-'अहो! यह द्रौपदी देवी अपने रूप,लावण्य और पांच पांडवोंके कारण अभिमानिनी हो गई है, अतएव मेरा आदर नहीं करती यावत् मेरी उपासना नहीं करती। अतएव द्रौपदी देवी का अनिष्ट करना मेरे लिए श्रेयस्कर है।' इस प्रकार नारदने विचार किया। विचार करके पाण्डु राजासे जाने की आज्ञा ली। फिर उत्पतनी (उड़नेकी) विद्या का आह्वान किया···करके उस उत्कृष्ट यावत् विद्याधरगतिसे,लवणसमुद्रके मध्यभागमें होकर, पूर्व दिशाके सन्मुख, चलनेके लिए प्रयत्नशील हुए। उस काल और उस समयमें धातकीखण्ड नामक द्वीप में, पूर्व* दिशा की तरफके दक्षिणार्ध

* धातकीखण्ड द्वीपमें भरत आदि क्षेत्र दो-दो की संख्यामें हैं। उनमें से पूर्व दिशाके भरतक्षेत्रके दक्षिणी भागमें अमरकंका राजधानी थी।

भरतक्षेत्रमें अमरकंका नामक राजधानी थी। उस अमरकंका राजधानीमें पद्मनाभ नामक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वतके समान सार वाला था, इत्यादि पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए। उस पद्मनाभ राजाके अन्त:पुरमें सात सौ रानियां थीं। उसके पुत्र का नाम सुनाभ था। वह युवराज भी था। (जिस समय का यह वर्णन है) उस समय पद्मनाभ राजा अन्तःपुर में अपनी रानियोंके साथ उत्तम सिंहासन पर बैठा था।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जहां अमरकंका राजधानी थी और जहां पद्मनाभ का भवन था, वहां आये। आकर पद्मनाभ राजा के भवन में, वेगपूर्वक, शीघ्रताके साथ उतरे। उस समय पद्मनाभ राजा ने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देखकर वह आसनसे उठा। उठ कर अर्घ्यसे यावत् आसन पर बैठनेके लिए आमंत्रित किया। तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारदने जलसे छिड़काव किया और दर्भ बिछा कर उस पर आसन बिछाया और फिर वे उस आसन पर बैठे। बैठनेके बाद यावत् कुशल-समाचार पूछे।

इसके बाद पद्मनाभ राजाने अपनी रानियों (के सौन्दर्य आदि) में विस्मित होकर कच्छुल्ल नारदसे प्रश्न किया–हे देवानुप्रिय ! आप बहुतसे ग्रामों यावत् गृहोंमें प्रवेश करते हो, तो देवानुप्रिय ! जैसा मेरा अन्त:पुर है, वैसा अन्तःपुर आपने पहले कभी कहीं देखा है ?' तत्पश्चात् राजा पद्मनाभके इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद थोड़ा मुस्कराये। मुस्करा कर बोले—'हे पद्मनाभ ! तुम कुंए के उस मेंढक के समान हो।' पद्मनाभ ने पूछा–'देवानुप्रिय ! कौन-सा वह कुंए का मेंढक ?' जैसा मल्ली ज्ञात (अध्ययन) में कहा है, वही यहां कहना।

(नारद कहते हैं)–'हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपमें, भारतवर्षमें, हस्तिनापुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा, पाण्डु राजा की पुत्रवधू और पांचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी रूपसे यावत् लावण्यसे उत्कृष्ट शरीर वाली है। तुम्हारा यह सारा अन्त:पुर द्रौपदी देवीके पैरके अंगूठे की सौवीं कला (अंश) की भी बराबरी नहीं कर सकता।' इस प्रकार कह कर नारदने पद्मनाभसे जाने की अनुमति ली। अनुमति पाकर वे यावत् चल दिये। तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा कच्छुल्ल नारद से यह अर्थ सुन कर और समझ कर द्रौपदी देवीके रूप, यौवन और लावण्यमें मुग्ध हो गया, गृद्ध हो गया, लुब्ध हो गया और आग्रहवान हो गया। वह पौषधशालामें पहुँचा। पौषधशाला को पूंज कर, अपने पूर्व के साथी देव का मनमें ध्यान करके, तेला करके बैठ गया। देव आया। तब राजाने उस पहले के साथी देव से कहा—'हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें, भारतवर्षमें, हस्तिनापुर नगरमें, यावत् द्रौपदी देवी उत्कृष्ट शरीर वाली है। देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि द्रौपदी देवी यहां लाई जाय।'

तत्पश्चात् पूर्वसंगतिक (पहलेके साथी) देवने पद्मनाभ से कहा-'देवानुप्रिय ! यह कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि द्रौपदी देवी पांच पाण्डवों को छोड़ कर दूसरे पुरुष के साथ उदार कामभोग भोगती हुई विचरेगी। तथापि मैं तुम्हारा प्रिय (इष्ट) करनेके लिए द्रौपदी देवीको अभी यहां ले आता हूं।' इस प्रकार कह कर देव ने पद्मनाभसे आज्ञा ली। आज्ञा लेकर वह उत्कृष्ट देवगतिसे लवणसमुद्रके मध्यमें होकर जिधर हस्तिनापुर नगर था, उधर ही गमन करनेके लिए उद्यत हुआ। उस काल और उस समय में, हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवीके साथ महल की छत पर सुख से सोया हुआ था।

तब वह पूर्वसंगतिक देव जहां राजा युधिष्ठिर था और जहां द्रौपदी देवी थी, वहां पहुंचा। पहुंच कर उसने द्रौपदी देवी को अवस्वापिनी निद्रा दी-अवस्वापिनी निद्रामें सुला दिया। फिर द्रौपदी देवीको ग्रहण करके उत्कृष्ट देवगतिसे अमरकंका राजधानीमें पद्मनाभके भवनमें आ पहुँचा। आकर पद्मनाभ के भवनमें, अशोकवाटिकामें, द्रौपदी देवीको रख दिया। रख कर अवस्वापिनी निद्रा का संहरण किया। संहरण करके जहां पद्मनाभ था, वहां आया। आकर इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिय ! मैं हस्तिनापुरसे द्रौपदी देवीको शीघ्र ही यहां ले आया हूं। वह तुम्हारी अशोकवाटिका में है। इससे आगे तुम जानो।' इतना कह कर वह देव जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

तत्पश्चात् थोड़ी देरमें द्रौपदी देवी की निद्रा भंग हुई। वह उस अशोकवाटिकाको पहचान न सकी। तब मन ही मन कहने लगी-यह भवन मेरा अपना नहीं है, यह अशोकवाटिका मेरी अपनी नहीं है। न जाने किसी देव ने, दानव ने, किंपुरुषने, किन्नर ने, महोरगने या गंधर्वने किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिकामें मेरा संहरण किया है ! इस प्रकार विचार करके वह भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी। तत्पश्चात् राजा पद्मनाभ स्नान करके, यावत् समस्त अलंकारोंसे विभूषित होकर तथा अन्तःपुरके परिवारसे परिवृत्त होकर, जहां अशोकवाटिका थी और जहां द्रौपदी देवी थी, वहां आया। आकर उसने द्रौपदी देवी को भग्नमनोरथ एवं चिन्ता करती देखकर कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यों कर रही हो ? देवानुप्रिये ! मेरा पूर्वसंगतिक देव तुम्हें जम्बूद्वीपसे, भारतवर्षसे, हस्तिनापुर नगरसे और युधिष्ठिर राजाके भवनसे संहरण करके ले आया है। अतएव देवानुप्रिये ! तुम हतमनःसंकल्प होकर चिन्ता मत करो। तुम मेरे साथ विपुल भोगोपभोग भोगती हुई रहो।'

तब द्रौपदी देवीने पद्मनाभसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपमें, भारतवर्षमें, द्वारवती नगरीमें कृष्ण नामक वासुदेव मेरे स्वामीके भ्राता रहते हैं।

सो यदि छह महीनों तक वे मुझे लेनेके लिए यहां नहीं आएंगे तो मैं, हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी आज्ञा, उपाय, वचन और निर्देशमें रहूंगी, अर्थात् आप जो कहेंगे, वही करूंगी।' तब पद्मनाभ राजाने द्रौपदीके इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके द्रौपदी देवीको कन्याओंके अन्तःपुरमें रख दिया। तत्पश्चात् द्रौपदी देवी निरन्तर षष्ठभक्त और पारणेमें आयंबिलके तपःकर्मसे आत्माको भावित करती हुई विचरने लगी ॥१२८॥

इधर द्रौपदी का हरण हो जानेके पश्चात्, थोड़ी देरमें युधिष्ठिर राजा जागे। वे द्रौपदी देवी को अपने पास न देखते हुए शय्यासे उठे। उठ कर सब तरफ द्रौपदी देवीकी मार्गणा-गवेषणा करने लगे। किन्तु द्रौपदी देवी की कहीं भी श्रुति (शब्द), क्षुति (छींक वगैरह) या प्रवृत्ति (खबर) न पाकर जहां पाण्डु राजा थे, वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर पाण्डु राजासे इस प्रकार बोले—'इस प्रकार हे तात ! मैं आकाशतल (अगासी-छत) पर सो रहा था। मेरे पाससे द्रौपदी देवी को न जाने देव, दानव, किन्नर, महोरग अथवा गंधर्व हरण कर गया, ले गया या खींच ले गया ? तो हे तात ! मैं चाहता हूं कि द्रौपदी देवी की सब तरफ मार्गणा-गवेषणा की जाय।'

तत्पश्चात् पाण्डु राजाने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला कर यह आदेश दिया—'देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगरमें शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथ आदिमें जोर-जोरके शब्दोंसे घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'इस प्रकार निश्चय ही देवानुप्रियो (लोगो) ! आकाशतल पर सुख से सोये हुए युधिष्ठिर राजाके पाससे द्रौपदी देवी को न जाने किस देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर, महोरग या गंधर्व देवताने हरण किया है, ले गया है या खींच गया है ? तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति बतलाएगा, उस मनुष्य को पाण्डु राजा विपुल सम्पदा का दान देंगे—इनाम देंगे।' इस प्रकारकी घोषणा करो। घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ।' तब कौटुम्बिक पुरुषोंने उसी प्रकार घोषणा करके यावत् आज्ञा वापिस लौटाई। पूर्वोक्त घोषणा करानेके पश्चात् भी पाण्डु राजा द्रौपदी देवी की कहीं भी श्रुति यावत् समाचार न पा सके तो कुन्ती देवी को बुलाकर इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ और कृष्ण वासुदेव को यह अर्थ निवेदन करो। कृष्ण वासुदेव ही द्रौपदी देवीकी मार्गणा-गवेषणा करेंगे, अन्यथा द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति अपने को ज्ञात हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। अर्थात् हम लोग द्रौपदीका पता नहीं पा सकते केवल कृष्ण ही उसका पता लगा सकते हैं।

पाण्डु राजाके द्वारिका जानेके लिए कहने पर कुन्ती देवीने उनकी बात यावत् स्वीकार करके नहा-धोकर वह हाथीके स्कंध पर आरूढ़ होकर हस्तिनापुर

नगरके मध्यमें होकर निकली। निकल कर कुरु देश के वीचोंवीच होकर जहां सौराष्ट्र जनपद था, जहां द्वारवती नगरी थी और नगरके वाहर श्रेष्ठ उद्यान था, वहां आई। आकर हाथीके स्कंधसे नीचे उतरी। उतर कर कौटुम्बिक पुरुषों को वुलाया और उनसे इस प्रकार कहा–'देवानुप्रियो! तुम जहां द्वारिका नगरी है वहां जाओ। द्वारिका नगरी के भीतर प्रवेश करो। प्रवेश करके कृष्ण वासुदेवको दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहना—'हे स्वामिन्! आपके पिता की वहिन (वुआ) कुन्ती देवी हस्तिनापुर नगर से यहां शीघ्र आई हैं और तुम्हारे दर्शनकी इच्छा करती हैं—तुमसे मिलना चाहती हैं।'

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् कृष्ण वासुदेव के पास जाकर कुन्ती देवी का आगमन कहा। तव कृष्ण वासुदेव कौटुम्बिक पुरुषों के पास से कुन्ती देवी के आगमन का समाचार सुन कर, हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर घोड़ों-हाथियों आदि की सेना के साथ यावत् द्वारवती नगरी के मध्यभाग में होकर जहां कुन्ती देवी थी, वहां आये। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरे। नीचे उतर कर उन्होंने कुन्ती देवी के चरण ग्रहण किये-पैर छुए। फिर कुन्ती देवी के साथ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर द्वारवती नगरी के मध्यभाग में होकर जहां अपना महल था, वहां आये। आकर अपने महल में प्रवेश किया।

कुन्ती देवी जव स्नान करके, भोजन कर चुकने के पश्चात् यावत् सुखासन पर वैठी, तव कृष्ण वासुदेव ने इस प्रकार कहा-'हे पितृभगिनी! कहिए,आपके यहां आने का क्या प्रयोजन है?' तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--'हे पुत्र! हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर आकाशतल पर सुख से सो रहा था। उसके पास से द्रौपदी देवी को न जाने कौन अपहरण कर ले गया अथवा यावत् खींच ले गया। अतएव हे पुत्र! मैं चाहती हूं कि द्रौपदी देवीकी मार्गणा--गवेषणा करो।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अपनी पितृभगिनी कुन्ती से कहा--'विशेष वात यह है भुआजी! अगर मैं कहीं भी द्रौपदी देवी की श्रुति (शव्द) आदि पाऊं, तो मैं पाताल से, भवन में से या अर्धभरत में से, सभी जगह से, अपने हाथ से ले आऊंगा।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती भुआ का सत्कार किया, सन्मान किया यावत् उन्हें विदा किया।

कृष्ण वासुदेव से यह आश्वासन पाने के पश्चात् कुन्ती देवी, उनसे विदा होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई। कुन्ती देवी के लौट जाने पर कृष्ण वासुदेव ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को वुलाया। वुला कर उनसे कहा-

'देवानुप्रियो ! तुम द्वारिका नगरी में जाओ' इस प्रकार जैसे पाण्डु राजा ने घोषणा करवाई थी, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव ने भी करवाई। यावत् उनकी आज्ञा कौटुम्बिक पुरुषों ने वापिस की। सब वृत्तान्त पाण्डु राजा के समान कहना चाहिए। तत्पश्चात् किसी समय कृष्ण वासुदेव अन्तःपुर के अन्दर अपनी रानियों के साथ रहे हुए थे। उसी समय वे कच्छुल्ल नारद यावत् उतरे। यावत् आसन पर बैठ कर कृष्ण वासुदेव से कुशल वृत्तान्त पूछा।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा--'देवानुप्रिय ! तुम बहुत से ग्रामों, आकरों, नगरों, आदि में प्रवेश करते हो। तो किसी जगह द्रौपदी देवी की श्रुति आदि कुछ मिली है ?' तब कच्छुल्ल नारद ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिय ! एक बार मैं धातकीखण्ड द्वीप में, पूर्व दिशा के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में, अमरकंका नामक राजधानी में गया था। वहां मैंने पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी जैसी देखी थी।'
तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारदसे इस प्रकार कहा--'देवानुप्रिय ! यह तुम्हारी ही करतूत जान पड़ती है।' कृष्ण वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद ने उत्पतनी विद्या का स्मरण किया। स्मरण करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशामें लौट गये। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने दूतको बुलाया। बुला कर उससे कहा--'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर जाओ और पाण्डु राजाको यह अर्थ निवेदन करो कि--हे देवानुप्रिय ! धातकीखण्ड द्वीप में, पूर्वार्ध भाग में, अमरकंका राजधानी में, पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी का पता लगा है। अतएव पांचों पाण्डव चतुरंगिणी सेनाके साथ परिवृत होकर रवाना हों और पूर्व दिशा के वेतालिक* (लवणसमुद्र के किनारे) पर मेरी प्रतीक्षा करें।' तत्पश्चात् दूत ने जाकर यावत् उसी प्रकार कहा कि-'···प्रतीक्षा करें।' तब पांचों पाण्डव वहां जाकर यावत् कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करने लगे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया, बुलाकर कहा--'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सान्नाहिक (सामरिक) भेरी बजाओ।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने भेरी बजाई। तत्पश्चात् सान्नाहिक भेरी की ध्वनि सुन कर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् छप्पन हजार बलवान योद्धा, कवच पहन कर, तैयार होकर, आयुध और प्रहरण ग्रहण करके, कोई--कोई घोड़ों पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर, सुभटों के समूह के साथ जहां कृष्ण वासुदेव की सुधर्मा सभा थी और जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आये। आकर हाथ जोड़ कर यावत् उनका अभिनन्दन किया।

---

*जहां समुद्र की वेल चढ़कर गंगा नदी में मिलती है, वह स्थान।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की मालाओं से युक्त छत्र उनके मस्तक के ऊपर धारण किया गया। दोनों पार्श्वों में उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। बड़े-बड़े अश्वों, गजों, भटों और सुभटोंके समूहोंसे परिवृत होकर द्वारिका नगरीके मध्यभागमें होकर निकले। निकलकर जहां पूर्व दिशाका वेतालिक था, वहां आये। वहां आकर पांचों पाण्डवों के साथ इकट्ठे हुए (मिले) फिर पड़ाव डाल कर पौषधशाला में प्रवेश किया। प्रवेश करके सुस्थित देवका मनमें पुनः चिन्तन करते हुए स्थित हुए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टमभक्त पूरा होने पर सुस्थित देव यावत् उनके समीप आया। उसने कहा—'देवानुप्रिय! कहिए, मुझे क्या करना है?' तब कृष्ण वासुदेवने सुस्थित देवसे इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिय! द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ राजाके भवनमें हरणकी गई है, अतएव तुम हे देवानुप्रिय! पांच पाण्डवों सहित छठे मेरे छह रथोंको लवणसमुद्र में मार्ग दो, जिससे मैं (पाण्डवों सहित) अमरकंका राजधानीमें द्रौपदी देवीको वापिस छीनने के लिए जाऊं।' तत्पश्चात् सुस्थित देवने कृष्ण वासुदेवसे इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिय! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्वसंगतिक देव ने द्रौपदी देवी का संहरण किया, उसी प्रकार क्या मैं द्रौपदी देवी को धातकीखंड द्वीप के भरत क्षेत्र से यावत् हस्तिनापुर ले आऊं? अथवा पद्मनाभ राजाको उसके नगर, सैन्य और वाहनोंके साथ लवणसमुद्रमें फेंक दूं?'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेवने सुस्थित देवसे इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिय! तुम यावत् संहरण मत करो। देवानुप्रिय! तुम तो पांच पाण्डवों सहित छठे हमारे छह रथों को लवणसमुद्र में जाने का मार्ग दे दो। मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को वापिस लाने के लिए जाऊंगा।' तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'ऐसा ही हो—तथास्तु।' ऐसा कह कर उसने पांच पाण्डवों सहित छठे वासुदेवके छहों रथों को लवणसमुद्र में मार्ग प्रदान किया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव चतुरंगिणी सेनाको विदा करके पांचों पाण्डवों के साथ छठे आप स्वयं छह रथों में बैठ कर, लवणसमुद्रके मध्यभाग में होकर जाने लगे। जाते-जाते जहां अमरकंका राजधानी थी और जहां अमरकंका का प्रधान उद्यान था, वहां पहुँचे। पहुँचनेके बाद रथ रोका और दारुक नामक सारथी को बुलाया। उसे बुलाकर कहा—

हे देवानुप्रिय! तू जा और अमरकंका राजधानीमें प्रवेश कर। प्रवेश करके पद्मनाभ राजा के समीप जाकर उसके पादपीठ को अपने बायें पैर से आक्रान्त करके, भाले की नोकके द्वारा लेख देना। फिर कपाल पर तीन बल वाली भृकुटि चढ़ा कर, आंखें लाल करके, रुष्ट होकर, क्रोध करके, कुपित होकर और प्रचण्ड होकर ऐसा कहना—'अरे पद्मनाभ! मौत की कामना करने वाले! अनन्त कुल-

क्षणों वाले ! पुण्यहीन ! चतुर्दशी के दिन जन्मे हुए (अथवा हीनपुण्य वाली चतुर्दशी अर्थात् कृष्ण पक्ष की चौदस को जन्मे हुए !) श्री, लज्जा और बुद्धिसे हीन ! आज तू नहीं बचेगा । क्या तू नहीं जानता कि तू कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को यहां ले आया है ? खैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी तू द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव को लौटा दे अथवा युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकल । वे कृष्ण वासुदेव पांच पाण्डवोंके साथ छठे आप द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र ही यहां आ पहुँचे हैं ।'

तत्पश्चात् वह दारुक सारथी कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट हुआ । यावत् उसने यह आदेश अंगीकार किया । अंगीकार करके अमरकंका राजधानी में प्रवेश किया । प्रवेश करके पद्मनाभ के पास गया । वहां जाकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् अभिनन्दन किया और कहा—'स्वामिन् ! यह मेरी अपनी विनयप्रतिपत्ति (शिष्टाचार) है । मेरे स्वामीके मुखसे कही हुई आज्ञा दूसरी है । वह यह है' इस प्रकार कह कर उसने नेत्र लाल करके और क्रुद्ध होकर अपने वाम पैर से उसके पादपीठ को आक्रान्त किया—दबाया । भाले की नोक से लेख दिया । फिर कृष्ण वासुदेव का समस्त आदेश कह सुनाया, यावत् वे स्वयं द्रौपदी देवी को वापिस लेने के लिए आ पहुंचे हैं ।

तत्पश्चात् पद्मनाभ ने दारुक सारथी के इस प्रकार कहने पर नेत्र रक्त करके और क्रोध से कपाल पर तीन सल वाली भृकुटि चढ़ा कर कहा—'हे देवानुप्रिय ! मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी वापिस नहीं दूंगा । मैं स्वयं ही युद्ध करने के लिए सज्ज होकर निकलता हूं ।' इस प्रकार कह कर फिर दारुक सारथीसे कहा—'हे दूत ! राजनीति में दूत अवध्य है, केवल इसी कारण मैं तुझे नहीं मारता ।' इस प्रकार कह कर उसका सत्कार—सन्मान न करके—अपमान करके, पिछले द्वार से निकाल दिया ।

तत्पश्चात् वह दारुक सारथी, पद्मनाभ राजा के द्वारा असत्कारित हुआ, यावत् निकाल दिया गया, तब कृष्ण वासुदेव के पास पहुंचा । पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर कृष्ण वासुदेव से यावत् बोला 'इस प्रकार हे स्वामिन् ! मैं आपके वचन (कहने) से राजा पद्मनाभ के पास गया था, इत्यादि पूर्ववत्, यावत् उसने मुझे पिछले द्वार से निकाल दिया है ।'

कृष्ण वासुदेव के दूत को निकलवा देने के पश्चात् इधर पद्मनाभ राजा ने सेनापति को बुलाया और उससे कहा—'देवानुप्रिय ! अभिषेक किये हुए हस्तीरत्न को तैयार करके लाओ ।' यह आदेश सुनकर कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुई बुद्धि की कल्पना के विकल्पों (प्रकारों) से निपुण पुरुषों (महावतों) ने अभिषेक किया हुआ हस्ती उपस्थित किया । तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा कवच

आदि धारण करके सज्जित हुआ, यावत् अभिषेक किये हाथी पर सवार हुआ। सवार होकर अश्वों, हाथियों आदि की चतुरंगिणी सेना के साथ, वहां जाने को उद्यत हुआ जहां वासुदेव कृष्ण थे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ राजाको आता देखा। देखकर वे पांचों पाण्डवों से बोले–'अरे बालको! तुम पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे या देखोगे?' तब पांचों पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा–'स्वामिन्! हम युद्ध करेंगे और आप हमारा युद्ध देखिए।' तत्पश्चात् पांचों पाण्डव तैयार होकर यावत् शस्त्र लेकर रथ पर सवार हुए और जहां पद्मनाभ था, वहां पहुंचे। पहुंच कर 'आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है' ऐसा कहकर वे युद्ध करने में जुट गये।

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा ने उन पांचों पाण्डवों पर शीघ्र ही शस्त्र से प्रहार किया, उनके अहंकार को मथ डाला और उनकी उत्तम चिन्ह रूप पताका गिरा दी। यावत् उन्हें दिशा–दिशा में भगा दिया। तब वे पांचों पाण्डव पद्मनाभ राजा द्वारा शस्त्र से आहत, मथित अहंकार वाले और पतित पताका वाले होकर यावत् पद्मनाभ के द्वारा भगाये हुए, शत्रुसेना का निराकरण करने में असमर्थ होकर वासुदेव कृष्ण के पास आये। तब वासुदेव कृष्णने पांचों पाण्डवोंसे कहा–'देवानुप्रियो! तुम लोग पद्मनाभ राजा के साथ किस प्रकार (किस शर्तके साथ) युद्ध में संलग्न हुए थे? तब पांचों पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय! हम आपकी आज्ञा पाकर सुसज्जित होकर रथ पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पद्मनाभ के सामने गये; इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् उसने हमें भगा दिया।'

पाण्डवों का उत्तर सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पांचों पाण्डवों से कहा-'देवानुप्रियो! अगर तुम ऐसा बोले होते कि 'हम हैं, पद्मनाभ राजा नहीं' और ऐसा कहकर पद्मनाभ के साथ युद्ध में जुटते तो पद्मनाभ राजा तुम्हारा हनन नहीं कर सकता था, मथन नहीं कर सकता था और तुम्हें यावत् दिशा में भगा नहीं सकता था। (तुमने बोलने में भूल की, इसी कारण तुम्हें भागना पड़ा।) हे देवानुप्रियो! अब तुम देखना। 'मैं हूं, पद्मनाभ राजा नहीं' इस प्रकार कह कर मैं पद्मनाभ के साथ युद्ध करता हूं।' इस के बाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पद्मनाभ राजा के पास पहुंचे। पहुंच कर उन्होंने श्वेत, गाय के दूध और मोतियों के हार के समान उज्ज्वल, मल्लिका के फूल, मालती कुसुम, सिन्दुवार-पुष्प, कुन्दपुष्प और चन्द्र के समान श्वेत, अपनी सेना को हर्ष उत्पन्न करने वाला और शत्रुसैन्य का विनाश करने वाला पांचजन्य शंख हाथ में लिया और मुख की वायु से पूर्ण किया, अर्थात् फूंका।

तत्पश्चात् उस शंखके शब्दसे पद्मनाभ की सेना का तिहाई भाग हत हो गया, यावत् दिशा-विदिशा में भाग गया। उसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव ने सारंग नामक धनुष हाथ में लिया। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार की। तब पद्मनाभ की सेना का दूसरा तिहाई भाग उस धनुष की टंकार से हत-मथित हो गया यावत् इधर-उधर भाग गया। तब पद्मनाभ की सेना का एक तिहाई भाग ही शेष रह गया। अतएव वह सामर्थ्यहीन, बलहीन, वीर्यहीन और पुरुषार्थ-पराक्रम से हीन हो गया। वह कृष्ण के प्रहार को सहन करने या निवारण करने में असमर्थ होकर शीघ्रतापूर्वक, त्वरा के साथ अमरकंका राजधानी में जा पहुंचा। उसने अमरकंका राजधानी में प्रवेश किया और द्वार बंद कर लिये। द्वार बंद करके वह नगररोध के लिए सज्ज होकर स्थित हो गया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अमरकंका राजधानी थी, वहां गये। वहां जाकर रथ ठहराया। रथ से नीचे उतरे। वैक्रियसमुद्घात से समुद्घात किया। समुद्घात करके एक महान् नरसिंह का रूप धारण किया। फिर जोर-जोर के शब्द करके पैरोंका आस्फालन किया-पैर पछाड़े। कृष्ण वासुदेव के जोर-जोर की गर्जनाके साथ पैर पछाड़ने से अमरकंका राजधानी के प्राकार (परकोटा), गोपुर (फाटक), अट्टालिका (झरोखे), चारिय (परकोटा और नगर के बीच का मार्ग) और तोरण (द्वार का ऊपरी भाग) गिर गये और श्रेष्ठ महल तथा श्रीगृह (भंडार) चारों ओर से तहसनहस होकर सरसराट् करके धरती पर आ पड़े।

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानी को बुरी तरह भग्न हुई यावत् जान कर, भयभीत होकर द्रौपदी देवी की शरण में गया। तब द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से कहा-देवानुप्रिय ! क्या तुम नहीं जानते थे कि पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करते हुए तुम मुझे यहां लाये हो ? जो हुआ सो हुआ। अब हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ। स्नान करो। पहनने और ओढ़ने के वस्त्र गीले (पानी नितरते हुए) धारण करो। पहने हुए वस्त्र का छोर नीचा रक्खो अर्थात् काछ खुली रक्खो। अन्तःपुर की रानियां आदि परिवार को साथ में ले लो। प्रधान और श्रेष्ठ रत्न भेंट के लिए लो। मुझे आगे कर लो। इस प्रकार जाकर कृष्ण वासुदेव को दोनों हाथ जोड़ कर उनके पैरों में गिरो और उनकी शरण में जाओ। देवानुप्रिय ! उत्तम पुरुष प्रणिपतितवत्सल होते हैं-अर्थात् जो उनके सामने नम्र होते हैं, उन पर दया और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। (ऐसा करने से ही तुम्हारी नगरी आदि की रक्षा होगी। अन्यथा नहीं।)

उस समय पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके द्रौपदी देवी के कथनानुसार स्नान आदि करके कृष्ण वासुदेव की शरण में गया। वहां जाकर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा-'मैंने

देवानुप्रिय की ऋद्धि देख ली, पराक्रम देख लिया। हे देवानुप्रिय ! मैं खमाता हूं, आप यावत् क्षमा करें। यावत् मैं पुनः पुनः ऐसा नहीं करूंगा।' इस प्रकार कहकर उसने हाथ जोड़े। पैरों में गिरा। उसने अपने हाथों द्रौपदी देवी सौंपी।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा-'अरे पद्मनाभ ! अप्रार्थित (मृत्यु) की प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नहीं जानता कि तू मेरी भगिनी द्रौपदी देवी को जल्दी से यहां ले आया है ? तो ऐसा होने पर भी, अब ऐसा नहीं कि तुझे मुझसे भय हो।' इस प्रकार कह कर पद्मनाभ को छुट्टी दी। उसे छुटकारा देकर द्रौपदी देवी को ग्रहण किया और रथ पर आरूढ़ हुए। रथ पर आरूढ़ होकर पांचों पाण्डवों के समीप आये। वहां आकर द्रौपदी देवी अपने हाथ से पांचों पाण्डवों को सौंप दी।

तत्पश्चात् पांचों पाण्डवों के साथ, छठे आप स्वयं कृष्ण वासुदेव छह रथों में बैठ कर, लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था और जिधर भारतवर्ष था, उधर जाने को उद्यत हुए ॥१२६॥

उस काल और उस समय में, धातकीखंड द्वीप में, पूर्वार्ध भाग में, चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक उद्यान था। उस चम्पा नगरी में कपिल नामक वासुदेव राजा था। वह महान् हिमवान् पर्वत के समान था। यहां राजा का वर्णन कह लेना चाहिए।

उस काल और उस समय में मुनिसुव्रत नामक अरिहन्त चम्पा नगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे। कपिल वासुदेव ने उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। उसी समय मुनिसुव्रत अरिहन्तसे धर्मश्रवण करते-करते कपिल वासुदेव ने कृष्ण वासुदेव के पांचजन्य शंख का शब्द सुना। तब कपिल वासुदेव के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-'क्या धातकीखंड द्वीप के भारत वर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है ? जिसके शंख का शब्द ऐसा फैल रहा है, जैसे मेरे मुख की वायु से पूरित हुआ हो-मैंने बजाया हो।' कपिल वासुदेव ने शंख का ऐसा शब्द सुना।

मुनिसुव्रत अरिहंत ने कपिल वासुदेव से कहा-'हे कपिल वासुदेव ! मेरे पास धर्म-श्रवण करते हुए तुम्हें यह विचार आया है कि क्या इस भरतक्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है, जिसके शंख का यह शब्द फैल रहा है, आदि; तो हे कपिल वासुदेव ! मेरा यह अर्थ (कथन) सत्य है ?' (कपिल वासुदेव ने उत्तर दिया-) 'हां सत्य है।' मुनिसुव्रत अरिहंत ने पुनः कहा-'कपिल वासुदेव ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि एक क्षेत्र में, एक ही युग में और एक ही समय में दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव अथवा दो वासुदेव उत्पन्न हुए हों, उत्पन्न होते हों या उत्पन्न होंगे। इस प्रकार हे वासुदेव ! जम्बूद्वीप

नामक द्वीप से, भरतक्षेत्र से, हस्तिनापुर नगर से पाण्डु राजा की पुत्र-वधू और पांचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पहले का साथी देव हरण करके ले आया था। तब कृष्ण वासुदेव पांचों पाण्डवों समेत आप स्वयं छठे द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र आये हैं। वे पद्मनाभ राजा के साथ संग्राम कर रहे हैं। अतः कृष्ण वासुदेव के शंख का यह शब्द है, जो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे मुख की वायु से पूरित किया गया हो और जो इष्ट है, कान्त है और यहां तुम्हें सुनाई दिया है।'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दना की, नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार करके कहा-'भगवन ! मैं जाऊं और पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव को देखूं-उनके दर्शन करूं।' तब मुनिसुव्रत अरिहन्त ने कपिल वासुदेव से कहा-'हे देवानुप्रिय ! ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देखें, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्त्ती को देखें, एक बलदेव दूसरे बलदेव को देखें और एक वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखें। तब भी तुम लवणसमुद्र के मध्यभाग में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव के श्वेत एवं पीत ध्वजा के अग्रभाग देख सकोगे।'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर जल्दी-जल्दी जहां वेलाकूल (लवण समुद्र का किनारा) था, वहां आये। वहां आकर लवणसमुद्र के मध्य में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत पीत ध्वजा का अग्रभाग देखा। देख कर वे कहने लगे-'ये मेरे समान पुरुष हैं; ये पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव हैं जो लवणसमुद्र के मध्य में होकर जा रहे हैं।' ऐसा कह कर कपिल वासुदेव ने अपना पाञ्चजन्य शंख हाथ में लिया और उसे अपने मुख की वायु से पूरित किया-फूंका।

तब कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंखका शब्द सुना। सुन कर उन्होंने भी अपने पाञ्चजन्य को यावत् मुख की वायुसे पूरित किया। उस समय दोनों वासुदेवों ने शंख शब्द की समाचारी की, अर्थात् शंख के शब्द द्वारा मिलाप किया। तत्पश्चात् कपिल वासुदेव जहां अमरकंका राजधानी थी, वहां आये। आकर उन्होंने देखा कि अमरकंका के तोरण आदि टूट-फूट गये हैं। यह देख कर उन्होंने पद्मनाभ से कहा-'देवानुप्रिय ! यह अमरकंका भग्न तोरण आदि वाली होकर यावत् क्यों पड़ गई है ?'

तब पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा--'हे स्वामिन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप से, भारत वर्ष से यहां जल्दी से आकर कृष्ण वासुदेव ने, आपका पराभव करके आपका अपमान करके, अमरकंका को यावत् गिरा दिया है--अर्थात्

इस भग्नावस्था में पहुँचा दिया है।' तत्पश्चात् वे कपिल वासुदेव, पद्मनाभ से यह उत्तर सुनकर पद्मनाभ से बोले--'अरे पद्मनाभ ! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नहीं जानता कि तूने मेरे समान पुरुष कृष्ण वासुदेवका अनिष्ट किया है ?' इस प्रकार कह कर वे क्रुद्ध हुए, यावत् पद्मनाभ को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी। पद्मनाभ के पुत्र को अमरकंका राजधानी में महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। यावत् कपिल वासुदेव वापिस चले गये ॥१३०॥

इधर कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्रके मध्यभागसे जाते हुए गंगानदीके पास आये। तब उन्होंने पांचों पाण्डवोंसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ। जब तक गंगा महानदी को उतरो, तब तक मैं लवणसमुद्रके अधिपति सुस्थित देव से मिल लेता हूं।' तब वे पांचों पाण्डव, कृष्ण वासुदेवके ऐसा कहने पर जहां गंगा महानदी थी, वहां आये। आकर एक नौका की खोज की। खोज कर उस नौकासे गंगा महा-नदी उतरे। उतर कर परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव गंगा महानदी को अपनी भुजाओंसे पार करनेमें समर्थ हैं अथवा असमर्थ ? (चलो, इस बात की परीक्षा करें) ऐसा कह कर उन्होंने वह नौका छिपा दी। छिपा कर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव लवणाधिपति सुस्थित देवसे मिले। मिल कर जहां गंगा महानदी थी, वहां आये। वहां आकर उन्होंने सब तरफ नौका की खोज की, पर खोज करने पर भी नौका दिखाई नहीं दी। तब उन्होंने अपनी एक भुजासे अश्व और सारथी सहित रथ ग्रहण किया और दूसरी भुजासे बासठ योजन और आधा योजन अर्थात् साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदीको उतरनेके लिए उद्यत हुए। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जब गंगा महानदीके बीचोंबीच पहुंचे तो थक गये, नौका की इच्छा वाले हुए और बहुत खेदयुक्त हो गये। उन्हें पसीना आ गया। इस प्रकार वे थक गये। उस समय कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार का यह विचार आया कि—'अहा, पांचों पाण्डव बड़े बलवान् हैं, जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तार (पाट) वाली गंगा महानदी अपनी बाहुओंसे पार करली ! पांचों पाण्डवोंने इच्छा करके अर्थात् चाह कर या जान-बूझ कर पद्मनाभ राजा को पराजित नहीं किया।'

तब गंगा देवीने कृष्ण वासुदेव का ऐसा अध्यवसाय यावत् जानकर थाह दे दी—जल का थल कर दिया। उस समय कृष्ण वासुदेवने थोड़ी देर विश्राम लिया। विश्राम लेनेके बाद साढ़े बासठ योजन विस्तृत गंगा महानदी पार की। पार करके पांचों पाण्डवोंके पास पहुँचे। वहां पहुँच कर पांचों पाण्डवोंसे बोले—

'अहो देवानुप्रियो ! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योंकि तुमने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी यावत् बाहुबलसे पार की है। तुम लोगोंने चाह कर पद्मनाभ को यावत् पराजित नहीं किया।' तब कृष्ण वासुदेवके इस प्रकार कहने पर पांचों पाण्डवोंने कृष्ण वासुदेव से कहा—'देवानुप्रिय ! आपके द्वारा विसर्जित होकर अर्थात् आज्ञा पाकर हम लोग जहां गंगा महानदी थी, वहां आये। वहां आकर हमने नौका की खोज की। यावत् उस नौकासे पार उतर कर आपके बल की परीक्षा करनेके लिए हमने नौका छिपा दी। फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहां ठहरे हैं।'

पांचों पाण्डवोंका यह अर्थ (उत्तर) सुनकर और समझ कर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे। उनकी तीन बल वाली भृकुटि ललाट पर चढ़ गई। वे बोले—'ओह, जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्रको पार करके पद्मनाभको हत और मथित करके, यावत् पराजित करके अमरकंका राजधानीको तहसनहस किया और अपने हाथों द्रौपदी लाकर तुम्हें सौंपी, तब तुम्हें मेरा माहात्म्य नहीं मालूम हुआ ! अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे।' इस प्रकार कह कर उन्होंने हाथमें एक लोहदण्ड लिया और पाण्डवोंके रथोंको चूर-चूर कर दिया। रथ चूर-चूर करके उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथमर्दन नामक कोट स्थापित किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अपनी सेना का पड़ाव (छावनी) था, वहां आये। आकर अपनी सेनाके साथ मिल गये। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां द्वारिका नगरी थी, वहां आये। आकर द्वारिका नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१३१॥

तत्पश्चात् वे पांचों पाण्डव हस्तिनापुर नगरमें आये। पाण्डु राजाके पास पहुंचे। वहां पहुँच कर और हाथ जोड़ कर बोले—'हे तात ! कृष्णने हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दी है।' तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंसे प्रश्न किया—'पुत्रो ! किस कारण कृष्ण वासुदेवने तुम्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी ?' तब पांचों पाण्डवोंने पाण्डु राजाको ऐसा उत्तर दिया—'हे तात ! हम लोग अमरकंकासे लौटे और दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्रको पार कर चुके। तब कृष्ण वासुदेवने हमसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग चलो, गंगा महानदी को पार करो, यावत् मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरना। तब तक मैं सुस्थित देवसे मिल कर आता हूं—इत्यादि पूर्ववत् कहना यावत् हम लोग गंगा महानदी पार करके नौका छिपा कर उनकी राह देखते ठहरे। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्रके अधिपति सुस्थित देवसे मिलकर आये। इत्यादि सब पूर्ववत् कहें, केवल कृष्णके मनमें जो विचार उत्पन्न हुआ था, वह नहीं कहना। यावत् हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंसे कहा—'पुत्रो ! तुमने कृष्ण वासुदेव का अप्रिय (अनिष्ट)करके बुरा काम किया।' तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कुन्ती देवीको बुलाकर कहा—'देवानुप्रिये ! तुम द्वारिका जाओ और कृष्ण वासुदेवसे निवेदन करो कि-'इस प्रकार हे देवानुप्रिय ! तुमने पांचों पाण्डवों को देशनिर्वासन की आज्ञा दी है, किन्तु हे देवानुप्रिय ! तुम तो समग्र दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रके अधिपति हो। अतएव हे देवानुप्रिय ! आदेश दो कि पांचों पांडव किस दिशा अथवा किस विदिशामें जाएं ?' तब कुन्ती देवी, पाण्डु राजाके इस प्रकार कहने पर हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पहले कहे अनुसार द्वारिका पहुंचीं। अग्र उद्यान में ठहरीं। कृष्ण वासुदेवको सूचना करवाई। कृष्ण स्वागतके लिए आये। उन्हें महल में ले गये। यावत् पूछा—'हे पितृभगिनी ! आज्ञा कीजिए, आपके आने का क्या प्रयोजन है ?'

तब कुन्ती देवीने कृष्ण वासुदेव से कहा—'हे पुत्र ! तुमने पांचों पाण्डवोंको देश-निकाले का आदेश दिया है और तुम दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रके स्वामी हो, तो बतलाओ वे किस दिशा या विदिशा में जाएं ?' तब कृष्ण वासुदेवने कुन्ती देवी से कहा-'पितृभगिनी ! उत्तम पुरुष वासुदेव, बलदेव और चक्रवर्ती अपूतिवचन होते हैं-उनके वचन मिथ्या नहीं होते। (वे कह कर बदलते नहीं हैं, अतः मैं देश-निर्वासन की आज्ञा वापिस लेनेमें असमर्थ हूं।) अतएव देवानुप्रिये ! पांचों पाण्डव दक्षिण दिशाके वेलातट (समुद्र किनारे) जाएं और वहां पाण्डु-मथुरा नामक नयी नगरी बसावें और मेरे अदृष्ट सेवक होकर रहें अर्थात् मेरे सामने न आवें।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती देवीका सत्कार-सन्मान किया, यावत् उन्हें विदा दी।

तत्पश्चात् कुन्ती देवीने द्वारवती नगरीसे आकर यावत् पाण्डु राजाको यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया। तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंको बुलाकर कहा—'हे पुत्रो ! तुम दक्षिणी वेलातट (समुद्रके किनारे) जाओ और वहां पाण्डु-मथुरा नगरी बसा कर रहो।' तब पांचों पाण्डवोंने पाण्डु राजा की बात यावत् 'तथा-अच्छी बात है' कह कर स्वीकार की। स्वीकार करके बल और वाहनोंके साथ तथा घोड़े और हाथी साथ लेकर हस्तिनापुर से बाहर निकले। निकल कर दक्षिणी वेलातट पर पहुंचे। पाण्डुमथुरा नगरी की स्थापना की। नगरीकी स्थापना करके वे वहां विपुल भोगोंके समूहसे युक्त हो गये-सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥१३२॥

तत्पश्चात् एक बार किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई। तत्पश्चात् द्रौपदी देवी ने नौ मास यावत् पूर्ण होने पर सुन्दर रूप वाले और सुकुमार बालक

'अहो देवानुप्रियो ! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योंकि तुमने साढ़े वासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी यावत् बाहुबलसे पार की है। तुम लोगोंने चाह कर पद्मनाभ को यावत् पराजित नहीं किया।' तब कृष्ण वासुदेवके इस प्रकार कहने पर पांचों पाण्डवोंने कृष्ण वासुदेव से कहा—'देवानुप्रिय ! आपके द्वारा विसर्जित होकर अर्थात् आज्ञा पाकर हम लोग जहां गंगा महानदी थी, वहां आये। वहां आकर हमने नौका की खोज की। यावत् उस नौकासे पार उतर कर आपके बल की परीक्षा करनेके लिए हमने नौका छिपा दी। फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहां ठहरे हैं।'

पांचों पाण्डवोंका यह अर्थ (उत्तर) सुनकर और समझ कर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे। उनकी तीन बल वाली भृकुटि ललाट पर चढ़ गई। वे बोले—'ओह, जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्रको पार करके पद्मनाभको हत और मथित करके, यावत् पराजित करके अमरकंका राजधानीको तहसनहस किया और अपने हाथों द्रौपदी लाकर तुम्हें सौंपी, तब तुम्हें मेरा माहात्म्य नहीं मालूम हुआ ! अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे।' इस प्रकार कह कर उन्होंने हाथमें एक लोहदण्ड लिया और पाण्डवोंके रथोंको चूर-चूर कर दिया। रथ चूर-चूर करके उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथमर्दन नामक कोट स्थापित किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अपनी सेना का पड़ाव (छावनी) था, वहां आये। आकर अपनी सेनाके साथ मिल गये। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां द्वारिका नगरी थी, वहां आये। आकर द्वारिका नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१३१॥

तत्पश्चात् वे पांचों पाण्डव हस्तिनापुर नगरमें आये। पाण्डु राजाके पास पहुंचे। वहां पहुँच कर और हाथ जोड़ कर बोले—'हे तात ! कृष्णने हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दी है।' तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंसे प्रश्न किया—'पुत्रो ! किस कारण कृष्ण वासुदेवने तुम्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी ?' तब पांचों पाण्डवोंने पाण्डु राजाको ऐसा उत्तर दिया—'हे तात ! हम लोग अमरकंकासे लौटे और दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्रको पार कर चुके। तब कृष्ण वासुदेवने हमसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग चलो, गंगा महानदी को पार करो, यावत् मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरना। तब तक मैं सुस्थित देवसे मिल कर आता हूं—इत्यादि पूर्ववत् कहना यावत् हम लोग गंगा महानदी पार करके नौका छिपा कर उनकी राह देखते ठहरे। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्रके अधिपति सुस्थित देवसे मिलकर आये। इत्यादि सब पूर्ववत् कहें, केवल कृष्णके मनमें जो विचार उत्पन्न हुआ था, वह नहीं कहना। यावत् हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंसे कहा—'पुत्रो ! तुमने कृष्ण वासुदेव का अप्रिय (अनिष्ट)करके बुरा काम किया।' तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कुन्ती देवीको बुलाकर कहा—'देवानुप्रिये ! तुम द्वारिका जाओ और कृष्ण वासुदेवसे निवेदन करो कि-'इस प्रकार हे देवानुप्रिय ! तुमने पांचों पाण्डवों को देशनिर्वासन की आज्ञा दी है, किन्तु हे देवानुप्रिय ! तुम तो समग्र दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रके अधिपति हो। अतएव हे देवानुप्रिय ! आदेश दो कि पांचों पांडव किस दिशा अथवा किस विदिशामें जाएं ?' तब कुन्ती देवी, पाण्डु राजाके इस प्रकार कहने पर हाथीके स्कंध पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पहले कहे अनुसार द्वारिका पहुंचीं। अग्र उद्यान में ठहरीं। कृष्ण वासुदेवको सूचना करवाई। कृष्ण स्वागतके लिए आये। उन्हें महल में ले गये। यावत् पूछा—'हे पितृभगिनी ! आज्ञा कीजिए, आपके आने का क्या प्रयोजन है ?'

तब कुन्ती देवीने कृष्ण वासुदेव से कहा--'हे पुत्र ! तुमने पांचों पाण्डवोंको देश-निकाले का आदेश दिया है और तुम दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रके स्वामी हो, तो बतलाओ वे किस दिशा या विदिशा में जाए' ?' तब कृष्ण वासुदेवने कुन्ती देवी से कहा-'पितृभगिनी ! उत्तम पुरुष वासुदेव, बलदेव और चक्रवर्ती अपूतिवचन होते हैं-उनके वचन मिथ्या नहीं होते। (वे कह कर बदलते नहीं हैं, अतः मैं देश-निर्वासन की आज्ञा वापिस लेनेमें असमर्थ हूं।) अतएव देवानुप्रिये ! पांचों पाण्डव दक्षिण दिशाके वेलातट (समुद्र किनारे) जाएं और वहां पाण्डु-मथुरा नामक नयी नगरी बसावें और मेरे अदृष्ट सेवक होकर रहें अर्थात् मेरे सामने न आवें।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती देवीका सत्कार-सन्मान किया, यावत् उन्हें विदा दी।

तत्पश्चात् कुन्ती देवीने द्वारवती नगरीसे आकर यावत् पाण्डु राजाको यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया। तब पाण्डु राजाने पांचों पाण्डवोंको बुलाकर कहा—'हे पुत्रो ! तुम दक्षिणी वेलातट (समुद्रके किनारे) जाओ और वहां पाण्डु-मथुरा नगरी बसा कर रहो।' तब पांचों पाण्डवोंने पाण्डु राजा की बात यावत् 'तथा-अच्छी बात है' कह कर स्वीकार की। स्वीकार करके बल और वाहनोंके साथ तथा घोड़े और हाथी साथ लेकर हस्तिनापुर से बाहर निकले। निकल कर दक्षिणी वेलातट पर पहुंचे। पाण्डुमथुरा नगरी की स्थापना की। नगरीकी स्थापना करके वे वहां विपुल भोगोंके समूहसे युक्त हो गये-सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥१३२॥

तत्पश्चात् एक वार किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई। तत्पश्चात् द्रौपदी देवी ने नौ मास यावत् पूर्ण होने पर सुन्दर रूप वाले और सुकुमार बालक

को जन्म दिया। बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि—क्योंकि हमारा यह बालक पांच पाण्डवों का पुत्र है और द्रौपदी देवी का आत्मज है अतः इस बालक का नाम 'पाण्डुसेन' होना चाहिए। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुसेन' नाम रक्खा।

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। उन्हें वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली। पाण्डव भी निकले। धर्म श्रवण करके उन्होंने स्थविर से कहा-'देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं; केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें। तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।' तब स्थविर धर्मघोष ने कहा-'देवानुप्रियो! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डव जहां अपना घर था, वहां आये। आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और उससे कहा-'देवानुप्रिये! हमने स्थविर साधु से धर्म सुना है, यावत् हम प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं। देवानुप्रिये! तुम्हें क्या करना है?' तब द्रौपदी देवी ने पांचों पाण्डवों से कहा-देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् होगा? अतएव मैं भी संसार के भय से उद्विग्न होकर देवानुप्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करूंगी।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डवों ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया। यावत् पांडुसेन राजा हो गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा। तब किसी समय एक बार पांचों पांडवों ने और द्रौपदी देवी ने पांडुसेन राजा से दीक्षा की अनुमति मांगी। तब पांडुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की यावत् तैयारी करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाएं तैयार करो। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिविकाओं पर आरूढ़ होकर चले और स्थविर मुनि के स्थान के पास पहुंच कर शिविकाओं से नीचे उतरे। उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुंचे। वहां जाकर स्थविर से निवेदन किया-'भगवन्! यह संसार जल रहा है आदि, यावत् पांचों पांडव श्रमण बन गये। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तेला, चौला, पंचौला तथा अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे॥१३३॥

तत्पश्चात् द्रौपदी देवी शिविका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई। वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गई। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

अध्ययन करके वहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश-भक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी। तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलें। निकल कर वाहर जनपद में विचरण करने लगे ॥१३४॥

उस काल और उस समयमें अरिहन्त अरिष्टनेमि जहां सुराष्ट्र जनपद था, वहां आये। आकर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय वहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि–'हे देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं।' तव युधिष्ठिर प्रभृति पांचों अनगारों ने वहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को वुलाया और कहा–'देवानुप्रियो ! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवंत से पूछ कर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है।' परस्पर की यह वात सव ने स्वीकार की। स्वीकार करके वे जहां स्थविर भगवंत थे, वहां गये। जाकर स्थविर भगवान् को वन्दन–नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे कहा-'भगवन् ! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना करने के हेतु जाने की इच्छा करते हैं।'

स्थविर० ने अनुज्ञा दी–'देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो, वैसा करो।' तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हें वन्दन नमस्कार किया। वन्दन–नमस्कार करके वे स्थविर० के पास से निकले। निकल कर निरन्तर मासखमण का तपश्चरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, यावत् जहां हस्तीकल्प नगर था, वहां पहुंचे। पहुंच कर हस्तीकल्प नगर के वाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में यावत् ठहरे।

तत्पश्चात् युधिष्ठिरके सिवाय शेष चार अनगारोंने मासक्षमण के पारणक के दिन, पहले प्रहरमें स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहरमें ध्यान किया। शेष गौतम स्वामीके समान वर्णन जानना चाहिए, विशेष यह कि उन्होंने युधिष्ठिर अनगारसे पूछा—भिक्षा की अनुमति मांगी। फिर वे भिक्षा के लिए जव अटन कर रहे थे, तव उन्होंने वहुत जनोंसे सुना कि—'हे देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि गिरिनार पर्वतके शिखर पर, एक मास का निर्जल उपवास करके, पांच सौ छत्तीस साधुओं के साथ, काल-धर्मको प्राप्त हो गये हैं, यावत् सिद्ध वुद्ध होकर समस्त दुःखोंसे मुक्त हो गये हैं।'

तव युधिष्ठिरके सिवाय वे चारों अनगार वहुत जनोंके पास से यह अर्थ सुनकर हस्तीकल्प नगरसे वाहर निकले।···निकल कर जहां सहस्राम्रवन था और जहां युधिष्ठिर अनगार थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर आहार-पानी की प्रत्युपेक्षणा

को जन्म दिया। बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि—क्योंकि हमारा यह बालक पांच पाण्डवों का पुत्र है और द्रौपदी देवी का आत्मज है अतः इस बालक का नाम 'पाण्डुसेन' होना चाहिए। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुसेन' नाम रक्खा।

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। उन्हें वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली। पाण्डव भी निकले। धर्म श्रवण करके उन्होंने स्थविर से कहा-'देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं; केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें। तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।' तब स्थविर धर्मघोष ने कहा-'देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डव जहां अपना घर था, वहां आये। आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और उससे कहा-'देवानुप्रिये! हमने स्थविर साधु से धर्म सुना है, यावत् हम प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं। देवानुप्रिये! तुम्हें क्या करना है?' तब द्रौपदी देवी ने पांचों पाण्डवों से कहा-देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् होगा? अतएव मैं भी संसार के भय से उद्विग्न होकर देवानुप्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करूंगी।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डवों ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया। यावत् पांडुसेन राजा हो गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा। तब किसी समय एक बार पांचों पांडवों ने और द्रौपदी देवी ने पांडुसेन राजा से दीक्षा की अनुमति मांगी। तब पांडुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की यावत् तैयारी करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाएं तैयार करो। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिविकाओं पर आरूढ़ होकर चले और स्थविर मुनि के स्थान के पास पहुंच कर शिविकाओं से नीचे उतरे। उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुंचे। वहां जाकर स्थविर से निवेदन किया-'भगवन्! यह संसार जल रहा है आदि, यावत् पांचों पांडव श्रमण बन गये। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तेला, चोला, पंचोला तथा अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे॥१३३॥

तत्पश्चात् द्रौपदी देवी शिविका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई। वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गई। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

अध्ययन करके बहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश–भक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी। तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलें। निकल कर बाहर जनपद में विचरण करने लगे ॥१३४॥

उस काल और उस समयमें अरिहन्त अरिष्टनेमि जहां सुराष्ट्र जनपद था, वहां आये। आकर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि–'हे देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं।' तब युधिष्ठिर प्रभृति पांचों अनगारों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को बुलाया और कहा–'देवानुप्रियो ! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवंत से पूछ कर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है।' परस्पर की यह बात सब ने स्वीकार की। स्वीकार करके वे जहां स्थविर भगवंत थे, वहां गये। जाकर स्थविर भगवान् को वन्दन–नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे कहा-'भगवन् ! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना करने के हेतु जाने की इच्छा करते हैं।'

स्थविर० ने अनुज्ञा दी–'देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो, वैसा करो।' तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हें वन्दन नमस्कार किया। वन्दन–नमस्कार करके वे स्थविर० के पास से निकले। निकल कर निरन्तर मासखमण का तपश्चरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, यावत् जहां हस्तीकल्प नगर था, वहां पहुंचे। पहुंच कर हस्तीकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में यावत् ठहरे।

तत्पश्चात् युधिष्ठिरके सिवाय शेष चार अनगारोंने मासक्षमण के पारणक के दिन, पहले प्रहरमें स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहरमें ध्यान किया। शेष गौतम स्वामीके समान वर्णन जानना चाहिए, विशेष यह कि उन्होंने युधिष्ठिर अनगारसे पूछा—भिक्षा की अनुमति मांगी। फिर वे भिक्षा के लिए जब अटन कर रहे थे, तब उन्होंने बहुत जनोंसे सुना कि—'हे देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि गिरिनार पर्वतके शिखर पर, एक मास का निर्जल उपवास करके, पांच सौ छत्तीस साधुओं के साथ, काल-धर्मको प्राप्त हो गये हैं, यावत् सिद्ध बुद्ध होकर समस्त दुःखोंसे मुक्त हो गये हैं।'

तब युधिष्ठिरके सिवाय वे चारों अनगार बहुत जनोंके पास से यह अर्थ सुनकर हस्तीकल्प नगरसे बाहर निकले।...निकल कर जहां सहस्राम्रवन था और जहां युधिष्ठिर अनगार थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर आहार-पानी की प्रत्युपेक्षणा

को जन्म दिया। बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि—क्योंकि हमारा यह बालक पांच पाण्डवों का पुत्र है और द्रौपदी देवी का आत्मज है अतः इस बालक का नाम 'पाण्डुसेन' होना चाहिए। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुसेन' नाम रक्खा।

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। उन्हें वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली। पाण्डव भी निकले। धर्म श्रवण करके उन्होंने स्थविर से कहा-'देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं; केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें। तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।' तब स्थविर धर्मघोष ने कहा-'देवानुप्रियो! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डव जहां अपना घर था, वहां आये। आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और उससे कहा-'देवानुप्रिये! हमने स्थविर साधु से धर्म सुना है, यावत् हम प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं। देवानुप्रिये! तुम्हें क्या करना है?' तब द्रौपदी देवी ने पांचों पाण्डवों से कहा-देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् होगा? अतएव मैं भी संसार के भय से उद्विग्न होकर देवानुप्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करूंगी।'

तत्पश्चात् पांचों पाण्डवों ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया। यावत् पांडुसेन राजा हो गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा। तब किसी समय एक बार पांचों पांडवों ने और द्रौपदी देवी ने पांडुसेन राजा से दीक्षा की अनुमति मांगी। तब पांडुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की यावत् तैयारी करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाएं तैयार करो। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिविकाओं पर आरूढ़ होकर चले और स्थविर मुनि के स्थान के पास पहुंच कर शिविकाओं से नीचे उतरे। उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुंचे। वहां जाकर स्थविर से निवेदन किया-'भगवन्! यह संसार जल रहा है आदि, यावत् पांचों पांडव श्रमण बन गये। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तेला, चौला, पंचौला तथा अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे॥१३३॥

तत्पश्चात् द्रौपदी देवी शिविका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई। वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गई। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

अध्ययन करके बहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश-भक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी। तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलें। निकल कर बाहर जनपद में विचरण करने लगे ॥१३४॥

उस काल और उस समयमें अरिहन्त अरिष्टनेमि जहां सुराष्ट्र जनपद था, वहां आये। आकर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि-'हे देवानुप्रियो! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं।' तब युधिष्ठिर प्रभृति पांचों अनगारों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को बुलाया और कहा-'देवानुप्रियो! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवंत से पूछ कर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है।' परस्पर की यह बात सब ने स्वीकार की। स्वीकार करके वे जहां स्थविर भगवंत थे, वहां गये। जाकर स्थविर भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे कहा-'भगवन्! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना करने के हेतु जाने की इच्छा करते हैं।'

स्थविर० ने अनुज्ञा दी-'देवानुप्रियो! जैसे सुख हो, वैसा करो।' तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हें वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वे स्थविर० के पास से निकले। निकल कर निरन्तर मासखमण का तपश्चरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, यावत् जहां हस्तीकल्प नगर था, वहां पहुंचे। पहुंच कर हस्तीकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में यावत् ठहरे।

तत्पश्चात् युधिष्ठिरके सिवाय शेष चार अनगारोंने मासक्षमण के पारणक के दिन, पहले प्रहरमें स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहरमें ध्यान किया। शेष गौतम स्वामीके समान वर्णन जानना चाहिए, विशेष यह कि उन्होंने युधिष्ठिर अनगारसे पूछा—भिक्षा की अनुमति मांगी। फिर वे भिक्षा के लिए जब अटन कर रहे थे, तब उन्होंने बहुत जनोंसे सुना कि—'हे देवानुप्रियो! तीर्थंकर अरिष्टनेमि गिरिनार पर्वतके शिखर पर, एक मास का निर्जल उपवास करके, पांच सौ छत्तीस साधुओं के साथ, काल-धर्मको प्राप्त हो गये हैं, यावत् सिद्ध बुद्ध होकर समस्त दुःखोंसे मुक्त हो गये हैं।'

तब युधिष्ठिरके सिवाय वे चारों अनगार बहुत जनोंके पास से यह अर्थ सुनकर हस्तीकल्प नगरसे बाहर निकले।···निकल कर जहां सहस्राम्रवन था और जहां युधिष्ठिर अनगार थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर आहार-पानी की प्रत्युपेक्षणा

की। प्रत्युपेक्षणा करके गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। फिर एषणा-अनेषणा को आलोचना की। आलोचना करके आहार-पानी दिखलाया। दिखला कर युधिष्ठिर अनगारसे कहा—"हे देवानुप्रिय! (हम आपकी अनुमति लेकर भिक्षाके लिए नगरमें गये थे। वहां हमने सुना है कि तीर्थंकर अरिष्टनेमि) यावत् कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। अतः देवानुप्रिय! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि भगवान्के निर्वाणका वृत्तान्त सुननेसे पहले ग्रहण किये हुए आहार-पानीको परठ कर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हों तथा संलेखना करके झोषणा (कर्म-शोषणा की क्रिया) का सेवन करके और मृत्युकी आकांक्षा न करते हुए विचरें-रहें" इस प्रकार कह कर सबने परस्परके इस अर्थ (विचार) को अंगीकार किया। अंगीकार करके वह पहले ग्रहण किया आहार—पानी एक जगह परठ दिया। परठ कर जहां शत्रुंजय पर्वत था, वहां गये। शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर यावत् मृत्यु की अपेक्षा न करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारोंने सामायिकसे लेकर चौदह पूर्वों का अभ्यास करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, दो मास की संलेखनासे आत्मा का झोषण करके, जिस प्रयोजनके लिए जिनकल्प, स्थविरकल्प, मुंडता आदि अंगीकार की जाती है, यावत् उस प्रयोजन को सिद्ध किया। उन्हें अनन्त यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ। यावत् वे सिद्ध हो गये ॥१३५॥

दीक्षा अंगीकार करनेके पश्चात् द्रौपदी आर्याने सुव्रता आर्याके पास सामायिकसे लेकर ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया...करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया। अन्तमें एक मासकी संलेखना करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, तथा कालमासमें काल करके ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें जन्म लिया। ब्रह्म-लोक नामक पांचवें देवलोकमें कितनेक देवोंकी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमें द्रौपदी देवकी भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीरसे प्रश्न किया—'भगवन्! वह द्रौपदी देव वहां से चय कर कहां जन्म लेगा?' तब भगवान् ने उत्तर दिया-'वहांसे च [illegible] कर्मोका अन्त करेगा।' प्रकृत अध्ययन का उपसंहार करते हुए श्री [illegible] जम्बू स्वामीसे कहा—इस प्रकार निश्चय ही; हे जम्बू! श्रमण [illegible] ने सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। जैसा [illegible] तुम्हें कहा है ॥१३६॥

उपनय

अत्यन्त क्लेश सहन करके कितना ही कठिन तप क्यों न किया उसे निदानके दोषसे दूषित बना लिया तो वह मोक्ष का कारण नहीं हो

सुकुमालिकाके भवमें द्रौपदीके जीवने किया। इसके अतिरिक्त, भक्तिभावसे रहित होकर सुपात्रको भी यदि अमनोहर-अयोग्य दान दिया जाय, तो वह भी अनर्थका हेतु होता है। इस विषयमें नागश्री द्वारा कटु-तूंबे के शाक का दान ज्वलंत उदाहरण है।

॥ सोलहवां अध्ययन समाप्त ॥

सत्तारहवां अश्वज्ञात-अध्ययन

जम्बू स्वामीने अपने गुरु श्री सुधर्मा स्वामीसे प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणको प्राप्त जिनेन्द्र देवने सोलहवें ज्ञात-अध्ययनका यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो सत्तरहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?' श्री सुधर्मा स्वामीने जम्बू स्वामी के प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा-उस काल और उस समयमें हस्तिशीर्ष नामक नगर था। यहां नगर-वर्णन जान लेना चाहिए। उस नगरमें कनककेतु नामक राजा था। राजा का वर्णन समझ लेना चाहिए। उस हस्तिशीर्ष नगरमें बहुतसे सांयात्रिक नौकावणिक् (देशान्तरमें नौका या जहाज द्वारा जाकर व्यापार करने वाले) रहते थे। वे धनाढ्य थे, यावत् बहुत लोगोंसे भी पराभव न पाने वाले थे। एक बार किसी समय वे सांयात्रिक नौकावणिक् आपसमें मिले। उन्होंने अर्हन्नक की भांति विचार किया, यावत् वे लवणसमुद्रमें कई सैंकड़ों योजनों तक अवगाहन भी कर गये।

उस समय उन वणिकों को माकन्दीपुत्रोंके समान बहुत सैंकड़ों उत्पात हुए, यावत् समुद्री तूफान भी उत्पन्न हो गया। उस समय वह नौका उस तूफानी वायु से बार-बार कांपने लगी, बार-बार चलायमान होने लगी, बार-बार क्षुब्ध होने लगी और उसी जगह चक्कर खाने लगी। उस समय नौकाके निर्यामक (खेवटिया) की बुद्धि मारी गई, श्रुति (समुद्रयात्रा संबंधी शास्त्र का ज्ञान) भी नष्ट हो गई और संज्ञा (होशहवास) भी गायब हो गई। वह दिशामूढ़ हो गया। उसे यह भी ज्ञान न रहा कि पोतवहन (नौका) कौनसे प्रदेशमें या कौन-सी दिशा अथवा विदिशामें चल रहा है ? उसके मनके संकल्प भग हो गये। यावत् वह चिन्ता में लीन हो गया। उस समय बहुतसे कुक्षिधार (फावड़ा चलाने वाले नौकर), कर्णधार, गब्भिल्लक (भीतरी फुटकर काम करने वाले) तथा सांयात्रिक नौकावणिक् निर्यामकके पास आये। आकर उससे बोले–'देवानुप्रिय ! नष्ट मनके संकल्प वाले होकर चिन्ता क्यों कर रहे हो ?

तब उस निर्यामकने उन बहुतसे कुक्षिधारकों, कर्णधारों, गब्भिल्लकों और सांयात्रिक नौकावणिकों से कहा—'देवानुप्रियो ! मेरी मति मारी गई है, यावत् पोतवहन किस दिशा या विदिशामें जा रहा है, यह भी मुझे नहीं जान पड़ता। अतएव मैं भग्नमनोरथ होकर चिन्ता कर रहा हूं। तब वे कर्णधार, उस

निर्यामक से यह बात सुनकर और समझ कर भयभीत हुए। उन्होंने स्नान किया और हाथ जोड़कर बहुतसे इन्द्र, स्कंद (कार्तिकेय) आदि देवोंकी, मल्लि--अध्ययन में कहे अनुसार मनौती मनाने लगे। थोड़ी देर पश्चात् वह निर्यामक लब्धमति, लब्धश्रुति, लब्धसंज्ञ और अदिङ्मूढ़ हो गया। अर्थात् उसकी बुद्धि लौट आई, शास्त्रज्ञान जाग गया, होश आ गया और दिशा का ज्ञान भी हो गया। तब उस निर्यामकने उन बहुसंख्यक कुक्षिधारों, गब्भिल्लकों और सांयात्रिक नौकावणिकोंसे कहा—'देवानुप्रियो! मुझे बुद्धि प्राप्त हो गई है, यावत् मेरी दिशा-मूढ़ता नष्ट हो गई है। देवानुप्रियो! हम लोग कालिक द्वीप के समीप आ पहुंचे हैं। वह कालिक द्वीप दिखाई दे रहा है।' उस समय वे कुक्षिधार, कर्णधार, गब्भिल्लक तथा सांयात्रिक नौकावणिक् उस निर्यामक (खलासी) की यह बात सुन कर और समझ कर हृष्ट-तुष्ट हुए। फिर दक्षिण दिशाके अनुकूल वायुसे वहां पहुंचे जहां कालिक द्वीप था। वहां पहुँच कर लंगर डाला,लंगर डाल कर छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीपमें उतरे।

उस कालिक द्वीप में उन्होंने बहुत-सी चांदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें, हीरे की खानें और बहुत-से अश्व देखे। वे अश्व कैसे थे? वे आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति के थे। उनका वेढ अर्थात् वर्णन जातिमान् अश्वों के वर्णन के समान यहां समझ लेना चाहिए। वे अश्व नील वर्ण वाली रेणुके समान वर्ण वाले और श्रोणिसूत्रक अर्थात् बालकों की कमरमें बांधनेके काले डोरे जैसे वर्ण वाले थे। (इसी प्रकार कोई श्वेत तथा कोई लाल वर्ण के थे।) उन अश्वों ने उन वणिकों को देखा। देख कर उन की गंध सूंघी। गंध सूंघ कर वे अश्व भयभीत हुए, त्रास को प्राप्त हुए, उद्विग्न हुए, उनके मन में उद्वेग उत्पन्न हुआ, अतएव वे कई योजन दूर भाग गये। वहां उन्हें बहुत-से गोचर (चरने के खेत—चरागाह) प्राप्त हुए। खूब घास और पानी मिलने से वे निर्भय एवं निरुद्वेग होकर सुखपूर्वक वहां विचरने लगे।

तब उन सांयात्रिक नौकावणिकों ने आपस में इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! हमें अश्वों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नहीं। यहां यह बहुत-सी चांदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें और हीरों की खानें हैं। अतएव हम लोगों को चांदी-सोने से, रत्नों से और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्कर है।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात अंगीकार की। अंगीकार करके उन्होंने हिरण्य से, सुवर्ण से, रत्नों से, हीरों से, घास से, अन्न से, काष्ठों से और मीठे पानी से अपना जहाज भर लिया। भर कर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायुसे जहां गंभीर पोतवहन पट्टन था, वहां आये। आकर जहाजको लंगर डाला। लंगर डाल कर गाड़ी—गाड़े तैयार किये। तैयार करके लाये हुए उस हिरण्य

स्वर्ण यावत् हीरों का छोटी नौकाओं द्वारा संचार किया अर्थात् पोत-वहन से गाड़ियों—गाड़ों में भरा। फिर गाड़ी—गाड़े जोते। जोत कर जहां हस्तिशीर्ष नगर था वहां पहुँचे। हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अग्र उद्यान में सार्थ को ठहराया। गाड़ी—गाड़े खोले। फिर बहुमूल्य उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास आये। वह उपहार राजाके समक्ष रख दिया। तब राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों के उस बहुमूल्य उपहार को यावत् स्वीकार किया।

फिर राजा ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग ग्रामों में यावत् आकरों में घूमते हो और बार—बार पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र में अवगाहन करते हो, तुमने कहीं कोई आश्चर्यजनक—अद्भुत-अनोखी वस्तु देखी है ?' तब सांयात्रिक नौकावणिकों ने राजा कनककेतु से कहा—'हे देवानुप्रिय ! हम लोग इसी हस्तिशीर्ष नगर के निवासी हैं; इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् हम कालिक द्वीप के समीप गये। उस द्वीप में बहुत-सी चांदी की खानें, यावत् बहुत-से अश्व हैं। वे अश्व कैसे हैं ? नील वर्ण वाली रेणु के समान और श्रोणिसूत्रक के समान श्याम वर्ण वाले हैं। यावत् वे अश्व हमारी गंध से कई योजन दूर चले गये। अतएव हे स्वामिन् ! हमने कालिक द्वीप में उन घोड़ों को आश्चर्यभूत (विस्मय की वस्तु) देखा है।'

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिकों के पाससे यह अर्थ सुन कर उन सांयात्रिकों से कहा—'देवानुप्रियो ! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिक द्वीपसे उन अश्वों को यहां ले आओ।' तब सांयात्रिक वणिकों ने कनककेतु राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! बहुत अच्छा।' ऐसा कह कर उन्होंने राजा का वचन आज्ञा के रूप में विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम सांयात्रिक वणिकों के साथ जाओ और कालिक द्वीप से मेरे लिए अश्व ले आओ।' उन्होंने भी राजा का आदेश अंगीकार किया। तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी—गाड़े सजाये। सजा कर उनमें बहुत—सी वीणाएं, वल्लकी, भ्रामरी, कच्छभी, भंभा, षट्भ्रमरी आदि विविध प्रकार की वीणाओं तथा विचित्र वीणाओं से और श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य अन्य बहुत—सी वस्तुओं से गाड़ी—गाड़े भर लिये।

श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य (प्रिय) वस्तुएं भर कर बहुत—से कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठ कर्म ४(लकड़ीके पाटिये पर चित्रित चित्र), ग्रंथिम ४

(गूंथी हुई माला आदि), यावत् संघातिम (समूह रूप करके तैयार किये गये पदार्थ) तथा अन्य चक्षुइन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी—गाड़ों में भरे। भर कर बहुत—से कोष्ठपुट तथा केतकीपुट आदि यावत् अन्य बहुत से घ्राणेन्द्रिय के योग्य पदार्थों से गाड़ी—गाड़े भरे। भर कर बहुत-से खांड, गुड़, शक्कर, मत्संडिका-(मिश्री),पुष्पोत्तर (एक प्रकार की शक्कर) तथा पद्मोत्तर(शक्कर-विशेष) आदि अन्य अनेक जिह्वा—इन्द्रियके योग्य द्रव्य गाड़ी—गाड़ोंमें भरे। भर कर बहुत-से कोयवक—रुई के बने वस्त्र, कंवल—रत्नकंवल, प्रावरण—ओढ़नेके वस्त्र, नवत—जीन, मलय—आसन विशेष अथवा मलय देश में बने वस्त्र, मसूरक—आसन-विशेष, शिलापट्टक (कोमल शिलाएं) यावत् हंसगर्भ—श्वेत वस्त्र तथा दूसरे स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य द्रव्य यावत् गाड़ी—गाड़ों में भरे।

उक्त सब द्रव्य भर कर जहां गंभीर पोतपट्टन था, वहां पहुंचे। पहुँच कर गाड़ी—गाड़े खोले। खोल कर पोतवहन तैयार किया। तैयार करके उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के द्रव्य तथा काष्ठ, तृण, जल, चावल, आटा, गोरस, यावत् अन्य बहुत-से पोतवहन के योग्य पदार्थ पोतवहन में भरे।

वे उपर्युक्त सब सामान पोतवहन में भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहां कालिक द्वीप था, वहां आये। आकर लंगर डाला। लंगर डाल कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधके पदार्थों को छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतारा। उतार कर वे घोड़े जहां-जहां बैठते थे, सोते थे और लोटते थे, वहां वहां वे कौटुम्बिक पुरुष वह वीणा, विचित्र वीणा आदि श्रोत्रेन्द्रिय को प्रिय वाद्य बजाते रहने लगे तथा उनके पास चारों ओर जाल स्थापित कर दिए। स्थापित करके वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर रहे।

जहां—जहां वे अश्व बैठते थे, यावत् लोटते थे, वहां–वहां उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुतेरे कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म यावत् संघातिम तथा अन्य बहुत–से चक्षु—इन्द्रिय के योग्य पदार्थ रख दिये। तथा उन अश्वों के पास चारों ओर जाल लगा दिए। तदनन्तर वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर छिप गये। जहां–जहां वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहां–वहां उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत से कोष्ठपुट यावत् दूसरे घ्राणेन्द्रियके प्रिय पदार्थों का पुञ्ज (ढेर) और निकर (बिखरा हुआ समूह) कर दिया। करके उनके पास चारों ओर पुञ्ज करके यावत् वे मूक रह गये।

जहां-जहां वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहां-वहां कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़के यावत् अन्य बहुत-से जिह्वेन्द्रियके योग्य पदार्थों के पुञ्ज और निकर कर दिये। करके उन जगहों पर गड्हे खोदे। खोद कर

उनमें गुड़ का पानी, खांडका पानी, पोर (ईख) का पानी तथा दूसरा बहुत तरह का पानी उन गड़हों में भर दिया। भर कर उनके पास चारों ओर स्थापित करके यावत् मूक हो रहे।

जहां-जहां वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे यावत् लोटते थे, वहां-वहां कोयवक (रुई के वस्त्र) यावत् शिलापट्टक (कोमल शिला) तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य आस्तरण-प्रत्यास्तरण (एक दूसरे के ऊपर बिछाये हुए वस्त्र) रख दिये। रख कर उनके पास चारों ओर यावत् मूक होकर रह गए। तत्पश्चात् वे अश्व वहां आये, जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध रक्खे थे। वहां आकर उनमें से कोई-कोई अश्व 'यह शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध अपूर्व है अर्थात् पहले कभी इसका अनुभव नहीं किया है,' ऐसा विचार कर, उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्छित (आसक्त) न होकर उस उत्कृष्ट शब्द यावत् गंध से दूर ही दूर चले गये। वे अश्व वहां जाकर बहुत गोचर (चरागाह) प्राप्त करके तथा प्रचुर घास-पानी पाकर निर्भय हुए, उद्वेग-रहित हुए और सुखे-सुखे विचरने लगे।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु या साध्वी शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में आसक्त नहीं होता, वह इस लोक में बहुत साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होता है; यावत् संसारको तर जाता है ॥१३७॥

उन घोड़ोंमें से कितनेक घोड़े जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध थे, वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर वे उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्छित हुए यावत् अति आसक्त हो गये और उनका सेवन करने में प्रवृत्त हो गए। तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श रस रूप और गंध का सेवन करने वाले वे अश्व कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बहुत से कूटपाशों (कपट से फैलाये गये बंधनों) से गले में यावत् पैरों में बांधे गये—बंधनोंमें बांधे गए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उन अश्वोंको पकड़ लिया, पकड़ कर वे नौकाओं द्वारा पोतवहनमें ले आये। लाकर पोतवहनको तृण काष्ठ आदि आवश्यक पदार्थोंसे यावत् भर लिया। तत्पश्चात् वे सांयात्रिक नौकावणिक् दक्षिण दिशाके अनुकूल पवन द्वारा जहा गंभीर पोतपट्टन था, वहां आये। आकर पोतवहन का लंगर डाला। लंगर डालकर उन घोड़ों को उतारा। उतार कर जहां हस्तिशीर्ष नगर था और जहां कनककेतु राजा था, वहां पहुँचे। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़-कर राजा का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करके वे अश्व उपस्थित किये। तत्पश्चात् राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक वणिकोंका शुल्क माफ कर दिया। उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें विदा किया।

(गूंथी हुई माला आदि), यावत् संघातिम (समूह रूप करके तैयार किये गये पदार्थ) तथा अन्य चक्षुइन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी—गाड़ों में भरे। भर कर बहुत—से कोष्ठपुट तथा केतकीपुट आदि यावत् अन्य बहुत से घ्राणेन्द्रिय के योग्य पदार्थों से गाड़ी—गाड़े भरे। भर कर बहुत-से खांड, गुड़, शक्कर, मत्संडिका-(मिश्री),पुष्पोत्तर (एक प्रकार की शक्कर) तथा पद्मोत्तर(शक्कर-विशेष) आदि अन्य अनेक जिह्वा—इन्द्रियके योग्य द्रव्य गाड़ी—गाड़ोंमें भरे। भर कर बहुत-से कोयवक—रुई के बने वस्त्र, कंबल—रत्नकंबल, प्रावरण—ओढ़नेके वस्त्र, नवत—जीन, मलय—आसन विशेष अथवा मलय देश में बने वस्त्र, मसूरक—आसन-विशेष, शिलापट्टक (कोमल शिलाएं) यावत् हंसगर्भ—श्वेत वस्त्र तथा दूसरे स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य द्रव्य यावत् गाड़ी—गाड़ों में भरे।

उक्त सब द्रव्य भर कर जहां गंभीर पोतपट्टन था, वहां पहुंचे। पहुँच कर गाड़ी—गाड़े खोले। खोल कर पोतवहन तैयार किया। तैयार करके उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के द्रव्य तथा काष्ठ, तृण, जल, चावल, आटा, गोरस, यावत् अन्य बहुत-से पोतवहन के योग्य पदार्थ पोतवहन में भरे।

वे उपर्युक्त सब सामान पोतवहन में भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहां कालिक द्वीप था, वहां आये। आकर लंगर डाला। लंगर डाल कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधके पदार्थों को छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतारा। उतार कर वे घोड़े जहां-जहां बैठते थे, सोते थे और लोटते थे, वहां वहां वे कौटुम्बिक पुरुष वह वीणा, विचित्र वीणा आदि श्रोत्रेन्द्रिय को प्रिय वाद्य बजाते रहने लगे तथा उनके पास चारों ओर जाल स्थापित कर दिए। स्थापित करके वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर रहे।

जहां—जहां वे अश्व बैठते थे, यावत् लोटते थे, वहां-वहां उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुतेरे कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म यावत् संघातिम तथा अन्य बहुत-से चक्षु—इन्द्रिय के योग्य पदार्थ रख दिये। तथा उन अश्वों के पास चारों ओर जाल लगा दिए। तदनन्तर वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर छिप गये। जहां-जहां वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहां-वहां उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत से कोष्ठपुट यावत् दूसरे घ्राणेन्द्रियके प्रिय पदार्थों का पुञ्ज (ढेर) और निकर (बिखरा हुआ समूह) कर दिया। करके उनके पास चारों ओर पुञ्ज करके यावत् वे मूक रह गये।

जहां-जहां वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहां-वहां कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़के यावत् अन्य बहुत-से जिह्वेन्द्रियके योग्य पदार्थों के पुञ्ज और निकर कर दिये। करके उन जगहों पर गड़हे खोदे। खोद कर

उनमें गुड़ का पानी, खांडका पानी, पोर (ईख) का पानी तथा दूसरा बहुत तरह का पानी उन गड़हों में भर दिया। भर कर उनके पास चारों ओर स्थापित करके यावत् मूक हो रहे ।

जहां-जहां वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे यावत् लोटते थे, वहां-वहां कोयवक (रुई के वस्त्र) यावत् शिलापट्टक (कोमल शिला) तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य आस्तरण-प्रत्यास्तरण (एक दूसरे के ऊपर बिछाये हुए वस्त्र) रख दिये। रख कर उनके पास चारों ओर यावत् मूक होकर रह गए। तत्पश्चात् वे अश्व वहां आये, जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध रक्खे थे। वहां आकर उनमें से कोई-कोई अश्व 'यह शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध अपूर्व है अर्थात् पहले कभी इसका अनुभव नहीं किया है,' ऐसा विचार कर, उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्छित (आसक्त) न होकर उस उत्कृष्ट शब्द यावत् गंध से दूर ही दूर चले गये। वे अश्व वहां जाकर बहुत गोचर (चरागाह) प्राप्त करके तथा प्रचुर घास-पानी पाकर निर्भय हुए, उद्वेग-रहित हुए और सुखे-सुखे विचरने लगे।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु या साध्वी शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में आसक्त नहीं होता, वह इस लोक में बहुत साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होता है; यावत् संसारको तर जाता है ॥१३७॥

उन घोड़ोंमें से कितनेक घोड़े जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध थे, वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर वे उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्छित हुए यावत् अति आसक्त हो गये और उनका सेवन करने में प्रवृत्त हो गए। तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श रस रूप और गंध का सेवन करने वाले वे अश्व कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बहुत से कूटपाशों (कपट से फैलाये गये बंधनों) से गले में यावत् पैरों में बांधे गये—बंधनोंमें बांधे गए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उन अश्वोंको पकड़ लिया, पकड़ कर वे नौकाओं द्वारा पोतवहनमें ले आये। लाकर पोतवहनको तृण काष्ठ आदि आवश्यक पदार्थोंसे यावत् भर लिया। तत्पश्चात् वे सांयात्रिक नौकावणिक् दक्षिण दिशाके अनुकूल पवन द्वारा जहा गंभीर पोतपट्टन था, वहां आये। आकर पोतवहन का लंगर डाला। लंगर डालकर उन घोड़ों को उतारा। उतार कर जहां हस्तिशीर्ष नगर था और जहां कनककेतु राजा था, वहां पहुँचे। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़-कर राजा का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करके वे अश्व उपस्थित किये। तत्पश्चात् राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक वणिकोंका शुल्क माफ कर दिया। उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने अश्वमर्दकों (अश्वपालों) को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो! तुम मेरे अश्वोंको विनीत करो—शिक्षित करो।' तब अश्वमर्दकों ने 'बहुत अच्छा' कह कर राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके उन्होंने उन अश्वों को मुख बांध कर, कान बांध कर, नाक बांध कर, झौंरा (पूंछ के बालोंका अग्रभाग) बांध कर, खुर बांध कर, कटक बांध कर, चौकड़ी चढ़ा कर, तोबरा चढ़ा कर, पटतानक (पलान के नीचे का पट्टा) लगा कर, खस्सी करके, वेलाप्रहार करके, वेंतों का प्रहार करके, लताओं का प्रहार करके, चाबुकों का प्रहार करके तथा कोड़ों का प्रहार करके विनीत किया। विनीत करके वे राजा कनककेतु के पास ले आये।

तत्पश्चात् कनककेतु ने उन अश्वमर्दकोंका सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन्हें विदा किया। उसके बाद वे अश्व मुखबंधनसे यावत् कोड़ों के प्रहारसे बहुत शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त हुए। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो निर्ग्रंथ या निर्ग्रन्थी दीक्षित होकर प्रिय शब्द स्पर्श रस रूप और गंध में गृद्ध होता है, मुग्ध होता है और आसक्त होता है, वह इस लोक में बहुत श्रमणों यावत् श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र होता है, यावत् भवभ्रमण करता है।

कल अर्थात् श्रुतिसुखद और हृदयहारी, रिभित अर्थात् स्वरघोलना के प्रकार वाले, मधुर वीणा, तलताल (हाथ की ताली–करताल) और बांसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्योंके शब्दों में अनुरक्त होने वाले और श्रोत्रेन्द्रिय के वश-वर्त्ती बने हुए प्राणी आनन्द मानते हैं॥१॥

किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तता का अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियकी उच्छृङ्खलता का इतना दोष होता है, जैसे—पारधिके पींजरेमें रहे हुए तीतरके शब्द को सहन न करता हुआ तीतर पक्षी वध और बंधनको प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि पारधि के पींजरे में फंसे हुए तीतरका शब्द सुन कर वन का स्वाधीन तीतर अपने स्थान से निकल आता है और पारधि उसे भी फंसा लेता है। श्रोत्रेन्द्रिय को न जीतने का दुष्परिणाम ऐसा होता है॥२॥

चक्षुइन्द्रिय के वशीभूत और रूपों में अनुरक्त होने वाले पुरुष, स्त्रियों के स्तन, जघन, वदन, हाथ, पैर और नेत्रों में तथा गर्विष्ठ बनी हुई स्त्रियों की विला-सयुक्त गति में रमण करते हैं–आनन्द मानते हैं॥३॥ परन्तु चक्षु-इन्द्रिय की दुर्दान्तता से इतना दोष होता है कि-जैसे बुद्धिहीन पतंगिया जलती हुई आग में जा पड़ता है अर्थात् चक्षु के वशीभूत हुआ पतंगा जैसे प्राणों से हाथ धो बैठता है, उसी प्रकार मनुष्य भी वध--बंधन के घोर दुःख पाते हैं॥४॥

सुगंध में अनुरक्त हुए और घ्राणेन्द्रिय के वश में पड़े हुए प्राणी श्रेष्ठ अगर, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं में वृद्धि को प्राप्त माल्य (जाई आदि के पुष्पों) तथा अनुलेपन (चन्दन आदि के लेप) की विधि में रमण करते हैं, अर्थात् सुगंधित पदार्थों के सेवन में आनन्द का अनुभव करते हैं। परन्तु घ्राणेन्द्रिय (नासिका) की दुर्दान्तता से अर्थात् नासिका-इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि औषधि की गंध से सर्प अपने विल में से बाहर निकल आता है अर्थात् नासिका के विषय में आसक्त हुआ सर्प संपेरे के हाथों पकड़ा जाकर अनेक कष्ट भोगता है ॥५-६॥

रस में आसक्त और जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती हुए प्राणी कड़वे, तीखे, कसैले, खट्टे एवं मधुर रस वाले बहुत खाद्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों में आनन्द मानते हैं ॥७॥ किन्तु जिह्वाइन्द्रिय को दमन न करने से इतना दोष उत्पन्न होता है कि गल (बडिश) में लग्न होकर जल से बाहर खींचा हुआ मत्स्य, स्थल में फैंका जाकर तड़फता है। अभिप्राय यह है कि मच्छीमार मछली को पकड़ने के लिए मांस का टुकड़ा कांटे में लगा कर जल में डालते हैं। मांस का लोभी मत्स्य उसे मुख में लेता है और तत्काल उस का गला विंध जाता है, मच्छीमार उसे जल से बाहर खींच लेते हैं और उसे मृत्यु का शिकार होना पड़ता है ॥८॥ स्पर्शों के सेवन में सुख समझने वाले और स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख मानने वाले तथा विभव (समृद्धि) सहित, हितकारक (अथवा वैभव वालों को हितकारक) तथा मन को सुख देने वाले माला, स्त्री आदि पदार्थों में रमण करते हैं ॥९॥

किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि लोहे का तीखा अंकुश हाथी के मस्तक को पीड़ा पहुंचाता है। अर्थात् स्वच्छंद रूप से वन में विचरण करने वाला हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश में होकर पकड़ा जाता है और फिर पराधीन बनकर महावत की मार खाता है। आगे बतलाते हैं कि इन्द्रियों का संवर करने से क्या लाभ होता है ?॥१०॥ कल, रिभित एवं मधुर तंत्री, तलताल तथा बांसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यों के शब्दों में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते।

अर्थात्–जो इन्द्रियों के वश होकर आर्त्त-पीड़ित होते हैं, उन्हें वशार्त्त कहते हैं। अथवा वश को अर्थात् इन्द्रियों की पराधीनता को जो ऋत-प्राप्त हैं, वे वशार्त्त कहलाते हैं। ऐसे प्राणियों का मरण वशार्त्तमरण है अथवा इन्द्रियों के वशीभूत होकर मरना, विषयों के लिए हाय हाय करते हुए प्राण त्यागना वशार्त्तमरण कहलाता है। इन्द्रियों का दमन करने वाले पुरुष ऐसा मरण नहीं मरते ॥११॥ स्त्रियों के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नयन तथा गर्वयुक्त विलास वाली गति

आदि समस्त रूपों में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते॥१२॥ उत्तम अगर, श्रेष्ठ धूप, ऋतुओं में वृद्धि को प्राप्त होने वाले पुष्पों की मालाओं तथा श्रीखंड आदि के लेपन की गंध में जो आसक्त नहीं होते उन्हें वशार्त्तमरण से नहीं मरना पड़ता ॥१३॥

तिक्त, कटुक, कसैले, खट्टे और मीठे खाद्य, पेय और लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों के आस्वादन में जो गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्त मरण नहीं मरते ॥१४॥ हेमन्त आदि विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख देने वाले, वैभव (धन) सहित, हितकर (प्रकृति को अनुकूल) और मन को आनन्द देने वाले स्पर्शों में जो गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्त मरण नहीं मरते ॥१५॥ साधु को भद्र (शुभ-मनोज्ञ) श्रोत्र के विषय शब्द प्राप्त होने पर कभी तुष्ट नहीं होना चाहिए और पापक (अशुभ-अमनोज्ञ) शब्द सुनने पर रुष्ट नहीं होना चाहिए ॥१६॥ शुभ अथवा अशुभ रूप चक्षु के विषय होने पर साधु को कभी न तुष्ट होना चाहिए और न रुष्ट होना चाहिए। घ्राण इन्द्रिय को प्राप्त हुए शुभ अथवा अशुभ गंध में साधु को कभी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिए।

जिह्वा इन्द्रिय के विषय को प्राप्त शुभ अथवा अशुभ रसों में साधु को कभी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिए। स्पर्शेन्द्रिय के विषय बने हुए शुभ अथवा अशुभ स्पर्शों में साधु को कभी तुष्ट या रुष्ट नहीं होना चाहिए। अभिप्राय यह है कि पांचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषय प्राप्त होने पर प्रसन्नता-अप्रसन्नता का अनुभव नहीं करना चाहिए, किन्तु समभाव धारण करना चाहिए ॥१७-२०॥ सुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्ति को प्राप्त ने सत्तरहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। उसी प्रकार मैं तुझसे कहता हूं ॥१३८॥

उपनय

साधु धर्म अनुपम सौख्ययुक्त कालिक द्वीपके समान है, जिसका आश्रय पाकर संसार-समुद्र में दुःखी होने वाले जीव सान्त्वना और त्राण पाते हैं। साधु अश्वों के और अनुकूलकारी जन वणिकों के स्थान पर समझने चाहिएं। जैसे शब्द आदि में गृद्ध न होने वाले घोड़े पाश–बन्धन को प्राप्त नहीं हुए उसी प्रकार जो साधु पंचेन्द्रिय के विषयों में लुब्ध न होकर उनसे दूर रहते हैं, वे १कर्मबन्धन एवं सांसारिक कष्टों से बच जाते हैं। अश्वों के स्वच्छन्द विहार के समान साधुओंका जरा-मरण से मुक्त होकर आनन्दधाम-मोक्ष प्राप्ति है। शब्दादि में गृद्ध अश्वों के

१. वध-बंधनके।

समान जो विषय-लोलुप हो जाते हैं, वे दुःखों के कारणभूत कर्मबंधनों को प्राप्त होते हैं।

जैसे कालिक द्वीप से अन्यत्र ले जाये गये अश्व दुःखी हुए, उसी प्रकार धर्म से भ्रष्ट जीव अत्यन्त दुःख के पात्र होते हैं। जैसे राजा की आज्ञा से अश्वपालों के द्वारा घोड़े दुःखों को प्राप्त हुए उसी प्रकार कर्मनृपवशीभूत जीव संसार मार्ग में नरकादि गतियों में दुःखी होते हैं।

॥ सत्तरहवां अध्ययन समाप्त ॥

अठारहवां सुंसुमाज्ञात-अध्ययन

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया-'यदि भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर ने सत्तरहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो अठारहवें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन समझ लेना चाहिए। वहां धन्य नामक अजैन सार्थवाह निवास करता था। भद्रा नाम की उसकी पत्नी थी। उस धन्य सार्थवाह के पुत्र, भद्रा के आत्मज पांच सार्थवाहदारक थे। इस प्रकार-धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। धन्य सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पांचों पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नामक बालिका थी। उसके हाथ-पैर आदि अंगोपांग सुकुमार थे। उस धन्य सार्थवाह का चिलात नामक दास-चेटक (दासपुत्र) था। उसकी पांचों इन्द्रियां पूरी थीं और शरीर भी परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था। वह बच्चों को क्रीड़ा कराने में कुशल भी था।

अतएव वह दासचेट सुंसुमा बालिका का बालग्राहक (बालक को खिलाने वाला) नियत किया गया। वह सुंसुमा बालिकाको कमर पर ले लेता और बहुत से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ खेलता हुआ रहता था। उस समय वह चिलात दासचेटक उन बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारियों में से किन्हीं की कौड़ियां हरण कर लेता छीन लेता या चुरा लेता था। इसी प्रकार वर्तक (लाख के गोले) हर लेता, आलोडिया (गेंद) हर लेता, दड़ा (बड़ी गेंद), कपड़ा और साडोल्लक (उत्तरीय वस्त्र) हर लेता था। किन्हीं-किन्हीं के आभरण, माला और अलंकार हरण कर लेता था। किन्हीं पर आक्रोश करता, किसी की हंसी उड़ाता, किसी को ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी की तर्जना करता और किसी को मारता-पीटता था।

तब वे बहुत-से लड़के, लड़कियां, बच्चे, बच्चियां, कुमार और कुमारिकाएं रोते हुए, चिल्लाते हुए जाकर अपने माता-पिताओं से चिलात की करतूत कहते थे।

उस समय बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्थवाह के पास आते। आकर धन्य सार्थवाह को खेदजनक वचनों से, रुवांसे वचनों से और उलाहने भरे वचनों से खेद प्रकट करते, रोते और उलाहना देते थे और धन्य सार्थवाह को यह वृत्तान्त कहते थे।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने चिलात दासचेटक को इस बात के लिए बार-बार मना किया मगर चिलात दासचेटक रुका नहीं-माना नहीं। धन्य सार्थवाह के रोकने पर भी चिलात दासचेटक उन बहुतसे लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं में से किन्हीं की कौड़ियां हरण करता रहा और किन्हीं किन्हीं को यावत् मारता-पीटता रहा। तब वे बहुत से लड़के, लड़कियां, बच्चे, बच्चियां, कुमार और कुमारिकाएं रोते-चिल्लाते गये, यावत् अपने माता-पिताओं से उन्होंने यह बात कह सुनाई। तब वे माता-पिता एकदम क्रुद्ध हुए, यावत् धन्य सार्थवाह के पास पहुंचे। पहुंच कर बहुत खेदयुक्त वचनों से उन्होंने यह बात उससे कही।

तब वह धन्य सार्थवाह बहुत लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओंके माता-पिताओंसे यह बात सुन कर एकदम कुपित हुआ। उसने ऊंचे-नीचे आक्रोश-वचनोंसे चिलात दासचेट पर आक्रोश किया अर्थात् खरी खोटी सुनाई, उसका तिरस्कार किया, भर्त्सना की, धमकी दी, तर्जना की और ऊंची-नीची ताड़नाओंसे ताड़ना की और फिर उसे अपने घरसे बाहर निकाल दिया ॥१३६॥

धन्य सार्थवाह द्वारा अपने घरसे निकाला हुआ वह चिलात दासचेटक राजगृह नगरमें शृंगाटकों यावत् पथोंमें अर्थात् गली-कूचोंमें, देवालयोंमें, सभाओंमें, प्याउओं में, जुआरियोंके अड्डों में, वेश्याओंके घरो में, तथा मद्यपानगृहोंमें मजेसे भटकने लगा और बढ़ने लगा। तत्पश्चात् उस दासचेट चिलातको कोई हाथ पकड़ कर रोकने वाला तथा वचनसे रोकने वाला कोई न रहा, अतएव वह निरंकुश बुद्धि वाला, स्वेच्छाचारी, मदिरापान में आसक्त, चोरी करने में आसक्त, मांसभक्षणमें आसक्त, जुएमें आसक्त, वेश्यासक्त तथा परस्त्रियों में भी आसक्त हो गया। उस समय राजगृह नगरसे न अधिक दूर और न अधिक समीप प्रदेशमें दक्षिणपूर्व दिशा (आग्नेय कोण) में सिंहगुफा नामक एक चोरपल्ली थी। वह पल्ली विषम गिरि-नितंबके प्रान्त भागमें बसी हुई थी। बांस की झाड़ियोंके प्राकारसे घिरी हुई थी। अलग-अलग टेकरियोंके प्रपात (दो पर्वतोंके गड़हे) रूपी परिखासे युक्त थी। उसमें जाने-आने के लिए एक ही दरवाजा था, परन्तु भाग जाने के लिए छोटे-छोटे द्वार अनेक थे। जानकार ही उसमें से निकल सकते और उसमें प्रवेश कर सकते थे। उसके भीतर ही पानी था। उस पल्लीसे बाहर आस-पासमें पानी मिलना अत्यन्त

दुर्लभ था। चुराये हुए माल को छीननेके लिए आई हुई सेना भी उस पल्ली का कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी। ऐसी थी वह चोरपल्ली!

उस सिंहगुफा नामक पल्लीमें विजय नामक चोरसेनापति रहता था। वह अधार्मिक यावत् अधर्म की ध्वजा था। बहुत नगरोंमें उसका (चोरी करने की बहादुरी का) यश फैला हुआ था। वह शूर था, दृढ़ प्रहार करने वाला, साहसी और शब्दवेधी था। वह उस सिंहगुफामें पांच सौ चोरोंका अधिपतित्व भोगता हुआ रहता था। वह चोरों का सेनापति विजय तस्कर दूसरे बहुतेरे चोरोंके लिए, जारों के लिए, गंठकटोंके लिए, सेंध लगाने वालोंके लिए, खान खोदने वालोंके लिए, राजाके अपकारियोंके लिए, ऋणियोंके लिए, बालघातकोंके लिए, विश्वास-घातियोंके लिए, जुआरियोंके लिए तथा खण्डरक्षकों (दंडपाशिकों) के लिए और मनुष्योंके हाथ-पैर आदि अवयवों को छेदन-भेदन करने वाले अन्य लोगोंके लिए कुडंग (बांस की झाड़ी) के समान आधारभूत था। अर्थात् जैसे अपराधी लोग राजभयसे बांस की झाड़ीमें छिप जाते हैं अतः बांस की झाड़ी उनके लिए शरण रूप होती है, उसी प्रकार विजय चोर भी अन्यायी-अत्याचारी लोगों का आश्रय-दाता था।

उस समय वह चोरसेनापति विजय तस्कर राजगृह नगरके दक्षिणपूर्व (अग्निकोण) में स्थित जनपद-प्रदेश को, ग्रामके घात द्वारा, नगरघात द्वारा, गायों का हरण करके, लोगोंको कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा सेंध लगा कर पुनःपुनः उत्पीड़ित करता हुआ, लोगोंको स्थानहीन एवं धनहीन बनाता हुआ रह रहा था। तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट राजगृह नगरमें बहुतसे अर्थाभिशंकी (हमारा धन यह चुरा लेगा ऐसी शंका करने वालों), चौराभिशंकी (चोर समझने वाले), दाराभिशंकी (यह हमारी स्त्री को ले जायगा, ऐसी शंका करने वालों), धनिकों और जुआरियों द्वारा पराभव पाया हुआ राजगृह नगरसे बाहर निकला। निकल कर जहां सिंहगुफा नामक चोरपल्ली थी, वहां पहुँचा। पहुँच कर चोरसेनापति विजयके पास पहुँच कर—उसकी शरणमें जाकर रहने लगा।

तत्पश्चात् वह दासचेट चिलात, विजय नामक चोर सेनापतिके आगे खड्ग और यष्टि का धारक हो गया। अतएव जब भी वह विजय चोर सेनापति ग्रामका घात करनेके लिए यावत् पथिकों को मारने-कूटनेके लिए जाता था, उस समय दासचेट चिलात बहुत-सी कूविय (चोरी का माल छीनने के लिए आने वाली) सेना को हत एवं मथित करके रोकता था—भगा देता था और फिर उस धन

उस समय बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्थवाह के पास आते। आकर धन्य सार्थवाह को खेदजनक वचनों से, रुवांसे वचनों से और उलाहने भरे वचनों से खेद प्रकट करते, रोते और उलाहना देते थे और धन्य सार्थवाह को यह वृत्तान्त कहते थे।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने चिलात दासचेटक को इस बात के लिए बार-बार मना किया मगर चिलात दासचेटक रुका नहीं-माना नहीं। धन्य सार्थवाह के रोकने पर भी चिलात दासचेटक उन बहुतसे लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं में से किन्हीं की कौड़ियां हरण करता रहा और किन्हीं किन्हीं को यावत् मारता-पीटता रहा। तब वे बहुत से लड़के, लड़कियां, बच्चे, बच्चियां, कुमार और कुमारिकाएं रोते-चिल्लाते गये, यावत् अपने माता-पिताओं से उन्होंने यह बात कह सुनाई। तब वे माता-पिता एकदम क्रुद्ध हुए, यावत् धन्य सार्थवाह के पास पहुंचे। पहुंच कर बहुत खेदयुक्त वचनों से उन्होंने यह बात उससे कही।

तब वह धन्य सार्थवाह बहुत लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओंके माता-पिताओंसे यह बात सुन कर एकदम कुपित हुआ। उसने ऊंचे-नीचे आक्रोश-वचनोंसे चिलात दासचेट पर आक्रोश किया अर्थात् खरी खोटी सुनाई, उसका तिरस्कार किया, भर्त्सना की, धमकी दी, तर्जना की और ऊंची-नीची ताड़नाओंसे ताड़ना की और फिर उसे अपने घरसे बाहर निकाल दिया ॥१३६॥

दुर्लभ था। चुराये हुए माल को छीननेके लिए आई हुई सेना भी उस पल्ली का कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी। ऐसी थी वह चोरपल्ली !

उस सिंहगुफा नामक पल्लीमें विजय नामक चोरसेनापति रहता था। वह अधार्मिक यावत् अधर्म की ध्वजा था। बहुत नगरोंमें उसका (चोरी करने की बहादुरी का) यश फैला हुआ था। वह शूर था, दृढ़ प्रहार करने वाला, साहसी और शब्दवेधी था। वह उस सिंहगुफामें पांच सौ चोरोंका अधिपतित्व भोगता हुआ रहता था। वह चोरों का सेनापति विजय तस्कर दूसरे बहुतेरे चोरोंके लिए, जारों के लिए, गंठकटोंके लिए, सेंध लगाने वालोंके लिए, खान खोदने वालोंके लिए, राजाके अपकारियोंके लिए, ऋणियोंके लिए, बालघातकोंके लिए, विश्वास-घातियोंके लिए, जुआरियोंके लिए तथा खण्डरक्षकों (दंडपाशिकों) के लिए और मनुष्योंके हाथ-पैर आदि अवयवों को छेदन-भेदन करने वाले अन्य लोगोंके लिए कुडंग (बांस की झाड़ी) के समान आधारभूत था। अर्थात् जैसे अपराधी लोग राजभयसे बांस की झाड़ीमें छिप जाते हैं अतः बांस की झाड़ी उनके लिए शरण रूप होती है, उसी प्रकार विजय चोर भी अन्यायी-अत्याचारी लोगों का आश्रय-दाता था।

उस समय वह चोरसेनापति विजय तस्कर राजगृह नगरके दक्षिणपूर्व (अग्निकोण) में स्थित जनपद-प्रदेश को, ग्रामके घात द्वारा, नगरघात द्वारा, गायों का हरण करके, लोगोंको कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा सेंध लगा कर पुनःपुनः उत्पीड़ित करता हुआ, लोगोंको स्थानहीन एवं धनहीन बनाता हुआ रह रहा था। तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट राजगृह नगरमें बहुतसे अर्था-भिशंकी (हमारा धन यह चुरा लेगा ऐसी शंका करने वालों), चौराभिशंकी (चोर समझने वाले), दाराभिशंकी (यह हमारी स्त्री को ले जायगा, ऐसी शंका करने वालों), धनिकों और जुआरियों द्वारा पराभव पाया हुआ राजगृह नगरसे बाहर निकला। निकल कर जहां सिंहगुफा नामक चोरपल्ली थी, वहां पहुँचा। पहुँच कर चोरसेनापति विजयके पास पहुँच कर—उसकी शरणमें जाकर रहने लगा।

तत्पश्चात् वह दासचेट चिलात, विजय नामक चोर सेनापतिके आगे खड्ग और यष्टि का धारक हो गया। अतएव जब भी वह विजय चोर सेनापति ग्रामका घात करनेके लिए यावत् पथिकों को मारने-कूटनेके लिए जाता था, उस समय दासचेट चिलात बहुत-सी कूविय (चोरी का माल छीनने के लिए आने वाली) सेना को हत एवं मथित करके रोकता था—भगा देता था और फिर उस धन

आदि अर्थ को लेकर, अपना कार्य करके, सिंहगुफा चोरपल्लीमें सकुशल वापिस आ जाता था। तत्पश्चात् उस विजय चोर सेनापतिने चिलात तस्कर को बहुत-सी चोरविद्याएं, चोरमंत्र, चोरमायाएं और चोरनिकृतियां (चोरोंके योग्य छल-कपट) सिखला दीं। तत्पश्चात् विजय चोर सेनापति किसी समय मृत्युको प्राप्त हुआ—कालधर्मसे युक्त हुआ। तब उन पांच सौ चोरोंने बड़े ठाठ और सत्कारके समूहके साथ विजय नामक चोर सेनापतिका नीहरण किया—श्मशानमें ले जाने की क्रिया की। फिर बहुतसे लौकिक मृतक कृत्य किये। करके कुछ समय बीत जाने पर वे शोकरहित हो गये।

तत्पश्चात् उन पांच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया (सब इकट्ठे हुए)। तब उन्होंने आपसमें कहा—'हे देवानुप्रियो! हमारा चोर सेनापति विजय कालधर्म (मरण) से संयुक्त हो गया है। और विजय चोर सेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत-सी चोरविद्याएं यावत् सिखलाई हैं। अतएव देवानुप्रियो! हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि चिलात तस्कर का सिंहगुफा नामक चोरपल्ली के चोर—सेनापति के रूप में अभिषेक किया जाय।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की यह बात स्वीकार की। चिलात तस्कर को उस सिंहगुफा नामक चोरपल्ली के चोरसेनापति के रूप में अभिषिक्त किया। तब वह चिलात चोरसेनापति हो गया, तथा अधार्मिक यावत् होकर विचरने लगा।

तत्पश्चात् वह चिलात चोरसेनापति चोरों का नायक यावत् कुडंग (बांस की झाड़ी) के समान चोरों जारों आदि का आश्रयभूत हो गया। वह उस सिंह—गुफा नामक चोरपल्ली में पांच सौ चोरों का अधिपति हो गया, इत्यादि विजय के वर्णन समान समझना चाहिए। यावत् वह राजगृह नगर के दक्षिणपूर्व के जनपद को यावत् स्थानहीन और धनहीन बनाता हुआ विचरने लगा ॥१४०॥

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति ने एक बार किसी समय विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवा कर पांच सौ चोरों को आमंत्रित किया। तत्पश्चात् स्नान करके, भोजन—मंडप में, उन पांच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का तथा सुरा यावत् प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन करने लगा। भोजन कर चुकने के पश्चात् पांच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके उनसे इस प्रकार कहा—

(चिलात ने कहा—) 'हे देवानुप्रियो! राजगृह नगर में धन्य नामक धनाढ्य सार्थवाह है। उसकी पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पांच पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नाम की लड़की है। वह परिपूर्ण इन्द्रियों वाली यावत् सुन्दर रूप वाली है। तो हे देवानुप्रियो! हम लोग चलें और धन्य सार्थवाहका घर लूटें।

उस लूट में मिलने वाला विपुल धन, कनक यावत् शिला प्रवाल वगैरह तुम्हारा होगा और सुंसुमा लड़की मेरी होगी। तब उन पांच सौ चोरों ने चोरसेनापति चिलात की यह बात अंगीकार की।

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति उन पांच सौ चोरों के साथ (मंगल के लिए) आर्द्र चर्म पर बैठा। फिर दिन के अन्तिम प्रहर में पांच सौ चोरों के साथ कवच धारण करके तैयार हुआ। उसने आयुध और प्रहरण ग्रहण किये। कोमल गोमुखित–गाय के मुख सरीखे किए हुए फलक (ढाल) धारण किये। तलवारें म्यानों से बाहर निकाल लीं। कंधों पर तर्कश धारण किये। धनुष जीवायुक्त कर लिये। बाण बाहर निकाल लिये। वर्छियां और भाले उछालने लगे। जंघाओं पर बांधी हुई घंटिकाएं लटका दीं। शीघ्र ही बाजे बजने लगे। बड़े-बड़े उत्कृष्ट सिंहनाद और चोरों की कल-कल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे समुद्र का खल-बल शब्द हो रहा हो! इस प्रकार शोर करते हुए वे सिंहगुफा नामक पल्ली से बाहर निकले। निकल कर जहां राजगृह नगर था, वहां आये। आकर राजगृह नगर से कुछ दूर एक सघन वन में घुस गये। वहां घुस कर शेष रहे दिन को समाप्त करने लगे—सूर्य के अस्त हो जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

तत्पश्चात् चोरसेनापति चिलात आधी रात के समय, जब सब जगह शान्ति और सुनसान हो गई थी, पांच सौ चोरों के साथ, रीछ आदि के बालों से सहित होने के कारण गोमुखित(ढालें)छातीसे बांधकर यावत् जांघों पर घंटिकाएं लटका कर राजगृह नगर के पूर्व दिशाके दरवाजे पर पहुँचा। पहुँच कर उसने जल की मशक ली। उसमें से जल की एक अंजलि लेकर आचमन किया, स्वच्छ हुआ, पवित्र हुआ। फिर ताला खोलने की विद्या का आवाहन किया। विद्या का आवाहन (स्मरण) करके राजगृह के द्वार के किवाड़ों पर पानी छिड़का। पानी छिड़क कर किवाड़ उघाड़ लिये। तत्पश्चात् राजगृह के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके ऊंचे-ऊंचे शब्दों से आघोषणा करते हुए इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रियो! मैं चिलात नामक चोरसेनापति, पांच सौ चोरोंके साथ, सिंहगुफा नामक चोर-पल्ली से, धन्य सार्थवाह का घर लूटने के लिए यहां आया हूं। जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हो, वह निकल कर मेरे सामने आवे।' इस प्रकार कह कर वह धन्य सार्थवाह के घर आया। आकर उसने धन्य सार्थवाह का घर (द्वार) उघाड़ा।

तब धन्य सार्थवाह ने देखा कि पांच सौ चोरों के साथ चिलात चोरसेनापति के द्वारा घर लूटा जा रहा है। यह देख कर वह भयभीत हो गया और घबरा गया और अपने पांचों पुत्रों के साथ एकान्त स्थान में चला गया—छिप गया। तत्पश्चात् चोरसेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह का घर लूटा। लूट कर बहुत

सारा धन, कनक यावत् स्वापतेय (द्रव्य) तथा सुंसुमा दारिका लेकर वह राजगृह से बाहर निकल कर जिधर सिंहगुफा थी, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ ॥१४१॥

चोरोंके चले जानेके पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर आया। आकर उसने जाना कि मेरा बहुत-सा धन कनक और सुंसुमा लड़की का अपहरण कर लिया गया है। यह जानकर वह बहुमूल्य भेंट लेकर नगरके रक्षकोंके पास गया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो! चिलात नामक चोरसेनापति सिंहगुफा नामक चोरपल्लीसे यहां आकर पांच सौ चोरोंके साथ मेरा घर लूट कर और बहुत-सा धन कनक तथा सुंसुमा लड़की को लेकर यावत् चला गया है। अतएव हम, हे देवानुप्रियो! सुंसुमा लड़की को वापिस लानेके लिए जाना चाहते हैं। देवानुप्रियो! जो धन कनक वापिस मिले वह सब तुम्हारा और सुंसुमा दारिका मेरी रहेगी।'

तब नगरके रक्षकोंने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके वे कवच धारण करके सन्नद्ध हुए। उन्होंने आयुध और प्रहरण लिये। फिर जोर-जोरके उत्कृष्ट सिंहनादसे समुद्रकी सलभलाट जैसा शब्द करते हुए राजगृहसे बाहर निकले। निकल कर जहां चिलात चोर था, वहां पहुंचे। पहुँच कर चिलात चोरसेनापतिके साथ युद्ध करने लगे। तब नगररक्षकोंने चोरसेनापति चिलातको हत, मथित करके यावत् पराजित कर दिया। उस समय वे पांच सौ चोर नगररक्षकों द्वारा हत, मथित और पराजित होकर उस विपुल धन और कनक आदि को छोड़कर और फेंक कर चारों ओर—कोई किसी तरफ, कोई किसी तरफ भाग खड़े हुए। तत्पश्चात् नगररक्षकोंने वह विपुल धन कनक आदि ग्रहण कर लिया। ग्रहण करके वे जिस ओर राजगृह नगर था, उसी ओर चल पड़े।

नगररक्षकों द्वारा चोरसैन्य को हत एवं मथित हुआ देख कर चिलात भयभीत और उद्विग्न हो गया। वह सुंसुमा दारिका को लेकर एक महान् अग्रामिक (जिसके बीचमें गांव न आवे ऐसी) तथा लम्बे मार्ग वाली अटवीमें घुस गया। उस समय धन्य सार्थवाह सुंसुमा दारिका को अटवीके सन्मुख ले जाई जाती देखकर, पांचों पुत्रोंके साथ छठा आप कवच पहन कर, चिलातके पैरोंके मार्ग पर चला। वह उसके पीछे-पीछे चलता हुआ, गर्जना करता हुआ, चुनौती देता हुआ, पुकारता हुआ, तर्जना करता हुआ और उसे त्रस्त करता हुआ उसके पीछे चलने लगा। चिलातने देखा कि धन्य सार्थवाह पांच पुत्रोंके साथ आप स्वयं छठा सन्नद्ध होकर मेरा पीछा कर रहा है। यह देखकर वह निस्तेज, निर्बल, पराक्रमहीन एवं वीर्यहीन हो गया। जब वह सुंसुमा दारिका को ले जानेमें समर्थ न हो सका, तब श्रान्त हो गया—थक गया, ग्लानिको प्राप्त हुआ और अत्यन्त श्रान्त हो गया। अतएव उसने नीलकमलके समान तलवार हाथमें

ली और सुंसुमा दारिका का सिर काट लिया। कटे सिरको लेकर वह उस अग्रामिक अटवीमें घुस गया।

तत्पश्चात् चिलात उस अग्रामिक (ग्रामविहीन) अटवीमें प्याससे पीड़ित होकर दिशा भूल गया। वह चोरपल्ली तक नहीं पहुँच सका और बीच ही में मर गया। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारे जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर वमन को बहाने-झराने वाले यावत् विनाशशील इस औदारिक शरीरके वर्ण (रूप-सौन्दर्य) के लिए यावत् आहार करते हैं, वे इस लोकमें बहुतसे श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं की अवहेलनाके पात्र बनते हैं, यावत् दीर्घ संसार में पर्यटन करते हैं, जैसे चिलात चोर अन्तमें दुःखी हुआ, उसी प्रकार वे भी दुःखी होते हैं।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह पांच पुत्रोंके साथ आप छठा चिलातके पीछे दौड़ता-दौड़ता प्याससे और भूखसे श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया और बहुत थक गया। वह चोरसेनापति चिलात को अपने हाथसे पकड़नेमें समर्थ न हो सका। तब वह वहां से लौट पड़ा, लौट कर वहां आया जहां सुंसुमा दारिका को चिलात ने जीवन से रहित कर दिया था। वहां आकर उसने देखा कि बालिका सुंसुमा चिलातके द्वारा मार डाली गई है। यह देखकर कुल्हाड़ेसे काटे हुए चम्पक वृक्षके समान वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् पांच पुत्रों सहित छठा आप धन्य सार्थवाह आश्वस्त हुआ तो आक्रंदन करने लगा, विलाप करने लगा, और जोर जोरके शब्दोंसे कुह कुह (अस्पष्ट शब्द) करने लगा। वह बहुत देर तक आंसू बहाता रहा। तत्पश्चात् पांच पुत्रों सहित छठे आप धन्य सार्थवाहने उस अग्रामिक अटवी में चिलात चोरके पीछे चारों ओर दौड़नेके कारण प्यास और भूखसे पीड़ित होकर, उस अग्रामिक अटवीमें सब तरफ जलकी मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करके वह श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया, बहुत थक गया और खिन्न हो गया। उस अग्रामिक अटवीमें जल की खोज करने पर भी वह कहीं जल न पा सका।

तत्पश्चात् कहीं भी जल न पाकर धन्य सार्थवाह, जहां सुंसुमा जीवन से रहित की गई थी, उस जगह आया। आकर उसने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया। बुलाकर उससे कहा-'हे पुत्र! सुंसुमा दारिका के लिए चिलात तस्कर के पीछे-पीछे चारों ओर दौड़ते हुए, प्यास और भूख से पीड़ित होकर हमने इस अग्रामिक अटवी में जल की तलाश की, मगर जल न पा सके। जल के बिना हम लोग राजगृह नहीं पा सकते। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम मुझे जीवन से रहित करदो और सब भाई मेरे मांस और रुधिर का आहार करो। आहार करके उस आहार से स्वस्थ होकर फिर इस अग्रामिक अटवी को पार कर जाना, राजगृह नगर पा लेना, मित्रों और ज्ञातिजनों से मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी होना।'

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठ पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा 'तात ! आप हमारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवतास्वरूप हो, स्थापक (विवाह आदि करके गृहस्थधर्म में स्थापित करने वाले) हो, प्रतिष्ठापक (अपने पद पर स्थापित करने वाले) हो, कष्ट से रक्षा करने वाले हो, दुःख से बचाने वाले हो, अतः हे तात ! हम आपको कैसे जीवन से रहित करें ? कैसे आपके मांस और रुधिर का आहार करें ? हे तात ! आप मुझे जीवन-हीन कर दो और मेरे मांस तथा रुधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो । इत्यादि सब पूर्ववत् कहा, यावत् अर्थ यावत् पुण्य के भागी बनो ।'

तत्पश्चात् दूसरे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा-'हे तात ! हम गुरु और देव के समान ज्येष्ठ बन्धु को जीवन से रहित नहीं करेंगे । हे तात ! आप मुझको जीवन से रहित कीजिए; यावत् आप सब पुण्य के भागी बनिए ।' इसी प्रकार तीसरे, चौथे और पांचवें पुत्र ने भी कहा । तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर उन पांचों पुत्रों से इस प्रकार कहा-'पुत्रो ! हम में से एक को भी जीवन से रहित न करें । यह सुंसुमा का शरीर निष्प्राण यावत् जीव से त्यक्त है, अतएव हे पुत्रो ! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा । हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा लेंगे ।'

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर उन पांचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की । तब धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि की (अरणि काष्ठ में गड़हा किया), फिर शर किया, (अरणि की लम्बी लकड़ी की), दोनों तैयार कर के शर से अरणि का मथन किया । मथन कर के अग्नि उत्पन्न की । फिर अग्नि धौंकी । उसमें लकड़ियां डालीं । अग्नि प्रज्वलित की प्रज्वलित करके सुंसुमा दारिका का मांस पका कर उस मांस और रुधिर का आहार किया ।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुंचे । अपने मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि से मिले और विपुल धन कनक रत्न आदि के तथा यावत् पुण्य के भागी हुए । तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने सुंसुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक-कृत्य किये, यावत् कुछ काल बीत जाने पर वह शोकरहित हो गया ।।१४२।। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह के गुणशील उद्यान में पधारे । उस समय धन्य सार्थवाह भगवान् के निकट पहुंचा । धर्मोपदेश सुन कर जैनधर्म में दीक्षित हो गया । क्रमशः ग्यारह अंगों का वेत्ता मुनि हो गया । अन्तिम समय आने पर एक मास की संलेखना करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ । वहां से चय कर महाविदेह क्षेत्र में चारित्र धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा ।

'हे जम्बू ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार नहीं किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था—इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वमनको झराने वाले, पित्त··· शुक्र को झराने वाले, शोणित को झराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए आहार नहीं करते हैं, केवल सिद्धिगति को प्राप्त करने के लिए आहार करते हैं, वे इस भव में बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों, बहुत श्राविकाओं के वंदनीय···होते हैं, संसारकान्तार को पार करते हैं। जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वैसा ही मैंने तुम्हें कहा है ॥१४३॥

उपनय

जैसे सुंसुमा में आसक्त चिलात दुष्कर्मों में लीन होकर अटवी में गया, उसी प्रकार विषयासक्त जीव पापकर्म करके संसार-अटवी में अनेक दुःखों का पात्र बनता है। धन्य सार्थवाह के समान गुरु महाराज, पुत्रों के समान साधु, अटवी के समान संसार जानना चाहिए। राजगृह के समान मोक्ष समझना चाहिए। सिर्फ अटवी को पार करने के लिए धन्य आदि ने अनासक्त भाव से पुत्री का मांस खाया, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा से अगृद्ध भाव से, संसार व निस्तार मोक्षप्राप्ति के लिए ही भावितात्मा महासत्व साधुओं को आहार करना चाहिए। वर्ण, बल, रूप के लिए नहीं।

॥ अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥

उन्नीसवां पुण्डरीक-अध्ययन

जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं-'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि प्राप्त ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो उन्नीसवें ज्ञात-अध्ययनका श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?' श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू-स्वामीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा-हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें इसी जंबू-द्वीप नामक द्वीप में, पूर्व विदेह क्षेत्र में, सीता नामक महानदी के उत्तरी किनारे, नीलवन्त पर्वत के दक्षिण में, उत्तर तरफ के सीतामुख नामक वनखण्ड से पश्चिम में और एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत से पूर्व दिशा में पुष्कलावती नामक विजय कहा है।

उस पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी यावत् साक्षात् देवलोक के समान है।

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठ पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा 'तात ! आप हमारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवतास्वरूप हो, स्थापक (विवाह आदि करके गृहस्थधर्म में स्थापित करने वाले) हो, प्रतिष्ठापक (अपने पद पर स्थापित करने वाले) हो, कष्ट से रक्षा करने वाले हो, दुःख से बचाने वाले हो, अतः हे तात ! हम आपको कैसे जीवन से रहित करें ? कैसे आपके मांस और रुधिर का आहार करें ? हे तात ! आप मुझे जीवन-हीन कर दो और मेरे मांस तथा रुधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो । इत्यादि सब पूर्ववत् कहा, यावत् अर्थ यावत् पुण्य के भागी बनो ।'

तत्पश्चात् दूसरे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा-'हे तात ! हम गुरु और देव के समान ज्येष्ठ बन्धु को जीवन से रहित नहीं करेंगे । हे तात ! आप मुझको जीवन से रहित कीजिए; यावत् आप सब पुण्य के भागी बनिए ।' इसी प्रकार तीसरे, चौथे और पांचवें पुत्र ने भी कहा । तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर उन पांचों पुत्रों से इस प्रकार कहा-'पुत्रो ! हम में से एक को भी जीवन से रहित न करें । यह सुंसुमा का शरीर निष्प्राण यावत् जीव से त्यक्त है, अतएव हे पुत्रो ! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा । हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा लेंगे ।'

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर उन पांचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की । तब धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि की (अरणि काष्ठ में गड़हा किया), फिर शर किया, (अरणि की लम्बी लकड़ी की), दोनों तैयार कर के शर से अरणि का मथन किया । मथन कर के अग्नि उत्पन्न की । फिर अग्नि धौंकी । उसमें लकड़ियां डालीं । अग्नि प्रज्वलित की प्रज्वलित करके सुंसुमा दारिका का मांस पका कर उस मांस और रुधिर का आहार किया ।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुंचे । अपने मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि से मिले और विपुल धन कनक रत्न आदि के तथा यावत् पुण्य के भागी हुए । तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने सुंसुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक-कृत्य किये, यावत् कुछ काल बीत जाने पर वह शोकरहित हो गया ॥१४२॥ उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह के गुणशील उद्यान में पधारे । उस समय धन्य सार्थवाह भगवान् के निकट पहुंचा । धर्मोपदेश सुन कर जैनधर्म में दीक्षित हो गया । क्रमशः ग्यारह अंगों का वेत्ता मुनि हो गया । अन्तिम समय आने पर एक मास की संलेखना करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ । वहां से चय कर महाविदेह क्षेत्र में चारित्र धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा ।

'हे जम्बू ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, वल के लिए अथवा विपय के लिए सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार नहीं किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था—इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वमनको झराने वाले, पित्त··· शुक्र को झराने वाले, शोणित को झराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, वल के लिए अथवा विषय के लिए आहार नहीं करते हैं, केवल सिद्धिगति को प्राप्त करने के लिए आहार करते हैं, वे इस भव में वहुत श्रमणों, वहुत श्रमणियों, वहुत श्रावकों, वहुत श्राविकाओं के वंदनीय···होते हैं, संसारकान्तार को पार करते हैं। जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वैसा ही मैंने तुम्हें कहा है ॥१४३॥

उपनय

जैसे सुंसुमा में आसक्त चिलात दुष्कर्मो में लीन होकर अटवी में गया, उसी प्रकार विषयासक्त जीव पापकर्म करके संसार-अटवी में अनेक दुःखों का पात्र वनता है। धन्य सार्थवाह के समान गुरु महाराज, पुत्रों के समान साधु, अटवी के समान संसार जानना चाहिए। राजगृह के समान मोक्ष समझना चाहिए। सिर्फ अटवी को पार करने के लिए धन्य आदि ने अनासक्त भाव से पुत्री का मांस खाया, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा से अशुद्ध भाव से, संसार व निस्तार मोक्षप्राप्ति के लिए ही भावितात्मा महासत्व साधुओं को आहार करना चाहिए। वर्ण, वल, रूप के लिए नहीं।

॥ अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥

उन्नीसवां पुण्डरीक-अध्ययन

जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं-'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि प्राप्त ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो उन्नीसवें ज्ञात-अध्ययनका श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?' श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा-हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें इसी जंबूद्वीप नामक द्वीप में, पूर्व विदेह क्षेत्र में, सीता नामक महानदी के उत्तरी किनारे, नीलवन्त पर्वत के दक्षिण में, उत्तर तरफ के सीतामुख नामक वनखण्ड से पश्चिम में और एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत से पूर्व दिशा में पुष्कलावती नामक विजय कहा है।

उस पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी वारह योजन लम्बी यावत् साक्षात् देवलोक के समान है।

मनोहर है, दर्शनीय है, सुन्दर रूप वाली है और दर्शकों को आनन्द प्रदान करने वाली है। उस पुंडरीकिणी नगरी में उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) में नलिनीवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस पुंडरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था। पद्मावती उसकी देवी-पटरानी थी। महापद्म राजा के पुत्र और पद्मावती देवी के आत्मज दो कुमार थे। वे इस प्रकार पुंडरीक और कंडरीक। उनके हाथ-पैर बहुत कोमल थे। उनमें पुंडरीक युवराज था।

उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ (अर्थात् धर्मघोष स्थविर पांच सौ अनगारों के साथ परिवृत होकर, अनुक्रम से चलते हुए, यावत् नलिनीवन नामक उद्यानमें पधारे)। महापद्म राजा स्थविर मुनि को वन्दना करने निकला। धर्म सुन कर उसने पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित करके दीक्षा अंगीकार कर ली। अब पुण्डरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हो गया। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वोका अध्ययन किया। फिर स्थविर मुनि बाहर जाकर जनपदोंमें विहार करने लगे। तत्पश्चात् महापद्म ने बहुत वर्षो तक श्रामण्य-पर्याय पाल कर यावत् सिद्धि प्राप्त की ॥१४४॥

तत्पश्चात् एक वार किसी समय पुनः स्थविर पुंडरीकिणी राजधानी के नलिनीवन उद्यान में पधारे। पुण्डरीक राजा उन्हें वन्दना करने के लिए निकला। कंडरीक भी महाजनों (बहुत लोगों) के मुख से स्थविर के आने की बात सुन कर महाबल कुमार की तरह गया, यावत् स्थविर की उपासना करने लगा। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर पुण्डरीक श्रमणोपासक हो गया यावत् अपने घर लौट आया। तत्पश्चात् कंडरीक युवराज खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने इस प्रकार कहा-'भगवन्! आपने जो कहा है, वह वैसा ही है-सत्य है'। मैं केवल पुंडरीक राजा से अनुमति ले लूं, तत्पश्चात यावत् दीक्षा ग्रहण करूंगा। तब स्थविर ने कहा-'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

तत्पश्चात् कंडरीक ने यावत् स्थविर मुनि को वन्दन किया। वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला। निकल कर उसी चार घंटों वाले घोड़ों के रथ पर आरूढ़ हुआ, यावत् राजभवन में आकर उतरा। रथ से उतर कर पुंडरीक राजा के पास गया। वहां जाकर हाथ जोड़ कर यावत् पुंडरीक से कहा-'हे देवानुप्रिय! मैंने स्थविर मुनि से धर्म सुना है और वह धर्म मुझे रुचा है। अतएव देवानुप्रिय! मैं यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करने की इच्छा करता हूं।'

तब पुंडरीक राजा ने कण्डरीक युवराज से इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय! तुम इस समय मुंडित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुम्हें महान् महान्

राज्याभिषेक से अभिषिक्त करने वाला हूं।' तब कंडरीक ने पुण्डरीक राजा के इस अर्थ का आदर नहीं किया-स्वीकार नहीं किया; वह यावत् मौन रहा। तब पुंडरीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कण्डरीक से इसी प्रकार कहा; यावत् कण्डरीक फिर भी मौन ही बना रहा।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कंडरीक कुमार को बहुत कह कर और समझा कर रोकने में समर्थ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात दीक्षा की आज्ञा दे दी, यावत् उसे निष्क्रमणाभिषेक से अभिषिक्त किया, यावत् स्थविर मुनि को शिष्यभिक्षा प्रदान की। तब कंडरीक प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया, यावत् वह ग्यारह अंगों का वेत्ता हो गया। तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले। निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे। तत्पश्चात् कण्डरीक अनगार को अन्त-प्रान्त अर्थात् रूखे-सूखे आहार के कारण शैलक मुनि के समान शरीर में यावत् दाहज्वर उत्पन्न हो गया। वे रुग्ण रहने लगे ॥१४५॥

तत्पश्चात् एक वार किसी समय स्थविर भगवंत पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे और नलिनीवन उद्यान में ठहरे, तब राजा पुण्डरीक राजमहल से निकला और उसने धर्म सुना। तत्पश्चात् धर्म सुन कर पुंडरीक राजा कंडरीक अनगारके पास गया। वहां जाकर कंडरीक मुनि को वन्दनाकी, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके उसने कंडरीक मुनि का शरीर सब प्रकार की बाधा वाला और सरोग देखा। यह देख कर राजा स्थविर भगवंत के पास गया। जाकर स्थविर भगवंत को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया-'भगवन्! मैं कंडरीक अनगार की यथाप्रवृत्त (आपकी प्रवृत्ति-समाचारी के अनुकूल) औषध और भेषज से चिकित्सा कराता हूं (कराना चाहता हूं) अतः भगवन्! आप मेरी यानशाला में पधारिए।'

उस समय स्थविर भगवान् ने पुंडरीक राजा का यह निवेदन स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके यावत् यानशाला में रहने की आज्ञा लेकर विचरने लगे-वहां रहने लगे। तत्पश्चात् जैसे मंडुक राजाने शैलक ऋषिकी चिकित्सा करवाई। यावत् कंडरीक अनगार बलवान् शरीर वाले हो गए। तत्पश्चात् स्थविर भगवान् ने पुंडरीक राजासे पूछा। पूछ कर वे बाहर जाकर जनपद-विहार विहरने लगे। उस समय कंडरीक अनगार उस रोग-आतंक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो गये। अतएव वे पुण्डरीक राजा से पूछ कर अर्थात् कह कर

बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ न हो सके। वहां शिथिलाचारी हो-कर रहने लगे।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा ने इस कथा का अर्थ जाना अर्थात् जब उसे यह बात विदित हुई, तब वह स्नान करके और विभूषित होकर तथा अन्तःपुर के परिवार से परिवृत होकर जहां कंडरीक अनगार थे, वहां आया। आकर उसने कंडरीक को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। फिर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! आप धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृतपुण्य हैं और सुलक्षण वाले हैं। देवानुप्रिय! आप को मनुष्य के जन्म और जीवन का फल सुन्दर मिला है, जो आप राज्य को और अन्तःपुर को तृणवत् छोड़ कर प्रव्रजित हुए हैं। और मैं अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, यावत् राज्य में, अन्तःपुर में और मानवीय कामभोगोंमें मूर्छित यावत् तल्लीन हो रहा हूं, यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पा रहा हूं। अतएव देवानुप्रिय! आप धन्य हैं, यावत् आपको जन्म और जीवनका फल सुन्दर प्राप्त हुआ है।'

तत्पश्चात् कंडरीक अनगार ने पुंडरीक राजाकी इस बात का आदर नहीं किया। यावत् वे मौन बने रहे। तब पुण्डरीक ने दूसरी बार और तीसरी बार भी यही कहा। तत्पश्चात् इच्छा न होने पर भी, विवशताके कारण, लज्जा से और बड़े भाई के गौरव के कारण पुण्डरीक राजा से पूछा—अपने जानेके लिए कहा। पूछ कर वे स्थविर० के साथ बाहर जनपदों में विचरने लगे। उस समय स्थविर···के साथ-साथ कुछ समय तक उन्होंने उग्र २ विहार किया। उसके अनन्तर वे श्रमणत्व (साधुपन) से थक गये, श्रमणत्व से ऊब गये और श्रमणत्व से निर्भर्त्सना को प्राप्त हुए। साधुता के गुणोंसे मुक्त हो गये। अतएव धीरे-धीरे स्थविर···के पास से (बिना आज्ञा प्राप्त किए) खिसक गये। खिसक कर जहां पुंडरीकिणी नगरी थी और जहां पुंडरीक राजा का भवन था, उसी तरफ आये। आकर अशोकवाटिका में, श्रेष्ठ अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर बैठ गये। बैठ कर भग्नमनोरथ चिन्तामग्न हो रहे।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा की धायमाता जहां अशोकवाटिका थी, वहां गई। वहां जाकर उसने कंडरीक अनगारको अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिला रूपी पट्ट पर, भग्नमनोरथ यावत् चिन्तामग्न देखा। यह देख कर वह पुंडरीक राजाके पास गई और उनसे कहने लगी–'देवानुप्रिय! तुम्हारा प्रिय भाई कंडरीक अनगार अशोकवाटिका में, उत्तम अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्तामें डूबा हुआ है।'

तब पुंडरीक राजा, धायमाताकी यह बात सुन कर और समझ कर, उसी प्रकार संभ्रान्त होकर उठा। उठ कर अन्तःपुर के परिवार के साथ, अशोकवाटिका

में गया। जाकर यावत् कंडरीक को तीन बार इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो कि यावत् दीक्षित हुए हो। मैं अधन्य हूं कि यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पाता। अतएव देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, यावत् तुमने मानवीय जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है।' तत्पश्चात् पुंडरीक के द्वारा इस प्रकार कहने पर कंडरीक चुपचाप रहा। दूसरी बार और तीसरी बार कहने पर भी यावत् वह मौन ही बना रहा।

तब पुंडरीक राजाने कंडरीक राजासे पूछा-'भगवन् ! क्या भोगोंसे प्रयोजन है ? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है ?' तब कंडरीकने कहा—'हां, प्रयोजन है।' तत्पश्चात् पुंडरीक राजाने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही कंडरीकके महान् अर्थ व्यय वाले यावत् राज्याभिषेक की तैयारी करो।' यावत् कंडरीक का राज्याभिषेकसे अभिषेक किया ॥१४६॥

तत्पश्चात् पुंडरीकने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया और स्वयं ही चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। अंगीकार करके कंडरीकके आचारभाण्ड (उपकरण) ग्रहण किये और इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया—'स्थविर भगवान् को वन्दन नमस्कार करने और उनके पाससे चातुर्याम धर्म अंगीकार करनेके पश्चात् ही मुझे आहार करना कल्पता है।' ऐसा कह कर और इस प्रकारका अभिग्रह धारण करके पुंडरीक पुंडरीकिणी नगरीसे बाहर निकला। निकल कर अनुक्रम से चलता हुआ, एक ग्रामसे दूसरे ग्राम जाता हुआ, जिस ओर स्थविर भगवान् थे, उसी ओर गमन करनेको उद्यत हुआ ॥१४७॥

तत्पश्चात् उस कंडरीक राजा को प्रणीत (सरस पौष्टिक) आहार करनेसे, अति जागरण करनेसे और अति भोजनके प्रसंगसे, वह आहार अच्छी तरह परिणत नहीं हुआ-पच नहीं सका। उस आहार का पाचन न होने पर, मध्य रात्रिके समय, कंडरीक राजाके शरीरमें उज्ज्वल, विपुल, अत्यन्त गाढ़ी यावत् दुस्सह वेदना उत्पन्न हो गई। उसका शरीर पित्तज्वरसे व्याप्त हो गया। अतएव उसे दाह होने लगा। कंडरीक ऐसी रोगमय स्थितिमें रहने लगा। तत्पश्चात् कंडरीक राजा राज्यमें, राष्ट्रमें और अन्तःपुरमें यावत् अतीव आसक्त बना हुआ, आर्त्तध्यानके वशीभूत हुआ, इच्छाके बिना ही, पराधीन होकर, कालमासमें (मरणके अवसर पर) काल करके नीचे सातवीं पृथ्वीमें, सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले नरकमें, नारक रूपसे उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! यावत् हमारा जो साधु-साध्वी दीक्षित होकर फिरसे मानवीय कामभोगोंकी इच्छा करता है, वह यावत् कंडरीक राजा की भांति संसारमें पर्यटन करता है ॥१४८॥

पुंडरीकिणी नगरीसे रवाना होनेके पश्चात् वे पुंडरीक अनगार वहां

बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ न हो सके। वहां शिथिलाचारी हो-कर रहने लगे।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा ने इस कथा का अर्थ जाना अर्थात् जब उसे यह बात विदित हुई, तब वह स्नान करके और विभूषित होकर तथा अन्तःपुर के परिवार से परिवृत होकर जहां कंडरीक अनगार थे, वहां आया। आकर उसने कंडरीक को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। फिर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृतपुण्य हैं और सुलक्षण वाले हैं। देवानुप्रिय ! आप को मनुष्य के जन्म और जीवन का फल सुन्दर मिला है, जो आप राज्य को और अन्तःपुर को तृणवत् छोड़ कर प्रव्रजित हुए हैं। और मैं अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, यावत् राज्य में, अन्तःपुर में और मानवीय कामभोगोंमें मूर्छित यावत् तल्लीन हो रहा हूं, यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पा रहा हूं। अतएव देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, यावत् आपको जन्म और जीवनका फल सुन्दर प्राप्त हुआ है।'

तत्पश्चात् कंडरीक अनगार ने पुंडरीक राजाकी इस बात का आदर नहीं किया। यावत् वे मौन बने रहे। तब पुण्डरीक ने दूसरी बार और तीसरी बार भी यही कहा। तत्पश्चात् इच्छा न होने पर भी, विवशताके कारण, लज्जा से और बड़े भाई के गौरव के कारण पुण्डरीक राजा से पूछा—अपने जानेके लिए कहा। पूछ कर वे स्थविर० के साथ बाहर जनपदों में विचरने लगे। उस समय स्थविर...के साथ-साथ कुछ समय तक उन्होंने उग्र २ विहार किया। उसके अनन्तर वे श्रमणत्व (साधुपन) से थक गये, श्रमणत्व से ऊब गये और श्रमणत्व से निर्भर्त्सना को प्राप्त हुए। साधुता के गुणोंसे मुक्त हो गये। अतएव धीरे-धीरे स्थविर...के पास से (बिना आज्ञा प्राप्त किए) खिसक गये। खिसक कर जहां पुंडरीकिणी नगरी थी और जहां पुंडरीक राजा का भवन था, उसी तरफ आये। आकर अशोकवाटिका में, श्रेष्ठ अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर बैठ गये। बैठ कर भग्नमनोरथ चिन्तामग्न हो रहे।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा की धायमाता जहां अशोकवाटिका थी, वहां गई। वहां जाकर उसने कंडरीक अनगारको अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिला रूपी पट्ट पर, भग्नमनोरथ यावत् चिन्तामग्न देखा। यह देख कर वह पुंडरीक राजाके पास गई और उनसे कहने लगी–'देवानुप्रिय ! तुम्हारा प्रिय भाई कंडरीक अनगार अशोकवाटिका में, उत्तम अशोक वृक्षके नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्तामें डूबा हुआ है।'

तब पुंडरीक राजा, धायमाताकी यह बात सुन कर और समझ कर, उसी प्रकार संभ्रान्त होकर उठा। उठ कर अन्तःपुर के परिवार के साथ, अशोकवाटिका

में गया। जाकर यावत् कंडरीक को तीन वार इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम धन्य हो कि यावत् दीक्षित हुए हो। मैं अधन्य हूं कि यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पाता। अतएव देवानुप्रिय! तुम धन्य हो, यावत् तुमने मानवीय जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है।' तत्पश्चात् पुंडरीक के द्वारा इस प्रकार कहने पर कंडरीक चुपचाप रहा। दूसरी वार और तीसरी वार कहने पर भी यावत् वह मौन ही वना रहा।

तब पुंडरीक राजाने कंडरीक राजासे पूछा—'भगवन्! क्या भोगोंसे प्रयोजन है? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है?' तब कंडरीकने कहा—'हां, प्रयोजन है।' तत्पश्चात् पुंडरीक राजाने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही कंडरीकके महान् अर्थ व्यय वाले यावत् राज्याभिषेक की तैयारी करो।' यावत् कंडरीक का राज्याभिषेकसे अभिषेक किया ॥१४६॥

तत्पश्चात् पुंडरीकने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया और स्वयं ही चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। अंगीकार करके कंडरीकके आचारभाण्ड (उपकरण) ग्रहण किये और इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया—'स्थविर भगवान् को वन्दन नमस्कार करने और उनके पाससे चातुर्याम धर्म अंगीकार करनेके पश्चात् ही मुझे आहार करना कल्पता है।' ऐसा कह कर और इस प्रकारका अभिग्रह धारण करके पुंडरीक पुंडरीकिणी नगरीसे वाहर निकला। निकल कर अनुक्रम से चलता हुआ, एक ग्रामसे दूसरे ग्राम जाता हुआ, जिस ओर स्थविर भगवान् थे, उसी ओर गमन करनेको उद्यत हुआ ॥१४७॥

तत्पश्चात् उस कंडरीक राजा को प्रणीत (सरस पौष्टिक) आहार करनेसे, अति जागरण करनेसे और अति भोजनके प्रसंगसे, वह आहार अच्छी तरह परिणत नहीं हुआ—पच नहीं सका। उस आहार का पाचन न होने पर, मध्य रात्रिके समय, कंडरीक राजाके शरीरमें उज्ज्वल, विपुल, अत्यन्त गाढ़ी यावत् दुस्सह वेदना उत्पन्न हो गई। उसका शरीर पित्तज्वरसे व्याप्त हो गया। अतएव उसे दाह होने लगा। कंडरीक ऐसी रोगमय स्थितिमें रहने लगा। तत्पश्चात् कंडरीक राजा राज्यमें, राष्ट्रमें और अन्तःपुरमें यावत् अतीव आसक्त वना हुआ, आर्त्त ध्यानके वशीभूत हुआ, इच्छाके विना ही, पराधीन होकर, कालमासमें (मरणके अवसर पर) काल करके नीचे सातवीं पृथ्वीमें, सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले नरकमें, नारक रूपसे उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! यावत् हमारा जो साधु-साध्वी दीक्षित होकर फिरसे मानवीय कामभोगोंकी इच्छा करता है, वह यावत् कंडरीक राजा की भांति संसारमें पर्यटन करता है ॥१४८॥

पुंडरीकिणी नगरीसे रवाना होनेके पश्चात् वे पुंडरीक अनगार वहां

पहुंचे जहां स्थविर भगवान् थे। वहां पहुँच कर उन्होंने स्थविर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके स्थविर···के निकट दूसरी वार चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। फिर षष्ठभक्तके पारणक में, प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय किया, (दूसरे प्रहरमें ध्यान किया,) तीसरे प्रहरमें यावत् भिक्षाके लिए अटन करते हुए ठंडा और रूखा भोजन-पान ग्रहण किया। ग्रहण करके 'यह मेरे लिए पर्याप्त है' ऐसा सोचकर लौट आये। लौटकर स्थविर भगवानके पास आये। उन्हें लाया हुआ भोजन-पानी दिखलाया। फिर स्थविर भगवान् की आज्ञा होने पर मूर्छाहीन होकर तथा गृद्धि, आसक्ति एवं तल्लीनतासे रहित होकर, जैसे सर्प बिलमें सीधा चला जाता है, उसी प्रकार (स्वाद न लेते हुए) उस प्रासुक तथा एषणीय आहार, पानी, खादिम और स्वादिम को शरीर रूपी कोठेमें डाल लिया।

तत्पश्चात् पुंडरीक अनगार उस कालातिक्रान्त (जिसके खाने का समय बीत गया है ऐसे), रसहीन, खराब रस वाले तथा ठंडे और रूखे भोजन पानी का आहार करके मध्य रात्रिके समय धर्मजागरण कर रहे थे। तब वह आहार उन्हें सम्यक् रूपसे परिणत न हुआ। उस समय उन पुंडरीक अनगारके शरीरमें उज्ज्वल यावत् दुस्सह वेदना उत्पन्न हो गई। उनका शरीर पित्तज्वरसे व्याप्त हो गया और शरीरमें दाह होने लगा। तत्पश्चात् पुंडरीक अनगार निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पुरुषकार-पराक्रमहीन हो गये। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहा—

'यावत् सिद्धि-प्राप्त अरिहंतोंको नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्थविर भगवान् को नमस्कार हो, स्थविर के निकट पहले भी मैंने समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया, यावत् मिथ्यादर्शन शल्यका (अठारहों पापस्थानों) का त्याग किया था, इत्यादि कहकर यावत् आलोचना प्रतिक्रमण करके, कालमासमें काल करके सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न हुए। वहांसे अनन्तर चय करके, अर्थात् बीचमें कहीं अन्यत्र जन्म न लेकर सीधे महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेंगे, यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करेंगे। इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो हमारा साधु या साध्वी दीक्षित होकर मनुष्य संबंधी कामभोगोंमें आसक्त नहीं होता, यावत् प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता, वह इस भवमें बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा वन्दनीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलकारक, देव समान, उपासना करने योग्य होता है। इसके अतिरिक्त वह परलोक में भी राजदण्ड, राजनिग्रह, तर्जना और ताड़नाको प्राप्त नहीं होता, यावत् चतुर्गति रूप संसार-कान्तारको यावत् पार कर जाता है,

जैसे पुंडरीक अनगार।

'जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, तीर्थकी स्थापना करने वाले, यावत् सिद्धि नामक स्थानको प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात-अध्ययनके उन्नीसवें अध्ययनका यह अर्थ कहा है। श्रीसुधर्मा स्वामी पुनः कहते हैं–'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीरने यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त जिनेश्वर देव ने इस छठे अंगके प्रथम श्रुतस्कंध का यह अर्थ कहा है। जैसा सुना वैसा मैंने कहा है। अपनी बुद्धिके अनुसार नहीं कहा। इस प्रथम श्रुतस्कंधके उन्नीस अध्ययन हैं। एक-एक अध्ययन एक-एक दिनमें पढ़नेसे उन्नीस दिनोंमें ये अध्ययन पूर्ण होते हैं (इसके योगवहनमें उन्नीस दिन लगते हैं) ॥१४९॥

उपनय

जो साधु चिरकाल* पर्यन्त उग्र संयम का पालन करके अन्तमें प्रतिपाती हो जाता है, संयमसे भ्रष्ट हो जाता है, वह कंडरीक की तरह दुःख पाता है। इसके विपरीत जो महानुभाव साधु गृहीत संयम का अन्तिम श्वास तक यथावत् पालन करते हैं, वे पुंडरीक की भांति अल्पकालमें ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

॥ उन्नीसवां अध्ययन समाप्त ॥ प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त ॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध-धर्मकथा

प्रथम वर्ग--प्रथम अध्ययन

प्रथम श्रुतस्कंधमें दृष्टान्तों द्वारा धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस द्वितीय श्रुतस्कंधमें साक्षात् कथाओं द्वारा धर्म का अर्थ प्रकट करते हैं। उस काल और उस समयमें राजगृह नगर था। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) में गुणशील नामक उद्यान था। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नामक स्थविर भगवान् उच्च-जातिसे सम्पन्न, कुलसे सम्पन्न यावत् चौदह पूर्वोंके वेत्ता और चार ज्ञानोंसे युक्त थे। वे पांच सौ अनगारों के साथ परिवृत होकर अनुक्रमसे चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरते हुए और सुखे-सुखे विहार करते हुए, जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील उद्यान था, वहां पधारे। यावत् संयम और तपके द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

सुधर्मा स्वामीको वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली। सुधर्मा स्वामीने धर्म का उपदेश किया। तत्पश्चात् परिषद् वापिस चली गई। उस काल और उस समयमें आर्य सुधर्मा अनगारके अन्तेवासी आर्य जम्बू नामक अनगार यावत् सुधर्मा स्वामीकी उपासना करते हुए बोले'–भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिको प्राप्तने छठे अंगके 'ज्ञातश्रुत' नामक प्रथम श्रुतस्कंध का यह

* सहस्रवर्ष।

(पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन्! 'धर्मकथा' नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का सिद्धपद को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने क्या अर्थ कहा है?' श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—'इस प्रकार हे जम्बू! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंधके दस वर्ग कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों (पटरानियों) का प्रथम वर्ग (२) वैरोचनेन्द्र एवं वैरोचनराज वलि (वलीन्द्र) की अग्रमहिषियों का दूसरा वर्ग (३) असुरेन्द्रको छोड़कर शेष नौ दक्षिण दिशाके भवनपति इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तीसरा वर्ग (४) असुरेन्द्रके सिवाय नौ उत्तर दिशाके भवनपति-इन्द्रों की अग्रमहिषियोंका चौथा वर्ग (५) दक्षिण दिशाके वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्रोंकी अग्रमहिषियोंका पांचवां वर्ग (६) उत्तर दिशाके वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्रोंकी अग्रमहिषियों का छठा वर्ग (७) चन्द्र की अग्रमहिषियों का सातवां वर्ग (८) सूर्यकी अग्रमहिषियों का आठवां वर्ग (९) शक्रेन्द्र की अग्रमहिषियों का नौवां वर्ग और (१०) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का दसवां वर्ग।'

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—'भगवन्! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धर्मकथा श्रुतस्कंधके दस वर्ग कहे हैं, तो भगवन्! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने क्या अर्थ कहा है?' आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं—'हे जम्बू! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने प्रथम वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत और (५) मेघा।' जम्बूने पुनः प्रश्न किया—'भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने यदि प्रथम वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं तो भगवन्! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?'

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—'हे जम्बू! उस काल और उस समयमें राजगृह-नगर था, गुणशील उद्यान था, श्रेणिक राजा था और चेलना रानी थी। उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली, यावत् परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी। उस काल और उस समयमें, काली नामक देवी चमरचंचा राजधानी में, कालावतंसक भवनमें, काल नामक सिंहासन पर आसीन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियों, परिवार सहित तीनों परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य कालावतंसक भवनके निवासी असुरकुमार देवोंके साथ परिवृत होकर जोर से बजने वाले वादिन्त्र आदिसे मनोरंजन करती हुई यावत् विचरती थी।

वह काली देवी इस केवलकल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीपको अपने विपुल अवधिज्ञानसे उपयोग लगाती हुई देख रही थी। उसने जम्बूद्वीप नामक द्वीपके भरत

क्षेत्रमें, राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमें, यथाप्रतिरूप-साधुके लिए उचित स्थान की याचना करके, संयम और तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुई उसका चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रीतियुक्त हो गया। वह अपहृतहृदय होकर सिंहासन से उठी। पादपीठसे नीचे उतरी। उसने पादुका (खडाऊं) उतार दिये। फिर तीर्थंकर भगवान्के सन्मुख सात-आठ कदम आगे बढ़ी। बढ़कर बाएं घुटने को ऊपर रक्खा और दाहिने घुटनेको पृथ्वी पर टेक दिया। फिर मस्तक कुछ ऊंचा किया। तत्पश्चात् कड़ों और बाजूबंदोंसे स्तंभित भुजाओं को मिलाया। मिलाकर, दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहने लगी—

'यावत् सिद्धि को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो। यावत् सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। यहां रही हुई मैं वहां स्थित भगवान् को वन्दना करती हूं। वहां स्थित श्रमण भगवान् महावीर यहां रही हुई मुझको देखें।' इस प्रकार कह कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो गई।

(पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन्! 'धर्मकथा' नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का सिद्धपद को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने क्या अर्थ कहा है ?' श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—'इस प्रकार हे जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंधके दस वर्ग कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों (पटरानियों) का प्रथम वर्ग (२) वैरोचनेन्द्र एवं वैरोचनराज बलि (बलीन्द्र) की अग्रमहिषियों का दूसरा वर्ग (३) असुरेन्द्रको छोड़कर शेष नौ दक्षिण दिशाके भवनपति इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तीसरा वर्ग (४) असुरेन्द्रके सिवाय नौ उत्तर दिशाके भवनपति–इन्द्रों की अग्रमहिषियोंका चौथा वर्ग (५) दक्षिण दिशाके वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्रोंकी अग्रमहिषियोंका पांचवां वर्ग (६) उत्तर दिशाके वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्रोंकी अग्रमहिषियों का छठा वर्ग (७) चन्द्र की अग्रमहिषियों का सातवां वर्ग (८) सूर्यकी अग्रमहिषियों का आठवां वर्ग (९) शक्रेन्द्र की अग्रमहिषियों का नौवां वर्ग और (१०) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का दसवां वर्ग।'

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धर्मकथा श्रुतस्कंधके दस वर्ग कहे हैं, तो भगवन् ! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने क्या अर्थ कहा है ?' आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं–'हे जम्बू ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने प्रथम वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत और (५) मेघा।' जम्बूने पुनः प्रश्न किया—'भगवन् ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्ने यदि प्रथम वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?'

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—'हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें राजगृह-नगर था, गुणशील उद्यान था, श्रेणिक राजा था और चेलना रानी थी। उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करनेके लिए परिषद् निकली, यावत् परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी। उस काल और उस समयमें, काली नामक देवी चमरचंचा राजधानी में, कालावतंसक भवनमें, काल नामक सिंहासन पर आसीन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियों, परिवार सहित तीनों परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य कालावतंसक भवनके निवासी असुरकुमार देवोंके साथ परिवृत होकर जोर से बजने वाले वादिन्त्र आदिसे मनोरंजन करती हुई यावत् विचरती थी।

वह काली देवी इस केवलकल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीपको अपने विपुल अवधिज्ञानसे उपयोग लगाती हुई देख रही थी। उसने जम्बूद्वीप नामक द्वीपके भरत

क्षेत्रमें, राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमें, यथाप्रतिरूप–साधुके लिए उचित स्थान की याचना करके, संयम और तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुई उसका चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रीतियुक्त हो गया। वह अपहृतहृदय होकर सिंहासन से उठी। पादपीठसे नीचे उतरी। उसने पादुका (खडाऊं) उतार दिये। फिर तीर्थंकर भगवान्के सन्मुख सात-आठ कदम आगे बढ़ी। बढ़कर बाएं घुटने को ऊपर रक्खा और दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक दिया। फिर मस्तक कुछ ऊंचा किया। तत्पश्चात् कड़ों और बाजूबंदोंसे स्तंभित भुजाओं को मिलाया। मिलाकर, दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहने लगी—

'यावत् सिद्धि को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो। यावत् सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। यहां रही हुई मैं वहां स्थित भगवान् को वन्दना करती हूं। वहां स्थित श्रमण भगवान् महावीर यहां रही हुई मुझको देखें।' इस प्रकार कह कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो गई।

तत्पश्चात् काली देवीको इस प्रकार का यह अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ—'श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करके यावत् उनकी पर्युपासना करना मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके आभियोगिक देवों को बुलाया। बुला कर उन्हें इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमें विराजमान हैं,' इत्यादि जैसे सूर्याभ देवने अपने आभियोगिक देवोंको आज्ञा दी थी, उसी प्रकार काली देवीने भी आज्ञा दी कि यावत् 'दिव्य और श्रेष्ठ देवताओंके गमनके योग्य यान-विमान बना कर तैयार करो, यावत् मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' आभियोगिक देवोंने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा लौटा दी। वहां विशेषता यही है कि हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया (जब कि सूर्याभ देवके लिए लाख योजन का विमान बनाया गया था।) शेष वर्णन सूर्याभके वर्णनके समान ही समझना चाहिए। सूर्याभकी तरह ही भगवान्के पास जाकर अपना नाम-गोत्र कहा, उसी प्रकार नाटक दिखलाया। फिर वह काली देवी वापिस चली गई।

'अहो भगवन्!' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतमने श्रमण भगवान् महावीरको वन्दना की···नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! काली देवी की वह दिव्य ऋद्धि कहां चली गई?' भगवान्ने उत्तरमें कूटाकारशाला का दृष्टान्त दिया।* 'अहो भगवन्! काली देवी महती ऋद्धि वाली है। भगवन्!

---

* दृष्टान्त पहले आ चुका है।

काली देवीको वह मनोहर देवर्द्धि पूर्वभवमें क्या करनेसे मिली ? देवभवमें कैसे प्राप्त हुई ? और किस प्रकार उसके सामने आई, अर्थात् उपभोगमें आने योग्य हुई ?' यहां सूर्याभ के समान ही कहना चाहिये। तब भगवान् ने कहा—हे गौतम ! उस काल और उस समयमें इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्षमें, आमलकल्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन समझना चाहिए। उस नगरी के बाहर ईशान दिशामें आम्रशालवन नामक उद्यान था। उस नगरीमें जितशत्रु नामक राजा था।

उस आमलकल्पा नगरीमें काल नामक एक गाथापति (गृहस्थ) रहता था। वह धनाढ्य था और किसीसे पराभूत होने वाला नहीं था। उस काल गाथापति की कालश्री पत्नी थी। वह सुकुमार हाथ पैर आदि अवयवों वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी। उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक बालिका थी। वह (उम्र से) बड़ी थी और बड़ी होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी। वह जीर्णा (शरीरसे जीर्ण होनेके कारण वृद्धा) थी और जीर्णा होते हुए कुमारी थी। उसके स्तन नितंब प्रदेश तक लटक गये थे। वर(पति बनने वाले पुरुष) उससे विरक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नहीं था, अतएव वह वररहित रह रही थी। उस काल और उस समयमें पुरुषादानीय (पुरुषों में आदेय नाम कर्म वाले) एवं धर्मकी आदि करने वाले पार्श्वनाथ अरिहंत थे। वे वर्धमान स्वामीके समान थे, केवल उनका शरीर नौ हाथ ऊंचा था, तथा वे सोलह हजार साधुओं और अड़तीस हजार साध्वियोंसे परिवृत थे। यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थंकर आम्रशाल वनमें पधारे। वन्दन करनेके लिए परिषद् निकली, यावत् वह भगवान् की उपासना करने लगी।

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का अर्थ प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने का समाचार जानकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाली हुई। जहां माता-पिता थे, वहां गई। जाकर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली-'हे माता-पिता ! पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थकी आदि करने वाले यावत् यहां विचर रहे हैं। अतएव हे मातापिता ! आपकी आज्ञा हो तो मैं पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय के चरणोंमें वन्दना करने जाना चाहती हूं।' माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! तुझे जैसे सुख उपजे, वैसा कर । धर्मकार्य में विलंब मत कर।'

तत्पश्चात् वह काली नामक दारिका माता-पिता की आज्ञा पाकर यावत् हर्षितहृदय हुई। उसने स्नान किया तथा साफ, सभा के योग्य, मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को भूषित किया। फिर दासियों के समूह से परिवृत होकर अपने गृह से

निकली, निकल कर जहां बाहर की उपस्थानशाला (सभा) थी, वहां आई। आकर धर्म-संबंधी श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई।

तत्पश्चात् काली नामक दारिका धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ होकर द्रौपदीके समान भगवान्को वन्दना करके उपासना करने लगी। उस समय पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व ने काली नामक दारिका को और उस विशाल जन-समूह को धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् उस काली नामक दारिका ने पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ के पास से धर्म सुन कर उसे हृदय में धारण करके, हर्षितहृदय होकर यावत् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथको तीन बार वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया— 'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूं, यावत् आप जैसा कहते हैं वह वैसा ही है।-केवल हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पितासे पूछ लेती हूं,उसके पश्चात् मैं आप देवानुप्रियके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी।' भगवान् ने कहा--'देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख उपजे, करो।'

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वके द्वारा इस प्रकार कहने पर वह काली नामक दारिका हर्षित एवं संतुष्ट हृदय वाली हुई। उसने पार्श्व अरहंत को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह उसी धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्व के पास से, आम्रशालवन नामक उद्यान से बाहर निकली और आमलकल्पा नगरी की ओर चली। आमलकल्पा नगरी के मध्यभागमें होकर जहां बाहर की उपस्थान-शाला थी वहां पहुँची। धार्मिक एवं श्रेष्ठ यान को ठहराया और फिर उससे नीचे उतरी। फिर अपने माता-पिता के पास जाकर और दोनों हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार बोली—

'हे माता पिता! मैंने पार्श्वनाथ तीर्थंकर से धर्म सुना है। और उस धर्म की मैंने इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है। वह धर्म मुझे रुचा है। इस कारण हे मात-तात! मैं संसार के भय से उद्विग्न हो गई हूं, जन्म-मरण से भयभीत हो गई हूं। आपकी आज्ञा पाकर पार्श्व अरिहन्त के समीप मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या धारण करना चाहती हूं।' माता-पिता ने कहा-'देवानुप्रिये! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो।'

तत्पश्चात् काल नामक गाथापति ने विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों को आमंत्रण दिया। आमंत्रण देकर स्नान किया। फिर यावत्

काली देवीको वह मनोहर देवर्द्धि पूर्वभवमें क्या करनेसे मिली ? देवभवमें कैसे प्राप्त हुई ? और किस प्रकार उसके सामने आई, अर्थात् उपभोगमें आने योग्य हुई ?' यहां सूर्याभ के समान ही कहना चाहिये। तब भगवान् ने कहा--हे गौतम उस काल और उस समयमें इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्षमें, आमलकल्प नामक नगरी थी। उसका वर्णन समझना चाहिए। उस नगरी के बाहर ईशान दिशामें आम्रशालवन नामक उद्यान था। उस नगरीमें जितशत्रु नामक राजा था।

उस आमलकल्पा नगरीमें काल नामक एक गाथापति (गृहस्थ) रहता था। वह धनाढ्य था और किसीसे पराभूत होने वाला नहीं था। उस काल गाथापति की कालश्री पत्नी थी। वह सुकुमार हाथ पैर आदि अवयवों वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी। उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक बालिका थी। वह (उम्र से) बड़ी थी और बड़ी होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी। वह जीर्णा (शरीरसे जीर्ण होनेके कारण वृद्धा) थी और जीर्णा होते हुए कुमारी थी। उसके स्तन नितंब प्रदेश तक लटक गये थे। वर(पति बनने वाले पुरुष) उससे विरक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नहीं था, अतएव वह वररहित रह रही थी। उस काल और उस समयमें पुरुषादानीय (पुरुषों में आदेय नाम कर्म वाले) एवं धर्मकी आदि करने वाले पार्श्वनाथ अरिहंत थे। वे वर्धमान स्वामीके समान थे, केवल उनका शरीर नौ हाथ ऊंचा था, तथा वे सोलह हजार साधुओं और अड़तीस हजार साध्वियोंसे परिवृत थे। यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थकर आम्रशाल वनमें पधारे। वन्दन करनेके लिए परिषद् निकली, यावत् वह भगवान् की उपासना करने लगी।

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का अर्थ प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने का समाचार जानकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाली हुई। जहां माता-पिता थे, वहां गई। जाकर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली-'हे माता-पिता ! पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थकी आदि करने वाले यावत् यहां विचर रहे हैं। अतएव हे मातापिता ! आपकी आज्ञा हो तो मैं पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय के चरणोंमें वन्दना करने जाना चाहती हूं।' माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! तुझे जैसे सुख उपजे, वैसा कर। धर्मकार्य में विलंब मत कर।'

तत्पश्चात् वह काली नामक दारिका माता-पिता की आज्ञा पाकर यावत् हर्षितहृदय हुई। उसने स्नान किया तथा साफ, सभा के योग्य, मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को भूषित किया। फिर दासियों के समूह से परिवृत होकर अपने गृह से

निकली, निकल कर जहां वाहर की उपस्थानशाला (सभा) थी, वहां आई। आकर धर्म-संबंधी श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई।

तत्पश्चात् काली नामक दारिका धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ होकर द्रौपदीके समान भगवान्को वन्दना करके उपासना करने लगी। उस समय पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व ने काली नामक दारिका को और उस विशाल जन-समूह को धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् उस काली नामक दारिका ने पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ के पास से धर्म सुन कर उसे हृदय में धारण करके, हर्षितहृदय होकर यावत् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथको तीन वार वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया— 'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूं, यावत् आप जैसा कहते हैं वह वैसा ही है।-केवल हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पितासे पूछ लेती हूं,उसके पश्चात् मैं आप देवानुप्रियके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी।' भगवान् ने कहा--'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, करो।'

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वके द्वारा इस प्रकार कहने पर वह काली नामक दारिका हर्षित एवं संतुष्ट हृदय वाली हुई। उसने पार्श्व अरहंत को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह उसी धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्व के पास से, आम्रशालवन नामक उद्यान से वाहर निकली और आमलकल्पा नगरी की ओर चली। आमलकल्पा नगरी के मध्यभागमें होकर जहां वाहर की उपस्थान-शाला थी वहां पहुँची। धार्मिक एवं श्रेष्ठ यान को ठहराया और फिर उससे नीचे उतरी। फिर अपने माता-पिता के पास जाकर और दोनों हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार वोली—

'हे माता पिता ! मैंने पार्श्वनाथ तीर्थंकर से धर्म सुना है। और उस धर्म की मैंने इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है। वह धर्म मुझे रुचा है। इस कारण हे मात-तात ! मैं संसार के भय से उद्विग्न हो गई हूं, जन्म-मरण से भयभीत हो गई हूं। आपकी आज्ञा पाकर पार्श्व अरिहन्त के समीप मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या धारण करना चाहती हूं।' माता-पिता ने कहा-'देवानुप्रिये ! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य में विलम्व न करो।'

तत्पश्चात् काल नामक गाथापति ने विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजक, स्वजन, संवंधी और परिजनों को आमंत्रण दिया। आमंत्रण देकर स्नान किया। फिर यावत्

विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य और अलंकार से उनका सत्कार-सन्मान करके, उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के सामने काली नामक दारिका को श्वेत एवं पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से स्नान करवाया। स्नान करवाने के पश्चात् उसे सर्व अलंकारों से विभूषित किया। फिर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ़ किया। आरूढ़ करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ परिवृत होकर, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ, आमलकल्पा नगरी के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर आम्रशालवन की ओर चले, चल कर छत्र आदि तीर्थंकर भगवान् के अतिशय देखे। अतिशयों पर दृष्टि पड़ते ही शिविका रोक दी गई। फिर माता पिता काली नामक दारिका को आगे करके जिस ओर पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व थे, उसी ओर गये। जाकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् इस प्रकार कहा—

'इस प्रकार हे देवानुप्रिय ! काली नामक दारिका हमारी पुत्री है। हमें यह इष्ट है और प्रिय है, यावत् इसका दर्शन भी दुर्लभ है। देवानुप्रिय ! यह संसार भ्रमण के भय से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित होने की इच्छा करती है। अतएव हम यह शिष्यनीभिक्षा देवानुप्रिय को प्रदान करते हैं। देवानुप्रिय ! शिष्यनीभिक्षा अंगीकार करें।' तब भगवान् बोले- 'देवानुप्रियो ! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो।'

तत्पश्चात् काली कुमारी ने पार्श्व अरहंत को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके वह उत्तरपूर्व (ईशान) दिशाभाग में गई। वहां जाकर उसने स्वयं ही आभूषण, माला और अलंकार उतारे और स्वयं ही लोच किया। फिर जहां पुरुषादानीय अरहन्त पार्श्व थे, वहां आई। आकर पार्श्व अरहन्त को तीन बार वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली-'भगवन् ! यह लोक आदीप्त है अर्थात् जन्म-मरण आदि के संताप से जल रहा है, इत्यादि देवानन्दा के समान जानना चाहिए। यावत् मैं चाहती हूं कि आप स्वयं ही मुझे दीक्षा प्रदान करें।'

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरहन्त पार्श्व ने स्वयमेव काली कुमारी को, पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप में प्रदान किया। तब पुष्पचूला आर्या ने काली कुमारी को स्वयं ही दीक्षित किया। यावत् वह काली प्रव्रज्या अंगीकार करके विचरने लगी। तत्पश्चात् वह काली आर्या ईर्यासमिति से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई। तदनन्तर उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा बहुत-से चतुर्थभक्त (उपवास) षष्ठभक्त आदि तपश्चरण करती हुई विचरने लगी।

तत्पश्चात् किसी समय, एक बार वह काली आर्या शरीरबाकुशिका (शरीर को साफ-सुथरा रखने की वृत्ति वाली) हो गई। अतएव वह बार-बार हाथ धोने

लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तनों के अन्तर धोने लगी, कांखों के अन्तर-प्रदेश धोने लगी और गुह्य-स्थान धोने लगी। जहां-जहां वह कायोत्सर्ग, शय्या या स्वाध्याय करती थी, उस स्थान पर पहले जल छिड़ककर बादमें बैठती अथवा सोती थी। तव पुष्पचूला आर्याने उस काली आर्यासे कहा--'हे देवानुप्रिये ! श्रमणी निर्ग्रंथियों को शरीरबकुशा होना नहीं कल्पता, और तुम देवानुप्रिये ! शरीरबकुशा हो गई हो। वारंवार हाथ धोती हो, यावत् पानी छिड़क कर बैठती और सोती हो। अतएव देवानुप्रिये ! तुम इस पापस्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो।'

तव काली आर्या ने पुष्पचूला आर्याकी यह बात स्वीकार नहीं की। यावत् वह चुप बनी रही। तत्पश्चात् वे पुष्पचूला आदि आर्याएं, काली आर्याकी बार-बार अवहेलना करने लगीं, निन्दा करने लगीं, चिढ़ाने लगीं, गर्हा करने लगीं, अवज्ञा करने लगीं और बार-बार इस अर्थ (निषिद्ध कर्म) को रोकने लगीं। निर्ग्रंथी श्रमणियों द्वारा बारंबार अवहेलना की गई यावत् रोकी गई उस काली आर्यिकाके मनमें इस प्रकारका अध्यवसाय उत्पन्न हुआ-'जब मैं गृहवासमें वसती थी, तब मैं स्वाधीन थी, किन्तु जब से मैंने मुंडित होकर गृहत्याग कर अनगारिता की दीक्षा अंगीकार की है, तबसे मैं पराधीन हो गई हूं। अतएव कल रजनीके प्रभातयुक्त हो जाने पर यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर अलग उपाश्रय ग्रहण करके रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन सूर्य के प्रकाशमान होने पर उसने पृथक् उपाश्रय ग्रहण कर लिया। वहां कोई रोकने वाला नहीं रहा, निषेध करने वाला नहीं रहा, अतएव वह स्वच्छंदमति हो गई और बार-बार हाथ धोने लगी, यावत् जल छिड़क-छिड़क कर बैठने और सोने लगी।

तत्पश्चात् वह काली आर्या पासत्था (पार्श्वस्था-ज्ञान दर्शन चारित्र के पास न रहने वाली), पासत्थविहारिणी, अवसन्ना (धर्मक्रिया में आलसी), अवसन्नविहारिणी, कुशीला, कुशीलविहारिणी, यथाछंदा (मनचाहा व्यवहार करने वाली), यथाछंदविहारिणी, संसक्ता (ज्ञानादिकी विराधना करने वाली), तथा संसक्तविहारिणी होकर, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (चारित्र) का पालन करके अर्द्धमास (एक पखवाड़े) की संलेखना द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, तीस बारके भोजनको अनशनसे छेद कर, उस पापकर्म की आलोचना-प्रतिक्रमण न करके, कालमासमें काल करके, चमरचंचा राजधानी में, कालावतंसक नामक विमान में, उपपात (देवोंके उत्पन्न होने की) सभामें, देवशय्यामें, देवदूष्य वस्त्रसे अंतरित होकर (देवदूष्य वस्त्र के नीचे) अंगुलके असंख्यातवें भाग की अवगाहना द्वारा, काली देवीके रूप में उत्पन्न हुई।

तत्पश्चात् काली देवी तत्काल उत्पन्न होकर सूर्याभ देवकी तरह यावत् भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति आदि पांच प्रकार की पर्याप्तियों से युक्त हो गई। तत्पश्चात् वह काली देवी चार हजार सामानिक देवों तथा अन्य बहुतेरे कालावतंसक नामक भवन में निवास करने वाले असुरकुमार देवों और देवियों का अधिपतित्व करती हुई यावत् विचरने लगी। इस प्रकार हे गौतम ! काली देवी ने यह दिव्य देवऋद्धि आदि प्राप्त की है यावत् उपभोग में आने योग्य बनाई है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया–'भगवन् ! काली देवी की कितने काल की स्थिति कही गई है?' भगवान्—'हे गौतम ! अढ़ाई पल्योपम की स्थिति कही है।' गौतम—'भगवन् ! काली देवी उस देवलोकसे अनन्तर चय कर (शरीर त्याग) कर कहां उत्पन्न होगी?' भगवान्—'गौतम ! महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी।' श्री सुधर्मा स्वामी अध्ययनका उपसंहार करते हुए कहते हैं–'हे जम्बू ! यावत् सिद्धिको प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्गके प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है' ॥१५०॥

॥ धर्मकथा--प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

प्रथम वर्ग--द्वितीय अध्ययन

जम्बू स्वामी ने अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मासे प्रश्न किया–'भगवन् ! यदि यावत् सिद्धिको प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथाके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने दूसरे अध्ययनका क्या अर्थ कहा है?' सुधर्मा स्वामीने उत्तर दिया-हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था तथा गुणशील नामक उद्यान था। स्वामी (भगवान् महावीर) पधारे। वन्दन करने के लिए परिषद् निकली यावत् भगवान्की उपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में राजी नामक देवी चमरचंचा राजधानी से, काली देवीके समान भगवान् की सेवा में आई और नाट्यविधि दिखला कर चली गई। उस समय 'हे भगवन् !' इस प्रकार कह कर गौतम स्वामीने राजी देवी के पूर्वभव की पृच्छा की। (तब भगवान् ने आगे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा)। हे गौतम ! उस काल और उस समय में आमलकल्पा नगरी थी। आम्रशालवन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। राजी नामक गाथापति था। राजीश्री उसकी भार्या थी। राजी उसकी पुत्री थी। किसी समय पार्श्व तीर्थंकर पधारे। । काली की भांति राजी दारिका भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकली। वह भी काली की तरह दीक्षित होकर शरीरबकुशा हो गई। शेष समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी। (२) इस

प्रकार हे जम्बू ! द्वितीय अध्ययन का निक्षेप जानना चाहिए।

जम्बूस्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा-'भगवन् ! यदि (दूसरे अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो) तीसरे अध्ययनका क्या उत्क्षेप (उपोद्घात या अर्थ) कहा है ?' 'हे जम्बू ! राजगृह नगर और गुणशील उद्यान था। इस प्रकार जो राजी के विषय में कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी नाट्यविधि आदि दिखलाने का वृत्तान्त कहना चाहिए। विशेषता यह है–आमलकल्पा नगरी में रजनी नामक गाथापति था। रजनीश्री उसकी भार्या थी और रजनी नाम की उनकी पुत्री थी। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् मुक्ति प्राप्त करेगी। (३)

इसी प्रकार विद्युत् देवी का भी वृत्तान्त जानना चाहिए। विशेषता यह है-पूर्वभव में आमलकल्पा नगरी थी। उसमें विद्युत् नामक गाथापति विद्युत्-श्री नामक भार्या थी। उनकी विद्युत् नामक पुत्री थी। शेष सब कथानक पूर्व-वत् समझना चाहिए। (४) इसी प्रकार मेघा देवी का वृत्तान्त जानना चाहिए। विशेषता यह है–आमलकल्पा नगरी, मेघ नामक गाथापति, मेघश्री उसकी भार्या और मेघा उनकी पुत्री थी। शेष सब वृत्तान्त काली आदि के समान कहना चाहिए। (५) 'हे जम्बू ! निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है' ॥१५१॥

॥ प्रथम वर्ग समाप्त ॥

द्वितीय-वर्ग

जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं–'भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीरने प्रथम वर्गका यह अर्थ कहा है, तो दूसरे वर्गका क्या अर्थ कहा है ?' (इस प्रकार उपोद्घात करना चाहिए।) श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं—'हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति को प्राप्त भगवान् महावीरने दूसरे वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) शुंभा (२) निशुंभा (३) रंभा (४) निरंभा और (५) मदना। (प्रश्न—)भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीरने धर्मकथाके द्वितीय वर्गके पांच अध्ययन कहे हैं, तो द्वितीय वर्गके प्रथम अध्ययनका क्या अर्थ कहा है ?

(उत्तर–)हे जम्बू ! उस काल और उस समयमें राजगृह नगर था। गुणशील उद्यान था। भगवान् का पदार्पण हुआ। परिषद् निकली और भगवान् की उपा-सना करने लगी। उस काल और उस समयमें (भगवान् जब राजगृहमें पधारे, उस समय) शुंभा नामक देवी बलिचंचा राजधानी में, शुंभावतंसक भवनमें, शुंभ नामक सिंहासन पर आसीन थी। इत्यादि काली देवीके अध्ययनके अनुसार समस्त

वृत्तान्त कहना चाहिए, यावत् वह नाट्यविधि दिखला कर वापिस चली गई। शुंभा देवी जब नाटक दिखला कर चली गई तो गौतम स्वामीने उसके पूर्वभवके विषयमें पृच्छा की। भगवान्ने बतलाया—श्रावस्ती नगरी थी। कोष्ठक नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। श्रावस्तीमें शुंभ गाथापति था। शुंभश्री उसकी पत्नी थी। शुंभा नामक उनकी पुत्री थी। शेष सब वृत्तान्त कालीके समान समझना चाहिए। विशेष यह है-शुंभा देवी की साढ़े तीन पल्योपम की स्थिति है। हे जम्बू! दूसरे वर्गके प्रथम अध्ययन का यह निक्षेप (अर्थ) है।(१) इसी प्रकार शेष चार अध्ययन कहने चाहिएं। इन सबमें श्रावस्ती नगरी और उन-उन देवियों (पूर्वभव की पुत्रियों) के समान उनके माता-पिताके नाम समझ लेने चाहिएं ॥ १५२ ॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

तृतीय-वर्ग

तीसरे वर्ग का उपोद्घात समझ लेना चाहिए, अर्थात् जम्बू स्वामीके प्रश्नसे उसकी भूमिका जान लेनी चाहिए। श्री सुधर्मा स्वामीने उत्तर दिया-हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्तिप्राप्तने तीसरे वर्गके चौपन अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार—प्रथम अध्ययन…यावत् चौपनवां अध्ययन। (प्रश्न–)भगवन्! यदि श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीरने धर्मकथाके तीसरे वर्गके चौपन अध्ययन कहे हैं,तो भगवन्! प्रथम अध्ययनका श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान्० ने क्या अर्थ कहा है? (उत्तर—)हे जम्बू! उस काल और उस समयमें राजगृह नगर और गुणशील उद्यान था। भगवान् पधारे। परिषद् निकली और भगवान् की उपासना करने लगी।

उस काल और उस समय इला देवी धरणी नामक राजधानी में, इलावतंसक भवनमें, इला नामक सिंहासन पर आसीन थी। इस प्रकार काली देवीके समान इला देवी भी यावत् नाट्यविधि दिखला कर लौट गई। इला देवीके चले जाने पर गौतम स्वामीने उसका पूर्वभव पूछा। भगवान्ने उत्तर दिया—वाराणसी (बनारस) नगरी थी। उसमें काममहावन नामक उद्यान था। इल नामक गाथापति था। इलश्री उसकी पत्नी थी। इला पुत्री थी। शेष सब कालीके समान। विशेष यह है कि इला आर्या धरणेन्द्रकी अग्रमहिषीके रूपमें उत्पन्न हुई है। स्थिति अर्ध पल्योपमसे कुछ अधिक है। शेष वृत्तान्त पूर्ववत्। यहां पहले अध्ययन का निक्षेप कहना चाहिए।

इसी प्रकार क्रमसे (१) सतेरा (२) सौदामिनी (३) इन्द्रा (४) घना और (५)विद्युता, इन पांच देवियोंके पांच अध्ययन कहने चाहिएं। यह सब धरणेन्द्रकी

अग्रमहिषियां ही हैं। इसी प्रकारके छह अध्ययन, बिना किसी विशेषताके, वेणुदेव के भी कहने चाहिएं, और इसी प्रकार घोष इन्द्र तकके भी छह अध्ययन जानने चाहिए। इस प्रकार दक्षिण दिशाके इन्द्रोंके चौपन अध्ययन होते हैं। ये सब वाणारसी नगरीके काममहावन नामक उद्यानमें कहने चाहियें। यहां तीसरे वर्ग का निक्षेप कहना चाहिए ॥१५३॥

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

चौथा वर्ग

प्रारंभमें चौथे वर्ग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात् जंबू स्वामीका प्रश्न यहां समझ लेना चाहिए। उसका उत्तर सुधर्मा स्वामी देते हैं--'हे जम्बू ! श्रमण यावत् सिद्धि को प्राप्त भगवान् महावीरने धर्मकथाके चौथे वर्गके चौपन अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार—पहला अध्ययन यावत् चौपनवां अध्ययन। प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कह लेना चाहिए। हे जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर (गुणशील उद्यान) में भगवान् पधारे। यावत् परिषद् आकर भगवान् की सेवा करने लगी। उस काल और उस समयमें रुचा देवी, रुचानन्दा नामक राजधानी में, रुचकावतंसक भवनमें, रुचक नामक सिंहासन पर आसीन थी। इत्यादि वृत्तान्त कालीके समान समझना चाहिए। विशेषता यह है—पूर्वभवमें चंपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक उद्यान था। वहां रुचक नामक गाथापति था। रुचकश्री उसकी भार्या थी। रुचा नामक उनकी पुत्री थी, शेष वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है–भूतानन्द नामक इन्द्र की अग्रमहिषीके रूपमें उसका उपपात हुआ। स्थिति कुछ कम एक पल्योपम की है। यहां चौथे वर्गके प्रथम अध्ययन का निक्षेप कहना चाहिए, अर्थात् यह कहना चाहिए कि श्रमण यावत् सिद्धि-प्राप्त भगवान् महावीरने चौथे वर्गके प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

इसी प्रकार (१) सुरुचा (२) रुचांशा (३) रुचकावती (४) रुचकान्ता और (५) रुचप्रभा नामक पांच देवियोंके पांच अध्ययन कहने चाहिएं। इसी प्रकार छह छह देवियां नौवें महाघोष तक उत्तरदिशाके इन्द्रोंकी कहनी चाहिए। इस प्रकार छह-छह अध्ययन नौ इन्द्रोंके कहनेसे चौपन अध्ययन होते हैं। यहां चौथे वर्गका निक्षेप कह लेना चाहिए ॥१५४॥

॥ चौथा वर्ग समाप्त ॥

पंचम-वर्ग

पंचम वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू ! पांचवें वर्ग के बत्तीस अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं (१) कमला देवी (२) कमलप्रभा देवी (३)

उत्पला (४) सुदर्शना (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८) सुभगा (६) पूर्णा (१०) बहुपुत्रिका (११) उत्तमा (१२) भारिका (१३) पद्मा (१४) वसुमती (१५) कनका (१६) कनकप्रभा (१७) अवतंसा (१८) केतुमती (१६) वज्रसेना (२०) रतिप्रिया (२१) रोहिणी (२२) नवमिका (२३) ह्री (२४) पुष्पवती (२५) भुजगा (२६) भुजगवती (२७) महाकच्छा (२८) अपराजिता (२६) सुघोषा (३०) विमला (३१) सुस्वरा (३२) और सरस्वती। अर्थात् इन वत्तीस देवियों के वत्तीस अध्ययन जानने चाहिएं।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। स्वामी-भगवान् महावीर पधारे। यावत् परिषद् निकल कर भगवान् की उपासना करने लगी। उस काल और उस समयमें कमला देवी कमला नामक राजधानी में, कमलावतंसक भवन में, कमल नामक सिंहासन पर बैठी थी। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है-पूर्वभव में नागपुर नगर था। सहस्राम्रवन उद्यान था। वहां कमल गाथापति था, कमलश्री उसकी भार्या थी और कमला नामक पुत्री थी। कमला पुत्री अरहन्त पार्श्व के निकट दीक्षित हो गई। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना, यावत् वह काल नामक पिशाचेन्द्र की अग्रमहिषी हुई। उसकी स्थिति आधे पल्योपम की है।

इसी प्रकार शेष इकत्तीस अध्ययन भी दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर इन्द्रों के कहने चाहिएं। कमलप्रभा आदि इकतीसों कन्याओं ने नागपुर में सहस्राम्रवन उद्यान में दीक्षा ली। सब के माता-पिता के नाम कन्याओं के समान जानने चाहिएं। स्थिति सब की आधे-आधे पल्योपम की कहनी चाहिए। इस प्रकार पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥१५५॥

॥ पंचम वर्ग समाप्त ॥

—०—

षष्ठ वर्ग

छठा वर्ग भी पांचवें वर्ग के समान है। विशेषता यह है वह सब कुमारियां महाकाल इन्द्र आदि उत्तर दिशा के आठ इन्द्रों की वत्तीस अग्रमहिषियां हुई। पूर्व भव में वे सब साकेत नगर में उत्पन्न हुईं। उत्तरकुरु उद्यान में उनकी दीक्षा हुई। उन कुमारियों के नाम के समान ही उनके माता-पिता के नाम थे। शेष सब पूर्ववत्। यह छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥१५६॥

॥ षष्ठ वर्ग समाप्त ॥

—०—

सप्तम वर्ग

सातवें वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू ! यावत् भ० महावीर ने सातवें वर्ग के चार अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) सूर्यप्रभा (२) आतपा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभंकरा। प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप कहना चाहिए। हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह में स्वामी पधारे यावत् परिषद् उनकी उपासना करने लगी। उस काल और उस समय में सूर्य(सूर)प्रभा देवी सूर्य विमान में, सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान। विशेषता यह है-पूर्वभव में अरक्खुरी नगरी में सूर्यप्रभ गाथापति की सूर्य-श्री भार्या थी। उनकी सूर्यप्रभा नामक पुत्री थी। यावत् वह सूर्य नामक इन्द्र की अग्रमहिषी हुई। उस की पांच सौ वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम की स्थिति कही गई है। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिये।

इसी प्रकार शेष सब-तीनों देवियों (सूर्य इन्द्र की अग्रमहिषियों) का वृत्तान्त जानना चाहिए। वे भी अरक्खुरी नगरी में उत्पन्न हुई थीं, इत्यादि। यह सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥१५७॥

॥ सप्तम वर्ग समाप्त ॥

—o—

अष्टम-वर्ग

अष्टम वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू ! यावत् भगवान् महावीर ने आठवें वर्ग के चार अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) चन्द्रप्रभा (२) ज्योत्सनाभा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभंकरा। प्रथम अध्ययन का उपोद्-घात। हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर में स्वामी पधारे। यावत् परिषद् उपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ नामक विमान में, चन्द्रप्रभ सिंहासन पर बैठी थी। शेष वृत्तान्त काली देवी के समान समझना। विशेषता यह है—पूर्वभवमें मथुरा नामक नगरी थी। चन्द्रावतंसक उद्यान था। वहां चन्द्रप्रभ गाथापति रहता था। चन्द्रश्री उसकी पत्नी थी। चन्द्रप्रभा उनकी पुत्री थी। वह यावत् चन्द्र इन्द्र की अग्रमहिषी हुई। उसकी स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम की कही गई है। शेष सब काली के समान। इसी प्रकार शेप तीन भी मथुरा नगरी में उत्पन्न हुई। उनके नाम के समान ही उनके

माता-पिताके नाम थे। (वे भी चन्द्र नामक इन्द्र की अग्रमहिषियां हुई। शेष सब पूर्ववत्।) ॥१५८॥

॥ आठवां वर्ग समाप्त ॥

नवम-वर्ग

नौवें वर्ग का उपोद्घात। हे जम्बू! यावत् श्रमण भगवान् म० ने नौवें वर्गके आठ अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) पद्मा (२) शिवा (३) सती (४) अंजू (५) रोहिणी (६) नवमिका (७) अचला और (८) अप्सरा। प्रथम अध्ययन का उपोद्घात। हे जम्बू! उस काल और उस समय में स्वामी राजगृहमें पधारे। यावत् परिषद् उपासना करने लगी। उस काल और उस समय में पद्मावती देवी, सौधर्म कल्प में, पद्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में पद्म नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष वृत्तान्त काली देवीके समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार काली देवीके गमके अनुसार आठों अध्ययन जानने चाहियें। विशेषता यह है—पूर्व भव में, दो जनी श्रावस्ती में, दो जनी हस्तिनापुर में, दो जनी कांपिल्यपुर में और दो जनी साकेतनगर में उत्पन्न हुई। सबके पिता का नाम पद्म और सब की माता का नाम विजया था। सभी पार्श्व अरहंत के निकट प्रव्रजित हुई और शक्रेन्द्रकी अग्रमहिषियां हुई। उनकी स्थिति सात पल्योपम की कही है। सब महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करेंगी ॥१५९॥

॥ नौवां वर्ग समाप्त ॥

दशम-वर्ग

दसवें वर्गका उपोद्घात। हे जम्बू! यावत् श्रमण भगवान् म० ने दसवे वर्गके आठ अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) कृष्णा (२) कृष्णराजी (३) रामा (४) रामरक्षिता (५) वसु (६) वसुगुप्ता (७) वसुमित्रा और (८) वसुन्धरा। ये आठ ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियां हैं। प्रथम अध्ययन का उपोद्घात। हे जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगरमें स्वामी पधारे। यावत् परिषद् उपासना करने लगी। उस काल और उस समय कृष्णा देवी ईशान कल्पमें, कृष्णावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में, कृष्ण नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष वृत्तान्त काली के समान।

इसी प्रकार कालीके गमसे आठों अध्ययन जानने चाहिए। विशेषता यह है—पूर्व भव में दो जनी बनारस नगरी में, दो जनी राजगृह नगर में, दो

जनी श्रावस्ती में और दो जनी कौशाम्बीमें उत्पन्न हुई। सब के पिता का नाम राम और माताका नाम धर्मा था। सभी पार्श्व अरहंतके निकट दीक्षित हुईं। वे पुष्पचूला आर्याको शिष्यनीके रूपमें दी गईं। सब ईशानेन्द्रकी अग्रमहिषियां हुईं। सब की स्थिति नौ पल्योपमको कही गई है। सब महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर सिद्ध होंगी, बुद्ध होंगी, मुक्त होंगी और सब दुःखोंका अन्त करेंगी। हे जम्बू! यह दशम वर्गका निक्षेप कहा है ॥१६०॥

॥ दसवां वर्ग समाप्त ॥

हे जम्बू! धर्मके आदिकर्त्ता, तीर्थके संस्थापक, स्वयं बोधको प्राप्त, पुरुषोत्तम यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने इस प्रकार कहा है। धर्मकथा नामक द्वितीय स्कंध दस वर्गों में समाप्त हुआ ॥१६१॥

॥ ज्ञाताधर्मकथा समाप्त ॥
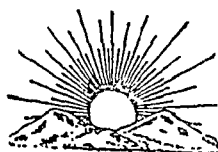
णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

उपासकदशांग

प्रथम अध्ययन–आनंद गाथापति

उस काल उस समय [अवसर्पिणीकालके चौथे आरे] में चंपा नामकी नगरी थी। [उसका वर्णन उववाई सूत्र से जानें।] उस नगरीके बाहर ईशान कोणमें नन्दनवन समान पूर्णभद्र नामक उद्यान था···॥१॥ उस उद्यानमें श्री महावीर प्रभुके शिष्य आर्य सुधर्मा स्वामी पधारे। उन्हें वन्दना कर उनके शिष्य जम्बू स्वामीने पूछा—हे पूज्य! श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी जो मोक्षको प्राप्त हो गये हैं······तो उन्होंने सातवें उपासकदशांग सूत्र का अर्थ किस तरह प्रतिपादन किया है? कृपाकर फ़रमाइयेगा।

आर्य सुधर्मा स्वामीने इस प्रार्थनाको स्वीकार किया और कहा···श्री उपासकदशांग सूत्रके दश अध्ययन कहे हैं···आनन्द, कामदेव, चुलनीपिया, सुरादेव, चुल्लशतक, कुंडकोलिक, शकडालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिया, सालिहीपिया ॥२॥ यदि ···दस अध्ययन···तो···पहले अध्ययनका क्या अर्थ कहा है? हे जंबू! उस काल उस समयमें वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उसके बाहर द्युतिपलाश नामक उद्यान था। उस वाणिज्यग्राम नगरमें जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। वर्णन। वहां पर एक बड़ा भारी धनवान् आनन्द नामक गाथापति (गृहस्थ) रहता था, धनाढ्य यावत् अपरिभूत। वह इतना धनवान् था कि उसने चार कोटि सुवर्ण जमीनमें गाड़ कर रखा था। चार कोटि सुवर्णसे व्यापार करता था और चार कोटिस्वर्ण गृहकार्यमें लगाया हुआ था। उसके यहां १०००० गायोंका १ गोकुल ऐसे ४ गोकुल थे ❋ इतना धनवान और जीवदयाधारी होने पर भी आनन्द गाथापति ऐसा चतुर था

❋सद्‌गृहस्थ कैसा लायक होता है यह इससे जान पड़ेगा। वह पैसे वाला हो इतना ही नहीं बल्कि वह गोप्रतिपालक भी होना चाहिए। गंभीर होना चाहिये। समझदार होना चाहिए। सब उसे पूछें, गरीबोंको निभावे, गुप्त सहायता करे। अपना पेट भर लेने वाला ही आदमी 'सद्‌गृहस्थ' नहीं हो सकता। कुटुम्बियों का पोषण करे, नगरवालोंको सलाह दे। इतना ही नहीं गूंगे जानवरों को भी पाले पोसे। पहले समयमें हरेक साहूकार गोकुल रखते थे-यानी हजारों गायोंको पालते थे। आज दूध घीका मुख्य साधन जो गाय भैंसें हैं उनकी हिंसा बहुत होनेसे रसकस कम हो गये हैं। मनुष्य दुबले हो गये हैं और जमीन नीरस हो गई है।

कि राजपुरुष, सार्थवाह, कुटुम्वी, घरके मनुष्य आदि सव गुप्त विपयमें और व्यवहारकी वातों में उसकी सलाह लेते थे। वह कुटुम्वमें स्तम्भके समान था।

आनन्दकी पत्नी शिवानंदा भी वड़ी सुन्दर, ३२ लक्षरणयुक्त और ६४ कलामें प्रवीण थी। स्त्री पुरुष दोनों वड़े प्रेमसे रहते थे। वाणिज्य नगरके वाहर ईशान कोणमें द्युतिपलाश नामका उद्यान था और कोलाग नामक १सन्निवेश था। वहां आनन्दके इष्ट मित्र, परिजन, स्वजन, व्यापारी आदि वहुतसे मनुष्य रहते थे। वे सव भी दौलतमन्द थे। एक समय श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्र श्री महावीर द्युतिपलाश उद्यानमें पधारे। उववाई सूत्रमें जैसे कोणिक राजा वन्दना करने गया था वैसे ही वह जितशत्रु राजा वन्दना करने गया। आनन्द गाथापतिने भी सुना कि भगवान्को वन्दना करनेका महा फल है इस लिये मैं भी जाऊं। ऐसा संकल्प करके स्नान कर कीमती परन्तु भारमें हलके वस्त्राभूषण पहनकर घरसे वाहर निकला। कोरंट नाम के वृक्ष के फूलोंकी माला पहन मस्तक पर छत्र धारण कर वहुत से मनुष्योंके समुदायके साथ वाणिज्यग्रामके वीचोंवीच होकर द्युतिपलाश उद्यानमें जहां भगवान् महावीर विराजमान थे वहां गया। दाहिनी ओरसे तीन प्रदक्षिणा की। वन्दना नमस्कार कर वैठ गया। श्री महावीर स्वामीने आनन्द गाथापति और परिषद्को २धर्मकथा कही। उसे सुन परिषद् व राजा वापिस लौट गये ॥३॥ आनन्द गाथापतिने उसे सुनकर विचारा, हृदयमें रक्खा। हर्ष-संतोष पाया और भगवान् महावीरसे सविनय कहने लगा—हे भगवन्! यह सिद्धान्त वचन सच्चा और सन्देह रहित है इस लिये मुझे रुचा है। हे देवताके वल्लभ! जिन (राईसर-राजा युवराज), तलवर (तलाटी), माडंविक (लग्न कराने वाले), कोडंविक (कुटुम्वी), सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदिने गृहस्थपन छोड़कर आपके पास साधुपन स्वीकार किया है उन्हें धन्य है। परन्तु मेरी ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि ऐसा कर सकूं। इसलिये गृहस्थ जीवनमें रहकर आपके पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत इस प्रकार श्रावक धर्मके वारह+व्रतोंको ग्रहण करूंगा। भगवानने कहा-हे

१'सन्निवेश'—शहरके पासका वह मैदान जहां मनुष्य खेलनेके लिये जाते हों।

२धर्म दो तरहका है—१ आगार धर्म व २ अणगार धर्म। अर्थात् पहला गृहस्थ-श्रावकका और दूसरा साधु-त्यागी का। × ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत=१२ व्रत। (पृष्ठ १५४२) १ योग तीन हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। तीन योग से किसी पापको त्यागने का अर्थ यह है कि मन, वचन, कायासे पाप न करना, न कराना और करने वाले को अच्छा न जानना इसे 'त्रिकरण' कहते हैं। पाप न करनेका 'तीन कोटि' से नियम किया कहा जाता है। इन तीनों योगोंसे पाप न करानेको दूसरी 'तीन कोटि' नियम कहते हैं (ये छ कोटि हुई)। तीनों योगोंसे पांप करने वालेको अच्छा न जानना तीसरी कोटि है। इस प्रकार नवकोटि द्वारा त्याग किया जाता है। २ वड़े-वड़े। ३ चलते फिरते—हिलते डुलते जीव।

आगे भगवान् महावीर आनंद श्रावकसे उन अतिचारोंका वर्णन करने लगे, जिन्हें श्रावकको जान लेना चाहिए। सम्यक्त्वके अतिचार—(१) जिनवाणीमें सन्देह करना, (२) अन्य सावद्य उपदेशक मतकी इच्छा करना, (३)धर्म कर्मके फलमें सन्देह करना, (४) पाखंडी मत की प्रशंसा करना, (५) पाखंडी मतका संस्तव परिचय होना। बारह व्रत के अतिचारोंका वर्णन। [१] प्रथम व्रतके अतिचार— (१) किसी त्रस जीवको बांधना, (२) लकड़ीसे मारना, (३) अंगोपांग का छेदन करना (४) शक्तिसे ज्यादा बोझ लादना, (५) खाने पीनेमें बाधा-अन्तराय देना।

[२] दूसरे व्रतके अतिचार—(१) किसीको भय उत्पादक वचन कहना, (२) किसीकी छिपी हुई बातको प्रकट करना, (३) अपनी स्त्रीका मर्म औरोंके सामने प्रकट करना, (४) किसीको झूंठा उपदेश करना, (५) झूंठे खत पत्र (कागज़ात) तैयार करना। [३] तीसरे व्रतके अतिचार—(१) चोरीकी चीजको लेना, (२) चोरको सहायता देना, (३) राज्यके शुल्क (चुंगी) की चोरी करना, (४) खोटे तोल मापके बाट रखना, (५) बुरी वस्तुको अच्छी कहकर देना या मिलावट करके बेचना।

[४] चौथे व्रतके अतिचार—(१) छोटी उम्रकी अपनी स्त्रीसे विषय सेवन करना, (२) बिना परणी सगाई वाली स्त्रीसे गमन करना, (३) किसी भी तरह की अनंग कामक्रीड़ा करना, (४)(पुत्र-पुत्रियोंके सिवाय)औरोंकी शादी या विवाह कराना,(५) कामभोगमें तीव्र इच्छा रखना। [५]पांचवें व्रतके अतिचार(१)खुली या ढंकी हुई जमीनकी मर्यादाको छोड़ना, (२) मर्यादाके बाहर सोना चांदी रखना, (३) मर्यादासे बाहर धान्य या नकदी रखना, (४) मर्यादा बाहर दोपगे या चौपगे जानवरोंको रखना, (५) घरके सजाने की चीजोंको मर्यादासे बाहर रखना।

[६] छठे व्रतके अतिचार—(१) ऊंची दिशाकी मर्यादाका उल्लंघन करना, (२) नीची दिशाकी मर्यादाका उल्लंघन करना, (३) बिचली दिशाकी मर्यादाका छोड़ना, (४) एक दिशाको कम कर दूसरी दिशाको बढ़ाना, (५) संदेह हो जाने पर भी आगे बढ़ जाना। [७] सातवें व्रतके अतिचार—(१) मर्यादासे बाहर सचित्त वस्तुका खाना, (२) सचित्त वस्तुसे मिली हुई वस्तुका खाना, (३) अधपकी वस्तुका खाना, (४) भुड़ता वगैरा खाना, (५) ऐसी वस्तु खाना जिसमें खाना कम और फैंकना बहुत हो। १५ कर्मादान, कर्म आनेके स्थानोंको कहते हैं। जो इस व्रतमें श्रावक को जान लेने चाहिएं, परन्तु आचरणमें न लाने चाहिएं— (१) कोयले का व्यापार, (२) जंगल काटनेका व्यापार, (३) गाड़ी आदि बेचने

का व्यापार, (४) गाड़ी बैल रखकर भाड़ा कमानेका व्यापार, (५) पृथ्वीको खुदवानेका व्यापार, (६) हाथी-दांत आदि हड्डीका व्यापार, (७) जानवरोंके वालोंका व्यापार, (८) मांस मदिरादिकका व्यापार, (९) लाख आदि रंगनेकी वस्तुओंका व्यापार, (१०) जहरीली वस्तुओंका व्यापार, (११) घाणी, मशीन आदिका व्यापार, (१२) बैलोंके अंग छेदने का व्यापार, (१३) जंगलमें आग लगाने का व्यापार, (१४)सरोवर कुएं तालाब आदिको सुखानेका व्यापार, (१५) हिंसक जीवोंको पालने व वेचने तथा सिनेमा आदि चलानेका व्यापार।

[८] आठवें व्रत के अतिचार —(१) कामवर्द्धक वातें करना, (२) कुचेष्टा करना, (३) मुंह के सामने मीठा बोलना और पीछे से बुराई करना, (४) अधिकरणका संयोग बनाना, (५) एक वार भोगनेकी वस्तुको वार-वार भोगना। [९] नववें व्रतके अतिचार—(१) मनको बुरे रास्ते पर जाने देना, (२) बुरे वचन कहना, (३) कायाका बुरा उपयोग करना, (४) सामायिक कर लेने पर भी उसे याद न रखना, (५) सामायिकका समय पूरा न होने पर भी उसे पूरा कर देना।

[१०] दसवें व्रतके अतिचार—(१) हदकी मर्यादासे वाहरकी वस्तु मंगवाना, (२) मर्यादासे वाहर नौकरके हाथ वस्तु मंगवाना या भेजना, (३) हद वाहर से किसीको चिल्लाकर बुलाना, (४) अपना स्वरूप वताकर या समझा कर किसीको वुलाना, (५) मर्यादासे वाहर कंकर फेंककर किसी को बुलाना।

[११] ग्यारहवें व्रतके अतिचार—(१) पाट और विछौनेको अच्छी तरह न देखना या देखना ही नहीं, (२) पाट और विछौने को अच्छी तरह न पूंजना या पूंजना ही नहीं, (३) लघुशंका या दीर्घशंकाकी जगहको अच्छी तरह तलाश न करना या तलाश ही न करना, (४) उस जगहको अच्छी तरह साफ न करना या करना ही नहीं, (५) पौषधमें प्रमाद करना या धर्मक्रिया ही न करना।

[१२] वारहवें व्रतके अतिचार—(१) सचित्त वस्तु रखकर मुनिको देना, (२) अचित्त वस्तुसे ढंककर सचित्त वस्तु देना, (३) वासी वस्तु या विगड़ी हुई वस्तु देना, (४) स्वयं सूझता-सवैध होने पर भी दूसरेको देनेको कहना, (५) दान देकर अहंकार या ईर्षा करना।

अन्तसमय-मरणके समय समाधिमरण किया जाता है उसके अतिचार ये हैं—(१) इस लोकमें सुख पानेकी इच्छा करना, (२) परलोकमें देवता होनेकी इच्छा करना, (३) जीने की इच्छा करना, (४) अशाता होनेसे मरने की इच्छा करना, (५) मनुष्य और देवताके कामभोगकी इच्छा करना आदि ॥६॥

इस तरह आनन्द गाथापति श्रमण भगवान् महावीरके पास बारह व्रत अंगीकार कर उन्हें वन्दना नमस्कार कर कहने लगा—"हे भगवन् ! आजसे मुझे अन्यतीर्थियोंके साधु-तपस्वी तथा मिथ्यात्वी व्यक्ति और साधुपनको न पालें ऐसे अरिहंतके साधुओंको वन्दना नमस्कार करना नहीं कल्पे, मैं उनकी न सेवाभक्ति करूंगा, न उनके पास ही जाऊंगा। पहले न बोलूंगा, न बुलाऊंगा। बिना बुलाये न बोलूंगा। न एक बार न बार-बार बोलूंगा। उन्हें अन्न पानी, धर्म और निर्जरा के भावसे न दूंगा न दिलवाऊंगा। इसमें इतना आगार (छूट) है कि—(१) राजा के हुकमसे, (२) समाजके हुकमसे, (३) किसी बलवान के आधीन होकर, (४) देवताके वश होकर, (५) मां-बाप या गुरुके उपसर्ग की जगह, (६) जंगलमें या अकालमें इन बातोंको करना पड़े तो सम्यक्त्व जावे नहीं। और आत्मज्ञ साधुको वन्दना नमस्कार करना, उनकी सेवाभक्ति करना, प्राशुक निर्दोष आहार पानी, मेवा, मुखवास, वस्त्र, पात्र, कंबल, पाट, चौकी, स्थानक, संस्तारक, औषध देना मुझे कल्पे। इस तरह व्रत अंगीकार करके तीन बार महावीर स्वामी को नमस्कार कर आनन्द गाथापति द्युतिपलास वनसे वाणिज्यग्राम नगरमें अपने घर पहुँचा। वहां सब बातें अपनी शिवानन्दा भार्यासे कहीं और बोला-"हे देवानुप्रिये ! तुम भी श्रमण भगवान् महावीरके पास जाओ और वन्दना नमस्कार कर श्राविका-धर्म अंगीकार करो" ॥७॥

यह सुनकर शिवानन्दाको हर्ष और संतोष हुआ। वह कुटुम्ब के मनुष्यों और सेवकोंको साथ लेकर जल्दी चलने वाले लघु-करण रथमें बैठकर भगवान् महावीरको वन्दना करने गई। भगवान् महावीरने बड़ी परिषद्में शिवानन्दा को धर्मकथा सुनाई, उसे सुनकर आनन्द गाथापतिकी भांति शिवानन्दाने भी बारह व्रत रूपी श्राविका धर्म अंगीकार किया। फिर जिस ओर से आई थी उसी ओर लौट गई ॥८॥

एक समय गौतम स्वामी भगवान् महावीर स्वामी से पूछने लगे—"हे भगवन् ! आनन्द गाथापति आपके पास दीक्षा ग्रहण करेगा ?" भगवान् बोले—"हे गौतम ! वह दीक्षा लेने में समर्थ नहीं है।" आनन्द गाथापति श्रावक हुआ और शिवानन्दा भार्या श्राविका हुई। वे दोनों जीव अजीव आदि नौ तत्त्वके ज्ञाता होकर साधु-साध्वीको दान देते हुए पौषध, उपवास, आयंबिल आदि तप करते हुए विचरने लगे ॥९॥

इस तरह चौदह वर्ष बीत गये। पन्द्रहवें वर्ष एक समय आधीरात में धर्म-जागरिका जगते हुए आनन्द गाथापति को जो अध्यवसाय उत्पन्न हुआ उसके अनुसार उसने सब सेठ, सेनापति, मित्र जाति समुदायको बुला कर तथा जिमा

कर बड़े पुत्र को घरका भार समर्पण किया। फिर उससे पूछ कर कोल्लाग सन्नि-वेशमें प्रौषधशाला और लघुशंकाकी भूमिको देख कर तथा साफ करके प्रौषधशाला में डाभका बिस्तर बनाया। उस पर बैठकर प्रौषध किया ॥१०॥

तत्पश्चात् श्रावककी ग्यारह* प्रतिमा रूप धर्मको अंगीकार किया। पहली प्रतिमा १ मासकी, दूसरी दो मासकी, यों ११ वीं ग्यारह मासकी प्रतिज्ञा आराधन करते हुए विचरने लगा ॥११॥

दुष्कर तप करते २ आनन्दका शरीर दुबला होकर सूख गया। एक समय आधीरात में धर्म-जागरिका जगते २ उसे ऐसा अध्यवसाय उपजा—"मेरे शरीरमें वीर्य, बल, पराक्रम कम हो गया है। यदि मेरे धर्माचार्य श्री महावीर स्वामी पधारें तो उनके पास प्रात:कालमें संलेषणा कर चार प्रकारके आहारका त्याग करूं" ऐसा निर्मल ध्यान करते हुए ज्ञानावरणीय आदि कर्मोका परदा हट गया और निर्मल अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। तब उसे पूर्व दिशामें लवण समुद्र में ५०० योजन क्षेत्र दीख पड़ने लगा। दक्षिण पश्चिम में भी। उत्तरमें भी चुल्लहिमवंत और वर्षधर पर्वत तक दिखने लगे। ऊपर सुधर्म देवलोक तक देख पड़ने लगा और नीचे रत्न-प्रभा नरक…तक, कि जहां चौरासी हजार व्रर्ष की स्थिति है ॥१२॥

उसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे उनके प्रथम शिष्य इन्द्र-भूति (गौतम) नामक गणधर थे। वे सात हाथ ऊंचे थे। बड़े तपस्वो थे। सम-चौरस नामक संठाण और वज्रऋषभनाराच नामक संघयण के धनी थे। सोनेकी तरह उनका शरीर शोभायमान था। कमल सा गौर वर्ण था। शरीर के ऊपरसे उन्होंने राग छोड़ दिया था। तेजस् लेश्याको गुप्त किया था। क्रोध, अहंकार, माया और लोभको जीत लिया था। जाति और कुलसे शुद्ध थे। छट्ठ छट्ठ-बेले २ का तप करते हुए विचरते थे। वे एक दिन छट्ठके पारणेके दिन पहले याम में स्वाध्याय, दूसरे पहरमें ध्यान और आत्मचिन्तन करके, तीसरे पहर में भगवान् महावीरसे आज्ञा लेकर द्युतिपलास उद्यानमें से निकल कर वाणिज्यगांवमें गोचरी को गये। वहां ऊंच नीच घरमें अटन करते हुए भिक्षा लेकर वापस लौटते हुए कोल्लाग सन्निवेशके पास होकर निकले। वहां बहुतसे मनुष्यों का कोलाहल सुना

*(१) एक मासकी प्रतिमामें शुद्ध सम्यक्त्व पाला जावे, (२) दो मासकी…अच्छे व्रतोंका पालन, (३) तीन महीनेकी…सामायिक, (४) पौषध प्रतिमा, (५) काउसग्ग, (६) ब्रह्मचर्य, (७) सचित आहार त्याग, (८) आरम्भ त्याग, (९) नृत्य-प्रेक्षात्याग, (१०) उद्दिष्ट आहार त्याग, (११) मस्तक मुंडन करके रजोहरण लेकर मुनिकी चर्यायुक्त विचरे। सब मिल कर पांच वर्ष छह मासमें यह तपस्या पूरी होती है।

कि आनन्द गाथापतिने पौषधशालामें संलेषणा की है। वे क्षेत्र स्पर्शनासे आकर्षित होकर आनन्दको देखने जहां वह लेटा हुआ था वहां पहुँचे ॥१३॥

गौतम को आते हुए देखकर आनन्द गाथापतिने वन्दना नमस्कार किया और कहा कि "पूज्य! गृहस्थी में रहते हुए किसी श्रावक को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?" गौतम बोले—"हां, श्रावक! हो सकता है।" आनन्दने कहा—"वह मुझे हुआ है। पूर्व दिशा में लवण समुद्र में ५०० योजन देखता हूं और नीचे लोलुयच्चुय नरकावास देखता हूं।" गौतमने कहा—"इतना अधिक अवधिज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता इसलिए 'मिच्छामि दुक्कड' प्रायश्चित लो।" आनन्द बोला—"पूज्य! सच्ची बात की आलोचना नहीं होती, इस लिये आप ही 'मिच्छामि दुक्कड' लें।" यह सुनकर तो गौतमको शंका उत्पन्न हुई। वहां से वे जल्दी श्रमण भगवान् महावीरके पास आये। आहार पानी दिखाया, नमस्कार कर पूछने लगे—"प्रभो! मैं आलोचना करूं या आनन्द श्रावक आलोचना करे?" भगवान् ने कहा—"गौतम! आनन्दका कहना सही है इस लिये तुम्हें वहीं जाकर आलोचना और प्रायश्चित्त लेकर आनन्द श्रावक से क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये।" श्री महावीर स्वामीके वचनको तथाऽस्तु कहकर गौतम स्वामीने आनन्दके पास जाकर वैसा ही किया।···॥१४॥

आनन्दने बीस वर्ष तक श्रावकपन पाला। श्रावककी ११ प्रतिमाकी साधना की। मरणके समय एक मासकी संलेषणा द्वारा आत्माको निर्मल किया। ६० टंक भातपानी का अनशन छेद कर आलोचना और प्रतिक्रमण द्वारा समाधि संतोष पाया। कालके समय काल कर सुधर्म देवलोकमें सुधर्मावतंस बड़े विमान से उत्तर पूर्वके बीच ईशान कोणके अन्दर अरुणाभ विमान में चार पल्योपमकी स्थितिसे देवता उत्पन्न हुआ। गौतमने कहा—"हे भगवन्! वहांसे आयुष्य पूर्णकर आनन्दका जीव कहां जायेगा?" भगवान्ने कहा—महाविदेह क्षेत्र❀में पैदा होकर दृढ़प्रतिज्ञकी तरह कर्म खपाकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥१५॥

सार

श्रावकके १२ व्रत समझाने के लिये यह अध्ययन लिखा गया है, १२ करोड़ सुवर्णका मालिक आनन्द गाथापति जैसा धनाढ्य भी व्रत अंगीकार कर सकता है,

---

❀ *From Theosophic point of view the word* क्षेत्र *may* mean plane and महाविदेह क्षेत्र, accordingly, should not be understood as land, but as a particular plane-condition of life-higher life where in stead of the physical body the finer bodies are working for the evolution of the soul.

इससे मालूम होता है कि व्रत अंगीकार करनेमें लक्ष्मी कुछ बाधा नहीं करती।

आनंद श्रावक प्रथम तो जैन धर्मसे अनभिज्ञ था, मगर श्री महावीर प्रभुके दर्शन होनेके पहले, पूर्व भवोंमें अनेक प्रकारके अनुभवोंसे वह आत्मा रूपी क्षेत्र सुधारता सुधारता 'संस्कारी' हुआ, क्योंकि वह 'मार्गानुसारी' तो पहले से ही था। फिर भगवान् के सदुपदेशसे 'श्रावक' हुआ, व्रत अंगीकार किये, ११ पडिमा लेकर अन्तमें देह और आत्माका भेद बराबर अनुभव में आनेसे संथारा कर दिया। इस तरह क्रमशः उसकी आत्मा उन्नतिक्रमकी सीढ़ी पर चढ़ती-चढ़ती परमपदको प्राप्त होगी।

'व्रत' कुछ निरर्थक शब्द नहीं है; जीवनके छोटे-बड़े सारे कार्योंमें आचार-शुद्धि और विचारशुद्धिको पालनेका निश्चय करना संवर करणी या 'व्रत' कहलाता है। व्रतधारी श्रावकका प्रतिदिन जीवन शुद्ध होता है, उनका प्रत्येक कार्य शब्द—विचार दया और यत्नपूर्वक होता है, उनका लक्ष्यबिंदु परम पद है। इस लिये 'व्रत' पालन करने के लिए नित्यप्रति प्रातःकालमें करने योग्य भावना का चिन्तन इस प्रकार करें। मैं निश्चय करता हूं कि—

(१) आज मैं किसी प्राणीको जानबूझकर न मारूंगा और अयत्ना-दुर्लक्ष्यसे या प्रमादसे किसी प्राणीको हानि न पहुंचाने का ध्यान रक्खूंगा।

(२) आज मैं किसीको किसी तरहका नुकसान हो ऐसा झूठ वचन नहीं बोलूंगा। हास्य, परनिंदा, गपशप आदि वाचाके दुरुपयोगके कार्योंसे दूर रहने की चेष्टा करूंगा। (३) आज मैं किसी की चोरी नहीं करूंगा, मुफ्तमें धन पाने की इच्छा नहीं करूंगा, व्यापारादिमें ठगी भी नहीं करूंगा।

(४) आज मैं विषयवृत्तिको अंकुशमें रक्खूंगा, अपनी धर्मपत्नी के सिवाय और सब स्त्रियों से भगिनी भाव रक्खूंगा, धर्मपत्नीको भी विषय-वासना तृप्त करनेका पदार्थ या कारण न समझते हुए बुद्धिमान् पुरुष होकर वासनाका दमन करूंगा, अपने मनको विषय-सम्बन्धी विचारोंसे, आंखोंको विषयजनक पदार्थों से, जिह्वाको अश्लील शब्दोच्चारसे दूर रक्खूंगा।

(५) आज मैं परिग्रहमें लुब्ध होनेके स्वभावको अंकुशमें रक्खूंगा। स्थावर व जंगम जो भी परिग्रह मेरे पास है उससे ज्यादा जो कुछ प्राप्ति मुझे आजके दिन होगी, उसमें से···रु० कीमतका रख कर बाकी सब दुःखी जीवोंको गुप्त सहायता पहुंचानेमें और ज्ञानकी भक्ति करनेमें व्यय करूंगा। (६) आज मैं जहां तक हो इतने माइलसे ज्यादा परमार्थके कार्य सिवाय, भ्रमण नहीं करूंगा।

(७) आज मैं उपभोग—परिभोगके पदार्थोंको जैसे बनेगा वैसे थोड़े से ही निभाऊंगा। वस्त्रादि 'परिभोग' की चीजें और खानपानादि 'उपभोग' की चीजों की जितनी आवश्यकता होगी उससे ज्यादा (शौक के लिये) काममें नहीं लूंगा।

ज्यों-ज्यों ज्यादा चीजोंकी आवश्यकता होती है त्यों-त्यों आत्मा पर बोझा बढ़ता है और अपनेमें विचार करनेकी फुरसत कम रहती है, ऐसा समझ कर खाने, पीने, पोशाक, मर्दन और विछौने इत्यादि हर एक प्रकारकी चीजें जैसे बने थोड़े से ही चला लूंगा, मैं सादा, आत्मसंयमी और मिताहारी रहूंगा।

(८) मुझसे बनेगा वहां तक मन, वचन और कायाको व्यर्थ के व्यापारमें न फंसाऊंगा। इधर उधर की खटपट, गपशप, चिंता और कुतर्क में अपने आत्मतत्त्व को नष्ट न होने दूंगा। भोग विलास की चीजों पर मूर्छित न बनूंगा। और न किसीका बुरा चाहूंगा। आत्मक्लेश भी न होने दूंगा। (९) मुझसे बनेगा वहां तक चित्तका संतुलन रक्खूंगा। सारा दिन चित्तका संतुलन न भी रह सके तो भी कम से कम ४८ मिनिट तो उसके अभ्यासके लिये अवश्य निकालूंगा। उस समयमें 'सामायिक व्रत' पालूंगा। मन, वचन और काया के योगसे पाप कर्म न करूंगा, न कराऊंगा तथा करते को भला न समझूंगा। इन नव 'कोटि' में से मुझसे जितना व्रत-नियम और त्याग पल सकेगा उतना अवश्य पालूंगा।

(१०) जहां तक मुझसे हो सकेगा (   ) इतने माइलसे दूरकी वस्तु अपने उपभोगके लिए नहीं मंगवाऊंगा। अथवा आई हुई वस्तुको उपयोगमें न लूंगा। (यह व्रत स्वदेशभक्तिका है, भारतके वाहरसे कोई वस्तु मंगाऊंगा नहीं, या मंगवाई होगी तो उसे उपयोगमें न लाऊंगा, ऐसा नियम करनेसे यह व्रत भली प्रकार निभाया जा सकता है।)

(११) यथासंभव मैं यत्न और अप्रमादसे अपनी आत्माका पालन करूंगा। वर्ष में (   ) दिन पौषधव्रत करूंगा—जिसमें २४ घण्टे आत्मचिन्तन करते हुए निर्दोष जीवन व्यतीत करना होता है और आत्माकी उन्नति संबंधी विचार करनेका अवकाश मिलता है। (१२) यथाशक्य मैं पात्र और सुपात्रको दान दूंगा और अपने भोगान्तराय आदि कर्मों की निर्जरा करूंगा। दीन दुखियों, उपदेशकों और त्यागी महात्माओंको दान करनेका अवसर खोजता रहूंगा और अवसर पाते ही वड़े आनन्दसे भक्तिपूर्वक दान दूंगा।

इन वारह नियमोंकी सूचना देनेके बाद अब हम आनन्दजी की कथासे प्राप्त होने वाली शिक्षा पर विचार करेंगे। आनन्दजी जैसे 'पति' आजके समयमें थोड़े ही होते हैं। अपनी धर्मपत्नीको उन्होंने श्राविका धर्मका मर्म समझा कर उसे अंगीकार करनेकी प्रेरणा दी। उन्होंने अपनी स्त्रीको इन्द्रिय सुखोंके लिए दासी न समझकर मित्र या सखी समझा और उसका हितचिंतन किया। मनुष्यका धर्म है कि वह अपनी स्त्रीको धर्मज्ञान दे। और उसके आत्महितके लिए यथासंभव साधन प्रस्तुत करे।

आश्चर्यकी वात तो यह है कि ऐसे दृढ़ श्रावक जो जीव और अजीवादि नवतत्त्वके ज्ञाता थे और ग्यारह प्रतिमा और समाधि-संथारे तककी हिम्मत

करनें वाले थे, उन्हें भी श्री सर्वज्ञ भगवान्ने दीक्षा लेनेमें असमर्थ वतलाया। तव हमारे मुनिवर अपने महावीर पिताके इन वचनोंका मर्म कव समझेंगे ? दीक्षा कुछ छोटी वात नहीं है । विना आध्यात्मिक जीवन विकासके प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा कभी दृढ़तापूर्वक नहीं पल सकती ।

भगवान्के नियमोंको तो देखिये कि उस जगत्पतिने मुख्य शिष्य गौतमसे भी फरमाया कि "तू जा, अभी जा और आनन्द श्रावकसे क्षमा मांग।" एक श्रावकसे वड़ा भारी महात्मा क्षमा मांगे ! कैसा निष्पक्षपाती न्याय है ! वर्तमान समयके हमारे श्रावक भाई अपने गुरुकी हठ व आचारभ्रष्टता देखते हुए भी गौतमजी का दृष्टांत देकर क्षमा मांगनेका अपना मुख्य कर्तव्य समझ लें तो कितनी उत्तम वात हो !

देखिये ! कितने आश्चर्यकी वात है कि भगवानके मुख्य साधुको ज्ञान वर्षों की दीक्षा साधन करने पर भी (उस समय तक) नहीं उत्पन्न हुआ वही अवधि-ज्ञान गृहस्थ आनन्दजीको ५।। वर्षकी साधनासे उत्पन्न हो गया ! आजके साधु 'चाहे जैसे उत्तम श्रावक अर्थात् भावसाधुसे हम उत्तम हैं' इस प्रकारका दावा करते हैं, वे इस रहस्यको अपने हृदयसे विचारें तो उनका खूव भला और आत्म-कल्याण होगा ।

श्री आनन्दजीका चरित्र एक सत्य पर और प्रकाश डालता है। उन्होंने यह नियम भी लिया था कि—"जो ठीक साधुपनेको नहीं निभाता हो ऐसे अरिहंतके साधुको भी मैं नमन नहीं करूंगा। उनकी सेवा भक्ति न करूंगा । साधु जानकर उन्हें अन्न-जल-वस्त्र आदि भी न दूंगा।" इन नियमोंको धारण करने वाला साधक निस्संदेह भगवान्का कितना पक्का श्रावक है । उनके वृत्तान्तको लिखने वाले शास्त्रकार वास्तवमें कितने अच्छे माननीय आगमज्ञ महात्मा थे। इस प्रकार जिनकी दृढ़ श्रद्धा हो उन सव जैनी भाइयोंसे वीतराग प्रभुके नाम पर मैं पूछता हूं कि जिन-जिन साधुओंको आप वन्दना करते हैं उन सवकी योग्यता और उनके गुणों पर आपने कभी विचार किया है ? क्या सव सच्चे साधु हैं ? यदि शास्त्रका-रकी इस वात पर ध्यान दिया जाय तो जैन धर्मके निर्मल झरनेमें जितना कूड़ा-करकट वर्तमानमें आ मिला है वह अपने आप दूर हो जाय ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन--कामदेव

...उस समय चम्पा नामकी नगरी थी। उस नगरीके वाहर पूर्णभद्र नामक उद्यान था, वहां का राजा था जितशत्रु। उसी नगरीमें एक धनाढ्य गाथापति

रहता था, उसका नाम था कामदेव। उसके घरमें छः कोटी सुवर्ण भूमिमें गड़ा हुआ था, छः करोड़से व्यापार चलता था और छः करोड़ गृह-कार्य में लगा रक्खा था। इसके सिवाय छः गोकुलका भी वह स्वामी था। कामदेवकी धर्मपत्नीका नाम भद्रा था। वह बड़ी रूपवती थी और प्रतिपूर्ण पांचों इन्द्रियोंसे सुशोभित थी।

एक समय श्री महावीर स्वामी पूर्णभद्र उद्यानमें पधारे। उनकी वन्दना करनेको आनन्दजीकी तरह कामदेव भी गये और भगवान्‌को वन्दना नमस्कार कर धर्मकथा श्रवण की और आनन्दजीकी तरह 'श्रावक धर्म' अंगीकार किया, घर आकर घरका सब कार्य भार बड़े पुत्रको सौंप दिया। बाहरका बोझ उतारकर भीतरका बोझ उतारनेके अभिलाषी कामदेव श्रावक स्त्री, ज्येष्ठपुत्र और मित्रादिको पूछकर प्रौषधशालामें आये। और आनन्दजीकी भांति प्रौषध अंगीकार किया ॥१६॥

एक समय पौषधमें बैठे हुए कामदेवको ध्यानसे विचलित करनेके विचारसे एक मिथ्यादृष्टि देवने अलग-अलग तरहके तीन रूप धारणकर उपसर्ग किये, परन्तु इस कसौटीमें कामदेव पार उतरे और उनकी आत्मा और मनमें सबलता बनी रही। प्रथम तो देवताने एक महा भयंकर पिशाचका रूप बनाया। औंधे टोकरे जैसा तो उसका मस्तक था। डाभके अग्रभागसे तीव्र और चावलके तुष जैसे पीले उसके मस्तक पर बाल थे। पानी भरनेकी बड़ी मटकीके ठीकरे जैसा उसका ललाट था। गिलहरी की पूंछके समान विकृत आंखके डोले थे और बड़े ही डरावने लगते थे। बकरेके नाक जैसी उसकी नाक थी और भट्ठी जैसे नासाछिद्र थे। घोड़ेकी पूंछ जैसी उसकी मूंछ थी और वह पीली पीली और लम्बी व डरावनी जान पड़ती थी। ऊंटके होंठ जैसे उसके लम्बे ओष्ठ लटक रहे थे। लोहेके फावड़े या कुदाल जैसे दांत थे। लप लप करती उसकी सांपकी तरह भयावनी जीभ बाहर निकल रही थी। हलकी दांत-फाली जैसी उसकी ठोडी थी। घी भरनेके फूटे कुप्पे जैसे उसके भूरे भूरे गाल थे और बड़े कड़े थे। बड़े नगरके दरवाजेके किवाड़ के समान उसकी छाती थी और बड़ी कोठी जैसे उसके हाथ थे। पत्थरकी शिला जैसी उसके हाथकी हथेलियां थीं और चिमटे जैसी हाथकी उंगलियां, सीपसे नख थे। जहाजके (शढ) हवा भरनेके कपड़े जैसे उस के स्तन थे। कोटके बुरज सा पेट था और पतनालेकी सी नाभि। छींके जैसा लटकता हुआ गुह्यस्थान था और कचरेसे भरे हुए कोथले जैसे उसके अंडकोप थे। अर्जुनके तृण समान उसकी पिंडलियां थीं और बड़ी कोठीसी उसकी जांघें थीं। लोहे के एरणके समान उसके पैर थे, गाड़ीकी छतके समान हिलता हुआ जांघोंका ढांचा था। मुख खोलता था तब जीभ बाहर निकल आती थी। उससे ललाटको चाटा करता था। उसने गिरगट और चूहोंकी माला पहन रक्खी थी और नेवले कानोंमें लटकाये हुए था। सांपका उत्तरासन बनाया था।

ऐसा भयंकर रूप धारण किये हुए तालियें बजाता, गर्जना करता और अट्टहास करता हुआ, रोंगटे खड़े कर देने वाली पंचरंगी,एक बड़ी भारी नीलोत्पल कमल सी अलसीके फूलकी सी हाथमें नंगी तलवार लेकर वह पौषधशाला में आया, जहां कामदेव श्रावकने पौषध किया था। वहां आकर क्रोधसे सनसनाट करता हुआ कामदेवको कहने लगा-"अरे कामदेव श्रावक! बे मौत मरनेकी इच्छा करने वाले, बुरी पर्यायोंके धनी! बुरे लक्षण वाले! अंधेरी चौदश अमावस्याके दिन जन्मे हुए! लज्जा-शोभा-कीर्ति-धैर्य आदिसे हीन! यदि तू प्रौषधको खंडित न करेगा तो मैं इस तलवारसे तेरे टुकड़े-टुकड़े उड़ा दूंगा, और इससे तू खूब दुःखी होगा एवं आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याता हुआ अकाल मौतसे मरेगा।" इस प्रकार उसने दो तीन बार चिल्ला चिल्लाकर कहा परन्तु इससे कामदेव न डरा, न दुःखी हुआ न तो विचलित हुआ, बोला तक भी नहीं, और अपने धर्मध्यानमें चढ़ते परिणामों से दृढ़ रहा ।।१७।।

कामदेवको अविचलित देखकर पिशाच बहुत क्रुद्ध हुआ। उसके ललाटमें तीन बल पड़ गये। कामदेवके शरीरके उसने टुकड़े २ कर दिये*। इससे कामदेव को बड़ी ही पीड़ा और असह्य परिषह-दुःख हुआ, परन्तु उस प्रतिकूल परिषहको उसने शुद्ध परिणाम व समभावसे सहन किया और मनके अध्यवसायको अविकृत रखकर तिलमात्र भी न डिगने दिया ।।१८।।

अपना प्रयोग निष्फल देखकर उस देवने पिशाच के रूपको छोड़कर हाथी का रूप धरा। चारों पैर, सूंड़, पूंछ और गुप्तस्थान ये सातों उसके अंग जमीनको स्पर्श करते थे। आगेसे वह ऊंचा था, और पीछेसे शूकरके समान नीचा था। बकरी के समान लंबी कोख थी। गणपतिका सा लंबा पेट था। मालतीके फूल से सफेद दांत थे और उन पर सोनेका खोल चढ़ा हुआ था। धनुषकी तरह सूंडके अग्रभागको टेढ़ा कर रक्खा था। कछुवे जैसे उसके नख और पैर थे।

ऐसा भयंकर मदोन्मत्त हाथीका रूप धारण कर मेघके समान गर्जना करता हुआ मन व पवनके वेगसे प्रचण्ड, प्रौषधशाला में कामदेवके पास आया और बोला-

*यह वर्णन धीरे धीरे मननपूर्वक पढ़नेका है। श्रावक जी के शरीरके टुकड़े टुकड़े हो गये, तो भी उन्होंने आर्तध्यान रौद्रध्यान न ध्याया और न ही धर्म विचार पलटा। मिलके व्वायलरमें गाड़ी भर कोयले भरने पर भी व्वायलर पर 'अंस्वेस्टोस' नामके पदार्थका टुकड़ा डाल देते हैं तो उस जाज्वल्यमान आग पर होकर कोई भी जा सकता है। वैसे ही 'धर्मध्यान' 'अंस्वेस्टोस' है। उसे स्थूल वस्तु और घटना रूपी आग पर रखनेसे मनुष्यको आधि-व्याधि-उपाधि रूपी जलन नहीं सताती। यह लाभ बड़ा भारी लाभ है।

"रे कामदेव ! यदि तू अपने व्रतको न तोड़ेगा तो तुझे सूंडसे पकड़कर बाहर ले जाऊंगा और आकाशमें ऊंचा उछाल दूंगा। तथा दांतों द्वारा खूब पीड़ा पहुंचाऊंगा। भूमि पर पटक कर तीन बार पैरोंसे रौंद डालूंगा, तुलसी के पत्ते की तरह मसल दूंगा। इससे तुझे बड़ी पीड़ा होगी और तू आर्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याता हुआ अकाल मृत्यु पायेगा"। परन्तु कामदेव डरा नहीं। उस देवने तीन बार ऐसा कहा तो भी कामदेवजीके मनके अध्यवसाय समत्वके रूपमें बराबर बने रहे।

इससे वह देव क्रुद्ध होकर लाल आंखें कर कामदेवको सूंडमें लेकर आकाशमें उछालने लगा और मूसल जैसे दांतों पर झेलने लगा। फिर भूमि पर डालकर तीन बार पैरसे रौंदा और खूंदा। इससे कामदेवको तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उसको उसने समभावसे सहन किया। अपने मनके अध्यवसायों को हिलने या डिगने न दिया ॥१९॥

यह दूसरा प्रयोग निष्फल हुआ देखकर देव प्रौपधशाला के बाहर गया और एक भयंकर काले सर्पका रूप धर आया। वह रूप ऐसा था—उसमें बड़ा उग्र विष और दृष्टिविष था। शरीर मोटा और काजलके समान बिल्कुल काला था। आंखें काजलके ढेरसी और प्रकाशित तथा लाल थीं। लप २ करती हुई बड़ी चंचल दो जिह्वाएं बाहर निकल रही थीं। स्त्री की चोटी के समान लंबा था। चक्र जैसी बांकी और बड़ी मूंछों वाला उसका फण था। उसे वह चाहे जैसा फैला सकता था। उसकी मणि भी वैसी ही थी। ऐसा महा भयंकर रूप धारण करके लुहारकी धमनीकी तरह धमधमाट करता हुआ पौषधशालामें कामदेव के पास आया और कहने लगा—"अरे कामदेव ! यदि तू व्रतको न तोड़ेगा तो मैं तेरी पीठपर होकर तेरे शरीर पर चढ़ूंगा और गलेमें तीन आंटे लगाकर तीव्र विषसे भरी हुई दाढ़ोंसे तेरे हृदयमें काटूंगा। इससे तुझे बड़ी भारी वेदना होगी। आर्तध्यान और रौद्रध्यानसे कु-समयमें मरेगा"। इस प्रकार उसने दो तीन बार कहा; परन्तु कामदेव किंचित् मात्र भी न डरा। इससे वह क्रुद्ध हुआ और कामदेवकी पीठ पर सर सर चढ़ गया। गलेमें तीन आंटिया दीं और तीक्ष्ण तथा विष भरी दाढ़ोंसे कामदेवके हृदयमें दंश दिया। इससे कामदेवके सारे शरीरमें वेदना हुई, तो भी वह धर्मसे चलायमान नहीं हुआ और वेदनाको शुद्ध परिणामसे सहन करता रहा ॥२०॥

इस प्रकारके भयंकर और उग्र परिपहोंसे जब कामदेव न डिगा तब वह देव निराश हो गया। उसने सर्पके रूपको त्याग दिया और एक प्रधान देवताके रूपको धारण किया। पंचरंगे वस्त्र पहने, गलेमें हार डाल लिया, कानोंमें कुंडल सजे, मस्तक पर मुकुट धारण किया। घुंघरुओंसे घमकार करता हुआ दसों

दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ आया और अन्तरिक्षमें अधर रहकर कामदेवसे कहने लगा—

"अहो कामदेव ! धन्य है आपको ! आप पुण्यवान्, कीर्तिमान् और सदाचरणी हो। हे देवताओंको प्रिय ! एक दिन शक्रेन्द्रने चौरासी हजार सामानिक देव और देवियोंके परिवारमें सिंहासनारूढ़ होकर कहा था कि 'आजके समयमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रकी चंपानगरीमें कामदेव श्रावक प्रौषधशालामें पौषध करके बैठे हैं। उस दृढ़प्रतिज्ञको व्रतसे विचलित करनेमें कोई देव, दानव, असुरकुमार, गंधर्व, राक्षस, किन्नर, किंपुरुषादि समर्थ नहीं है।' मुझे शक्रेन्द्रके इस वचन पर विश्वास न हो सका। इसलिये मैं आपको विचलित करने आया था। परन्तु शक्रेन्द्र ने जैसा कहा था वैसे ही आप दृढ़ हो, यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। हे देवानुप्रिय ! मैं आपको खमाता हूं। मेरा अपराध क्षमा करें। अब मैं ऐसा अपराध न करूंगा।" यह कहकर तीन बार पैरोंमें पड़कर दोनों हाथ जोड़कर बार-बार वंदन कर देवता जिस ओरसे आया था उसी दिशामें चला गया। कामदेव श्रावकने उपसर्ग मिटा जानकर काउसग्ग पाला ॥२१॥

इसी अरसेमें श्रमण भगवान् महावीर चौदह हजार साधुओंके साथ ऊपर बतलाये हुए उद्यानमें पधारे। इस बातको सुनते ही–मालूम होते ही कामदेव ने सोचा कि भगवान्को वंदना नमस्कार करके प्रौषध पारना चाहिये। शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र पहनकर बहुतसे मनुष्योंके परिवार सहित भगवान्की वंदना करने गया। वहां परिषद्में भगवान्ने धर्मकथा कही ॥२२॥

फिर कामदेवसे कहा—"अहो कामदेव श्रावक ! आज आधी रातमें देवता ने पिशाच, हाथी और सांपका रूप धरकर तुम्हें तीन उपसर्ग दिये और उनको तुमने सहन किया। फिर वह देव देवलोकको गया। यह बात सच है?" "हां स्वामिन् ! सही है।" कामदेवने कहा।

फिर श्री महावीर स्वामी बहुतसे साधु-साध्वियोंको उद्देश कर कहने लगे—"अहो आर्यो ! कामदेव श्रमणोपासक (श्रावक) ने गृहस्थावासमें रहते हुए देव-संबंधी उत्पन्न हुए उपसर्ग सहन किये तो तुम भी वैसे उपसर्ग सहन करने की शक्ति सम्पन्न करो। इस आज्ञाको साधु-साध्वियोंने प्रमाण-स्वीकार किया, कामदेव श्रावक अति हर्षित होकर भगवान् की वंदना करके जिस दिशासे आये थे उस दिशामें वापिस चले गये ॥२३॥

कामदेव श्रावक, बहुत सी छट्ठ-अट्ठमादिक तपश्चर्या करके बीस वर्ष तक श्रावक धर्म पालकर, श्रावककी ११ प्रतिमाका स्पर्शकर, एक मास का संथारा कर, अपनी आत्माको निर्मल करके, ६० टंक आहार पानीका अनशन छेद, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि-संतोष पाकर, कालके समयमें काल करके सौधर्म

देवलोकमें सुधर्मावतंसक नामके बड़े विमानसे ईशान कोणमें अरुणाभ विमानमें चार पल्योपमकी स्थितिसे देवता हुआ।

गौतमने पूछा—"भगवन्! कामदेव श्रावक वहांसे आयुष्य पूर्ण कर कहां जायगा?" भगवान् बोले—"हे गौतम! कामदेव श्रावक वहांसे च्यवकर महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर कर्म क्षय कर मोक्ष पायेगा" ॥२४॥

सार

कामदेव श्रावकका चरित्र लिखकर शास्त्रकारने धर्मध्यान की विशेषता कितने अच्छे ढंगसे प्रकट की है। मनुष्य किसी समय चिन्तामें होता है तब कहा जाता है कि वह आर्तध्यानमें है। किसी समय गुस्सेमें होता है और दूसरे की बुराई चाहता है, उस समय वह रौद्रध्यानमें कहा जाता है। किसी समय आत्माके विचारमें मग्न होता है—जड़ और चेतनका विचार करता है, उस समय वह 'धर्मध्यान' अथवा 'शुक्लध्यान' में प्रविष्ट हुआ माना जाता है।

आर्तध्यान अथवा रौद्रध्यानमें जब मनुष्य होता है तब ऐसा एक तार हो जाता है कि उसे इस बात की खबर भी नहीं रहती कि उसके आसपास क्या हो रहा है। रौद्रध्यान पर चढ़ा हुआ मनुष्य अपनी पत्नीको या बड़ोंको तलवारसे मारने तक को तैयार हो जाता है, उस समय वह हानि लाभका कुछ भी विचार नहीं करता। आर्तध्यानमें लगे हुए मनुष्यको भूख प्यासका भी विचार नहीं रहता, इतना ही नहीं बल्कि विष भक्षण करनेका भी दुःख न मानकर प्रसन्नतापूर्वक आत्मघात कर लेता है। इस प्रकार दुर्ध्यानमें लगे हुए मनुष्यको अपध्यानके सिवाय कुछ भी नहीं दीख पड़ता। परन्तु 'धर्मध्यान' करने वाले मनुष्योंमें बहुत ही कम ऐसे होते हैं। जिसकी लगन आर्तध्यानमें हो वह दस मिनट काउसग्ग में रहे तो उसके पैर दुखने लगेंगे, पांच मिनटमें श्वासोच्छ्वास रुक जायगा और मैं मर जाऊंगा, ऐसी कल्पना करेगा। ऐसे-ऐसे संकल्प विभावसे साधक धर्मध्यानमें निश्चल नहीं हो सकता। जब निश्चलता होती है तब धर्मध्यान द्वारा ही आनन्द मिलता है। तब दुःख तो साधकको छू नहीं सकता, दैवीकोपका उस पर कुछ असर नहीं हो सकता, अर्थात् उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता।

पौषध व्रत 'धर्मध्यान' का उत्तम प्रकार है। आत्माको पोषण करनेके लिए लिया हुआ समय प्रौषध व्रत है। इस व्रतमें शरीर का श्रृंगार करना छोड़ दिया जाता है और शरीर की कुछ परवाह भी नहीं रक्खी जाती। जिन्दगी भरमें जो मन दिन रात शरीरके विचारमें मगन रहता है, उसे इस व्रतमें शरीरकी बजाय शरीरके राजाके ही विचारोंमें लगाया जाता है। इस पौषधव्रतमें कथा-कहानियों, रासों को पढ़ना, या सुनना, यदि आत्म कल्याणका विरोधी तत्व न समझा जाय तो फिर रोजगार, घरके काम और इधर उधर की गप्पें हांकने वालेके प्रौषधके लिए तो कहा ही क्या जाय?

वैद्य लोग कहते हैं कि नीरोग मनुष्य को भी हर महीने या हर आठवें दिन आरोग्यता रक्षणके लिए एक अच्छा जुलाब लेना चाहिए। शरीरकी सहीसलामती और आरोग्य रक्षण के लिए यह इच्छनीय है। तथापि हर महीने या हर आठवें दिन एक 'पौषध' होता हो तो मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म उभय प्रकार के महान् लाभ प्राप्त कर सकेगा। पौषधमें उपवास करना ही पड़ता है, अतएव शरीर संचित मल जल जाता है और शरीर निर्मल हो जाता है।(यह मेरा कहना तन्दुरुस्त मनुष्यों के लिये है, न कि बीमार और कमजोरों के लिए।) आठ दिन या महीने भरमें इधर उधर भटके विचार एकांत सेवनसे एकत्र होकर मनोबल बढ़ता है।

इस रीति से दूना लाभ देने वाले पौषधव्रतीके लिये स्थान एकान्त होना चाहिए। एक स्थान पर इकट्ठे होकर बहुतसे मनुष्यों का पौषध करना संघ निकालने जैसा है। इसमें आत्माको आत्मिक विचारोंसे पुष्ट करनेका समय नहीं मिलता। प्राचीन समयमें प्रत्येक श्रावक अपने घरमें प्रौषधशालाकी व्यवस्था रखते थे और इस बात पर ध्यान रक्खा जाता था कि उस मकानके वायुमंडल (वातावरण) को अपवित्र विचार से अछूता रक्खा जाय।

आत्माकी पुष्टि करनेके लिए पौषध किया जाता है; तथापि उस पौषधको पालन करनेके लिए भी कुछ होना आवश्यक है। खुराक तो आत्माको भी चाहिए और पौषधको भी। क्योंकि बिना खुराकके शरीर या कोई सांचा नहीं चल सकता। प्रौषध की खुराक 'भावना' है। बारह भावनाओंमें से किसी एक भावना में लीन होने से सारा दिन उसी भावनामें व्यतीत किया जाय, तो समय का सद्व्यय होता है और आतमलाभ भी। परन्तु 'भावना' तब ही उच्चतम हो सकती है जब कि वस्तुतत्व सम्बन्धी पढ़ा या सुना हुआ ज्ञान अपने मन और मस्तकमें समाया हुआ हो। प्रथम तो गुरु महाराजके पास वस्तु तत्व सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। फिर भावना में सद्भावका आन्दोलन प्रस्तुत करके प्रौपधको दृढ़ करना चाहिए और पौषधसे आत्मा का पोषण करना चाहिए। इस रीतिसे क्रमशः आगे बढ़ने वाला या गुणस्थान पर चढ़ने वाला पुरुष देवता की मारसे या लालचसे कभी डिगेगा नहीं। कभी भावना या व्रतको न छोड़ेगा और इस प्रकारकी तल्लीनताका नाम ही आनन्द है। यही मोक्ष की बानगी है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

—o—

तृतीय अध्ययन—चुलणीपिया गाथापति

......उस समय वाराणसी नामक नगरी थी। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगरमें चुलणीपिया नामक एक गाथापति रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सोमा। वह बड़ी रूपवती थी। उस गाथापतिके पास आठ कोटि

सुवर्ण भूमिमें गड़ा हुआ था। आठ कोटिसे व्यापार करता था। ८ कोटि धन अपने गृहकार्य में लगाया था। इसके अतिरिक्त वह आठ गोकुल का स्वामी था।

एक समय भगवान् श्री महावीर स्वामी कोष्ठक नामक उद्यानमें पधारे, उनकी वन्दना करने चुलणीपिया गया। वन्दना नमस्कार कर उपदेश श्रवण कर आनन्द श्रावकके समान श्रावक धर्म अंगीकार किया। घर आया। बड़े पुत्रको सब घरका कार्यभार सौंपा। अपना जीवन धर्ममें व्यतीत करने लगा। स्त्री-पुत्रादिसे पूछ कर पौषधशालामें पौषध करते हुए विचरने लगा ॥२५॥

तत्पश्चात् आधी रातके समय एक देव कमल सी उजली और बिजली सी चमकती हुई तलवार हाथमें लेकर आया और कहने लगा—"हे चुलणीपिया श्रावक! अप्रार्थित मरणके चाहने वाले! बुरी पर्यायोंके धनी! हीन चौदस-पूनमके जन्मे हुए! लज्जा-शोभा-धैर्य-कीर्ति रहित! यदि तू इस व्रतको न तोड़ेगा तो तेरे बड़े पुत्रको तेरे घरसे लाकर इस तलवारसे तेरे सामने ही काट डालूंगा और उसके मांसको तल तल कर तेरे शरीर पर उसके छींटे दूंगा। अतएव तू तीव्र वेदना पाकर आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान द्वारा अकालमें मरेगा" ॥२६॥

परन्तु इससे चुलणीपिया न तो डरा और न धर्मसे चलायमान हुआ। तब वह देव अति क्रोधायमान हुआ। उसने चु० श्रावकके बड़े पुत्रको लाकर उसके सामने काट डाला। उसके तीन शोले किये। कड़ाहीमें तलें और उसका रक्त मांस चु० श्रावक के ऊपर छिड़का। उससे...श्रावकको तीव्र वेदना हुई, परन्तु वह न डरा, न दुःखी हुआ, प्रत्युत चुपचाप रहा। धर्मध्यानमें लीन बना रहा। इसके पश्चात् देवने चुलणीपिया के बिचले लड़केका भी यही हाल किया और छोटे लड़के का भी। तथापि चु० श्रावक तो अपने धर्मध्यान में ही लगा रहा ॥२७॥

अन्तमें देवने कहा कि 'अब मैं तेरी मां भद्राकी भी यही गति करूंगा।' तो भी...श्रावक नहीं डरा। देवने दुबारा कहा तो भी...श्रावक दृढ़ रहा, परन्तु जब तीसरी बार माता भद्राके बारेमें कहा तो श्रावक चुलणीपिया मनमें सोचने लगा कि "इस पुरुषकी बुद्धि बड़ी अनार्य है। इसने मेरे तीनों लड़कों को मार डाला और मेरी माताको भी मेरे सामने मारने के लिये कह रहा है। माता तो देवगुरु समान होती है, जिसने मुझे गर्भ में रखकर पालन किया है, उस माताको अपने सामने कटते देखूं, यह मेरे लिये असह्य है। अच्छा, इस दुष्टको अभी पकड़ता हूं।" यह विचार कर चुलणीपिया मन, वचन और कायासे माताकी सहायता के लिये उठा और ज्यों ही देवको पकड़नेके लिये खड़ा हुआ कि देवता आकाश मार्गसे चला गया और चुलणीपियाने थंभा पकड़ कर बड़े जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। उसे सुनकर भद्रा सेठानी वहां आई और कहने लगी कि—'हे वत्स! अभी तूने बड़े जोरसे कोलाहल क्यों किया?' चुलणीपिया बोला—"माता! कोई आदमी

मुझसे अप्रसन्न होकर कमलके फूल जैसी उजली और विजली सी चमकती हुई तलवार हाथमें लेकर कहने लगा कि—'हे चुलणीपिया ! यदि तू अपना व्रत न तोड़ेगा तो तेरे बड़े पुत्रको तेरे सामने मैं अभी मारूंगा, उसके मांसके शोले कड़ाही में तल कर उसका रक्त मांस तुझ पर छिड़कूंगा।' इस प्रकार तीन वार कहा परन्तु मैं डरा नहीं। फिर उसने तीनों लड़कों को काटकर उनका रक्त मांस मेरे शरीर पर छिड़का। मैं फिर भी नहीं डरा और न धर्मसे विचलित हुआ। परम पूज्य माताजी! उसने आपके लिये भी वैसा ही कहा, दो वार तो मैंने सहन कर लिया, परन्तु तीसरी वार मुझ से सहन न हो सका। जब मैं उसे पकड़नेको दौड़ा तो वह आकाश मार्गसे उड़ गया और मैं इस थंभेसे लिपट गया और कोलाहल करने लगा" ॥२८॥

भद्रा बोली—"वत्स ! तेरे तीनों पुत्र घरमें ही सकुशल* हैं। उन्हीं किसी ने भी घरसे लाकर नहीं मारा है। कोई देव तुझे उपसर्ग करने आया होगा, उसने तेरे व्रत, त्याग, तप, नियम, सामायिक, प्रौषधादि भंग करने का यत्न किया है। इसलिये मन, वचन और कायासे आलोचना कर और प्रायश्चित ले।" चुलणीपियाने माताकी वात मानकर, आलोचनापूर्वक प्रायश्चित ग्रहण कर लिया ॥२९॥

चुलणीपिया आनन्दजी की तरह ११ प्रतिमा स्वीकार करके कामदेव जी की तरह अनशन करके सुधर्म देवलोकमें सौधर्मावितंसक नामक वड़े विमानके पास ईशान कोण वाले अरुणप्रभ नामक विमानमें चार पल्योपमकी स्थिति का देवता हुआ। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥३०॥

सार

कामदेवके चरित्रमें हम दृढ़ तन्मयता की भावनाका चित्र देख चुके, कि जिस तन्मयताके सामने कोई संकट या कोई उच्च अपगुण भी याद नहीं आता। चुलणीपियाके चरित्रमें भी हम ऐसे ही एक पवित्र पुरुषके जीवन का चित्र देखते हैं, परन्तु इसमें वैसी सम्पूर्ण तन्मयता नहीं है। चुलणीपिया तो धर्म की पूर्ण स्थिति की अपेक्षा माता के प्रेमकी ओर अधिक ढल पड़ा। हां, मातृभक्ति अत्यन्त प्रशंसनीय वात है, वैसे ही पितृभक्ति, कुटुम्बवात्सल्य और स्वदेशभक्ति आदि प्रसंग प्रत्येक परोपकारका काम है। परन्तु एक म्यानमें दो तलवारें नहीं समा सकतीं। एक ध्यानमें लगे हुए मस्तकमें दूसरा विचार, फिर चाहे वह कितना ही उत्तम क्यों न हो-प्रवेश कर नहीं सकता, और यदि प्रवेश करे भी तो ध्यान की सम्पूर्ण अवस्था नहीं रह सकती।

चुलणीपियाने कसौटीके समय हार खाई फिर भी दूसरे दिन उसके वच्चे तो उसे जीवित ही मिले। माताने कसौटीके समय दृढ़ रहनेकी शिक्षा दी, तव वह

---

* इस प्रकारकी जितनी घटनायें घटती हैं, वे सव मानसिक सृष्टिमें ही होती हैं। अतएव प्रत्यक्षमें कोई विरोध नहीं आता।

एक बारकी हारसे हिम्मत न हारा और धर्मध्यानमें प्रयास करता ही रहा। अन्त में महाविदेह* क्षेत्रमें विहरमान प्रभुके चरणकमलकी भक्तिका सौभाग्य पाकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होगा। इससे यह शिक्षा मिलती है कि विघ्न और पराजयसे भी अनुभव मिलता है और उन्नति (Evolution) मार्ग साफ होता है। इसलिये गिर जाने वाले साधकको बैठा न रहना चाहिए; क्योंकि 'घोड़े पर चढ़ेगा वही कभी गिरेगा' इस लोकोक्ति को स्मृति पथमें रखकर फिरसे उन्नतिके मार्गमें दौड़ लगानी चाहिए।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

---

* My own imagination explains the terms महाविदेह, क्षेत्र, विहरमान & सीमंधर in this way. 'सीमानम् धारयति इति सीमंधरः' सीमंधर is he who holds the सीमन् or boundary i. e. Protector of the Faith, whose responsibility is enormous--say inconceivable क्षत्र does not mean physical place. it means भुवन or 'plane.' महाविदेह क्षेत्र means that Plane or भुवन of life in which a man can exist independent of physical body or औदारिक शरीर. A Sadhu or a Saint can by means of आहारक लब्धि visit सीमंधर स्वामी or the तीर्थंकर (Protector of the faith) who cannot live in our land but who dwells in महाविदेह क्षेत्र i.e. the plane where there is perpetual चतुर्थ युग of joy or आनन्द. now what is this लब्धि ? It is that power of concentration or योग enables a man to quit rhe physical garb and to travel singly.

विहरमान (Present Participle Adj. of वि with हृ) means sporting, airing. The High Souls in महाविदेह plane do actually move in air or subtle matter and move from one place to another as if sporting. They being full in knowledge feelआनन्द even in airing, hence there विहार is equivalent to sporting.

This is what my imagination tells me unaided by any teacher either त्यागी or गृहस्थ It may be faulty. But I am sure I am not at fault when I believe that behind what is preached by Jain Sutras there is hidden a treasure of mystic knowledge which when a man knows he will no longer care much for the words of Sutras but will persistently try to grasp the sense hidden under those simple-looking words. (W.M.Shah)

चतुर्थ अध्ययन--सुरादेव गाथापति

···उस समय वाराणसी नगरीमें जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहां सुरादेव नामक एक गाथापति था। उसके छ कोटी सुवर्ण जमीनमें गड़ा हुआ था। छ कोटीसे व्यापार करता था और छ कोटी धन गृहकार्यमें लगाया हुआ था। छ गोकुलका स्वामी था। उसकी स्त्री पांचों इन्द्रियोंसे परिपूर्ण एवं सुरूपा थी, जिस का नाम धन्या था। एक समय महावीर भगवान् कोष्ठक वनमें पधारे। उनकी वंदना करने आनन्दकी तरह सुरादेव गाथापति भी गया। भगवान् को वंदना नमस्कार कर धर्मकथा सुन आनन्दकी भांति श्रावक धर्म अंगीकार किया और घर आकर प्रौषध आदि धर्मक्रिया करने लगा ॥३१॥

एक समय सुरादेव प्रौषधशालामें प्रौषध करके बैठा था। तव आधी रातके समय एक देवता कमल सी उज्ज्वल और बिजली सी चमकती हुई तलवार हाथमें लेकर उसके सामने आकर कहने लगा–हे सुरादेव श्रावक ! अप्रार्थित मरण चाहने वाले ! बुरी पर्यायोंके मालिक ! यदि तू इस व्रतको नहीं तोड़ेगा तो तेरे पुत्रको घरसे लाकर तेरे सामने मार दूंगा। पांच शोले करके कड़ाहीमें तलकर उसका रक्त और मांस तेरे शरीर पर छिड़कूंगा ! जिससे तू तीव्र वेदना भोगकर आर्तध्यान और रौद्रध्यानसे कुमौत मरेगा।" ऐसा कहने पर वह श्रावक न तो डरा और न धर्मसे विचलित हुआ। देवताने दो तीन वार कहा, परन्तु···श्रावक फिर भी न डरा। देव ने कुपित होकर···श्रावकके बड़े लड़केको पकड़ कर उसके सामने मार डाला। उसके पांच शोले किये और कड़ाहीमें तलकर उसका रक्त मांस सु० श्रावकके अंग पर छिड़का। उससे उसे बड़ी भारी वेदना हुई, परन्तु वह डरा नहीं, न दुःखी हुआ, न बोला। प्रत्युत उसका भाव धर्मध्यानमें विशेष बढ़ता गया। देवताने तो विचले और छोटे पुत्रका भी यही हाल किया और उनके खून और मांसको वैसे ही श्रावक पर गिराया। तथापि···श्रावक न तो डरा और न धर्मसे चलित हुआ।

चौथी वार देवने कहा कि–"सुरादेव श्रावक ! यदि तू इस व्रतको न छोड़ेगा तो तेरे शरीरमें १ श्वास २ कास ३ दाह ४ ज्वर ५ कुक्षिपीड़ा ६ शूल ७ भगंदर ८ अर्श ९ अजीर्ण १० दृष्टिदुःख ११ गुह्यशूल १२ कर्णशूल १३ उदरवेदना १४ लिंगशूल १५ मस्तकशूल और १६ कोढ़ इत्यादि सोलह रोग प्रकट कर दूंगा। फिर तू महा वेदना भोगकर अकालमें बुरी मौतसे मरेगा।" इस प्रकार उसने एक वार, दो वार, तीन वार कहा ॥३२॥

यह सुनकर सुरादेव श्रावकने मनमें सोचा कि–"यह पुरुष महाअनार्य-मति-का धनी है। इसने मेरे तीनों बच्चोंको मेरे सामने मारा और उनके लहू मांससे

मेरे शरीर को सान दिया। अब यह मेरे शरीरमें सोलह रोग प्रकट करनेको कहता है यह ठीक नहीं है। इस दुष्टको अभी पकड़ता हूं।" यह सोचकर ज्यों ही उसे पकड़ने जाने लगा कि देवता आकाश मार्गसे चल दिया। सुरादेव थंभा पकड़कर कोलाहल मचाने लगा ॥३३॥

यह सुनकर उसकी स्त्री धन्या उसके पास आकर कहने लगी—'आप शोर क्यों मचा रहे हैं?' सुरादेवने कहा—'अभी कोई मनुष्य मुझ पर कुपित होकर बिजली सी चमकती हुई तलवार अपने हाथमें लेकर कहने लगा कि—'हे सुरादेव! यदि तू इस व्रतको न छोड़ेगा तो तेरे तीनों बच्चोंको तेरे सामने इस तलवारसे मारूंगा और पांच शोले बनाकर उन्हें कड़ाहीमें तलकर उनके खून और मांससे तुझे सान दूंगा, और उसने ऐसा ही किया परन्तु मैं न डरा। अन्तमें मेरे शरीरमें सोलह रोग प्रकट करनेको तीन बार कहा तब मैं उस दुष्ट पुरुषको पकड़ने चला था तो वह आकाशमें चल दिया और मैं इस थंभेसे लिपट गया।'

धन्या बोली—'आपके तीनों बालक घरमें सुरक्षित हैं। तुम्हें कोई देव उपसर्ग देनेको आया होगा। उसने तुम्हारे व्रत प्रत्याख्यानका भंग करना चाहा है। इसलिए आप मन वचन और कायासे इस भूलकी आलोचना करते हुए प्रायश्चित्त लीजिये।' तब उस श्रावकने उसी समय आलोचना करके प्रायश्चित्त लिया। शेष चुलनीपियाके समान यावत् सुरादेव श्रावक अनशन द्वारा सुधर्म देवलोकमें अरुणकांत नामक विमानमें चार पल्योपमकी स्थितिसे देवपर्यायमें उत्पन्न हुआ। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष पायेगा ॥३४॥

सार—कामदेवने पूर्ण दृढ़ता रक्खी। चुलणीपियाने मातृप्रेमसे अपनी तन्मयता भंग की और सुरादेव देहभावमें लिपट कर अपना आत्मध्यान खो बैठा। ध्यानसे विचलित होनेके विविध कारण बताकर छठे अध्ययनमें सच्चे भक्तजनकी भगवान्के वचनमें कैसी अडिग श्रद्धा होनी चाहिये यह ठीक तरह समझाया है। इन सब कारणोंसे मुमुक्षुको बोध मिलता है कि आत्मार्थी पुरुष अपने प्रयासमें विशेष सावधान रहे और विरोधी वातावरण प्रस्तुत होने पर भी अपने स्वाभाविक आत्मभावमें लीन रहे।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

—:०:—

पांचवां अध्ययन--चुल्लशतक गाथापति

…उस समय आलंभिका नामक नगरीमें जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहां चुल्लशतक गाथापति रहता था। उसका छः कोटी सुवर्ण भूमिमें गड़ा था। छ कोटीसे व्यापार चलता था और छ कोटिका सामान घरमें था। छ गोकुल का स्वामी था। उसको स्त्रीका नाम बहुला था। एक समय भगवान् श्री महावीर

स्वामी शंख उद्यानमें पधारे। उन्हें वन्दना करने आनन्द श्रावककी भांति चुल्ल-शतक भी गये। भगवान्को वन्दना नमस्कार कर धर्मकथा सुनी। आनन्दकी तरह श्रावक धर्म अंगीकार किया। घर आकर प्रौषधशालामें प्रौषध किया ।।३५।।

आधीरातके समय एक देव आया। उसके हाथमें कमल सी उज्ज्वल विजली सी चमकती हुई तलवार थी। वह तलवार से डर दिखाकर···श्रावकसे कहने लगा कि—'हे चुल्लशतक श्रावक ! अप्रार्थित मरणके चाहने वाले ! यदि तू अपने धर्म और व्रतको न छोड़ेगा तो तेरे तीनों वच्चोंको लाकर तेरे सामने मारूंगा।' चुलणीपिया के समान सव घटनाएं हुई। इतना अधिक हुआ कि एक-एक वच्चेके सात सात शोले वनाने की धमकी दी।

यह कहकर अनुक्रमसे तीनों वच्चोंको लाकर उसके सामने मारनेका सा भाव वताकर सात सात शोले कड़ाहीमें तलकर उनका रुधिर और मांस उसके शरीर पर फैंका। फिर भी चुल्लशतक श्रावक धर्मसे न डिगा। चौथी वार देव वोला—"चुल्लशतक ! यदि तू इस व्रतको नहीं छोड़ेगा तो मैं तेरे सारे द्रव्यको अर्थात् भूमिमें गड़ी हुई और व्यापारमें लगी हुई तथा घर के काम लगाई हुई १८ करोड़ सुवर्णकी लक्ष्मीको आलंभिका नगरीकी गली गली में विखेर दूंगा। फिर तू उसके सोच फिकरमें आर्त-रौद्रध्यान-वश मर जायगा" ।।३६।।

इस प्रकार उसने तीन वार कहा। यह सुन कर चुल्लशतक मनमें सोचने लगा कि "यह पुरुष महा अनार्य-मतिका धनी है। इसने मेरे तीनों वच्चोंको मेरे सामने मारा और उनका खून और मांस मेरे शरीर पर फेंका, अव मेरी सारी लक्ष्मीको आलंभिका नगरीमें विखेर देनेके लिये कह रहा है। यह ठीक नहीं। इस दुष्टको पकड़ूं।" यह सोचकर पकड़ने को चला तो देवता आकाशमें उड़ गया और चुल्लशतक खंभा पकड़कर कोलाहल करने लगा। तुमुल शव्द सुनकर उसकी स्त्री उसके पास आई और कहने लगी कि "अभी चिल्लाये क्यों थे।" चुल्लशतकने कहा "न जाने कोई आदमी आया और उसने मेरे तीनों वच्चोंको मेरे सामने मारकर कड़ाहीमें तला और खून मेरे शरीर पर छिड़का। फिर मेरी सारी सम्पत्ति आलं-भिका नगरीमें विखेर देनेको कहा, अतएव उस दुष्टको मैं पकड़ने गया तो वह आकाश मार्गसे चल दिया और इस थंभे से लिपट पड़ा।"

वहुला वोली—"आपके तीनों पुत्र तो घरमें हैं। तुम्हें उपसर्ग देने कोई देवता आया होगा। उसने आपके व्रत और त्यागका परीक्षा द्वारा भंग करना चाहा है। अतएव इस स्खलनाका मन, वचन और काया से आलोचनापूर्वक प्रायश्चित कर लीजिये।"

···श्रावकने ऐसा ही किया। शेष चुलनीपिता के समान यावत् चुल्लशतक अनशन करके सुधर्म देवलोकमें अरुणसिद्ध विमानमें उत्पन्न हुआ। वहां चार पल्यो-पमकी स्थिति पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्रसे मोक्ष पायेगा ।।३७।।

सार

अमूल्य पौषध व्रतको अंगीकार करनेके अनन्तर अपने व्यापारिक और आर्थिक मोहमें फंसने वाले साधक को उसकी 'वहुला' पत्नी ने समय पर चेतावनी देकर वीतराग भावमें स्थिर किया और उसकी भूल वताकर उसकी आत्माको निश्शल्य किया।······

।। पांचवाँ अध्ययन समाप्त ।।

छठा अध्ययन-कुण्डकोलिक गाथापति

······उस समय कंपिलपुर नामक नगरमें जितशत्रु राजा था। वहीं कुंड-कोलिक नामक गाथापति रहता था। उसका छ कोटी सुवर्ण भूमिमें गड़ा था। छ कोटी से व्यापार करता था और छ कोटीकी सम्पत्ति गृहकार्यमें लगाई हुई थी। छ गोकुलका धनी था। उसकी स्त्री का नाम पूसा था। एक समय श्रमण भगवान् महावीर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में पधारे। उनकी वन्दना करने आनन्द की तरह कुण्डकोलिक गाथापति भी गया। वहां भगवान्की वन्दना कर धर्मकथा सुनी। आनंदकी तरह वारह व्रत अंगीकार किये। घर आकर श्रावक धर्मका पालन करता हुआ, साधु साध्वियोंको आहार पानी आदि द्वारा सेवा का लाभ लेते हुए धर्मक्रिया पालन करनेमें अनुरक्त होकर विचरने लगा ।।३८।।

एक समय दिनके पिछले पहरमें कुंडकोलिक श्रावक अशोकवाटिका में गया और पृथ्वीशिलापट्ट पर अपने नामकी मुद्रा और उत्तरीय वस्त्र रखकर श्रमण भगवान् महावीर के पास जो श्रावक धर्म अंगीकार किया था उसका साधन करता हुआ सामायिक व्रत लेकर बैठ गया ।।३९।। उस समय एक देवता वहां आया। और उसकी नामांकित अंगूठी और उत्तरीय वस्त्रको कोपसे आक्रुष्ट होकर शिला-पट से उठाकर घुंघुरू बजाता हुआ आकाशमें खड़ा होकर कहने लगा—"हे कुंड-कोलिक श्रावक! गोशाला नामक मंखलीपुत्रके धर्ममें उत्थानादि क्रिया, तप, संयम, चारित्र, वल, पराक्रम, वीर्यके बिना ही कर्मों का क्षय हो जाता है और मोक्ष मिल जाता है ऐसा कहा है। श्रमण भगवान् महावीरके धर्ममें इनके सिवाय मोक्ष नहीं होता ऐसा कहा है। अतएव गोशाला नामक मंखलीपुत्रका धर्म श्रेष्ठ सत्य है। इसलिए तू उसे अंगीकार कर और महावीर के धर्म को झूठा मानकर छोड़ दे" ।।४०।।

देवकी वात सुन कर कुंडकोलिकने कहा—अहो देव! तू कहता है कि गोशाला मंखलीपुत्रका धर्म, क्रिया, तप, संयम, आदि के विना मोक्ष मिले ऐसा उत्तम है और श्रमण भगवान् महावीर का धर्म दया, वल, वीर्य और पुरुषार्थ युक्त है यह ठीक नहीं कह रहा है। देवताओंके प्रिय! तूने ऐसी देवता की पदवी, ऋद्धि,

रूप और सुख ये सब उत्थानादिक क्रियाएं या तप, संयम, बल तथा पराक्रम बिना ही पाया है या और किसी तरह ? और जो जीव उत्थानादि क्रिया तप आदि नहीं करते उनको मोक्ष होगा या नहीं?" कुंडकोलिककी यह बात सुनकर देव संदेह में पड़ गया और कुछ भी उत्तर न दे सका। चुप-चाप उस अंगूठी और उत्तरीय वस्त्रको फिरसे पृथ्वीशिलापट्ट पर रख दिया। तथा जिस दिशासे आया था उसी दिशामें चला गया।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। इन समाचारोंको पाकर उसे बड़ा ही हर्ष और संतोष हुआ। जैसे कामदेव श्रावक वंदना करने गया था उसी प्रकार कुंडकोलिक भी वन्दना करने गया ॥४१॥ धर्मकथा हो चुकने पर महावीर स्वामी कुंडकोलिकसे बोले—"हे कुंडकोलिक श्रावक ! कल पिछले पहरमें तू अशोकवाटिकामें सामायिक लेकर बैठा था। उस समय एक देव प्रकट हुआ और तेरे नामकी अंगूठी और वस्त्रको लेकर फिर रखकर चला गया। क्या यह बात सच है ?" कुण्डकोलिकने कहा—हां, महाराज ! सत्य है। भगवान् महावीर बोले--'धन्य है तुझे। तू कामदेव श्रावककी तरह धर्म में दृढ़ रहा।' इसके बाद भगवान्ने बहुतसे साधु-साध्वियोंको बुलाकर कहा--"अहो आर्यो ! कुंडकोलिक गृहस्थी होने पर भी अन्यतीर्थिक और अन्य शासनके देवों द्वारा प्रश्न करने पर भी न हारा न निरुत्तर हुआ। फिर तुम तो द्वादशांगी तत्त्वपूर्ण वाणीके जानने वाले हो। तुम्हें तो अन्यतीर्थी लोगों पर विजय पानी चाहिए। सब साधु-साध्वी समुदायने भगवान् की आज्ञा को तथास्तु कहकर स्वीकार किया। यह सुनकर कुंडकोलिक की श्रद्धामें और भी दृढ़ता और परिपक्वता उत्पन्न हुई। भगवान् महावीरकी उसने प्रदक्षिणा वंदना की और जिस दिशासे आया था उस दिशामें गया। महावीर भगवान् जनपदमें विहार करते हुए विचरने लगे ॥४२॥

कुंडकोलियाने १४ वर्ष शीलादि पालन किया। १५ वें वर्षमें बड़े पुत्रको घरका भार सौंपकर कामदेव की तरह पौषधशाला में श्रावककी ११ प्रतिमा स्वीकार करके उनकी आराधना और पालना करने लगा। अन्त में अनशन करके सुधर्म देवलोकमें अरुणध्वज विमानमें देवता हुआ। वहां चार पल्योपमकी आयु पूरी कर महाविदेह क्षेत्रमें अवतर कर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥४३॥

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवां अध्ययन--सद्दालपुत्र

···उस समय पोलासपुर नामक नगर था। उसके बाहर सहस्राम्रवन उद्यान था। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहां सद्दालपुत्र कुम्हार रहता था

जो बड़ा धनवान था। गोशाला-मंखलीपुत्र का उपासक था। वह गोशालकके मत में प्रवीण था और उसमें उसकी हड्डी और मज्जा रंगी हुई थी। वह अपने धर्मके सिवाय अन्य सब धर्मों को अनर्थ मानता था। एक कोटी सुवर्ण उसकी जमीन में गड़ा हुआ था। एक कोटी सुवर्णसे व्यापार करता था और एक कोटी सुवर्ण गृहकार्य···और उसके एक गोकुल था। उसके अग्निमित्रा नामक स्त्री थी। पोलासपुरके बाहर उसकी ५०० दुकानें थीं। उसके बहुतसे नौकर थे। वह नाना भांतिके घड़े, मटकियां, कुज्जे और कुंडे आदि अनेक प्रकारके वर्तन तैयार करवाता था और राजमार्ग पर उसकी दुकानें थीं, वहीं व्यापार करता था ।।४४।।

एकदिन सद्दालपुत्र (गोशालेका श्रावक) अशोकवाटिकामें गोशाले के धर्मकी प्रज्ञप्ति लेकर बैठा था। अकस्मात् उसके पास एक देव प्रकट हुआ और आकाशमें खड़ा होकर घुंघुरू बजाता हुआ, सुन्दर वस्त्राभूषण पहने हुए, आकर कहने लगा-"हे देवानुप्रिय! यहां कल सवेरे एक महापुरुष आयेंगे। वे ज्ञान और दर्शन के धारक, त्रिकालज्ञ, अरिहंत, केवली, सर्वदर्शी, त्रिलोकवासी देव मनुष्य असुरादिक द्वारा पूजनीय और सर्ववन्द्य हैं। तू उनकी त्रिकरण-योगसे सेवा करना। पीठ, फलक, तख्त, चौकी, शय्या संस्तारक, वस्त्र और पात्र आदि देनेके लिये आमन्त्रण करना।" इस प्रकार तीन बार यही बात कहकर वह देव जिस दिशासे आया था उसी दिशामें वापिस चला गया ।।४५।।

दूसरे दिन प्रातःकाल चरम तीर्थकर श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वन्दना करने आई। वन्दना पर्युपासना की। इस बातको सुनकर सद्दाल-पुत्रने मनमें सोचा कि—गोशालक तो आया नहीं और ये तो श्रमण भगवान् महावीर विचर रहे हैं। इसलिए मैं भी उनकी सेवा में जाऊं। देव के कथना-नुसार जाकर उनकी वन्दना और सेवा करूं ।।४६।। इसी विचारसे नहा धोकर सुन्दर वस्त्र पहन, बहुत से मनुष्योंके समुदायसे निकला और पोलासपुरके बीचोंबीच होकर सहस्राम्रवनमें जहां महावीरस्वामी विराजमान थे वहीं पहुँचा। उन्हें वन्दना कर उनकी भावपूर्वक पर्युपासना की ।।४७।।

भगवान्ने सद्दालपुत्र और १२ प्रकार की परिषद्के सन्मुख धर्मकथा कही। फिर सद्दालपुत्रसे कहा—"हे सद्दालपुत्र कल पिछले पहरमें अशोकवाटिकामें खड़े रह कर एक देवने तुझसे कहा था कि—'कल एक महापुरुष आयेंगे उनकी सेवा भक्ति और उपासना करना' यह बात सच है?" सद्दालपुत्र बोला—"हे स्वामिन्! यथार्थ सत्य है।" फिर देवके कहे अनुसार सद्दालपुत्रने महावीर स्वामीको वन्दना कर कहा—"हे भगवन्! पोलासपुर नगरके बाहर मेरी पांच सौ कुम्हारकी दुकानें हैं। वहां पर आप पाढियारे पीठ, फलग, शैय्या, संस्तारक, उपकरण और औषधि आदि वस्तुयें द्रव्य,क्षेत्र,काल और भावकी स्पर्शनाके अनुसार यथेच्छ लेकर विचरें।"

ऐसा कहनेपर श्रमण भगवान् महावीर सद्दालपुत्रकी ५०० दुकानोंसे प्राशुक, एषणीय, पाढियारे पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, उपकरण-औषधि आदि लेते हुए विचरने लगे ॥४८॥

एक समय मिट्टीके कच्चे वर्तनोंको दुकानके वाहर धूपमें सूखते हुए देखकर सद्दालपुत्रसे महावीर स्वामीने पूछा कि—"सद्दालपुत्र ! ये मिट्टीके वर्तन कैसे तैयार हुए ?" सद्दालपुत्रने कहा—"हे पूज्य ! यह पहले मिट्टी थी। उसे पानी और हाथ पैरोंके व्यापारसे कमाकर पिंड वनाया। फिर चाक पर चढ़ाकर हाथसे जैसा चाहा घट तैयार किया।" श्रमण भगवान् म० वोले—"अहो सद्दालपुत्र ! ये कच्ची मिट्टीके वर्तन उत्थान, वल, वीर्य या किसी प्रकारके पुरुषार्थ या पराक्रमके विना ही हो गये ?" सद्दालपुत्र वोला—"हे भगवन् ! उत्थान, वल, वीर्य, पराक्रम या पुरुषार्थ कुछ नहीं है। सब भाव नित्य हैं। ऐसा होना ही था" ॥४९॥

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सद्दालपुत्रसे कहने लगे—"अहो सद्दालपुत्र ! इन कच्चे, पक्के बर्तनोंको कोई तेरे सामने ही तोड़-फोड़ दे, छीन ले और तेरी भार्या अग्निमित्राके साथ संसारके सुख भोगे तो तू उसके साथ कैसा व्यवहार करना पसन्द करेगा ?" सद्दालपुत्र बोला—"हे भगवन् ! मैं उसे गाली दूं, वांधूं और मारूंगा"। भगवान् वोले—" हे सद्दालपुत्र ! उत्थानादि क्रिया पराक्रम कुछ नहीं है और सब भाव नित्य हैं। यदि तू यह कहता है तो तू अपराध करने वालेको दंड कैसे देगा ? और इन सब वातोंको प्रत्यक्ष देखना भी झूंठ है न ?" इससे सद्दालपुत्रको ज्ञान और गहरा विवेक हुआ वह श्रमण भगवान् म० को नमस्कार कर बोला—"मैंने आपके पास जो धर्म सुना है वह सत्य और सवसे उत्तम है" ॥५०॥

इसके वाद श्रमण भगवान्ने परिषद्के वीचमें धर्मदेशना दी। उसे सुन हर्ष और संतोष पाकर आनन्द श्रावककी भांति वारह व्रत अंगीकार कर, भगवान्को वन्दना नमस्कार कर पोलासपुर नगर के बीचोंवीच होकर घर आया। अपनी स्त्री अग्निमित्राको भी भगवान्को वंदना करने···जानेकी आज्ञा दी॥५१॥

स्वामीकी आज्ञाको मान कर अग्निमित्रा स्नान कर मूल्यवान् वस्त्राभूषण पहन कर अठारह देशकी दासियोंको साथ लेकर रथमें वैठ भगवान्की वन्दना करने गई। वहां न तो भगवान्से वहुत दूर और न वहुत समीप रहकर भगवान्की वन्दना कर धर्मकथा सुन हर्ष और सन्तोष पाया। श्रावकके वारह व्रत अंगीकार किये और रथपर वैठ कर घर पहुंची। और महावीर स्वामी सहस्राम्रवनसे निकल कर जनपद, देश, नगर और गाम आदिमें विहार करने लगे ॥५२-५४॥

मंखलीपुत्र गोशालेने सद्दालपुत्रकी महावीरके पास वारह व्रत अंगीकार करनेकी वात सुनी। सोचा कि 'मैं सद्दालपुत्रके पास जाऊं और उसे फिरसे अपने

धर्ममें लगाऊं' यह निश्चयकर संघ समुदाय को लेकर पोलासपुर आया और अपने स्थान पर उतरा। वहां पर वस्त्र तथा पात्रादि उपकरणोंको रखकर जहां सद्दालपुत्र था वहां आया। गोशालेको आता देख सद्दालपुत्रने उसे कुछ मान-सन्मान नहीं दिया न नमस्कार किया, सामने देखा तक नहीं और न बोला ही ॥५५॥ गोशाला आदर सत्कार न पाकर पीढ, १फलग, शय्या, संस्तारक और औषध पानेके लालचसे श्रमण भगवान् महावीरके गुण गाता हुआ बोला—'अहो सद्दालपुत्र श्रावक! यहां एक महात्मा आये थे?' सद्दालपुत्रने कहा—'महामाहण' (किसी जीवको न मारो ऐसा उपदेश करने वाले पुरुष) श्रमण भगवान् महावीर पधारे थे। आप जानते हैं, उनको 'महामाहण' कहनेका कारण क्या है?' गोशाला बोला–'वे उत्पन्नज्ञान, दर्शन, और चारित्रके धनी है। चौंसठ इन्द्रोंके पूजनीय हैं और वन्दनीय हैं।

महागोप, महासार्थवाह, महाधर्मकथाके कहने वाले और महानिर्यामक* श्रमण भगवान् महावीर हैं।' सद्दालपुत्रने पूछा—'यह किस तरह?' गोशालेने कहा—'अहो देवानुप्रिय! संसार रूप जंगलमें दुःख पाते हुए जीवोंकी रक्षा करते हैं इसलिए महागोप हैं। हिंसक जीवोंसे भय पाये हुए जीवोंको इधर उधर संसार रूपी वनमें भटकने और मार्गभ्रष्ट नहीं होने देते, इसलिए महासार्थवाह हैं। संसारमें चार गतिमें भ्रमण करने वाले सब जीव सुन सकें ऐसी धर्मकथा करते है, इसलिए महा धर्मकथाके कहने वाले हैं। संसारमें डूबते हुए जीवोंको धर्मरूपी नौकामें बिठाकर पार उतारने वाले हैं, अतएव महानिर्यामक हैं' ॥५६॥

सद्दालपुत्र यह सुनकर बोलने लगा— "मेरे धर्माचार्य ऐसे विज्ञानवंत और समर्थ हैं क्या तुम उनके साथ वादविवाद करोगे?" गोशालेने कहा—"अहो सद्दालपुत्र! बलवान्, कलावान् और चढ़ती वयका जवान पुरुष शूकर, मुर्गा, तीतर आदि जानवरों को हाथ पैर, पूंछ कान आदि जहां से पकड़ेगा वहींसे वे जानवर व्याकुल और पराधीन हो जायंगे अर्थात् छूट नहीं सकेंगे। वैसे ही महावीर स्वामी जो जो प्रश्न पूछेंगे उनका उत्तर मैं नहीं दे सकता। इसलिये मैं विवाद नहीं कर सकता" ॥५७॥ सद्दालपुत्र बोला–"हे देवानुप्रिय! तुमने मेरे धर्मगुरु महावीर स्वामीका गुण कीर्तन किया, इसलिये (धर्मके लिये नहीं) मैं तुम्हें पाडिहारिय-प्रातिहारिक वापिस देने योग्य वस्तु,पीढ,फलक,शय्या, संस्तारक आदिका निमंत्रण देता हूं। इसलिये मेरी-कुम्हारकी दुकानसे ऊपर कही वस्तुएं लेते हुए विचरो और उपसंपदा-उपसम्पद (ज्ञानादि पानेके लिए दूसरे आचार्यादिके पास जानेका संव्यवहार) लेकर वहां सुखसे विराजो।" ऐसा कहनेसे गोशाला सद्दालपुत्र की दुकान से ऊपर की वस्तुएं लेता हुआ विचरने लगा। परन्तु सद्दालपुत्र गोशाले के विनीत वचनों से चलायमान नहीं हुआ। क्षुब्ध भी नहीं हुआ और न उसे कुछ शंका

१ तख्त-चौकी (Board Table)। *निर्यामक—कर्णधार।

कुशंका या आशंका ही उत्पन्न हुई। इससे गोशाला हार कर, लज्जित होकर पोलासपुरसे निकल कर*जनपद देश में विहार करने लगा ॥५८॥ सद्दालपुत्रको शीलादि व्रत पालते हुए चौदह वर्ष बीत गये। पन्द्रहवें वर्ष धर्मकी प्रज्ञप्ति लेकर पौषधशालामें बैठा। ऐसे समय मध्य रात्रिमें एक देवता हाथमें कमल सी उजली और विजली सी चमकती हुई तलवार लेकर सामने आया और चुलणीपियाकी तरह कष्ट देने लगा। एक एक पुत्रके नौ नौ शोले किये। तीनों पुत्रोंको मारा, लहू और मांस सद्दालपुत्रके ऊपर छिड़का। तथापि सद्दाल-पुत्र धर्मसे नहीं डिगा। इससे वह चौथी वार कहने लगा—"यदि तू इस व्रत को नहीं छोड़ेगा तो अभी तेरी स्त्री अग्निमित्रा को तेरे सामने ही लाकर उसे मारूंगा और उसकी देह के टुकड़े-टुकड़े वनाकर उसके रक्त-मांस से तेरे शरीर को सींचूंगा। जिससे तू आर्तध्यान रौद्रध्यान से मरेगा।" यों तीन वार कहा। सद्दालपुत्र को चुल्लणीपिया की तरह सुनकर संकल्प उठा और देव को पकड़ने गया तो देव आकाश मार्ग से रफूचक्कर हो गया और सद्दालपुत्र के हाथों में थंभा आ गया, वह उससे चिमट गया। आगे सारा अधिकार चुलणीपिया की तरह जानना। विशेष यह कि मर कर अरुणव्यय नामक विमान में देवता हुआ। वहां से महाविदेह क्षेत्र-से मोक्ष जायेगा ॥५६॥

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

आठवां अध्ययन--महाशतक

···उस समय राजगृही नामक नगरी थी। उसके वाहर गुणशिलक नामक उद्यान था। वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था। वहीं महाशतक नामका एक गाथापति रहता था। आठ कोटी सुवर्ण जमीन में गड़ा था। आठ कोटी से व्यापार होता था और आठ कोटी धन से घर की शोभा वढ़ाये हुए था। ८ गोकुल का धनी था, जिसमें ८०००० गायें थीं। उसके रेवती आदि तेरह स्त्रियां थीं। उस रेवती के पीहर से आठ कोटी सुवर्ण और आठ गोकुल आये थे। और वारह स्त्रियों के पीहर से भी एक-एक गोकुल और एक-एक कोटी सुवर्ण आया था और वह सम्पत्ति उन स्त्रियों की थी ॥६०॥

उस समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् उनकी वन्दना करने गई। जैसे आनंद श्रावक वन्दना करने गये थे वैसे ही महाशतक भी गया। वहां भगवान् को वन्दना नमस्कार कर आनंद की तरह श्रावक धर्म अंगीकार

*जनपद=राज्य Kingdom Country.

किया। इतना विशेष कि आठ हिरण्य कोटी भाजन और आठ व्रज गोकुल और रेवती आदि तेरह स्त्रियों के अतिरिक्त सब भोग्य पदार्थों का त्याग किया।······॥६१॥

एक समय गाथापत्नी रेवती को आधी रातमें ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि-मेरी बारह सौत (सहपत्नी) हैं, मैं महाशतकके साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार प्रधान भोग नहीं भोग सकती। इसलिये यदि बारह सौतोंको अग्नि, शस्त्र या विष द्वारा मार डाला जाय, तो इनका बारह कोटी स्वर्ण और बारह गोकुल मुझे मिल जायं तो मैं बड़े चैन से मनुष्य के भोग भोगूं। ऐसा सोच कर सौतोंको मारनेका प्रस्ताव, छलछिद्र, समय और एकान्त स्थल आदि ढूंढ़ने लगी। कुछ दिनोंके बाद एकांत स्थल और समय मिलने पर छः को शस्त्र और छः को विष द्वारा समाप्त किया तथा उनके धन और गउओंके वैभव की मालिक बन बैठी और संसारके भोग भोगने लगी। उसे अभक्ष्य और अपेय का कोई विवेक न था॥६२॥ एक बार श्रेणिक राजा ने राजगृही में ढिंढोरा फिरवाया कि कोई भी व्यक्ति प्राणीमात्र की हिंसा न करे। इस कठिनाईके प्रस्तुत होने पर गाथापत्नी रेवती अपने पीहरसे मिले हुए गोकुलसे रोज दो बछड़े मंगवा लेती थी॥६३॥

महाशतक गाथापति १४ वर्ष पर्यन्त शीलादि व्रत पाल १५ वें वर्षमें बड़े पुत्रको सब कार भार सौंप कर प्रौषधशालामें धर्मप्रज्ञप्ति अंगीकार कर विचरने लगे। एक दिन रेवती महामदमें उन्मत्त होकर झूमती हुई खुले बाल रखकर मोहक शृंगार सजकर प्रौषधशालामें महाशतकके पास आई। तथा अनावृत अंगोपांगसे हाव भाव बताकर कहने लगी-"पतिदेव महाशतक! आप प्रौषधशालाको ही धर्म, पुण्य और स्वर्गका साधन समझकर मेरे साथ वैषयिक सुख नहीं भोगते।" इस प्रकार उसने तीन बार कहा परन्तु म० श्रावक ने उसकी ओर देखा तक नहीं। आदर सत्कार नहीं किया। चुपचाप धर्मध्यानमें विचरता रहा। इससे रेवती उसके दृढ़ ध्यान के सम्मुख हार मान गई और उदास होकर यथास्थान चली गई॥६४॥

तत्पश्चात् महाशतक श्रावक सूत्रविधिसे ११ प्रतिमा पालते हुए विचरने लगे। इससे उनका शरीर लुहारकी खाली धौंकनी सा निर्मांस और पोला हो गया। एक समय रातमें धर्म-जागरिका जागते हुए उन्हें ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि जैसे आनन्द श्रावक ने सब परिग्रह और चार प्रकार के आहार छोड़ कर संथारा किया वैसे ही मैं भी कल प्रातःकाल करूंगा। ऐसा विचार कर उसीके अनुकूल धर्मध्यानमें विचरते हुए, शुभ परिणामपूर्वक ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम हो जानेसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे पूर्व और दक्षिण दिशामें लवणसमुद्र तक हजार योजनका क्षेत्र दिखने लगा। पश्चिम और उत्तर दिशामें चुल्लहिमवंत

और वर्षधर पर्वत तक तथा नीचे रत्नप्रभा नामकी पहली नरकका लोलुयच्चुय नामका पाथड़ा दिखाई देने लगा ॥६५॥

एक वार रेवती गाथापत्नी पहले की भांति प्रौषधशालामें जाकर महाशतक श्रावकसे बार-बार मोहक वचन कहकर भोग की वांछा करने लगी। इससे महाशतक को क्रोध कषायका आवेश आ गया और उसने कहा कि–"अरे अप्रार्थित मरण चाहने वाली रेवती! तू अवश्य सात दिनके भीतर अलस रोगसे मर जायगी और आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करती हुई असमाधि-मरण पायेगी। फिर रत्नप्रभा नरकमें लोलुयच्चुय पाथड़ेमें पड़ कर चौरासी हजार वर्ष तक नारकीय दुःख भोगेगी।" ऐसे वचन सुनकर रेवती डरी और भाग कर घरमें आ घुसी। इसके बाद सात अहोरात्रिमें वह अलस रोगसे आर्तध्यान द्वारा मर कर ८४००० वर्ष की आयुसे रत्नप्रभा नरकके लोलुयच्चुय नामक पाथड़ेमें उत्पन्न हुई ॥६६॥

उस समय वहां श्रमण भगवान् महावीर पधारे। उन्हें वन्दना करनेको परिषद् गई। धर्मोपदेश सुनकर सब लौट गये। इसके बाद श्रमण भगवान् महावीरने गौतमसे कहा–"हे गौतम! इस राजगृहीमें मेरा अंतेवासी (शिष्य) महाशतक श्रावक है। पौषधशालामें अन्तिम समयकी संलेखना कर धर्मध्यानमें विचरते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाने पर उसने अपनी स्त्री रेवतीके मोहक वचनोंसे क्रुद्ध होकर कहा है कि–'रेवती गाथापत्नी! तू सात अहोरात्रिमें अलस रोग उत्पन्न होनेसे मरेगी और रत्नप्रभा नरकमें उत्पन्न होगी।' हे गौतम! श्रमणोपासक श्रावकको आखिरी संलेखनामें सच्ची बात कही जाने पर भी अमनोज्ञ और कठोर वचन कहना योग्य नहीं है।* तुम महाशतकको जाकर कहो कि इस विषयकी आलोचना करे और प्रायश्चित ले।" भगवान्की आज्ञा पाकर गौतम स्वामी राजगृहीके बीचोंबीच होकर महाशतकके पास गये और भगवान्का संदेश कह सुनाया। महाशतकने गौतम स्वामीके वचनको तथास्तु कह कर आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और प्रायश्चित्त लिया। गौतम स्वामी भगवान् महा-

---

*यहां पर हमें 'नो खलु कप्पइ गोयमा! समणोवासगस्स अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं वागरणेहिं' आदि पढ़ते-पढ़ते मनुस्मृति का श्लोक याद आता है। पाठक मिलावें कि अप्पिएहिंसे कितनी समानता है—
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः॥ मनुस्मृति अ० ४ श्लोक १३८॥

सत्य बोलो और प्रिय बोलो। उस सत्य को भी न कहो जो प्रिय नहीं है। उस प्रियको भी न बोलो जो सच नहीं है। यही सनातन धर्म है। पाठकगण! शास्त्रकारोंके वचन कैसे एक दूसरेसे मिलते हैं यह इस समन्वयसे कुछ-कुछ ध्यानमें आ सकता है। ढूंढ़ने वालोंको ऐसी बहुत सी बातें मिल सकती हैं।

वीरके पास आ गये। वन्दना नमस्कार किया, १७ भेदसे संयम और १२ भेदसे तप करते विचरने लगे। इसके बाद भगवान् महावीर जनपद देशमें विहार करते हुए विचरने लगे ॥६७॥

महाशतकने २० वर्ष तक श्रावक धर्म पाला। ११ पडिमाओंकी साधना की। फिर एक मासकी संलेखना कर अपनी आत्माको समभावसे समृद्ध किया। साठ भक्त निराहार रहते हुए अनशन किया। कृत पापोंकी आलोचना की। समाधिमान् होकर कालके समय काल कर सुधर्म देवलोकमें अरुणावतंसक विमान में चार पल्योपमकी स्थितिका देव हुआ। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६८॥

सार–उत्तरके पहाड़ोंमें विच्छू जड़ीके छू जाने पर वैसी ही लहर शरीरमें दौड़ती है। परन्तु उसके पास ही पालक जड़ी भी होती है जिसके प्रभावसे उसका असर मिट जाता है। अच्छी बुरी दो वस्तुयें प्रकृतिके गर्भमें भी साथ हैं। ऐसे ही महाशतकका जीवन हमें साथ रहना सिखाता है, कि साथीका विपरीत आचरण हो तो भी उससे घृणा न करे, समतासे निभाये। रेवती-अभक्ष्यभक्षिका होने पर भी उन्होंने उसकी उपेक्षा न की और दांपत्य-जीवनमें क्षति न आने दी। धर्म-दीक्षाकी प्रेरणा उन्होंने की होगी पर उसने न माना होगा, फिर भी धर्मकी बावत उससे जवर्दस्ती नहीं की। वृक्षके ऊपर अमरवेल छा जाने पर भी वह अपनी खुराक उसे देता है। इनका जीवन भी हमें दो विरोधी तत्वोंमें मिलकर रहना बताता है।

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

नौवां अध्ययन—नंदिनीपिय

······उस समय सावत्थी नाम की नगरी थी। उसके बाहर कोष्ठक नामक उद्यान था। वहां राजा जितशत्रु और नंदिनीपिय गाथापति था। चार कोटी सुवर्ण भूमिमें गड़ा था। चार कोटीसे व्यापार चलता था और चार कोटीका सामान था। चार गोकुल का धनी था। उसकी स्त्रीका नाम था अश्विनी।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे। उन्हें वन्दना करने परिषद् गई। नंदिनीपिय गाथापति भी गया। भगवानका उपदेश सुन आनन्द की तरह श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कर लौटा। परिषद् भी लौटी। इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर जनपद देश में विहार करते हुए विचरने लगे।

नन्दिनीपिय श्रावक धर्म स्वीकार कर जीवदयाका आचार पालता हुआ विचरने लगा। चौदह वर्ष तक बहुत शीलादि का समाचरण करता रहा। पन्द्रहवें वर्षमें बड़े पुत्रको घरका सब कार्यभार सौंप दिया। धर्मकी उपसंपदा

लेकर २० वर्ष तक साधना पर्यायका पालन किया। शुभ ध्यानसे अरुणाग विमानमें देव उत्पन्न हुआ। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६९॥

॥ नौवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

दशम अध्ययन—सालिहीपिय

.........उस समय सावत्थी नगरी थी। उसके वाहर कोष्ठक वन था और वहां का जितशत्रु राजा था। सालिहीपिय गाथापति था। चार कोटी सुवर्ण उसके भूमिमें गड़ा था। चार कोटी से व्यापार होता था और चार कोटि का सामान था। चार गोकुलका धनी था। उसकी स्त्रीका नाम फाल्गुनी था।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे। उनके पास सालिहीपिय (सालिनीपिय) ने आनन्दकी तरह गृहस्थ धर्म अंगीकार किया। कामदेवकी तरह वड़े पुत्रको घरवारका काम देकर उपसंपदा लेकर प्रौषधशालामें महावीर स्वामी चरम तीर्थंकरकी धर्मप्रतिज्ञा लेकर वेठा और धर्मध्यानमें विचरने लगा। इतना विशेप कि उपसर्ग रहित श्रावककी ग्यारह प्रतिमा भली भांति परिवहन कीं। शेप सव कामदेवकी तरह जानना। सुधर्म देवलोकमें अरुणकील विमानमें चार पल्योपम की स्थितिसे देव उत्पन्न हुआ। वहांसे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥७०॥

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

—o—

दसों श्रावकोंको पन्द्रहवें वर्ष प्रतिमा साधन करने की चिन्ता हुई और दसों श्रावकोंने २० वर्ष तक श्रावक पर्याय पालन किया। हे जम्बू !... उपासकदशांग का यह अर्थ कहा है। सप्तमांग उपासकदशा का एक श्रुतस्कंध है, दस अध्ययन एक जैसे दस दिनों में उपदिष्ट होते हैं......॥७१॥

॥ उपासकदशांग समाप्त ॥

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

श्रीअन्तकृतदशांगसूत्र

प्रथम वर्ग

इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र (उववाईसूत्र) में दिया गया है, अतः वहां से जान लें। उस चम्पा नगरी के उत्तरपूर्व दिशाभाग में अर्थात् ईशानकोणमें पूर्णभद्र नामका उद्यान था। उस का भी विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जानें।

उस चम्पा नगरी में कोणिक नामका राजा राज्य करता था, वह महाहिमवान्, महामलय, महेन्द्र और मेरु पर्वत के समान प्रभावशाली था, अर्थात् जिस प्रकार महाहिमवान् पर्वत लोक की मर्यादा करता है, उसी प्रकार वह भी प्रजा के लिए मर्यादा—नियम बांधने वाला था। जिस प्रकार महामलय पर्वतका सुगन्धित पवन सर्वत्र फैलता है, उसी प्रकार उसकी कीर्ति और यश चारों ओर फैला हुआ था। जिस प्रकार मेरु पर्वत अडिग है, उसी प्रकार वह भी अपनी प्रतिज्ञा एवं कर्त्तव्य पालने में दृढ़ एवं अडिग था। जिस प्रकार शक्रेन्द्र देवों में महान् है, उसी प्रकार वह भी मनुष्यों में प्रधान था। उस कोणिक राजा का भी विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।

उस काल उस समय में स्थविर आर्य सुधर्मा स्वामी पांच सौ अनगारों (साधुओं)के साथ तीर्थंकर भगवान् की परंपरा के अनुसार विचरते हुए एवं ग्रामानुग्राम अर्थात् एक ग्राम से दूसरे ग्राम अनुक्रम से विहार करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक उद्यान में पधारे। आर्य सुधर्मा स्वामी के आगमन को सुनकर परिषदा अर्थात् नगर निवासी लोगों का समुदाय रूप सभा, उन्हें वन्दन करने के लिए एवं धर्मकथा सुनने के लिए अपने अपने घर से निकल कर वहां पहुंची और वन्दन करके एवं धर्मकथा सुनकर वापस लौट गई।

उस काल, उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी की सेवामें सदा समीप रहने वाले, काश्यपगोत्रीय आर्य जम्बूस्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से इस प्रकार पूछा

कि हे भगवन् ! (अपने शासनकी अपेक्षा से) धर्मकी आदि करने वाले, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, रूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् सिद्धगति (मुक्ति) को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने "उपासकदशा" नामक सातवें अंग में आनन्द कामदेव आदि दस उपासकों (श्रावकों) का वर्णन किया है। वह मैंने आपके मुखारविन्द से सुना। अब कृपाकर यह फरमाइये कि 'अन्तकृतदशा' नामक आठवें अंगमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किस विषय का प्रतिपादन किया है ?

जम्बूस्वामीके उपर्युक्त प्रश्नका उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मास्वामी फ़रमाते हैं कि हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने आठवें अंग अन्तकृतदशा सूत्र के आठ वर्ग फरमाये हैं। हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग में आठ वर्गों का प्रतिपादन किया है, उनमें प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग के प्रथम वर्गमें दस अध्ययन फ़रमाये हैं। वे इस प्रकार हैं—१ गौतम, २ समुद्र, ३ सागर, ४ गंभीर, ५ स्थिमित, ६ अचल, ७ कम्पिल, ८ अक्षोभ, ९ प्रसेनजित, और १० विष्णुकुमार। श्री जम्बू स्वामी फिर प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग के प्रथम वर्ग में दस अध्ययन फरमाये हैं, उनमें से प्रथम अध्ययन में क्या भाव फरमाये हैं ?

श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंगके प्रथम वर्गके पहले अध्ययनमें ये भाव फरमाये हैं—हे जम्बू ! इस अवसर्पिणी कालके चौथे आरेमें जब २२वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी भूमण्डल पर विचरते थे, उस समयमें सौराष्ट्र देशकी राजधानी द्वारिका नामकी नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी और नौ योजनकी चौड़ी थी। वह धनपति अर्थात् वैश्रमण (कुबेर) के अत्यन्त बुद्धि कौशल द्वारा बनाई गई थी। जो स्वर्णके परकोटेसे घिरी हुई थी ! इन्द्र नीलमणि, वैडूर्य मणि, पद्मराग मणि आदि नाना प्रकार की पांच वर्णके मणियोंसे जड़े हुए कपिशीर्षक अर्थात् कंगूरों से सुसज्जित, शोभनीय एवं सुरम्य थी। जिसकी उपमा अलकापुरी अर्थात् कुबेरकी नगरीसे दी जाती थी। उस नगरीके निवासी सुखी होनेसे प्रमुदित, हर्षित और क्रीड़ा करने वाले थे, इसलिए वह नगरी भी प्रमुदित और क्रीड़ाकारक थी। एवं आमोद—प्रमोद और क्रीड़ाकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण थी। अतएव वह प्रत्यक्ष देवलोक सरीखी थी। वह प्रासादीय अर्थात् दर्शकों के मनको भी प्रसन्न करने वाली और दर्शनीय थी। वह अभिरूप अर्थात् प्रतिक्षण नवीन २ रूप वाली और प्रतिरूप अर्थात्

सर्वोत्तम—असाधारण रूप वाली सर्वांग—सौन्दर्यपूर्ण देदीप्यमान द्वारिका नगरी थी ।

उस द्वारिका नगरीके वाहर उत्तरपूर्वमें अर्थात् ईशानकोणमें रैवतक नामक पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दन वन नामक उद्यान था, जिसका पूरा वर्णन अन्य सूत्रोंसे जान लेना चाहिए। उस द्वारिका नगरीमें कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। जिस प्रकार महाहिमवान् पर्वत क्षेत्रों की मर्यादा करता है, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव लोकमर्यादाको वांधने वाले और लोकमर्यादाके पालक थे।

द्वारिका नगरीमें समुद्रविजय आदि दस दशार्ह और वलदेव आदि पांच महावीर थे। प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार थे। शत्रुओंसे कभी पराजित न हो सकने वाले साम्ब आदि साठ हजार शूरवीर थे। महासेन आदि सेनापतियों की अधीनता में रहने वाला छप्पन हजार वलवर्ग अर्थात् सैनिक दल था। वीरसेन आदि कार्यकुशल इक्कीस हजार वीर थे। आधीनता में रहने वाले उग्रसेन आदि सोलह-हजार राजा थे। रुक्मिणी आदि कई रानियां थीं। आज्ञामें रहने वाले और भी वहुतसे ऐश्वर्यशाली नागरिक, नगररक्षक, सीमान्त राजा, सेठ, सेनापति और सार्थवाह आदि थे।

ऐसे परम प्रतापी कृष्ण वासुदेव द्वारिका से लेकर क्षेत्रकी मर्यादा करने वाले वैताढ्य पर्वत पर्यन्त अर्द्ध भरत (भरत क्षेत्र के तीन खंड) का एकछत्र राज्य करते थे। उस द्वारिका नगरीमें महाहिमवान् मन्दर आदि पर्वतोंके समान स्थिर एवं मर्यादापालक तथा वलशाली अंधकवृष्णि नाम के राजा थे। स्त्रियोंके सभी लक्षणों से युक्त धारिणी नामकी उनके रानी थी। वह धारिणी रानी किसी समयमें पुण्यात्माओंके शयन करने योग्य कोमलता आदि गुणोंसे युक्त शय्या पर सोई हुई थी। उसने उस समय एक शुभ स्वप्न देखा।...देखकर रानी जागृत हुई। फिर राजाके पास जाकर उसने अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाया। राजा ने स्वप्न का फल वताया, यथासमय रानी ने एक सुन्दर वालकको जन्म दिया। उसका वाल्यकाल वहुत सुखपूर्वक वीता, उसने गणित, लेख आदि ७२ कला-ओंको सीखा, उसके वाद जवान अवस्था होने पर उसका विवाह हुआ। उसका महल वहुत सुन्दर था और उसकी भोगोपभोग सामग्रियां चित्ताकर्षक थीं। इन सव वातोंका विस्तृत वर्णन भगवती सूत्रमें दिए गए महावलकुमारके वर्णनके समान समझें। केवल इतना अन्तर है कि इनका नाम 'गौतम' था। माता-पिता ने एक ही दिन में सुन्दर आठ राजकन्याओंके साथ इनका विवाह करवाया। विवाहमें ८ हिरण्य(चांदी)कोटि, ८ सुवर्णकोटि आदि आठ-आठ वस्तुएं उन्हें दहेज में मिलीं।

उस काल उस समयमें अर्थात् इस अवसर्पिणी कालके चौथे आरेमें अपने शासनकी अपेक्षासे धर्मकी आदि (प्रारम्भ) करने वाले, २२ वें तीर्थंकर भगवान्

अरिष्टनेमि तीर्थंकर-परम्परासे विचरते हुए द्वारिका नगरीके वाहर नन्दनवन नामक उद्यानमें पधारे। वहां भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चारों प्रकारके देव तथा मनुष्य और तिर्यञ्च भगवान्की धर्मकथा सुननेके लिए आये। कृष्ण वासुदेव भी अपने महलसे निकलकर भगवान्के पास धर्म श्रवण करनेके लिए पहुंचे। गौतमकुमार भी ज्ञातासूत्रके प्रथम अध्ययनमें वर्णित मेघकुमार की तरह धर्मकथा सुननेके लिये अपने महलसे निकले। धर्मकथा सुनकर और उसे हृदयमें धारण कर गौतमकुमारने भगवान्से प्रार्थना की कि हे भगवन्! मैं अपने माता पितासे पूछकर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूं। इसके पश्चात् गौतमके अनगार होने तक का वृत्तान्त ज्ञातासूत्रके प्रथम अध्ययनमें वर्णित मेघकुमारके समान समझें। जैसे मेघकुमार वैराग्यको प्राप्त होकर माता-पिताके वहुत समझाने पर भी भोगविलासकी समस्त सामग्रीको छोड़कर अनगार(साधु)वन गए, उसी भांति गौतमकुमार भी अनगार वन गए। अनगार वननेके वाद ईर्यासमिति, भाषासमिति आदिसे लेकर इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे रखकर अर्थात् भगवान् के कहे हुए प्रवचनोंका पालन करते हुए विचरने लगे। उसके पश्चात् गौतम अनगार ने किसी एक समयमें अरिहन्त भगवान् अरिष्टनेमिके गीतार्थ स्थविर साधुओंके पास सावद्ययोगपरिवर्जन निरवद्ययोगसेवन रूप सामायिक आदि ६ आवश्यक तथा ११ अंगोंका अध्ययन किया। अध्ययन करके वहुतसे चतुर्थभक्त (उपवास), षष्ठभक्त(वेला), अष्टमभक्त (तेला),दशमभक्त (चौला),द्वादशभक्त (पंचोला), अर्धमास और मासखमण आदि तप द्वारा अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। तदनन्तर एक दिन अरिहन्त भगवान् अरिष्टनेमिने द्वारिका नगरीके नन्दनवन उद्यानसे विहार कर दिया और धर्मोपदेश करते हुए देश-देशान्तरमें विचरण करने लगे।

उसके पश्चात् एक दिन गौतम अनगार जहां अरिहन्त अरिष्टनेमि थे, वहां आये और भगवान् अरिष्टनेमि को तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। आदक्षिण प्रदक्षिणा करके गौतमकुमारने भगवान्को वन्दना नमस्कार किया और वे इस प्रकार निवेदन करने लगे–हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं मासिकी भिक्खुपडिमा (भिक्षु-प्रतिमा) स्वीकार करूं। भगवान्ने फरमाया–"जैसे सुख हो वैसे करो।" भगवान् की आज्ञा पाकर गौतम अनगारने भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ में वर्णित स्कन्दक मुनिके समान वारह भिक्षुप्रतिमाओंका सम्यक् आराधन किया। उसने स्कन्दक मुनिके समान ही गुणरत्न-संवत्सर नामक तपका भी पूर्ण रूपसे आराधन किया और जिस प्रकार स्कन्दक मुनिने विचार किया और जिस प्रकार भगवान्से पूछा, उसी भांति गौतम अनगारने भी विचार किया और

भगवान् से पूछा। जिस प्रकार स्कन्दक मुनि विपुल पर्वत पर गये, उसी भांति गौतम मुनि भी स्थविरोंके साथ शत्रुञ्जय पर्वत पर गये और बारह वर्ष की दीक्षा-पर्यायका पालन कर मासिक संलेखना के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए ॥१॥

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे कहते हैं कि-आयुष्मन् जम्बू ! सिद्धगति नामक स्थानको प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अंतगड-दशांग नामक आठवें अंगके प्रथम वर्गके प्रथम अध्ययनमें पूर्वोक्त प्रकार गौतम-कुमार की मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है।

जिस प्रकार गौतमकुमारके प्रथम अध्ययन का वर्णन किया है, उसी प्रकार समुद्रकुमार आदिके शेष नौ अध्ययनोंका भी वर्णन जान लें। कुमारोंके नाम इस प्रकार हैं—(२) समुद्रकुमार, (३) सागरकुमार, (४) गंभीरकुमार, (५) स्तिमितकुमार, (६) अचलकुमार, (७) कम्पिलकुमार, (८) अक्षोभकुमार, (९) प्रसेनजितकुमार, (१०) विष्णुकुमार। इन सबके पिताका नाम अन्धकवृष्णि और माताका नाम धारिणी था। इसके अतिरिक्त इन नौ अध्ययनोंमें कोई भेद नहीं है। सबका एक समान वर्णन है। हे जम्बू ! इस प्रकार प्रथम वर्गके दस अध्ययनोंका प्रतिपादन किया गया है ॥२॥

॥ प्रथम वर्ग समाप्त ॥

द्वितीय वर्ग

जम्बू स्वामी अपने गुरु श्री सुधर्मा स्वामीसे पूछते हैं कि हे भगवन् ! सिद्धगति नामक स्थानको प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने प्रथमवर्गमें गौतमकुमार आदि दस कुमारोंके मोक्षप्राप्ति पर्यन्त चरित्र का वर्णन किया है। उसको मैंने आपके श्रीमुखसे सुना है। उसके पश्चात् अंतगडदशा नामक आठवें अंगके दूसरे वर्गमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने कितने अध्ययनोंका प्रतिपादन किया है ? श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दूसरे वर्गमें आठ अध्ययनोंका वर्णन किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) अक्षोभ, (२) सागर, (३) समुद्र, (४) हिमवान्, (५) अचल, (६) धरण, (७) पूरण, (८) अभिचन्द।

जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि विचरते थे, उस समय द्वारिका नगरीमें अन्धकवृष्णि नामके एक राजा रहते थे। उनके धारिणी नाम की रानी थी। उनके अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण और अभिचन्द नामके आठ पुत्र थे। जैसे प्रथम वर्गमें गौतमादि अध्ययन हैं, उसी प्रकार अक्षोभ आदि आठ अध्ययनोंको भी जानना चाहिये। गौतम आदि दस कुमारोंके समान

इन्होंने भी गुणरत्न संवत्सर नामक तप किया। सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय का पालन किया। शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अन्तगड़दशा नामक आठवें अंगके दूसरे वर्गमें अक्षोभ आदि आठ अध्ययनोंका प्रतिपादन किया है ॥३॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

तृतीय वर्ग

जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं कि हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा नामक आठवें अंगके तीसरे वर्गमें क्या भाव फरमाये हैं? श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जंम्बू! श्रमण भ० महावीरस्वामी ने तीसरे वर्गमें तेरह अध्ययनोंका वर्णन किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) अणीयसेन, (२) अनन्तसेन, (३) अजितसेन, (४) अनिहतरिपु, (५) देवसेन, (६) शत्रुसेन, (७) सारण, (८) गज, (९) सुमुख, (१०) दुर्मुख, (११) कूपक, (१२) दारुक, (१३) अनादृष्टि।

हे भगवन्! इस तीसरे वर्गमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तेरह अध्ययनोंका वर्णन किया है, तो प्रथम अध्ययनमें किस भावका प्रतिपादन किया है? हे जम्बू! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नामका नगर था, वह नगर उत्तम नगरोंके सभी गुणोंसे युक्त था। वह नगर धन धान्य आदिसे परिपूर्ण था। उस भद्दिलपुर नगरके बाहर ईशान कोण में उद्यानके सभी गुणोंसे युक्त श्रीवन नामका उद्यान था। उस भद्दिलपुरमें जितशत्रु नामका राजा राज्य करता था। वहां नाग नाम का एक गाथापति रहता था। वह अतीव समृद्धिशाली और अपरिभूत(जिसका कोई भी पराभव-अपमान नहीं कर सकता हो) था। उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। जो अत्यन्त सुकुमाल और सुरूप थी। उस नाग गाथापति का पुत्र एवं सुलसा का अंगजात अणीयसेन नामका एक पुत्र था। जिसके हाथ पैर अत्यन्त सुकुमाल थे। और वह अत्यन्त सुरूप था। १ क्षीरधात्री (दूध पिलाने वाली धायमाता), २ मज्जनधात्री (स्नान कराने वाली धाय), ३ मंडनधात्री(वस्त्र अलंकार आदि पहनाने वाली धाय), ४ क्रीडनधात्री (क्रीडा कराने वाली), ५ अंकधात्री (गोदमें रखने वाली)। इन पांच प्रकार की धायमाताओंसे दृढ़प्रतिज्ञकुमारके समान उसकी प्रतिपालना की जाती थी। जिस प्रकार पर्वत की गुफामें मनोहर चम्पकलता सुरक्षित रूपसे बढ़ती है उसी तरहसे अणीयसेन कुमार सुरक्षित रूपसे सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

उसके पश्चात् जब अणीयसेन कुमारकी उम्र ८ वर्षकी हुई। तब उसके माता-पिता ने उसे कलाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए कलाचार्यके पास भेजा। थोड़े ही समयमें वह सभी कलाओंमें पारंगत हो गया और युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उस अणीयसेन कुमारको यौवन अवस्थासे युक्त देख कर उसके माता-पिता ने समान वय, समान त्वचा और समान लावण्य, रूप, यौवन एवं सुशीलता आदि गुणोंसे युक्त अपने सदृश कुलोंसे लाई हुई इभ्य सेठों की ३२ कन्याओंके साथ एक ही दिन में उसका विवाह कर दिया।

उसके अनन्तर नाग गाथापति ने सोना, चांदी आदि का ३२ बत्तीस करोड़ धन अणीयसेन कुमारके लिए प्रीतिदान दिया, जैसे कि महाबलकुमारके लिए उसके पिताने दिया था। अब अणीयकुमार भी महाबलकुमार की तरह ऊपरी महलमें निरन्तर बजती हुई मृदंगों के द्वारा पूर्व पुण्योपार्जित मनुष्य सम्बंधी भोग भोगते हुए सुखपूर्वक समय बिताता था।

उस काल उस समयमें अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् उस भद्दिलपुर नगरके बाहर श्रीवन नामक उद्यान में पधारे और वहां अपनी मर्यादाके अनुसार अवग्रह लेकर विचरने लगे। जन समुदाय रूप परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए अपने अपने घरसे निकली। उस जन समुदायके कोलाहलको सुनकर अणीयसेन कुमार ने भी गौतमकुमार के समान अपने महलसे निकलकर भगवान्के पास जाकर धर्म-कथा सुनी और माता पिताकी आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली। लेकिन गौतमकुमार के अध्ययनसे इसमें इतनी विशेषता है कि इन्होंने सामायिक आदि १४ पूर्वों का अध्ययन किया। २० वर्ष दीक्षा-पर्यायका पालन किया। उसके अनन्तर शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर एक मासकी संलेखना करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। शेष सारा अधिकार गौतमकुमारके समान जानें।

श्री सुधर्मास्वामी फ़रमाते हैं कि-हे जम्बू! सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगड़दशा नामके ८ वें अंग के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में अणीयसेन कुमारके मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त चरित्र का उपर्युक्त रूप से वर्णन किया है।

।। तीसरे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

जैसा अणीयकुमार का अध्ययन है उसी प्रकार अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन और शत्रुसेन नामक अध्ययनोंका वर्णन जानना चाहिए। इन छहों अध्ययनों का वर्णन एक समान है, इनके माता पिता एक ही थे। अर्थात् ये छहों कुमार नागगाथापति के पुत्र एवं सुलसा के अंगजात थे, ३२ करोड़ संपत् दानमें मिली थी। २० वर्ष दीक्षापर्याय पाली। १४ पूर्वो का अध्ययन किया। एक मास की संलेखना करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए ।।४।।

।। छह अध्ययन समाप्त ।।

"उक्खेवो" अर्थात् उत्क्षेप का अर्थ है—प्रारम्भ वाक्य, अर्थात् जिस प्रकार सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी के प्रश्नोत्तर के रूप में प्रथम अध्ययन प्रारंभ हुआ है, उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिए। जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन्! सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगडदशा नामक ८वें अंग के तीसरे वर्ग के छठे अध्ययन का जो भाव फरमाया वह मैंने आपके मुखारविन्द से सुना। ७वें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीरने क्या भाव फरमाये हैं? सो कृपा करके कहिए। श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ७वें अध्ययन में ये भाव फरमाए हैं।*

हे जम्बू! उस काल उस समयमें द्वारिका नाम की नगरी थी, वहां वसुदेव नाम के राजा रहते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। एक दिन उसने रात्रि के समय सिंह का स्वप्न देखा। गर्भकाल पूर्ण होने पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस का नाम सारणकुमार रक्खा गया। सारणकुमार ने ७२ कलाओं का अध्ययन किया। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर उसके माता-पिता ने उसका विवाह किया। ५० करोड़ सोनैया आदि की दात मिली। भगवान् अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर सारणकुमार ने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने १४ पूर्व का अध्ययन किया। २० वर्ष दीक्षापर्याय पाली। अन्त में गौतमकुमार की भांति शत्रुंजय पर्वत पर जाकर एक मासकी संलेखना करके सारणकुमार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए ॥५॥

॥ सातवा अध्ययन समाप्त ॥

आठवें अध्ययन का भी प्रारम्भ वाक्य—'जइ णं भन्ते! उक्खेवो' इत्यादि है। इस का अभिप्राय पूर्वोक्त जानना चाहिए। जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। एक समय वहां भगवान् अरिष्टनेमि पधारे, इत्यादि सारा वर्णन प्रथम वर्ग के समान जानना चाहिए।

उस काल उस समय में छः सहोदर भाई भगवान् अरिष्टनेमि के अन्तेवासी (शिष्य) थे। छहों समान आकार वाले, समान रूप वाले और समान वय वाले थे। उनके शरीर की कान्ति नीलकमल तथा भैंस के सींगके आन्तरिक भाग एवं गुली के रंग के समान तथा अलसीके फूल के समान नीले रंग वाली थी। उनका वक्षस्थल (छाती) श्रीवत्स नामक चिन्ह विशेष से अंकित था। उनके मस्तक के केश फूलों के समान कोमल और कुंडल के समान घूमे हुए थे। अतएव बहुत सुन्दर लगते थे। सौन्दर्यादि गुणों से वे नलकूबर के समान थे।

*आगे सर्वत्र उत्क्षेप का इतना प्रसंगोपात्त अर्थ समझें।

वे छहों अनगार जिस दिन दीक्षित हुए उसी दिन उन्होंने भगवान् को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया कि हे भगवन् ! हमारी ऐसी इच्छा है कि यदि आपकी आज्ञा हो तो हम यावज्जीवन छट्ठ छट्ठ (वेले वेले) की तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करें। यह सुनकर भगवान् ने फरमाया कि हे देवानुप्रियो ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा ही करो। इसके पश्चात् वे छहों अनगार भगवान् की आज्ञा पाकर यावज्जीवन वेले वेले की तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को प्रभावित करते हुए विचरने लगे।

तदनन्तर किसी समय वेले के पारणे के दिन उन छहों अनगारों ने प्रथम पहर में स्वाध्याय किया, दूसरे पहर में ध्यान किया, तीसरे पहर में भगवान् के पास आकर इस प्रकार बोले कि-हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो आज वेले के पारणे में हम छहों मुनि संघाड़ों में विभक्त होकर मुनियों के कल्पानुसार सामुदानिक भिक्षाके लिए द्वारिका नगरी में जाने की इच्छा करते हैं। भगवान् ने फरमाया कि हे देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। इस प्रकार भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर उन अनगारों ने भगवान् को वन्दन नमस्कार किया। वन्दना करके वे अनगार सहस्राम्रवनके बाहर निकले और दो दो मुनियों के तीन संघाड़े बनाकर शीघ्रता रहित, चपलता रहित और लाभालाभ की चिन्तामें सम्भ्रान्ति रहित, भिक्षा के लिए द्वारिका नगरी में गए।

उन तीन संघाड़ोंमें एक संघाड़ा द्वारिका नगरी के ऊंच नीच मध्यम कुलोंमें सामुदानिक भिक्षाके लिए घूमता हुआ राजा वसुदेव और रानी देवकी के घर पहुँचा। उस संघाड़े को अपने यहां आते हुए देखकर रानी देवकी अपने आसनसे उठी और सात आठ कदम उनके सामने गई। उन दोनों अनगारोंके आकस्मिक आगमनसे वह अत्यन्त हर्षित होकर बोली—"मैं धन्य हूं जो मेरे घर अनगार पधारे।" इस हेतु सन्तुष्ट चित्तके कारण वह अत्यन्त आनन्दित हुई। मुनियोंके पधारनेसे उसके अन्तःकरणमें अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ और मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसका हृदय हर्षके अतिरेकसे उछलने लगा। अर्थात् अपूर्व आनन्दित हुआ। विधिपूर्वक वन्दना नमस्कार करके वह मुनियोंको रसोईघरमें ले गई। वहां सिंहकेसरी मोदकका थाल भर कर लाई और उन अनगारों को प्रतिलाभित (वहरा) कर वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके आदर सहित विनयपूर्वक उनको विसर्जित किया।

उसके पश्चात् दूसरा संघाड़ा भी ऊंच-नीच मध्यम कुलोंमें घूमता हुआ देवकी महारानीके घर आया। देवकी महारानीने उन्हें भी उसी प्रकार सिंहकेसरी मोदकोंसे प्रतिलाभित कर विसर्जित किया। इसके अनन्तर तीसरा संघाड़ा भी उसी तरह देवकी महारानीके घर आया। देवकी महारानीने उसे भी उसी आदर

भावसे सिंहकेसरी मोदक वहराये। इसके पश्चात् वह विनयपूर्वक पूछने लगी—हे भगवन्! कृष्ण वासुदेव जैसे महाप्रतापी राजा की नौ योजन चौड़ी और वारह योजन लम्बी, स्वर्गलोकके सदृश इस द्वारिका नगरीके ऊंच-नीच मध्यम कुलोंमें सामुदानिक भिक्षाके लिए घूमते हुए श्रमण निर्ग्रन्थोंको क्या आहार-पानी नहीं मिलता! जिससे एक ही कुलमें बार-बार आना पड़ता है।

देवकीका ऐसा प्रश्न सुनकर वे अनगार इस प्रकार कहने लगे—हे देवानुप्रिये! कृष्ण वासुदेवकी स्वर्ग समान इस द्वारिका नगरीमें ऊंच-नीच मध्यम कुलोंमें भिक्षार्थ घूमते हुए श्रमण निर्ग्रन्थों को आहार-पानी नहीं मिलता और इसलिए वे भिक्षाके लिए एक ही घरमें बार-बार आते हैं।—ऐसी बात नहीं है, किन्तु देवानुप्रिये! हमारा रूप-उम्र आदि एक समान होनेके कारण तुम्हारे मनमें शंका पैदा हुई है। इसका समाधान यह है कि—हम लोग भद्दिलपुर नगर निवासी नाग गाथापतिके पुत्र एवं सुलसाके अंगजात, रूप लावण्य आदिमें समान, सौन्दर्यमें नलकूवरके समान छह सहोदर भाई हैं। हम लोगोंने भगवान् अरिष्टनेमिके पास धर्म सुनकर एवं हृदयमें धारण कर संसारके भयसे उद्विग्न होकर जन्म-मरणसे छुटकारा पानेके लिए प्रव्रज्या ग्रहण की है।

हम लोगोंने जिस दिन प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिनसे भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके यावज्जीवन वेले-वेले पारणा करने की प्रतिज्ञा की है। उसी प्रतिज्ञानुसार हम वेले-वेले पारणा करते हैं, सो हम लोगोंके आज वेले का पारणा है। इसलिए पहले पहरमें स्वाध्याय करके दूसरे पहरमें ध्यान धर कर और तीसरे पहरमें भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके हम तीन संघाड़ोंसे निकले हैं। ऊंच-नीच मध्यम कुलोंमें सामुदानिक भिक्षाके लिए घूमते हुए संयोगवश हम तीनों संघाड़े तुम्हारे घर आ गए। इसलिये हे देवानुप्रिये! हम वे ही मुनि नहीं हैं, जो पहले आये थे, अपितु हम दूसरे हैं। अर्थात् सर्वप्रथम संघाड़ेमें जो मुनि आये वे दूसरे थे, बीचमें (दूसरे संघाड़ेमें)जो मुनि आये थे वे दूसरे थे और तीसरे संघाड़ेमें जो हम आये हैं दूसरे हैं। अतः हे देवानुप्रिये! हम ही यहां तुम्हारे घर बार-बार नहीं आये हैं। इस प्रकार देवकी देवीसे कहकर वे मुनि जिधरसे आये थे उधर ही वापिस चले गये।

उन अनगारोंके चले जाने पर उस देवकी देवीकी आत्मामें इस प्रकार मानसिक संकल्प विकल्प उत्पन्न हुआ कि जब मैं बालक थी उस समय पोलासपुर नगरमें अतिमुक्त अनगारने मुझे ऐसा कहा था कि हे देवकी! तू आठ पुत्रोंको जन्म देगी। तेरे वे सभी पुत्र आकृति वय-और कान्ति आदिमें समान होंगे और वे नलकूवरके सदृश सुन्दर होंगे। इस भरत क्षेत्रमें दूसरी कोई माता ऐसे सुन्दर पुत्रोंको जन्म नहीं दे सकेगी।

मुनियोंकी वाणी असत्य नहीं होती, परन्तु अतिमुक्तक मुनि का वह कथन मिथ्या हुआ है, क्योंकि आज यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि इस भरतक्षेत्रमें दूसरी माताओंने इस प्रकारके पुत्रोंको जन्म दिया है। अतिमुक्तक मुनिके वचन असत्य नहीं होने चाहिएं, लेकिन मुझे प्रत्यक्ष असत्य दीख रहे हैं। इसलिए मुझे उचित है कि मैं भगवान् अरिष्टनेमिके पास जाऊं और उन्हें वन्दन नमस्कार करके तथा उनसे पूछकर अपने इस सन्देह को दूर करूं। यह विचार कर उसने अपने सेवकोंको बुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो! धार्मिक रथ को तैयार करो और उसमें घोड़े जोतकर सारथी सहित उस रथको मेरे पास लाओ। देवकी रानी को यह आज्ञा सुनकर सेवकोंने तुरन्त धार्मिक रथको सजा कर उसके सामने उपस्थित किया। उसके अनन्तर वह देवकी महारानी, जिस प्रकार भगवान् महावीर स्वामीकी माता देवानन्दा रथ पर चढ़कर भगवान्के दर्शन करनेके लिए गई, और वन्दना नमस्कार कर उपासना करने लगी, उसी प्रकार रथ पर बैठकर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दर्शन करनेके लिए गई और भगवान्को वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करने लगी।

इसके पश्चात् अरिष्टनेमिने देवकी देवीसे इस प्रकार कहा—हे देवकी! आज इन छह अनगारोंको देखकर तेरे मनमें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि—"मुझे पोलासपुर नगर में, अतिमुक्त अनगार ने इस प्रकार कहा था—हे देवकी! तू आकृति, वय और कान्ति आदिसे एक समान नलकूवर के सदृश सुन्दर ऐसे आठ पुत्रोंको जन्म देगी कि वैसे पुत्रोंको इस भरतक्षेत्रमें कोई दूसरी माता जन्म नहीं देगी।" परन्तु दूसरी माता ने भी अतिमुक्त से कथित लक्षणों वाले पुत्रोंको जन्म दिया है। अतिमुक्त अनगारके वचन असत्य कैसे हुए? इस शंकाको भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाकर दूर करूंगी, ऐसा विचार करके रथ पर चढ़कर अपने घर से निकल कर मेरे समीप आई है। क्यों देवकी देवी! क्या यह बात सत्य है? उत्तर में देवकी ने कहा—हां, भगवन्! आपने जो फरमाया वह सब सत्य है। अब कृपा कर इसका समाधान फरमाएं।

भगवान् ने फरमाया—हे देवानुप्रिये! इसका समाधान सुनो—उस काल उस समय में भद्दिलपुर नामक नगर था। उस नगरमें धन धान्यादिसे सम्पन्न नाग नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। जब वह सुलसा गाथापत्नी बाल अवस्थामें थी, तब एक भविष्यवक्ता (नैमित्तिक) ने उसके मातापिता से कहा था कि "यह कन्या मृतवन्ध्या होगी।"

उसके पश्चात् वह सुलसा अपने बाल्यकाल से ही हरिणगमेषी देवकी भक्त बन गई और उसने हरिणगमेषी देव की आराधना की। उसके पश्चात् उस सुलसा गाथापत्नी की भक्ति एवं बहुमानपूर्वक की गई शुश्रूषा आराधना से वह हरिणग-

मेषी देव प्रसन्न हुआ। इसलिए हरिणगमेषी देवने सुलसा गाथापत्नी की अनुकम्पा के लिए ऐसा कार्य किया कि जिसके प्रभाव से सुलसा गाथापत्नी और तुम दोनों एक ही समयमें रजस्वला होतीं और तुम एक साथ गर्भ धारण करतीं। एक साथ गर्भ का पालन करतीं तथा एक साथ बालकोंको जन्म देती थीं। परन्तु सुलसा गाथापत्नी के बालक मरे हुए जन्मते थे। हरिणगमेषी देव सुलसा की अनुकम्पाके लिए उन मरे हुए बालकों को अपने दोनों हाथों में उठाकर तुम्हारे पास ले आता था। उसी समय तू भी ९ मास साढ़े सात रात वीतने पर सुन्दर और सुकुमार पुत्रों को जन्म देती थी। तुम्हारे इन पुत्रों को दोनों हाथों से उठाकर हरिणगमेषी देव सुलसा गाथापत्नीके पास रख देता था। इसलिए हे देवकी ! अतिमुक्तक अनगार के वचन सत्य हैं। ये सभी तुम्हारे ही पुत्र हैं, सुलसा गाथापत्नीके नहीं। इन सब को तुमने ही जन्म दिया है, सुलसा गाथापत्नी ने नहीं।

देवकी महारानी ने इस वृत्तान्त को भगवान् अरिष्टनेमि के मुखारविन्दसे सुना और हृदय में धारण किया। इसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। तत्पश्चात् भगवान् को वन्दना नमस्कार करके वह वहां गई जहां वे छहों अनगार थे। उन अनगारों को देखकर पुत्रप्रेम के कारण उसके स्तनों से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण उसकी आंखों में आंसू भर आए एवं अत्यन्त हर्ष के कारण शरीर फूलने से उसकी कंचुकी की कसें टूट गई और भुजाओंके आभूषण तथा हाथकी चूड़ियां तंग हो गईं। वर्षाकी धारा पड़ने से जिस प्रकार कदम्ब पुष्प एक साथ सबके सब विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार उसके शरीरके सभी रोम पुलकित हो गए। उन छहों अनगारोंको अनिमेष दृष्टिसे देखती हुई बहुत काल तक निरखती रही। फिर उन्हें वन्दना नमस्कार किया।

वन्दना नमस्कार करके भगवान् अरिष्टनेमिके पास गई और भगवान्को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण करके वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके अपने धार्मिक रथ पर चढ़कर द्वारिका नगरी के मध्य होकर चली और क्रमशः अपनी बाहरी बैठकके पास पहुँची। वहां उस धार्मिक रथ से उतर कर अपने भवनमें जाकर अपनी सुकोमल शय्या पर बैठी।

उसके पश्चात् वह देवकी इस प्रकार पुत्र-सम्बन्धी चिन्तासे युक्त अभिलषित विचार अपने मन में करने लगी कि—मैंने आकृति, वय और कान्तिमें एक सरीखे यावत् नल-कूबरके समान सात पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु उन पुत्रोंमें से किसी भी पुत्रकी बाल-क्रीड़ाके आनन्दका अनुभव नहीं किया। यह कृष्ण भी मेरे पास चरण-वन्दनके लिए छह-छह महीने के बाद आता है। इसलिए मैं समझती हूं कि वे माताएं धन्य हैं। भाग्यशालिनी हैं कि जिनकी कुक्षिसे उत्पन्न हुए बच्चे स्तनपान

करने के लिए अपनी मनोहर तोतली बोली से आकर्षित करते हैं और मम्मरण शब्द करते हुए स्तनमूल से लेकर कक्ष तक के भाग में अभिसरण करते रहते हैं। फिर वे भोले बालक अपनी मां के द्वारा कमल के समान कोमल हाथों से उठाकर गोदी में बैठाये जाने पर दूध पीते हुए अपनी मां से तोतले शब्दों में बात करते हैं और मीठी २ बोली बोलते हैं।

मैं अधन्य हूं, मैं अपुण्य हूं—मैंने सुकृत नहीं किया, इसलिए मैं अपनी सन्तानकी बालक्रीड़ाके आनन्दका अनुभव नहीं कर सकी। इस प्रकार वह देवकी खिन्नहृदय होकर आर्तध्यान करने लगी।

इतने में कृष्ण वासुदेव स्नान करके तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर देवकी देवी के चरण-वन्दन करनेके लिए शीघ्र ही उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी माता को उदास एवं चिन्तित देखा। उनके चरणों में नमस्कार कर वे इस प्रकार पूछने लगे—हे माता! जब मैं पहले तुम्हारे चरण-वन्दन करनेके लिए आता था तब मुझे देख कर आपका हृदय आनन्दित हो जाता था। परन्तु आज आपका मुख उदास और चिन्तित दिखाई दे रहा है। हे माता! इसका क्या कारण है?

तब देवकी देवी ने कहा—हे पुत्र! मैंने आकृति वय और कान्ति में समान, नलकूवर के सदृश सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु मैंने एककी भी बालक्रीड़ा के आनन्द का अनुभव नहीं किया। पुत्र! तुम भी मेरे पास चरण-वन्दन करने के लिए छः छः महीने में आते हो इस लिए मैं समझती हूं कि-वे माताएं धन्य हैं, पुण्य-शालिनी हैं। उन्होंने पुण्याचरण किया है। जो कि अपनी सन्तान की बालक्रीड़ा के आनन्द का अनुभव करती हैं। मैं अधन्य हूं, अकृतपुण्य हूं। इसी बात को सोचती हुई मैं उदासीन होकर आर्त्तध्यान कर रही हूं।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अपनी माता देवकी से कहा कि—हे मात! अब तुम आर्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे मेरे एक सहोदर (छोटा भाई) उत्पन्न होगा। ऐसा कहकर अभिलषित, प्रिय और मधुर वचनों से माता को विश्वास और धैर्य बंधाकर वहां से निकल कर कृष्ण वासुदेव जहां पौषध-शाला थी वहां आए। जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टम भक्त (तेले की तपश्चर्या) स्वीकार करके अपने मित्रदेव की आराधना की थी, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव ने भी अष्टम भक्त करके हरिणगमेषी देवकी आराधना की। आराधना से आकृष्ट हरिणगमेषी देव वहां उपस्थित हुआ और कृष्ण वासुदेवसे इस प्रकार कहने लगा—हे देवानुप्रिय! आपने मेरा स्मरण किया है मैं उपस्थित हूं, आपका मनोरथ क्या है? सो कहिए। तब कृष्ण वासुदेव ने दोनों हाथ जोड़कर उस देवसे ऐसे कहा कि हे देवानुप्रिय! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है। इसके बाद उस हरिणगमेषी देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय!

देवलोक से एक देवता वहां की आयुष्य पूर्ण करके तुम्हारा सहोदर लघुभ्राता होकर जन्म लेगा और वह बाल-अवस्था बीतने पर एवं युवावस्था प्राप्त होते ही भगवान् अरिष्टनेमिके पास मुंडित होकर दीक्षा लेगा। उस हरिणगमेषी देवने कृष्ण वासुदेव से दोबारा तिवारा भी इसी प्रकार कहा। इसके बाद वह देव जिस दिशासे आया था उसी दिशा की ओर वापिस चला गया।

इसके पश्चात् कृष्ण वासुदेव पौषधशाला से निकल कर देवकी देवी के पास आए और उनका चरण-वन्दन किया। तत्पश्चात् उन्होंने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—कि हे माता! मेरे एक लघुभ्राता होगा आप चिन्ता न करो। आपके मनोरथ पूर्ण होंगे। इस प्रकार इष्ट मनोहर और मनोनुकूल वचनों से माता को सन्तुष्ट करके अपने स्थान पर चले गए।

इसके बाद पुण्यशालियों के योग्य सुखशय्या पर सोती हुई देवकी देवी ने सिंह का स्वप्न देखा।···जागृत होकर उसने स्वप्न-वृत्तान्त वसुदेव से कहा। अपने मनोरथ की पूर्णता को निश्चित समझकर देवकी का मन हृष्ट तुष्ट हो गया। वह सुखपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी।

तदनन्तर नौ महीने साढ़े सात दिन बीतने पर देवकी देवीने जपाकुसुम, बन्धुक-पुष्प, लाक्षारस, पारिजात तथा उदय होते हुए सूर्य के समान प्रभाव वाले और सब जनों के नयन को सुख देने वाले अत्यन्त कोमल यावत् सुरूप एवं हाथीके तालुके समान सुकोमल बालक को जन्म दिया। जिस प्रकार मेघकुमार के जन्म के समय उनके माता-पिता ने महोत्सव किया उसी प्रकार देवकी और वसुदेव ने जन्म-महोत्सव किया। उन्होंने विचार किया कि यह बालक गज के तालुके समान सुकोमल है, इसलिए इसका नाम गजसुकुमाल हो। ऐसा विचार कर माता-पिता ने उस बालक का नाम गजसुकुमाल रक्खा। गजसुकुमाल का बाल्यकाल से लेकर यौवन तक का वृत्तान्त मेघकुमार के समान जानना चाहिए।

उस द्वारिका नगरी में सोमिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह धन धान्यादि से समृद्ध था। और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदों का सांगोपांग ज्ञाता था।

उस ब्राह्मण की पत्नी का नाम सोमश्री था। वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुरूप थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री एवं सोमश्री की अंगजात सोमा नाम की कन्या थी। जो सुकुमार यावत् रूपवती थी और आकृति तथा लावण्य में उत्कृष्ट थी। वह सोमा बालिका पांचों इन्द्रियोंसे अहीन होनेके कारण एवं अवयवों की यथावत् स्थितिके कारण उत्कृष्ट शरीर शोभा वाली थी।

उसके बाद वह सोमा बालिका स्नान करके तथा वस्त्राभूषणोंसे अलं-कृत होकर अनेक कुब्जा दासियोंसे तथा अन्य दासियोंसे घिरी हुई अपने घरसे

निकल कर राजमार्ग पर आई और वहां सोने की गेंदसे खेलने लगी। उस काल उस समयमें भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरीमें पधारे। परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए गई। कृष्ण वासुदेवने भी भगवान्का आगमन सुनकर स्नान किया और वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर अपने छोटे भाई गजसुकुमालके साथ हाथी पर बैठे। कोरण्ट फूलोंकी मालासे युक्त छत्रसे तथा विंजाते हुए चामरोंसे सुशोभित कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरीके मध्य होते हुए भगवान् अरिष्टनेमिकी सेवामें जानेके लिए निकले। उस समय द्वारिका नगरीके राजमार्गमें खेलती हुई उस सोमा कन्या को कृष्ण वासुदेवने देखा। उसके रूप, लावण्य और कान्ति युक्त यौवन को देखकर कृष्ण वासुदेव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

उस सोमा कन्याको देखकर कृष्ण वासुदेवने अपने सेवकोंको बुलाकर इस प्रकार आज्ञा दी—कि हे देवानुप्रिय ! तुम सोमिल ब्राह्मणके पास जाओ और उससे इस कन्याकी याचना करो। तत्पश्चात् इस सोमा कन्याको कन्याओंके अन्त:पुरमें पहुंचा दो। यह सोमा कन्या गजसुकुमाल कुमार की भार्या होगी। इस आज्ञाको पाकर वे राजसेवक सोमिल ब्राह्मणके पास गए और उससे कन्या की याचना की। राजपुरुषोंकी बात सुनकर सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या सोमाको ले जाने की स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् राजपुरुषोंने सोमा कन्या को कन्याओंके अन्त:पुरमें रख दिया और कृष्ण वासुदेवको इस बातकी सूचना दे दी।

उसके पश्चात् कृष्ण वासुदेवने द्वारिका नगरीके बीचोंबीच होते हुए सहस्राम्रवन उद्यानमें जहां भगवान् अरिष्टनेमि विराजते थे वहां जाकर उनको वन्दन नमस्कार किया और भगवान्की पर्युपासना करने लगे। तत्पश्चात् भगवान्ने कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमाल कुमारके लिए एवं उस विशाल परिषद्के लिए धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर कृष्ण वासुदेव अपने महल की ओर चले गए। भगवान्का उपदेश सुनकर कृष्ण वासुदेव वापिस लौट गए, किन्तु भगवान् की वाणी सुनकर गजसुकुमाल कुमारको वैराग्य हो गया। अत: उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्से प्रार्थना की कि हे भगवन् ! मैं अपने माता-पितासे पूछ कर आपके पास दीक्षा ग्रहण करूंगा। इस प्रकार मेघकुमारके समान भगवान्को निवेदन करके अपने घर गए और माता-पिताके समक्ष अपना अभिप्राय प्रकट किया। माता पिताने उनकी दीक्षा की बात सुनकर उनसे कहा—"हे वत्स ! तुम हमें बहुत इष्ट एवं प्रिय हो। हम तुम्हारा वियोग सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं। अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ है। इसलिए पहले तुम विवाह करो। कुल की वृद्धि करके अर्थात् तुम्हारे पुत्रादि हो जाने पर तथा हमारा स्वर्गवास हो जाने पर फिर तुम दीक्षा ग्रहण करना। इस प्रकार माता पिताने गजसुकुमाल कुमारसे कहा।

जब गजसुकुमालके वैराग्य का समाचार कृष्ण वासुदेवको मिला, तो वे तुरन्त गजसुकुमालके पास आए और उन्होंने स्नेहपूर्वक गजसुकुमालको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् उसे अपनी गोदमें बैठाकर इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो, तुमसे मेरा यही कहना है कि तुम अभी दीक्षा मत लो। मैं बड़े ठाठ बाटके साथ तुम्हारा राज्याभिषेक करके तुम्हें इस द्वारिका का राजा बना दूंगा। कृष्ण वासुदेवके ये वचन सुनकर गजसुकुमाल कुमार मौन रहे।

तदनन्तर गजसुकुमाल कुमारने कृष्ण वासुदेव और अपने माता-पितासे दो तीन बार इस प्रकार कहा कि—हे देवानुप्रियो! कामभोगका आधारभूत यह स्त्री पुरुष संबंधी शरीर मल, मूत्र, कफ, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित का भंडार है। यह शरीर अस्थिर है, अनित्य है तथा सड़ना पड़ना और नष्ट होना रूप धर्मसे युक्त होनेके कारण आगे पीछे कभी न कभी नष्ट होने वाला है। यह अशुचिका स्थान है, वमनका स्थान है, पित्तका स्थान है, कफका स्थान है, शुक्र···, शोणित का स्थान है। यह शरीर दुर्गन्धयुक्त, मल, मूत्र और पीप आदि परिपूर्ण है। इस शरीर को पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा, इसलिए हे माता पिता! हे बन्धु-वर! मैं आपकी आज्ञा लेकर भगवान् अरिष्टनेमिके पास दीक्षा लेना चाहता हूं।

उसके पश्चात् कृष्ण वासुदेव राजा वसुदेव तथा देवकी रानी जब गजसुकुमाल कुमारको अनेक प्रकारके अनुकूल और प्रतिकूल वचनोंसे नहीं समझा सके, तब असमर्थ होकर वे इस प्रकार बोले—हे पुत्र! हम लोग तुझे एक दिनके लिए राजसिंहासन पर बैठाकर तेरी राज्यश्री देखना चाहते हैं। इसलिए तुम कमसे कम एक दिनके लिये ही राज्यलक्ष्मीको स्वीकार करो।

माता-पिता और बड़े भाईके अनुरोधसे गजसुकुमाल चुप रहे। तदनन्तर बड़े समारोहके साथ उनका राज्याभिषेक किया गया। गजसुकुमालके राजा हो जानेके बाद माता पिताने पूछा—हे पुत्र! तुम क्या चाहते हो? गजसुकुमालने उत्तर दिया—मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। तब गजसुकुमालकी आज्ञानुसार दीक्षाकी सभी सामग्री मंगाई गई और महाबलके समान दीक्षा अंगीकार करके गजसुकुमाल अनगार बन गए। तथा ईर्यासमिति आदिसे युक्त होकर सभी इन्द्रियोंको वशमें करके गुप्तब्रह्मचारी बन गये।

उसके बाद वे गजसुकुमाल अनगार जिस दिन प्रव्रजित हुए उसी दिनके चौथे पहरमें भगवान् अरिष्टनेमिके पास जाकर तीन बार विधियुक्त वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—हे भगवन्! आपकी आज्ञा होने पर मेरी ऐसी इच्छा है कि महाकाल श्मशानमें जाकर एक रात्रि की महाप्रतिमा (भिक्षुप्रतिमा) स्वीकार करूं अर्थात् सम्पूर्ण रात्रि ध्यानस्थ होकर खड़ा रहूं।

भगवान्ने फरमाया कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो। इस प्रकार भगवान्से आज्ञा पाकर उन्होंने भगवान् को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे सहस्राम्रवन 'उद्यान' से निकलकर महाकाल श्मशानमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने कायोत्सर्ग करनेके लिए प्रासुक भूमिकी तथा उच्चार-प्रस्रवण (बड़ी नीत लघुनीत) परठने योग्य भूमि की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् कायाको कुछ नमाकर चार अंगुलके अन्तरसे दोनों पैरोंको सिकोड़ कर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए एकरात्रि की महाप्रतिमा (भिक्षुप्रतिमा) स्वीकार कर ध्यानस्थ खड़े रहे।

इसी समय वह सोमिल ब्राह्मण गजसुकुमाल अनगार के श्मशान भूमिमें जाने से पहले ही समिधा आदि सामग्री लाने के लिए द्वारिका नगरी से बाहर निकला था। वह सोमिल ब्राह्मण समिधा (काष्ठ), कुश, डाभ और पत्तों को लेकर अपने घर आ रहा था। तब महाकाल श्मशान के पाससे आते हुए उस सोमिल ब्राह्मण ने मनुष्यों के आवागमन से रहित सन्ध्याकाल में श्मशान भूमि में कायोत्सर्ग करके ध्यानस्थ खड़े हुए गजसुकुमाल अनगार को देखा। देखते ही उसके हृदय में पूर्व वैर जागृत हुआ। वह इस प्रकार कहने लगा—अरे! यह वही निर्लज्ज श्री कान्ति आदि से परिवर्जित अप्रार्थितप्रार्थक अर्थात् मरण को चाहने वाला गजसुकुमाल कुमार है। यह पुण्यहीन दुर्लक्षणयुक्त है। मेरी भार्या सोमश्री की अंगजात, मेरी पुत्री सोमा जो कि दोषरहित और यौवनावस्थाको प्राप्त है, उसे निष्कारण ही छोड़ कर साधु बन गया है।

सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगा कि 'मुझे उचित है कि मैं अपने वैरका बदला लूं।' इस प्रकार विचार कर उसने चारों दिशाओं को अच्छी तरह देखा कि इधर कोई आता जाता तो नहीं है। चारों ओर देखकर उसने पास के तालाब से गीली मिट्टी ली। गीली मिट्टी लेकर वह गजसुकुमाल अनगार के पास आया। वहां आकर उसने गजसुकुमाल अनगारके सिर पर मिट्टी की पाल बांधी। फिर वह जलती हुई एक चितामें से फूले हुए टेसू के समान लाल लाल खैर की लकड़ी के अंगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़े (ठीकरे) में भरकर लाया और धधकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल अनगार के सिर पर रख दिया। इसके बाद 'मुझे कोई देख न ले' इस भयसे चारों ओर इधर उधर देखता हुआ वहां से वह जल्दी भागा और जिस दिशासे आया था उसी दिशा में चला गया।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा शिर पर अंगारों के रक्खे जाने से गजसुकुमाल अनगार के शरीर में महावेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना अत्यन्त दुःखमयी, जाज्वल्यमान और असह्य थी। फिर भी वह गजसुकुमाल अनगार उस सोमिल ब्राह्मण

पर लेश मात्र भी द्वेष न करते हुए समभावपूर्वक उसको सहन करते रहे। सहन करते हुए गजसुकुमाल अनगार ने शुभ परिणाम और शुभ अध्यवसायों से तथा तदावरणीय(कर्मों के नाश)कर्मविनाशक अपूर्वकरण में प्रवेश किया। जिससे उनको अनन्त-अन्तरहित, अनुत्तर-प्रधान, निर्व्याघात-रुकावट रहित, निरावरण-आवरण रहित, कृत्स्न-सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उसी समय कर्मों के क्षय हो जाने के कारण गजसुकुमाल अनगार कृत-कृत्य बन कर 'सिद्धि' पद को प्राप्त हुए। सभी कर्मों से छूट जाने से 'मुक्त' हुए। शारीरिक और मानसिक सभी दुःखों से रहित होने के कारण सर्वदुःखप्रहीण हुए। अर्थात् वह गजसुकुमाल अनगार मोक्ष को प्राप्त हो गए।

उस समय समीपवर्ती देवों ने—"इन गजसुकुमाल अनगार ने चरित्र का सम्यक् आराधन किया है" ऐसा विचार कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगंधित अचित्त जल और पांच वर्णोंके अचित्त फूलों की एवं वस्त्रों की वर्षा की। और दिव्य मधुर गायन से आकाश को व्याप्त कर दिया।

इधर गजसुकुमाल की दीक्षा के दूसरे दिन सूर्योदय हो जाने पर स्नान करके यावत् सभी अलंकारों से अलंकृत होकर हाथी पर बैठकर कोरण्ट के फूलों की माला से युक्त छत्र को सिर पर धरते हुए तथा दाएं बाएं दोनों तरफ श्वेत चामर ढुलाते हुए, अनेक सुभटों के समूह से युक्त वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के राज-मार्ग से होते हुए भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाने के लिए रवाना हुए।

तब द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होकर जाते हुए उन कृष्ण वासुदेव ने एक पुरुष को देखा। वह पुरुष बहुत वृद्ध था। वृद्धावस्था के कारण उसकी देह जर्जरित होने से वह बहुत दुःखी था। ऐसी स्थिति को प्राप्त वह वृद्ध पुरुष ईटों की विशाल राशि में से एक एक ईट उठा कर बाहरके राजमार्गसे अपने घरमें रख रहा था।

उस समय उस दुःखी वृद्ध पुरुष को इस प्रकार कार्य करते देख कर कृष्ण वासुदेव ने उसकी अनुकम्पा के लिए हाथी पर बैठे २ ही अपने हाथ से एक ईंट उठा कर उसके घर में रख दी। कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाए जाने पर अन्य सभी लोगों ने अपने हाथों से ईंटों को उठाकर सारा ढेर उसके घर में पहुंचा दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण के एक ईंट उठाने मात्र से उस वृद्ध पुरुष का बार बार चक्कर काटने का कष्ट दूर हो गया।

इसके बाद वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होते हुए जहां भगवान् अरिष्टनेमि विराजते थे वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर भगवान् को नम-स्कार किया। तत्पश्चात् अपने सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल अनगार को वन्दना नमस्कार करने के लिए इधर उधर देखने लगे। जब उन्होंने

भगवान्‌ने फरमाया कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो। इस प्रकार भगवान्‌से आज्ञा पाकर उन्होंने भगवान् को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे सहस्राम्रवन 'उद्यान' से निकलकर महाकाल श्मशानमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने कायोत्सर्ग करनेके लिए प्रासुक भूमिकी तथा उच्चार-प्रस्रवण (बड़ी नीत लघुनीत) परठने योग्य भूमि की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् कायाको कुछ नमाकर चार अंगुलके अन्तरसे दोनों पैरोंको सिकोड़ कर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए एकरात्रि की महाप्रतिमा (भिक्षुप्रतिमा) स्वीकार कर ध्यानस्थ खड़े रहे।

इसी समय वह सोमिल ब्राह्मण गजसुकुमाल अनगार के श्मशान भूमिमें जाने से पहले ही समिधा आदि सामग्री लाने के लिए द्वारिका नगरी से बाहर निकला था। वह सोमिल ब्राह्मण समिधा (काष्ठ), कुश, डाभ और पत्तों को लेकर अपने घर आ रहा था। तब महाकाल श्मशान के पाससे आते हुए उस सोमिल ब्राह्मण ने मनुष्यों के आवागमन से रहित सन्ध्याकाल में श्मशान भूमि में कायोत्सर्ग करके ध्यानस्थ खड़े हुए गजसुकुमाल अनगार को देखा। देखते ही उसके हृदय में पूर्व वैर जागृत हुआ। वह इस प्रकार कहने लगा—अरे! यह वही निर्लज्ज श्री कान्ति आदि से परिवर्जित अप्रार्थितप्रार्थक अर्थात् मरण को चाहने वाला गजसुकुमाल कुमार है। यह पुण्यहीन दुर्लक्षणयुक्त है। मेरी भार्या सोमश्री की अंगजात, मेरी पुत्री सोमा जो कि दोषरहित और यौवनावस्थाको प्राप्त है, उसे निष्कारण ही छोड़ कर साधु बन गया है।

सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगा कि 'मुझे उचित है कि मैं अपने वैरका बदला लूं।' इस प्रकार विचार कर उसने चारों दिशाओं को अच्छी तरह देखा कि इधर कोई आता जाता तो नहीं है। चारों ओर देखकर उसने पास के तालाब से गीली मिट्टी ली। गीली मिट्टी लेकर वह गजसुकुमाल अनगार के पास आया। वहां आकर उसने गजसुकुमाल अनगारके सिर पर मिट्टी की पाल बांधी। फिर वह जलती हुई एक चितामें से फूले हुए टेसू के समान लाल लाल खैर की लकड़ी के अंगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़े (ठीकरे) में भरकर लाया और धधकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल अनगार के सिर पर रख दिया। इसके बाद 'मुझे कोई देख न ले' इस भयसे चारों ओर इधर उधर देखता हुआ वहां से वह जल्दी भागा और जिस दिशासे आया था उसी दिशा में चला गया।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा शिर पर अंगारों के रक्खे जाने से गजसुकुमाल अनगार के शरीर में महावेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना अत्यन्त दुःखमयी, जाज्वल्यमान और असह्य थी। फिर भी वह गजसुकुमाल अनगार उस सोमिल ब्राह्मण

पर लेश मात्र भी द्वेष न करते हुए समभावपूर्वक उसको सहन करते रहे। सहन करते हुए गजसुकुमाल अनगार ने शुभ परिणाम और शुभ अध्यवसायों से तथा तदावरणीय (कर्मों के नाश) कर्मविनाशक अपूर्वकरण में प्रवेश किया। जिससे उनको अनन्त-अन्तरहित, अनुत्तर-प्रधान, निर्व्याघात-रुकावट रहित, निरावरण-आवरण रहित, कृत्स्न-सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उसी समय कर्मों के क्षय हो जाने के कारण गजसुकुमाल अनगार कृत-कृत्य बन कर 'सिद्धि' पद को प्राप्त हुए। सभी कर्मों से छूट जाने से 'मुक्त' हुए। शारीरिक और मानसिक सभी दुःखों से रहित होने के कारण सर्वदुःखप्रहीण हुए। अर्थात् वह गजसुकुमाल अनगार मोक्ष को प्राप्त हो गए।

उस समय समीपवर्ती देवों ने—"इन गजसुकुमाल अनगार ने चरित्र का सम्यक् आराधन किया है" ऐसा विचार कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगंधित अचित्त जल और पांच वर्णोंके अचित्त फूलों की एवं वस्त्रों की वर्षा की। और दिव्य मधुर गायन से आकाश को व्याप्त कर दिया।

इधर गजसुकुमाल की दीक्षा के दूसरे दिन सूर्योदय हो जाने पर स्नान करके यावत् सभी अलंकारों से अलंकृत होकर हाथी पर बैठकर कोरण्ट के फूलों की माला से युक्त छत्र को सिर पर धरते हुए तथा दाएं बाएं दोनों तरफ श्वेत चामर ढुलाते हुए, अनेक सुभटों के समूह से युक्त वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के राज-मार्ग से होते हुए भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाने के लिए रवाना हुए।

तब द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होकर जाते हुए उन कृष्ण वासुदेव ने एक पुरुष को देखा। वह पुरुष बहुत वृद्ध था। वृद्धावस्था के कारण उसकी देह जर्जरित होने से वह बहुत दुःखी था। ऐसी स्थिति को प्राप्त वह वृद्ध पुरुष ईंटों की विशाल राशि में से एक एक ईंट उठा कर बाहरके राजमार्गसे अपने घरमें रख रहा था।

उस समय उस दुःखी वृद्ध पुरुष को इस प्रकार कार्य करते देख कर कृष्ण वासुदेव ने उसकी अनुकम्पा के लिए हाथी पर बैठे २ ही अपने हाथ से एक ईंट उठा कर उसके घर में रख दी। कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाए जाने पर अन्य सभी लोगों ने अपने हाथों से ईंटों को उठाकर सारा ढेर उसके घर में पहुंचा दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण के एक ईंट उठाने मात्र से उस वृद्ध पुरुष का बार बार चक्कर काटने का कष्ट दूर हो गया।

इसके बाद वे कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होते हुए जहां भगवान् अरिष्टनेमि विराजते थे वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर भगवान् को नम-स्कार किया। तत्पश्चात् अपने सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल अनगार को वन्दना नमस्कार करने के लिए इधर उधर देखने लगे। जब उन्होंने

गजसुकुमाल अनगार को कहीं नहीं देखा। तब उन्होंने भगवान् से पूछा कि—हे भगवन् ! मेरा सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल अनगार कहां है ? मैं उनको वन्दना नमस्कार करना चाहता हूं। तब भगवान् ने फरमाया कि—हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने जिस आत्म-अर्थ के लिए संयम स्वीकार किया था उसने उस आत्म-अर्थ को सिद्ध कर लिया है।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने आश्चर्ययुक्त होकर पूछा कि—हे भगवन् ! उन्होंने किस प्रकार अपने अर्थ (प्रयोजन) को सिद्ध कर लिया है ? कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् ने इस प्रकार फरमाया कि हे कृष्ण ! कल दीक्षा लेने के बाद चौथे पहर में गजसुकुमाल अनगार ने वन्दना नमस्कार कर मेरे सामने इस प्रकार इच्छा प्रकट की कि हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर महाकाल श्मशान में एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का आराधन करना चाहता हूं। हे कृष्ण ! मैंने कहा—जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो। इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर गजसुकुमाल अनगार महाकाल श्मशान में गए और वहां ध्यान धर कर खड़े रहे।

हे कृष्ण ! उस समय वहां एक पुरुष आया और उसने गजसुकुमाल अनगार को ध्यानस्थ खड़ा देखा। देखते ही उसे वैरभाव जागृत हुआ और वह क्रोध से आतुर होकर तालाब से गीली मिट्टी लाया, लाकर उसने गजसुकुमाल अनगार के सिर पर चारों ओर उस गीली मिट्टी की पाल बांधी, फिर चिता में जलते हुए खैर के अत्यन्त लाल अंगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के बर्तन में लेकर गजसुकुमाल अनगार के सिर पर डाल दिया, जिससे गजसुकुमाल को असह्य वेदना हुई, परन्तु फिर भी उनके हृदयमें उस घातक पुरुष के प्रति थोड़ा भी द्वेषभाव नहीं आया। वे समभावपूर्वक उस भयंकर वेदना को सहन कर शुभ परिणाम एवं शुभ अध्यवसाय से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पहुँच गए। इसीलिए हे कृष्ण ! "गजसुकुमाल अनगार ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया।"—ऐसा मैंने कहा।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा कि हे भगवन् ! मृत्यु को चाहने वाला लज्जा आदि से रहित वह पुरुष कौन है जिसने मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार का अकाल में ही प्राण हरण कर लिया। यह सुनकर भगवान् ने कहा—हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर क्रोध मत करो, क्योंकि उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को मोक्ष प्राप्त करने में सहायता दी है।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने भगवान् से पूछा कि हे भगवन् ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगारको कैसे सहायता दी ? तब भगवान्ने फर्माया कि हे कृष्ण !

मेरे चरण-वन्दन के लिए आते हुए तुमने द्वारिका नगरीके राजमार्ग पर एक वहुत वड़े ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट को उठाकर घर में रखते हुए एक दीन दुर्वल वृद्ध पुरुष को देखा। उस पर अनुकम्पा करके हाथी पर वैठे-वैठे तुमने उस ढेर में से एक ईंट उठाकर उसके घर में रख दी, जिससे तुम्हारे साथ वाले सभी पुरुषों ने क्रम से उन सभी ईंटों को उठाकर उसके घर में रख दिया, जिससे उस वृद्ध पुरुष का दुःख दूर हो गया। हे कृष्ण! जिस प्रकार तुमने उस वृद्ध पुरुष की सहायता की उसी प्रकार उस पुरुष ने भी गजसुकुमाल के लाखों भवों में संचित किए हुए कर्मों की एकान्त उदीरणा करके उनका सम्पूर्ण क्षय करने में वड़ी सहायता दी है।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने भगवान् से फिर पूछा कि हे भगवन्! मैं उस पुरुष को किस प्रकार जान सकूंगा? भगवान् ने कहा—हे कृष्ण! द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए तुम्हें देखते ही जो पुरुष आयुष्य की स्थिति क्षयसे वहीं पर खड़ा-खड़ा ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय उसी पुरुष को जान लेना कि यह वही पुरुष है। उसके वाद वे कृष्ण वासुदेव, भगवान् को वन्दना नमस्कार करके आभिषेक्य हाथी पर वैठकर द्वारिका नगरी में अपने महल की तरफ जाने लगे।

इधर सूर्योदय होते ही सोमिल ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा कि कृष्ण वासुदेव भगवान् के चरण-वन्दन के लिए गये हैं। भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, उनसे कोई वात छिपी नहीं है। अतः उन्होंने गजसुकुमाल की मृत्यु-सम्वन्धी सारी वात जान ली होगी। अच्छी तरह जान ली होगी और कृष्ण वासुदेव से कह दी होगी। इस वात को जानकर कृष्ण वासुदेव न जाने मुझे किस कुमौत से मारेंगे। ऐसा विचार कर भयभीत होकर सोमिल ब्राह्मण ने भाग जाने का विचार किया। फिर उसने सोचा कि कृष्ण वासुदेव तो राजमार्ग से ही आवेंगे। इस लिए मुझे उचित है कि मैं गली के रास्ते चल कर द्वारिका नगरी से निकल भागूं। ऐसा विचार कर वह अपने घर से निकला और गली के रास्ते भागते हुए जाने लगा।

इधर कृष्ण वासुदेव भी अपने सहोदर लघु-भ्राता गजसुकुमाल अनगार की अकाल-मृत्यु के शोक से व्याकुल होने के कारण राजमार्ग को छोड़कर गली के रास्ते से ही आ रहे थे, जिससे संयोगवश वह सोमिल ब्राह्मण, कृष्ण वासुदेव के सामने ही आ निकला। उस समय वह सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को आते देखकर वड़ा भयभीत हुआ और जहां का तहां खड़ा रह गया। आयुष्य क्षय हो जाने से वह खड़ा-खड़ा ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। जिससे उसका मृत शरीर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

जब कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को इस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होते देखा। तब वे इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रियो ! यह वही अप्रार्थितप्रार्थक अर्थात् जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला, निर्लज्ज सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार को अकालमें ही कालका ग्रास बना डाला। ऐसा कहकर उस मृत सोमिल के पैरों को रस्सी से बंधवाकर तथा चाण्डालों द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिंकवा दिया और उस शव द्वारा स्पर्शित भूमि को पानी डलवाकर धुलवाया। फिर वहां से चलकर कृष्ण वासुदेव अपने महल में पहुंचे।

हे जम्बू ! सिद्धि गति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के इस प्रकार भाव फरमाये हैं ॥६॥

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव फरमाये, वे मैंने आपके पास से सुने हैं। हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने नौवें अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं ? जम्बू स्वामी के उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने फरमाया कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। उस नगरी में भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर परम्परा से विचरते हुए पधारे। उस द्वारिका नगरी में बलदेव नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। वह अत्यन्त सुकोमल और सुन्दर थी। एक समय सुकोमल शय्या पर सोयी हुई धारिणी रानी ने स्वप्न में सिंह को देखा। स्वप्न देखते ही जागृत होकर उसने अपने पति के समीप जाकर स्वप्न का वृत्तान्त सुनाया। गर्भ समय पूर्ण होने पर स्वप्न के अनुसार उनके यहां एक पुण्यशाली पुत्रका जन्म हुआ। इसके जन्म बाल्यकाल आदि का वर्णन गौतमकुमार के समान जानना चाहिये। उसका नाम सुमुख रक्खा गया। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर उस कुमार का विवाह पचास राजकन्याओं के साथ हुआ। और विवाह में कन्याओं के माता-पिता की तरफ से पचास करोड़ सोनैया आदि का दहेज मिला।

किसी एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहां पधारे, तब उनकी वाणी सुनकर उनके पास दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने चौदह पूर्वो का अध्ययन किया और बीस वर्ष पर्यन्त चारित्र-पर्याय का पालन किया। अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर संथारा करके सिद्ध हुए। हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्त-

गड़दशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग के नौवें अध्ययन का उपरोक्त भाव फरमाया है।

इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक इन दोनों कुमारों का भी वर्णन जान लेना चाहिए। इन दोनों के पिता का नाम बलदेव व माता का नाम धारिणी था। इनका सारा वर्णन सुमुख अनगार के समान ही जानना चाहिए। दारुक-कुमार का भी सारा वर्णन सुमुखकुमार के समान ही जानना चाहिये। केवल इतना अन्तर है कि उनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। इसी प्रकार अनाहृष्टि कुमार का भी वर्णन जानना चाहिये। इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। दीक्षा लेकर ये भी मोक्ष गये। हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययनों का इस प्रकार भाव फरमाया है।।७।।

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

चौथा वर्ग

जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से पूछते हैं-कि हे भगवन् ! सिद्धिगति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग में जो भाव फरमाये वे मैंने आपके मुख से श्रवण किये। चौथे वर्ग में भगवान् ने क्या भाव फरमाये हैं सो कृपा करके फरमाइये। उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा-स्वामी ने फरमाया कि—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने चौथे वर्ग में दस अध्ययन फरमाये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ जालि, २ मयालि, ३ उव-यालि, ४ पुरुषसेन, ५ वारिसेण, ६ प्रद्युम्न, ७ शाम्ब, ८ अनिरुद्ध, ९ सत्यनेमि, १० दृढ़नेमि ।

भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चौथे वर्ग में दस अध्ययन फरमाये हैं, तो उनमें से प्रथम अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं ? हे जम्बू ! चौथे वर्ग के प्रथम अध्ययन में ये भाव फरमाये हैं—उस काल और उस समय में द्वारिका नगरी थी जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है। वहां कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे।

उस द्वारिका नगरी में वसुदेव राजा निवास करते थे, उनकी रानी का नाम धारिणी था। वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुन्दर और सुशीला थी। एक समय सुकोमल शय्या पर सोती हुई उस धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। उसने जाकर स्वप्न का वृत्तान्त अपने पतिदेव को सुनाया। उसके बाद गौतमकुमारके समान एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम जालिकुमार रक्खा गया। जब

वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तव उसका विवाह पचास कन्याओं के साथ किया गया और उन्हें पचास करोड़ सोनैया आदि दहेज मिला।

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहां पधारे। उनकी वाणी सुनकर जालिकुमार को वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता-पिता की आज्ञा लेकर उन्होंने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने वारह अंगों का अध्ययन किया और सोलह वर्ष पर्यन्त दीक्षा पर्याय पाली। फिर गौतम अनगार के समान उन्होंने भी एक मासका संथारा किया और सर्व कर्मों से मुक्त होकर शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए। इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुरुषसेण और वारिषेणका भी चरित्र जानना चाहिए। ये सभी वसुदेव के पुत्र और धारिणी के अंगजात थे।

इसी प्रकार प्रद्युम्न का भी चरित्र जानना चाहिए, परंतु इनके पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम रुक्मिणी था। इसी प्रकार शाम्वकुमार का भी वर्णन जानना चाहिए, परन्तु इनके पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम जाम्बवती था। इसी प्रकार अनिरुद्धकुमार का भी वर्णन जानना चाहिए, परन्तु इनके पिता का नाम प्रद्युम्न और माता का नाम वैदर्भी था। इसी प्रकार सत्यनेमि और दृढ़नेमि इन दोनों कुमारोंका वर्णन जानना चाहिए, परन्तु इन दोनों के पिता का नाम समुद्रविजय और माता का नाम शिवादेवी था। सभी अध्ययनों का वर्णन एक समान है। हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चौथे वर्ग के भाव इस प्रकार फरमाये हैं ॥८॥

॥ चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

पांचवां वर्ग

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि-हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़सूत्र के चौथे वर्ग में जो भाव फरमाये वे मैंने आपके मुखारविन्दसे सुने हैं। हे भगवन्! इसके अनन्तर...पांचवें वर्गमें क्या भाव फरमाये हैं? उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें वर्ग में दस अध्ययन फरमाये हैं। वे इस प्रकार हैं-१ पद्मावती, २ गौरी, ३ गान्धारी, ४ लक्ष्मणा, ५ सुसीमा, ६ जाम्बवती, ७ सत्यभामा, ८ रुक्मिणी, ९ मूलश्री, १० मूलदत्ता।

श्री जम्बू स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें वर्ग में दस अध्ययन फरमाये हैं तो उनमें से पहले अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं? श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

वहां कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम पद्मावती था। वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुरूप थी।

उस काल उस समय में भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थकर परम्परा से विचरते हुए वहां पधारे। भगवान् का आगमन सुनकर कृष्ण वासुदेव उनके दर्शन के लिए गए यावत् पर्युपासना करने लगे। भगवान् का आगमन सुनकर पद्मावती रानी भी अत्यन्त हृष्टतुष्ट—प्रसन्न हुई। वह भी देवकी के समान धार्मिक रथ पर चढ़कर भगवान् के दर्शन करने के लिए गई। भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव तथा पद्मावती रानी को लक्ष्यकर परिषद् को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर परिषद् अपने घर लौट गई।

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार पूछा कि हे भगवन्! बारह योजन लम्बी नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरीका विनाश किस कारण से होगा?

भगवान् अरिष्टनेमि ने फरमाया कि हे कृष्ण! बारह योजन लम्बी नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा—मदिरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के क्रोध के कारण होगा। भगवान् अरिष्टनेमि के मुख से द्वारिका नगरी के विनाश का कारण जानकर कृष्ण वासुदेव के हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिषेण, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि और सत्यनेमि आदि धन्य हैं कि जो अपनी सम्पत्ति स्वजन और याचकों को देकर भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गये। मैं अधन्य हूं, अकृतपुण्य हूं जिससे मैं राज्य में, अन्तःपुर में और मनुष्य-सम्बन्धी कामभोगों में ही फंसा हुआ हूं। क्या मैं भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा नहीं ले सकता?

भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने ज्ञान द्वारा कृष्ण के मन में आये हुए विचारों को जान कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे कृष्ण! तुम्हारे मन में इस प्रकार भावना हो रही है कि वे जालि, मयालि आदि धन्य हैं जो अपना धन वैभव, स्वजन और याचकों को देकर अनगार हो गये हैं। मैं अधन्य हूं, अकृतपुण्य हूं जो राज्य, अन्तःपुर और मनुष्य-सम्बन्धी कामभोगों में ही फंसा पड़ा हुआ हूं। क्या मैं भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता?

हे कृष्ण! क्या यह बात सत्य है? कृष्ण ने उत्तर दिया—हे भगवन्! आपने जो कहा वह बिल्कुल सत्य है। आप सर्वज्ञ हैं। आपसे कोई बात छिपी हुई नहीं है। हे कृष्ण! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं अर्थात् वासुदेव अपने भव में संपत्ति छोड़कर दीक्षा लेते नहीं, ली नहीं और लेंगे भी नहीं।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पूछा कि—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? भगवान् ने फर्माया कि हे कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्व भव में निदानकृत (नियाणा करने वाले) होते हैं। इसलिए मैं ऐसा कहता हूं कि कभी ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि वासुदेव अपनी संपत्ति को छोड़कर दीक्षा लें। यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा कि—हे भगवन् ! मैं यहां से काल के समय काल करके कहां जाऊंगा ? कहां उत्पन्न होऊंगा ?

भगवान् ने फरमाया कि—हे कृष्ण ! सुरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कोप के कारण इस द्वारका नगरी का नाश हो जाने पर एवं अपने माता पिता और स्वजनों से विहीन हो जाने पर तुम राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पाण्डु राजा के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव इन पांचों पांडवों के समीप पाण्डुमथुरा की तरफ जाते हुए विश्राम लेने के लिए कोशाम्रवृक्ष के वनमें एक अत्यन्त विशाल वट-वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर से अपनी देह को ढककर सो जाओगे। उस समय मृगकी आशंका में जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण बाण तुम्हारे बाएं पैर में लगेगा। इस प्रकार बाणसे विद्ध होकर तुम काल के समय में काल करके तीसरी पृथ्वीमें उत्पन्न होओगे। भगवान् के मुख से अपने आगामी भव की बात सुनकर कृष्ण वासुदेव आर्त्तध्यान करने लगे।

तब भगवान् अरिष्टनेमि ने इस प्रकार कहा—हे कृष्ण ! तुम इस प्रकार आर्त्तध्यान मत करो, क्योंकि तुम तीसरी पृथ्वी से निकल कर आगामी उत्सर्पिणी कालमें इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र के पुंड्र जनपदके शतद्वार नगर में "अमम" नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे। वहां बहुत वर्षों तक केवलपर्याय का पालन कर सिद्ध पद प्राप्त करोगे।

भगवान् अरिष्टनेमि के मुखारविन्द से अपने भविष्य का वृत्तान्त सुन कर कृष्ण वासुदेव हृष्ट-तुष्ट हृदयसे अपनी भुजा ठोकने लगे, एवं तीन कदम पीछे हट कर उन्होंने सिंहनाद किया, इसके बाद भगवान् को वन्दना नमस्कार करके अभिषेक हस्तिरत्न पर चढ़कर द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होते हुए अपने महल में पहुंचे। हाथी से उतर कर जहां बाहरी उपस्थानशाला थी और जहां अपना सिंहासन था वहां गए। वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे और कौटुम्बिक पुरुषोंको राजसेवकों को बुलाकर इस प्रकार बोले—

हे देवानुप्रियो ! इस द्वारिका नगरी के चतुष्पथ आदि सब स्थानों पर मेरी इस आज्ञा को इस प्रकार उद्घोषित करो कि हे देवानुप्रियो ! बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक समान इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा (मदिरा), अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कारण होगा। इसलिए द्वारिका

नगरी का कोई भी व्यक्ति चाहे वह राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या मन्त्री) हो, तलवर (राजा का प्रिय अथवा राजा के समान) हो, माड़म्बिक (छोटे गांव का स्वामी) हो, कौटुम्बिक (दो तीन कुटुम्ब का स्वामी) हो, इभ्य सेठ हो, रानी हो, कुमार हो, कुमारी हो, कोई भी हो, जो भगवान् अरिष्टनेमिके पास दीक्षा लेना चाहें, उन्हें कृष्ण वासुदेव दीक्षा लेने की आज्ञा देते हैं। दीक्षा लेने वाले के पीछे जो कोई बाल, वृद्ध व रोगी होंगे। उनका पालन-पोषण कृष्ण वासुदेव अपनी तरफ से करेंगे और दीक्षा लेने वालों का दीक्षा-महोत्सव भी बड़े समारोह के साथ कृष्ण वासुदेव अपनी ओर से ही करेंगे। इस प्रकार दो तीन बार घोषणा करके मुझे वापिस सूचित करो।

कृष्ण वासुदेवकी आज्ञानुसार कौटुम्बिक (राजसेवक) पुरुषोंने उद्घोषणा करके वापिस कृष्ण वासुदेव के पास आकर निवेदन कर दिया। इसके बाद वह पद्मावती रानी भगवान् अरिष्टनेमि के पास धर्म सुनकर और उसे अपने हृदय में धारण कर हृष्ट तुष्ट यावत् भावपूर्ण हृदय से भगवान् को नमस्कार कर इस प्रकार बोली कि—

हे भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मेरी श्रद्धा है, आपका उपदेश यथार्थ है। जैसा आप फरमाते हैं, वह तत्त्व वैसा ही है। इसलिए मैं कृष्ण वासुदेव से पूछ कर आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूं। भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, परन्तु धर्मकार्यमें प्रमाद न करो।

उसके बाद पद्मावती रानी धार्मिक रथ पर चढ़कर द्वारिका नगरी की ओर लौटी और अपने महल के पास आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी, फिर जहां कृष्ण वासुदेव थे वहां गई। वहां जाकर उनके सामने हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—हे देवानुप्रिय! मैं भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूं। इसलिए आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करें। पद्मावती रानी की उपर्युक्त बात सुनकर कृष्ण वासुदेव ने कहा कि—हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा ही कार्य करो।

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक(सेवक)पुरुषों को बुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो! पद्मावती देवीके लिए शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सवकी विशाल तैयारी करो और तैयारी हो जाने पर मुझे सूचना दो। कृष्ण वासुदेवकी उपर्युक्त आज्ञा पाकर सेवकपुरुषों ने महोत्सव की तैयारी करके उसकी सूचना कृष्ण वासुदेव को दी।

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती को पाट पर बैठाकर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से स्नान करवाया यावत् दीक्षा का अभिषेक किया और सभी अलंकारोंसे अलंकृत करके हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली शिबिका (पालकी)

पर उसे बैठाकर द्वारिका नगरीके बीचोंबीच होते हुए जहां रैवतक पर्वत था वहां आकर पालकी को नीचे रक्खा, तब पद्मावती देवी पालकी से नीचे उतरी।

कृष्ण वासुदेव पद्मावती देवी को आगे करके जहां भगवान् अरिष्टनेमि थे वहां आये। वहां आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण करके वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार बोले कि हे भगवन्! यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है। यह मेरे लिए इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनाम-मनके अनुकूल कार्य करने वाली है, अभिराम—सुन्दर है। हे भगवन्! यह मेरे जीवन में श्वासोच्छ्वास के समान प्रिय है एवं मेरे हृदय को आनन्दित करने वाली है। इस प्रकार का स्त्री-रत्न उदुम्बर (गूलर) के फूलके समान सुनने के लिए भी दुर्लभ है, तो फिर देखने की तो बात ही क्या है? हे भगवन्! ऐसी पद्मावती देवी को मैं आपको शिष्या-रूप भिक्षा देता हूं। आप कृपया इस शिष्यारूप भिक्षा को स्वीकार करें। कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने फरमाया कि हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो।

इसके बाद पद्मावती देवी ने ईशानकोण में जाकर अपने हाथों से अपने शरीर पर के सभी आभूषण उतार दिये और स्वयमेव अपने केशों का पञ्चमुष्टिक लुञ्चन (लोच) करके जहां भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहां आकर उन्हें वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोली-हे भगवन्! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुःख रूपी अग्नि से प्रज्वलित है अतः इस दुःखसमूह से छुटकारा पाने के लिए मैं आपके पास दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूं। अतः आप कृपा करके मुझे प्रव्रजित कीजिये यावत् चारित्र-धर्म सुनाइये।

इसके बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रजित और मुण्डित करके यक्षिणी आर्या के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद यक्षिणी आर्या ने पद्मावती देवी को प्रव्रजित किया और संयम क्रिया में सावधान रहने की शिक्षा दी कि हे पद्मावती! तुम संयम में सदा सावधान रहना। पद्मावती भी यक्षिणी आर्या के कथनानुसार संयम में यत्न करने लगी और वह पद्मावती आर्या बनकर तथा ईर्यासमिति आदि पांचों समितियों से युक्त होकर ब्रह्मचारिणी बन गई।

इसके बाद पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और साथ ही साथ उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, पन्द्रह-पन्द्रह दिन की, महीने महीने तक की विविध प्रकार की तपस्या करती हुई विचरने लगी। पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना की और साठ भक्त अनशन करके जिस कार्य के लिए अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिए संयम लिया था, उस की आराधना कर अंतिम श्वास के बाद सिद्ध पद को प्राप्त किया॥६॥

॥ पंचम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन में जो भाव फरमाये वो मैंने आपके मुखारविन्द से सुने, परन्तु इसके बाद भगवान् ने दूसरे अध्ययन में क्या भाव फरमाये हैं, सो कृपा कर आप फरमाइये। श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया-हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के समीप ही रैवतक नामक पर्वत था, उस पर्वत पर नन्दन नामक एक मनोहर तथा विशाल उद्यान था। द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उनके गौरी नाम की रानी थी।

एक समय उस नन्दनवन उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव, भगवान् के दर्शन करने के लिए गये। परिषदा भी गई और गौरी रानी भी पद्मावती रानी के समान भगवान् के दर्शन करने के लिए गई। भगवान् ने धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर परिषद् अपने-अपने घर लौट गई और कृष्ण वासुदेव भी वापिस अपने महल में लौट गए। इसके बाद गौरी देवी, पद्मावती रानी के समान प्रव्रजित हुई और यावत् सिद्ध हो गई।

इसी प्रकार गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्ववती, सत्यभामा और रुक्मिणी का वर्णन समान रूप से जानना चाहिए। पद्मावती आदि आठों रानियां एक समान प्रव्रजित होकर सिद्ध हो गई। ये आठों कृष्ण वासुदेव की पटरानियां थीं। इस प्रकार ये आठों अध्ययन समाप्त हुए ॥१०॥

श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अध्ययन के जो भाव फरमाये वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ६वें अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं? सो कृपा करके आप फरमाइये। श्री सुधर्मास्वामी ने फरमाया कि हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी।। उस नगरी के समीप रैवतक नामक पर्वत था। वहां पर नन्दनवन नामक उद्यान था। उस नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। कृष्ण वासुदेव के पुत्र एवं जाम्ववती देवी के आत्मज, शाम्ब नामक पुत्र थे जो सर्वांग सुन्दर थे। उस शाम्बकुमार व.. रानी का नाम मूलश्री था, जो अत्यन्त सुन्दरी एवं कोमलांगी थी।

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहां पधारे। कृष्ण वासुदेव उनके दर्शन करने के लिए गए। मूलश्री भी पद्मावती के समान दर्शन करने के लिए गई। भगवान् ने धर्मकथा कही, धर्मकथा सुनकर परिषद् अपने घर लौट गई। कृष्ण वासुदेव भी भगवान् को वन्दन नमस्कार कर वापिस लौट गए। इसके बाद मूलश्री ने भगवान् से कहा-कि मैं कृष्ण वासुदेव से आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा

लेनी चाहती हूं। भगवान् ने फरमाया-हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

इसके वाद मूलश्री ने पद्मावती के समान दीक्षा लेकर तप संयम की आराधना करके सिद्ध पद को प्राप्त किया। मूलश्री के समान मूलदत्ता का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिए। यह शाम्बकुमार की दूसरी रानी थी ॥११॥

॥ पांचवाँ वर्ग समाप्त ॥

छठा वर्ग

श्री जम्बू स्वामीने सुधर्मा स्वामी से पूछा कि—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने पांचवें वर्ग के जो भाव फरमाए, वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने छठे वर्ग के क्या भाव फरमाए हैं ? सो कृपा कर आप मुझे फरमावें। श्री सुधर्मा स्वामीने फरमाया कि-हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने छठे वर्ग में सोलह अध्ययन फरमाए हैं। वे इस प्रकार हैं-१ मङ्काई, २ किंकम, ३ मुद्गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७ कैलाश, ८ हरिचन्दन, ९ वारत्त, १० सुदर्शन, ११ पूर्णभद्र, १२ सुमनोभद्र, १३ सुप्रतिष्ठ, १४ मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष्य; ये १६ अध्ययन हैं।

हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने इन सोलह अध्ययनों में से पहले अध्ययन में क्या भाव फरमाए हैं ?

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामीने फरमाया—हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उस नगर में मंकाई नाम का एक गाथापति रहता था। जो अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत था। अर्थात् उसका कोई पराभव नहीं कर सकता था।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशीलक उद्यान में पधारे। भगवान् का आगमन सुनकर परिषद् दर्शन करने के लिए निकली। मंकाई गाथापति भी भगवतीसूत्र वर्णित गंगदत्त के समान भगवान् के दर्शनार्थ निकला। भगवान् ने धर्मकथा फरमाई। जिसको सुनकर मंकाई गाथापति के हृदय में वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया। अपने घर आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर हजार मनुष्यों से उठाई जाने वाली पालकी में बैठकर दीक्षा लेने के लिए भगवान् के पास आए और यावत् वे अनगार हो गए।

इसके बाद मंकाई अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कन्द-

कजी के समान गुणरत्न तप का आराधन किया। सोलह वर्ष की दीक्षा—पर्याय का पालन करके अन्त में स्कन्दकजी के समान संथारा करके विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

दूसरे अध्ययन में किंकम गाथापति का वर्णन है। वे भी मंकाई के समान ही प्रव्रजित होकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१२॥

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामीने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा सूत्र के छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन के जो भाव फरमाये वे मैंने आपसे सुने, किन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तीसरे अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं, सो कृपा करके आप मुझे फरमाएं। सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—हे जम्बू! उस काल उस समयमें राजगृह नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह में अर्जुन नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम बन्धुमती था जो अत्यन्त सुकुमार थी।

राजगृह नगर के वाहर अर्जुन मालीका एक विशाल वगीचा था। वह वगीचा नीले पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़ी हुई घनघोर घटा के समान श्याम कांति से युक्त दिखाई देता था। उसमें पांचों वर्ण के फूल खिले हुए थे। अतएव मन को वड़ा प्रसन्न करने वाला एवं दर्शनीय था। उस वगीचे के पास ही मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। जो अर्जुन माली के पिता, पितामह (दादा), प्रपितामह (परदादा) आदि कुल परम्परा से चला आया था। उसमें मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा थी। उसके हाथमें एक हजार पल परिमाण (भार) वाला लोहे का मुद्गर था।

वह अर्जुन माली वाल्यकाल से ही उस मुद्गरपाणि यक्षका भक्त था और प्रतिदिन वेंत की वनी हुई छाबड़ी लेकर राजगृह नगर से वाहर निकलकर अपने वगीचे में जाता था और फूलों को चुन-चुन कर इकट्ठा करता था। इसके वाद उन फूलों में अच्छे-अच्छे वढ़िया—श्रेष्ठ फूल लेकर मुद्गरपाणि यक्षकी प्रतिमा के आगे चढ़ाता था। इस प्रकार वह उसकी पूजा करता था और भूमि पर दोनों घुटने टेक कर प्रणाम करता था। इसके वाद राजमार्ग के निकट वैठ कर फूल वेचता था। इस प्रकार आजीविका करता हुआ वह सुखपूर्वक जीवन बिताता था।

उस राजगृह नगर में 'ललित' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमण्डली) रहती थी जो अत्यन्त समृद्ध और अन्यकृत पराभवों से रहित थी। वह मित्रमण्डली

लेनी चाहती हूं। भगवान् ने फरमाया-हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

इसके बाद मूलश्री ने पद्मावती के समान दीक्षा लेकर तप संयम की आराधना करके सिद्ध पद को प्राप्त किया। मूलश्री के समान मूलदत्ता का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिए। यह शाम्बकुमार की दूसरी रानी थी ॥११॥

॥ पांचवाँ वर्ग समाप्त ॥

छठा वर्ग

श्री जम्बू स्वामीने सुधर्मा स्वामी से पूछा कि—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने पांचवें वर्ग के जो भाव फरमाए, वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने छठे वर्ग के क्या भाव फरमाए हैं ? सो कृपा कर आप मुझे फरमावें। श्री सुधर्मा स्वामीने फरमाया कि-हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने छठे वर्ग में सोलह अध्ययन फरमाए हैं। वे इस प्रकार हैं-१ मङ्काई, २ किंकम, ३ मुद्गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७ कैलाश, ८ हरिचन्दन, ९ वारत्त, १० सुदर्शन, ११ पूर्णभद्र, १२ सुमनोभद्र, १३ सुप्रतिष्ठ, १४ मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष्य; ये १६ अध्ययन हैं।

हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने इन सोलह अध्ययनों में से पहले अध्ययन में क्या भाव फरमाए हैं ?

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामीने फरमाया—हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उस नगर में मंकाई नाम का एक गाथापति रहता था। जो अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत था। अर्थात् उसका कोई पराभव नहीं कर सकता था।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशीलक उद्यान में पधारे। भगवान् का आगमन सुनकर परिषद् दर्शन करने के लिए निकली। मंकाई गाथापति भी भगवतीसूत्र वर्णित गंगदत्त के समान भगवान् के दर्शनार्थ निकला। भगवान् ने धर्मकथा फरमाई। जिसको सुनकर मंकाई गाथापति के हृदय में वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया। अपने घर आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर हजार मनुष्यों से उठाई जाने वाली पालकी में बैठकर दीक्षा लेने के लिए भगवान् के पास आए और यावत् वे अनगार हो गए।

इसके बाद मंकाई अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कन्द-

कजी के समान गुणरत्न तप का आराधन किया। सोलह वर्ष की दीक्षा—पर्याय का पालन करके अन्त में स्कन्दकजी के समान संथारा करके विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

दूसरे अध्ययन में किंकम गाथापति का वर्णन है। वे भी मंकाई के समान ही प्रव्रजित होकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१२॥

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामीने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़दशा सूत्र के छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन के जो भाव फरमाये वे मैंने आपसे सुने, किन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तीसरे अध्ययन के क्या भाव फरमाये हैं, सो कृपा करके आप मुझे फरमाएं। सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—हे जम्बू! उस काल उस समयमें राजगृह नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह में अर्जुन नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम वन्धुमती था जो अत्यन्त सुकुमार थी।

राजगृह नगर के वाहर अर्जुन मालीका एक विशाल वगीचा था। वह वगीचा नीले पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़ी हुई घनघोर घटा के समान श्याम कांति से युक्त दिखाई देता था। उसमें पांचों वर्ण के फूल खिले हुए थे। अतएव मन को वड़ा प्रसन्न करने वाला एवं दर्शनीय था। उस वगीचे के पास ही मुद्‌गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। जो अर्जुन माली के पिता, पितामह (दादा), प्रपितामह (परदादा) आदि कुल परम्परा से चला आया था। उसमें मुद्‌गरपाणि यक्ष की प्रतिमा थी। उसके हाथमें एक हजार पल परिमाण (भार) वाला लोहे का मुद्‌गर था।

वह अर्जुन माली वाल्यकाल से ही उस मुद्‌गरपाणि यक्षका भक्त था और प्रतिदिन वेंत की वनी हुई छावड़ी लेकर राजगृह नगर से वाहर निकलकर अपने वगीचे में जाता था और फूलों को चुन-चुन कर इकट्ठा करता था। इसके वाद उन फूलों में अच्छे-अच्छे वढ़िया—श्रेष्ठ फूल लेकर मुद्‌गरपाणि यक्षकी प्रतिमा के आगे चढ़ाता था। इस प्रकार वह उसकी पूजा करता था और भूमि पर दोनों घुटने टेक कर प्रणाम करता था। इसके वाद राजमार्ग के निकट वैठ कर फूल वेचता था। इस प्रकार आजीविका करता हुआ वह सुखपूर्वक जीवन विताता था।

उस राजगृह नगर में 'ललित' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमण्डली) रहती थी जो अत्यन्त समृद्ध और अन्यकृत पराभवों से रहित थी। वह मित्रमण्डली

मनमाने कार्य करनेमें स्वच्छन्द थी। एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव की घोषणा हुई, जिससे अर्जुन माली ने विचार किया कि कल उत्सव में अधिक फूलों की आवश्यकता होगी, इसलिए वह सुवह जल्दी ही उठा और अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ छावड़ी लेकर घर से निकला और राजगृह के वीचोंवीच होता हुआ अपने वगीचे में पहुँचा। वहां जाकर अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ फूलों को चुनकर एकत्रित करने लगा।

उस समय पूर्वोक्त ललित गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष, मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आकर क्रीड़ा कर रहे थे। उधर अर्जुन माली, अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ फूलों को लेकर मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा के लिये उसके यक्षायतन की ओर जा रहा था।

वन्धुमती भार्या के साथ आते हुए अर्जुन माली को देखकर उन छहों गोष्ठिक पुरुषों ने परस्पर विचार किया कि—हे मित्रो! यह अर्जुनमाली अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ यहां आ रहा है। इसलिए हम लोगों को उचित है कि इस अर्जुनमाली को औंधी मुश्कियों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से वलपूर्वक वांधकर लुढ़का दें और फिर इसकी भार्या से विपुल भोग भोगें। इस प्रकार परस्पर विचार करके वे छहों किवाड़ों के पीछे छिप गए और निश्चल एवं सांस रोक कर चुपचाप खड़े हो गए।

इसके वाद वह अर्जुनमाली अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आया। आकर भक्ति-भाव से प्रफुल्लित नेत्रों द्वारा मुद्गरपाणि यक्ष की तरफ देखा और प्रणाम किया। फूल चढ़ाकर दोनों घुटने टेक कर प्रणाम करने लगा। उसी समय उन छहों गोष्ठिक पुरुषों ने जल्दी से किवाड़ों के पीछे से निकल कर अर्जुनमाली को पकड़ लिया और औंधी मुश्कें वांधकर उसे एक तरफ लुढ़का दिया। उसके वाद उसके सामने ही उसकी पत्नी वन्धुमती के साथ विविध प्रकार से भोग भोगने लगे।

ऐसा देखकर अर्जुनमाली के हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं वाल्यकालसे ही अपने इष्टदेव मुद्गरपाणि यक्षकी पूजा प्रतिदिन करता आ रहा हूं। इसकी पूजा करने के वाद ही आजीविका के लिए सड़क के किनारे फूल वेचने के लिए जाता हूं और फूल वेचकर ही निर्वाह करता हूं। आज मुझे ऐसा सन्देह होता है कि यदि मुद्गरपाणि यक्ष यहां होता तो क्या वह इस प्रकारकी आपत्ति में पड़े हुए मुझको देख सकता था? इसलिए निश्चय होता है कि यहां मुद्गरपाणि यक्ष हाजिर नहीं है। अपितु यह तो काष्ठ मात्र है।

तव मुद्गरपाणि यक्षने अर्जुनमालीके मनमें आये हुए विचारोंको जानकर उसके शरीरमें प्रवेश किया और तड़तड़ करके उसके वन्धनोंको तोड़ डाला।

उसके वाद मुद्गरपाणि यक्षसे आविष्ट उस अर्जुनमालीने एक हजार पल परिमाण (साढ़े वासठ सेर) लोहके मुद्गरको लेकर वन्धुमती सहित उन छहों गोष्ठिक पुरुषोंको मार डाला।

इस प्रकार इन सातोंको मारकर मुद्गरपाणि यक्षसे आविष्ट वह अर्जुनमाली राजगृह नगरीकी वाहरी सीमामें प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री, इस प्रकार सात व्यक्तियोंको मारता हुआ रहने लगा। उस समय राजगृह नगरके राजमार्ग आदि सभी स्थलोंमें वहुतसे व्यक्ति एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे कि हे देवानुप्रिय ! अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट होकर राजगृह नगर के आस-पासमें एक स्त्री और छह पुरुष—इस प्रकार सात व्यक्तियोंको प्रतिदिन मारता है ।

इस समाचार को सुनकर राजा श्रेणिकने अपने सेवक पुरुषोंको वुलाया और इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रिय ! अर्जुनमाली राजगृहके वाहर आस-पास में प्रतिदिन एक स्त्री और छह पुरुष—इस प्रकार सात व्यक्तियोंको मारता है। इसलिए तुम लोग मेरी आज्ञाको सारे नगर में इस प्रकार घोषित करो कि—यदि तुम लोगोंकी इच्छा जीवित रहने की है, तो तुम लोग घासके लिए, लकड़ी के लिए, पानी के लिए और फल-फूलके लिए राजगृह नगरसे वाहर मत निकलो। यदि तुम लोग कहीं वाहर निकले तो ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीरका विनाश हो जाय। हे देवानुप्रियो ! दो तीन वार घोषणा करके मुझे सूचित करो। इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर उन सेवकजनों ने राजगृह नगरमें घूम २ कर उपरोक्त घोषणा की। घोषणा करके राजाको वापिस सूचित कर दिया।

उस राजगृह नगरमें सुदर्शन नामक एक सेठ रहते थे। वे ऋद्धि-सम्पन्न और अपराभूत थे। वे श्रमणोपासक—श्रावक थे तथा जीवाजीवादि नव तत्वोंके ज्ञाता थे। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। उनके पधारने के समाचार जानकर राजगृह नगरके राजमार्ग आदि स्थानोंमें वहुतसे मनुष्य एक-दूसरे से इस प्रकार कहने लगे कि—हे देवानुप्रिय ! भगवान् महावीर स्वामी यहां पधारे हैं। जिनके नाम गोत्र श्रवण से भी महाफल होता है, तो फिर उनके दर्शन करने से, वाणी सुनने से तथा उनके द्वारा प्ररूपित विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है उसका तो कहना ही क्या ? अर्थात् वह तो अवर्णनीय है।

इस प्रकार वहुतसे मनुष्योंके मुखसे भगवान्‌के पधारनेका समाचार सुनकर सुदर्शन सेठके हृदय में इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगरके वाहर गुणशीलक वगीचेमें पधारे हैं। इसलिए मुझे उचित है कि मैं भगवान्‌के दर्शनोंके लिए जाऊं। इस प्रकार विचार कर अपने माता-

पिता के पास आये और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले कि—हे माता-पिता ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहां राजगृहके वाहर गुणशीलक उद्यानमें पधारे हैं, इसलिए मैं उन्हें वन्दना नमस्कार करने के लिए जाना चाहता हूं।

सुदर्शन सेठके द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! अर्जुनमाली राजगृह नगरके वाहर मनुष्योंको मारता हुआ घूम रहा है। इसलिए हे पुत्र ! तुम भगवान्को वन्दना करने के लिए नगरसे वाहर मत जाओ। वहां जाने से न जाने तुम्हारे शरीर पर कोई आपत्ति आ जाए। इसलिए तुम यहीं से भगवान् को वन्दना नमस्कार कर लो।

माता-पिता के उपरोक्त वचन सुनकर सुदर्शन सेठ इस प्रकार वोले कि-हे माता-पिता ! जब कि श्रमण भगवान् म० यहां पधारे हैं, विराजित है और यहां समवसृत है अर्थात् यहां समवसरण लगा है तो भी मैं उनको यहीं से वन्दन नमस्कार करूं और उनकी सेवा में उपस्थित न होऊं। यह कैसे हो सकता है ? मैं भगवान् के दर्शन करने के लिए जाना चाहता हूं। इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मैं वहां जाकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करूं यावत् पर्युपासना-सेवा करूं।

उस के वाद सुदर्शन सेठ को जव उसके माता-पिता अनेक प्रकार की युक्तियों से भी नहीं समझा सके, तो उन्होंने अनिच्छापूर्वक इस प्रकार कहा कि-"हे पुत्र ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो"। इस प्रकार माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने स्नान किया और शुद्ध वस्त्र धारण किए। इसके वाद वे भगवान् के दर्शन करने के लिए अपने घर से निकले और पैदल ही राजगृह नगर के बीचोंबीच होते हुए मुद्गरपाणि यक्षके यक्षायतनसे न अति दूर न अति निकट होकर गुणशीलक उद्यान में जाने लगे। सुदर्शन श्रमणोपासक को जाते हुए देखकर मुद्गरपाणि यक्ष कुपित हुआ और एक हजार पल के लोहमय मुद्गर को घुमाता हुआ सेठ की ओर जाने लगा।

उस समय वे सुदर्शन सेठ, मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी तरफ आता हुआ देखकर जरा भी भय, त्रास, उद्वेग और क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए। उनका हृदय जरा भी विचलित और सम्भ्रान्त नहीं हुआ। उन्होंने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि को प्रमार्जन किया और मुख पर उत्तरासंग धारण करके पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके वाएं घुटने को ऊंचा करके दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि पुट रख कर इस प्रकार वोले कि—नमस्कार हो उन अरिहन्तों को जो मोक्ष में पधार गए हैं और नमस्कार हो श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको जो मोक्षमें पधारने वाले हैं। मैंने पहले महावीर स्वामीके पास स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का यावज्जीवन त्याग किया था। स्वदार-संतोष और इच्छा-परिमाण रूप अणुव्रतोंको धारण किया था। अव इस समय उन्हीं भगवान् महावीर

स्वामी की साक्षी से यावज्जीवन प्राणातिपात का सर्वथा त्याग करता हूं। इसी प्रकार मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का यावज्जीवन त्याग करता हूं; और क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारहों पापों का यावज्जीवन के लिये त्याग करता हूं। अशन, पान, खादिम, स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन त्याग करता हूं।

यदि मैं इस उपसर्ग से बचूंगा तो मेरे आगार है और यदि नहीं बचूं, तो उपरोक्त रूप से यावज्जीवन के लिए त्याग है। ऐसा मन में निश्चय कर सुदर्शन सेठ ने सागारी अनशन धारण कर लिया।

इसके बाद वह मुद्गरपाणि यक्ष एक हजार मन के बने हुए उस लोहे के मुद्गर को घुमाता हुआ सुदर्शन श्रमणोपासक के पास आया, किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उन्हें किसी प्रकार से कष्ट नहीं पहुंचा सका।

वह मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक के चारों ओर घूमता हुआ जब किसी भी प्रकारसे उनके उपर अपना बल नहीं चला सका,तब वह यक्ष सु० श्रमणोपासक के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से उनकी ओर बहुत देर तक देखता रहा। इसके बाद वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर को छोड़कर हजार पलके लोहमय मुद्गर को छोड़कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया।

अर्जुनमाली उस मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही 'धस' (धड़ाम) इस प्रकार के शब्द के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय सुदर्शन सेठने अपने आपको उपसर्ग-रहित जान कर अपनी प्रतिज्ञा को पा(रा)ला (और उस पड़े हुए अर्जुन माली को सचेष्ट करने के लिए प्रयत्न करने लगे)।

वह अर्जुनमाली कुछ समय के बाद स्वस्थ होकर खड़ा हुआ और सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला कि-हे देवानुप्रिय! आप कौन हैं और कहां जा रहे हैं? यह सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा—हे देवानुप्रिय! मैं जीवाजीवादि नौ तत्वों का ज्ञाता सुदर्शन नामक श्रमणोपासक हूं और मैं गुणशीलक उद्यान में पधारे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करने के लिए जा रहा हूं।

यह सुनकर अर्जुनमाली सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला-हे देवानुप्रिय! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करने के लिए यावत् पर्युपासना करने के लिए चलना चाहता हूं। सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा-हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमाली के साथ गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और तीन बार आदक्षिण

प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन नमस्कार कर सेवा करने लगे। भगवान् महावीर स्वामी ने उन दोनों को धर्मकथा सुनाई। धर्मकथा सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक अपने घर चले गये।

इसके बाद वह अर्जुनमाली श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-कथा सुनकर और उसे हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हृदय से इस प्रकार बोला कि-हे भगवन् ! आप द्वारा फरमाई हुई धर्मकथा को सुनकर मुझे उस पर श्रद्धा उत्पन्न हुई है। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं। रुचि करता हूं। इसलिए हे भगवन्! मैं आपके पास दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं। भगवान् ने कहा-हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो। भगवान् के ये वचन सुनकर अर्जुनमाली ईशान कोण में गये और स्वयमेव पञ्चमुष्टि लोच करके अनगार बन गये।

वे अर्जुन अनगार, जिस दिन प्रव्रजित हुए उसी दिन श्रमण भगवान् महा-वीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके भगवान् के पास ऐसा अभिग्रह धारण किया-मैं यावज्जीवन अन्तररहित वेले-२ पारणा करता हुआ और इस प्रकार की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरूंगा। ऐसा अभिग्रह लेकर अर्जुन अनगार विचरने लगे।

उसके वाद अर्जुन अनगार ने वेले के पारणे के दिन पहले पहर में स्वाध्याय किया, दूसरे पहर में ध्यान किया और तीसरे पहर में गौतमस्वामी के समान गोचरी गये। राजगृह नगर में ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा के लिए फिरते हुए अर्जुन अनगार को देखा तो स्त्री, पुरुष, वच्चे, बूढ़े और जवान सभी लोगों में से कोई इस प्रकार कहने लगे कि-इसने मेरे पिता को मारा, इसने मेरी माता को मारा, इसने मेरे भाई को मारा, इसने मेरी वहन को मारा, इसने मेरी पत्नी को मारा, इसने मेरे पुत्र को मारा, इसने मेरी पुत्री को मारा, इसने मेरी पुत्रवधू को मारा, इसने मेरे अमुक स्वजन सम्वन्धी को मारा। ऐसा कह कर कोई कटु वचनों से उनका तिरस्कार करने लगे, कोई निन्दा करने लगे, कोई उनको खिझाने लगे, कोई उनके दोषों को प्रकट करने लगे, कोई उन्हें तर्जना करने लगे और कोई उन्हें थप्पड़, लाठी, ईट आदि से मारने लगे।

उन वहुत सी स्त्रियों से, पुरुषों से, वच्चों से, वृद्धों और तरुणों से तिरस्कृत यावत् ताड़ित वे अर्जुन अनगार, उन पर मनसे भी द्वेष न करते, परन्तु उनके दिए हुए आक्रोश आदि परीषहों को समभाव से सहन करने लगे अर्थात् वे उन परीषह उपसर्ग आदि देने वालों के प्रति जरा भी क्रोध नहीं करके क्षमाभाव धारण करके एवं दीनभाव से रहित मध्यस्थ भावना से विचरने लगे। तथा निर्जरा की भावना से सभी परीषह उपसर्गो को समभावपूर्वक सहन करने लगे।

इस प्रकार सभी परीषह उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करते हुए ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षाके लिए विचरते हुए उन अर्जुन अनगार को कहीं आहार मिलता था तो पानी नहीं मिलता था, पानी मिलता था तो आहार नहीं मिलता था।

इस प्रकार रूखा सूखा जैसा भी आहार मिल जाता उसे अदीन, अविमन, अकलुष, अक्षोभित तथा विषाद एवं तनमनाट आदि विक्षेप भावों से सर्वथा दूर रह कर ग्रहण करते। ग्रहण करके राजगृह नगर से निकल कर गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर उनको आहार पानी दिखाते और दिखाकर और उनकी आज्ञा प्राप्त कर गृद्धिपन से रहित, जिस प्रकार सांप विल में प्रवेश करता है उसी प्रकार राग द्वेष रहित हो उस आहार पानी का सेवन कर संयम निर्वाह करते थे।

इसके बाद किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशीलक उद्यान से निकल कर वाहर जनपद में विचरने लगे। उन महाभाग अर्जुन अनगार ने भगवान् द्वारा दिये हुए तथा स्वयं की उत्कृष्ट भावना से स्वीकार किये हुए अत्यन्त प्रभावशाली उस उदार, विपुल एवं प्रधान तप:कर्म से आत्मा को भावित करते हुए छह महीने तक चारित्रपर्याय का पालन किया। अर्द्धमास की संलेखना कर, तीस भक्त अनशन से छेदित कर, जिस कार्य के लिए संयम अंगीकार किया था, उसको सिद्ध कर लिया अर्थात् अव्यावाध सुख सम्पन्न मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥१३॥

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा० से पूछा कि–हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने छठे वर्ग के तीसरे अध्ययन में जो भाव फरमाए, वे मैंने सुने। अब चौथे अध्ययन में क्या भाव फरमाए हैं। सो कृपा करके आप फरमाएं। श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। राजगृह नगर के वाहर गुणशीलक उद्यान था। श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उस नगर में काश्यप नाम का एक गाथापति रहता था। उसने भगवान् महावीर स्वामी के पास मंकाई गाथापति के समान दीक्षा अंगीकार की। सोलह वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥४॥

इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का भी चरित्र है। ये काकन्दी नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर १६ वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥५॥ इसी प्रकार धृतिधर

गाथापति का भी वर्णन है। ये काकन्दी नगरीके रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर सोलह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥६॥

इसी प्रकार कैलाश गाथापति का भी चरित्र है। ये साकेत नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥७॥ इसी प्रकार हरिचन्दन गाथापति का भी वर्णन है। ये साकेत······सिद्ध हुए ॥८॥ इसी प्रकार वारत्तक गाथापति का भी वर्णन है। ये राजगृह नगर के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक श्रमण—पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥६॥

इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति का भी वर्णन है। ये वाणिज्यग्राम के रहने वाले थे। ग्राम के बाहर द्युतिपलाश नामक उद्यान था। भगवान् के पास दीक्षा लेकर पांच वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१०॥ इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति का भी वर्णन है। ये वाणिज्यग्राम के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर पांच वर्ष तक श्रमणपर्याय···सिद्ध हुए ॥११॥

इसी प्रकार सुमनभद्र गाथापति का भी वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१२॥ इसी प्रकार सुप्रतिष्ठ गाथापति का भी वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर सत्ताइस वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१३॥

इसी प्रकार मेघ गाथापति का भी वर्णन है। ये राजगृह के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१४॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामीने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवन्! चौदहवें अध्ययन का भाव मैंने आपसे सुना। अब कृपा कर पन्द्रहवें अध्ययन के भाव फरमाइये। श्री सुधर्मास्वामी ने कहा–हे जम्बू! उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था। वहां श्रीवन नामक उद्यान था। उस पोलासपुर नगर में विजय नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। वह सर्वांग सुन्दर थी। विजय राजा के पुत्र तथा श्रीदेवी के आत्मज अतिमुक्तक नामक कुमार था। वह अयन्त सुकुमार था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्रीवन नामक उद्यान में पधारे। उस समय भगवान् के ज्येष्ठ अंतेवासी (शिष्य) इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) भगवान् को पूछ कर व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र के वर्णन के अनुसार पोलासपुर नगर में ऊंच-नीच, मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे।

उसी समय अतिमुक्तक कुमार स्नान करके अलंकारों से अलंकृत होकर वहुत से लड़के लड़कियों, वालक वालिकाओं, कुमार कुमारियों के साथ अपने घर से निकल कर इन्द्रस्थान (वालकों के खेलने के स्थान) पर आये और उन सभी के साथ खेलने लगे। उसी समय भगवान् गौतम स्वामी पोलासपुर नगर के ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उस इन्द्रस्थान के समीप होकर निकले। भगवान् गौतम स्वामी को आते हुए देखकर अतिमुक्तक कुमार उनके पास गये और इस प्रकार वोले—हे भगवन्! आप कौन हैं? और किस कारण से घूम रहे हैं?

अतिमुक्तक कुमार का यह प्रश्न सुनकर गौतम स्वामी ने इस प्रकार फरमाया—हे देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं। हम लोग ईर्यासमिति आदि पांच समितियों से युक्त यावत् पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं तथा हम लोग ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए गोचरी करते हैं। यह सुनकर अतिमुक्तक कुमार ने गौतम स्वामी से कहा कि हे भगवन्! आप मेरे साथ पधारें। मैं आपको भिक्षा दिलाता हूं। ऐसा कह कर उसने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उन्हें अपने घर ले गया।

उन्हें आता देख कर श्रीदेवी रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई और आसन से उठ कर सात आठ कदम आगे गई और भगवान् गौतम स्वामी को तीन वार विधिसहित वन्दना नमस्कार किया, फिर उच्च भावों से आदर सहित अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारों ही प्रकार का आहार वहराया और उन्हें विसर्जित किया अर्थात् भवन द्वार तक उन्हें पहुँचाने गई।

इसके वाद अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा कि—हे भगवन्! आप कहां रहते हैं? गौतम स्वामीने फरमाया कि हे देवानुप्रिय! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक धर्म की आदि के करने वाले यावत् मोक्ष के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर इस पोलासपुर नगर के वाहर श्रीवन उद्यान में कल्पानुसार अवग्रह लेकर तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विराजते हैं। मैं वहीं पर उनके पास रहता हूं। यह सुनकर अतिमुक्तक कुमार ने कहा कि हे भगवन्! मैं भी आपके साथ भगवान् के दर्शन करने के लिए चलूं। गौतम स्वामी ने कहा—हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

गाथापति का भी वर्णन है। ये काकन्दी नगरीके रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर सोलह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥६॥

इसी प्रकार कैलाश गाथापति का भी चरित्र है। ये साकेत नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥७॥ इसी प्रकार हरिचन्दन गाथापति का भी वर्णन है। ये साकेत······सिद्ध हुए ॥८॥ इसी प्रकार वारत्तक गाथापति का भी वर्णन है। ये राजगृह नगर के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक श्रमण—पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥९॥

इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति का भी वर्णन है। ये वाणिज्यग्राम के रहने वाले थे। ग्राम के बाहर द्युतिपलाश नामक उद्यान था। भगवान् के पास दीक्षा लेकर पांच वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१०॥ इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति का भी वर्णन है। ये वाणिज्यग्राम के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर पांच वर्ष तक श्रमणपर्याय···सिद्ध हुए ॥११॥

इसी प्रकार सुमनभद्र गाथापति का भी वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१२॥ इसी प्रकार सुप्रतिष्ठ गाथापति का भी वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर सत्ताइस वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१३॥

इसी प्रकार मेघ गाथापति का भी वर्णन है। ये राजगृह के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ॥१४॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥

जम्बू स्वामीने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवन् ! चौदहवें अध्ययन का भाव मैंने आपसे सुना। अब कृपा कर पन्द्रहवें अध्ययन के भाव फरमाइये। श्री सुधर्मास्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था। वहां श्रीवन नामक उद्यान था। उस पोलासपुर नगर में विजय नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। वह सर्वांग सुन्दर थी। विजय राजा के पुत्र तथा श्रीदेवी के आत्मज अतिमुक्तक नामक कुमार था। वह अयन्त सुकुमार था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्रीवन नामक उद्यान में पधारे। उस समय भगवान् के ज्येष्ठ अंतेवासी (शिष्य) इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) भगवान् को पूछ कर व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र के वर्णन के अनुसार पोलासपुर नगर में ऊंच-नीच, मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे।

उसी समय अतिमुक्तक कुमार स्नान करके अलंकारों से अलंकृत होकर वहुत से लड़के लड़कियों, वालक वालिकाओं, कुमार कुमारियों के साथ अपने घर से निकल कर इन्द्रस्थान (वालकों के खेलने के स्थान) पर आये और उन सभी के साथ खेलने लगे। उसी समय भगवान् गौतम स्वामी पोलासपुर नगर के ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उस इन्द्र-स्थान के समीप होकर निकले। भगवान् गौतम स्वामी को आते हुए देखकर अति-मुक्तक कुमार उनके पास गये और इस प्रकार वोले—हे भगवन्! आप कौन हैं? और किस कारण से घूम रहे हैं?

अतिमुक्तक कुमार का यह प्रश्न सुनकर गौतम स्वामी ने इस प्रकार फरमाया—हे देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं। हम लोग ईर्यासमिति आदि पांच समितियों से युक्त यावत् पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं तथा हम लोग ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए गोचरी करते हैं। यह सुनकर अतिमुक्तक कुमार ने गौतम स्वामी से कहा कि हे भगवन्! आप मेरे साथ पधारें। मैं आपको भिक्षा दिलाता हूं। ऐसा कह कर उसने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उन्हें अपने घर ले गया।

उन्हें आता देख कर श्रीदेवी रानी अप्यन्त प्रसन्न हुई और आसन से उठ कर सात आठ कदम आगे गई और भगवान् गौतम स्वामी को तीन बार विधि-सहित वन्दना नमस्कार किया, फिर उच्च भावों से आदर सहित अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारों ही प्रकार का आहार वहराया और उन्हें विसर्जित किया अर्थात् भवन द्वार तक उन्हें पहुँचाने गई।

इसके वाद अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा कि—हे भगवन्! आप कहां रहते हैं? गौतम स्वामीने फरमाया कि हे देवानुप्रिय! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक धर्म की आदि के करने वाले यावत् मोक्ष के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर इस पोलासपुर नगर के वाहर श्रीवन उद्यान में कल्पा-नुसार अवग्रह लेकर तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विराजते हैं। मैं वहीं पर उनके पास रहता हूं। यह सुनकर अतिमुक्तक कुमार ने कहा कि हे भगवन्! मैं भी आपके साथ भगवान् के दर्शन करने के लिए चलूं। गौतम स्वामी ने कहा—हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

तब अतिमुक्तक कुमार गौतम स्वामी के साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां गए। वहां जाकर भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार विधिपूर्वक वंदना नमस्कार करके उपासना करने लगे। उस समय गौतम स्वामी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आए और आहार दिखाया। दिखाकर आहार पानी कर लेने के बाद संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उधर भगवान् महावीर स्वामी ने अतिमुक्तक कुमार को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर अतिमुक्तक कुमार अत्यन्त हृष्ट तुष्ट होकर इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूं। भगवान् ने फरमाया—हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य में प्रमाद मत करो।

इसके बाद अतिमुक्तक कुमार अपने माता-पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे कि—हे माता पिता ! आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेना चाहता हूं। पिता ने कहा कि हे पुत्र ! तुम अभी बच्चे हो, अभी तक तुमने तत्वों को नहीं जाना है। अतः हे पुत्र ! तुम धर्म को क्या जानते हो ? यह सुनकर अतिमुक्तक कुमार ने कहा—हे माता-पिता ! मैं जिसे जानता हूं, उसे नहीं जानता हूं और जिसे नहीं जानता हूं, उसे जानता हूं। अतिमुक्तक कुमार की यह बात सुनकर उसके माता पिता ने कहा कि—हे पुत्र ! तुमने यह क्या बात कही कि—जिसे मैं जानता हूं, उसे नहीं जानता हूं, और जिसे नहीं जानता हूं, उसे जानता हूं। इसका क्या अभिप्राय है ?

माता पिता के उपरोक्त वचनों को सुनकर अतिमुक्तक कुमार इस प्रकार बोले कि—हे माता पिता ! मैं इतना जानता हूं कि जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा, किन्तु यह नहीं जानता कि वह किस काल में, किस स्थान पर, किस प्रकार से और कितने समय के बाद मरेगा। इसी प्रकार हे माता पिता ! मैं यह नहीं जानता कि किन कर्मों द्वारा जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव योनि में उत्पन्न होते हैं, परन्तु इतना अवश्य जानता हूं कि जीव अपने ही कर्मों द्वारा इन योनियों में उत्पन्न होते हैं। हे माता पिता ! मैंने इसलिए कहा था कि जिसको मैं नहीं जानता हूं, उसको जानता हूं और जिसको जानता हूं उसको नहीं जानता हूं। इसलिए हे माता पिता ! आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेना चाहता हूं।

इसके बाद माता पिता अतिमुक्त कुमार को अनेक प्रकारकी युक्तियों और प्रयुक्तियों से भी संयम के दृढ़भाव से नहीं हटा सके, तब उन्होंने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! हम लोग एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री को देखना चाहते हैं। यह सुन कर अतिमुक्तक कुमार मौन रहे, तब माता पिता ने उन

का राज्याभिषेक—महावल के समान किया यावत् अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। फिर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और वहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया तथा गुणरत्न संवत्सर आदि तपस्याएं कीं। अन्त में संथारा कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥

जम्वू स्वामीने सुधर्मा स्वामी से पूछा–हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्ररूपित छठे वर्ग के पंद्रहवें अध्ययन का भाव मैंने आपके श्रीमुखसे सुना। अव कृपा करके सोलहवें अध्ययनके भाव फरमावें। सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्वू! उस काल उस समय में वाराणसी नाम की नगरी थी। वहां काम-महावन नामक एक उद्यान था। अलक्ष नाम का राजा राज्य करता था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणारसी नगरी के वाहर काममहावन उद्यान में पधारे। परिषद् उनके दर्शनों के लिए निकली। महाराजा अलक्ष भी कोणिक राजा के समान भगवान् के दर्शन करने के लिए गए। वहां जाकर वन्दना नमस्कार कर भगवान् की सेवा करने लगे। भगवान् ने धर्मकथा फरमाई।

धर्मकथा सुनकर राजा अलक्ष के हृदय में वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया। इसके वाद अलक्ष राजा ने भगवान् के पास उदायन राजा के समान दीक्षा अंगीकार की। उदायन की प्रव्रज्या और इनकी प्रव्रज्या में इतना फर्क है कि उदायन राजा ने तो अपना राज्य अपने भानजेको दिया था। और इन्होंने (अलक्ष राजा) ने अपना राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र को देकर दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा लेने के वाद इन्होंने ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया तथा वहुत वर्षों तक चरित्रपर्याय का पालन किया। अन्त में ये विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्वू स्वामी से कहते हैं कि—हे आयुष्मन् जम्वू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड़सूत्र के छठे वर्ग के ये भाव फरमाए हैं, सो जैसा मैंने उनसे सुना वैसा तुम्हें कहा है॥१५॥

॥ छठा वर्ग समाप्त ॥

सातवां वर्ग

···श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अन्तगड़सूत्रके छठे वर्गके जो भाव फरमाये, वे मैंने आपके श्रीमुखसे सुने। अव कृपाकर यह फरमाइये कि—भगवान्ने सातवें वर्गके क्या भाव फरमाये हैं? सुधर्मास्वामीने फरमाया—हे जम्वू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने सातवें वर्गमें तेरह अध्ययन फरमाये हैं। वे इस प्रकार

हैं—(१) नन्दा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरुता, (६) सुमरुता, (७) महमरुता, (८) मरुद्देवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमनातिका और (१३) भूतदत्ता।

ये तेरह नाम श्रेणिक राजाकी रानियोंके हैं। सातवें वर्गके तेरह अध्ययन इन्हींके नामके हैं। जम्बूस्वामीने फिर पूछा—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने सातवें वर्गमें तेरह अध्ययन फरमाये हैं, उनमें से प्रथम अध्ययनमें क्या भाव फरमाये है ?

सुधर्मा स्वामीने फरमाया कि हे जम्बू ! उस काल उस समयमें राजगृह नामका नगर था। उसके बाहर गुणशीलक उद्यान था। वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम नन्दा था। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। परिषद् उनके दर्शनोंके लिए निकली। भगवान्का आगमन सुनकर महारानी नन्दा अत्यन्त हृष्ट तुष्ट एवं प्रसन्न हुई। उसने सेवक पुरुषोंको बुलाया और धार्मिक रथ सजाकर लाने की आज्ञा दी। तदनुसार वे धार्मिक रथ सजाकर लाये, उस पर चढ़कर नन्दा रानी, पद्मावती रानीके समान भगवान्के दर्शन करनेके लिए गई। भगवान्ने धर्मकथा फरमाई, जिसे सुनकर उसे वैराग्य-भाव पैदा हो गया। महाराजा श्रेणिक की आज्ञा लेकर उसने भगवान्के पास दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह अंगोंका अध्ययन कर वीस वर्ष तक चारित्र-पर्यायका पालन किया और अन्तमें सिद्ध हो गई। इसी प्रकार नन्दवती आदि बारहों अध्ययनोंका भाव जानना चाहिए। हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने सातवें वर्गके इस प्रकार भाव फरमाये हैं ॥१६॥

॥ सातवां वर्ग समाप्त ॥

आठवां वर्ग

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीसे पूछते हैं कि–हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंगके सातवें वर्गमें जो भाव कहे वे मैंने आप से सुने। आठवें वर्गमें भगवान्ने क्या भाव फरमाए हैं सो कृपा कर आप फरमाइये। श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अन्तकृतदशा सूत्रके आठवें वर्गमें दस अध्ययनोंका कथन किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं–(१) काली, (२) सुकाली, (३) महाकाली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) रामकृष्णा, (९) पितृसेनकृष्णा और (१०) महासेनकृष्णा।

जम्बू स्वामीने फिर पूछा कि—हे भगवन् ! आठवें वर्गके दस अध्ययनोंमें से पहले अध्ययनमें भगवान्ने क्या भाव फरमाए हैं ? सुधर्मा स्वामीने कहा—हे जम्बू ! उस काल उस समयमें चम्पा नामकी नगरी थी। वहां पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। वहां कोणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा की रानी एवं

कोणिक राजा की लघुमाता 'काली' देवी थी। उस काली रानीने नंदा रानीके समान श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास दीक्षा लेकर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। वह उपवास वेला तेला आदि वहुत सी तपस्या करती हुई विचरने लगी।

एक दिन वह काली आर्या, चन्दनवाला आर्या के पास आई। हाथ जोड़कर विनयपूर्वक वोली कि–हे पूज्या! आप की आज्ञा लेकर मैं रत्नावली तपस्या करना चाहती हूं। तव चन्दनवाला आर्याने उत्तर दिया कि–हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्यमें प्रमाद मत करो। आर्या चन्दनवाला की आज्ञा लेकर काली आर्या, रत्नावली तपस्या करने लगी।

काली आर्याने रत्नावली तपस्या इस प्रकार की। पहले उपवास किया और पारणा किया। पारणोंमें विगयों का सेवन वर्जित नहीं था। पारणा करके वेला किया। फिर पारणा करके तेला किया, फिर आठ वेले किए। फिर उपवास किया फिर वेला किया। फिर तेला किया। इस प्रकार अन्तररहित चौला कया, पांच किए, छः किए, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, वारह, तेरह, चौदह, पंद्रह और सोलह किए। फिर चौंतीस वेले किए।

फिर पारणा करके सोलह दिन की तपस्या की—पारणा करके फिर पंद्रह दिन की तपस्या की। इस प्रकार पारणा करती हुई क्रमशः चौदह, तेरह, वारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छः, पांच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। पारणा करके फिर आठ वेले किए। पारणा करके तेला किया। पारणा करके फिर वेला किया। फिर पारणा करके उपवास किया, फिर पारणा किया।

इस प्रकार काली आर्याने रत्नावली तप की एक परिपाटी (लड़ी) की आराधना की। रत्नावली की यह एक परिपाटी एक वर्ष तीन महीने वाईस दिन में पूर्ण होती है। इस एक परिपाटी में ३८४ दिन तपस्याके और ८८ दिन पारणे के होते हैं, इस प्रकार सव ४७२ दिन होते हैं।

इसके वाद उस काली आर्याने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी आरम्भ की। उन्होंने पहले उपवास किया। उपवास का पारणा किया। पारणोमें किसी भी प्रकारके विगयका सेवन नहीं किया अर्थात् दूध, दही, घी, तेल और मीठा इन पांचों विगयोंका लेना वन्द कर दिया। इस प्रकार उन्होंने उपवासका पारणा करके वेला किया। पारणा किया। इस दूसरी परिपाटीके सव पारणोंमें सव अर्थात् पांचों विगयोंका त्याग कर दिया। इसी तरह तेला किया। पारणा करके आठ वेले किए। पारणा करके उपवास किया। फिर वेला किया, तेला किया, फिर चार, पांच यावत् सोलह उपवास तक किए। फिर चौंतीस वेले किए। पारणा करके सोलह किए, फिर पन्दरह, चौदह, तेरह, वारह, ग्यारह, दस, नौ,

आठ, सात, छः, पांच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। जिस प्रकार पहली परिपाटी की, उसी प्रकार दूसरी परिपाटी भी की, परन्तु इसमें सभी विगयवर्जित पारणे किये।

इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी की, तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय का लेप मात्र भी छोड़ दिया। इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी की। परन्तु इसके पारणे में आयम्बिल किया। इसी प्रकार काली आर्या रत्नावली तप की चारों परिपाटियों को पांच वर्ष दो मास और अट्ठाइस दिन में पूर्ण करके चन्दनबाला आर्या के पास उपस्थित हुई और वन्दन नमस्कार किया। फिर बहुत से उपवास बेला तेला आदि तपस्याओं से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस प्रकार प्रधान तपस्या करने से काली आर्या का शरीर प्रायः मांस और लोही से रहित हो गया। उनके शरीर की धमनियां (नाड़ियां) प्रत्यक्ष दिखाई देने लग गई। वह सूख कर अस्थिपंजर मात्र शेष रह गया। उठते बैठते चलते फिरते उनके शरीर की हड्डियों से कड़कड़ आवाज होती थी। जिस प्रकार सूखे काष्ठों से या सूखे पत्तों से अथवा कोयलों से भरी चलती गाड़ी से आवाज होती है। उसी प्रकार उसके शरीर की हड्डियों से भी आवाज होने लग गई। यद्यपि श्री काली आर्या का शरीर मांस और लोही सूख जाने के कारण रूक्ष हो गया था तथापि भस्म से आच्छादित अग्नि के समान तप तेज की शोभा से अत्यन्त शोभित हो रहा था।

एक दिन उस काली आर्या के हृदय में पिछली रात्रि के समय स्कन्दक के समान इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ कि तपस्या के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। इसलिए जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग आदि विद्यमान है तब तक मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही (आर्य) चन्दनबाला आर्या को पूछ कर उनकी आज्ञा से संलेखना, झूषणा को सेवित करती हुई भक्तपान का प्रत्याख्यान करके मृत्यु को न चाहती हुई विचरण करूं। ऐसा विचार कर दूसरे दिन सुबह सूर्योदय होते ही वह चन्दनबाला आर्या के पास आई और वन्दन नमस्कार कर हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली—हे आर्ये! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर संलेखना झूषणा करना चाहती हूं। चन्दनबाला आर्या ने कहा कि-हे देवानुप्रिये! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो। किन्तु धर्मकार्य में विलम्ब मत करो। चन्दनबाला आर्या से आज्ञा प्राप्त कर काली आर्या ने संलेखना की।

काली आर्या ने चन्दनबाला आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके पूरे आठ वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया। अन्त

में एक मास की संलेखना से आत्मा को सेवित कर, साठ भक्त अनशन से छेदन कर जिस लिए संयम ग्रहण किया था ··· उस अर्थ को अपने अंतिम उच्छ्वासों द्वारा प्राप्त कर सिद्धगति (मोक्ष) को प्राप्त किया अर्थात् सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई ।।१७।।

।। आठवें वर्ग का पहला अध्ययन समाप्त ।।

जम्बू स्वामीने सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवन् !···आठवें वर्गके दूसरे अध्ययन में क्या भाव फरमाए हैं ? सो कृपा कर फरमाएं । सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—हे जम्बू ! उस काल उस समयमें चम्पा नामकी एक नगरी थी । वहां पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था। कोणिक राजा राज्य करते थे। वहां श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली रानी थी, जिस प्रकार काली रानी प्रव्रजित हुई थी उसी प्रकार सुकाली रानी भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास बेला तेला आदि तपस्या करती हुई विचरने लगी ।

एक समय सुकाली आर्या, आर्या चन्दनबाला के पास गई और वन्दना नमस्कार कर हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली-हे महाभागे ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर कनकावली तप करना चाहती हूं । उत्तर में उन्होंने कहा कि-जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो । इसके बाद सुकाली आर्या ने काली आर्या द्वारा आराधित रत्नावली तप के समान 'कनकावली' तप किया । रत्नावली तप से कनकावली तप में यह विशेषता है कि रत्नावली तप के तीन जगह अर्थात् आठ, आठ और चौंतीस बेलों के स्थान पर कनकावली तप में तेले किए जाते हैं । इस कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पांच महीने और बारह दिन लगते हैं । इसमें ८८ दिन पारणे के और एक वर्ष दो महीने १४ दिन तपस्या के होते हैं । चारों परिपाटियों को पूरा करने में ५ वर्ष ९ महीने १८ दिन लगते हैं । शेष सारा वर्णन काली आर्या के समान है । नौ वर्ष चारित्रपर्याय का पालन कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया ।।१८।।

।। दूसरा अध्ययन समाप्त ।।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवन् ! आठवें वर्ग के तीसरे अध्ययन में भगवान् ने क्या भाव फरमाए हैं ? सुधर्मा स्वामी ने फरमाया कि हे जम्बू ! तीसरे अध्ययन में महाकाली रानी का वर्णन है । वह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी । उन्होंने भी सुकाली रानी के समान दीक्षा धारण की और 'लघुसिंहनिष्क्रीडित' नामक तप किया । वह इस प्रकार है—सर्व प्रथम उपवास किया । पारणा किया । इसकी पहली परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था । फिर बेला किया ।

पारणा करके उपवास किया। फिर पारणा करके तेला किया। इस प्रकार बेला, चौला, तेला, पचौला, चौला, छः, पांच, सात, छः, आठ, सात, नौ, आठ किए।

फिर नौ, सात, आठ, छः, सात, पांच, छः, चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला और उपवास किया। इस प्रकार लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी की। एक परिपाटी में छः महीने सात दिन लगे। जिसमें पारणे के ३३ दिन और तपस्याके पांच मास तीन दिन हुए। इस प्रकार महाकाली आर्या ने चार परिपाटियां कीं। जिनमें दो वर्ष और २८ दिन लगे।

इस प्रकार महाकाली आर्या ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की सूत्रोक्त विधि से आराधना की। तत्पश्चात् महाकाली आर्या ने अनेक प्रकार की फुटकर तपस्याएं कीं। अन्तमें संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष पधार गई ॥१९॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

इसी प्रकार कृष्णा रानी का भी चरित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा लेकर फिर चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त करके महासिंहनिष्क्रीडित तपस्या की। जिस प्रकार लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की विधि है, उसी प्रकार महासिंहनिष्क्रीडित तप की भी विधि है। किन्तु इतनी विशेषता है कि लघुसिंहनिष्क्रीडित तप में एक उपवास से लेकर ऊपर नौ उपवास तक चढ़ कर उसी क्रम से वापिस उतरा जाता है। किन्तु महासिंहनिष्क्रीडित तप में एक उपवास से लेकर ऊपर सोलह उपवास तक चढ़ कर फिर उसी क्रम से वापिस उतरा जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है—सर्वप्रथम उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके उपवास किया। इस प्रकार तेला, बेला, चौला, तेला, पंचोला, चौला, छः, पांच, सात, छः, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पंद्रह, चौदह, सोलह, पंद्रह, सोलह, चौदह, पंद्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छः, सात, पांच, छः, चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला और उपवास किया। इस प्रकार एक परिपाटी की। जिसमें एक वर्ष छः महीने १८ दिन लगे। इसमें ६१ पारणे हुए। एक वर्ष चार महीने १७ दिन तपस्या हुई। चार परिपाटियों में छः वर्ष दो महीने और बारह दिन लगे।

इस प्रकार कृष्णा आर्या ने 'महासिंहनिष्क्रीडित' तप को विधिपूर्वक आराधना की, अन्त में संथारा करके काली आर्या के समान ये भी मोक्षमें पहुँचीं ॥२०॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

इसी प्रकार सुकृष्णा आर्या का भी चरित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजाकी भार्या और कोणिक राजाकी छोटी माता थी। इन्होंने भगवान् का उपदेश सुनकर दीक्षा अंगीकार की। फिर चन्दनवाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'सप्तसप्तमिका' भिक्षुप्रतिमा तप करने लगी। इसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्ताह में गृहस्थ के घर से प्रतिदिन एक दात अन्न की और एक दात पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह में प्रतिदिन दो दात अन्न की और दो दात पानी की ग्रहण की जाती है। तीसरे सप्ताह में प्रतिदिन तीन-तीन दात, चौथे सप्ताह में चार-चार दात, पांचवें सप्ताह में पांच-पांच दात, छठे सप्ताह में छः-छः दात और सातवें सप्ताह में प्रतिदिन सात-सात दात अन्न की और पानी की ग्रहण की जाती है।

उनचास रातदिन में १९६ भिक्षा की दात होती हैं। सुकृष्णा आर्या ने इसी प्रकार सूत्रोक्त विधि के अनुसार 'सप्तसप्तमिका' पडिमाकी यथावत् आराधना की। आहार पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दातें हुईं, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे में इक्कीस, चौथे में अट्ठाइस, पांचवें में पैंतीस, छठे में बयालीस और सातवें में उनचास। इस प्रकार सब मिलाकर १९६ दातें हुईं।

इसके पश्चात् सुकृष्णा आर्या, चन्दनवाला आर्या के पास आई और वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोली—कि हे पूज्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं 'अष्टअष्टमिका' भिक्खुपडिमा तप करना चाहती हूं। चन्दनवाला आर्या ने कहा—कि हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्यमें प्रमाद न करो।

इसके अनन्तर सुकृष्णा आर्या अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा स्वीकार कर विचरने लगी। उन्होंने प्रथम अष्टकमें एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानीकी ली। दूसरे अष्टकमें २ दात अन्न की और दो दात पानी की ली। इसी क्रम से आठवें अष्टकमें आठ दात अन्न और आठ दात पानी की ग्रहण की। इस प्रकार अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमारूप तपस्या ६४ रात दिन में पूरी हुई। जिसमें आहार पानी की २८८ दात हुई। और सुकृष्णा आर्याने सूत्रोक्त विधिसे इस अष्ट-अष्टमिका प्रतिमा की आराधना की।

इसके पश्चात् चन्दनवाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर उसने 'नवनव-मिका' भिक्षुप्रतिमा अंगीकार की। प्रथम नवकमें एक दात अन्न की और एक दात पानी का ग्रहण की। इस क्रमसे नौवें नवकमें नौ दात अन्न की और नौ दात पानी की ग्रहण की। यह नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिनमें पूरी हुई। इसमें आहार पानी की ४०५ दात हुईं। इस नवनवमिका भिक्षुप्रतिमाका सूत्रोक्त विधि अनुसार आराधन किया।

सुकृष्णा आर्याने चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा अंगीकार की। इसके प्रथम दशकमें एक दात अन्न की और एक दात पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार क्रमश: दसवें दशकमें दस दात अन्न की और दस दात पानी की ग्रहण की। यह दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एक सौ दिनरातमें पूर्ण होती है। इसमें आहार पानी की सम्मिलित रूपसे ५५० दात होती हैं। इस प्रकार इन भिक्षुप्रतिमाओंका सूत्रोक्त विधिसे आराधन किया।

फिर सुकृष्णा आर्या उपवासादिसे लेकर अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि विविध प्रकार की तपस्यासे आत्माको भावित करती हुई विचरने लगी। इस प्रधान और घोर तपस्याके कारण सुकृष्णा आर्या अत्यधिक दुर्वल हो गई। अन्त में संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षयकर सिद्धिगति को प्राप्त हुई ॥२१॥

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

इसी प्रकार राजा श्रेणिक की भार्या और राजा कोणिककी छोटी माता महाकृष्णा रानी ने भी भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। इसके अनन्तर महाकृष्णा आर्या चन्दनबाला आर्या की आज्ञा लेकर लघुसर्वतोभद्र तप करने लगी। उसकी विधि इस प्रकार है—सर्वप्रथम उन्होंने उपवास किया पारणा किया, (इसकी भी प्रथम परिपाटी के सब पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं है) पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। इसी प्रकार चौला, पचोला किया, फिर तेला,चौला, पचोला, उपवास, बेला किया। फिर पचोला, उपवास, बेला, तेला, चौला किया। फिर बेला, तेला, चौला, पचोला, उपवास किया। फिर चौला, पचोला, उपवास, बेला, तेला किया। इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने 'लघुसर्वतोभद्र' तप की पहली परिपाटी पूरी की। इस एक परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे। जिसमें २५ दिन पारणे के और ७५ दिन तपस्या के हुए। इसके पश्चात् इस तप की दूसरी परिपाटी की। इसके पारणे में विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय के लेपमात्र का भी त्याग कर दिया। इस के अनन्तर चौथी परिपाटी की। इसमें पारणे के दिन आयम्बिल किया। इस प्रकार उन्होंने लघुसर्वतोभद्र तप की चारों परिपाटी कीं। इसमें एक वर्ष एक मास और दस दिन लगे। इस प्रकार इस तप की सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधना की। अन्त में संथारा कर सर्व कर्मो का क्षय कर सिद्धगति को प्राप्त हुई ॥२२॥

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

इसी तरह वीरकृष्णा रानी का चरित्र भी जानना चाहिये। यह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होंने भी दीक्षा

अंगीकार की। इसके पश्चात् चन्दनवाला आर्या की आज्ञा लेकर 'महासर्वतोभद्र' तप करने लगी। इसकी विधि इस प्रकार है—सबसे पहले उपवास किया फिर पारणा किया। इसकी भी प्रथम परिपाटी के सव पारणों में विगय का सेवन वर्जित नहीं है। फिर बेला किया, इस क्रम से तेला, चौला, पचौला, छह और सात किए। यह प्रथम लता हुई। फिर चौला, पचौला, छह, सात उपवास, वेला, तेला किया। यह दूसरी लता हुई। फिर सात किए, फिर उपवास, वेला, तेला, चौला, पचौला और छह किए। यह तीसरी लता हुई। फिर तेला, चौला, पचोला, छः, सात उपवास और वेला किया। यह चौथी लता हुई। फिर छः, सात, उपवास, वेला, तेला, चौला और पचोला किया। यह पांचवीं लता हुई। फिर बेला, तेला, चौला, पचोला, छः, सात और उपवास किया। यह छठी लता हुई। फिर पचोला, छह, सात, उपवास, वेला, तेला और चौला किया। यह सातवीं लता हुई।

इस प्रकार सात लता की एक परिपाटी हुई। इसमें आठ मास और पांच दिन लगे। जिनमें ४९ दिन पारणे के और छह मास सोलह दिन तपस्या के हुए। इसकी दूसरी परिपाटी में पारणे में विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी में लेपमात्र का भी त्याग कर दिया। और चौथी परिपाटी में पारणे में आयम्बिल किया। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष आठ मास वीस दिन लगे। उसने इस तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया। अन्त में संथारा कर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त हुई ॥२३॥

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

रामकृष्णा देवीका चरित्र भी इसी प्रकार जानना चाहिए। यह श्रेणिक राजाकी रानी और कोणिक राजाकी छोटी माता थी। दीक्षा लेकर चन्दनवाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर इन्होंने 'भद्रोत्तरप्रतिमा' नामक तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है—सर्वप्रथम पचोला किया। पारणा किया। फिर क्रमशः छह, सात, आठ और नौ किये। इसकी भी पहली परिपाटीके सव पारणों में विगयोंका सेवन वर्जित नहीं था। यह प्रथम लता हुई १। फिर सात, आठ, नौ, पांच और छह किए। यह दूसरी लता हुई २। फिर नौ पांच, छह, सात, आठ किये। यह तीसरी लता हुई ३। फिर छह, सात, आठ, नौ, पांच किये। यह चौथी लता हुई ४। फिर आठ, नौ, पांच, छह, सात किये। यह पांचवीं लता हुई ५। इस प्रकार यह एक परिपाटी हुई। इसमें छह मास वीस दिन लगे। इस प्रकार चार परिपाटियों में दो वर्ष दो मास वीस दिन लगे। अन्तमें संलेखना संथारा करके रामकृष्णा आर्या भी काली आर्याके समान सभी कर्मोका क्षय करके सिद्ध पदको प्राप्त हुई ॥२४॥

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

इसी तरह पितृसेनकृष्णा का वर्णन जानना चाहिए। वह राजा श्रेणिक की रानी और राजा कोणिककी छोटी माता थी। इन्होंने दीक्षा अंगीकार करके चन्दनवाला आर्याकी आज्ञा लेकर 'मुक्तावली' तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया। इसकी भी पहली परिपाटी के सब पारणोंमें विगयोंका सेवन वर्जित नहीं है। फिर वेला किया। पारणा किया। फिर उपवास किया। पारणा किया। फिर तेला किया। इस प्रकार वीच में एक-एक उपवास करती हुई पितृसेनकृष्णा आर्या पंद्रह उपवास तक वढ़ी। फिर उपवास किया। वीचमें सोलह। सोलह के अनन्तर उपवास और फिर उपवास किया। फिर इसी प्रकार पश्चादनुपूर्वीसे वीचमें एक-एक उपवास करती हुई जिस प्रकार चढ़ी थी, उसी प्रकार पंद्रह उपवाससे एक उपवास तक क्रमसे उतरी। इस प्रकार मुक्तावली तपकी एक परिपाटी समाप्त हुई। काली आर्या की तरह इसकी चारों परिपाटी पूर्ण कीं। एक परिपाटी में ग्यारह महीने पंद्रह दिन लगे। चारों परिपाटियोंमें तीन वर्ष दस महीने लगे। अन्त में संलेखना संथारा करके सर्व कर्मोका क्षय करके सिद्ध पदको प्राप्त हुई ॥२५॥

॥ नौवाँ अध्ययन समाप्त ॥

इसी तरह महासेनकृष्णा का भी वर्णन जानना चाहिए। वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा लेकर चन्दनवाला आर्या की आज्ञा लेकर उसने 'आयम्बिल वर्द्धमान' नामक तप किया। उसकी विधि इस प्रकार है–सर्वप्रथम आयम्बिल किया। दूसरे दिन उपवास किया। फिर दो आयम्बिल किए। फिर उपवास किया। फिर तीन आयम्बिल किए। उपवास किया। फिर चार आयम्बिल किए। फिर उपवास किया। फिर पांच आयम्बिल किए। फिर उपवास किया। फिर छह आयम्बिल किए, फिर उपवास किया। इस प्रकार वीच-वीच में एक-एक उपवास करती हुई एक सौ आयम्बिल तक किये। फिर उपवास किया। इस प्रकार 'आयम्बिल वर्द्धमान' नामक तप पूरा किया।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने चौदह वर्ष तीन मास वीस दिनोंमें 'आयम्बिल वर्द्धमान' नामक तपका सूत्रोक्त विधिसे आराधन किया। इसमें आयम्बिल के पांच हजार पचास दिन होते हैं और उपवास के एक सौ दिन होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर ५१५० दिन होते हैं। इस तपमें चढ़ना ही है, उतरना नहीं है।

इसके पश्चात् वह महासेनकृष्णा आर्या, चन्दनवाला आर्या के पास आई और उन्हें वन्दना नमस्कार किया। तदनन्तर उपवास आदि वहुत-सी

तपश्चर्या करती हुई, आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। उन कठिन तपस्याओंके कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, तथापि आन्तरिक तपतेजके कारण वह अत्यन्त शोभित होने लगी।

इसके अनन्तर एक दिन पिछली रात्रिके समय उस महासेनकृष्णा आर्याने स्कन्दकके समान चिन्तन किया कि मेरा शरीर तपस्यासे कृश हो गया है तथापि अभी तक मुझ में उत्थान, बल आदि हैं। इसलिए कल सूर्योदय होते ही चन्दनबाला आर्याके पास जाकर···वन्दना नमस्कार करके संथारा ग्रहण किया और मरणको न चाहती हुई धर्मध्यान शुक्लध्यानमें तल्लीन रहने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने चन्दनबाला आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया। सत्रह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया। तथा एक मासकी संलेखनासे आत्माको भावित करती हुई साठ भक्त अनशनसे छेदित कर अन्तिम श्वासोच्छ्वासमें अपने सम्पूर्ण कर्मोंको नष्ट करके मुक्तिमें पहुँची।

इन दस आर्याओंमें से प्रथम काली आर्या ने आठ वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर एक-एक रानीके चारित्रपर्याय एक-एक वर्षकी वृद्धि होती गई। इस प्रकार अन्तिम दसवीं रानी महासेनकृष्णा आर्या ने सत्रह वर्ष तक चारित्र पर्यायका पालन किया। वे सब राजा श्रेणिककी रानियां और कोणिक राजाकी छोटी माताएं थीं।

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

॥ आठवां वर्ग समाप्त ॥

हे जम्बू ! अपने शासनकी अपेक्षासे धर्मकी आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो मोक्षमें पधार गए हैं उन्होंने आठवें अंग अन्तगडदशा सूत्रका यह भाव फरमाया है। भगवान्के पाससे जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार तुम्हें कहा है।।२६।।

इस अन्तकृतदशा सूत्रमें एक श्रुतस्कन्ध है और आठ वर्ग हैं। इसको आठ दिनोंमें वांचा जाता है। इसके प्रथम और द्वितीय वर्गमें दस-दस (दूसरेमें आठ) उद्देशक (अध्ययन) हैं। छठे वर्गमें सोलह, सातवें वर्गमें तेरह और आठवें वर्गमें दस अध्ययन हैं। इस सूत्रमें नगर आदिका वर्णन संक्षेपसे किया गया है। नगर आदि से लेकर बोधिलाभ और अन्तक्रिया आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्रके समान जानना चाहिए।। २७।

॥ अन्तगडदशासूत्र समाप्त ॥

अन्तकृतदशांग-परिशिष्ट

गुणरत्न संवत्सर तप

तप दिन																	पारणा	सर्व दिन
३२	१६	१६															२	३४
३०	१५	१५															२	३२
२८	१४	१४															२	३०
२६	१३	१३															२	२८
२४	१२	१२															२	२६
३३	११	११	११														३	३६
३०	१०	१०	१०														३	३३
२७	९	९	९														३	३०
२४	८	८	८														३	२७
२१	७	७	७														३	२४
२४	६	६	६	६													४	२८
२५	५	५	५	५	५												५	३०
२४	४	४	४	४	४	४											६	३०
२४	३	३	३	३	३	३	३	३									८	३२
२०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२							१०	३०
१६	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१६	३२

अन्तकृतदशांगसूत्र वर्णित मुनिवरों में से श्री अर्जुन अनगार और श्री गजसुकुमाल अनगार को छोड़ कर शेष सभी ने यह तप किया था।

रत्नावली तप

महासती श्री काली जी का किया हुआ—

रत्नावली तप की एक परिपाटी के तपस्या के दिन ३८४ और पारणे के दिन ८८ होतें हैं। अर्थात् १५ महीने और २२ दिन होते हैं। इस तप की चार परिपाटियां-५ वर्ष २ मास २८ दिन में पूर्ण होती हैं।

(वर्ग ८ अ० १ पृ० १६१५-१६)

लघु सिंह क्रीडा तप

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९

❀ ८ ❀

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९

श्री महाकाली महासती जी का किया हुआ—
लघु-सिंह-क्रीड़ा तप की एक परिपाटी में तपस्या के दिन १५४ और पारणे के दिन ३३ अर्थात् छः महीने और सात दिन होते हैं। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष और २८ दिन लगते हैं।
(वर्ग ८ अध्ययन ३ पृष्ठ १६२७-२८)

कनकावली तप

श्री सुकाली आर्या जी का किया हुआ—
कनकावली तप की एक परिपाटी के तप के दिन ४३४ और पारणे के दिन ८८ होते हैं। अर्थात् १७ महीने और १२ दिन होते हैं। इस तप की चार परिपाटियां ५ वर्ष ६ मास १८ दिन में पूर्ण होती हैं।
(वर्ग ८ अ० २ पृष्ठ १६१७)

मुक्तावली तप

१ २ १ ३ १ ४ १ ५ १ ६ १ ७ १ ८ १ ९ १ १० १ ११ १ १२ १ १३ १ १४ १ १५ १

म० श्री पितृसेनकृष्णा जी का किया हुआ—
इस तप की एक परिपाटी में तपस्या के दिन २८६ और पारणे के दिन ५९ होते हैं, यानी ११ मास १५ दिन होते हैं। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में तीन वर्ष दस महीने लगते हैं।

(वर्ग आठ अ० ८ पृष्ठ १६२२)

१ २ १ ३ १ ४ १ ५ १ ६ १ ७ १ ८ १ ९ १ १० १ ११ १ १२ १ १३ १ १४ १ १५ १

❀ १६/१ ❀

महासिंहनिष्क्रीडित तप

महासती श्री कृष्णा जी का किया हुआ—

महासिंहनिष्क्रीडित तप की एक परिपाटी में एक वर्ष छः महीने और १८ दिन लगते हैं। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में ६ वर्ष दो महीने और बारह दिन लगते हैं। पारणों की विधि रत्नावली तप के समान है।

(वर्ग ८ अ० ४ पृ० १६१८)

१	१
२	२
१	१
३	३
२	२
४	४
३	३
५	५
४	४
६	६
५	५
७	७
६	६
८	८
७	७
९	९
८	८
१०	१०
९	९
११	११
१०	१०
१२	१२
११	११
१३	१३
१२	१२
१४	१४
१३	१३
१५	१५
१४	१४
१६	१६

❀ १५ ❀

म० श्री महाकृष्णा जी का किया हुआ-लघु सर्वतोभद्र तप (वर्ग ८ अ०६ पृ० १६२०)

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

श्री रामकृष्णा म०जी का किया हुआ-भद्रोत्तर प्रतिमा तप (वर्ग ८ अ० ८ पृ०१६२१)

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

श्री वीरकृष्णा महासतीजीका किया हुआ-महासर्वतोभद्र तप (वर्ग ८ अ०७ पृ० १६२१)

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र

प्रथम वर्ग

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। (उसके वाहर स्थित गुणशिलक नामक उद्यानमें) आर्य सुधर्मा पधारे। (यह सुनकर) उस नगरकी परिषद् (श्रोतामण्डल) (उनके पास धर्मकथा सुनने के लिए) गई (और धर्म सुनकर नगर को वापिस लौट गई)। (उस समय) जम्बू स्वामी यावत् उनकी सेवा भक्ति करते हुए इस प्रकार वोले—भगवन्! यदि मोक्षप्राप्त ···ने आठवें अंग अन्तकृद्-दशांग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन्! नौवें अंग अनुत्तरोपपातिकदशाका क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? तदनन्तर सुधर्मा अनगार अपने (सुशिष्य) जंबू अनगार से कहने लगे-"हे जम्बू! मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर स्वामीने नौवें अंग अनुत्तरोपपातिकदशा के तीन वर्ग प्रतिपादन किये हैं।" "भगवन्! मुक्तिप्राप्त श्री श्रमण भगवान्···ने यदि नौवें अंग अनुत्तरोपपातिकदशाके तीन वर्ग प्रतिपादित किये हैं, तो भगवन्! अनुत्तरोपपातिकदशा प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादित किये हैं?" गुरु सुधर्मा कहने लगे- "जम्बू! मोक्षप्राप्त ज्ञातपुत्र भगवान्···ने अनुत्तरोपपातिकदशा प्रथम वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं, जैसे—जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिषेण, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस और अभय। यही प्रथमवर्ग के अध्ययनों के नाम हैं।

भगवन्! यदि मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान्···ने प्रथम वर्गके दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं तो भगवन्! मोक्षप्राप्त श्रमण० महावीरने अनुत्तरोपपातिकदशाके प्रथम अध्ययनका क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? जम्बू! श्री-श्रमण भगवान् महावीर ने···इस प्रकार प्रतिपादन किया है-उस काल उस समय में ऋद्धि, धन, धान्य युक्त और भयरहित राजगृह नगर था। उसके वाहर गुणशील नामक उद्यान था। वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी धारिणी नामक देवी (रानी) थी। धारिणी देवीने स्वप्नमें सिंह देखा। जिस प्रकार

मेघकुमार का जन्म हुआ, उसी प्रकार जालिकुमारका जन्म हुआ। (जालिकुमार-का आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ।) यावत् ससुराल से बहुत दहेज मिला। इस प्रकार सारे सुखोंका अनुभव करता हुआ वह अपने राजप्रासादों में विचरने लगा। उसी समय गुणशीलक उद्यान में भगवान् महावीर पधारे। वहां श्रेणिक राजा उनकी वन्दना के लिए गया। जिस प्रकार मेघकुमार (भगवान् महावीर के दर्शनों के लिये) गया था, उसी प्रकार जालिकुमार भी गया। इसके अनन्तर मेघकुमारके समान वह भी दीक्षित हो गया। उसने ११ अंगसूत्रोंका अध्ययन किया। गुणरत्न नामक तप भी किया। शेष जिस प्रकार स्कन्धक सन्यासी की वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार इसके विषय में भी जानना चाहिये। उसी प्रकार धर्मचिन्तन, श्री भगवान् से अनशन के विषय में पूछना इत्यादि। उसी भांति स्थविरोंके साथ विपुलगिरि पर्वत पर चढ़ना। विशेषता केवल इतनी है कि वह सोलह वर्ष के श्रामण्य—पर्याय का पालन कर मृत्यु का समय आने पर काल करके ऊपर चन्द्र० सौधर्म-ईशान यावत् आरण अच्युत कल्प देवलोक और ग्रैवेयकविमान-प्रस्तटों से भी ऊपर जाकर विजय विमानमें देव रूप उत्पन्न हुआ। तब वे स्थविर भगवान् जालि अनगारको कालगत जानकर परिनिर्वाण-प्रत्ययिक कायोत्सर्ग करके तथा जालि अनगार के वस्त्र-पात्र लेकर उसी प्रकार पर्वत से उतर आये और श्रमण भगवान् महावीर की सेवामें उपस्थित होकर सविनय निवेदन किया कि भगवन्! ये जालि अनगार के धर्माचारादि साधन के उपकरण हैं। इसके अनन्तर भगवान् गौतम ने श्री भगवान् महावीर से प्रश्न किया कि "भगवन्! भद्र-प्रकृति और विनयी वह आपका शिष्य जालि अनगार मृत्युके अनन्तर कहां गया? कहां उत्पन्न हुआ?" श्री श्रमण भगवान् महावीर ने उत्तर दिया कि "गौतम! मेरा अन्तेवासी जालि अनगार जैसे स्कंधक का कहा यावत् काल करके चन्द्र० से ऊपर, बारहकल्प देवलोकोंसे आगे, नव ग्रैवेयक विमानों को लांघकर, विजय विमान में देव-पर्यायमें उत्पन्न हुआ है।" गौतम ने फिर प्रश्न किया कि "भगवन्! उस जालि देवकी वहां कितनी स्थिति है?" भगवान्ने उत्तर दिया कि "गौतम! जालि देवकी वहां बत्तीस सागरोपम की स्थिति प्रतिपादित की गई है"। गौतम ने फिर पूछा कि "भगवन्! वह उस देवलोक से आयु, भव और स्थिति क्षय होने पर कहां जायगा?" भगवान्ने फिर उत्तर दिया "गौतम! तदनन्तर वह महाविदेह क्षेत्र से सिद्धि गति प्राप्त करेगा अर्थात् यावत् मानसिक और शारीरिक दुःखोंसे सर्वथा मुक्त होकर निर्वाण पद प्राप्त करेगा।" सुधर्मा स्वामी अपने विनीत शिष्यसे कहते हैं कि "जम्बू! इस प्रकार मोक्षप्राप्त...महावीर ने अनुत्तरोपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

॥ प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

इसी प्रकार शेष (आठ) नौ अध्ययनोंके विषय में भी जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि अवशिष्ट कुमारों में से सात धारिणी देवी के पुत्र थे, वेहल्ल और वेहायस कुमार चेल्लणा देवी के पुत्र थे। पहले पांचने सोलह वर्ष तक, तीन ने बारह वर्ष और दो ने पांच वर्ष तक संयम-पर्यायका पालन किया। पहले पांच क्रमसे विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमानों में, दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध में और अभयकुमार विजय विमानमें उत्पन्न हुए और शेष जिस प्रकार प्रथम अध्यायमें वर्णित है, उसी प्रकार जानें। अभयकुमारके विषय में इतना विशेष है कि वह राजगृह नगरमें उत्पन्न हुआ और पिता श्रेणिक राजा तथा नन्दादेवी उसकी माता थी। शेष पूर्ववत्। श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जम्बू! मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशाके पहले वर्गका यह अर्थ प्रतिपादन किया है ॥१॥

॥ पहला वर्ग समाप्त ॥

अथ दूसरा वर्ग

···भगवन्! यदि मोक्षको प्राप्त हुए···महावीरने अनुत्तरोपपातिकदशाके प्रथम वर्गका पूर्वोक्त अर्थ प्रतिपादन किया है, तो मोक्षको प्राप्त हुए···म० ने अनुत्तरोपपा-तिकदशाके दूसरे वर्गका क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया कि जम्बू! मोक्षप्राप्त···म० ने अनुत्तरोपपातिकदशाके दूसरे वर्गके तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जैसे—दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, हल्लकुमार, द्रुम०, द्रुमसेन०, महाद्रुमसेन०, सिंहकुमार, सिंहसेन०, महासिंह-सेन० और पुण्यसेन। इस प्रकार द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन होते हैं।

हे भगवन्! यदि मोक्ष-प्राप्त श्रमण···द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रति-पादित किए हैं, तो भगवन्! उन्होंने द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा कि हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसके बाहर···गुणशिलक उद्यान था। वहां श्रेणिक राजा था। उसकी धारिणी देवी थी। उसने सिंह का स्वप्न देखा। जिस प्रकार जालिकुमार का जन्म हुआ था, उसी प्रकार जन्म हुआ, उसी प्रकार बचपन बीता और उसी प्रकार कलाएं सीखीं। विशेषता केवल इतनी है कि उसका नाम दीर्घसेनकुमार रक्खा गया। शेष वक्तव्यता जैसे जालिकुमार की है, उसी प्रकार जानें यावत् महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा। इसी भांति तेरहों अध्ययनों के तेरहों कुमारों के विषय में समझें। ये सब राजगृह नगर में उत्पन्न हुए और सब के सब महाराज श्रेणिक और महारानी धारिणीदेवी के पुत्र थे। तेरहों ने

सोलह वर्ष संयम पाला। तदनन्तर क्रमशः दो विजय विमान, दो वैजयन्त०, दो जयन्त० और दो अपराजित विमान में उत्पन्न हुए। शेष महाद्रुमसेन आदि पांच मुनि सर्वार्थसिद्ध में गए। जम्बू! इस प्रकार...महावीर ने अ० पा० दशाके दूसरे वर्गका अर्थ कहा है। उक्त दोनों वर्गोंके मुनि एक २ मास के अनशन-संलेखना से कालगत हुए अर्थात् २३ मुनियों ने एक-एक मास का पादपोपगमन अनशन किया था ।।२।।

।। दूसरा वर्ग समाप्त ।।

तृतीय वर्ग

...हे भगवन्! यदि...द्वितीय वर्गका उक्त अर्थ प्रतिपादन किया है तो...... महावीर ने अ० पा० दशाके तृतीय वर्गका क्या अर्थ कहा है? सुधर्मा स्वामी ने कहा-हे जम्बू! मोक्षप्राप्त......तृतीय वर्गके दस अध्ययन कहे हैं, जैसे कि-धन्य-कुमार, सुनक्षत्र०, ऋषिदास, पेल्लक०, रामपुत्र, चन्द्रिका०, पुष्टिमातृका०, पेढाल-पुत्र, पृष्टिमायी० और वेहल्लकुमार। ये तृतीय वर्ग के दस अध्ययन कहे गए हैं।

हे भगवन्! यदि...तीसरे वर्गके दस अध्ययन...तो...पहले अध्ययनका क्या अर्थ कहा है? सुधर्मा स्वामी बोले कि 'जम्बू! उस काल उस समय में काकंदी नाम की एक नगरी थी। वह सब प्रकारके ऐश्वर्य-धन-धान्य से भरपूर थी। वहां किसी प्रकारके भय की आशंका नहीं थी। उसके बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। जो सब ऋतुओंमें फल-फूलों से लदा रहता था। वहां जितशत्रु नामक राजाका शासन था। वहां भद्रा नामकी एक सार्थवाहिनी रहती थी। वह अत्यन्त समृद्धि-शालिनी और धन-धान्यमें अपनी जाति और इतर सब लोगोंमें किसी से कम न थी। उसका धन्य नामक सर्वांगपूर्ण और रूपवान् पुत्र था। उसके पालन-पोषणके लिए पांच धाइयां नियत थीं...-क्षीरधात्री...जैसे महाबल का कहा यावत् ७२ कलाओंका अध्ययन किया, यावत् वह धन्यकुमार भोग भोगनेमें समर्थ (युवक) हो गया।

तदनन्तर भद्रा सार्थवाहिनीने धन्यकुमारको बालकपनसे मुक्त और सब तरह के भोगों को भोगनेमें समर्थ जानकर बत्तीस बड़े २ अत्यन्त ऊंचे और श्रेष्ठ भवन बनवाए। उनके मध्य में एक सैंकड़ों स्तम्भों से युक्त भवन बनवाया। फिर ३२ श्रेष्ठ कुलों की कन्याओंसे एक ही दिन उसका पाणिग्रहण कराया। उनके साथ बत्तीस (दास, दासी और धन-धान्य से युक्त) दहेज आए। तत्पश्चात् धन्यकुमार अनेक प्रकार के मृदङ्ग आदि वाद्योंकी ध्वनि से गुञ्जित प्रासादों के ऊपर पञ्चविध सांसारिक सुखोंका अनुभव करते हुए विचरण करने लगा। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर...वहां पधारे। नागरिक वन्दन करने गए। कोणिक राजा

के समान जितशत्रु राजा भी गया। धन्यकुमार भी जमालिकुमारकी तरह गया। विशेषता केवल यही है कि वह पैदल ही गया। और (भगवान् के उपदेश को सुनकर) उसने कहा कि भगवन्! माता भद्रासे पूछकर आपके हाथ से आर्हती दीक्षा लूंगा। भगवान् ने कहा-हे देवानुप्रिय! जैसे सुख हो···। (वह घर आया) उसने अपनी मातासे जिस प्रकार जमालिकुमारने पूछा था, उसी प्रकार पूछा। माता यह सुनकर मूर्च्छित हो गई। (मूर्च्छासे उठनेके पश्चात्) माता पुत्रमें इस विषय में प्रश्नोत्तर हुए। जब वह भद्रा महाबलके समान पुत्र को रोकने में समर्थ न हो सकी तब उसने थावच्चापुत्रके समान जितशत्रु राजासे पूछा और दीक्षाके लिए छत्र और चमर की याचना की। जितशत्रु राजाने स्वयं जिस प्रकार कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्रकी दीक्षा करवाई थी उसी प्रकार धन्यकुमारका दीक्षा-महोत्सव किया। धन्यकुमार दीक्षित होकर ईर्यासमिति, ब्रह्मचर्य आदि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होकर विचरने लगा।

तदनन्तर वह धन्य अनगार जिस दिन द्रव्य भावसे मुंडित हुआ, उसी दिन उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे वन्दना—नमस्कारपूर्वक प्रार्थना की कि हे भगवन्! आपकी आज्ञासे मैं जीवन पर्यन्त निरन्तर छठ छठ-वेले वेले पारणा, और पारणेके दिन आचाम्ल तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरना चाहता हूं। पारणेके दिन भी शुद्धोदनादि ग्रहण करना ही मेरे लिए योग्य है न कि अनाचाम्ल आदि। वह भी पूरे तौरसे सने हाथोंसे अर्थात् अन्य भोजन लिपे हाथोंसे दिया हुआ हो, न कि असंसृष्ट हाथोंसें। वह भी परित्याग धर्म वाला हो न कि अपरित्याग धर्म वाला। वह भी ऐसा कदन्न हो जिसको श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि और वनीपक (भिखारी) तक न चाहते हों। यह सुन कर श्रमण ···ने कहा—हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, करो। किन्तु इस पवित्र निष्काम धर्मके कार्यमें विलम्ब मत करो। तदनन्तर वह धन्यकुमार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा पाकर आनन्दित और सन्तुष्ट होकर निरंतर छठ-छठ तपकर्मसे यावज्जीव अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे।

तदनन्तर वह धन्यकुमार अनगार पहले बेले के पारणेके दिन पहले पहर में स्वाध्याय करता है···गौतम स्वामीके समान भगवान् को आज्ञा लेकर भण्डोपकरण की प्रतिलेखनापूर्वक मुंहपत्ति बांधकर, रजोहरण लेकर, साढ़े तीन हाथ आगे पृथ्वी देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक काकन्दी नगरीके ऊंच-मध्यम और नीच सब तरहके कुलोंमें फिरते हुए जहां आचाम्ल अथवा उज्भित आहार मिलता था वहींसे लेता था। उसको बड़े उद्यमसे प्राप्त होने वाली, गुरुओंसे आज्ञप्त, उत्साहपूर्वक स्वीकृत, एषणासमितियुक्त भिक्षामें जहां भात मिलता, वहां पानी नहीं मिलता, तथा जहां पानी मिलता, वहां भात नहीं मिलता। इस परिस्थितिमें

भी धन्य अनगार कभी दीनता, खेद, क्रोध, कालुष्य और विषाद-बेचैनी प्रकट नहीं करता था, प्रत्युत निरन्तर समाधियुक्त होकर, संप्राप्त योगोंमें अभ्यास करता हुआ और अप्राप्त योगोंकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता हुआ सहिष्णुता वाले सच्चरित्रसे जो कुछ यथालाभ, गोचर वृत्तिसे मिलता उसे सन्तोषपूर्वक लेकर काकन्दी नगरीसे बाहर आकर गौतम स्वामीके समान भगवान् को आहार दिखला कर भगवान् की आज्ञासे अनासक्ति-भावसे जैसे सांप केवल पार्श्वभागोंके स्पर्शसे बिलमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह भी बिना किसी इच्छा विशेषके (केवल देह-रक्षाके लिये) आहारादि ग्रहण करता था'''करके निरन्तर संयम-तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरता था।

श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा किसी समय काकन्दी नगरीके सहस्राम्रवन उद्यानसे निकलकर बाहर जनपदमें विचरने लगे। (इसी समय) वह धन्य अनगार भगवान् महावीरके तथारूप स्थविरोंके पास सागायिकादि ११ अंगसूत्रों का अध्ययन करने लगा। वह संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगा। तदनु वह धन्य अनगार स्कन्दकके समान उस उदार तपके प्रभावसे सुहुत अग्निके समान प्रकाशमान मुखसे विराजमान हुआ।

धन्य अनगारके पैरोंका तपसे ऐसा लावण्य हो गया जैसे सूखी हुई वृक्षकी छाल, लकड़ी की खड़ाऊं या पुराना जूता हो। इसी प्रकार धन्य अनगारके शुष्क, मांसरहित पैर केवल हड्डी, चमड़ा और नसोंसे ही पहचाने जाते थे, न कि मांस और रुधिरसे। धन्य अनगारके पैरोंकी अंगुलियोंका ऐसा तप-जनित लावण्य हुआ—जैसे कलाय धान्य की फलियां, मूंगकी फलियां अथवा उड़दकी फलियां, कोमल ही तोड़कर धूपमें डाली हुई मुरझा जाती हैं। धन्य अनगार की अंगुलियां भी उतनी मुरझा गईं थीं कि उनमें केवल हड्डी, नस और चमड़ा ही नजर आता था, मांस और रुधिर नहीं।

धन्य अनगारकी जंघाएं तपके कारण इस प्रकार निर्मास हो गईं जैसे कौवे की, कंक और ढंक पक्षी की जंघायें होती हैं। वे सूखकर इस प्रकार की हो गई कि मांस और रुधिर देखने मात्रको भी नहीं रह गया। धन्य अनगारके जानु तपके प्रभावसे इस प्रकार सुशोभित होने लगे जैसी कालि नामक वनस्पति, मोर और ढेणिक पक्षीके पर्वपोरवे (गांठ) हों। वे भी मांस और रुधिरके बिना नहीं पहचाने जाते थे। धन्य अनगारकी ऊरु तपकी महिमासे इतनी सुन्दर दीखने लगीं जैसे प्रियंगु, वेर, शल्यकी और शाल्मली वृक्षों की कोमल-कोमल कोंपल तोड़कर धूप में सुखानेके लिये रक्खी हुई मुरझा जाती है। इसी भांति धन्य अनगार की ऊरु भी मांस और रक्तरहित होकर मुरझा गई थीं।

धन्य अनगारके कटि-पत्रका इस प्रकार तप-जनित लावण्य हुआ जैसे ऊंट का पैर हो, या बूढ़े बैलका पैर हो, उसमें मांस और रुधिरका सर्वथा अभाव था। धन्य अनगार का उदर-भाजन इतना सुन्दराकार हो गया जैसे सूखी मशक हो, चने आदि भूननेका भाण्ड हो अथवा लकड़ीका बीचमें मुड़ा हुआ पात्र हो। उसका उदर भी इसी प्रकार सूख गया था। धन्य अनगारकी पार्श्व की अस्थियां (पसलियां) इतनी सुन्दर हो गई थीं जैसे दर्पणोंकी पंक्ति हो, पाण नामक पात्रोंकी पंक्ति हो, अथवा स्थाणुओं की पंक्ति हो। धन्य मुनिके पीठ-प्रदेशके उन्नत भाग इतने सुन्दर हो गये थे जैसे कानके भूषणों की पंक्ति हो, गोलक-वर्तुलाकार पाषाणों की पंक्ति हो अथवा वर्तक-लाखादिके बने हुए बच्चोंके खिलौनोंकी पंक्ति हो। इसी प्रकार धन्य अनगारके पीठके भाग भी सूखकर निर्मांस हो गये थे। धन्य अनगारके उर (वक्ष-स्थल) कटकोंकी इतनी सुन्दरता हो गई थी जैसे गौके चरनेके औंधे कुण्ड हों। जैसे बांस आदिका पंखा होता है अथवा ताड़के पत्तोंका पंखा होता है, इसी भांति उसका वक्षस्थल भी सूखकर निर्मांस और रुधिररहित हो गया था। मांस और रुधिरके के अभावसे उसकी भुजायें ऐसी लगती थीं जैसे शमी, वाहाय और अगस्तिक वृक्षकी सूखी हुई फलियां हों। उनके हाथ सूखकर इस प्रकार हो गए थे जैसे सूखा गोवर होता है अथवा वट और ढाकके सूखे पत्ते हों। उनकी हाथोंकी अंगुलियां भी ···कलाय···सूख गई थीं।

उनकी ग्रीवा मांस और रुधिरके अभाव में सूखकर ऐसी दिखती थी जैसी सुराही (झझरी) का उपरिभाग, कुंडिका (कमण्डलु) और किसी ऊंचे मुख वाले पात्रकी ग्रीवा हो। उनका चिबुक (ठोडी) भी ऐसा सूख गया था और ऐसा दिखाई देता था जैसे तुम्बे या हकुब का फल अथवा आम की गुठली हो। ओठों की भी यही दशा थी, वे भी सूखकर ऐसे हो गए थे जैसे शुष्क जलोक अथवा श्लेष्म या मेंहदी की गोली हो। उनमें रक्त का नितान्त अभाव हो गया था। जिव्हा भी रक्त का अभाव होने के कारण ढाक के पत्ते के समान व सूखे शाक के पत्ते के समान दिखाई देती थी।

धन्य अनगार की नासिका तप के प्रभाव से सूख कर ऐसी हो गई थी जैसी एक आम, आम्रातक या विजौरे के फल की फांक कोमल २ काट कर धूप में सुखा देने से हो जाती है। उनकी आंखें ऐसी दिखाई देती थीं जैसे वीणा, वद्धीसग (वाद्यविशेष) का छिद्र हो, या उषाकाल का टिमटिमाता हुआ तारा हो। इसी भांति उनकी आंखें भी भीतर धंस गई थीं। उनके कान ऐसे लगते थे जैसे मूली का छिल्का हो अथवा चिर्भटी की छाल हो या करेलेका छिलका हो। जिस प्रकार ये सूख कर मुरझा जाते हैं, उसी प्रकार उनके कान भी मुरझा गए थे। उनका सिर ऐसा हो गया था जैसे कोमल तुम्बा, कोमल आलू और सेफालक

धूप में रक्खे हुए सूख जाते हैं इसी प्रकार उनका शिर शुष्क व रूक्ष हो गया था, उसमें केवल अस्थि, चर्म और नसाजाल ही दिखाई देता था। किन्तु मांस व रुधिर नाम मात्र को भी शेष नहीं रह गया था।

इसी प्रकार सभी अंगोंके विषयमें जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि उदर-भाजन, कान, जिह्वा और ओंठके विषय में अस्थि नहीं कहनी चाहिए, किन्तु केवल चर्म और नसा-जालसे ही ये पहचानें जाते थे, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि इन अङ्गों में अस्थि नहीं होती।

धन्य अनगार मांसादिके अभावसे सूखे हुए, भूख के कारण रूखे पैर, जङ्घा और ऊरुसे, भयंकररूप से प्रान्त भागों में उन्नत हुए कटि-कटाह से, पीठ के साथ मिले हुए उदर-भाजन से, अलग २ दिखाई देती हुई पसलियों से, रुद्राक्षमालाके समान स्पष्ट गिनी जाने वाली पृष्ठ-करण्डक (पीठके उन्नत प्रदेशों) की सन्धियों से, गङ्गा की तरंगों के समान उदर-कटकके प्रान्त-भागों से, सूखे हुए सांप के समान भुजाओं से, घोड़े की ढीली लगाम के समान चलते हुए हाथों से, कम्पन वायु रोग वाले पुरुष के शरीर के समान कांपती हुई शीर्ष-घटी से, मुरझाए हुए मुख कमल से, क्षीण-ओष्ठ होने के कारण घड़े के मुख के समान विकराल मुख से और आंखों के भीतर धंस जाने के कारण इतना दुवला हो गया कि उसमें शारीरिक वल विल्कुल वाकी नहीं रह गया था। वह केवल जीव-वल के सहारे ही चलता, फिरता और खड़ा होता था। थोड़ा सा वोलने में भी वह स्वयं खेद मानता था। जिस प्रकार एक कोयलों की गाड़ी चलते समय शब्द करती है, इसी भान्ति उसकी अस्थियां भी चलते समय कड़कतीं वोलती थीं। वह स्कन्दकके समान हो गया था। राखसे ढंकी हुई आगके समान वह भीतरसे दीप्त हो चमक रहा था। वह तेजसे, तपसे, उसकी शोभा से शोभायमान होकर विचरता था ॥३॥

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसके वाहर गुणशिलक नामक उद्यान था। वहां श्रेणिक राजा राज्य-शासन करता था। उस काल और उस समय में···महावीर उस उद्यानमें पधारे। नगरकी जनता सुनकर वहां गई। श्रेणिक भी गया। परिषद् उपदेश सुनकर वापिस लौट गई। तदनन्तर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके विनयपूर्वक श्रेणिक ने प्रश्न किया कि भगवन्! इन्द्रभूति आदि १४००० साधुओं में से उत्कृष्ट तपस्वी और कर्मो की अधिकतम निर्जरा करने वाला कौन मुनिवर है? भगवान् ने उत्तरमें कहा कि श्रेणिक! इनमें अत्यन्त कठोर तप अनुष्ठान करने वाला, कर्मोकी अधिक निर्जरा करने वाला इस समय धन्य अनगार है।

(श्री भगवान् के मुखसे यह सुनकर फिर श्रेणिक राजाने कहा-) "भगवन्! किस लिये आप कहते हैं कि १४ हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही कठोर तप

करने वाला और सबसे बड़ा कर्मोंकी निर्जरा करने वाला है।" (श्रेणिक राजा के इस प्रश्नको सुनकर समाधान करते हुए श्री भगवान् कहने लगे-) "हे श्रेणिक ! उस काल और उस समयमें काकन्दी नामक नगरी थी। उसके बाहर सहस्राम्रवन उद्यान था। वह उद्यान सब ऋतुओं में हरा-भरा रहता था। उस नगरी में भद्रा नामक सार्थवाहिनी रहती थी। वह धन-धान्य से परिपूर्ण···अपरिभूत थी। उसका धन्य नामक पुत्र था। जो यौवनावस्थामें विवाहित होकर श्रेष्ठ महलमें सुख भोगता था। उसी समय मैं भी अनुक्रम से विचरता हुआ···उस उद्यानमें जा ठहरा। नागरिक जन समुदाय सुनने के लिये आया, मैंने उनको धर्मकथा सुनाई। धन्यकुमार भी आया। उसके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा। वह तत्काल ही घर छोड़कर साधुधर्म में दीक्षित हो गया। उसने तभीसे असिधारा (कठोर) व्रत धारण कर लिया और केवल आचाम्लसे पारण करने लगा। वह जब आहार पानी गोचरवृत्तिसे लाता (मुझे दिखाकर) जिस प्रकार सर्प बिना किसी परिश्रम के सीधा बिलमें घुस जाता है इसी प्रकार बिना किसी लालसा के आहार करता था। धन्य अनगार के पैरोंसे लेकर सारे शरीरका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। उसके सब अंग तपरूप लावण्य से शोभित हो रहे थे। अतः श्रेणिक ! मैंने कहा है कि १४ हजार श्रमणों में धन्य अनगार महातपोधन और महा कर्मनिर्जरा करने वाला है। जब श्रमण भगवान् महावीर के मुखसे राजाने यह सुना तो हृष्ट तुष्ट··· होकर···महावीर की तीन बार आदक्षिणतः प्रदक्षिणा की, उनको वन्दना और नमस्कार कर जहां धन्य अनगार था वहां गया। वहां जाकर उसने धन्य अनगार को भी तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दना नमस्कार किया और कहने लगा-देवानुप्रिय ! तुम धन्यवादके पात्र हो, श्रेष्ठ पुण्य और कार्य करने वाले हो, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हो, तुमने ही इस मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ फल पाया है। इस प्रकार स्तुति करके फिर उनको वन्दना नमस्कार करके महावीर प्रभुके पास आया, श्रमण भगवान् म० को तीन बार आदक्षिणतः प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया। फिर जिस दिशासे आया था उसी दिशामें चला गया ॥४॥

तब उस धन्य अनगारको अन्यदा किसी समय आधी रातमें धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार के अध्यात्मिक अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि मैं इस उत्कृष्ट तपसे दुर्बल हो गया हूं। अतः प्रभातकाल ही स्कन्दकके समान ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्से पूछकर स्थविरोंके साथ विपुलगिरि पर्वत पर चढ़ कर अनशन व्रत धारण कर लूं। उसने तदनुसार ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और विपुलगिरि पर अनशन व्रत धारण कर लिया। एक मास तक अनशन व्रतको पूराकर तथा नौ महीने तक दीक्षाका पालन कर वह कालके समय काल करके चन्द्रलोकसे यावत् नव-ग्रैवेयक विमानोंके प्रस्तटोंको लांघकर सर्वार्थसिद्ध विमानमें देव रूपसे उत्पन्न हुआ। तब स्थविर विपुलगिरिसे नीचे उतर आये और भगवान्से कहा—

कि भगवन् ! ये उस धन्य अनगारके वस्त्र-पात्र तथा अन्य उपकरण आदि हैं। तब भगवान् गौतमने श्रमण भगवान् म० से प्रश्न किया कि भगवन् ! धन्य अनगार समाधिसे काल करके कहां उत्पन्न हुआ है ? भगवान्ने उत्तरमें कहा कि गौतम ! धन्य अनगार समाधिपूर्वक काल करके सर्वार्थसिद्धमें देव-पर्यायसे उत्पन्न हुआ है। गौतमने पुनः प्रश्न किया कि भगवन् ! धन्य देव की वहां कितने काल की स्थिति है ? भगवान्ने उत्तर दिया—धन्य देवकी वहां तेतीस सागरोपम की स्थिति है। गौतमने प्रश्न किया कि देवलोकसे च्युत होकर वह कहां किस पर्यायमें जायगा और कहां उत्पन्न होगा ? भगवान्ने कहा कि महाविदेह क्षेत्रमें सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर निर्वाण-पदको पाकर सब दुःखोंसे मुक्त होगा। श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि जम्बू ! इस प्रकार मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान्···ने तीसरे वर्गके पहले अध्याय का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ॥५॥

॥ तृतीय वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

भगवन् ! इत्यादि प्रश्नका पहले सूत्रोंसे अनुसन्धान कर लेना चाहिए। (उत्तरमें सुधर्मा स्वामी कहते हैं-) जम्बू ! उस काल उस समयमें काकन्दी नाम की नगरी थी। उसमें भद्रा नामकी एक सार्थवाहिनी रहती थी। वह धन-धान्य सम्पन्ना थी। उसका सुनक्षत्र नामक पुत्र था। वह सर्वांग सम्पन्न और सुरूप था। पांच धाइयोंसे उसका पालन-पोषण हुआ था। जिस प्रकार धन्यके लिए ३२ दहेज आए, उसी प्रकार इसके लिए भी। और वह सर्व श्रेष्ठ ऊंचे भवनों में सुखभोगपूर्वक विचरण करने लगा। उसी समय भगवान्···काकन्दी नगरी के बाहर पधारे। धन्यकुमारके समान सुनक्षत्रने भी उपदेश सुनकर थावच्चापुत्र के समान दीक्षा धारण की। अनगार होकर ईर्यासमिति युक्त २७ गुणोंसे संयुक्त पूर्ण ब्रह्मचारी हो गया। इसके अनन्तर वह सुनक्षत्र मुनि जिस दिनसे मुण्डित-प्रव्रजित हुआ उसी दिनसे उसने अभिग्रह धारण कर लिया। जिस प्रकार सांप बिलमें प्रवेश करता है उस रीतिसे वह आहार करने लगा। इसी बीच भगवान् महावीर वहांसे विहार करके दूसरे जनपदमें पधार गये और सुनक्षत्र अनगार ने ग्यारह अंग सूत्र पढ़े। वह संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगा। तदनुसार अत्यन्त कठोर तपके कारण जिस प्रकार स्कन्दक कृश-दुर्बल हो गया था, उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार भी···।

उस काल उस समय राजगृह नगरमें श्रेणिक राजा शासन करता था। नगरके बाहर गुणशिलक उद्यानमें ज्ञातपुत्र महावीर प्रभु पधारे। नागरिक और राजा धर्मकथा सुनकर लौट गये। तदनु आधीरातके समय धर्म-जागरण करते

हुए सुनक्षत्र अनगारको स्कन्दकके समान यह भाव उत्पन्न हुआ—अब संथारा करूं। प्रभुसे पूछकर धन्यके सदृश अनशन करके बहुत वर्ष दीक्षा पाल कर अन्त में कालके अवसर काल करके सर्वार्थसिद्ध विमानमें देव-रूपसे उत्पन्न हुआ। वहां उसकी तेतीस सागरोपमकी आयु है। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धि-निर्वाण प्राप्त करेगा। इसी भांति शेष आठ अध्ययनोंके विषयमें भी जानना चाहिए। विशेषता मात्र इतनी है कि अनुक्रमसे दो राजगृह नगरमें, दो साकेतपुरमें, दो वाणिज्यग्राममें, नौवां हस्तिनापुरमें और दसवां राजगृह नगरमें उत्पन्न हुए। इनमें नौ की माताएं भद्रा नाम वाली थीं, नवों को बत्तीस··· और नवों का निष्क्रमण स्त्यावत्यापुत्रके समान हुआ। केवल वेहल्लकुमार का निष्क्रमण उसके पिताके द्वारा हुआ। छ: मास का दीक्षापर्याय वेहल्ल अनगारने पालन किया। नौ मास का धन्य अनगारने। शेष आठोंने अनेक वर्ष तक दीक्षापर्याय पालन किया। दसों ने एक-एक मास की संलेखना (समाधिमरण) धारण किया। सब सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न हुए और वहांसे चवकर सब महाविदेहक्षेत्रसे सिद्धगति (निर्वाण) प्राप्त करेंगे।

हे जम्बू! इस प्रकार धर्मप्रवर्तक, चार तीर्थ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) स्थापन करने वाले, स्वयंबुद्ध, लोकनाथ, लोकोंको प्रकाशित व प्रदीप्त करने वाले, अभय-प्रदान करने वाले, शरण देने वाले, ज्ञाननेत्र प्रदान करने वाले, मुक्तिका मार्ग बताने वाले, धर्म देने वाले, धर्मोपदेशक, धर्मवर-चतुरन्त-चक्रवर्ती, अनभिभूत-श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन वाले, राग-द्वेष पर विजय पाने वाले, ज्ञायक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, स्वयं संसार सागरसे तैरने वाले, औरोंको तिराने वाले, कल्याणरूप, नित्य-स्थिर, अन्तरहित, विनाश-रहित, शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधि-रहित, पुन: पुन: सांसारिक-जन्म-मरणरहित सिद्धिगति नामक स्थान-प्राप्त श्री श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुने अनुत्तरोपपातिकदशाके तीसरे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ॥६॥

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

अनुत्तरोपपातिकदशामें एक श्रुतस्कंध है, तीन वर्ग हैं, तीन दिनमें उपदिष्ट होते हैं। पहले वर्गमें दस उद्देशक हैं, दूसरे में १३, तीसरे वर्गमें १० उद्देशक शेष ज्ञाताधर्मकथाके समान जानना ॥७॥

[सार—इस सूत्रसे अन्तिम शिक्षा यह भी मिलती है कि उक्त महर्षियोंने महाघोर तप करते हुए भी ग्यारह अंगसूत्रोंका पठन-पाठन किया। अत: प्रत्येक साधकको योग्यतापूर्वक शास्त्राध्ययन में प्रयत्नशील होना उचित है, जिससे वह निर्वाणपद की प्राप्ति सुगमरीति से कर सके।]

॥ अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र नामक नवमांग समाप्त ॥

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

प्रश्नव्याकरण सूत्र

उत्थानिका-आश्रवद्वार-प्रथम अध्ययन-हिंसाकर्म

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को..., आचार्यों को..., उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोकके समस्त साधुओं को नमस्कार हो। (उस काल उस समय में चंपा नाम की नगरी थी, पूर्णभद्र उद्यान, अशोक० पृथ्वीशिलापट्टक। उस चंपा नगरी में कोणिक राजा राज्य करता था। ...धारिणी रानी... । उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीरके अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नामक स्थविर...यावत् आर्य जम्बू ने पूछा—हे भगवन्! यदि मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने नवमांग अनुत्तरोपपातिकदशा का यह अर्थ कहा है तो दसवें अंग प्रश्नव्याकरण का ...क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?...जम्बू! मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीरने दशमांगके दो श्रुतस्कंध कहे हैं। आस्रवद्वार व संवरद्वार।...प्रथम श्रुतस्कंधके कितने अध्ययन कहे हैं?...पांच अध्ययन...।...दूसरे श्रुतस्कंधके कितने...?...पांच...।... इन आस्रवसंवरोंका श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्षप्राप्तने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? ऐसा पूछने पर) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी अपने सुशिष्य श्री जंबू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त ने प्रश्नव्याकरण सूत्र का अर्थ इस प्रकार प्रतिपादित किया है —

जीवरूपी तालावमें कर्मरूपी पानीके आने का मार्ग 'आस्रव' कहलाता है, और उस आस्रवको रोकने वाला संवररूप प्रतिबन्ध अथवा पाल है। उसी का इस सूत्रमें वर्णन है। इस तत्वके विवेचन के लिए मैं इस सूत्रका वर्णन करता हूं। इस सूत्रका कथन श्रीतीर्थंकरदेवने अपने दिव्यज्ञानसे जानकर किया है।

कर्म आनेके पांच (आस्रव) द्वार—श्रीजिनेश्वर ने आत्मामें कर्म आनेके द्वारके समान आस्रवके पांच भेद बताए हैं। ये पांच आस्रव संसारी जीवके समान (संसार के सदृश) आदि रहित हैं, परन्तु अनेक प्रकारके जीवोंमें किसी जीवकी अपेक्षासे इनका अन्त भी है।

पांच आस्रवों के नाम—(१) हिंसा-आस्रव-अर्थात् एकेन्द्रिय जीवसे लगा कर पंचेन्द्रिय तकके जीवोंका प्राणघात करना। (२) मृषा-आस्रव-असत्य बोलना।

(३) अदत्त-आस्रव-स्वामीकी आज्ञा या उसके दिये विना वस्तुका लेना-ग्रहण करना। (४) अब्रह्म-आस्रव-मैथुन-विषय सेवन करना। (५) परिग्रह-आस्रव-धन-द्रव्यादि वस्तु पर ममत्व-या संग्रह करना। इन पांच आस्रवोंके पांच अध्ययन हैं।

पहले अध्ययन में 'पांच द्वार' इस प्रकार कहे हैं—(१) पहले द्वार में हिंसा का स्वरूप, (२) हिंसा के नाम, (३) जिन जिन कारणों से हिंसा होती है, (४) हिंसा का जो परिणाम होता है, (५) जो पापी जन प्राणवध करता है। उसका विस्तारपूर्वक स्वरूप—इन पांच प्रकारके द्वार वाले अध्ययनमें आस्रवका स्वरूप स्पष्ट किया है, जम्बू! इसे सुन (इस प्रकार श्रीसुधर्मा अपने अन्तेवासी जम्बूसे कहते हैं)।

हिंसा का स्वरूप—श्रीवीतरागी-जिनेश्वरने प्राणवधको सदैव पापकारी, अर्थात् पापप्रकृति का बंध करने वाला, चण्ड-क्रोध का कारणभूत, रौद्र-भयंकर, क्षुद्र-द्रोह करने वाला, साहसिक-विना सोचे विचारे करने वाला, अनार्य-म्लेच्छादिकों का दुराचारपूर्वक फैलाया हुआ, निघृ'ण-पाप की जुगुप्सा विना का भ्रष्टाचार, नृशंस-क्रूर अथवा घृणारहित पापाचार, महाभय-प्राणीमात्र पर अति डर और आतंक फैलाने वाला, प्रतिभय-औरोंको अधिकसे अधिक डराने वाला, अतिभय-मारणांतिक भय उपजाने वाला, भयानक-प्राणी मात्रके लिए भयका स्थान, त्रास का स्थान, अन्यायकर्त्ता, उद्वेगकर्त्ता, परलोकादि की अपेक्षा रहित, श्रुत और चरित्रधर्मसे विमुख करके उलटी धारणा में पटककर आत्माको विभावमुखी करने वाला, पिपासा-स्नेहरहित, दया-अनुकम्पारहित, अन्तमें नरक ले जाने वाला, महामोह और महाभय उत्पन्न करने वाला, तथा प्राण त्याग रूप दीनता उत्पन्न करने वाला कहा गया है ॥१॥

हिंसा के नाम—हिंसा के गुणनिष्पन्न ३० नाम हैं—(१) प्राणवध-एकेन्द्रिय के चार प्राणसे लगाकर पंचेन्द्रियके १० प्राणों तक का नाशक। (२) शरीर से जीवका उन्मूलन-अलग करना, जैसे वृक्ष को पृथ्वीमें से उखेड़ डाला जाता है, वैसे ही देह पिंडमें से जीवको निकाल देना। (३) विश्वास के हेतुके लिये अविस्रंभ। (४) हिंसा-विहिंसा, जीवका विशेष रूप से घात। (५) अकरणीय-न करने योग्य, भीषण काण्ड कर डालना। (६) घात करना, पर्याय नाश करना। (७) मार डालना, प्राणों को तड़फाना। (८) वध करना, संयोगों का वियोग करना। (९) प्राणियोंके लिए उपद्रव करना या धोखा देकर ठगना। (१०) मन-वचन-काया एवं देह आयु और इन्द्रियोंसे अलग करना, जीवन-रहित करना। (११) आरम्भ-समारंभ करना। (१२) आयुष्यकर्मके लिए उपद्रव करना, आयुकर्म का भेदन करना, आयुकर्मकी प्रकृतिको गाल देना, आयुष्यका संवर्त-संकोच करना (कम करना, शरीर में से प्रदेशों को संकुचित करना)। (१३)

मृत्यु करना। (१४) असंयम करना। (१५) जीव की आत्मप्रदेश रूप सेना का मर्दन कर डालना। (१६) श्वास-निश्वास-प्राणवायु की क्रिया रोककर जीवन का अन्त कर डालना। (१७) परलोकगामी करना, दूसरी पर्याय में पहुँचाना, वर्तमान जन्म छुड़ा देना। (१८) दुर्गति में पटकना। (१९) पापप्रकृतिका विस्तार करना। (२०) पापकर्ममें आसक्त होना। (२१) शरीर का छेदन करना। (२२) जीवितव्यका अन्त करना। (२३) भय-त्रास देना। (२४) ऋण-(जन्म मरण का कर्ज) बढ़ाना। (२५) वज्र के समान अधिक भार-बोझ वाली प्रकृति (कालान्तर में जिसका वहन न हो सके)। (२६) परिताप—दुःख रूप आस्रव का झरना। (२७) प्राणी के प्राणों को निकाल कर बाहर करना। (२८) जीवसे रहित शरीर करना। (२९) प्राणी के प्राणों का लोपन—अभाव करना। (३०) प्राणियों के उत्तमोत्तम गुणों की विराधना करना, उन्हें खण्डशः करना, चरित्र आदि गुणोंके टूक-टूक कर डालना। इस प्रकार समुच्चय—थोड़ेसे में तीस नाम प्राणवध (हिंसा) के बताए हैं। तथा ये तीस प्राणवध रूप कर्म कर्त्ताको कड़वेसे कड़वे फल देने वाले हैं॥२॥

विशिष्ट विहिंसा—बहुतसे पापी लोग उपरोक्त कथन के अतिरिक्त दूसरे कई ढंगसे भी हिंसा करते हैं, जैसे असंयति—अविरति—अनुपशांत परिणाम वाले तथा मन-वचन और कायाके दुष्टयोगको धारण करने वाले नाना भान्ति से प्राण-वध करते हैं। यह प्राणवध भयंकर, बहुविध-अनेक प्रकारका है। हिंसा करने वाले हत्यारे लोग अन्य जीवोंको नाना दुःख उपजानेमें तत्पर रहते हैं, और वे नीचे लिखे अनुसार त्रस और स्थावर जीवोंके ऊपर द्वेष-बुद्धि रखनेमें तत्पर होते हैं।

जलचर—(पाठीन) मत्स्य, (तिति) बड़े मच्छ, तिमिंगल जाति आदि अनेक प्रकारके मच्छ, कई प्रकारके मेंढक, दो तरह के कछुवे, नक्र तथा मगर ये दो भान्ति के ग्राह, दिलि, वेढ़क, मंडूक, सोमाकार, पुलक ये पांच प्रकार के ग्राह, सुंसुमार आदि नाना जाति के जलचर प्राणी होते हैं।

स्थलचर—मृग-हिरन, रुरु जातिके मृग, अष्टापद, चमरी गाय, साबर, भेड़, खरगोश, वनचर प्राणी, गोह, रोहित, घोड़ा, हाथी, ऊंट, गधा, बन्दर, रोझ, (अरना मीथुन गाय जैसे आसाम के भयानक जानवर), नाहर, गीदड़, छोटे सूअर, बिलाव, बड़े सूअर, श्रीकन्दलक, आवर्त, लोमड़ी, दो खुर वाले पशु, एक प्रकारके हिरन, महिष, बाघ, बकरे, चीते, एक खुरी वाले जीव, कुत्ता, तरस, रीछ, शार्दूल सिंह, केसरी सिंह, चिल्लार आदि चौपाए जानवर।

उरपुर—अजगर, बिना फनका सांप, दृष्टिविष सर्प, मकुलीक सर्प, फन न मोड़ने वाला सर्प, काकोदर, दर्भकर, फणधर(खड़पा), आसालिया सर्प, महोरग आदि अनेक प्रकारके उरपुर जीव। भुजपुर—क्षीरल, संरंग, कांटेदार सेह,

सेल्लग, चूहा, नेवला, काचौंड़ा, कांटे वाला शेला, मुंह के समान आकार वाला जीव, गिलहरी, चातुष्पाद, छिपकली, इन सबका समूह भुजपुर है।

खेचर—हंस, बगुला, वत्तख, सारस, आडा—पक्षी, सेंतीका पक्षी, कुल्लल, वंजुल, कबूतर, कीब, पीपी शब्द बोलने वाला, श्वेत हंस, कलहंस, पैर और मुंहका काला हंस, भास, कुलीकोस, क्रौंच, दगतुंड, मोरनी, मैंना, कपिल, पिंगलाक्षक, कारंडव, चक्रवाक, उक्कोस, गरुड़, पंगुल, तोता, कलावान मोर, कावरी, नन्दीमुख, नन्दमाणकर, कोरंग, भिंगारक, कोरणालग, जीवंजीवक, तीतर, वर्तका, लावा, कपिंजल, हीला, कौआ, पारेवा, चिड़िया, ढंक, मुर्गा, मेसर नाचने, वाला मोर, (सफेद मोर) चकोर, हयपुंडरीक, करंकरक, बाज़, जलकाक, विहंग, भेरणासो, नीलकण्ठ, वडबागल, चमगीदड़, वितत-पक्षी, आदि खेचर पक्षियों के भेद हैं।

ऊपर कहे हुए जलचर, स्थलचर, खेचर आदि पंचेन्द्रिय जीवोंके समूहका दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, और चार इन्द्रिय जीवोंका, विविध प्रकारके जीवोंका अथवा जिन्हें अपना जीवन प्रिय है और मरनेके दु;खसे कांपते हैं, उन बेचारे रंक—पामर प्राणियों का क्रूर कर्म करने वाले हनन करते हैं। हिंसा के कारण—वे इन प्राणियोंको जिन जिन कारणोंसे मारते हैं, वे इस प्रकार हैं—चमड़ा, चर्वी, मांस, मेद, रक्त, दहने ओर की गांठ, फेफड़े, मगज, कलेजेका मांस, आन्तें, फोफस(शरीरके भीतर का अवयव), दांत, हड्डी, हड्डीके भीतरकी गुठली, नख, आंखें, कान, नस, नाक, नाड़ी, सींग, दाढ़, पांख, विप, हाथीदांत और वालोंके लिए पंचेन्द्रिय जीवों का हनन करते हैं।

भौंरा मधुकर आदि चार इन्द्रिय जीवोंके समूहके मीठे रस में पगे हुए चार-इन्द्रिय वाले जीवों को मारते हैं। इसी भांति अपने शरीरको वचाने के लिए, सुख की नींद सोने के लिए, गरीव तीन इन्द्रियों वाले जीवों (जूं-खटमल आदि) का हनन कर डालते हैं। कपड़े के लिए (रेशम आदि के कीड़े आदिके लिए), घर मकान के लिए, दो इन्द्रिय वाले जीवोंके साथकी मिट्टीके लिए या आभूपरण आदिके लिये (मोती, सीप आदि दो इन्द्रिय वाले जीवोंके लिए)। इस प्रकार अनेक कारणोंसे अज्ञानी जीव दो इन्द्रिय वाले त्रस जीवोंको मार डालते हैं।

इसके अतिरिक्त एकेन्द्रियके आश्रयसे रहने वाले त्रस जीवोंका तथा त्रस जीवोंके आश्रय से रहने वाले एकेन्द्रिय जीवोंका भी वे अनेक कारणोंकी अपेक्षा रखकर जीवन नाश कर डालते हैं। वे वेचारे एकेन्द्रिय जीव निराधार हैं, शरण रहित हैं, अनाथ हैं, वान्धव आदि रहित हैं, कर्मकी जंजीर से बंधे हुए हैं, अकुशल परिणामा हैं, मन्दवुद्धि लोग उन्हें नहीं जानते। ये पृथ्वीकायके जीव हैं तथा पृथ्वीकायके आश्रयसे रहे हुए (अलसिए आदि) हैं। पानीके जीव पानीके सहारे

से रहने वाले (कीड़े आदि) हैं। अग्निके जीव और वायुके जीव हैं। तृण-वनस्पतिके जीव हैं तथा उसके आश्रयसे रहे हुए हैं। वे जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्पन्न होते हैं, और उनका आहार भी एकेन्द्रिय का है। ऐसे त्रस जीवोंको वे मारते हैं। त्रस जीव जिस एकेन्द्रियका आहार करते हैं उनके समान वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, रूप और स्वभावमें वदल जाते हैं। वे दो आंखों से नहीं दिखते तथा आंखों से दिखने वाले त्रसकायके असंख्य जीव हैं। इसी प्रकार स्थावर, सूक्ष्म, वादर, प्रत्येक, साधारण और अनन्तकाय आदि जीवोंको वे मार डालते हैं। ये स्थावरजीव विवेकरहित होने पर भी सुख-दुःखको जानते हैं। इस प्रकार त्रस और स्थावर जीवोंका लोग हनन कर रहे हैं।

हिंसाके खास कारण—जिन जिन कारणों के द्वारा हिंसा होती है वे कारण इस प्रकार हैं—खेती, कमल समेत चौकुंठी वावड़ी, कमल सहित गोल वावड़ी, क्यारियां, कुंएं, विन खुदे तालाव, खोदे गए तालाव, मिट्टीकी खानें, वेदिका, नगर की खाई, वगीची, खेलने कूदनेके स्थान, मरे हुओंकी यादगार, गढ़, दर्वाजा, गढ़की पौर, गढ़के कोठे, वुर्ज, गढ़ और नगरके बीचका मार्ग, पुल, मार्ग और पाद चिन्ह, महल और उसके विभाग, भवन, गृह, वास से भरे कूवे, पहाड़के ऊपर वाले पहाड़के स्वाभाविक घर, दुकान, चित्रसभा, प्याऊ, देवस्थान, तापसादिके स्थान, भोंयरे, तहखाने और मण्डप, एवं धातुके वर्तन, मिट्टी के वर्तन (आटा पीसनेकी चक्की तथा कूंडी आदि) घरके आकर्षक तथा रच पचकर रहनेके आकर्षक सामान, आदि अनेक प्रकार के कारणों से मंद वुद्धि वाले पृथ्वीकायकी हिंसा करते है।

न्हाना, धोना, पीना, भोजन, कपड़े धोना, शौच आदि स्थानोंके कारण मंदमति पानीके जीवोंकी हिंसा करते हैं। रांधना, पकवाना, आग सुलगाना, दीवा जलाना आदि कारणों से अग्निकायकी हिंसा करते हैं। छाजसे फटकारना, पंखे से हवा करना, दोहरे पंखे…,मोर पींछी फिराना, मुंहसे वोलना, ताली वजाना, ध्वजा हिलाना, कपड़े से हवा करना, इत्यादि साधनोंसे वायुकाय की अयतना करते हैं।

घर, हथियार, मीठा अन्न आदि, अन्न, शय्या, आसन, चौकी, तख्ता, मूसल, ओखल, वीणा आदि वाजे, ढिढोरा (ढोल आदि),आतोद्य (एक प्रकारका वाजा), पानी का जहाज, सवारी, मण्डप, नाना प्रकारके भवन, तोरण, लकड़ी और पत्थरके शिखरवद्ध मकान, जाली-खिड़की, अर्धचन्द्राकार पैड़ियां, चौखट, प्रासादके ऊपर की चन्द्रशाला, वेदिका, सीढ़ी, नाव, पशु वांधनेके कीले-खूंटे, पेंहड़ी, आश्रम, सुगन्ध पदार्थ (कपूर आदि), फूलमाला, अंग विलेपनके पदार्थ, वस्त्र, जुआ, हल, वर्तन, वड़े रथ, पालकी, छोटे रथ, गाड़ी, यान विल्कुल छोटा रथ, गढ़का कोठा, गढ़के

भीतरका मार्ग, दर्वाजा, दहलीज, आगल-भोगल, रहट, शूली, लकड़ी, मुसुंढी (एक प्रकारका हथियार), सौ आदमियोंको मारने वाला हथियार, उसके उपरान्त के हथियार और घर बार के कई कारणों के लिए, बताए हुए उपरोक्त कारणोंके लिए तथा अन्यान्य सत्ववाले या सत्वहीन वृक्षोंके समूह आदि वनस्पतिकायकी हिंसा अतिमूढ़ और दारुण मति वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक द्वारा वेद (स्त्री-पशु और नपुंसक) के लिए, जीवितव्य के लिए, कामभोग के लिए, धन और धर्मके निमित्त हिंसा करते हैं।

फिर वे स्ववश या परवश रहे हुए, अपने या औरके लिए त्रस और स्थावर प्राणीका हनन करते हैं, वे मन्दमति स्ववश या परवश अथवा दोनों प्रकारसे हिंसा करते हैं, वे अपने लिए और औरों के लिए हिंसा करते हैं। वे हास्यपूर्वक, वैरपूर्वक और रति उपजाने के लिए अथवा हास्य-वैर-रति इन तीनों के लिए हिंसा करते हैं। वे क्रोध, लोभ और अज्ञानतासे एवं क्रोध-लोभ-अज्ञान इन तीनोंके द्वारा प्रेरित होकर हिंसा करते हैं। धन कमाने के लिए, धन के निमित्त, कामभोगके लिए एवं धन-धर्म और काम-भोग इन तीनों के लिए वे हिंसा करते हैं ॥३॥

हिंसक लोग—इस प्रकारकी हिंसा कौन करते हैं? आखेटक (सूअरका शिकार करने वाले), धीवर (मच्छीमार), पारधी (पक्षियों के शिकारी), या अन्यान्य प्रकारके पारधी (वाहा); ये क्रूर कर्म करने वाले (वागरी-वहेलिया या कंजर) चीते और हिरन आदि को जीवित ही पकड़ कर बांधने का उपाय करते हैं एवं त्रापा raft लट्ठों के वने हुए वेड़े पर बैठ कर मच्छ पकड़नेके लिए वड़ा जाल डालते हैं। वाज पक्षी, लोहेके साधन, डाभके पासले, कूंडी, वकरी (चीते आदिको आकर्षित करने के लिये) आदि शिकारके साधन और पापी सेवकोंको भी वे चाण्डाल अपने हाथमें रखते हैं। वनचर (भील आदि), व्याध (मृगका वध करने वाले), मधु इकट्ठा करने वाले, वालककी हत्या करने वाले, हिरनीको पालने वाले (हिरनोंको पाने के लिए), हिरनों के पोषक, सरोवर-द्रह-नदी-तालाव-छोटा तालाव आदिको (शंख-सीप-मत्स्य आदि पाने के लिए) गलाने वाले, उन्हें और अधिक गहरा करने वाले, प्रवाह पर वांध लगाकर उसके पानी के प्रवाहको रोकने वाले, पानीके प्रवाहको अधिक वेग देने वाले, कालकूट विष और सामान्य विष देकर हत्या करने वाले, घास तथा खेत, जंगल को आग लगाकर उन्हें निर्दयतासे जलाने वाले, एवं क्रूर कर्म करने वाले म्लेच्छ जातिके लोग; ये सब इस प्रकारकी हिंसा करते हैं।

हिंसक लोगोंकी जातिके देश—ये म्लेच्छ जातिके लोग किस-किस देशके निवासी हैं? वे सक्क, यवन, सवर, वर्ब्बर, काय, मुरड, उड, भडग, भित्तिय, एकुणीक, कुलाक्ष, गोड, सिंहल, पारस, क्रौंच, अंध, द्रविड़, चिल्लल, मुलिन्द, आरोस, डोंब, पोक्काण, गंधहारक, वल्हीक, जल, रोम, मोस, वकुश, मलय,

से रहने वाले (कीड़े आदि) हैं। अग्निके जीव और वायुके जीव हैं। तृण-वनस्पतिके जीव हैं तथा उसके आश्रयसे रहे हुए हैं। वे जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्पन्न होते हैं, और उनका आहार भी एकेन्द्रिय का है। ऐसे त्रस जीवोंको वे मारते हैं। त्रस जीव जिस एकेन्द्रियका आहार करते है उनके समान वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, रूप और स्वभावमें बदल जाते हैं। वे दो आंखों से नहीं दिखते तथा आंखों से दिखने वाले त्रसकायके असंख्य जीव हैं। इसी प्रकार स्थावर, सूक्ष्म, वादर, प्रत्येक, साधारण और अनन्तकाय आदि जीवोंको वे मार डालते हैं। ये स्थावरजीव विवेकरहित होने पर भी सुख-दुःखको जानते हैं। इस प्रकार त्रस और स्थावर जीवोंका लोग हनन कर रहे हैं।

हिंसाके खास कारण—जिन जिन कारणों के द्वारा हिंसा होती है वे कारण इस प्रकार हैं—खेती, कमल समेत चौकुंठी वावड़ी, कमल सहित गोल वावड़ी, क्यारियां, कुंएं, विन खुदे तालाव, खोदे गए तालाव, मिट्टीकी खानें, वेदिका, नगर की खाई, वगीची, खेलने कूदनेके स्थान, मरे हुओंकी यादगार, गढ़, दर्वाजा, गढ़की पौर, गढ़के कोठे, बुर्ज, गढ़ और नगरके बीचका मार्ग, पुल, मार्ग और पाद चिन्ह, महल और उसके विभाग, भवन, गृह, वास से भरे कूबे, पहाड़के ऊपर वाले पहाड़के स्वाभाविक घर, दुकान, चित्रसभा, प्याऊ, देवस्थान, तापसादिके स्थान, भोंयरे, तहखाने और मण्डप, एवं धातुके वर्तन, मिट्टी के वर्तन (आटा पीसनेकी चक्की तथा कूंडी आदि) घरके आकर्पक तथा रच पचकर रहनेके आकर्पक सामान, आदि अनेक प्रकार के कारणों से मंद वुद्धि वाले पृथ्वीकायकी हिंसा करते है।

न्हाना, धोना, पीना, भोजन, कपड़े धोना, शौच आदि स्थानोंके कारण मंदमति पानीके जीवोंकी हिंसा करते हैं। रांधना, पकवाना, आग सुलगाना, दीवा जलाना आदि कारणों से अग्निकायकी हिंसा करते हैं। छाजसे फटकारना, पंखे से हवा करना, दोहरे पंखे···,मोर पींछी फिराना, मुंहसे बोलना, ताली वजाना, ध्वजा हिलाना, कपड़े से हवा करना, इत्यादि साधनोंसे वायुकाय की अयतना करते हैं।

घर, हथियार, मीठा अन्न आदि, अन्न, शय्या, आसन, चौकी, तख्ता, मूसल, ओखल, वीणा आदि वाजे, ढिंढोरा (ढोल आदि),आतोद्य (एक प्रकारका वाजा), पानी का जहाज, सवारी, मण्डप, नाना प्रकारके भवन, तोरण, लकड़ी और पत्थरके शिखरवद्ध मकान, जाली-खिड़की, अर्धचन्द्राकार पैड़ियां, चौखट, प्रासादके ऊपर की चन्द्रशाला, वेदिका, सीढ़ी, नाव, पशु वांधनेके कीले-खूंटे, पेंहड़ी, आश्रम, सुगन्ध पदार्थ (कपूर आदि), फूलमाला, अंग विलेपनके पदार्थ, वस्त्र, जुआ, हल, वर्तन, वड़े रथ, पालकी, छोटे रथ, गाड़ी, यान विल्कुल छोटा रथ, गढ़का कोठा, गढ़के

भीतरका मार्ग, दर्वाजा, दहलीज, आगल-भोगल, रहट, शूली, लकड़ी, मुसुंढी (एक प्रकारका हथियार), सौ आदमियोंको मारने वाला हथियार, उसके उपरान्त के हथियार और घर बार के कई कारणों के लिए, बताए हुए उपरोक्त कारणोंके लिए तथा अन्यान्य सत्ववाले या सत्वहीन वृक्षोंके समूह आदि वनस्पतिकायकी हिंसा अतिमूढ़ और दारुण मति वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक द्वारा वेद (स्त्री-पशु और नपुंसक) के लिए, जीवितव्य के लिए, कामभोग के लिए, धन और धर्मके निमित्त हिंसा करते हैं।

फिर वे स्ववश या परवश रहे हुए, अपने या औरके लिए त्रस और स्थावर प्राणीका हनन करते हैं, वे मन्दमति स्ववश या परवश अथवा दोनों प्रकारसे हिंसा करते हैं, वे अपने लिए और औरों के लिए हिंसा करते हैं। वे हास्यपूर्वक, वैरपूर्वक और रति उपजाने के लिए अथवा हास्य-वैर-रति इन तीनों के लिए हिंसा करते हैं। वे क्रोध, लोभ और अज्ञानतासे एवं क्रोध-लोभ-अज्ञान इन तीनोंके द्वारा प्रेरित होकर हिंसा करते हैं। धन कमाने के लिए, धन के निमित्त, कामभोगके लिए एवं धन-धर्म और काम-भोग इन तीनों के लिए वे हिंसा करते हैं ॥३॥

हिंसक लोग—इस प्रकारकी हिंसा कौन करते हैं? आखेटक (सूअरका शिकार करने वाले), धीवर (मच्छीमार), पारधी (पक्षियों के शिकारी), या अन्यान्य प्रकारके पारधी (वाहा); ये क्रूर कर्म करने वाले (वागरी-वहेलिया या कंजर) चीते और हिरन आदि को जीवित ही पकड़ कर बांधने का उपाय करते हैं एवं त्रापा raft लट्ठों के बने हुए बेड़े पर बैठ कर मच्छ पकड़नेके लिए बड़ा जाल डालते हैं। बाज पक्षी, लोहेके साधन, डाभके पासले, कूंडी, बकरी (चीते आदिको आकर्षित करने के लिये) आदि शिकारके साधन और पापी सेवकोंको भी वे चाण्डाल अपने हाथमें रखते हैं। वनचर (भील आदि), व्याध (मृगका वध करने वाले), मधु इकट्ठा करने वाले, बालककी हत्या करने वाले, हिरनीको पालने वाले (हिरनोंको पाने के लिए), हिरनों के पोषक, सरोवर-द्रह-नदी-तालाव-छोटा तालाब आदिको (शंख-सीप-मत्स्य आदि पाने के लिए) गलाने वाले, उन्हें और अधिक गहरा करने वाले, प्रवाह पर बांध लगाकर उसके पानी के प्रवाहको रोकने वाले, पानीके प्रवाहको अधिक वेग देने वाले, कालकूट विष और सामान्य विष देकर हत्या करने वाले, घास तथा खेत, जंगल को आग लगाकर उन्हें निर्दयतासे जलाने वाले, एवं क्रूर कर्म करने वाले म्लेच्छ जातिके लोग; ये सब इस प्रकारकी हिंसा करते हैं।

हिंसक लोगोंकी जातिके देश—ये म्लेच्छ जातिके लोग किस-किस देशके निवासी हैं? वे सक्क, यवन, सवर, बर्बर, काय, मुरड, उड, भडग, भित्तिय, एकुणीक, कुलाक्ष, गोड, सिंहल, पारस, क्रोंच, अंध, द्रविड़, चिल्लल, मुलिन्द, आरोस, डोंव, पोक्कारण, गंधहारक, वल्हीक, जल, रोम, मोस, वकुश, मलय,

चुम्बुक, चुलिक, कोंकणक, मेद, पल्लव, मालव, मगर, आभाषिक, अनक्ष, चीन, हलासिक, खस, खासिक, नेथर, महाराष्ट्र, मुष्टिक, आरब, डोविलक, कुहण, केकय, हूण, रुडक, मरुग और चिलाग देश। इन देशोंके वासियोंकी पापमति रहती है। वे जलचर, स्थलचर, नख वाले (सिंहादि प्राणी), सर्पादि, खेचर(पक्षी), संडासीके समान मुंह वाले पक्षी, संज्ञी प्राणी, असंज्ञी प्राणी, पर्याप्तजीव आदि की अशुभलेश्या और दुष्ट परिणाम से हिंसा करते हैं। ये प्राणी हिंसा करने वाले हिंसा करने के लिए सामने चलकर जाते हैं, इनकी पापमें रुचि होती है। प्राण-वध करके ये आनन्द मानते हैं। जीव हिंसाका अनुष्ठान मानने वाले और प्राणी-हिंसाकी कथा-वार्ता सुननेमें सन्तोष मानते हैं।

हिंसाके फल—पापमें आनन्द मानने वाले लोगों को पापोंका फल अनेक प्रकारसे भोगना पड़ता है। अज्ञानतासे किये गये पापोंका परिणाम नरक दुःख-कारक और सहन करते समय डरावना लगता है। बहुत काल तक अविश्रान्त, अनेक प्रकारसे नरक और तिर्यचकी गतिमें वेदनाका अनुभव ये पाप ही कराते हैं। आयुके पूर्ण होने पर जीव अशुभकर्मके योगसे नरकमें उत्पन्न होते हैं। ये पापी जीव पापका फल भोगनेके लिये महानरकमें पड़कर सड़ते रहते हैं।

नारकीय यातनाओंका वर्णन—नरक कैसा होता है? उसकी भीतें वज्र-मय पक्की होनेसे नारक निकल कर भाग नहीं सकता। वह चौड़ा बहुत है, अटूट है, उसका द्वार नहीं दिखता, उसका तल कठोर भूमिका है, उसका स्पर्श खुर्दरा-कर्कश है, भूमि ऊंची नीची और विषम है। वह नरकगृह कारावासके समान है, वह गर्म बहुत है, सदा तपता हुआ धू-धू ज्वालाएं निकालता रहता है, दुर्गन्ध-सड़े बुसे पुद्गलोंसे व्याप्त है, देखकर डर लगता है और सुनकर मन उद्विग्न हो उठता है। वे नरकगृह शीतलतामें बर्फके पर्देके समान हैं। कान्तिकी अपेक्षा काला रंग है, भयावह लगता है, ऊंडा-गहन है, रोमांच उत्पन्न करता है, अरमणीय है, नारकीय जीवोंका निवासस्थान अनिवार्य रोग और जरासे व्याप्त और पीड़ित है। वहां सदैव तिमिसगुफा जैसा अंधेरा फैला हुआ रहता है। वहां आपस का भय और डर अधिक रहता है। चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारे वहां नहीं हैं। ये नरकगृह मेद-चर्बी-मांस-राध-कच-लहू-रक्त से मिश्रित और दुर्गन्ध-मय, चिकने तथा सड़े हुए कीचड़ से भरे हुए हैं। वहां खैरकी लकड़ीके समान जलते हुए और राखसे ढंके हुए के समान अग्नि है। इन नरकगृहोंका स्पर्श तलवार-छुरे-करवत की धारसे भी अधिक पैना, बिच्छूके डंकके समान अतीव दुःखकर है। ऐसे भया-नक नरकमें जीवोंका कोई रक्षक और त्राण-शरण नहीं है, कर्मके कड़वे फलमय दुःखके द्वारा परवश होकर पीड़ा भोग रहे हैं। पहले जन्मोंमें कर्मबन्ध करनेके कारण वर्तमानमें वेदना सहन कर रहे हैं। नरकमें जहां तहां परमाधार्मिक देव फैले

पड़े हैं। नारकीय जीवों को अन्तर्मुहूर्तमें वैक्रेयिकलब्धिके द्वारा वेडोल, डरावना और हड्डी-नस-नख-रोमसे रहित शरीर प्राप्त होता है। इसके वाद पांच पर्याप्ति और पांच इन्द्रियां पूरी विकसित हो उठती हैं। उनके द्वारा अशुभ (मनके प्रतिकूल) वेदनाएं भोगनी पड़ती हैं। वह वेदना करारी-प्रबल सारे शरीरव्यापी तीनों योगोंमें पसरी हुई और अन्त तक रहती है।

वह वेदना तीव्र-कर्कश-प्रचण्ड-डरावनी कैसी दारुण है, उसे संक्षेपसे इस प्रकार कहा है—नरकके नारकों को रक्तकी बड़ी-सी हंडियामें रंधना, सिकना पड़ता है, तमेड़ीमें तला जाता है, भट्ठीमें भूना जाता है, लोहे की कड़ाहीमें उन्हें उकालते हैं, बलिदान दिया जाता है, कूटते हैं, शाल्मली वृक्षके छेद वाले लोहेके कांटोंके समान कांटोंके ऊपर उन्हें परमाधामी घसीटते, चीरते, बिदारते और मस्तकको पिछली ओर से मरोड़ कर बांधते हैं, वेंत-कमची या डंडों से फटकारते हैं, गलेमें जवर्दस्ती फांसी लगाकर खींचते हैं, झुलाते हैं, शूलकी पैनी नोक चुभोते हैं, आज्ञा देकर प्रतारणा करते हैं, लज्जित करते हैं, अपमानित या लांछित करते हैं, अपराधी सिद्ध करके उसे वध्यभूमिमें ले जाते हैं, वध्यजीवको मिट्टीमें दफना देते हैं, इस प्रकारके कष्टों द्वारा जन्मान्तर के किए हुए कर्मोंके संचयसे नरकके जीव पीड़ा भोगते हैं। नरक क्षेत्र की आग महाअग्नि (दवानल) के समान, नरक की अति दुःखकारी, भयकारी, असाताकारी, शारीरिक और मानसिक वेदनाएं इन नारकोंको भोगनी होती हैं और इन वेदनाओं को ये पापी अनेक पल्योपम और सागरोपमकी आयुष्य तक दयाजनक दयनीय अवस्था से सहन करते रहते हैं। परमाधार्मिक जव नारक को त्रास उपजाते हैं, तव वे नारक प्राणी डरे हुए स्वरमें चिल्ला चिल्लाकर कहते हैं-"ओ बड़ी शक्ति वाले! समर्थ! मालिक! भाई! तात! शत्रुजित! मुझे छोड़ दें, मैं मर रहा हूं, मैं दुर्वल हूं, व्याधिसे विलविला रहा हूं, इस प्रकार खुशामद के बोल बोलकर वह जीव उस दयाहीन परमाधार्मिक की ओर दया की दृष्टि फेंक कर क्षमा की भीख मांगता है और कंपकंपी पाकर सोचता है कि कहीं यह मुझे मार न डाले! वह यह भी कहता है कि "कृपा करके मुझे दो घड़ी तो सुख का सांस लेने दो और अब मुझ पर रोष न करो! अरे मैं क्षणमात्र विश्राम तो ले लूं, इसलिए जरा मेरे गले की फांसी खोल कर मुझे छोड़ दो, वरन् मैं मर जाऊंगा। मुझे वड़ी प्यास लगी है इसलिए मुझे पीने के लिए पानी दो।" उस समय परमाधामी उस नारक को कोमल आमन्त्रणका व्यवहार करते हुए उन्हें उत्तरमें कहते हैं कि अच्छा 'तू ठंडा और निर्मल पानी पी' यह कह उसे जोर से पकड़ कर वे तूतीदार कलशमें से सीसा-रांग का रस उसके कर-सम्पुट में डालते हैं, उस तेज पानीको छूकर वह नारक कांप

उठता है और जार-जार रोता हुआ आंसू बहाकर करुण स्वरमें कहता है कि "हाय ! अब मेरी प्यास बुझ गई है" अब मैं पानी पीना नहीं चाहता।" यह कह कर वह नारक चारों ओर कातर दृष्टिसे देखता है और अपने को वह रक्षण-त्राणशरण रहित, अनाथ—अबांधव और संगी-साथी-हिमायती—आदमियोंसे रहित पाकर डरे हुए हिरनके समान भय खाकर शीघ्रता से भागने का प्रयत्न करता है, बड़ा उद्विग्न होता है, परन्तु उन भागने वाले नारकोंको निर्दय परमाधार्मिक बलपूर्वक पकड़कर उनका मुंह लोहे के डंडेसे खोलकर उकले हुए गर्मा-गर्म रसको उंडेल देते हैं। कुछ परमाधार्मिक उसे जलता देखकर आपसमें एक दूसरेका मुंह ताकते हुए ठहाका मारकर हंसते हैं।

उस समय नारक प्रलाप-विलाप करते हैं। भयकारी-अशुभ-डरावने शब्द बोलते हैं। उनके शब्द रौद्र और करुण होते हैं। वे कबूतरके शब्दकी भांति गद्गद् स्वर में कांपते हैं। इस प्रकार प्रलपन करते हुए रोते हैं और हे देव ! हे तात ! कह कर सुख के लिए अपील करते हैं। रुंधे-बंधे नारकों का इस प्रकार प्रगट आर्त स्वर सुन कर उन्हें (हुश कहकर) धमकाते हुए क्रोधमें अप्रसन्न परमाधार्मिक अव्यक्त गर्जना करते हुए उन्हें पकड़ लेते हैं। उनका छेदन भेदन—टूक टूक करते है। उन्हें धरती पर देकर पछाड़ मारते हैं, उनकी आंखें निकाल लेते हैं, हाथ पैर काट डालते हैं, टुकड़े-टुकड़े करके जान ले लेते हैं। बड़ी क्रूरता से उन्हें धकेल मारते हैं और गिरा देते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि "पापी ! अपने पहले जन्मोंके किए कर्मोंको—दुष्ट कृत्योंको याद कर" ऐसे शब्दोंसे जिस प्रकार नगरमें आग लग जानेसे कोलाहल मच जाता है, लोगोंको भय और त्रास पैदा होता है, उसी तरह नरकका क्षेत्र गूंज उठता है, भारी कोलाहल होता है। नरकमें परमाधार्मिकोंसे पीड़ित नारक अनिष्ट शब्दों का आक्रोश करते हैं, गालियां बकते हैं। इधर परमाधामी तलवारकी धार जैसे पत्तों वाले वनमें—डाभके वनमें—अनघड़ एवं नोकदार पत्थरोंके जंगलमें, नोकदार कांटे-शूलोंके जंगलमें, खारसे भरी हुई बावड़ी में, उकलने वाले रांगके रससे भरपूर वैतरणी नदी में, कदंबके फूल जैसी चमकीली रेतमें, या प्रज्वलित गुफा-कंदरा में, उन्हें फेंक देते हैं, जिससे वे अत्यन्त पीड़ित होते हैं। अधिक तपे हुए कांटोंके धूसर-जूए समेत रथमें नारक प्राणीको जोतकर तपे हुए लोह मार्ग पर वे परमाधार्मिक जबरदस्ती चलाते या दौड़ाते हैं और ऊपरसे कई तरह के अलग-अलग हथियारोंकी उन पर मार मारते हैं।

वे शस्त्र मुद्गर-मुसुंढि(एक प्रकारका लोहेका हथियार)करवत-त्रिशूल-हल-गदा-मुशल-चक्र-भाला-बाण-शूली-लकड़ी-छुरा-लंबाभाला-नाल-चमड़ेसे मंढा हुआ पत्थर-मुद्गराकार हथियार, मुट्ठी जैसा पत्थर तलवार, खड्ग (एक प्रकार

का शस्त्र), तीर–लोहेका वाण, कणग (एक प्रकारका शस्त्र), कैंची-वसोला-परशु-नोकदार टंक, इस भांतिके नोकदार निर्मल चमचमाते हुए अनेक प्रकारके भयङ्कर शस्त्रोंको वनाकर तथा तैयार करते हुए पूर्वभवके वैर भावसे नारकोंको भीतर ही भीतर वड़ी यातनाएं तथा वेदना उपजाते हैं। आमने सामने होकर एक दूसरे को मार डालते हैं। मुद्गर के प्रहारसे एक दूसरेको चूर कर देते हैं। मुसुंढि के द्वारा देहको तोड़ते हैं। देहपिंडको चूर मूर कर देते हैं। घाणीयंत्रमें डालकर पेलते हैं। तड़पते देहको हथियार से काटते छांटते हैं। कई नारकोंकी तो चमड़ी उधेड़ डालते हैं। कान-होठ-नाकको जड़से काट लेते हैं, हाथ पैरोंके टुकड़े कर देते हैं। तलवार-करवत-नोकदार भाला और पैनी कुल्हाड़ी के प्रहार से नारकोंके देहपिण्डको काटते हैं। वसोले से अंग और उपांगोंका छेदन करते हैं। उकलते हुए गर्म गर्म खार से सींचकर शरीर को जला देते हैं। भालेकी नोक चुभो कर शरीर को घायल करते हैं। धरती पर डालकर रगड़ा देकर कुचलते हैं। जिससे उनके अंग-उपांग छिलकर सूज जाते हैं।

नरक में सिंह-कुत्ता-गीदड़-कौवा-विल्ली-अष्टापद-चीता-वाघ जैसे मदोन्मत्त जानवर जो कि सदा भोजन के अभाव में भूखसे पीड़ित रहकर अतिघोर और डरावने शव्द करते हैं, तथा जिनके रूप-आकार वड़े भयानक हैं; वे नारकोंको पैरों तले दवाकर (पंजोंमें उलझाकर) अपनी तेज दाढ़ाओं से तीव्र रीतिसे खींचते हैं। पैने पैने नाखूनोंसे चीरते फाड़ते हैं, और उनके शरीर-दंडको विदारकर नाना दिशाओं में फैंक देते हैं, जिससे उनके अङ्गोंके जोड़ ढीले पड़ जाते हैं और अङ्गोपांग को तीव्रवेदनासे व्याकुल हो जाते हैं। फिर उनके शरीर को कंक, क्रूर गिद्ध, वड़े डरावने कौवे जैसे पक्षियों का समूह अपने कर्कश, निश्चल और तेज नाखूनों से नोच नोच कर चटनी कर जाते हैं, तथा अपनी लोहमय-चक्कू सी पैनी चोंचसे उन्हें पकड़ लेते हैं। ये पक्षी आकाशसे उतरते हैं और उन्हें पांखोंसे भी मारते हैं, तथा अपने जालिम और तेज पंजोंसे उनकी जीभ नोच लेते हैं, और आंखें निकाल लेते हैं। निर्दय होकर चमड़ी उधेड़ डालते हैं। उनके मुंह को चौड़ा करके जवाड़े तोड़ देते हैं, और फिर वे नारक ऊंचे उछलकर चिल्ला चिल्लाकर नीचे गिरते हैं। चारों ओर त्राण पाने के लिए चक्कर काटते हैं। पूर्व कर्म के उदयसे वे हाथकी हथेली घिसकर पछताते हैं, मन ही मन जलते हैं, और अपनी निन्दा अपने आप करते हैं।

हिंसकका पुनर्जन्म—पिछले जन्म में किए हुए पाप कर्मों को अनुसरते हुए चिकने विपाक-दुःख उन उन नरकों में भोग कर फिर नरकका आयुष्य पूरा होने पर उनमें से वहुत से जीव तिर्यचकी गतिमें उत्पन्न होते हैं। वहां भी वे जीव दारुण दुःख भोगते हैं। उस गतिमें जन्म-मरण-जरा-व्याधि-आदि सव रहटकी गतिके

समान (चक्रवत्) भोगनी पड़ती हैं। जलचर-स्थलचर और खेचर की गतिमें जन्म लेकर आपसमें विनाश और प्रपंच करने लग पड़ते हैं। जगत में बेचारे तिर्यंच प्राणी अधिक काल तक दुःख और संकट सहते रहते हैं, यह तो प्रगट ही है। ये दुःख कैसे हैं ? अर्थात् सर्दी-गर्मी-भूख-प्यास की वेदना को सहन करना होता है। सुश्रूषा बिना वनमें जन्म लेना, सदैव भय और उद्वेगमें रहना, भयसे नींदका उड़ जाना, वध-बंधन और प्रहार का दुःख सहना, किसी गड्ढेमें गिर जाना, बोझसे दबकर हड्डियां तुड़वा बैठना, नाक विंधना, प्रहार के दुःख सहना, कान-पूंछ आदि अंगोपांग छिदना, जबरदस्ती मार खाकर काम करना, चाबुक-अंकुश-आर-पैणी आदि शरीर में भोंकने देना, जबर्दस्ती सीखना पढ़ना, दमन-बेगार आदि नाना बोझ ढोना, माता पिताके वियोग को सहन करना, नाक-कानके छेदके रास्ते से रस्सी-डोरी से बंधना, शस्त्र-अग्नि-विष आदि के द्वारा प्राणोंका भोग देना, गला-सींग आदि के अमल जानेसे मौतको पाना, कांटा और जालके कारण भिद कर पानीसे (मछली आदि का) बाहर निकाला जाना, मुरमुरोंकी तरह सिकना या छिदना, जीवन के अन्त तक बंधनमें सड़ते रहना, पिंजरेमें बन्द रहना, अपने गोल (टोले) से अलग बिछुड़ना, (दुःखपूर्वक) हवा भरना (सांस चढ़ना), दौड़ना, गलेमें रस्सीका फंदा बंधवाना, बाड़ेमें बहुत से पशुसमुदायकी भीड़में फंसे रहना, कीचड़-पानीमें धंस जाना, जबर्दस्ती पानी में घुसने के लिए बाध्य होना, ऊंडे गड्ढे में फेंका जाकर गात्रभंगका कष्ट सहना, पर्वतादि के ऊपर से नीचे झंपापातका होना, दावानलकी ज्वालामें भस्म होना। इत्यादि सैंकड़ों दुःखोंसे उन पापी जीवों को तीन प्रकारके तापोंमें तपना पड़ता है। नरकमें जिस कर्म के फल दुःख रूप से भोगे गये हैं, उनके पूरा न होने तक उन जीवोंको तिर्यंच पंचेन्द्रिय की पर्याय में ऐसे-ऐसे दुःख भोगने पड़ते हैं। पांच प्रमाद और राग-द्वेषके द्वारा जो हिंसा-आदि पापकर्म उपार्जन किए हैं, इसी निमित्त वे अति असातामय और कठोर एवं दारुण दुःख जीवोंको परवश होकर भोगने पड़ते हैं।

चौंद्रियमें, भौंरे-मच्छर-मक्खी आदि की पर्याय में उत्पन्न अनेक प्रकारके जीव जिनकी जाति नव लाख कुलकोडी है, वे जन्म-मरणके अनुबन्धको भोगते हुए संख्यात काल तक परिभ्रमण करते हैं और नरकके समान तीव्र दुःख भोगते हैं। स्पर्श-जीभ-नाक और आंख इन चार इन्द्रिय सहित ये उपरोक्त जीव अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

इसी भांति तीन इन्द्रिय वाली पर्याय में (कुन्थुवा-कीड़ी-दीमक) आदिकी आठ लाख कुल-कोड़ी होती है। उसमें जन्म-मरण का अनुभव करते हुए असंख्य-काल तक परिभ्रमण करते-करते नरककी तरह तीव्र दुःखोंको स्पर्श-जीभ और नाक वाले तीन इन्द्रिय वाले जीव भोगते हैं। स्पर्श और जीभ वाले दोइन्द्रिय

जीव जोंक-अलसिया-कृमि कौड़ी इत्यादि की सात लाख कुल कोड़ी होती है। वे जन्म-मरणके तीव्र दुःख संख्यातकाल तक भोगते हुए उसी पर्यायमें चक्कर काटते रहते हैं।

एक-इन्द्रिय पर्यायके जीव पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु-वनस्पति-सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येकशरीरधारी-साधारण शरीरधारी (अनन्तकाय) देहपिंडमें जीव जन्म-मरणके अनन्त कष्ट भोगते हैं। जिससे प्रत्येकशरीरी जीव संख्यातकाल तक और साधारणशरीरी जीव अनन्तकाल तक अनिष्ट दुःखोंका अनुभव करते रहते हैं। एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्कृष्ट उत्पत्ति वारम्बार वृक्षसमूहमें होती है। कुदाली-खुर्पा-हल आदि शस्त्रसे जमीन खोदी जानेसे पृथ्वीकायके जीवोंको दुख भोगने पड़ते हैं।

पानीमें रहे हुए जीवोंको एकेन्द्रिय पर्यायके रूपमें स्नान आदिके प्रसंगमें मथा जानेसे क्षुब्ध होना पड़ता है, सिंचाई आदि के समय रुंधना पड़ता है। अग्नि और वायुकायके जीवोंमें परस्पर एक दूसरेके साथ टकराकर मारा जाना या प्राण हनन होना और आपसका परिताप सहना पड़ता है। इस प्रकार एकेन्द्रिय पर्यायमें इच्छाके बिना निरर्थकतया, स्वयं न उत्पन्न किए दुःख, परके लिए भोगने पड़ते हैं। कामकाजके लिए अपने दास-दासादिक और पशुओंके निमित्त तथा औषध-आहार आदिके लिए एकेन्द्रिय जीवोंको मनुष्य कूटते हैं, उनके ऊपर का वक्कल उतार डालते हैं, रांधते-पकाते हैं और चूर चूर कर देते हैं, दलते हैं और कूटते-सेंकते-गलाते और मसलते हैं, तथा दवाते हैं, विभाग टुकड़े करते हैं, तोड़ते हैं, छेदन करते हैं, छीलते हैं, रेशे और पेशियोंको चूंटते हैं, पत्ते और फलके लिए ठोकपीट करते हैं। आगमें सेंकते या जलाते हैं। इत्यादि अनेक प्रकारसे एकेन्द्रिय पर्यायमें जीव दुःखोंको भवपरम्परा में अविच्छिन्नतासे अनुभव करते हैं और भयानक संसारमें परिभ्रमण करते रहते हैं।

प्राणातिपात—हिंसा करने वाले पापी जीव एकेन्द्रिय जन्ममें अनन्तकाल तक दुःख भोगकर मनुष्यपर्याय पाते हैं, एवं नरकादिसे निकलकर मनुष्यपन प्राप्त करते हैं। फिर भी वे वेचारे पुण्यकी प्रकृतिके अभावके कारण विकृत अङ्ग और विकलरूप पाते हैं। वे विकलांग-कुवड़े या टेढ़े शरीर वाले ठिगने-वहरे-काने-कोढ़ी-पंगु-लंगड़े-गूंगे-तोतले, अंधे, एक आंख वाले, चिपड़ी आंख वाले, रोम-व्याधिसे पीड़ित, अल्पायु-शस्त्र से विनाश पाए हुए, मूर्ख, कुलक्षण, दुवले, कुडौल, कुढंगे, विरूपाकृति, कुरूप, गरीव, नीचकुलीन, वल और सत्वसे हीन, सुखरहित, अशुभ और दुःख भोगने वाले मनुष्यपनमें उत्पन्न होते हैं। नरकमें भोगते हुए दुःखसे वचे हुए दुःख पाने वाले कर्म भोगकर नरक तिर्यंच और वुरे मनुष्यके अवतरणमें परिभ्रमण करते हुए अनंत दुःख भोगने वाले ये पापी पाप करने वाले होते हैं।

इस प्रकार हिंसा करने वाले इस लोक और परलोकमें हिंसाके फल-विपाकको भोगते हैं। इस फलविपाकमें थोड़ा सुख और अधिक दुःख है। जिसका कर्मरूपी मैल खूब चिकना है, दारुण है, कर्कश है, कठोर है, वह हजारों वर्ष तक इस दंडसे छूटने नहीं पाता, वे इस कर्मके भोगे विना छुटकारा नहीं पा सकते और विना सम्पूर्ण निर्जराके मुक्ति भी नहीं होती।

इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन महात्माने जिसने कि राग और द्वेष पर विजय पाई है जिसका 'वीर' नाम सर्वश्रेष्ठ है। उसने प्राणवधका फल दुःखविपाक कहा है। यह प्राणवध पापकारी, प्रचण्ड, रुद्र-क्षुद्रजनों द्वारा आचरित, अनार्यो द्वारा किया हुआ, दयारहित, घातकी, महाभयकारी, भयका कारणरूप, भीषण, त्रासकारक, अन्यायकारक, उद्वेगकारक, जीव-रक्षाकी अपेक्षा रहित, धर्मरहित, स्नेह-रहित, करुणारहित, अतिवेगसे नरकमें ले जाने वाला, मोहके महाभयका प्रवर्तनकार और मरण के समय दीनता लाने वाला है ॥४॥

॥ पहला अध्ययन समाप्त ॥

दूसरा अध्ययन--मृषावाद

श्रीजम्बूस्वामीके प्रति श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि अब आस्रवद्वारका दूसरा मृपावाद नामक अध्ययन सुनाता हूं। इस अध्ययन के पांच द्वार हैं।

मृपावादका स्वरूप—मृपावाद गुण-गौरव रहित है, चपल आदमी बोलता है, भयकारक है, दुःखकारक है, अपयश-वैर और अविश्वासकारक है, चित्तको उद्वेग, मनको असन्तोष, राग द्वेषके कुलक्षण वाला, मानसिक क्लेश उपजाता है। शुभफलसे रहित, माया और अविचारका अत्यन्त भयावह व्यापार है, नीच आदमी इसका सेवन करते हैं, झूठसे सब घृणा करते हैं, यह विश्वासको खो देने वाला है, अच्छे सज्जन और साधुपुरुषों द्वारा निन्दनीय है, पराई आत्माओं को पीड़ा उपजाता है, उत्कृष्ट कृष्णलेश्यासे युक्त है, यह दुर्गति में ले जाने वाला है, संसार और उसके दुःखकी परम्पराको बढ़ाने वाला है, बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर दिलाने वाला है, बहुत समयसे परिचित है, अधिक समयसे साथ रहता चला आया है और अन्तमें सब प्रकारके दुःख उपजाने वाला है ॥५॥

मृपावाद-असत्य के नाम—दूसरे अधर्मद्वार में मृपावाद के तीस, गुणनिष्पन्न नाम इस प्रकार कहे हैं— १. झूठ, २. मायावी चक्करमें डालने वाला शब्द, ३. अनार्य-वचन, ४. कपट सहित झूठ, ५. असम्भव-बात कहने वाला, ६. न्यूनाधिक या निरर्थक बोलना, ७. जान बूझकर झूठे-झूठे प्रलाप करना, ८. विद्वेप-युक्त निन्दा, ९. बांके-टेढ़े वचन कहना, १०, माया-पाप युक्त वचन, ११. ठगाई से भरे वचन बोलना,

१२. 'झूंठ कहा है' ऐसा कहने पर भी वही झूंठ कहना, १३. अविश्वस-नीय-वचन कहना, १४. अपने दोष और परके गुण ढांपना, १५. न्यायको उल्लंघन करनेकी वात करना, १६. आर्तध्यान, १७. अभिशाप-कलंक लगाना, १८. मलिन-वचन कहना, १६. टेढ़ा-मेढ़ा बोलना, २०. बयाबान-जंगलकी भान्ति गहन-गूढ़ या अथाह वचन कहना, २१. मर्म-युक्त वचन, २२. गूढ़ आचार वाले वचन, २३. मायापूर्वक-छुपाकर वोलना, २४. अप्रीतिजनक-वचन, २५. असम्यक् आचार युक्त वचन, २६. झूंठी-प्रतिज्ञा या झूंठी शपथ, २७. सत्यवचनके प्रति शत्रुता भरा कथन करना, २८. अवहेलना-अपमानजनक शब्द, २६. माया द्वारा अशुद्ध-सावद्य पापकारी वचन, ३०. वस्तुके सद्भाव-असलियतको ढांपने वाला कथन करना। इस प्रकार समुच्चय-थोड़ेमें पाप कराने वाले मृषावादके तीस नाम वताए गए हैं, इसके अतिरिक्त मृषावादके अनेक नाम हैं ॥६॥

मृषावादी—झूंठे लोग—झूंठ कौन वोलते हैं, इसके विषयमें दूसरा प्रकरण कहा गया है। पापी, असंयमवान्, अविरत (जो पापसे नहीं हट पाये हैं), कपटी, कुटिल, दारुण स्वभाव वाले, चपल (अस्थिर विचार वाले), प्रतिक्षणमें अनेक भाव बदलने वाले, क्रोधी, लोभी, औरोंको भय उपजाने वाले, मसखरापन, हां में हां मिलाने वाले, चोर, भिखारी, चकलोंमें घूमने वाले, जूएवाज, गिरवी रखने का धंधा करने वाला, मायावी-कपटी, वेष भरकर ठगने वाला वहुरूपिया, वाणिज्यकार, झूंठा तोल करने वाला, झूंठा माप करने वाला, झूंठे सिक्के चलाकर आजीविका करने वाला, जुलाहा, सुनार, छींपी, दर्जी आदि ठग, हेरुक (गुप्तचर-जासूस), मुख-मंगल गाने वाला (भाट-भांड), कोतवाल, जार-कर्म करने वाला, दुष्टवचन वोलने वाला, चुगलखोर, ऋण लेकर नट जाने वाला, आगेसे वोलनेमें चतुर (कि जो कह कर वातको वदलकर नट जाने वाला), साहसिक आदमी, तुच्छ आदमी, असत्य हेतु वाला, ऋद्धि आदि आठ प्रकार का गुमान-मद करने वाला, झूंठ को सच सिद्ध करने वाला वकील आदि, अहंकारी, अनिग्रही-मर्यादा-हीन, निरंकुश, स्वच्छंदी-मनमते चलने वाला, ज्यों त्यों मन आई बकवास करने वाला, आदि ये सब झूंठ वोलने वाले होते हैं। जो झूंठसे निवृत्त नहीं हुए वे भी झूंठे-मृषावादी होते हैं।

अन्यमति-मृषावादी लोग—इसके उपरान्त नास्तिकवादी तथा लोकके स्वरूपको विपरीत-उलटी तरह कहने वाले, कि जो यह कहते हैं और सुनते हैं कि जीव या अजीव कुछ है ही नहीं, जन्म-जाति भी कुछ नहीं है, यह लोक या परलोक भी नहीं है, जीवको पुण्य-पाप आदि कुछ नहीं लगते-चिपकते और उसके फलस्व-रूप सुख दुःख भी नहीं मिलते, पंच महाभूत इकट्ठे होनेसे ही मात्र शरीर पैदा हुआ है और वह मात्र हवाके योगसे युक्त है। वहुतसे पांच स्कन्ध विज्ञान-वेदना-

संज्ञा-संस्कार और रूपके समूहको जीव कहते हैं। कई मनजीविका-मतवाले मन को ही जीव कहते हैं। कई लोग श्वासोच्छ्वासको जीव मानते हैं। कई लोग कहते हैं कि यह शरीर मात्र ही आदि और अन्त (पूर्वजन्म और पुनर्जन्म कुछ नहीं) है, यह भव-जन्म एक ही भव-जन्म है, इस भव-जन्म का नाश होते ही सबका नाश हो जाता है। इस कारण (परलोक आदि कुछ नहीं है इसलिए) कई मृपावादी कहते हैं कि दान-व्रत-पौषध-तप-संयम-ब्रह्मचर्य आदि का फल कुछ भी कल्याणकारक नहीं है। फिर वे यह भी कहते हैं कि हिंसा-झूठ-चोरी-परदारा-सेवन और परिग्रह, ये कुछ पापकर्म नहीं हैं, इसी प्रकार नरक-तिर्यच-मनुष्य की योनिमें भी उत्पन्न नहीं होता और देवगति या सिद्धगतिमें भी नहीं जाता। मां-वाप आदि का सम्वन्ध भी कुछ नहीं है। उद्यम करना वृथा है। प्रत्याख्यान-त्याग की कुछ आवश्यकता ही नहीं है। काल-मृत्यु भी नहीं है। साथ ही अरिहंत-चक्रवर्ती-वलदेव-वासुदेव और प्रतिवासुदेव भी नहीं है। न कोई ऋपि है न मुनि। धर्म या अधर्मका थोड़ा वहुत फल भी नहीं है। इसलिए यह जानकर इन्द्रियोंके अनुकूल सव प्रकारके विपयोंका उपभोग करने की क्रियामें कुछ पाप नहीं है, या अक्रियामें निर्जरा भी नहीं है। इस प्रकार नास्तिक वाममार्गी लोग कहते हैं। कुदार्शनिक और असद्भववादी (अविद्यमान पदार्थ की प्ररूपणा करने वाले) और मूढ़ लोग यह भी कहते हैं कि यह जगत् अंडेमें से अपने आप-सहज उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार की झूंठी कपोल कल्पना करते हैं, फिर कई यह भी कहते हैं कि प्रजापति (ब्रह्मा) ने यह जगत वनाया है। कई ईश्वर को जगत्कर्ता मानते हैं। वहुतसे इस जगत्को विष्णुमय कहते हैं। कई पंच-भूतमें से जगत् अपने आप वना कहते हैं। कई ऐसी झूंठी वात फैलाए हुए हैं कि जगतमें एक ही आत्मा व्याप्त है। वह सुकृत दुष्कृतका कर्ता नहीं है, परन्तु भोक्ता अवश्य है। इन्द्रियां ही सर्वथा सुकृत-दुष्कृतके कारण रूप हैं। सव प्रकारके नित्य, क्रियारहित गुण (त्रिगुण) रहित, और कर्मवन्धके लेपसे रहित, जगत्में एक ही आत्मा है। फिर कई तो यहां तक झूंठ वोल गए हैं कि जो भी कुछ इस मानवलोकमें सुकृत-दुष्कृतका फल देखा जाता है, वह अचिन्त्य-विना सोचे विचारे अपने आप निपज जाता है, या फिर स्वाभाविक रीतिसे होता है, अथवा देवके प्रभाव (भावीभावके हिसाव) से उत्पन्न होता है, परन्तु प्राणीके निजके किये हुए उद्यमका फल कुछ नहीं है। इस प्रकार भवितव्यता (होनहार) वादी परमार्थके स्वरूप का लक्षण-विधान करते हैं और इस प्रकार वहुतों की ऐसी-ऐसी वाहियात वातें स्थापित की हुई हैं।

[ये सव अन्यमत-मृपावादियोंके भेद कहे गए हैं, अव आगे गृहस्थ-मृपा-वादी लोगोंके प्रकार कहेंगे।]

मृपावादी-गृहस्थ—ऋद्धिगर्व, रसगर्व और सातागर्वमें तत्पर रहने वाले वहुत से लोग जो कि धर्मक्रिया करते समय आलस जताते हैं, वे धर्मसाधनकी

विचारणा में आलसके कारण झूठ बोलते हैं। दूसरे लोग अधर्म को अंगीकार करते हुए राज्य के विरुद्ध झूठे अभिशाप लगाते हैं, और चोरी न करने वालेको चोर सिद्ध करते हैं; समभावी और सरल प्रकृति के आदमियों को झगड़ालू तथा लड़ाका बताते हैं। सुशील आदमी को चरित्रहीन बताकर उस पर परनारीगामी-व्यभिचारका आरोप लगाकर उसकी प्रतिष्ठा को मलिन करते हैं। विनीतको अविनीत एवं दुर्विनीत बताते हैं और दूसरे दुष्ट प्रकृति के आदमी परकी यशःकीर्तिका नाश करते हुए कहते हैं कि "यह तो अपने मित्रकी स्त्रीका सेवन करता है।" बहुत से दूसरों को धर्मभ्रष्ट, विश्वासघाती, पापकर्मी, कुकर्मी, लोकविरुद्ध कर्म करने वाला, अगम्यस्त्रियों (बहन-पुत्री आदि) के साथ दुष्टाचार-भ्रष्टाचार सेवन करने वाला, दुरात्मा, महापातकी कहते हैं और इस प्रकार भले आचरणके आदमियोंको मत्सरी-ईर्षाखोर आदमी अवगुणयुक्त सिद्ध करते हैं। वे लोग अपनी कीर्तिकी चाह करने वाले, परलोककी वांछा नहीं करते। ऐसे आदमी झूठ वचन बोलने में प्रवीण एवं दूसरोंको दोषी ठहराने में आसक्त आदमी, बिना सोचे विचारे बोल उठते हैं, और जिनका अपना मुंह शत्रुरूप है, वे अपनी आत्मा को अक्षय दुःख का बीज बनाकर कर्मोंके निगड़-बन्धनों से वेष्टित करते हैं। फिर ऐसे लोग औरोंकी धरोहर पचा डालने के लिए सफेद झूठ बोला करते हैं। पराये धन में आसक्त होकर लोभवश वैसा ही दुर्व्यवहार का बर्ताव करते हुए औरों के ऊपर अशोभनीय लांछन-दोषोंका आरोपण करते हैं, झूठी गवाही देते हैं, आत्माका अहित करने वाले धनको पाने के लिए असत्य बोलते हैं, एवं कन्या, चौपाए जानवर, भूमि आदि के लिए महा झूठ बोलने वाले अधोगतिको प्राप्त होते हैं।

अन्यतर मृषावादी—इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रकार से भी झूठ बोलते हैं। कई लोग जाति-कुल-शील आदिके विषय में कपटपूर्वक झूठ बोलते हैं। चपल (अस्थिर स्वभावके) आदमी आगे पीछे बोलकर प्रतारणा करते हैं। चुगली चाड़ी करते हैं। परम अर्थ युक्त मुक्तिका घातक वचन बोलते हैं। कई तो असभ्य, द्वेषयुक्त, अनर्थकारी, पापकर्ममूलक वचन, असम्यक् प्रकारसे देखा हुआ और अठीक तरह से सुना हुआ वचन, बिना सोच विचार का वचन, निर्लज्ज वचन, लोकनिन्द्यवचन, जिन वचनों से अत्यन्त वध-बंधन और परिताप उत्पन्न हो ऐसा वचन, जन्म-मरण-दुःख-शोकके कारण रूप वचन और अशुद्ध परिणाम से मलिन वचन बोलते हैं। खोटे और अप्रिय अभिप्रायमें लगने वाले, अयुक्त गुण-अवर्णवाद बोलने वाले, विद्यमान गुणोंको उड़ाकर धूलमें फेंकने वाले, हिंसा द्वारा जीवविनाशक वचन कहने वाले, मृषावादयुक्त वचन बोलने वाले, सावद्य (पापकारी) अकुशल और साधुजनों द्वारा निन्दित वचन बोलने वाले, और अधर्मजनक वेतुकी

हांकने वाले, आदि ये सब ही मृषावादी होते हैं। इसके उपरान्त पुण्य-पाप से बिल्कुल अनजान, अधिकरण-साधनों से होने वाली क्रियाके प्रवर्तक, अपना तथा औरों का अनर्थ एवं विनाश करने वाले सब मृषावादी होते हैं।

हिंसक-मृषावादी—बहुत से लोग भैंसे, सूअर, आदि प्राणियों के घातकों को (उनके अपने स्थान से) सूचना देते हैं, एवं खरगोश, स्याहगोश, रोझ आदि जंगली पशुओं की सूचना शिकारियों को देते हैं। इसके अतिरिक्त पारधियों को तीतर, वटेर, हरियल, कबूतर आदि पक्षियों की खबर देते हैं। शंख, कौड़ी, मछली, मगर और कछुओंकी खबर धीवरों को देते हैं। अजगर, बिना फनका सांप, जलेबी सांप, मांडलिक सांप, फनियर सांप, पीवण सांप, मुकुलीन सांप आदिके समाचार, मदारी, सपेरे आदिको देते हैं। गोह, सेही, सल्लक, गिरगिट आदि प्राणियोंका पता उनके पकड़ने वालों को पहुंचाते हैं। हाथी, बंदरोंके झुंडकी खबर उन्हें पाशमें बांधने वालोंको सुनाते हैं। तोते, मोर, मैना, कोयल, हंस आदि की डार, सारस आदिकी सूचना उन्हें पकड़कर पिंजरे में बंद करने वालों को देते हैं। बध, बंधन और पीड़ा उपजाने वाली रीति नगरके कोतवाल आदिको समझाकर बताते हैं। धन-धान्य तथा गौ आदि पशुओंकी सूचना चोरों को देते हैं। ग्राम, नगर, पुर, पत्तन आदि की कमी-त्रुटि जासूसोंको देते हैं। मार्ग के अन्त मे अथवा मार्ग में प्रवासियों-यात्रियोंको लूटने के लिए डाकू और गठकतरों-उठाईगीरोंको समाचार भेजते हैं। चोरी के रहस्यों का पता कोतवालको देते हैं। पशुओं के कान काटना, खस्सी करना, गाय, भैंस आदि के जननाङ्ग में फूंका चलाना, उन्हें अप्राकृतिक रीति से दुहना, प्राण आदि से पोषण देना, बछड़े को दूसरी गाय से हिलाकर मिलाना, पीड़ित करना, बैल, भैंसे, घोड़े आदि को गाड़ी, हल आदि में जोतनेकी युक्ति बताना, आदि अनेक प्रकार की रीति-भांति-युक्ति ग्वालों को बताते हैं। धातु, मनःशिल, प्रवाल रत्न आदि खानोंकी खबर आगरियों, पत्थरफोड़ों को देते हैं। फल, फूल, पत्ते आदि निपजाने की विधि माली और कृषक को देते हैं। ऐसे ही अलग अलग रीति के अनिष्ट उपदेश देते हैं, जैसे कि बहुमूल मधुके स्थान की खबर के लिए भील लोगोंको खबर देते हैं। (मारण-मोहन-उच्चाटन-स्तंभन और वशीकरण के) यंत्रों का उपयोग करने का उपाय बताते हैं। (गर्भपात आदि के लिये) विष प्रयोग कहते हैं। नगर के नागरादि को क्षुब्ध करते हैं। (वशीकरण आदिके) मंत्र तथा जड़ी बूटी (औषधादिके प्रयोग) बताते हैं। चोरी, परदारगमन, आदि अनेक प्रकार के पापकर्मों की रीति सिखाते हैं। छल-कपटसे औरों के बल और पराक्रमके तोड़ समझाते हैं। गांव को तुड़वाते हैं, वन-दाह, तालाब बनवाना, पहाड़ फुड़वाना, आदि दुष्कर्म सिखाते हैं। किसी की बुद्धि के भ्रष्ट करने-बिगाड़ने की, अथवा विष आदिसे जीवन नाश करनेकी रीति सिखाते हैं। इस प्रकार उपदेश देने वालों का काम भय, मरण, कलह आदि अनर्थकारी

दोषोंका उत्पन्न करने वाला है। मनके भावोंको क्लेशयुक्त और मलिन करने वाला है। ऐसे ढंगके उपदेश-वचन प्राणों का घात तथा विनाशकी परम्परा है, और इन सब हिंसाकारी उपदेशों से पापकी उदीरणा होती है। पूछने या विना पूछी वात पर चिन्ता किया करे और विना सोचे विचारे वोला करे वही मृपावाद है।

फिर इतना निकृष्ट उपदेश करना कि ऊंट, वैल और रोझ आदि जानवरों का इस प्रकार दमन करो, इन्हें इस रीतिके काम करना सिखाओ, क्योंकि अव ये काम करने योग्य और वलिष्ठ एवं जवान हो गये हैं। हाथी घोड़े वकरे आदिको भाड़े पर दो, वेचो, विकते हुए मोल ले लो, इन्हें पकाओ, रांधो, सगे सम्वन्धियों को दो, उन्हें दारू पिलाओ, दास दासी, नौकर चाकर, हिस्सेदार-साझी, शिष्य, खेप-भरने वाले, काम करने वाले, किंकर आदि स्वजन, परिजन, पुरीजन, नगर-निवासी आदि निठल्ले क्यों वैठे हैं। उन्हें कोई काम धंधा क्यों नहीं वताया जाता। तुम्हारी घरवाली निकम्मी क्यों बैठी रहती है ? न कुछ काम करती है न कुछ घरकी ठीक व्यवस्था ही रखती है। गहन-वन, धान वोनेके खेत, विना वाहे खेत तथा दूसरे खेतोंमें वहुतसी घास उग निकली है, इसलिए इसे काट डालो, या आग देकर जला डालो, या खुदवा दो, वृक्षोंको काटकर उनके यन्त्र, वर्तन और कई प्रकारकी उपयोगी वस्तुएं वनाओ। गन्नेके खेतोंकी कटाई आरम्भ करो, तथा इन्हें यन्त्रमें पेलो, तिल पेलो, मकान वनवानेके लिए ईंटें पकवाओ, खेत जोतो और जुतवाओ, जंगलमें गाम, नगर, छोटे वड़े खेड़े, या छोटे वड़े नगर-वास वसाओ। वहुत वड़े विस्तारमें फल-फूल-कंद-मूल-साग-पत्ते आदि सव पक चले हैं, इसलिए अपने इष्ट मित्र, सगे-संवंधियोंके लिए कटवा-छिलवाकर या वीनकर इन्हें ले चलो और इन सवका अवसे आगे संग्रह आरम्भ करो। धान कुटवाओ, उनमें से चावल निकलवाकर पछोड़ो; छड़ो। जौ कटवाओ, या इन्हें ओखलमें छड़वाकर इनके छिलके उतरवाओ, इन्हें ऊपरसे तराश लो, वैलोंसे कुचलवाकर गाहो, फिर अनाज वरसाओ, पछोड़ो और शीघ्रतासे कोठोंमें भरो, तथा उन पर मुहर-सील लगाओ।

छोटे-वड़े रथों-वैलगाड़ियोंको या उनके काफिलोंको लूटो, मारो, सेना-पलटन लेकर निकलो और मारो, घोर भयानक जंगलमें जाओ, लड़ाई शुरू करो, वच्चोंको गाड़ी आदि हांकना सिखाओ, मुंडन-विवाह सगाई आदि का मुहूर्त अमुक दिन करो, क्योंकि वे दिन अच्छे हैं। कारण मुहूर्त-नक्षत्र-तिथि आदि उस दिन लाभकारी-अनुकूल हैं। आज ही नहा लें। आनन्दपूर्वक खाएं-पीएं, न्हाएं-धोएं, मंत्र मूल आदिसे संस्कृत किए गए पानीसे स्नान करें, शान्तिकर्म (हवन आदि) करें, चन्द्र-सूर्यके ग्रहणका यह फल, तथा वुरे स्वप्न आदिका परिणाम वताना कि

ऐसा होगा। प्रिय मित्रोंके लिए, अपने जीवन की रक्षाके लिए (बकरे-मुर्गे आदिके) मस्तकका भोग, चण्डी आदि देव-देवियों पर चढ़ाओ, कष्ट निवारण करने के लिए अनेक प्रकार की दवाइयां, मदिरा, मांस, भक्ष्यान्नपान, फूलमाला-चंदन आदिका विलेपन देवोके सन्मुख प्रस्तुत करो, उज्ज्वल दीपकका प्रकाश करो, सुगन्धित धूप सुलगाओ, फल-फूलसे समृद्ध देवोंकी अर्चा करो और इसी प्रकार की अनेक हिंसा-विधियोंसे विघ्न-निवारण करो, विपरीत प्रकारके उत्पात, बुरे स्वप्न, निकम्मे शकुन, ग्रहकी वक्रगति, अमंगल-निमित्तके दोष, आदि सब विपरीत समस्याएं निवारण करनेके लिये, अमुक प्रकारके हिंसक, या मारक अनुष्ठान करो, अमुक की आजीविकाका संयोग काट डालो, उन्हें कुछ भी दान, मान, सन्मान न दें, उसे मारा या काट डाला, छेदन किया या चीर डाला यह ठीक ही किया, इस तरह विविध भांतिके पापकारी उपदेश करने वाले मन-वचन-काया के द्वारा मृषावादका पाप करते हैं।

मृषावाद (झूठ) बोलने का फल—झूठे लोग बोलनेमें अविवेकी, अनार्य, झूठे शास्त्र वाले, झूठे धर्ममें तत्पर और झूठी कथाओंमें रस लेने वाले होते हैं, और वे झूठ बोलकर या अनेक झूठे-खोटे काम करके फूले नहीं समाते ॥७॥

एवं वे मृषावादके बुरे विपाक-फलको न जानते हुए मृषावाद कहकर महा-भयको, अविरत वेदनाको लंबे काल तक बड़े दुःखके साथ नरक-तिर्यक्गतिकी वेदनाको बढ़ाते हैं। फिर वे ऐसे ऐसे अनेक दुःख भोगते हुए बारंबार भवभ्रमणके अंधेरेमें भटकते रहते हैं। भयंकर दुर्गतिमें जन्म धारण करते हुए मनुष्य-जन्ममें कैसी विषम-स्थितिको पाते हैं? दीर्घकालकी दरिद्रता, परवशता, लक्ष्मी और उसके भोगोंसे रहित, असौख्यता (बिना मित्रोंके आमोद प्रमोद रहित अवस्था), शरीरके अनेक रोग, कुरूपता, विरूपता, स्पर्शकी कर्कशता, आनन्दरहित, कई छेदोंसे भरपूर शरीर, कान्तिरहित देह, विफल-बेमतलब की अव्यक्त भाषा, सुसंस्कार-सन्मानरहित बदबूदार शरीर, चेतना रहित, दुर्भगता-अनिष्टता, असुन्दरता, कौवे जैसा स्वर, धीमा और फटा हुआ (अप्रिय) स्वर, विहिंसा (तुच्छताका डर), मूर्खता, बहरापन, गूंगापन, तुतलापन या हकलापन होनेसे अप्रिय भाषा, या अचेतन अवस्थाकी वाणी, अप्रिय बोलचाल, इन्द्रियोंका अधूरा-पन, नीचजातिकी सेवा, लोकनिन्दा, किंकरीयवृत्ति, नीचसे नीच लोगोंकी गुलामी, दुर्बुद्धि, लोकशास्त्र (सामान्य नीतिशास्त्र), वेदशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र-समयशास्त्र (आर्हतशास्त्र) की शिक्षा या ज्ञानसे रहित, धर्मबुद्धिसे रहित, यह सब कुछ बुराइयां पिछले जन्ममें किये गए मृषावादके कर्मरूपी अग्निसे दाझे हुए आदमी पाते हैं।

झूठे-अयुक्त बोलने वाले पापी आदमी, अपमान-निन्दा-चुगली-मित्रभेद और माता-पिता-बान्धव-स्वजन-मित्र आदिकी ओरसे अनेक झूठे कलंक और

दूषण को पाते हैं। यह अभिशाप मनको अप्रिय, हृदय-मनको दुःखकारक, सारी आयु तक न उतरने वाला है। अनिष्ट-कठोर-कर्कश शब्द सुनना, तर्जना-झिड़कियां-लानतका मिलना, दीन मुख, कंगालीसे भरपूर मन, घटिया भोजन, तुच्छमूल्यके कपड़े, कुवास आदिके द्वारा कलेश पाने वाले, पापी जनोंको सुख या शान्ति प्राप्त नहीं होती। ये लबाड़-झूठे अत्यन्त विपुल दुःखको सैंकड़ों तरहसे भोगते हैं। मृषावादका विपाकफल इस लोक और परलोकमें अत्यल्पसुख, महादुःख, महाभय और बहुत कर्मरूपी मैलके उपजाने वाला है, और कर्मके कड़वे, कठोर, रौद्र, उग्र, अशाताजनक, हजारों वर्ष बीतने पर भी भोगे विना छुटकारा नहीं होता।

इस प्रकार सिद्धार्थ राजाके पुत्र महात्मा श्रीमहावीर भगवान्‌ने दूसरे अध्ययनमें मृषावादके विपाक फल कहे हैं। मृषावाद कैसा है? मृषावचन बुरा नकारा और तुच्छ है। इसके कर्ता महाविकारी चपल पुरुष होते हैं, और वे भयंकर-दुःख-कर-अपयशकर-वैरकर, रत्यरतिकारक, रागद्वेषकारक, मनःक्लेशकारक, माया-कपटके ढंकने वाले, अतिद्रोह-कारक होते हैं। यह मृषावाद नीचातिनीच जनों द्वारा सेवित, निर्घृण-घृणारहित, अप्रतीतिकारक, सुसाधुओं द्वारा निन्द्य, परपीड़ा-कारक, उत्कृष्ट-बुरी लेश्यासे युक्त, दुर्गतिकारक और कुगतिवर्धक, वारंवार जन्ममरणका कारणरूप, चिरकालसे परिचित, परम्परासे चला आने वाला, और बड़े भारी दुःखसे अन्त पाया जा सके ऐसा भयंकर और महापाप है ॥८॥

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

तीसरा अध्ययन--अदत्तादान-चोरी

जम्बू-स्वामीके प्रति सुधर्मा-स्वामी कहते हैं कि जम्बू! अदत्तादानके विषय में तीसरा अध्ययन सुन! अदत्त अर्थात् किसीके द्वारा-मालिकके द्वारा न दी हुई वस्तु का आदान-लेना या हरण करना। यह पाप (दूसरे आदमीके लिए) चित्त को सन्ताप-मरण-भय-त्रास उत्पन्न कराने वाला, पराये धनमें गृद्धिपन-लोलुपता-आसक्ति उत्पन्न करने वाला और लोभका मूल है। आधीरातमें (चोरी करके) पहाड़ पर्वतोंमें छुपना पड़ता है। जिनकी तृष्णा का छेदन न हुआ हो उन्हें यह (अदत्तादान) अधोगतिके पथकी यात्रा कराने वाला, अपकीर्ति, अपयश दिलाने वाला और महाअनार्य आचरण है। (पराये घरमें घुसने के लिये) छिद्र तथा (चोरी करने के अनुकूल) अवसर देखने वाला, कष्ट तथा राजकी ओरके उपद्रवों को न्यौता देने वाला, उत्सवमग्न-प्रमादवन्त-ऊंघने वाले लोगोंको ठगने वाला, मनको व्यग्र करने वाला, मारने वाला और अनुपशान्त-स्वभाववाला मनुष्य चोर समझा जाता है।

अदत्तादानका स्वरूप—(अदत्तादान कैसा है ?) दयारहित, राजपुरुषों द्वारा पकड़वाया जाने वाला, साधुजनोसे निन्दित, प्रियजन-मित्रजनोंमें भेद-अप्रीति-अप्रतीति उत्पन्न कराने वाला, रागद्वेषको पुष्ट करने वाला, बहुतसे लोगोंमें परस्पर लड़ाई-झगड़ा-फौजदारी-मारपीट, राजाओंमें कलह, क्लेश, झगड़ा, वितण्डा-विवाद परम्परा और हत्या आदि अनेक भयावह काण्ड कराने वाला, दुर्दशा-दुर्गतिमें डालने वाला, जन्म-मरण आदि अनन्त-संसार बढ़ाने वाला, बहुत काल तक सेवन किया हुआ, सदैव छायाकी भांति अनन्त जन्मसे साथ चला आने वाला, और जिसका बड़े दुःखसे अन्त लिया (पाया) जा सके, ऐसा यह अदत्ता-दान है ॥९॥

अदत्तादानके नाम—अदत्तादान के गुणसम्पन्न तीस नाम हैं—१. वस्तु चुराना, २. पराए धनका अपहरण करना, ३. दाता द्वारा न दी हुई वस्तु का लेना, ४. इसके द्वारा क्रूरातिक्रूर कार्य करना, ५. पराये धनका लाभ लेना, ६. असंयम सेवन, ७. पराये धनको पानेकी धुनमें लट्टू होना, ८. लोलुपी-आसक्त होना, ९. तस्कर-व्यापार करना, १०. अपहरण करना या उड़ाना, ११. पराया माल हड़पने में हाथ चालाकी करना, १२. (चोरी रूप) पाप कर्म करना, १३. चौर्यभाव-चोरी में नीयत रखना, १४. हरण नीतिके द्वारा औरोंकी धनहानि करना, १५. पराया धन लेकर उसे अपना बनाना, १६. पराया धन छीन लेना, १७. चोरी का कर्म अप्रतीतिजनक है, १८. पराई आत्माके लिए पीड़ाजनक, १९. पराये धनको हथियानेके लिए बुरे से बुरे उद्यम करना, २०. पराई वस्तु चुराकर उसे छुपाना, २१. झूठे तोल माप रखना, २२. कुलमें कलंक लगानेका कार्य, २३. सदा पराये धनमें अभिलाषा करना, २४. राज-सत्ताकी ओरसे कष्टका अंबार उठने पर (दीनता दिखाकर गिड़गिड़ाना), २५. विनाशकारक व्यसन, २६. पराये धनकी लालसा बनाये रखकर पाये हुए धनमें लिप्त या मूर्छित रहना, २७. पाये हुए धन में तृष्णा, न पाए हुए धनकी चाह करते रहना, २८. इच्छाओंमें मूर्छित होना, २९. किये हुए कुकर्मोंको ढांपनेके लिए तरह-तरहके माया-कपटके गहरे जाल रचना। ३०. पराई-नजर चुराकर किसीका माल उड़ाना। इस प्रकार अदत्ता-दानके ३० नाम हैं। इसके जैसे नाम हैं वैसे ही इसमें अवगुण हैं। इसके उपरान्त अदत्तादानके दुष्टकर्म सम्बन्धी और भी अनेक नाम हैं जो जानने योग्य हैं ॥१०॥

चोरीका कर्म करने वाले—तीसरे द्वारमें चोरी कौन-कौन करते हैं, उसका स्वरूप इस प्रकार दर्शाया है—चोर-तस्कर-पराया धन हरने वाला, चोरी का धंधा करने वाला, चोरी करने वालोंको अवसर या साधन देने वाला, चोरी करनेमें साहसिक, तुच्छात्मा, अति असन्तोष वाला, लोभग्रस्त, वचन का आडंबर दिखाकर औरोंको ठगने वाला, माया-प्रपंच रचकर प्रतारणा करने वाला, पराये धनमें

आसक्त, मुकावले पर डटकर मारने वाला, कर्जा लेकर उसे मारने वाला, स्वप्न में भी ऋण न चुकानेकी इच्छा रखने वाला, कहकर मुकर जाने वाला, राजा या सत्ता द्वारा (चोरीके पापके कारण) देशनिकाले का दण्ड पाया हुआ, जातिके नियमानुसार वहिष्कृत किया हुआ, जंगलको जलाने वाला, ग्रामघातक, नगरका घातक, पंथका घातक, गांवको फूंकने वाला, राहगीरोंको मारने वाला, प्रवासी और यात्रियोंको मारने वाला, हाथ की चालाकी करने वाला, औरों को ठगकर चोरी करने वाला, जूआ खेलने वाला, दहलीज या मोरचेकी रुखाली करने वाला, स्त्री-चोर, पुरुष-चोर, दीवार तोड़कर पाड़ लगाने वाला, गांठ-जेब कतरने वाला, आमने-सामने वालोंको मारकर धन हरण करने वाला, हठ करने वाला, सामनेसे आदमीको मार-मारकर लूटने वाला, छुपा हुआ चोर, गउएं चुराने वाला, घोड़े चुराने वाला, दासीको चुराने वाला, इकला चोरी करने वाला, चोरोंको छुपाने वाला या छुपने के साधन जुटाने वाला, चोरके लिए खाने पीने की व्यवस्था करने वाला, चोरके पीछे उसकी रखवाली को चुपचुपीता रहने वाला, समुदायका घात करने वाला, औरोंको मोहमें फंसानेके लिए विश्वास दिलाने वाली बात करने वाला, राजनिग्रहसे लूटने वाला (डाकू), इस रीतिसे चोरी और परधनहरण करने की बुद्धिके भेदसे अदत्त-आदान लेने वालोंके अनेक भेद हैं।

परधन लोभी राजा—पराया धन लेनेमें जो अविरत हैं (जिन्हें पराया धन लेनेका त्याग नहीं है), जो अत्यन्त समर्थ एवं परिग्रह वाले हैं, इस ढंगके वहुतसे राजा पराये धनमें आसक्त होकर अपने धनमें असन्तुष्ट रहते हैं। तथा अन्यान्य राजाओंके देशोंका विनाश करते हैं। पराये धनमें ललचाकर वे हाथी, घोड़े, रथ और पैदल आदि चतुरंगिणी सेना समेत आक्रमण करनेके निश्चय वाले, युद्धमें विश्वास रखने वाले, प्रधान उद्भट-सुभट सहित 'मैं पहले लड़ने जाऊंगा" ऐसा अहंकार और अमर्ष रखकर प्रयाण करके पद्मव्यूह, शकटव्यूह, शूचीव्यूह, चक्र-व्यूह, गरुडव्यूह, आदि व्यूह रचनेमें सेनाकी स्थापना करते हैं, और सामने से आने वाले लश्करको अपनी सेनासे घेर लेते हैं। तथा हारे हुएका सब धन-माल छीन लेते हैं, वहुतसे योद्धा रणभूमिमें आगे रहकर अपनी इच्छानुसार जाकर संग्राममें प्रवेश करते हैं, (ये योद्धा संग्राममें किस प्रकार जाते हैं—उसके विषय में कहते हैं), वे कवच आदि साज से अपनेको सजाते हैं—और वड़ी तैयारी करते हैं। मस्तक पर कपड़े का पट्टा वांधकर हाथमें शस्त्र तथा तलवार से सजकर देहपर लोहेका मजवूत कवच पहनते हैं। चमड़े के वख्तर से शरीर को ढांपते हैं। लोहे की आंगी पहनते हैं। कांटोंका कवच पहनते हैं। तरकश को छाती के ऊपर गले के साथ या खड़ा करके कमर पर लादकर वांधते हैं। रणमें जानेके लिए अपने द्वारा अस्त्र-शस्त्रों की विशेप रचना करते हैं। कठोर एवं भारी धनुप

को हर्षपूर्वक हाथमें लेकर संभाले रखते हैं। बड़े पैने मुख वाले बाणों की वर्षा करते हैं। मेंह बरसनेकी भांति बाणों की प्रचण्ड-वृष्टिसे छाये हुए मार्ग-प्रदेशमें घुस जाते हैं। आकाश में अनेक धनुष्य-बाण, तलवार, त्रिशूल, बर्छी, भाला आदि उछल रहे हैं, उनमें योद्धा लोग बाए हाथमें ढाल लेकर म्यानसे चमचमाती तलवार बाहर निकालकर प्रहार करने के लिए तैयार रहते हैं।

भाले, बाण, चक्र, गदा, कुल्हाड़े, मुशल, हल, त्रिशूल, लकड़ी, भिंडिमाल(एक प्रकारके छुरे जैसा हथियार), बड़े भाले, पट्टीश, चमड़े से लिपटा हुआ पत्थर, घण, मुट्ठी प्रमाण पाषाण, हथगोला, मुद्गर, भोगल, गोफिये में उलझाकर चलाये जाने वाले गोले, टक्कर, तरकश (बाण रखनेकी थैली), कुवेणी (एक प्रकार का मगधदेशीय शस्त्र), आसनरूपी शस्त्र, तलवार इत्यादि चमकते हुए शस्त्र, शत्रुके ऊपर फेंके जाते हैं; तब आकाश बिजली के प्रकाशके समान बनकर चमक उठता है। रणभूमिमें शंख, भेरी, दुंदुभि, तुरही की सी स्पष्ट ध्वनिसे तथा ढिंढोरा बजनेसे गंभीर शब्द होते हैं, जिसे सुनकर लड़वैये लोग हर्षसे उन्मत्त हो जाते हैं, तब उनकी भयङ्कर ध्वनिसे कायरलोग डरने लग पड़ते हैं। हाथी, घोड़े रथ और सुभट आदि के द्वारा वेगपूर्वक चलने से धूल उड़ती है, उससे छाये हुए अत्यन्त अंधेरे से कायर लोगों की आंखें और हृदय आकुल व्याकुल हो जाते हैं। शिथिलतासे चंचल कलगी वाले मुकुट-किरीट-कुण्डल, नक्षत्रमाला (गले में पहनने का कण्ठा) से आभापूर्वक चमककर अपनी अपूर्व छटा देती है। और विजयध्वज, वैजयन्ती पताका हिलते-डुलते चंवर तथा छतरियों वाले (सुभट) भी गहन अन्धकारमें डूब जाते हैं। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथीकी चिंघाड़ और गुलगुलाहट, रथकी भनभनाहट, पदाति लश्करकी "मारो, मारो" की ध्वनि, कंधे पर भुजा का थपेड़ा-स्फोट, या सिंह के समान घोर नाद, दांत पीसकर बजाई हुई सीटी जैसी आवाज, दीन-स्वर सिन्धुरागसे मिलता जुलता आनन्द-प्रद शब्द, कण्ठमें से निकाली हुई ध्वनि, मेघके समान रौद्र गर्जना, एक दम हंसने या रोषसे निकला हुआ कलकलाट, इस प्रकार युद्धभूमिमें कोलाहल होता रहता है। अति क्रोधसे लड़वैयोंके मुंह रौद्र-भयावह और डरावने हो जाते हैं। वे दांतोंसे नीचेके होठ को काटते हैं। और कारी घाव करने वाले दृढ़प्रहार के हेतु उनके हाथ बिल्कुल सावधान रहते हैं। अधिक क्रोधके वश होकर उनकी फटी हुई आंखें लाल (टमाटर जैसी) हो रही हैं। वैर भावकी दृष्टि और क्रोधकी चेष्टासे उनके कपालमें तीन बल पड़ गए हैं। इसी कारण भृकुटि बांकी-टेढ़ी हो गई है। शत्रु को मारनेके अध्यवसायसे, हजार-हजार आदमियों जितना बल-पराक्रम उन सुभटोंके शरीरमें फुरने लगता है।

वेग वाले घोड़े जोत दिये जाते हैं। ऐसे रथ पर बैठकर दौड़ने वाले योद्धा आकर लघुलाघवीकला द्वारा प्रहार करके उन पर छा जाते हैं, और उन्हें जीत

लेते हैं, फिर वे मारे खुशीके दोनों हाथ ऊंचे उठाकर अट्टहास करते हैं। आयुध-ढाल और कवचसे सन्नद्ध-बद्ध होकर घमण्ड तथा दाव-पेंचका प्रपंच करने वाले सुभट वैरी के हाथियों को मारते अथवा अपने काबूमें करने की इच्छा]. करते हुए आमने सामने लड़ते हैं, और युद्धकला की निपुणता का गुमान रखने वाले म्यानसे तलवार निकालकर क्रोधपूर्वक शीघ्रगतिसे आगे आकर वार करते हुए शत्रु के हाथी की सूंड तथा वैरीको हाथके एक झटकेसे काट डालते हैं। बाणके अचूक प्रहारसे घायल एवं दूसरे हथियारोंसे कटे हुए हाथी आदिके अंग प्रत्यंगसे बहते हुए खूनसे रणभूमिके मार्गों पर फिसलने वाला चिकना कीचड़ हो जाता है। जिनके पसवाड़े में लगे हुए घावसे खून टपकता है और अन्तड़ियां बाहर आ निकली हैं, वे योद्धा विकल होकर तड़पते हैं, मर्मस्थलपर लगे हुए सख्त घावसे मूर्छित होकर भूमि पर लुढ़क जाते हैं और निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। समरभूमिमें करुणाजनक विलापका स्वर गूंज उठता है। मरे हुए योद्धा, घूमते हुए घोड़े, मस्त हाथी, डरे हुए आदमी, बीचमें से टूटी हुई पताकाएं, टूटे रथ, कटे शिरके हाथियों के कलेवर, हथियार, आभरण और गहने आदि बिखरे पड़े रहते हैं। बिना शिर के धड़ ताण्डव करते हैं। भयावने कौवे और मुर्दोंके लालची गिद्धोंके गोल के गोल घूमते रहनेसे गहरा अंधेरा सा छा जाता है। पृथ्वीको हिलाने वाले देव जैसे राजा प्रत्यक्ष स्मशान जैसे अति-भयङ्कर और डरावने और कष्टपूर्वक प्रवेश किया जा सके ऐसे संग्रामके गहन स्थानमें पराये धनकी वांछा करके प्रवेश करते हैं।

पराया धन चुराने वाले चोर—पैदल चलने वाले चोरोंका वर्ग, चोरोंके वर्ग की व्यवस्था करने वाले सेनापति, अटवी जैसे विषम प्रदेशमें रहने वाले, काले—नीले लाल-पीले और सफेद आदि सैंकड़ों तरहके चिह्न पट बांधने वाले धन के लोभसे पराये देशका ध्वंस करते और मारते हैं।

चांचिया—(सामुद्रिक डाकू—समुद्र के चोरों की दुर्घटनायें—)रत्नाकर-समुद्र जो कि हजारों तरंगोंकी मालासे उछलता है, उसमें आकुल व्याकुल होकर जलपोत डोलने लगते हैं, तथा उसमें यात्री लोग (जलपोतमें पानी भर जानेके भयसे) चिल्लियां मारते हैं। पाताल कलशमें रहने वाले विपुल वायुके महावेगसे उछलते हुए समुद्रके पानीके अगणित कणोंसे अंधेरा छा जाता है। वायु के द्वारा विक्षुब्ध हुआ, पानीके साथ अत्यन्त उजले झाग उड़ने से समुद्रके अट्टहास का सा भान होता है, पानीकी लहरें त्वरित गतिसे सारी दिशाओंसे आकर वायुसे क्षुब्ध होते हुए किनारेके साथ टकराती हैं, विक्षुब्ध होता हुआ जलसमूह आगे बहता हुआ चला जाता है और किनारे पर टकराता हुआ वापस अपने स्थानकी ओर मुड़ जाता है। गंगा आदि महानदीका वेगवाला पानी प्रचण्डप्रवाहसे जहां

को हर्षपूर्वक हाथमें लेकर संभाले रखते हैं। बड़े पैने मुख वाले वाणों की वर्षा करते हैं। मेंह बरसनेकी भांति वाणों की प्रचण्ड-वृष्टिसे छाये हुए मार्ग-प्रदेशमें घुस जाते हैं। आकाश में अनेक धनुष्य-वाण, तलवार, त्रिशूल, बर्छी, भाला आदि उछल रहे हैं, उनमें योद्धा लोग वाए हाथमें ढाल लेकर म्यानसे चमचमाती तलवार वाहर निकालकर प्रहार करने के लिए तैयार रहते हैं।

भाले, वाण, चक्र, गदा, कुल्हाड़े, मुशल, हल, त्रिशूल, लकड़ी, भिंडिमाल (एक प्रकारके छुरे जैसा हथियार), वड़े भाले, पट्टीश, चमड़ेसे लिपटा हुआ पत्थर, घण, मुट्ठी प्रमाण पाषाण, हथगोला, मुद्गर, भोगल, गोफिये में उलझाकर चलाये जाने वाले गोले, टक्कर, तरकश (वाण रखनेकी थैली), कुवेणी (एक प्रकार का मगधदेशीय शस्त्र), आसनरूपी शस्त्र, तलवार इत्यादि चमकते हुए शस्त्र, शत्रुके ऊपर फेंके जाते हैं; तब आकाश बिजली के प्रकाशके समान बनकर चमक उठता है। रणभूमिमें शंख, भेरी, दुंदुभि, तुरही की सी स्पष्ट ध्वनिसे तथा ढिढोरा वजनेसे गंभीर शब्द होते हैं, जिसे सुनकर लड़वैये लोग हर्षसे उन्मत्त हो जाते हैं, तब उनकी भयङ्कर ध्वनिसे कायरलोग डरने लग पड़ते हैं। हाथी, घोड़े रथ और सुभट आदि के द्वारा वेगपूर्वक चलने से धूल उड़ती है, उससे छाये हुए अत्यन्त अंधेरे से कायर लोगों की आंखें और हृदय आकुल व्याकुल हो जाते हैं। शिथिलतासे चंचल कलगी वाले मुकुट-किरीट-कुण्डल, नक्षत्रमाला (गले में पहनने का कण्ठा) से आभापूर्वक चमककर अपनी अपूर्व छटा देती है। और विजयध्वज, वैजयन्ती पताका हिलते-डुलते चंवर तथा छतरियों वाले (सुभट) भी गहन अन्धकारमें डूब जाते हैं। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथीकी चिघाड़ और गुलगुलाहट, रथकी झनझनाहट, पदाति लश्करकी "मारो, मारो" की ध्वनि, कंधे पर भुजा का थपेड़ा-स्फोट, या सिंह के समान घोर नाद, दांत पीसकर वजाई हुई सीटी जैसी आवाज, दीन-स्वर सिन्धुरागसे मिलता जुलता आनन्द-प्रद शब्द, कण्ठमें से निकाली हुई ध्वनि, मेघके समान रौद्र गर्जना, एक दम हंसने या रोषसे निकला हुआ कलकलाट, इस प्रकार युद्धभूमिमें कोलाहल होता रहता है। अति क्रोधसे लड़वैयोंके मुंह रौद्र-भयावह और डरावने हो जाते हैं। वे दांतोंसे नीचेके होठ को काटते हैं। और कारी घाव करने वाले दृढ़प्रहार के हेतु उनके हाथ बिल्कुल सावधान रहते हैं। अधिक क्रोधके वश होकर उनकी फटी हुई आंखें लाल (टमाटर जैसी) हो रही हैं। वैर भावकी दृष्टि और क्रोधकी चेष्टासे उनके कपालमें तीन वल पड़ गए हैं। इसी कारण भृकुटि बांकी-टेढ़ी हो गई है। शत्रु को मारनेके अध्यवसायसे, हजार-हजार आदमियों जितना बल-पराक्रम उन सुभटोंके शरीरमें फुरने लगता है।

वेग वाले घोड़े जोत दिये जाते हैं। ऐसे रथ पर बैठकर दौड़ने वाले योद्धा आकर लघुलाघवीकला द्वारा प्रहार करके उन पर छा जाते हैं, और उन्हें जीत

लेते हैं, फिर वे मारे खुशीके दोनों हाथ ऊंचे उठाकर अट्टहास करते हैं। आयुध-ढाल और कवचसे सन्नद्ध-बद्ध होकर घमण्ड तथा दाव-पेंचका प्रपंच करने वाले सुभट वैरी के हाथियों को मारते अथवा अपने काबूमें करने की इच्छा करते हुए आमने सामने लड़ते हैं, और युद्धकला की निपुणता का गुमान रखने वाले म्यानसे तलवार निकालकर क्रोधपूर्वक शीघ्रगतिसे आगे आकर वार करते हुए शत्रु के हाथी की सूंड तथा वैरीको हाथके एक झटकेसे काट डालते हैं। बाणके अचूक प्रहारसे घायल एवं दूसरे हथियारोंसे कटे हुए हाथी आदिके अंग प्रत्यंगसे बहते हुए खूनसे रणभूमिके मार्गों पर फिसलने वाला चिकना कीचड़ हो जाता है। जिनके पसवाड़े में लगे हुए घावसे खून टपकता है और अन्तड़ियां बाहर आ निकली हैं, वे योद्धा विकल होकर तड़पते हैं, मर्मस्थलपर लगे हुए सख्त घावसे मूर्छित होकर भूमि पर लुढ़क जाते हैं और निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। समरभूमिमें करुणाजनक विलापका स्वर गूंज उठता है। मरे हुए योद्धा, घूमते हुए घोड़े, मस्त हाथी, डरे हुए आदमी, बीचमें से टूटी हुई पताकाएं, टूटे रथ, कटे शिरके हाथियों के कलेवर, हथियार, आभरण और गहने आदि बिखरे पड़े रहते हैं। बिना शिर के धड़ ताण्डव करते हैं। भयावने कौवे और मुर्दोंके लालची गिद्धोंके गोल के गोल घूमते रहनेसे गहरा अंधेरा सा छा जाता है। पृथ्वीको हिलाने वाले देव जैसे राजा प्रत्यक्ष स्मशान जैसे अति-भयङ्कर और डरावने और कष्टपूर्वक प्रवेश किया जा सके ऐसे संग्रामके गहन स्थानमें पराये धनकी वांछा करके प्रवेश करते हैं।

पराया धन चुराने वाले चोर—पैदल चलने वाले चोरोंका वर्ग, चोरोंके वर्ग की व्यवस्था करने वाले सेनापति, अटवी जैसे विषम प्रदेशमें रहने वाले, काले-नीले लाल-पीले और सफेद आदि सैंकड़ों तरहके चिह्न पट बांधने वाले धन के लोभसे पराये देशका ध्वंस करते और मारते हैं।

चांचिया—(सामुद्रिक डाकू—समुद्र के चोरों की दुर्घटनायें—)रत्नाकर-समुद्र जो कि हजारों तरंगोंकी मालासे उछलता है, उसमें आकुल व्याकुल होकर जलपोत डोलने लगते हैं, तथा उसमें यात्री लोग (जलपोतमें पानी भर जानेके भयसे) चिल्लियां मारते हैं। पाताल कलशमें रहने वाले विपुल वायुके महावेगसे उछलते हुए समुद्रके पानीके अगणित कणोंसे अंधेरा छा जाता है। वायु के द्वारा विक्षुब्ध हुआ, पानीके साथ अत्यन्त उजले झाग उड़ने से समुद्रके अट्टहास का सा भान होता है, पानीकी लहरें त्वरित गतिसे सारी दिशाओंसे आकर वायुसे क्षुब्ध होते हुए किनारेके साथ टकराती हैं, विक्षुब्ध होता हुआ जलसमूह आगे बहता हुआ चला जाता है और किनारे पर टकराता हुआ वापस अपने स्थानकी ओर मुड़ जाता है। गंगा आदि महानदीका वेगवाला पानी प्रचण्डप्रवाहसे जहां

को हर्षपूर्वक हाथमें लेकर संभाले रखते हैं। बड़े पैने मुख वाले बाणों की वर्षा करते हैं। मेंह बरसनेकी भांति बाणों की प्रचण्ड-वृष्टिसे छाये हुए मार्ग-प्रदेशमें घुस जाते हैं। आकाश में अनेक धनुष्य-बाण, तलवार, त्रिशूल, बर्छी, भाला आदि उछल रहे हैं, उनमें योद्धा लोग बाएं हाथमें ढाल लेकर म्यानसे चमचमाती तलवार बाहर निकालकर प्रहार करने के लिए तैयार रहते हैं।

भाले, बाण, चक्र, गदा, कुल्हाड़े, मुशल, हल, त्रिशूल, लकड़ी, भिंडिमाल(एक प्रकारके छुरे जैसा हथियार), बड़े भाले, पट्टीश, चमड़ेसे लिपटा हुआ पत्थर, घरण, मुट्ठी प्रमाण पाषाण, हथगोला, मुद्गर, भोगल, गोफिये में उलझाकर चलाये जाने वाले गोले, टक्कर, तरकश (बाण रखनेकी थैली), कुवेणी (एक प्रकार का मगधदेशीय शस्त्र), आसनरूपी शस्त्र, तलवार इत्यादि चमकते हुए शस्त्र, शत्रुके ऊपर फेंके जाते हैं; तब आकाश बिजली के प्रकाशके समान बनकर चमक उठता है। रणभूमिमें शंख, भेरी, दुंदुभि, तुरही की सी स्पष्ट ध्वनिसे तथा ढिंढोरा बजनेसे गंभीर शब्द होते हैं, जिसे सुनकर लड़वैये लोग हर्षसे उन्मत्त हो जाते हैं, तब उनकी भयङ्कर ध्वनिसे कायरलोग डरने लग पड़ते हैं। हाथी, घोड़े रथ और सुभट आदि के द्वारा वेगपूर्वक चलने से धूल उड़ती है, उससे छाये हुए अत्यन्त अंधेरे से कायर लोगों की आंखें और हृदय आकुल व्याकुल हो जाते हैं। शिथिलतासे चंचल कलगी वाले मुकुट-किरीट-कुण्डल, नक्षत्रमाला (गले में पहनने का कण्ठा) से आभापूर्वक चमककर अपनी अपूर्व छटा देती है। और विजयध्वज, वैजयन्ती पताका हिलते-डुलते चंवर तथा छतरियों वाले (सुभट) भी गहन अन्धकारमें डूब जाते हैं। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथीकी चिंघाड़ और गुलगुलाहट, रथकी झनझनाहट, पदाति लश्करकी "मारो, मारो" की ध्वनि, कंधे पर भुजा का थपेड़ा-स्फोट, या सिंह के समान घोर नाद, दांत पीसकर बजाई हुई सीटी जैसी आवाज, दीन-स्वर सिन्धुरागसे मिलता जुलता आनन्द-प्रद शब्द, कण्ठमें से निकाली हुई ध्वनि, मेघके समान रौद्र गर्जना, एक दम हंसने या रोषसे निकला हुआ कलकलाट, इस प्रकार युद्धभूमिमें कोलाहल होता रहता है। अति क्रोधसे लड़वैयोंके मुंह रौद्र-भयावह और डरावने हो जाते हैं। वे दांतोंसे नीचेके होठ को काटते हैं। और कारी घाव करने वाले दृढ़प्रहार के हेतु उनके हाथ बिल्कुल सावधान रहते हैं। अधिक क्रोधके वश होकर उनकी फटी हुई आंखें लाल (टमाटर जैसी) हो रही हैं। वैर भावकी दृष्टि और क्रोधकी चेष्टासे उनके कपालमें तीन बल पड़ गए हैं। इसी कारण भृकुटि बांकी-टेढ़ी हो गई है। शत्रु को मारनेके अध्यवसायसे, हजार-हजार आदमियों जितना बल-पराक्रम उन सुभटोंके शरीरमें फुरने लगता है।

वेग वाले घोड़े जोत दिये जाते हैं। ऐसे रथ पर बैठकर दौड़ने वाले योद्धा आकर लघुलाघवीकला द्वारा प्रहार करके उन पर छा जाते हैं, और उन्हें जीत

लेते हैं, फिर वे मारे खुशीके दोनों हाथ ऊंचे उठाकर अट्टहास करते हैं। आयुध-ढाल और कवचसे सन्नद्ध-बद्ध होकर घमण्ड तथा दाव-पेंचका प्रपंच करने वाले सुभट वैरी के हाथियों को मारते अथवा अपने काबूमें करने की इच्छा करते हुए आमने सामने लड़ते हैं, और युद्धकला की निपुणता का गुमान रखने वाले म्यानसे तलवार निकालकर क्रोधपूर्वक शीघ्रगतिसे आगे आकर वार करते हुए शत्रु के हाथी की सूंड तथा वैरीको हाथके एक झटकेसे काट डालते हैं। बाणके अचूक प्रहारसे घायल एवं दूसरे हथियारोंसे कटे हुए हाथी आदिके अंग प्रत्यंगसे वहते हुए खूनसे रणभूमिके मार्गों पर फिसलने वाला चिकना कीचड़ हो जाता है। जिनके पसवाड़े में लगे हुए घावसे खून टपकता है और अन्तड़ियां बाहर आ निकली हैं, वे योद्धा विकल होकर तड़पते हैं, मर्मस्थलपर लगे हुए सख्त घावसे मूर्छित होकर भूमि पर लुढ़क जाते हैं और निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। समरभूमिमें करुणाजनक विलापका स्वर गूंज उठता है। मरे हुए योद्धा, घूमते हुए घोड़े, मस्त हाथी, डरे हुए आदमी, बीचमें से टूटी हुई पताकाएं, टूटे रथ, कटे शिरके हाथियों के कलेवर, हथियार, आभरण और गहने आदि बिखरे पड़े रहते हैं। विना शिर के धड़ ताण्डव करते हैं। भयावने कौवे और मुर्दोंके लालची गिद्धोंके गोल के गोल घूमते रहनेसे गहरा अंधेरा सा छा जाता है। पृथ्वीको हिलाने वाले देव जैसे राजा प्रत्यक्ष स्मशान जैसे अति-भयङ्कर और डरावने और कष्टपूर्वक प्रवेश किया जा सके ऐसे संग्रामके गहन स्थानमें पराये धनकी वांछा करके प्रवेश करते हैं।

पराया धन चुराने वाले चोर--पैदल चलने वाले चोरोंका वर्ग, चोरोंके वर्ग की व्यवस्था करने वाले सेनापति, अटवी जैसे विषम प्रदेशमें रहने वाले, काले-नीले लाल-पीले और सफेद आदि सैंकड़ों तरहके चिह्न पट बांधने वाले धन के लोभसे पराये देशका ध्वंस करते और मारते हैं।

चांचिया—(सामुद्रिक डाकू—समुद्र के चोरों की दुर्घटनायें—)रत्नाकर-समुद्र जो कि हजारों तरंगोंकी मालासे उछलता है, उसमें आकुल व्याकुल होकर जलपोत डोलने लगते हैं, तथा उसमें यात्री लोग (जलपोतमें पानी भर जानेके भयसे) चिल्लियां मारते हैं। पाताल कलशमें रहने वाले विपुल वायुके महावेगसे उछलते हुए समुद्रके पानीके अगणित कणोंसे अंधेरा छा जाता है। वायु के द्वारा विक्षुब्ध हुआ, पानीके साथ अत्यन्त उजले झाग उड़ने से समुद्रके अट्टहास का सा भान होता है, पानीकी लहरें त्वरित गतिसे सारी दिशाओंसे आकर वायुसे क्षुब्ध होते हुए किनारेके साथ टकराती हैं, विक्षुब्ध होता हुआ जलसमूह आगे वहता हुआ चला जाता है और किनारे पर टकराता हुआ वापस अपने स्थानकी ओर मुड़ जाता है। गंगा आदि महानदीका वेगवाला पानी प्रचण्डप्रवाहसे जहां

तहां भरता है। वह अत्यन्त गंभीर होनेके कारण जिसकी गहराईको पाया नहीं जा सकता, जिसमें पानीके वड़े भंवर पड़ते हैं, वे वड़ी गहराई में घुसते हैं, ऊंचे होकर उछलते हैं, फिर नीचे गिर पड़ते हैं, जो इतनी अधिक शीघ्र गतिसे जाता है कि अतिकठोर स्पर्शसे टकरा कर प्रचण्ड व्याकुल होने वाले पानीका विभाग हो जाता है। इस प्रकार तरंगित कल्लोलोंसे व्याप्त समुद्रमें वड़े वड़े मगरमच्छ, कच्छप, महोरग (मच्छकी सर्पाकृति वाली वड़ी जाति), सुंसुमार, हिंसक जलचर प्राणी आदि आपसमें एक दूसरे पर प्रहार करनेके लिए आगे धंसते हैं। तथा इस प्रकारके अगणित्त भयंकर जलचर प्राणीके समुदायमें कायर आदमियोंका हृदय कांपकर डोल उठता है। भयावह शब्द होनेसे वड़ा ही डर उपजता है। उपद्रवका स्थानरूप, त्रास उत्पन्न करने वाला, आकाशके समान अपार, आलंवन रहित, उत्पातसे उत्पन्न होने वाले पवनके योगसे अत्यन्त वेग वाला, तथा एक दूसरे पर उछल कर पड़ने वाली तरङ्गोंसे युक्त, गर्वसहित, अतिवेगवान्, दृष्टिपथको ढांपने वाला, किसी स्थान पर गंभीर किसी स्थान पर फैला हुआ, (मेघ के समान) गर्जना करता हुआ, हवाकी 'सूं सूं' की आवाजसे गूंजने वाला, कड़कड़ाट करने वाला (आकाशके कड़ाके की तरह) किसी भारी पदार्थके उड़नेसे होने वाली आवाजकी भांति ध्वनि करता हुआ, लंवे कालसे दूर तक सुना जाने वाला, गंभीर गुरगुराहट करता हुआ समुद्र है। उसमें यात्रा करने वालोंके मार्गमें कुपित होने वाले यक्ष, राक्षस, कूष्माण्ड, पिशाच, आदि हजारों उपद्रव, उपसर्ग तथा उत्पात उत्पन्न करते हैं और उनका मार्ग रोकते हैं, उन व्यन्तरदेवों को शान्त करने के लिए अनेक प्रकार के प्राकृतिक और अप्राकृतिक उपाय सोचा करते हैं। सारे युगोंमें अन्तिमयुग (प्रलयकाल) जैसी उपमा के योग्य समुद्रका अन्त वड़ा दुष्कर है। गंगादिक महानदियोंका स्वामी (सागर) अत्यन्त भयंकर दीख पड़ता है। दुःखसे सेवा करने योग्य है। जिसमें प्रवेश करना भी अति दुष्कर है। दुःखसे पार करने योग्य (दुस्तर) है। दुःखसे आश्रय लिया जाता है। खारे पानीसे भरा है। ऐसे समुद्रमें काले शढ जिसमें ऊंचे किये गये हैं वड़े वेगसे चलता है। वाहणमें वैठकर दूर दूर जाकर पराये धनको हरने वाले, अनुकम्पादिसे रहित, तथा परलोकके भयसे रहित, चोर लोग जलयात्रा करने वालोंके वाहनके पीछे भागते हैं और उन्हें लूट लेते हैं।

चोरीके संकट—गांव-आगर-नगर-ढाणी-कर्वट-मंडप-द्रोणमुख (जल-थल का मार्ग) पत्तन-आश्रम-वणिकावास (मंडी), देश, इत्यादिमें रहने-वाले धनिक लोगोंको चोर लोग मारते और लूटते हैं। वे वहां के निवासियोंकी गउओंको भी उड़ा ले जाते हैं। ये दारुण और उग्रमतिके निर्दय चोर अपनोंको भी मारते हैं। घर फोड़कर नकव लगाते हैं। घरमें रक्खा अथवा दवाया हुआ धन-धान्य-आदि चुरा

ले जाते हैं। फिर ऐसे निर्दय चोर जनपदके लोगोंको मारते-कूटते हैं। जिन्हें पराया धन चुरानेकी आंखड़ी-अटकाव नहीं है, और विना दिया धन लेनेमें (सटक नारायण) वुद्धि वाले लोग पराये धनकी खोज खवर करनेके हेतु समय-वेसमय ठौर-ठौर भटकते फिरते हैं। चिताओंमें जलते हुए खून और राधसे सने-भरे मुर्दोंको निकालकर खून मुंहलगी-डायन उन मुर्दोंको खा जाती है, तथा उनका खून पी जाती है, ऐसे डरावने स्मशानमें या फिर जहां गीदड़ भयानक-शब्दोंमें चिल्लाते हैं, जहां उल्लू घोर नाद करते हैं, पिशाच लोग अप्रगट रहकर कहक-हाट-अट्टहास्य करते हैं। इस प्रकार डरावने-अरमणीय-अतिदुर्गन्ध युक्त और घृणा पैदा करने वाले स्मशान-वन-सूनाघर, पत्थरकी खान, मार्गमें आने वाली दुकान, पहाड़की गुफामें, या सिंहादि हिंसक जानवरों की मांद जैसे विषम स्थानों में, क्लेश पाते हुए, गर्मी और सर्दी से सूखे हुए शरीर वाले तथा कान्ति रहित चोर लोग नरक-तिर्यचके भवमें भोगने योग्य दुःखोंकी परम्पराको और (चोरीके) पाप कर्मोंको जो इकट्ठा करते हैं। जिन्हें मीठा-भोजन और ठंडा पानी देव-दुर्लभ है, और जो भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर संकट भोगते हैं, वे चोर लोग मांस, मरे का मांस, कंदमूल, तथा जो कुछ मिल जाय उसे अनाप-सनाप खा डालते हैं, एवं उद्विग्न या भयसे जिनकी छाती धड़कती रहती है, ऐसी आश्रयरहित स्थिति में वनवास की सांसत भोगते हैं। जो वन सैंकड़ों तरह के सर्पोंसे भरा रहने से भय और मृत्युकी आशंकासे युक्त है। अपयशकारी भयावने चोर लोग "किस के यहां डाका डालें" "आज ही डाका पड़ेगा" ऐसा गिरोह बांधकर गुप्त मन्त्रणा करते हैं। वहुतसे लोगों के काम धंधोंमें विघ्न-वाधा उत्पन्न करने वाले, मदमें मस्त, प्रमादी-सोये पड़े रहने वाले-सतर्क विश्राम करने वाले; ऐसोंके छिद्र देखकर यथासमय दावपेंच में लाकर मारने वाले और नाना कष्ट उत्सवके समय चोरी करने की वुद्धि वाले चोर लोग नख वाले जानवरोंकी भांति खून पीनेकी अभिलाषा रखते हुए घूमते फिरते हैं। राजसी न्याय-मर्यादाका लोप करने वाले, अच्छे और भद्र-पुरुषों द्वारा निन्दित, अपने कर्मके द्वारा पापकर्म करने वाले, अशुभपरिणाम वाले, दुःखातिदुःख भोगने वाले, सदैव असमाधियुक्त तथा मलीन से मलीन मानस वाले, इस लोकमें क्लेश पाने वाले, तथा पराया धनमाल चुराने वाले, आदमी सैंकड़ों प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥११॥

चोरीके भयानक फल—कई लोग पराये धनको खोजते हुए न्यायशील राजपुरुषों द्वारा पकड़े जाते हैं, तव उन पर खूव पशु-मार पड़ती है, उन्हें मुश्कें देकर वांध लेते हैं, हिरासत-वंदीखानेमें रखते हैं, तुरन्त नगरमें काला मुंह करके घुमाते हैं और उसे दण्डनायक-कोतवालके हाथ सौंप देते हैं। वह उन्हें फुसलाकर मीठे वोल-वोलकर आरोप मनवा लेता है, (और यदि वह न माने तो) उसे कपड़े

के गीले वटदार कोरड़ेमें ईटका टोरड़ा रखकर उसकी करारी मार मारते हैं। निर्दय कोतवाल कठोर वचन कहकर झिड़कता और धमकाता है, उसकी गर्दन पकड़कर धिकाता हुआ दूर फेंक देता है। इस प्रकार दीन-हीन बने हुए चोरोंको कारावासमें बंद किया जाता है। वह कैदखाना नरकके समान होता है। वहां उनके रखवाले उन पर मार मारते रहते हैं, वे आगमें लोहा गर्म करके डांभ देते हैं, तिरस्कार करते हैं, कड़वे वचन सुनाते हैं, भयकारी धमकीसे उसे सब प्रकारसे विवश होना पड़ता है, वहां उसके पहननेके कपड़े खींचकर उतार लिए जाते हैं, जेलके मैले और थेगले लगे कपड़े मिलते हैं, कोतवालको लांच-रिश्वत देकर भी उससे वस्त्रादिकी उचित और अच्छी व्यवस्था नहीं करा पाते, कोतवालके छोड़े हुए पहरेदार उन्हें नाना प्रकारके बंधनोंसे बांधते हैं, उनके बंधन कैसे हैं? पैरोंमें लम्बा काठ ठोकते हैं, लोहेकी वेड़ीसे वांधते हैं, बालोंको डोरसे बांधकर खींचते हैं, कुदंडक (लकड़ीके डंडेके एक सिरे पर बांधी हुई रस्सी), हंटर, चमड़े की रस्सी या सोटा, लोहेकी सांकल, लोहेकी हथकड़ी, वेड़ी, चमड़ेके पट्टे, पैरोंकी डामण, इत्यादि अनेक प्रकारके दुःखदाई दुःख उपजाने वाले वंधनसे उन्हें कोतवालके पहरेदार मात्र शरीर को बटोरकर अंगोपांगोंको मोड़-तोड़कर बांधते हैं, इन मन्द-पुण्य जीवोंको लकड़ीके यन्त्रमें किवाड़ों के बीच और लोहेके पींजरेमें रोककर मारते हैं, भांयरों-तहखानों में बंद करते हैं, अन्धे कुएं में उतारते हैं, रथकी धूसर और (रथके) पहियेके साथ मजबूत बंधन से बांध देते हैं, या किसी थंभेसे जकड़ देते हैं, औंधे सिर बांधते हैं, इस प्रकार अधिकाधिक पीड़ा उपजाकर उन्हें मारते हैं। फिर उनकी गर्दन मरोड़कर नीची झुकाकर मस्तकको छातीके पास लाकर बांधते हैं। उन्हें धूलमें दबाते हैं, उनके फड़कते और नीसास डालते हृदय-छाती से भींचकर बांधते हैं। उनके मस्तकको चमड़ेसे लपेटते हैं, उनकी जांघको लकड़ी की तरह चीरते हैं। काष्ठयन्त्रके द्वारा उनके घुटने बांधते हैं। तपी हुई लोहेकी सलाइयोंसे डांभ देते हैं, पैनी सुइयां चुभोते हैं, उनके अंग-प्रत्यंग को लकड़ीकी तरह छीलते हैं, इस प्रकार उनको अधिकसे अधिक पीड़ा देते हैं। खार-नीम-मिरच आदि उनके नाकमें डालकर नस्य चढ़ाते हैं। इस प्रकार उन्हें सैंकड़ों प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं। छातीके ऊपर एक बड़ा लक्कड़ रखकर उन्हें तकलीफ देते हैं, फिर लक्कड़को आगे पीछे करके उसके द्वारा उनकी हड्डी-पसलियां तोड़ डालते हैं। उनके गले बांधकर घोटते हैं। लोहेके डंडेसे छाती, पेट, गुदा और पीठके ऊपर प्रहार करके उन्हें पीड़ित करते हैं। हृदय को मसल कर मर्दित करते हैं, और उनके रहे-सहे सारे अंगोपांगों को तोड़-फोड़ डालते हैं। उपरोक्त आज्ञाओं द्वारा बहुतसे सेवक निरपराधीको भी शत्रुभावसे यमकी मार मारते हैं। वे मन्द-भागी अदत्तके हरण करने वालों को थप्पड़-चट्टू मारते हैं। चमड़ेके हंटर

से, लोहेके सरिये, छोटे-बड़े चाबुक और बेंतकी लकड़ी आदिसे मारते हैं। नाना-प्रहारोंसे अंगोपांगमें मार सहन करते-करते बेचारोंका कचूमर निकल जाता है और शरीरकी चमड़ी लटक पड़ती है। घावोंसे पीड़ा भोगते हुए चोरी जैसे भीषण पापको वे फिर भी नहीं छोड़ते। अनेक प्रकारके शस्त्रों द्वारा मार पड़नेसे लोह-मय बेड़ीके बंधन द्वारा देह-पिंड बंधाने और देह-भंग होनेसे, शरीरकी हाजत रोकने आदिसे बहुविध वेदनायें पापीजन सहन करते हैं। इस भांति इन्द्रियोंके गुलाम, विषयोंमें आसक्त, अतिमोह-मुग्ध, पराये धनको अपनानेमें लुब्ध, स्पर्शेन्द्रियके विषय में और स्त्रीमें तीव्र आसक्ति वाले, स्त्रीके रूप, शब्द, रस, गन्धमें मनोवाञ्छित इच्छा-पूर्तिका भाव रखने वाले, भोगकी प्यास रखने वाले, और धनहरण करनेमें आनन्द मानने वाले, ये सब चोरी करनेके फलसे अनजान आदमियोंको राजाके सेवकोंके पास ले जाकर उन्हें सौंप दिया जाता है।

वे राजसेवक वध-शास्त्रके पाठक हैं, अन्यायके व्यसनी, वैसे ही कुकर्म करने वाले, रिश्वतखोर, छलकपट करने में पारायण, वेष-भाषाको बदली करने वाले, माया-कपटके द्वारा औरोंको ठगनेमें सावधान, अनेक पहलुओंसे झूठ बोलने वाले, परलोकके अनुभव और विचारसे विमुख, नरकगतिमें जाने वाले, इन राजकिंकरों की आज्ञासे चोर लोगोंके दुष्टाचरणका दण्ड तुरन्त नगरमें प्रगट कर दिया जाता है। नगरके तिराहे चौराहे या कई रास्ते, राजमार्ग या सामान्य मार्ग होते हैं। उनके बीचमें बेंत का डण्डा, लकड़ी-लाठी, काष्ठदण्ड, सोटा, मुक्का, लात, पैरकी एड़ी, घुटना, कोहनी, आदिके प्रहारोंसे चोरके देहपिण्डको तोड़ते और मरोड़ते हैं। उस समय ये १८ प्रकारके चौर्यकर्म करने वालोंके अंगोपांग टूट-फूट जानेसे अत्यन्त पीड़ा भोगते हैं। करुणाजनक स्थितिमें आ पड़ते हैं। वे प्याससे गला, होंठ-हलक और जीभ सूख जानेसे पानी मांगते हैं, जीनेकी आशाका भंग हो गया है जिन का—ऐसे उन बेचारे लोगोंको पानी तक नहीं दिया जाता। यदि इन चोरोंको कोई पानी पिलानेका साहस करे तो राजपुरुष उन्हें पानी पिलानेसे रोकते हैं। कठोर बंधनोंसे बांधे गये, क्रूर रीतिसे पकड़े गये, कहीं भाग न जायं इस खयालसे उनकी मुश्कें बांधी गई हैं, उन्हें थोड़ा सा कपड़ा पहनने को देते हैं, उनकी जान मारते समय उनके गलेमें लाल-कनेर के फूलोंकी माला रस्सीकी तरह तङ्ग रीति से पहनाई जाती है, मरनेके डरसे शरीर पसीनेसे सराबोर हो रहा है, मानों उसके शरीरमें तेल चुपड़ दिया है, राखमें सना हुआ सा शरीर दिखता है। बाल धूलमें भरे हुए हैं। मस्तक पर कसुंबा लगाया गया है। उनकी जीनेकी आश टूट चुकी है, विकल होकर घूमता रहता है। मारनेके लिए ले जाते हुए भी प्राण सांस-उच्छ्वासके ऊपर प्रेम रखने वाले चोर लोगोंका तिल तिल जितना मांस स्थान स्थान —र काटा जाता है, इस कारण उनका शरीर लहूलुहान हो जाता है। उनके शरीर

से मांसके छोटे छोटे टुकड़े निकालकर उन्हींको खिलाये जाते हैं। पापी-जन चमड़े के थैलेमें पत्थर भरकर उन्हें मारते हैं। वायुकी तरह न रुक सकने वाले आदमी और औरतें और नागरिक जन गोल बांधकर उन्हें देखनेके लिए साथ फिरते हैं। वध करनेके योग्य कपड़े पहनाकर उन्हें नगरके बीचों-बीच घुमाया जाता है। उन मन्दभागी चोरोंकी मौतका रोकने वाला कोई नहीं है, वे अशरण, अनाथ और बान्धव रहित हैं। स्वजन संबंधियोंने उनको छोड़ दिया है। वे इधर उधर देखते हैं (उन्हें कोई छुड़ाने वाला है या नहीं इस आशासे देखते हैं)। मरनेके डरसे उद्विग्न हो गये है। सब लोग उन्हें वधस्थान तक पहुंचाने जा रहे हैं। उन्हें शूली पर चढ़ाया जाता है। उनके शरीरको चीरा और विदारा जाता है। उनके अंगोपांग काट दिये जाते हैं। वृक्षके तनेसे बांधकर उनका आधा मुर्दा शरीर लटका दिया जाता है। वे दीन वचनोंसे रोते और कलपते हैं।

कई चोरों के चार अंग (दो हाथ और दो पैर) बांधकर उन्हें पर्वत की चोटी से नीचे घिसराते हैं, तब वे बहुत ऊंचेसे पड़नेके कारण विषम-धार वाले पत्थरों के साथ टकराकर पिस-कुट जाते हैं। दूसरे कई ढंगसे हाथी के पैरों तले डाल कर रौंदे-कुचले जाते हैं। पापी अधिकारी लोग बहुत से चोरों के अठारह अंगों के टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। कइयों को भोंठे कुल्हाड़े से काटते हैं। कइयों के आंख-नाक-दांत-जीभ और अण्डकोष काट लेते हैं। कइओंके कान या मस्तक काट लेते हैं और वध्यभूमि में ले जाकर तलवार से टूक-टूक कर डालते हैं। कइयों को देशनिकाला दिया जाता है। कालेपानी-निर्वासित किया जाता है। कइयों के हाथ-पैर काटकर छोड़ दिया जाता है। कइयोंको मरने तक बांध छोड़ते हैं। बहुत से पराये धन हरण करने वाले लुब्धकों के हाथ पैर में बेड़ियां पहनाकर उन्हें कारावास में बन्द करके रखते हैं। इन परद्रव्यहारी लोगों को उनके स्वजन सम्बन्धी लोग छोड़ देते हैं। मित्र-गण उनका अपमान करने लगते हैं। वे चारों ओर से बिलकुल निराश हो जाते हैं। अनेक लोगों के मुंहसे धिक्कार के शब्दों से मारे शर्म के मुंह नीचे लटकाये रखते हैं, फिर भी वे निर्लज्ज और ढीठ बने हुए हैं। भूखके सताये हुए, सरदी गर्मी की कठोर वेदना सहते हुए मुंह पर हवाइयां उड़ रही हैं। कान्तिहीन-निस्तेज मुख, शरीर और मनके मनोरथ सब अधूरे रह गए हैं, शरीर मैलसे भरकर भद्दा लगने लगा है। दुबला, ग्लानिप्राप्त, खों खों करता हुआ, कुष्ठादि रोगग्रस्त, पेटके दर्दसे तपा हुआ, नख-केश-दाढ़ी-मूंछ-रोम आदि जिसके बांध दिये हैं, अपने मलमूत्र में जो लिपटा हुआ है, ऐसे चोर लोग वहीं—कारावास में ही मौत को न चाहते हुए भी मर जाते हैं। फिर उनके हाथ-पैर बांधकर कारागृह में से उन्हें घसीट-खींचकर बाहर निकालते हैं और खाई में फेंक दिया जाता है। जहां गीदड़, कुत्ते या सूअर-भे गोलके

गोल, संडासी जैसी चोंच वाले गिद्ध पक्षियों का समूह आकर सैंकड़ों मुंह और चोंचों से उन चोरों के मृत अङ्गोपांगको चूंथ चूंथकर चट्ट कर जाते हैं। कइयों के देहमें कीड़े पड़े होते हैं। लोग उन्हें अनिष्ट वचनों द्वारा शाप देते हुए कहते हैं कि "अच्छा हुआ जो ऐसे पापी मारे गए" यह कह-कह कर कई लोग तो प्रसन्न होते हैं और उनके मर जाने पर भी वे चोर लोग औरों के लिए लज्जाका कारण बन जाते हैं।

पराया धन हरने वालोंकी दुर्गति—उनके मरने के बाद बहुत समय तक तो उनके स्वजन आदि इतने शर्माते हैं कि किसीको मुंह तक नहीं दिखाते, तथा बात-चीतके समय बड़े सकुचाते हैं। फिर वे चोर मरने के बाद परलोक में नरक गति में उत्पन्न होते हैं। अप्रिय नरक में जलते-धधकते अंगारों की गर्मी और अतिशय शीतकी वेदना आदि के सतत-कष्ट, अशाता-वेदनीय कर्मका उदय आने के कारण वे चाहे जैसे सैंकड़ों तरह के कष्ट सहन करते हैं, और वे उस नरक से निकलकर तिर्यंच-योनि में पैदा होते हैं, तथा वहां भी नरक जैसी दारुण-वेदना परवश होकर भोगते हैं। फिर अनन्तकाल चक्रके अनन्तर वे जीव कदाचित् बड़े कष्ट सहकर मनुष्य जन्म भी पा लेते हैं, फिर भी अनेक बार नरकगति में जाकर और फिर लाखों बार तिर्यच पर्याय में घूमकर फिर मनुष्य जन्म पाते हैं। मनुष्य के भवमें भी वे जीव अनार्यदेश में नीचकुल में पैदा होते हैं, और जो आर्य-देशमें उपजते हैं, वे लोग बाह्य अर्थात् अछूत तिर्यच जैसे, बुद्धिहीन जंगली और कामभोगमें सदा अतृप्तसे रहते हैं, और वहां भी नरक के आवर्तन बांधते हैं। भवप्रपंच के द्वारा जन्म मरण के चक्कर में फिरते रहते हैं,फिर और गहरे संसार के आवर्तन बांधकर उनमें फंस जाते हैं। धर्मशास्त्र के ज्ञानसे रहित, अनार्य, क्रूर कर्मके करने वाले, मिथ्यात्वशास्त्र के मतको पकड़ लेने में तत्पर रहते हैं। वे एकान्त हिंसाकी रुचि वाले मकड़ी के जालेकी तरह कर्मके आवरण से लिपट कर दुःख भोगते हैं। अपने द्वारा अर्जित आठ प्रकार के कर्म के तन्तुओं के दृढ़बंधनों से बंधे हुए, नाना दुःखों के थपेड़े खाते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार नरक-तिर्यच-मनुष्य और देवगति रूप संसार की परिधि में वे घूमते फिरते हैं।

संसार समुद्र—इस संसार रूपी समुद्र में जन्म, जरा और मरण रूपी पंच परावर्तन की गहराई-अथाह है, दुःख से प्रक्षुब्ध करने वाला अधिकतर पानी है, इसमें संयोग-वियोग रूपी लहरें उछलती हैं, चिंताके प्रसंग चारों ओर फैले पड़े हैं, वध बन्धन रूपी कल्लोल उछलते हैं, करुणाजनक शब्द-विलाप और लोभकी कल-कल ध्वनि अतिशय सुनाई देती रहती है, अपमान के झाग उड़ रहे हैं, तीव्रनिन्दा अनेक रोगोंकी निरन्तर वेदना, पराभव तथा पतन, निष्ठुर-वचन, निर्भर्त्सना, आदि इन सबको उपजाने वाले कठोर-कर्मरूपी पत्थरों द्वारा जिसकी तरंगें चल

रही हैं, जिसमें सदैव मरण-भय रूपी पानी की तह पाई जाती है। चार कषाय रूपी पाताल-कलशोंसे व्याप्त, लाखों भवरूपी पानी के समूहका जहां अन्त नहीं है। जो अत्यन्त उद्वेगकारक है। जिसका सुगमता से पार नहीं पाया जा सकता। यह महाभय उपजाने वाला है, डरावना है, सार-परिणाम रहित है। जो महेच्छा और मलिन-बुद्धि रूप वायुके वेगसे उछलता है। आशा-पिशाच रूप समुद्र के तल में काम, राग, द्वेष, वध, वंधन आदि अनेक प्रकारकी चित्तकी चिन्ता इत्यादिरूप पानी के रजःकण उड़ते हैं। उन रजःकणोंसे अन्धेरा छाया रहता है, जहां मोहके आवर्तन और कामभोग मंडलाकार-भंवरजालकी तरह घूमते हैं, गहराईमें उतरते हैं, ऊपरकी ओर भी उछलते हैं, जिस समुद्र में ऊंचेसे आकर नीचे पड़ने वाले, या इधर-उधर दौड़ने वाले पाठीन (मच्छ या व्हेल मछली) जैसे पानी के जीवोंकी तरह गर्भवास में ऊंचे-नीचे पड़नेकी परम्परा रही हुई है। जहां कष्ट से पीड़ित मनुष्यों के करुणाक्रन्दनरूप प्रचण्ड वायुके द्वारा मलिन-संकल्परूपी तरंग चलते रहते हैं। जहां व्याकुल तरंगसे पिछड़कर दो भाग या कई भागोंमें वंटने वाले और अनिष्ट करने वाली वड़ी-वड़ी लहरोंसे व्याप्त पानी फैला है। प्रमादरूपी रौद्र और क्षुद्र हिंसक प्राणियों से उपद्रव पाकर उठने वाले मत्स्यरूप आदमियोंका समूह जिसमें आ रहा है। जिसमें मत्स्यरूपी-मनुष्य अतिरौद्र हैं। विनाशशील स्वभाव वाले हैं, वहुत से अनर्थ अपयशसे युक्त हैं, जिसमें अज्ञानके चक्रमें घूमने वाले और दक्ष-मत्स्य रहे हुए हैं, अनुपशान्त इन्द्रियों के वड़े मगरकी शीघ्रगामिनी चेष्टासे जो समुद्र क्षोभ पा रहा है, जिसमें सन्तापरूपी वड़वाग्नि (सामुद्रिक अग्नि) नित्यप्रति अति-चपल, चंचलरीतिसे सुलग रही है। अत्राण या अशरण मनुष्य अथवा जिन्हों के पूर्वकर्मके संचयसे पाप उदय आ गए हैं, उन्हें दुःखके विपाक रूप भंवर जिस समुद्रके जलमें घूम रहे हैं। ऋद्धि, रस और सातारूपी गारव, अशुभ अध्यवसायरूपी जलचर-जीव विशेष से पकड़े हुए तथा कर्म से बंधे हुए जीव उस समुद्रके नरकरूपी तलकी ओर खिंचकर वहे जा रहे हैं।

और उसमें वहुतसे बुरी तरह फंसे हैं। अरति-रति-भय-विषाद-शोक-मिथ्यात्वरूपी पर्वतोंसे तंग हो गया है। कर्मवन्धनरूपी उसकी अनादि-कालकी सन्तान है। कलह अर्थात् रागद्वेषरूपी कीचड़से भरा हुआ होनेके कारण दुस्तर है, देव-मनुष्य-तिर्यंच-नारक आदि चार-गतियोंसे जाना यह उसका चक्रवत् परिवर्त-भंवरजाल है, और विस्तीर्ण जलकी वेल या उठाव है। हिंसा-मृषा-अदत्त-अब्रह्म-परिग्रहका आरंभ करने-कराने और अनुमोदन करने में वंधे हुए आठ प्रकार के अशुभकर्मके समूह से अधिक भार हो जाने के कारण विषम-पानी का समूह प्राणियों को डुवोकर ऊंचा-नीचा पछाड़ता है। ऐसा दुर्लभ्य उस (संसार समुद्र) का तल है। शारीरिक और मानसिक दुःख पाते हुए शाता-अशाता

और परितापका उपजना ही ऊंचा उठना और नीचे पड़ना है। चार गतिरूप बड़ा सा और अनन्त-विस्तीर्ण संसाररूपी समुद्र है। जिसकी संयममें स्थिति नहीं है, उसे इस संसार समुद्रमें कोई अवलंबन सहारा नहीं है। वल्कि अप्रमेय (सर्वज्ञ के विना कोई और माप न लगा सके ऐसा) है, चौरासी लाख जीवयोनिकी उत्पत्ति का गहन स्थानक है, वहां अज्ञानका अन्धेरगुप तमस् है, अनन्तकाल नित्य त्रास भोगने और (सात) भय तथा (चार) संज्ञा से युक्त जीव संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

परधनहारोका पुनर्जन्म—उद्वेग वाले निवास-स्थानमें जहां जहां (जिस-जिस कुलमें) जीव आयुष्य बांधता (उत्पन्न होता) है, वहां-वहां उन पापकर्मी जीवोंको उनके भाई, वन्धु, स्वजन और मित्रगण छोड़ देते हैं, अप्रिय होने से उसका वचन कोई नहीं मानता, वे अविनीत होते हैं। रहने के लिए स्थान-आसन-शय्या-भोजन-आदि सब उनका खराब होता है। उनमें क्रोध-मान-माया-लोभ और मोह अधिक होता है। धर्म संज्ञा और सम्यक्त्वसे भ्रष्ट हो गये हैं। कंगाली के उपद्रव से पीड़ा ही पीड़ा भोगते रहते हैं। प्रतिदिन नित नई चाकरी द्वारा पेट भरते हैं। आजीविकाके साधनसे रहित रंक और पराये भोजनकी खोज करने वाले (भिखारी) होते हैं, वे बड़े ही दुःख से भोजन पा सकते हैं; अरस और विरस तथा भरपेट भोजन न मिलनेके कारण अपना पूरा पेट भी नहीं भर पाते, औरोंकी ऋद्धि-सत्कार-भोजन आदि वैभव को देखकर पिछले जन्ममें उन्होंने अपने निजके किए हुए तथा उदयमें आये हुए पाप-कर्मोंको तथा उनसे उत्पन्न दुःखोंकी निन्दा करते हैं; वे दीनता और शोक से दाझते-भुनते हुए वेमन दुःखों को भोगते हैं। वे सत्वरहित-निस्सहाय शिल्प-चित्र आदि कला-समयशास्त्र (धनुर्वेदादि विद्या) के ज्ञानसे शून्य होते हैं और जन्मजात—पशुके समान होते हैं। वे अप्रीतिकारी सदा घटिया काम करते आजीविका पाते हैं, लोगोंके द्वारा निन्दनीय वनते हैं और उनमें मोह, मनोरथ तथा अभिलाषा अधिक होती है। परन्तु वह सब निष्फल चली जाती है। आशाके पाशसे बंधे हुए प्राणी जगत्‌में मुख्य मानी जाने वाली धनप्राप्ति और कामभोगकी प्राप्तिके लिए पापड़ बेलकर वहुत-सा उद्यम करते हैं, परन्तु वे उसमें सफल नहीं होते। नित-नया उद्यम करने पर भी धान्यका थोड़ा सा भी संग्रह नहीं कर पाते। सदैव धनरहित, अस्थिर धन-धान्यके भण्डारके उपभोगसे रहित, कामभोग तथा समस्त सुखसे रहित एवं दूसरे की लक्ष्मी-भोगोपभोगके साधनका आश्रय खोजते फिरते हैं। वे वेचारे परवश इच्छा के विना दुःख भोगते हैं। सुख-चैन तथा निवृत्ति मयस्सर ही नहीं होती, आये दिन सैंकड़ों तरहके नये-नये कष्टोंका सामना करते हुए दुःखमें दाझा करते हैं।

पराये धनके हरण करनेसे जो पराङ्मुख नहीं हुए वे आदमी अदत्तादानका फलविपाक इस लोक और परलोकमें अल्पसुख और बहुदुःखके रूपमें भोगते रहते हैं। वह महाभयका कारण है, कर्मरूप मलको गहरे ढंगसे उत्पन्न करता है, वह रौद्र कठोर-अशाताका कारण है और हजारों वर्ष बीतने पर भी भोगे विना पिण्ड छुड़ाया न जा सके ऐसा पापकर्म है। उसके तो भोगे विना छुटकारा ही नहीं पा सकता।

श्रीसिद्धार्थराजाके पुत्र महात्मा, वीतराग, महावीर-स्वामी ने कहा है। इस प्रकार आस्रव द्वारका अदत्तादान विषयक तीसरा अध्ययन पूरा होता है ॥१२॥

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

चौथा अध्ययन--अब्रह्मचर्य

जम्बूस्वामीके प्रति सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! अब मैं आस्रव द्वारके चौथे अध्ययन अब्रह्मचर्यके विषयमें कहता हूं, सुनो। अब्रह्मचर्यका स्वरूप—यह अब्रह्मचर्य देव-मनुष्य और असुर सारे लोकमें प्रार्थनीय-अभिलषणीय है। बड़े भारी कीचड़के पथके समान है। पतले और चिकने कर्दममें फिसलनेके समान है, पाशरूप है, मछली पकड़नेके जालके सदृश है, स्त्री-पुरुष और नपुंसक का लक्ष्यरूप है, तप-संयम और ब्रह्मचर्य में विघ्नकारक है, चरित्रका मटियामेट करने वाला है, बड़े प्रमादका कारणभूत है, कायर और बुरे आदमी इसका सेवन करते हैं। अच्छे आदमियों के लिए वर्जनीय है। देवलोक, नरकलोक और मनुष्यलोक में इसका राज्य-स्थान है, जरा-मरण-रोग-शोकके बढ़ाने वाला है, वध-बन्धन और विघात होते हुए भी इसकी लालसा नहीं मिटती। दर्शन-(सम्यक्त्व)मोहनीय और चरित्रमोहनीयका कारणरूप है, चिरकाल से परिचित है, परम्परासे चला आ रहा है, और दुःखके द्वारा इसका अन्त पाया जा सकता है ॥१३॥

अब्रह्मचर्यके नाम—अब्रह्मचर्यके गुणसम्पन्न ३० नाम कहे गये हैं। १ अब्रह्मचर्य, २ मैथुन, ३ चरन्त-विश्वव्यापी, ४ संसर्गी-स्त्री-पुरुषके संसर्गसे उत्पन्न, ५ सेवनाधिकार–अकार्यसेवन, ६ संकल्प-विकल्पका हेतु, ७ बाधा-पीड़ाका कारण, ८ दर्पकारी (गर्व को उत्पन्न करने वाला), ९ मोह अज्ञानका निमित्त, १० मनमें संक्षोभ उत्पन्न करने वाला, ११ अनिग्रह-इन्द्रियोंको स्वच्छन्द-निरंकुश बनाने वाला, १२ क्लेशका हेतु, १३ गुण-घातकताका हेतु, १४ गुणको विराधनाका निमित्त, १५ विभ्रमका हेतु, १६ अधर्म आचरणका हेतु, १७ शीलका विनाशक,

१८ कामगुण अर्थात् शब्दादि विषयोंको खोजने वाला, १९ कामसेवा, २० स्नेह और चिन्ताका हेतु, २१ कामभोगोंमें मरणान्त तक आसक्त रहकर अनेक मरण निपजाने वाला, २२ वैरविरोधका हेतु, २३ गुप्त-कर्तव्य, २४ छुपाने योग्य, २५ वहुतोंके मन लगने वाला, २६ ब्रह्मचर्यका घातक, २७ गुणका घातक, २८ चरित्रकी विराधना करने वाला, २९ कामासक्ति, ३० कन्दर्प का गुण-कार्यरूप ॥१४॥

अब्रह्मचर्यका सेवन करने वाले—अब्रह्मचर्यका सेवन कौन करते हैं ? उसका विवरण इस प्रकार है—वैमानिक देव देवांगनाओं के साथ मोहमुग्ध बुद्धिसे उनका सेवन करते हैं। भुवनपति देव-असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार आदि भी इसका सेवन करते हैं। वाणव्यन्तर-आणपण्णीसे गन्धर्व तक १६, तिच्छें लोकमें रहने वाले देव भी इसका सेवन करते हैं। ज्योतिषी-वैमानिक-मनुष्यगण-जलचर-स्थलचर-नभचर आदि भी मोहसे आसक्त चित्त हो जाते हैं, वे विषयतृष्णा सहित हैं, कामभोगके प्यासे हैं, वलवती और महती तृष्णासे पीड़ित होते हैं, विषयमें गुंथ जाते हैं, अतिमूर्च्छित हो जाते हैं, अब्रह्मचर्य-कामवासनामें फंसे हुए हैं, अज्ञानभावसे युक्त हैं, दर्शन और चरित्रमोहनीय-रूप पिंजरेमें बन्द हैं।

अब्रह्मचारी—चक्रवर्ती—अब्रह्मचर्य सेवन करने वालोंके सम्वन्धमें कुछ विस्तारके साथ इस प्रकार वर्णित है—वे अन्यान्य कामभोगका सेवन करते हैं। भुवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवता, तिर्यंच और मनुष्य काम-भोगोंमें आसक्तिसे चित्र-विचित्र क्रीड़ा करते हैं। देव तथा राजाओंके पूजनीय चक्रवर्ती भी अब्रह्मचर्यका सेवन करते हैं।

(चक्रवर्ती की ऋद्धिका कुछ वर्णन—) जैसे देव देवलोकमें विराजमान हैं, वैसे ही चक्रवर्ती भरतक्षेत्र आदि १५ कर्मभूमिमें विराजमान हैं। भरतक्षेत्र आदि में पर्वत-नगर-वणिकवास (मण्डी)—जनपद (देश)-पुर-जल-स्थलपथ-मिट्टी के कोट वाले गांव, ढाणियां, मण्डप (दूर-दूर मिलने वाले गांव), संवाह (धान्यादिके संग्रह करने के लिए पक्का किला), पत्तन आदि हजारों स्थान हैं। परचक्र के भय से रहित पृथ्वी को एक छत्रसे सागर-सीमा सहित उपभोग करने वाला चक्रवर्ती नगरमें सिंहके समान, मनुष्योंमें इन्द्रोपम, नरवृषभ-मारवाड़ी धोरी बैल सा (भार-निर्वाहक) समर्थ, अतिशय राजतेज और लक्ष्मीसे देदीप्यमान, (चांद सा) सौम्य और राजवंशमें तिलकके समान है। उसके देहपिण्ड पर विविध प्रकारके मंगलचिन्ह-लक्षण होते हैं, जैसे कि १ सूर्य, २ चन्द्र, ३ शंख, ४ उत्तम चक्र, ५ साथिया, ६ ध्वज, ७ जौ, ८ मछली, ९ कछुवा, १० रथ, ११ भग, १२ भवन,

१३ विमान, १४ घोड़ा, १५ तोरण, १६ गोपुर-त्रिपोलिया, १७ मणि (चन्द्र-कान्तादि), १८ रत्न, १६ नन्द्यावर्त—नौ कोने का स्वस्तिक, २० मूशल, २१ हल, २२ सुन्दर कल्पवृक्ष, २३ मृगपति-सिंह, २४ भद्रासन, २५ सुरुचि (एक प्रकार का आभरण), २६ स्तूप, २७ सुन्दर मुकुट, २८ मुक्तावलि, २६ कुण्डल, ३० हाथी, ३१ बैल, ३२द्वीप-टापू, ३३मेरुपर्वत, ३४ गरुड़, ३५पर्ण-ध्वजविशेष, ३६ इन्द्रस्तम्भ, ३७ दर्पण, ३८ अष्टापद-जुआ खेलनेका थाल, ३६ धनुष, ४० बाण, ४१ नक्षत्र, ४२ मेघ, ४३ स्त्रीकी कटिमेखला, ४४ वीणा, ४५ धोंसर-जुआ, ४६ छत्र, ४७ माला, ४८ दामनी, ४६ कमण्डलु, ५० कमल, ५१ घण्टा, ५२ सुन्दर वाहन, ५३ सोस, ५४ समुद्र, ५५ कुमुदवन, ५६ मगर, ५७ हार, ५८ घघरा, ५६ झांझर, ६० पर्वत, ६१ नगर, ६२ वज्र, ६३ किन्नर, ६४ मोर, ६५ राजहंस, ६६ सारस, ६७ चकोर, ६८ चकवेका जोड़ा, ६६ चंवर, ७० खेटक (एक प्रकार का आयुध), ७१ सितार, ७२ सुन्दर पंखा, ७३ लक्ष्मीका अभिषेक, ७४ पृथ्वी, ७५ खड्ग, ७६ अंकुश, ७७ निर्मल कलश, ७८ भृङ्गार (एक प्रकार का वर्तन), ७६ दीपकका सम्पुट, इत्यादि अलग-अलग प्रकारके अच्छे-अच्छे पुरुष लक्षणोंको धारण करने वाले ये चक्रवर्ती होते हैं।

३२००० राजा उसके पीछे चलते हैं। रत्नस्त्री-सुन्दर युवती रानी उसे नयनाभिराम है, वह उसकी आंखोंको ठंडा करती है, उस रत्नस्त्री की कांति लाल वर्ण है। कमलके गर्भके समान उसका भौतिक देह गोरा है। कोरण्टके फूलोंकी माला उसने कण्ठमें धारण की है। चम्पा के फूल और कसौटीके पत्थर पर तपे हुए सोनेकी रेखाके समान उसके शरीरका वर्ण है। सारे ही अवयव सुगठित होनेसे उसके अंग सुन्दर हैं। यह चक्रवर्ती महंगे मोल और बड़े नगरमें उत्पन्न होने वाले राग-रंगका उपभोग करता है। यह सूतके बने कपड़े पहनता है। चीन देशके बने हुऐ पटकूल भी बरतता है। कमरमें कटि-सूत्र पहनकर अंगको भीनी-भीनी सुगन्ध या कस्तूरी आदिके चूर्ण से महकाया जाता है। माथे पर खिले हुए सुन्दर सुगन्धित फूलोंका शृंगार किया जाता है। निपुण कारीगरों द्वारा बनाये हुए अलंकार जैसे कि सुखदायिनी माला, कंकण, भुजबंध—बेरखा आदि शरीर पर धारण किए रहता है। गलेमें एकावलि-हार पहनाकर उसके उर:स्थलकी शोभाको बढ़ाया जाता है। दोनों ओर लटकते हुए उत्तरीय वस्त्रको भली प्रकार धारण किया है। सोने की पीले रंग वाली अनूठी अंगूठी अंगुलीकी छटा बढ़ाती है। इस प्रकार उजले वेश की रचना द्वारा विराजमान, तेजमें सूर्यके समान देदीप्यमान दिखता है। शरदके नये मेघकी भांति मीठा, गंभीर और स्निग्ध शब्दों का व्यवहार करता है। समस्त रत्न, चक्र-रत्न आदि १४ रत्नोंका वह स्वामी होता है। नौ निधान का धनी है। उसके धनके भण्डार ऊपर तक लबालब भरे रहते हैं। जिसने चारों दिशाओंका

अन्त-विभाग कर दिया है, वह (चक्रवर्ती) जहां जाता है, वहां चार प्रकारकी सेना (हाथी-घोड़े-रथ और पैदल) उसके पीछे चलती है। अश्वपति-गजपति-रथपति-नर(सेना)पति, आदि के द्वारा उनका लश्कर पुष्कल रहता है। शरदृतु के पूरे चांदके समान उसका सौम्य वदन-मुख होता है, वह शूर-वीर-विक्रान्त होता है। तीनों लोकमें उसका प्रभाव व्याप्त होता है, सर्व साधारण जनता में वह सुविख्यात होता है, समस्त भारतवर्ष का अधिपति-नरेंद्र कहा जाता है, पर्वत-वन-कानन और चुल्लहिमवान् से लगाकर सागरके अन्त तक भरतक्षेत्रका उपभोग करते हुए जिसने समस्त शत्रुओं पर विजय पाई है। राजाओंमें वह सिंहके समान माना जाता है। चक्रवर्ती पहले जन्मान्तरमें किये हुए तपके प्रभावसे संचित किया हुआ सुख, लंवे आयुष्य तक अनेक सुभोग्य-न्यायोचित सुखका भोग करते हुए, सम्पूर्ण देशके उत्तम-आदमियोंके ऊपर अधिकार चलाते हुए, अनुपम शब्द-रूप-रस-स्पर्श और गन्धका उपभोग करते हुए भी वे कामभोगमें अतृप्त रहकर मर जाते हैं।

अब्रह्मचारी वलदेव-वासुदेव—वलदेव और वासुदेव भी मृत्युको प्राप्त होते हैं। वे भी अमर नहीं। कोई पूछेगा कि वे कैसे होते हैं? असलमें वे प्रवर-पुरुष होते हैं, वहुत वड़े धनुष में टंकार शब्द उत्पन्न करते हैं, वहुत वड़े साहस के सागर समझे जाते हैं, प्रतिस्पर्धी उन्हें जीत नहीं सकता, वे धनुर्धर कहलाते हैं, पुरुषों में वृषभ जैसे हैं, ये राम (वलदेव) और केशव (वासुदेव) ये दोनों भाई परिवार सहित शोभास्पद हैं। वासुदेव, समुद्रविजय आदि दश दशार्ह के हृदयके वल्लभ-प्यारे हैं। प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, साम्वकुमार, अनिरुद्धकुमार, नैषध-कुमार, उशुककुमार, सारणकुमार, गजकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुखकुमार आदि यादवोंके अनेकानेक कुमारोंके हृदयके प्रेयस् हैं। तथा देवी-रोहिणी (वलदेवकी माता) और देवी देवकी (कृष्णकी माता) के मनमें आनन्दका भाव उत्पन्न करते हैं। सोलह हजार प्रधान राजा उनके पीछे-पीछे घूमते फिरते हैं। रुक्मिणी और सत्यभामा आदि देवियों के आंखों और हृदय के प्रिय हैं। नाना प्रकारके मणि-सुवर्ण-रत्न-मोती-प्रवाल-धन-धान्य आदि असंख्य ऋद्धिके संग्रहसे उनके कोषा-गार भरे पड़े हैं। हजारों घोड़े, हाथी, रथके स्वामी हैं। हजारों गांव, आगर, नगर, ढानी, मण्डप, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह आदि क्षेत्रोंमें भयवर्जित होकर सुख-समाधि और आनन्द भोगते हुए अनेक जातिके लोगोंसे भरी हुई पृथ्वी, सरोवर, नदी, तालाव, पर्वत, कानन, आराम, (वगीचा) उद्यानसे नेत्रोंको सुख मिलता है, वे आधे भरतक्षेत्रके स्वामी होते हैं। दक्खनके आधे भरतको वैताढ्य गिरि ने वांट दिया है, और वह लवण समुद्रसे चारों ओरसे घिरा हुआ है तथा छ प्रकार की ऋतुओंके गुणकर्मसे वह युक्त है। ऐसे आधे भरतके स्वामी, धैर्यवान्

कीर्तिमान् पुरुष हैं। अच्छिन्न-बलशाली हैं। अत्यन्त बलवान् हैं। किसीके द्वारा प्रतिघात नहीं पा सकते, अतः अपराजित हैं, शत्रुओंका मर्दन करने वाले हैं। हजारों वैरियों के मानका मंथन क्षणभर में कर डालते हैं।

अनुकम्पा युक्त हैं, मत्सर रहित हैं, चपलता रहित हैं, अचण्ड-रौद्रतासे मुक्त हैं, मृदु-मंजुल स्वरमें वोलते हैं, हंसमुख हैं, गंभीर मधुर वचनका उच्चारण करते हैं, जो भी उनसे मुलाकात करने आता है, उन सबके प्रति वात्सल्यभाव रखते हैं, अपनी शरणमें आए हुए को निभाते हैं, सामुद्रिकलक्षण व्यंजन आदि गुणोंसे समृद्ध हैं, मानोन्मान-प्रमाण अर्थात् १०८ अंगुल प्रमाणसे परिपूर्ण, सर्वावयवोंसे सुन्दर उनका देहपिण्ड है, चान्दकी भान्ति सौम्य आकार है, कमनीय-मनोहर हैं, प्रियंकर दर्शन है, सब प्रकारके कार्योंके करनेमें आलस रहित उद्यमशील हैं, दु:साध्यको भी साध लेते हैं, अपनी आज्ञानुसार सेनादिका प्रवर्तन करते हैं, गम्भीर दर्शन है, ताल वृक्षके चिन्हसे अंकित ध्वजा (वलदेवकी) और गरुड़पक्षीके चिन्हसे अंकित ध्वजा (वासुदेवकी) लहराने वाले हैं, वे अत्यन्त बलवान होते हैं, (हम सा और कौन है ? ऐसी) गर्जना करने वाले हैं, अतिदर्प-अभिमान रखते हैं, (वलदेव) मौष्टिकमल्लको चूर करने वाले हैं, चाणूरमल्लका मर्दन करने वाले (वासुदेव) हैं, रिष्ट-वृपभासुरके घातक हैं, केसरीसिंह (या कंसके दुष्ट घोड़ेका) मुंह चीरने वाले हैं, अतिदर्पवान् नाग (जमना नदीमें रहने वाले कालीय नाग) के दर्पको मथने वाले हैं, यमल और अर्जुन नामके वृक्षोंको उखाड़ने वाले हैं, महाशकुनि और पूतना विद्याधरीके शत्रु हैं, कंसके मुकुटको मरोड़ने वाले (मारने वाले) हैं। जरासन्धके मानका ध्वंस किया है, वहुतसी शलाकाओंसे युक्त हैं, अविरल-समान शलाकाओंसे मण्डित हैं, वे सब वातोंमें अद्वितीय माने जाते हैं।

उनकी कान्ति चन्द्रमण्डल जैसी है, सूर्यकी किरण कवचसे विस्तार पाए हुए तेजके द्वारा जाज्वल्यमान अनेक दण्डों वाले छत्रसे विराजित हैं। तथा वड़े-वड़े पहाड़ोंकी गुफाओंमें फिरने वाली नीरोगी गउओंकी पूंछसे निपजने वाले निर्मल सफेद रंगके खिले हुए कमल जैसे चंवरोंसे सुशोभित हैं। (इन चंवरोंका विशिष्ट वर्णन–) ये चंवर रजतगिरि (चांदीके पर्वत) के शिखर के समान विमल हैं। चन्द्रमाकी किरण से उजले हैं, स्वच्छ चान्दीसे निर्मल हैं, पवनसे हिलते हुए चंचल पानीमें नाचती हुई लहरोंसे क्षीरोदक सागरमें जो कल्लोल फैल रही हैं, उनके समान चंचल चंवर हिल रहे हैं, मानसरोवर के विस्तारमें रहने वाली, निर्मल वेश तथा आकार वाली और सुनहरी-पर्वतके शिखरके ऊपर बैठी हुई हंसी चपल-शीघ्र गतिसे ऊपर-नीचे उड़कर शोभा देने वाली जैसी आभा के समान चंवर है, नाना प्रकारके मणिरत्न-मूल्यवान् और तपे हुए सोनेसे वने हुए विचित्र दण्डके द्वारा ये चंवर और भी अच्छे लगते हैं, इस प्रकार चंवर राजाकी

लक्ष्मीके समुदायको प्रकाशित कर रहे हैं। वड़े नगरमें निपजने वाले एवं समृद्ध-राजाओं द्वारा सेवित काला अगर और शिलारस आदि चारु-सुगन्धि द्रव्य जैसे दस प्रकार के धूपसे उनके निवास-स्थान महक उठे हैं। उनके दोनों ओर चंवरोंके सुखकारी ठंडी हवासे उनके अंग झल रहे हैं, वे अजित हैं, उनके रथ भी अजेय हैं, हाथमें हल-मुशल-बाण (आयुध) धारण करने वाले बलदेव हैं। (पांचजन्य) शंख, (सुदर्शन) चक्र, (कौमुदी) गदा, त्रिशूल, नंदनक खड्ग को वासुदेव धारण करते हैं, सुन्दर, उज्ज्वल, उत्तम, विमल, कौस्तुभमणि-गलेमें पहनते हैं, मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं, कुण्डलोंसे उनका वदन शोभायमान है, सफेद कमल से उनके नेत्र हैं, गलेमें एकावलि-हार पहननेसे उनकी छाती चमक उठती है, श्रीवत्सरूपी स्वस्तिक उनका चिन्ह है, उनके यशका बखान कौन कर सकता है, सारे ऋतुओंके सुगन्धित फूलोंसे रचित, अच्छी लगने वाली, खिली हुई विचित्र प्रकार की वनमालासे उनका वक्ष:स्थल जगमगा उठता है, अलग-अलग तरहके १०८ प्रशस्त-सुन्दर लक्षणोंसे दमकने वाले उनके अंगोपांग मनोहर लगते हैं, मस्त ऐरावत हाथी की लीलायुक्त गतिसे अधिक उनकी विलसितगति है,कटिसूत्रके साथ नीले (बलदेव) और पीले (वासुदेव)कपड़े पहनते हैं, और अद्वितीय तेजसे चमकते हैं, शरदृऋतुके नये मेघकी गर्जना जैसा मीठा-गंभीर-स्निग्ध उनका शब्द है, नरोंमें सिंहके समान उनका बल और सिंहके सदृश ही चलते हैं, अन्तमें वे भी अस्त हो गये। वड़े राजाओंमें सिंहके समान सौम्य, द्वारावती नगरीके पूर्णचन्द्र (आनन्द-कारक), पूर्वकृत तपके प्रभावसे इकट्ठे किये गये अनेक शतवर्षके आयुष्य तक नाना भोग भोगते हुए, सकल देशमें प्रधान सुखको विलसते हुए, अनुपम शब्द-स्पर्श-रस रूप-गंधका उपभोग करते हुए भी वे वासनामें अतृप्त रहकर मरण-धर्मको प्राप्त होते हैं।

अब्रह्मचारी राजा–इसके अतिरिक्त कुछ माण्डलिक राजा बड़ी बड़ी सेनाओं के अधिपति हो गये हैं, अन्त:पुरमें उनका बड़ा परिवार होता है,उनके पुरोहित भी होते हैं, उनके अमात्य, दण्डनायक, सेनापति मन्त्रणामें नीतिकुशल होते हैं, नाना प्रकारके मणिरत्न बहुतसे धन-धान्यके संचयसे उनके पुष्कल भण्डार भरपूर हैं, वे विपुल राज्य-लक्ष्मीका उपभोग करते हुए अहंकारसे चीखते चिल्लाते हुए अपने बलके मदमें मस्त होकर कामभोगकी अतृप्ति में ही मर जाते हैं।

अब्रह्मचारी जुगलिए—पुन: उत्तरकुरु-देवकुरुके वनविवरोंमें जो अपने पैरोंसे चलने वाला मनुष्य समूह है, वे भोगोंमें उत्तम भोग्य पदार्थ भोगने वाले हैं, भोगके लक्षण-भोगकी रेखाओंको धारण करने वाले हैं, भोगोंसे शोभित हैं, प्रशस्त-सौम्य-प्रतिपूर्ण रूपके द्वारा दर्शनीय लगते हैं। सुघटित अवयवों द्वारा सुन्दर अंग हैं,लाल कमलदलसे मनोमोहक उनके हाथ पैरोंके तल हैं,अच्छे आकारके कछुवे जैसे उनके

सुन्दर पैर हैं, अनुक्रमसे चढ़-उतर-सुसंहत उनकी अंगुलियां हैं, ऊंचे पतले-लाल और स्निग्ध (चिकने) उनके नाखून हैं, सुघटित-सुश्लिष्ट और मांसल उनके पैर की एड़ियां हैं। हिरनीकी जांघ पर जैसे कुरविंदके घासके तिनके के समान आवर्तक पड़े हों ऐसे ढंगकी (अनुक्रमशः)मोटी मोटी उनकी जंघाएं हैं। डब्बेके ढकनेकी तरहके स्वाभाविक मांसल घुटने हैं, उत्तम मस्त हाथी जैसी उनकी विलास-युक्त घूमने की गति है, सुन्दर घोड़े जैसा उनका गुप्तांग है, जातिमान् घोड़के समान उनका मलरहित देहपिण्ड है और उन्हींके समान प्रसन्न-हर्षवान् रहते हैं। उत्तम घोड़े और सिंहसे भी अधिक वर्तुलाकार उनकी कटि-कमर है, गंगाके आवर्तन-भंवर की भांति, दक्षिणावर्तकी तरंगभंगकी तरह, सूर्यकी किरणसे जगकर खिलने वाले कमलके सदृश गम्भीर तथा विकट उनकी नाभि है। सिमटकर इकट्ठी बंधी हुई तगड़ी-तीन लड़ी वाली मुशल तथा आदर्शसी निर्मल-सुन्दर खालिस सोने की बनी हुई, तलवारकी मूठ जैसी, और वज्र सा पतला उनके शरीर का मध्यभाग है। सरल-सुप्रमाणयुक्त अविरल-स्वाभाविक, सूक्ष्म, श्याम, स्निग्ध, तेजवन्त, शोभा-युक्त, मनोहर, सुकुमार और सुकोमल उनकी रोमराजी है। मत्स्य और पक्षीकी सदृश मांसल कुक्षि-जठरदेश है, मछलीका अनुकरण करने वाला उनका पेट है। प्रगटकमलके समान नाभि है, नीचेकी ओर झुकते समय-संगत-अन्तर रहित-सुन्दर निर्माणगुणयुक्त-सुप्रमाण सहित मांसल-रमणीय-पांसु हैं, मांसल पीठ होनेसे उनकी पीठकी हड्डी बाहर नहीं दिखती, सुवर्णके समान उनकी कान्ति है, निर्मल प्रशं-सायोग्य रोगरहित, उनका शरीराकार है। सोनेकी शिलाके तलके समान प्रशस्त-विषम-समांसल-विस्तीर्ण और चौड़ी छाती है, जुए के समान, मांसल, रमणाय और वितानमें वड़े, हाथके पहोंचे हैं। सुसंस्थित, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, मनोज्ञ, सुनिचित, शुभ पुद्गलयुक्त, विशाल, दृढ़ और सुवद्ध-अस्थिकी सन्धियां हैं, वड़े नगरके भोगलके समान वर्तुलाकार-सी उनकी भुजायें हैं। नागराजका वड़ा शरीर अपने स्थानसे वाहर निकलनेके समान रमणीय और गोल अर्गला जैसी दीर्घ उनकी बाहु हैं। लाल हथेली वाले मृदु, मांसल, शुभलक्षणयुक्त उनके हाथ हैं; पुष्ट, सुन्दर और नर्म उंगलियां हैं, लाल, पतले, पवित्र, अच्छे, रुचिर सुन्दर, स्निग्ध, अंगुलियोंके नख हैं, हाथमें चन्द्रमा, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, साथिया, जैसी रेखाएं पड़ी हुई हैं। सूर्य-चन्द्र शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, साथिया, आदि युक्त अलग-अलग अतिसुन्दर, हाथ की रेखाएं हैं। भैंसा, सूअर, वराह, सिंह, वैल, शार्दूल, हाथीके समान फैले हुए से उनके कंधे हैं। शंखकी भांति चार अंगुल प्रमाण वाली उनकी गर्दन है। यथावस्थित शोभायुक्त मूंछें हैं, मांसल, प्रशंसनीय प्रशस्त-सिंह जैसी विस्तीर्ण ठोडी है; कमाये हुए शिला-प्रवाल तथा पके हुए विंब-फल जैसे लाल-लाल नीचेके होठ हैं। सफेद चन्द्रमाके टुकड़े जैसी उजली, निर्मल शंख जैसी,

गायका दूध, समुद्रफेन, कुन्दके फूल, पानीकी बूंद जैसी, कमल फूलके समान उज्ज्वल और सफेद उनकी दांतोंकी पंक्ति है। आगमें तपे हुए निर्मल गर्म सोने की तरह लाल-लाल उनका हलक और जीभ है। गरुड़की चोंच-सी लंबी सरल और ऊंची उनकी नाक है। खिले हुए पुण्डरीक कमलकी तरह उनके नेत्र हैं, खिली हुई सफेद भांपण सहित उनकी आंखें हैं, कुछ झुके हुए धनुषके समान, लम्बी और सुन्दर भवें हैं। कानोंका आकार सौम्य और सुन्दर है, श्रवणपुट सुन्दर हैं। गालका प्रदेश पुष्ट और मांसल है, तुरतके उदीयमान बालचन्द्र के आकार वाला उनका विशाल ललाट है, चांदके समान परिपूर्ण सौम्य वदन है। छत्रके आकार वाला उनका मस्तक है, लोहेके घणके समान, दृढ़सुबद्ध स्नायुओंसे युक्त, उन्नत-शिखर सहित, घरके समान वर्तुलाकार उनका मस्तक है। आगमें तपाये हुये निर्मल सुवर्णकी भांति लाल केशका अन्तभाग तथा मस्तककी चमड़ी है; शालमली वृक्षके अत्यन्त पुष्ट-कठिन और चीरे हुए फलकी भांति मधुर, मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणवान, सुगन्धियुक्त, सुन्दर, भुजमोचक रत्नके सदृश (काले), भौंरेके रग जैसे, नील-मणि रत्नसे चिकने, समूहरूप, न बिखरकर सिमटे हुए, टेढ़े-झुके हुए, बल खाये हुए, प्रदक्षिणावर्त लम्बे लटके हुए, उनके मस्तकके केश हैं। सुनिष्पन्न, सुविभक्त और एक दूसरेके साथ सुसंगत, उनके अंग लक्षण और व्यंजन गुणोंसे युक्त हैं। प्रशस्त-अच्छे से अच्छे वत्तीस लक्षण धारण किये हुए हैं। हंस, क्रौंचपक्षी, दुन्दुभि, सिंह और मेघ जैसा या मनुष्योंके समूहके स्वर जैसा उनका कण्ठ-स्वर है। उनकी ध्वनि सुस्वरयुक्त है, वज्रऋषभनाराच संहनन (उनके शरीरकी बनावट) के धारक हैं। समचतुरस्र संस्थानसे संस्थित हैं; उनके अंगोपांग कान्तिमान, उद्योतवन्त या चमकदार हैं। उनके शरीरकी चमड़ी रोगरहित है, कंकपक्षी जैसी (निर्लेप) गुदा है। कबूतर की तरह उन्हें आहार पचता है (कबूतरको कंकरियां भी पच जाती हैं)। शकुनी पक्षीके समान उनकी गुदाके पसवाड़े–चारों ओरके विभाग हैं, जो मल विसर्जन करते समय निर्लेप रहते हैं। पद्मकमल और नीलकमल सा उनके सांस का गन्ध है। मुख सुगन्धित है, उनके शरीर के वायुका वेग मनोहर है। गोरा रंग, सतेज और श्याम उनके शरीरके अनुरूप कुक्षिप्रदेश-उदर प्रदेश है। अमृतरससे भरे फलका आहार करते हैं। उनके शरीरकी ऊंचाई तत्समयोचित है। तीन पल्योपम तक उनकी स्थिति रहती है; उनका उत्कृष्ट आयु है। इस प्रकारके युगलिये भी कामभोगमें अतृप्त रहकर कालके गालमें जाकर मरणधर्मको प्राप्त होते हैं।

युगलिनी स्त्रीका वर्णन—उनकी स्त्रियां (युगलिनी) भी सौम्याकृति वाली और सुनिष्पन्न सर्वांग सुन्दर होती हैं; प्रधान स्त्रियोंके गुणोंसे युक्त

सुन्दर पैर हैं, अनुक्रमसे चढ़-उतर-सुसंहत उनकी अंगुलियां हैं, ऊंचे पतले-लाल और स्निग्ध (चिकने) उनके नाखून है, सुघटित-सुश्लिष्ट और मांसल उनके पैर की एड़िया हैं। हिरनीकी जांघ पर जैसे कुरविंदके घासके तिनके के समान आवर्तक पड़े हों ऐसे ढंगकी (अनुक्रमशः)मोटी मोटी उनकी जंघाएं हैं। डव्वेके ढकनेकी तरहके स्वाभाविक मांसल घुटने हैं, उत्तम मस्त हाथी जैसी उनकी विलास-युक्त घूमने की गति है, सुन्दर घोड़े जैसा उनका गुप्तांग है, जातिमान् घोड़ेके समान उनका मलरहित देहपिण्ड है और उन्हींके समान प्रसन्न-हर्षवान् रहते हैं। उत्तम घोड़े और सिंहसे भी अधिक वर्तुलाकार उनकी कटि-कमर है, गंगाके आवर्तन-भंवर की भांति, दक्षिणावर्तकी तरंगभंगकी तरह, सूर्यकी किरणसे जगकर खिलने वाले कमलके सदृश गम्भीर तथा विकट उनकी नाभि है। सिमटकर इकट्ठी वंधी हुई तगड़ी-तीन लड़ी वाली मुशल तथा आदर्शसी निर्मल-सुन्दर खालिस सोने की वनी हुई, तलवारकी मूठ जैसी, और वज्र सा पतला उनके शरीर का मध्यभाग है। सरल-सुप्रमाणयुक्त अविरल-स्वाभाविक, सूक्ष्म, श्याम, स्निग्ध, तेजवन्त, शोभा-युक्त, मनोहर, सुकुमार और सुकोमल उनकी रोमराजी है। मत्स्य और पक्षीकी सदृश मांसल कुक्षि-जठरदेश है, मछलीका अनुकरण करने वाला उनका पेट है। प्रगटकमलके समान नाभि है, नीचेकी ओर झुकते समय-संगत-अन्तर रहित-सुन्दर निर्माणगुणयुक्त-सुप्रमाण सहित मांसल-रमणीय-पांसु हैं,मांसल पीठ होनेसे उनकी पीठकी हड्डी वाहर नहीं दिखती, सुवर्णके समान उनकी कान्ति है, निर्मल प्रशं-सायोग्य रोगरहित, उनका शरीराकार है। सोनेकी शिलाके तलके समान प्रशस्त-विषम-समांसल-विस्तीर्ण और चौड़ी छाती है, जुए के समान, मांसल, रमणाय और वितानमें वड़े, हाथके पहोंचे हैं। सुसंस्थित, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, मनोज्ञ, सुनिचित, शुभ पुद्गलयुक्त, विशाल, दृढ़ और सुवद्ध-अस्थिकी सन्धियां हैं, वड़े नगरके भोगलके समान वर्तुलाकार-सी उनकी भुजायें हैं। नागराजका वड़ा शरीर अपने स्थानसे वाहर निकलनेके समान रमणीय और गोल अर्गला जैसी दीर्घ उनकी वाहु हैं। लाल हथेली वाले मृदु, मांसल, शुभलक्षणयुक्त उनके हाथ हैं; पुष्ट, सुन्दर और नर्म उंगलियां हैं, लाल, पतले, पवित्र, अच्छे, रुचिर सुन्दर, स्निग्ध, अंगुलियोंके नख हैं, हाथमें चन्द्रमा, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, साथिया, जैसी रेखाएं पड़ी हुई हैं। सूर्य-चन्द्र शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, साथिया, आदि युक्त अलग-अलग अतिसुन्दर, हाथ की रेखाएं हैं। भैंसा, सूअर, वराह, सिंह, वैल, शार्दूल, हाथीके समान फैले हुए से उनके कंधे हैं। शंखकी भांति चार अंगुल प्रमाण वाली उनकी गर्दन है। यथावस्थित शोभायुक्त मूंछें हैं, मांसल, प्रशंसनीय प्रशस्त-सिंह जैसी विस्तीर्ण ठोडी है; कमाये हुए शिला-प्रवाल तथा पके हुए विंव-फल जैसे लाल-लाल नीचेके होठ हैं। सफेद चन्द्रमाके टुकड़े जैसी उजली, निर्मल शंख जैसी,

गायका दूध, समुद्रफेन, कुन्दके फूल, पानीकी वूंद जैसी, कमल फूलके समान उज्ज्वल और सफेद उनकी दांतोंकी पंक्ति है। आगमें तपे हुए निर्मल गर्म सोने की तरह लाल-लाल उनका हलक और जीभ है। गरुड़की चोंच-सी लंबी सरल और ऊंची उनकी नाक है। खिले हुए पुण्डरीक कमलकी तरह उनके नेत्र हैं, खिली हुई सफेद भांपण सहित उनकी आंखें हैं, कुछ झुके हुए धनुषके समान, लम्बी और सुन्दर भवें हैं। कानोंका आकार सौम्य और सुन्दर है, श्रवणपुट सुन्दर हैं। गालका प्रदेश पुष्ट और मांसल है, तुरतके उदीयमान वालचन्द्र के आकार वाला उनका विशाल ललाट है, चांदके समान परिपूर्ण सौम्य वदन है। छत्रके आकार वाला उनका मस्तक है, लोहेके घणके समान, दृढ़सुवद्ध स्नायुओंसे युक्त, उन्नत-शिखर सहित, घरके समान वर्तुलाकार उनका मस्तक है। आगमें तपाये हुये निर्मल सुवर्णकी भांति लाल केशका अन्तभाग तथा मस्तककी चमड़ी है; शाल्मली वृक्षके अत्यन्त पुष्ट-कठिन और चीरे हुए फलकी भांति मधुर, मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणवान, सुगन्धियुक्त, सुन्दर, भुजमोचक रत्नके सदृश (काले), भौरेके रग जैसे, नील-मणि रत्नसे चिकने, समूहरूप, न विखरकर सिमटे हुए, टेढ़े-झुके हुए, वल खाये हुए, प्रदक्षिणावर्त लम्वे लटके हुए, उनके मस्तकके केश हैं। सुनिष्पन्न, सुविभक्त और एक दूसरेके साथ सुसंगत, उनके अंग लक्षण और व्यंजन गुणोंसे युक्त हैं। प्रशस्त-अच्छे से अच्छे वत्तीस लक्षण धारण किये हुए हैं। हंस, क्रौंचपक्षी, दुन्दुभि, सिंह और मेघ जैसा या मनुष्योंके समूहके स्वर जैसा उनका कण्ठ-स्वर है। उनकी ध्वनि सुस्वरयुक्त है, वज्रऋषभनाराच संहनन (उनके शरीरकी वनावट) के धारक हैं। समचतुरस्र संस्थानसे संस्थित हैं; उनके अंगोपांग कान्तिमान, उद्योतवन्त या चमकदार हैं। उनके शरीरकी चमड़ी रोगरहित है, कंकपक्षी जैसी (निर्लेप) गुदा है। कवूतर की तरह उन्हें आहार पचता है (कवूतरको कंकरियां भी पच जाती हैं)। शकुनी पक्षीके समान उनकी गुदाके पसवाड़े—चारों ओरके विभाग हैं, जो मल विसर्जन करते समय निर्लेप रहते हैं। पद्मकमल और नीलकमल सा उनके सांस का गन्ध है। मुख सुगन्धित है, उनके शरीर के वायुका वेग मनोहर है। गोरा रंग, सतेज और श्याम उनके शरीरके अनुरूप कुक्षिप्रदेश-उदर प्रदेश है। अमृतरससे भरे फलका आहार करते हैं। उनके शरीरकी ऊंचाई तत्समयोचित है। तीन पल्योपम तक उनकी स्थिति रहती है; उनका उत्कृष्ट आयु है। इस प्रकारके युगलिये भी कामभोगमें अतृप्त रहकर कालके गालमें जाकर मरणधर्मको प्राप्त होते हैं।

युगलिनी स्त्रीका वर्णन—उनकी स्त्रियां (युगलिनी) भी सौम्याकृति वाली और सुनिष्पन्न सर्वांग सुन्दर होती हैं; प्रधान स्त्रियोंके गुणोंसे युक्त

होती हैं । अतिकमनीय, विशिष्ट-प्रमाणयुक्त, सुकुमाल, कछुवे के आकारके समान उनके सुन्दर चरण होते हैं; सरल, मृदु, पुष्ट और अविकल अंगुलियां होती हैं; ऊंचे, सुखदायक, पतले, लाल, स्वच्छ और चिकने नख होते हैं। रोम रहित, वर्तुलाकार, उत्तम, प्रशस्त लक्षणयुक्त, रम्य दो जंघाएं होती हैं, सुनिर्मित और अदृश्यमान पैरोंके घुटने होते हैं। मांसल, प्रशस्त और सुबद्ध स्नायुयुक्त जिनकी अस्थिकी सन्धियां हैं। केलेके स्तम्भसे अधिक (सुन्दर) आकार युक्त, व्रणरहित, सुकुमार, मृदु, कोमल, अविरल, एक समान, सांथल हैं। अष्टापद तरंग (एक प्रकारके जुआ) के पाटलकी रेखाकी तरह रेखायुक्त, प्रशस्त, विस्तीर्ण, और चौड़ी कमर-कटि है। वदनकी लम्बाईके प्रमाण से दुगुना (२४ अंगुलका) विशाल, मांसल, दृढ़, उनकी कटिका पूर्वभाग है। वज्रके समान विराजित, प्रशस्त, लक्षणयुक्त, दुबला उदर-पेट है। त्रिवलीके द्वारा झुका हुआ कृश उनका मध्यभाग है; सरल प्रमाणोपेत, जातिवंत, स्वाभाविक, पतली, अखण्ड, सतेज, शोभायुक्त, मनोहर, सुकुमार, मृदु, बहुत कम उनकी रोमराजी हैं । *गंगाके आवर्त की तरह, दक्षिणावर्तकी भांति, तरंग-भ्रम के* समान, सूर्य की किरणसे जागृत होकर विकास पाये हुए कमलकी तरह गंभीर और विकट उनकी नाभि है। न उठी हुई प्रशस्त, सुनिष्पन्न और पुष्ट कुक्षि है। नीचे झुकते समय अन्तर रहित, सुन्दर निर्माण गुणोपेत, सुपरिमाणयुक्त, मांसल और रमणीय पार्श्व हैं। शरीरकी अस्थियां अदृश्यमान, नहीं दिखतीं। सोनेके समान कान्तिमान, निर्मल, सुजात, रोगरहित गात्रयष्टि है। सोनेके कलशके समान प्रमाणयुक्त, एक समान, सुलक्षणयुक्त, मनोहर, शिखर सहित, समश्रेणीसमेत वर्तुलाकार स्तन हैं। सांप की तरह अनुक्रमशः (मोटे और पतले) कोमल, गऊकी पूंछके समान गोल, एक समान, मध्यभागमें विरल, कुछ झुकी हुई रमणीय और ललित बाहें हैं। तांबेसे लाल नख हैं; हाथके अग्रभाग मांसल हैं; कोमल और पुष्ट अंगुलियां हैं। हाथकी रेखाएं सतेज हैं; चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, स्वस्तिक, आदि अलग-अलग लक्षणों से युक्त हाथकी रेखाएं हैं। पुष्ट और ऊंची कांखें तथा बस्तीप्रदेश है, परिपूर्ण पुष्ट गाल हैं, चार अंगुलसे मापी गई शंखके आकारसे सन्तुलित रेखा सहित उनकी गर्दन है। मांसल तथा अच्छे ढंग की ठोडी है। दाडिमके फूलके समान लाल, पुष्ट, कुछ लम्बाई लिए, हुए, आकुंचित, सुन्दर नीचेके होठ हैं। दही, पानी की बूंद, कुंदका फूल, चन्द्रमा, वासन्ती की सुकुमार कलीके समान छिद्ररहित और निर्मल दान्त हैं। लाल कमल और लाल पद्मपत्रके समान सुकोमल हलक और जीभ है। कनेरकी कलीके समान झुकी हुई, ऊंची और सरल नासिका है। शरद ऋतुके नवकमल-कुमुद और नीलकमलके समूहके सदृश, सुलक्षणयुक्त, प्रशस्त, निर्मल, मनोहर आंखें हैं। कुछ झुके हुए धनुषके समान मनोहर, काले बादल की

रेखाकी भांति, एक समान, सुनिष्पन्न, पतली और काली उनकी भवें हैं। सुन्दर आकार वाले, प्रमाणयुक्त और अच्छी उपमा वाले उनके कान हैं। पुष्ट और सुकुमाल गाल हैं। चार अंगुलका विस्तृत-विशाल ललाट है। कार्तिक मास की पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान निर्मल, परिपूर्ण चान्द सा वदन मुख है; छत्रका सा उत्तमांग-मस्तक है। अत्यन्त काले और सतेज (चमकदार) तथा लम्बे मस्तक के केश हैं। वत्तीस लक्षण जैसे कि ध्वजा, स्तम्भ, स्तूप, दामिनी, कमण्डलु, कलश, वावड़ी, स्वस्तिक, पताका, जौ, कछुआ, रथ, मकरध्वज, अंकरत्न, थाल, अंकुश, अष्टापदका फनक-तख्ता, या तकिया, देव अथवा मयूर, लक्ष्मीका अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, महासागर, उत्तम-भवन, गिरिवर, कांच, झूमता हाथी, वृषभ, सिंह और चंवर, आदि वत्तीस-लक्षणसे समृद्ध उनका शरीर है। हंसके समान गति है, कोयलसी मीठी-वाणी है; सब जनके लिए कमनीय और वल्लभ प्रिय है। चमड़ीकी सुलभट, सफेद वाल, व्यंग्य (कुरूप अंग), दुष्टवर्ण, व्याधि, दुर्भाग्य, शोक आदिसे वे रहित हैं। कदकी ऊंचाईमें वे पुरुषसे कुछ कम ऊंची होती हैं; श्रृङ्गार रसके आगार स्वरूप सुन्दरोपम वेशभूषा है। सुन्दर स्तन, जघन, वदन, हाथ पैर, नेत्र, लावण्य, रूप, यौवन इत्यादि गुणोंसे समृद्ध हैं। नन्दन वनके विवरमें ये अप्सराओं की भांति विहार-भ्रमण करती हैं। उत्तर-कुरु-भोगभूमिया मनुष्यके रूपमें अप्सराके सदृश अचरज पैदा करने वाली देखने योग्य, ये (युगलिनियां) भी तीन पल्यका उत्कृष्ट आयु भोगकर कामभोगों में अतृप्त रहकर कालधर्मको प्राप्त हो जाती हैं ॥१५॥

अब्रह्मचर्यका फल—मैथुन संज्ञामें गृद्ध और मोह अज्ञान से भरे हुए वे विषय रूपी विषकी उदीरणा करते हुए एक दूसरेको हथियारों से मारते हैं। बहुतेरे परस्त्रीके सम्पर्कमें आकर औरोंके द्वारा मारे जाते हैं। (ऐसे दुराचारके विषमें) गुप्त रहस्य प्रगट होने पर उनके धन-और स्वजनादिका नाश होता है (राजाओं द्वारा ऐसा दण्ड पाते हैं)। जो परस्त्रीसे विरक्त नहीं हुए हैं, मैथुन-संज्ञा में गृद्ध-मोहित हैं, मोह—माया से भरपूर हैं, ऐसे घोड़े, हाथी, वृषभ, महिष, हिरण आदि भी कामकी व्याकुलतासे आपसमें मारामारी करते हैं, एवं कामी आदमी वन्दर और पक्षी आपसमें एक दूसरे से विरोध करते हैं, मित्र होकर शत्रुभाव को प्राप्त होते हैं। परदारगामी आदमी सिद्धांत के अर्थ-धर्म-समाचारी (दण्डसंग्रह) आदिकी या साधुगणकी कुछ भी पर्वाह नहीं करते।

धर्मके गुणोंके विषय में अनुरक्त-ब्रह्मचारी परदारके सेवनसे क्षणमात्र में चरित्रसे भ्रष्ट हो जाता है। यशस्वी और उत्तमोत्तम व्रतका आचरण करने वाला इसके द्वारा अपयश और अपकीर्ति तथा व्याधिको वढ़ाता है, विशेष रोग-व्याधि से पीड़ित होता है, और दोनों लोक-इस लोक तथा परलोक में दुराराधक होता

है। परस्त्रीसे जो विमुख नहीं हुए है, उनमें के कुछ परनारीकी खोज करते-करते पकड़े जाते हैं, मारे जाते हैं, और बेड़ी डाली जाती हैं। इस प्रकार अत्यन्त मोह-मुग्धता रूप संज्ञा-मैथुनका कारण है, और उससे तिरस्कार पाये हुए जीव दुर्गति पाते हैं। अलग-अलग (अन्यमतके) शास्त्रों में भी सुना गया है कि पहले (उसी कारणसे) लोगोंका संहार करने वाले युद्ध हुए हैं। सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मा-वती, तारा, कांचना, रक्ता, सुभद्रा, अहिल्या, सुवर्णगुलिका, किन्नरी, स्वरूपवती, विद्युन्मति, रोहिणी आदि अनेक स्त्रियों के कारण संग्राम हुए सुने जाते हैं। इस प्रकार के युद्ध अधर्म-विषयवासनाकी पुष्टि के मूल कारण हैं। अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले इस लोक से नाश पाते हैं (अपकीर्ति रोग आदि पाते हैं) और परलोक में नष्ट हो जाते हैं। (वे किस प्रकार ?) महामोह रूपी अन्धकार में और घोर जीवस्थान में पड़कर वे विनाश को पाते हैं। त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण, अनन्तकाय, प्रत्येक वनस्पतिमें उत्पन्न होते हैं, और अण्डज (पक्षी सर्पादिक), पोतज (हाथी आदि), जरायुज (मनुष्यादि), रसज (मद्यादि में उपजने वाले दो-इन्द्रियादि), संस्वेदज (जूं खटमल आदि), सम्मूर्च्छिम (मेंढक आदि), उद्भिज्ज (टिड्डी आदि), तथा नारकी देवता में उपजते हैं। नारक, तिर्यंच, देव और मनुष्य इन चारों गतियों में जरा-मरण-रोग-शोक आदिके द्वारा शोकपूर्ण संसार में अनेक पल्योपम-सागरोपम अनादि-अनन्त और दीर्घकाल वाली चार गति रूप-संसार रूपी अटवीमें मोहके वशमें पड़कर जीव बारंबार परिभ्रमण करते हैं।

अब्रह्मचर्य का फल-विपाक इस प्रकारका है। अब्रह्मचर्य इस लोक और परलोक में अत्यल्प सुख देने वाला है, महाभयरूप है, बहुत से कर्मरूपी मैलसे कठोर है। दारुण-रौद्र है, कर्कश दुःखयुक्त है, अशाता उपजाने वाला है, हजारों वर्ष बीतने पर भी बिना फल भोगे छुटकारा नहीं होता, उसे तो भोगने पर ही छुट-कारा (मोक्ष) पाता है। इस प्रकार श्रीसिद्धार्थ राजाके पुत्र महात्मा, वीतराग, महावीर स्वामीने कहा है, इस प्रकार आस्रव द्वारका अब्रह्मचर्य फलविपाक विषय-क चौथा अध्ययन...॥१६॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

—※—

पांचवां अध्ययन-परिग्रह

जम्बूस्वामी के प्रति श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! इसके अनन्तर मैं आस्रवद्वारका पांचवां अध्ययन परिग्रह के विषय में जैसा मैंने सुना है ज्यों का त्यों सुनाता हूं। परिग्रहका स्वरूप-नाना भान्तिके मणि, सुवर्ण, रत्न, मूल्यवान् (कस्तूरी

आदि)परिमल-सुगन्ध, पुत्र-स्त्री आदि परिवार, दास-दासियां, नौकर-चाकर, प्रेष्य (जिसे काम पड़ने पर कहीं अन्यत्र भेजा जाता हो), घोड़ा, हाथी, गऊ, भैंस, ऊंट, गधा, बकरा, भेड़, शिविका (पालकी), गाड़ी, रथ, यान (वाहन), युग्म (जुग्ग-पालकी के समान), स्यन्दन (एक प्रकारका रथ), (पलंगादि) शयन, (बाजोठादि) आसन, वाहन घरवार में काम आने वाली अलग २ वस्तुएं, धन, धान्य, पानी, भोजन, वस्त्र, गन्ध (पुष्पादि) माला, वर्तन, भवन आदि नाना वस्तुओंका राजा उपभोग करता है, भरतक्षेत्रके अनेक पहाड़, पर्वत, नगर, मण्डी(वाणिज्यके स्थान), देश, पुर, जलपथ, धूलका कोट, गांव, ढाणियां-वास, मण्डप, संवाह, पत्तन आदि हजारों स्थान आए हुए हैं, ऐसे भरतक्षेत्र एवं भयरहित पृथ्वीको, एक छत्र, सागर समेत भोगते हुए भी राजाकी तृष्णा अपरिमित (बेमाप-तोल की) और अनन्त रहती है। उनके साथ अधिकाधिक इच्छारूप से (सब कुछ पाने के लिए) परिग्रहका वृक्ष बढ़ता रहता है। इस वृक्षके नरक रूप बड़े-बड़े मूल हैं; लोभ, संग्राम और कषाय (क्रोध-मान-माया) रूप तने हैं, सैंकड़ों चिन्तारूप आदि अन्त रहित बड़ी बड़ी शाखाएं हैं, (ऋद्धि आदि के) गर्व में विस्तार पाये हुए ऊपर मध्यभागकी बड़ी-बड़ी प्रतिशाखाएं हैं। माया-कपटरूप वक्कल पत्ते और छोटी-छोटी कलियां हैं। काम भोग रूप फूल और फल हैं। शरीर का खेद, मनका खेद, कलह, आदिके द्वारा कांपने वाला इनका शिखरका भाग है। ऐसे भयानक परिग्रह रूप वृक्षको राजा पूजता है, बहुत से मनुष्यों के हृदय को वह बड़ा प्यारा लगता है, और परिग्रहसे मुक्त होनेका जो निर्लोभता रूप मार्ग है, उस मार्गकी अर्गला(रुकावट) रूप यह परिग्रहरूपी वृक्ष है ।।१७।।

परिग्रहके नाम—इस परिग्रह के गुणनिष्पन्न तीस नाम इस प्रकार हैं । १. परिग्रह (पदार्थ में मूर्च्छा), २. संचय(इकट्ठा करना संग्रह या जोड़कर रखना), ३. चय (बटोरना), ४. उपचय-बहुत बड़ा ढेर लगा डालना, ५. निधान-धरती मे दवाकर छुपाये रखना, ६. सम्भार-सावधानी से ठूंस ठूंस कर भरना, ७. सम्मिश्रित-पिण्डीकरण करना, ८. आदर-सत्कार पूर्वक रख लेना, ९. पिण्ड गोल विस्तार करना, १०. द्रव्यसार-द्रव्यलक्षणका सार तत्व निकालकर रखना, ११. महेच्छा, १२. प्रतिवन्ध-स्नेह का कारण, १३. लोकस्वभाव, १४. अधिक या बड़ी याचना, १५. उपकरण-घरवारका संग्रह, १६. सरक्षण (शरीरादिका विशेष प्रकार से रक्षण), १७. वोझका कारण, १८. अनर्थका उत्पादन, १९. क्लेशोंका भरा हुआ टोकरा, २०. धन-धान्य का विस्तार, २१. अनर्थका कारण, २२. संस्तव (धन-स्वजनादि का परिचय या खुशामद), २३. मनका अगोपन, २४. शरीरका आयास (खेद-परिग्रह हेतुपूर्वक), २५. अवियोग (धनादिका त्याग सहजमें न कर सकना), २६. अमुक्ति (सलोभता), २७. तृष्णा, २८. अनर्थक (परमार्थ वृत्तिका अभाव), २९. धनादिका आसंग, ३०. असन्तुष्टवृत्ति, इत्यादि ये परिग्रहके तीस नाम हैं।। १८।।

है । परस्त्रीसे जो विमुख नहीं हुए है, उनमें के कुछ परनारीकी खोज करते-करते पकड़े जाते हैं, मारे जाते हैं, और बेड़ी डाली जाती हैं । इस प्रकार अत्यन्त मोह-मुग्धता रूप संज्ञा-मैथुनका कारण है, और उससे तिरस्कार पाये हुए जीव दुर्गति पाते हैं । अलग-अलग (अन्यमतके) शास्त्रों में भी सुना गया है कि पहले (उसी कारणसे) लोगोंका संहार करने वाले युद्ध हुए है । सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मा-वती, तारा, कांचना, रक्ता, सुभद्रा, अहिल्या, सुवर्णगुलिका, किन्नरी, स्वरूपवती, विद्युन्मति, रोहिणी आदि अनेक स्त्रियों के कारण संग्राम हुए सुने जाते हैं । इस प्रकार के युद्ध अधर्म-विषयवासनाकी पुष्टि के मूल कारण हैं । अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले इस लोक से नाश पाते हैं (अपकीर्ति रोग आदि पाते हैं) और परलोक में नष्ट हो जाते हैं । (वे किस प्रकार ?) महामोह रूपी अन्धकार में और घोर जीवस्थान में पड़कर वे विनाश को पाते हैं । त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण, अनन्तकाय, प्रत्येक वनस्पतिमें उत्पन्न होते हैं, और अण्डज (पक्षी सर्पादिक), पोतज (हाथी आदि), जरायुज (मनुष्यादि), रसज (मद्यादि में उपजने वाले दो-इन्द्रियादि), संस्वेदज (जूं खटमल आदि), सम्मूर्च्छिम (मेंढक आदि), उद्भिज्ज (टिड्डी आदि), तथा नारकी देवता में उपजते हैं। नारक, तिर्यंच, देव और मनुष्य इन चारों गतियों में जरा-मरण-रोग-शोक आदिके द्वारा शोकपूर्ण संसार में अनेक पल्योपम-सागरोपम अनादि-अनन्त और दीर्घकाल वाली चार गति रूप-संसार रूपी अटवीमें मोहके वशमें पड़कर जीव बारंबार परिभ्रमण करते हैं ।

अब्रह्मचर्य का फल-विपाक इस प्रकारका है । अब्रह्मचर्य इस लोक और परलोक में अत्यल्प सुख देने वाला है, महाभयरूप है, बहुत से कर्मरूपी मैलसे कठोर है । दारुण-रौद्र है, कर्कश दुःखयुक्त है, अशाता उपजाने वाला है, हजारों वर्ष बीतने पर भी बिना फल भोगे छुटकारा नहीं होता, उसे तो भोगने पर ही छुट-कारा (मोक्ष) पाता है । इस प्रकार श्रीसिद्धार्थ राजाके पुत्र महात्मा, वीतराग, महावीर स्वामीने कहा है, इस प्रकार आस्रव द्वारका अब्रह्मचर्य फलविपाक विषय-क चौथा अध्ययन...॥१६॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

पांचवां अध्ययन-परिग्रह

जम्बूस्वामी के प्रति श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! इसके अनन्तर मैं आस्रवद्वारका पांचवां अध्ययन परिग्रह के विषय में जैसा मैंने सुना है ज्यों का त्यों सुनाता हूं । परिग्रहका स्वरूप-नाना भान्तिके मणि, सुवर्ण, रत्न, मूल्यवान् (कस्तूरी

आदि)परिमल-सुगन्ध, पुत्र-स्त्री आदि परिवार, दास-दासियां, नौकर-चाकर, प्रेष्य (जिसे काम पड़ने पर कहीं अन्यत्र भेजा जाता हो), घोड़ा, हाथी, गऊ, भैंस, ऊंट, गधा, बकरा, भेड़, शिविका (पालकी), गाड़ी, रथ, यान (वाहन), युग्म (जुग्ग-पालकी के समान), स्यन्दन (एक प्रकारका रथ), (पलंगादि) शयन, (बाजोठादि) आसन, वाहन घरवार में काम आने वाली अलग २ वस्तुएं, धन, धान्य, पानी, भोजन, वस्त्र, गन्ध (पुष्पादि) माला, बर्तन, भवन आदि नाना वस्तुओंका राजा उपभोग करता है, भरतक्षेत्रके अनेक पहाड़, पर्वत, नगर, मण्डी(वाणिज्यके स्थान), देश, पुर, जलपथ, धूलका कोट, गांव, ढाणियां-वास, मण्डप, संवाह, पत्तन आदि हजारों स्थान आए हुए हैं, ऐसे भरतक्षेत्र एवं भयरहित पृथ्वीको, एक छत्र, सागर समेत भोगते हुए भी राजाकी तृष्णा अपरिमित (बेमाप-तोल की) और अनन्त रहती है। उनके साथ अधिकाधिक इच्छारूप से (सब कुछ पाने के लिए) परिग्रहका वृक्ष बढ़ता रहता है। इस वृक्षके नरक रूप बड़े-बड़े मूल हैं; लोभ, संग्राम और कषाय (क्रोध-मान-माया) रूप तने हैं, सैंकड़ों चिन्तारूप आदि अन्त रहित बड़ी बड़ी शाखाएं हैं, (ऋद्धि आदि के) गर्व में विस्तार पाये हुए ऊपर मध्यभागकी बड़ी-बड़ी प्रतिशाखाएं हैं। माया-कपटरूप बक्कल पत्ते और छोटी-छोटी कलियां हैं। काम भोग रूप फूल और फल हैं। शरीर का खेद, मनका खेद, कलह, आदिके द्वारा कांपने वाला इनका शिखरका भाग है। ऐसे भयानक परिग्रह रूप वृक्षको राजा पूजता है, बहुत से मनुष्यों के हृदय को वह बड़ा प्यारा लगता है, और परिग्रहसे मुक्त होनेका जो निर्लोभता रूप मार्ग है, उस मार्गकी अर्गला(रुकावट) रूप यह परिग्रहरूपी वृक्ष है ।।१७।।

परिग्रहके नाम—इस परिग्रह के गुणनिष्पन्न तीस नाम इस प्रकार हैं । १. परिग्रह (पदार्थ में मूर्च्छा), २. संचय(इकट्ठा करना संग्रह या जोड़कर रखना), ३. चय (बटोरना), ४. उपचय-बहुत बड़ा ढेर लगा डालना, ५. निधान-धरती मे दबाकर छुपाये रखना, ६. सम्भार-सावधानी से ठूंस ठूंस कर भरना, ७. सम्मि-श्रित-पिण्डीकरण करना, ८. आदर-सत्कार पूर्वक रख लेना, ९. पिण्ड गोल विस्तार करना, १०. द्रव्यसार-द्रव्यलक्षणका सार तत्व निकालकर रखना, ११. महेच्छा, १२. प्रतिबन्ध-स्नेह का कारण, १३. लोकस्वभाव, १४. अधिक या बड़ी याचना, १५. उपकरण-घरबारका संग्रह, १६. सरक्षण (शरीरादिका विशेष प्रकार से रक्षण), १७. बोझका कारण, १८. अनर्थका उत्पादन, १९. क्लेशोंका भरा हुआ टोकरा, २०. धन-धान्य का विस्तार, २१. अनर्थका कारण, २२. संस्तव (धन-स्वजनादि का परिचय या खुशामद), २३. मनका अगोपन, २४. शरीरका आयास (खेद-परिग्रह हेतुपूर्वक), २५. अवियोग (धनादिका त्याग सहजमें न कर सकना), २६. अमुक्ति (सलोभता), २७. तृष्णा, २८. अनर्थक (परमार्थ वृत्तिका अभाव), २९. धनादिका आसंग, ३०. असन्तुष्टवृत्ति, इत्यादि ये परिग्रहके तीस नाम हैं।।१८।।

है । परस्त्रीसे जो विमुख नहीं हुए हैं, उनमें के कुछ परनारीकी खोज करते-करते पकड़े जाते हैं, मारे जाते हैं, और बेड़ी डाली जाती हैं । इस प्रकार अत्यन्त मोह-मुग्धता रूप संज्ञा-मैथुनका कारण है, और उससे तिरस्कार पाये हुए जीव दुर्गति पाते हैं । अलग-अलग (अन्यमतके) शास्त्रों में भी सुना गया है कि पहले (उसी कारणसे) लोगोंका संहार करने वाले युद्ध हुए है । सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, कांचना, रक्ता, सुभद्रा, अहिल्या, सुवर्णगुलिका, किन्नरी, स्वरूपवती, विद्युन्मति, रोहिणी आदि अनेक स्त्रियों के कारण संग्राम हुए सुने जाते हैं । इस प्रकार के युद्ध अधर्म-विषयवासनाकी पुष्टि के मूल कारण हैं । अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले इस लोक से नाश पाते हैं (अपकीर्ति रोग आदि पाते हैं) और परलोक में नष्ट हो जाते हैं । (वे किस प्रकार ?) महामोह रूपी अन्धकार में और घोर जीवस्थान में पड़कर वे विनाश को पाते है । त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण, अनन्तकाय, प्रत्येक वनस्पतिमें उत्पन्न होते हैं, और अण्डज (पक्षी सर्पादिक), पोतज (हाथी आदि), जरायुज (मनुष्यादि), रसज (मद्यादि में उपजने वाले दो-इन्द्रियादि), संस्वेदज (जूं खटमल आदि), सम्मूर्च्छिम (मेंढक आदि), उद्भिज्ज (टिड्डी आदि), तथा नारकी देवता में उपजते हैं । नारक, तिर्यंच, देव और मनुष्य इन चारों गतियों में जरा-मरण-रोग-शोक आदिके द्वारा शोकपूर्ण संसार में अनेक पल्योपम-सागरोपम अनादि-अनन्त और दीर्घकाल वाली चार गति रूप-संसार रूपी अटवीमें मोहके वशमें पड़कर जीव बारंबार परिभ्रमण करते हैं ।

अब्रह्मचर्य का फल-विपाक इस प्रकारका है । अब्रह्मचर्य इस लोक और परलोक में अत्यल्प सुख देने वाला है, महाभयरूप है, बहुत से कर्मरूपी मैलसे कठोर है । दारुण-रौद्र है, कर्कश दुःखयुक्त है, असाता उपजाने वाला है, हजारों वर्ष बीतने पर भी बिना फल भोगे छुटकारा नहीं होता, उसे तो भोगने पर ही छुटकारा (मोक्ष) पाता है । इस प्रकार श्रीसिद्धार्थ राजाके पुत्र महात्मा, वीतराग, महावीर स्वामीने कहा है, इस प्रकार आस्रव द्वारका अब्रह्मचर्य फलविपाक विषयक चौथा अध्ययन···॥१६॥

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

—❀—

पांचवां अध्ययन-परिग्रह

जम्बूस्वामी के प्रति श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! इसके अनन्तर आस्रवद्वारका पांचवां अध्ययन परिग्रह के विषय में जैसा मैंने सुना है ज्यों सुनाता हूं । परिग्रहका स्वरूप—नाना भान्तिके मणि, सुवर्ण, रत्न, मूल्यवा

अधिक धन होता है कि वह अंबारी समेत हाथीको खड़ा करके उसके बराबर उतने ही धन का ढेर लगाकर उसे ढंक दे वह), सेठ, शेठिया (देशका अधिकारी), पुरोहित; कुमार, दण्डनायक, माण्डलिक (देशकी सीमाका राजा), सार्थवाह, कौटुम्बिक (कुटुम्बमें प्रधान पुरुष), अमात्य इत्यादि अन्यान्य अनेक मनुष्य वसते हैं, वे सब परिग्रहके वढ़ाने वाले हैं।

यह परिग्रह कैसा है ? –परिग्रह अनन्त है, अन्त रहित है, शरण रहित है (आपत्ति से छुड़ा नहीं सकता), दुःखसे भरपूर अन्तकारी है, अध्रुव-अनित्य एवं अशाश्वत है (प्रतिक्षणमें विनाशशील स्वभाव वाला है)। पापकर्मका मूलरूप है, (विवेकियों द्वारा) न करने योग्य है। विनाशका मूलरूप है, अत्यन्त वध, वंधन और क्लेश आदिका कारणरूप है। अनन्त-संक्लेश (मानसिक दुःख) का निमित्त है, धन-धान्य-रत्नादिक का समूह करते हुए लोभसे ग्रसे हुओंको संसारमें घुमाता है, यह संसार सारे दुःखोंका निवास-स्थान रूप है।

परिग्रहके कारण—परिग्रह सेवन करने के लिये आदमी सैंकड़ों प्रकारके शिल्प (विज्ञानादि)की, (चित्रादि) कलाएं सीखता है; निपुण लेखक-लिखनेकी, पक्षी आदिके शकुन-गणितादिकी वहत्तर कलाएं सीखता है, स्त्रियोंकी रति उपजाने वाली चौंसठ कलाओंका अभ्यास करता है। (राजादिकी) सेवा के लिए शिल्प, तलवार (युद्ध) की कला, लेखन कला, कृषिविद्या, व्यापारकला, व्यवहार या व्यवसाय शास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्विद्या, खड्गादिकी मूठको पकड़नेकी कल, विविध मन्त्रप्रयोग (वशीकरण आदि) और कई प्रकारकी कला-विद्या आदि परिग्रह-अर्जन करनेके कारण रूप धन्धे-उद्योग जीवनके अन्त तक वे करते रहते हैं। फिर वे मन्दबुद्धिके आदमी परिग्रह सेवन के लिए प्राणियों का संहार करते हैं, झूंठ बोलते हैं, माया प्रपंच करते हैं, असल वस्तुमें खराब वस्तु मिलाकर देते हैं, पराये धनको बातकी बातमें उड़ा लेनेका लोभ रखते हैं। अपनी और पराई स्त्री के सेवनसे शरीर और मनको खेद उपजाते हैं, (वचनके द्वारा) कलह (कायाके द्वारा) लानत-मलामत, झगड़ा, वैर, अपमान और कदर्थना पाते हैं। इच्छा और महेच्छा रूपी सैंकड़ों तरह की तृषाओं द्वारा प्यासे (अप्राप्त वस्तुकी) तृष्णा से लोभग्रस्त और आत्माके अनिग्रह वाले आदमी निन्दनीय क्रोध-मान-माया और लोभके अजगर द्वारा ग्रसे जाते हैं। इस परिग्रहसे ही निश्चयपूर्वक (माया आदि) शल्य, (तीन) दण्ड, (तीन) गर्व, (चार) कषाय, (चार) संज्ञा, (पांच) कामगुण,...आस्रवकर्म, (पांच) इन्द्रियविकार, (तीन) अप्रशस्त लेश्या, स्वजन संयोगकी ममता, सचित्त अचित्त द्रव्यका मिश्रण, इत्यादि प्राप्त करनेकी इच्छाएं उत्पन्न होती हैं।

परिग्रहका फल—तीर्थंकर भगवान्ने कहा है कि देवता आदमी और असुर आदि के लिए लोकमें लोभसे उत्पन्न परिग्रहके समान अन्य कोई वंधन

परिग्रही लोग—(परिग्रह संग्रह करने वालोंके विषय में) परिग्रहका संग्रह करने वाले ममत्व-मूर्च्छासे ग्रस्त और लोभग्रस्त होते हैं। भवनपति आदि विमान-वासी देव भी परिग्रहमें अभिरुचि रखते हैं) और विविध प्रकार के परिग्रह रखने की आकर्षक बुद्धि रखते हैं। देवताओं में असुरकुमार आदि १०, १६ व्यंतर, १० ज्योतिषी देव, बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य,शुक्र, शनि, राहु, धूमकेतु, बुध, मंगल ये सब तपे हुए सोनेके समान लालवर्ण वाले ग्रहविशेष हैं, और ये ज्योतिषचक्र में घूम रहे हैं, तथा परिभ्रमण करने में रति मानते हैं। केतु और शेष सब ग्रह अट्ठाइस प्रकार के नक्षत्र देवोंका समूह, नाना प्रकार के संस्थानों से संस्थित तारे, अवस्थित, निश्चल दीप्ति वाले तारे जो कि मनुष्य क्षेत्रके बाहर घूमते हैं, जो क्षणमात्रका विश्राम न लेकर तिर्यग् लोकके ऊपर के भागमें ज्योतिषचक्र में फिरा करते हैं।

ऊर्ध्वलोक के वासी दो प्रकार के वैमानिक देव—१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण, १२. अच्युत, ये द्वादश (१२) देवलोक कल्पोपपन्न देवोंका समूह कहलाता है। नव-ग्रैवेयक और अनुत्तर-विमान ये कल्पातीत देव होते है। ये देव महाऋद्धिमान हैं। सारे देवोंमें उत्तम हैं, ये चारों प्रकार के देवता परिषद्-परिवार सहित हैं। परन्तु वे भी ममता भाव करते हैं(परिग्रह रखते हैं)।

उनके परिग्रहकी वस्तुएं—भवन वाहन, यान, (शकटादि), विमान, शयन (पलंगादि), आसन, नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषण, पैने और कीमती हथियार, विविध भांतिके पंचरंगे मणिरत्नोंका दिव्यसंचय, अनेक पात्र, इच्छा अनुसार कई तरहके रूप बनाते हैं, अच्छी अप्सराओं का समूह, द्वीप, समुद्र, दिशाएं, विदिशाएं, वृक्ष, वनखण्ड, पर्वत, गांव, नगर, आराम, उद्यान, कानन (बड़े-बड़े वन), कुएं, सरोवर, तालाव, बावड़ी, दीर्घिका, (बड़ी बावड़ी), सभा, प्याऊ, तापस लोगोंके आश्रम आदि कई पदार्थोंका परिग्रह रखते हुए, अधिकाधिक विपुल द्रव्यका ममत्व रखते हुए, देव-देवी और इन्द्रको भी तृप्ति और संतोष नहीं होता। उनकी बुद्धि अतिलोभ से दबकर पराभव पाती है फिर हिमवान्, इक्षुकार, वृत्तपर्वत, कुण्डलपर्वत, रुचक, मानुषोत्तर, कालोदधि-समुद्र, लवण-समुद्र गंगा आदिक नदियां, पद्म आदि द्रह, रतिकर-पर्वत, अंजनक-पर्वत, दधिमुख-पर्वत, अवपात-पर्वत (जिस ओरसे देव उतरते हैं वह स्थान), उत्पात-पर्वत (जिसके द्वारा भुवनपति देव मनुष्यक्षेत्रमें आते हैं)। काञ्चनगिरि, विचित्र-पर्वत, यमक-पर्वत, शिखरी-पर्वत, आदि पर्वतोंके कूटोंमें रहने वाले देव परिग्रही होते हुए भी तृप्त नहीं होते। इस प्रकार वर्षधर-पर्वतके देव और अकर्मभूमिके देव भी अतृप्त हैं। कर्मभूमिमें जो-जो देशरूप विभाग हैं, उनमें जो मनुष्य, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, माण्डलिक राजा, युवराज, पट्टबन्ध, सेनापति, इभ्य (इसके पास इतना

परिग्रही लोग—(परिग्रह संग्रह करने वालोंके विषय में) परिग्रहका संग्रह करने वाले ममत्व-मूर्च्छासे ग्रस्त और लोभग्रस्त होते हैं। भवनपति आदि विमान-वासी देव भी परिग्रहमें अभिरुचि रखते हैं) और विविध प्रकार के परिग्रह रखने की आकर्षक बुद्धि रखते हैं। देवताओं में असुरकुमार आदि १०, १६ व्यंतर, १० ज्योतिषी देव, वृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनि, राहु, धूमकेतु, बुध, मंगल ये सब तपे हुए सोनेके समान लालवर्ण वाले ग्रहविशेष हैं, और ये ज्योतिषचक्र में घूम रहे हैं, तथा परिभ्रमण करने में रति मानते हैं। केतु और शेष सब ग्रह अट्ठाइस प्रकार के नक्षत्र देवोंका समूह, नाना प्रकार के संस्थानों से संस्थित तारे, अवस्थित, निश्चल दीप्ति वाले तारे जो कि मनुष्य क्षेत्रके बाहर घूमते हैं, जो क्षणमात्रका विश्राम न लेकर तिर्यग् लोकके ऊपर के भागमें ज्योतिषचक्र में फिरा करते हैं।

ऊर्ध्वलोक के वासी दो प्रकार के वैमानिक देव—१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण, १२. अच्युत, ये द्वादश (१२) देवलोक कल्पोपपन्न देवोंका समूह कहलाता है। नव-ग्रैवेयक और अनुत्तर-विमान ये कल्पातीत देव होते हैं। ये देव महाऋद्धिमान हैं। सारे देवोंमें उत्तम हैं, ये चारों प्रकार के देवता परिषद्-परिवार सहित हैं। परन्तु वे भी ममता भाव करते हैं (परिग्रह रखते हैं)।

उनके परिग्रहकी वस्तुएं—भवन वाहन, यान, (शकटादि), विमान, शयन (पलंगादि), आसन, नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषण, पैने और कीमती हथियार, विविध भांतिके पंचरंगे मणिरत्नोंका दिव्यसंचय, अनेक पात्र, इच्छा अनुसार कई तरहके रूप बनाते हैं, अच्छी अप्सराओं का समूह, द्वीप, समुद्र, दिशाएं, विदिशाएं, वृक्ष, वनखण्ड, पर्वत, गांव, नगर, आराम, उद्यान, कानन (बड़े-बड़े वन), कुएं, सरोवर, तालाब, बावड़ी, दीर्घिका, (बड़ी बावड़ी), सभा, प्याऊ, तापस लोगोंके आश्रम आदि कई पदार्थोंका परिग्रह रखते हुए, अधिका-धिक विपुल द्रव्यका ममत्व रखते हुए, देव-देवी और इन्द्रको भी तृप्ति और संतोष नहीं होता। उनकी बुद्धि अतिलोभ से दबकर पराभव पाती है फिर हिमवान्, इक्षुकार, वृत्तपर्वत, कुण्डलपर्वत, रुचक, मानुषोत्तर, कालोदधि-समुद्र, लवण-समुद्र गंगा आदिक नदियां, पद्म आदि द्रह, रतिकर-पर्वत, अंजनक-पर्वत, दधिमुख-पर्वत, अवपात-पर्वत (जिस ओरसे देव उतरते हैं वह स्थान), उत्पात-पर्वत (जिसके द्वारा भुवनपति देव मनुष्यक्षेत्रमें आते हैं)। कांचनगिरि, विचित्र-पर्वत, यमक-पर्वत, शिखरी-पर्वत, आदि पर्वतोंके कूटोंमें रहने वाले देव परिग्रही होते हुए भी तृप्त नहीं होते। इस प्रकार वर्षधर-पर्वतके देव और अकर्मभूमिके देव भी अतृप्त हैं। कर्मभूमिमें जो-जो देशरूप विभाग हैं, उनमें जो मनुष्य, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, माण्डलिक राजा, युवराज, पट्टबन्ध, सेनापति, इभ्य (इसके पास इतना

अधिक धन होता है कि वह अंबारी समेत हाथीको खड़ा करके उसके बराबर उतने ही धन का ढेर लगाकर उसे ढंक दे वह), सेठ, शेठिया (देशका अधिकारी), पुरोहित; कुमार, दण्डनायक, माण्डलिक (देशकी सीमाका राजा), सार्थवाह, कौटुम्बिक (कुटुम्बमें प्रधान पुरुष), अमात्य इत्यादि अन्यान्य अनेक मनुष्य वसते हैं, वे सब परिग्रहके बढ़ाने वाले हैं।

यह परिग्रह कैसा है ? –परिग्रह अनन्त है, अन्त रहित है, शरण रहित है (आपत्ति से छुड़ा नहीं सकता), दुःखसे भरपूर अन्तकारी है, अध्रुव-अनित्य एवं अशाश्वत है (प्रतिक्षणमें विनाशशील स्वभाव वाला है)। पापकर्मका मूलरूप है, (विवेकियों द्वारा) न करने योग्य है। विनाशका मूलरूप है, अत्यन्त वध, बंधन और क्लेश आदिका कारणरूप है। अनन्त-संक्लेश (मानसिक दुःख) का निमित्त है, धन-धान्य-रत्नादिक का समूह करते हुए लोभसे ग्रसे हुओंको संसारमें घुमाता है, यह संसार सारे दुःखोंका निवास-स्थान रूप है।

परिग्रहके कारण—परिग्रह सेवन करने के लिये आदमी सैंकड़ों प्रकारके शिल्प (विज्ञानादि)की, (चित्रादि) कलाएं सीखता है; निपुण लेखक-लिखनेकी, पक्षी आदिके शकुन-गणितादिकी बहत्तर कलाएं सीखता है, स्त्रियोंकी रति उपजाने वाली चौंसठ कलाओंका अभ्यास करता है। (राजादिकी) सेवा के लिए शिल्प, तलवार (युद्ध) की कला, लेखन कला, कृषिविद्या, व्यापारकला, व्यवहार या व्यवसाय शास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्विद्या, खड्गादिकी मूठको पकड़नेकी कल, विविध मन्त्रप्रयोग (वशीकरण आदि) और कई प्रकारकी कला-विद्या आदि परिग्रह-अर्जन करनेके कारण रूप धन्धे-उद्योग जीवनके अन्त तक वे करते रहते हैं। फिर वे मन्दबुद्धिके आदमी परिग्रह सेवन के लिए प्राणियों का संहार करते हैं, झूठ बोलते हैं, माया प्रपंच करते हैं, असल वस्तुमें खराब वस्तु मिलाकर देते हैं, पराये धनको बातकी बातमें उड़ा लेनेका लोभ रखते हैं। अपनी और पराई स्त्री के सेवनसे शरीर और मनको खेद उपजाते हैं, (वचनके द्वारा) कलह (कायाके द्वारा) लानत-मलामत, झगड़ा, वैर, अपमान और कदर्थना पाते हैं। इच्छा और महेच्छा रूपी सैंकड़ों तरह की तृषाओं द्वारा प्यासे (अप्राप्त वस्तुकी) तृष्णा से लोभग्रस्त और आत्माके अनिग्रह वाले आदमी निन्दनीय क्रोध-मान-माया और लोभके अजगर द्वारा ग्रसे जाते हैं। इस परिग्रहसे ही निश्चयपूर्वक (माया आदि) शल्य, (तीन) दण्ड, (तीन) गर्व, (चार) कषाय, (चार) संज्ञा, (पांच) कामगुण,...आस्रवकर्म, (पांच) इन्द्रियविकार, (तीन) अप्रशस्त लेश्या, स्वजन संयोगकी ममता, सचित्त अचित्त द्रव्यका मिश्रण, इत्यादि प्राप्त करनेकी इच्छाएं उत्पन्न होती हैं।

परिग्रहका फल—तीर्थंकर भगवान्ने कहा है कि देवता आदमी और असुर आदि के लिए लोकमें लोभसे उत्पन्न परिग्रहके समान अन्य कोई बंधन

नहीं है, पाश भी नहीं है, प्रतिबंध भी नहीं है, सारे लोकोंमें, समस्त जीवोंको परिग्रह कोंचकी फलीके रेशोंके समान दुःखदायी होकर भी चिपटा हुआ है, परिग्रहसे ग्रसे हुए जीव लोक और परलोकमें नष्ट हो जाते हैं, (सुगति नहीं पाते)। अज्ञान रूपी अंधेरेमें भटकते रहते हैं, महामोहनीय (चरित्र मोहनीय) से मूर्च्छित मतिके जीव लोभके आधीन रहनेसे महा-अज्ञान के अन्धकार रूप त्रस-स्थावर-सूक्ष्म-वादर-पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनिकायमें दीर्घकाल तक परिभ्रमण करते रहते हैं। परिग्रहका फल-विपाक इस लोक और परलोकमें अल्पसुख और बहुदुःखरूप परिणाम वाला सिद्ध होता है। यह महाभयका कारण और कर्मरूपी रजको गाढ़रीतिसे उत्पन्न करता है, यह दारुण, कठोर, दुःखदायक और हजारों वर्ष तक भोगे बिना न छूट सके ऐसा गहरा कर्म है। इस प्रकार सिद्धार्थ राजाके पुत्र, महात्मा, वीतराग, महावीर स्वामीने परिग्रहका विपाकफल कहा है। यों आस्रव द्वारका पांचवां अध्ययन परिग्रहका फलविपाक विषयक बुरा परिणाम दिखानेवाला विवरण समाप्त होता है ॥१९॥

आस्रवद्वारका उपसंहार—इस भांति पांच आस्रव कर्मरूपी रजसे जीवको मलिन करता है, और समय २ पर जीवको चार गतिके कारणरूप संसारमें रुलाता और भटकाता है। जो अनन्त अधर्मयुक्त अकृतपुण्य जीव धर्म को नहीं सुनता और सुन ले तो प्रमाद सेवन करता है, वह सब गतियों में भटकता है। बहुत प्रकारके उपदेश पाकर भी मिथ्यादृष्टि और बुद्धिहीन अवस्थामें निकाचित कर्म-वर्गणामें बंध कर आदमी धर्मका तत्व सुनकर भी आचरण में नहीं लाता। सारे दुःखोंका अन्त लाने वाले, गुणमें मिश्री से भी अधिक मधुर श्रीजिनप्रवचन रूपी औषधि देने पर भी उसे पीना नहीं चाहता वह अपना उद्धार कैसे कर सकता है? पांच (प्राणातिपातादि) आस्रव को छोड़कर जो पांच (प्राणातिपात-विरमणादि) संवरको भावपूर्वक पा लेता है वह कर्मरूपी रजसे मुक्त होकर अनुक्रमसे सिद्धि गतिको प्राप्त होता है ॥२०॥

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ आस्रवद्वार समाप्त ॥

संवरद्वार अध्ययन १--अहिंसा

जम्बूस्वामीके प्रति सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू! अब मैं संवर (शुभ अनुष्ठान रूप कर्म) के पांच द्वार अनुक्रमसे जिस प्रकार भगवान्‌ने कहे हैं उसी भांति कहता हूं। ये पांच द्वार सारे दुःखोंसे छुटकारा दिलाने वाले हैं।

संवरके पांच द्वार—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य

और अन्तिम द्वार ५. अपरिग्रह है। अहिंसा त्रस-स्थावर जीवोंके लिए क्षेमकारी-सुखकारी है। अहिंसा (पांच) भावनाओंसे युक्त है, उसके अनन्तगुण हैं, उनमें से कुछ गुणोंके बारेमें कहता हूं।

महाव्रतकी महिमा इस प्रकार है—हे सुव्रत (जम्बू)! महाव्रत (अणुव्रतकी अपेक्षा) अधिक लोकहित करने वाले हैं, श्रुतसागर (सिद्धान्त समुद्र) में उपदिष्ट (कहे गये) हैं। तप, संयम उपार्जन करने वालेमें अहिंसाके भाव वनते हैं। ये शीलगुण (समाधि-विनयादि) में प्रधान व्रत हैं, सत्यवचन तथा माया-त्यागके द्वारा उत्कृष्ट व्रत हैं, नरक-तिर्यच-मनुष्य-देवगतिका निवारण करने वाले हैं, सव तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादन किये गये हैं, कर्मरजको विदीर्ण करने वाले हैं, सैंकड़ों भव-जन्मके चक्कर मिटाने वाले हैं, सैंकड़ों सुखोंमें लगाने वाले हैं, परन्तु ये कायर आदमियोंको पालन करने कठिन लगते हैं, ये तो शूरवीर और धीर पुरुषों द्वारा ही सेवित हैं, निर्वाण गमनके मार्ग और स्वर्गके मार्गमें प्रयाण कराने वाले हैं। भगवान् ने ऐसे संवरद्वार पांच कहे हैं। जिनमें पहला द्वार अहिंसा है।

अहिंसा—देव-मनुष्य-असुरलोकके संसार-सागरमें द्वीपरूप, त्राण (आपत्कालमें) शरणरूप, सम्पदा प्रदान करने वाली तथा (श्रेयार्थियोंके लिए) ग्राह्य है।

अहिंसाके नाम—अहिंसाके ६० गुणनिष्पन्न नाम इस प्रकार हैं—१. निर्वाणका कारण, २. चित्तकी स्वस्थता, ३. समाधि, ४. शांति, ५. कीर्ति देने वाली, ६. कान्ति (शारीरिक ओज-तेज) का कारण, ७. (मनको) सुख उपजाने वाली, ८. (हिंसा से) निर्वृत्ति पानेका कारण, ९. शुभ-अङ्ग (श्रुतज्ञान) का कारण, १०. तृप्ति का कारण, ११. दया, १२. विमुक्ति, १३. क्षान्ति-क्षमा, १४. सम्यक्त्वकी आराधना, १५. (सारे धर्म-अनुष्ठानमें) महती-वड़ी, १६. वोधि (सर्वज्ञ धर्मकी प्राप्ति), १७. वुद्धि, १८. धृति-धैर्य, १९. समृद्धि, २०. ऋद्धि, २१. वृद्धि, २२. (मुक्तिके विषयमें) स्थिति, २३. (पुण्यकी) पुष्टि, २४. आनन्द, २५. भद्र-कल्याण, २६. विशुद्धि, २७. लब्धि, २८. विशिष्ट (निर्मल), २९. कल्याण, ३०. मांगल्य, ३१. प्रमोद-हर्ष, ३२. विभूति, ३३. रक्षा, ३४. मोक्षवास, ३५. अनास्रव, (कर्मवन्धके रुकनेका कारण), ३६. कैवल्यस्थान-प्राप्ति, ३७. शिव-निरुपद्रव, ३८. द्रव्य-सम्यक्त्व, ३९. शील, ४०. संयम-हिंसासे निवर्तन, ४१. शील का स्थानक, ४२. संवर, ४३. गुप्ति, ४४. (निश्चयधर्मरूप) व्यवसाय, ४५. उन्नतभाव, ४६. भावयज्ञ, ४७. उत्तम गुणका आश्रय, ४८. अभयदान, ४९. अप्रमाद, ५०. आश्वासन, ५१. विश्वास, ५२. अभय, ५३. समस्त जीवोंका अनाघात-अमारकता, ५४. पवित्रता (मनकी), ५५. विशुद्धि (चित्त की), ५६. अतिशय-शुचिता, ५७. भावपूजा, ५८. विमलता, ५९. प्रभाषा, ६०.

अत्यन्त निर्मलता; इस प्रकार ये निज आत्माके गुण द्वारा निर्मल अहिंसा भगवती के पर्यायवाचक ६० नाम हैं ॥२१॥

यह भगवती अहिंसा भयभीत जीवोंके लिए शरणका स्थान रूप है, प्यासे लोगोंको पानी रूप है, पक्षियोंको आकाश आधार रूप है, भूखोंको भोजन रूप है, समुद्रके मध्यमें वाहनरूप है, (गाय, भैंस आदि) चतुष्पद जीवोंको आश्रयका स्थान रूप है, रोगसे पीड़ित प्राणियोंको औषध-वल रूप है, अटवी-निर्जन वनमें (भूले प्राणियों का) साथी रूप है, यह अहिंसा विशिष्टतरा है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, बीज, हरितकाय, जलचर, स्थलचर, खेचर, त्रस-स्थावर, सब जीवोंको क्षेमकारिणी-सुख देने वाली अहिंसा है। इस प्रकार की अहिंसा भगवती अन्यथा (लौकिक दृष्टिसे कृत्रिम या कल्पित) नहीं है।

अहिंसाके सेवन करने वाले—(अहिंसाके सेवन करने वाले कौन हैं ? इस विषयमें) अपरिमित ज्ञान, दर्शन, धारण करने वाले, (शुद्ध आचार) शील, मूल गुण, विनय-तप-संयमके नायक, तीर्थंकर भगवान्, सम्पूर्ण जगत् के लिए वात्सल्य-कारक, तीन भुवनके पूजनीय, वीतराग देव, केवलज्ञानी पुरुषोंने अहिंसाको विशेष रूपसे जाना है। सामान्य ऋजुमति (सामान्य मनःपर्यवज्ञानी) ने विशेष रूपसे देखा है। विपुलमति (विशेष मनःपर्यवज्ञानी) ने भली प्रकार जाना है। चौदह पूर्वके धारण करने वालेने उसका अधिकाधिक पालन किया है, वैक्रियिकलब्धिके धारकों ने इसे आजन्म पालन करके निभाया है। मतिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, स्पर्शके द्वारा व्याधि मिटाने वाले जैसी लब्धि धारण करने वाले, मुंह के थूकरूप औषधि धारण करने वाले, शरीरका मैलरूप औषधि धारण करने वाले, मूत्र-पुरीषादि रूप औषधि धारण करने वाले, तथा (स्पर्श-थूक-मैल-पुरीषादि) इन सब औषधिरूप लब्धि को धारण करने वाले, बीजके समान बुद्धि वाले, कोठे जैसी बुद्धि वाले (अन्तर में उतारकर न भूलने वाले), पदानुसारिणी बुद्धि वाले (एक पदसे उसके पीछेके अनेक पदोंका अर्थ समझ लेने वाले), शरीरके सब अवयवों द्वारा सुनने वाले, श्रुतके धरने वाले, निश्चल मनके रखने वाले, (जैसे कहें वैसे ही करने वाले) वचन बल धारण करने वाले, (सब परि-षह सहन करने···), शरीर बल धारण करने वाले, ज्ञानरूपी बल वाले, दर्शन-सम्यक्त्वरूप बल वाले, चरित्ररूप बल वाले, दूधके समान मीठा बोलने वाले, मधुके समान मीठा बोलने वाले, घीसे चुपड़े हुए पदार्थकी भांति स्नेह-स्निग्ध अरूक्ष वचन बोलने वाले, अक्षीण रसोई वाले (जिसकी पाकशालामें खाद्य पदार्थ समाप्त न हों, ऐसे अपने लिए बनाए भोजनमें से साधुजन को भोजन देकर फिर भी स्वयं अतृप्त न रहे), जंघाचरण विद्या वाले (आकाशगामिनी लब्धि सम्पन्न), विद्याधर, एकांतर उपवास करने वाले, निरन्तर दो-दो उपवासके बाद पारणा करने वाले, तीन

उपवास करने वाले, चार उपवास करने वाले, इसी भान्ति पांच, छ, सात, पंद्रह आदि उपवास करने वाले, एक मास, दो मास, तीन मास, चार मास, पांच मास और छ मास तकके उपवास करने वाले, उत्क्षिप्तचरक-रांधनेके वर्तनमें से निकाल कर भोजनका पदार्थ गृहस्थने अपने भोजनके थालमें लिया हो वही भोजन लेना-ऐसा कठोर अभिग्रह करने वाले, निक्षिप्तचरक-पकानेके बर्तनमें से बाहर निकाला हो वही आहार लेनेका अभिग्रह करने वाले, दाल चने आदि का आहार लेने वाले, भोजनके अनन्तर बढ़ गया हो उसका आहार लेने वाले, रूखा आहार लेने वाले, घरोंके समूहकी भिक्षा लेने वाले, निर्दोष, परन्तु चलितरस न हुआ हो ऐसा आहार लेने वाले, मौन होकर भिक्षा लेने जाने वाले, सने हुए हाथसे सने हुए वर्तनसे भोजन देने पर ही लेने का संकल्प रखने वाले, जो पदार्थ भोजनमें दिया जाने वाला है, उसी प्रकारके पदार्थसे हाथ या वर्तन सना हो और उसी के द्वारा भोजन देने ार लेना,ऐसा कल्प धारण किए रखना। उपाश्रयके समीप ही आहार मिले तो लेना, शुद्ध एपणीय शंकादि दोषरहित आहार लेना, (दातिकी) संख्याके अनुसार दिया जाने वाला, दिखते स्थान से लाया हुआ आहार लेने वाले, जिसने पहले देखा न हो ऐसा आदमी आहार दे तो लेने वाले, ("यह भोजन आपको लेना कल्पता है?" इस प्रकार) पूछकर आहार दे तो लेने वाले, सदा आयंबिल-आचाम्ल तप करने वाले, सदा पुरिमड्ढ करने वाले, सदा एकाशन करने वाले, निवि(बड़े तपके पारणक पर विगय रहित आहार का तप) करने वाले, टुकड़े करके पात्रमें डाले उस आहार के लेने वाले, परिमित आहार लेने वाले (मर्यादित की हुई संख्या जितने घर-ग्रास या द्रव्यका आहार लेने वाले), दाल-चने आदि शेष बचा हुआ आहार लेने वाने, (हींग मिरच रहित) अरस आहार लेने वाले, रूखा आहार लेने वाले, अन्ताहार-प्रान्ताहार रूखा आहार तुच्छ-खुर्चनका आहार लेकर जीवन विताने वाले, उपशान्त आजीविका चलाने वाले, प्रशान्त (सौम्य अन्तर्वृत्तिकी अपेक्षा) आजीविका करने वाले, बहिरंग वृत्तिसे दोषरहित आजीविका चलाने वाले, दूध-मीठे-घी से रहित आहार लेने वाले, मद्य-मांसके सर्वथा त्यागी, कायोत्सर्गके आसनसे बैठने वाले, भिक्षुकी बारह प्रतिज्ञाके पालने वाले, उत्कट (उकड़ू) आसनसे बैठने वाले, वीरासनसे बैठने वाले, पल्यंकासनसे बैठने वाले, दण्डासनसे बैठने वाले, लकुटासनसे-स्थिर बैठने वाले, एक पार्श्व-करवटसे सोने वाले, आतापना लेने वाले, प्रावरण-बिना कपड़े के रहने वाले (शीत-तापके सहने वाले), मुंहके थूकको न थूकने वाले, खुजली आने पर भी शरीर पर खाज न करने वाले, केश-मूंछ-रोम-नखको(शोभाकी दृष्टिसे)न रखने वाले,शरीर के सब अवयवोंका संस्कार छोड़ने वाले, श्रुतधर (शास्त्रके पूरे मर्मज्ञ) और अर्थ के समूहको जानने की बुद्धि वाले, इन सबने भगवती अहिंसा का आचरण किया

है। भली प्रकार पालन किया है। जो धीर बुद्धि वाले हैं, मतिमान्-मनस्वी हैं, दृष्टिविप सर्पके उग्र तेजके समान तेज-प्रभाव युक्त हैं, नित्य स्वाध्याय-ध्यानादि आत्मसाधनामें निरत हैं, सतत धर्मध्यानका समाचरण करते रहते हैं, पांच महाव्रतरूप चरित्रसे संयुक्त हैं, (पांच) समितिके योगाभ्यासमें प्रवृत्त हैं, पापका उपशमन करने वाले हैं, छकाय रूपी जगतके वल्लभ-वात्सल्यकारक हैं, सदा अप्रमत्तभावसे विचरते हैं, उन्होंने तथा उनके समान और अनेकानेक महामानवों ने अहिंसा भगवतीका सम्यक् रीतिसे पालन किया है।

अहिंसकोंके कर्त्तव्य—(अहिंसा पालन करनेमें उद्यमवान् मनुष्योंको करने योग्य आचरण) पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु और वनस्पति-त्रस तथा स्थावर आदि सब जीवोंकी दया पालने वालोंके लिए शुद्ध-आहारकी गवेपणा (शोध) करने योग्य है। साधुके लिए न तैयार किया हुआ, न कराया हुआ, अनाहूत (अनिमन्त्रणपूर्वक लिया हुआ), अनुद्दिष्ट (औद्देशिक दोप रहित) आहार ले, साधुके लिए खरीदा हुआ आहार न ले। नवकोटिसे (मन-वचन-काया द्वारा न करे, न करावे, करते हुएकी अनुमोदना न करे) परिशुद्ध, (शंकादि) दश दोषोंसे रहित, (सोलह) उद्गम दोष और(सोलह) उत्पादन दोपसे रहित,एषणीय तथा शुद्ध,द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार निर्दोष, हित,परिमित, अचित्त वस्तु और प्राशुक भोजन गवेपणा करने योग्य है। (गोचरी-भिक्षाके लिये जाते समय) आसन पर बैठकर कथा करके आहार न प्राप्त करे, चिकित्सा-मंत्र-जड़ी-बूटी-औषधकार्य करके न ले, लक्षण (चक्र-स्वस्तिकादि चिन्ह) उत्पात-स्वप्न-ज्योतिष-निमित्तकी कथा या विस्मयोत्पादक बातें करके आहार न ग्रहण करे, माया-कपट-करके न ले, किसीके लिए रक्खा गया न ले, कला आदि सिखाकर न ले, निर्दोष भोजनकी गवेषणा करे। किसी का अपमान, निन्दा, मान-सेवा इत्यादि द्वारा भिक्षा लेना योग्य नहीं है। किसी को डरा-धमकाकर-ताड़ना (मारकूट कर) भय-तर्जना-भर्त्सना करके भिक्षा लेना अनुचित है। गर्व करके, अपनी बेबसी-दरिद्रता बताकर, भिखारीकी तरह गिड़गिड़ाकर, गर्व-दरिद्रता-याचना, इन तीनों ही प्रकारसे भिक्षा न ले। मित्रता बताकर,प्रार्थना द्वारा-नौकरकी तरह सेवा करके, मित्रता-प्रार्थना-सेवाकी भाव-भंगी बताकर भिक्षा न ले। (स्वजनादिका परिचय न देकर) अज्ञात-अग्रथित,अप्रतिबद्ध, अदुष्ट-द्वेषादि भाव रहित, दीनतारहित अविमनस्कतासे (आहार न मिलने पर विमनस्क न हो), अकरुणतया, विसंवादरहित, संयममें उद्यमवान् मनोयोग द्वारा, यतना द्वारा, (अप्राप्त) संयमयोगकी प्राप्ति द्वारा, विनय, क्षमा आदि गुणोंसे युक्त, इस प्रकार भिक्षैषणामें भिक्षु सतत उद्यमवान् रहे। अखिल जगत्के जीवों की रक्षा के लिए दया के लिए, श्रीमहावीर भगवान्ने इस प्रकार प्रवचन किया है। यह प्रवचन आत्माके लिए हितकारक है, जन्मान्तरमें शुद्ध-फलका देने वाला है, आगामी कालमें कल्याणकारक है, निर्दोप शुद्ध है, न्याय्य है, मोक्ष-

प्राप्ति के लिए सरलतम है और सब प्रकारके दुःख पापको उपशम करने वाला है ॥२२॥

इसकी पांच भावनाएं-पहले महाव्रत प्राणातिपात विरमण व्रतकी रक्षाके लिए पांच भावनाएं हैं। पहली भावना-स्थानमें स्थिति करते समय-चलते समय अपनेको और औरोंको उपघात न हो ऐसी रीतिसे गुण-योग युक्त और (गाड़ी के) जुए के प्रमाणसे समृद्ध भूमि पर दृष्टि पड़े अर्थात् ३॥ हाथ भूमि आगे देखकर चले। कीड़े, फतिंगे, त्रस, स्थावर, जीवों पर जो दयालु है और नित्यप्रति पुष्प-फल-वक्कल-अंकुर-कन्द-मूल-पानी--मिट्टी-बीज—वनस्पति इत्यादि को सजीव जानकर जो उनका परिहार करता है; उसे सम्यक् प्रकारसे (ईर्यासमितिपूर्वक) बचाकर चलता है। किसी भी प्राणीकी अवगणना, निन्दा, तिरस्कार नहीं करता, न उन्हें मारता है (पैरोंसे दबाकर मसल नहीं देता, न टुकड़े करता है, न छेदन करता है)। व्यथा नहीं उपजाता और जरा भी भय या त्रास नहीं देता। तथा जो इस प्रकार ईर्यासमिति योगकी भावना से भावित-युक्त है, उसका अन्तरात्मा पापके मलसे रहित, विशुद्ध परिणाम वाली और अखण्ड चरित्र वाली (सामायिकादि) भावनासे युक्त, अहिंसक, संयमवान् और साधक (साधु) बनता है।

दूसरी भावना—मनके द्वारा भी पापका चिन्तन न करे, यह पाप अधार्मिक है, दारुण है, नृशंस घातक या क्रूर है, बहुलसे वध-बन्धन-परिक्लेश उपजाने वाला है, भय-मरण-परिक्लेशके कारण अशुभ है और कदापि पापयुक्त मनसे जरा भी (प्राणातिपातादि) चिन्तन करने योग्य नहीं है। इस प्रकार मनःसमिति योगकी भावना द्वारा जो भावित-युक्त है, उसका अन्तरात्मा पापके मलसे रहित, विशुद्ध परिणाम वाली और अखण्ड चरित्र वाली भावना के द्वारा युक्त, अहिंसक, संयमवान् और (मोक्षका) सु-साधक साधु बनता है।

तीसरी भावना—वचन के द्वारा पाप न करे, यह पाप अधार्मिक और दारुण है, नृशंस है। बहुत से वध-बन्ध-परिक्लेश (अशातारूप परिताप) उपजाने वाला है, जरा-मरण-परिक्लेश-उत्पन्न होने के कारण अशुभ है, और कभी भी पापयुक्त वचन जरा भी बोलने योग्य नहीं है। इस प्रकार वचन समितियोग के द्वारा जो युक्त है, उसका अन्तरात्मा पाप के मल से रहित, विशुद्ध परिणाम वाली और अखण्ड चारित्र्य वाली भावना से युक्त, अहिंसक, संयमवान् और सु-साधक है।

चौथी भावना—(आहार समिति) एषणीय, शुद्ध, अल्पाहार की गवेषणा करना, (आहार देने वाले गृहस्थ से) अनजान रीति से, अकथित रीति से (अपना परिचय दिये बिना), अशिष्ट रीति से (दूसरे को कहे बिना), अदीनतापूर्वक, अविमनस्कतापूर्वक (आहार न मिले तो विमनस्क-उदास न हो), अकरुण रीति

से(दीनतासूचक परिणाम से रहित), विषादरहित, संयम में उद्यमवान्-मनोयोग-पूर्वक, यतनापूर्वक, संयमयोगपूर्वक, विनय-योग-क्षमा आदि गुणयुक्त, इस प्रकार भिक्षैषणा में भिक्षु उद्यमशील रहे, इस तरह से भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करके थोड़ा-थोड़ा लाकर गुरुजन के पास गमनागमन करने में लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण करके दोषों से निवृत्त होकर विचरे। जिस रीति से भोजन के पदार्थ लिए हों, निवेदन करे, गुरुजन को सब दिखलादे, और गुरु का उचित उपदेश सुनकर, निरतिचार होकर अप्रमत्त अवस्था में विचरे। यदि साधु को अनेषणा के जो कुछ दोष अनजानपनमें लगे हों और उनकी आलोचना न की हो तो उसका प्रतिक्रमण करे, फिर शान्त-चित्त से सुखनिष्पन्न (अनाबाध वृत्ति से) बैठे। फिर ध्यान शुभ योग-ज्ञान-स्वाध्याय से मुहूर्त मात्र मन को गुप्त करने वाला (निरुद्ध मन वाला साधु), धर्मभाव में मन रखने वाला, अशून्य चित्त वाला, शुभ मन वाला, अविग्रह (कलह रहित) मन वाला, समाधियुक्त (समतायुक्त) मन वाला, श्रद्धा-संवेग-वैराग्य-निर्जरा संस्थापित चित्त वाला, प्रवचन-सिद्धान्त में वात्सल्य भाव वाला, ऐसा साधु खड़ा होकर, हर्षित होकर, अपने से बड़े साधुओं को आमंत्रण देकर सब साधुओं को भावपूर्वक भोजन लेने का आग्रह करे; फिर गुरुजन की आज्ञा के अनुसार आसन, मुखवस्त्रिका, रजोहरण के द्वारा मस्तक सहित समस्त शरीरका प्रमार्जन करे, हाथ की हथेलियों का प्रमार्जन करे, फिर अमूर्छित-अगृद्ध-अग्रथित-आकांक्षा रहित, आहार की निन्दा-तिरस्कार किए बिना, रस में एकाग्रता किए बिना, विशुद्ध मनसे, अलुब्धचित्तसे, अपने लिए नहीं बल्कि परमार्थ के लिए आहार करता हूं ऐसे भावसे, सुड़सुड़ाट या चपचप (की आवाज) किए बिना, अनुत्सुकरीतिसे, अविलम्ब रीतिसे, अधिक विलंब किए बिना, भूमि पर एक बूंद भी न टपकाते हुए, प्रकाश वाले (चौड़े मुंह के) बरतनमें,यतना सहित, प्रयत्न सहित, संयोजना दोष रहित, इंगालदोष रहित, रागदोष रहित, द्वेष रहित, गाड़ी की धुरी को तेल चुपड़नेके समान, घाव पर मरहमका लेप करने की तरह, संयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए, संयम के भार को झीलने के निमित्त, इस प्रकार भली प्रकारसे संयति (साधु) मर्यादापूर्वक आहार करे। इस भांति आहार-समिति के योग से जो भावित है, उसका अन्तरात्मा मलरहित, असंक्लिष्ट परिणाम सहित, अखण्ड चरित्र की भावना से भावित होकर संयमवान् साधक बनता है।

पांचवीं भावना—वस्तुका आदान-निक्षेप समिति-पाट, छोटा पट्टा, चौकी, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, चोलपट्टक, मुख पर बांधनेकी मुखवस्त्रिका, पादपुंछन आदि सब उपकरण संयमके पोषणके साधन हैं। वायु, आताप, डांस, मच्छर, सर्दी आदिसे बचनेके लिए हैं; ये उपकरण राग-द्वेष रहित

होकर भोगने योग्य हैं। साधु सदैव इन भाजन-वस्त्र आदि उपकरणोंकी प्रतिलेखना करे, यतनासे फैलाकर देखे, प्रमार्जन करे और प्रतिदिन प्रमाद रहित होकर उन्हें निरन्तर धरे और ले। इस प्रकार आदान-भण्ड-निक्षेपणसमितिके योग से जो भावित है, उसका अन्तरात्मा पाप मलसे रहित-असंक्लिष्ट परिणाम युक्त और अखण्ड चारित्र्यकी भावनासे भावित, अहिंसक, संयमवान् सुसाधक वनता है।

अहिंसाका फल—इस प्रकार संवरद्वार को सम्यक् रीतिसे आचरणमें लाते हुए सुप्रतिहित सुरक्षित होता है। इन पांच-भावनाओं के द्वारा मन-वचन और कायसे मरण पर्यन्त सदैव सुरक्षित ये योग पांच भावना-रूप व्यापार धृतिमान् को को तथा मतिमान्को निर्वाह करने योग्य हैं। यह योग अनास्त्रवरूप है, निर्मल है, छिद्ररहित है(जिससे कर्मका जल प्रवेश नहीं कर सकता), अपरिस्रावित है(जिससे कर्म जल भीतर जरा भी नहीं जमता), चित्तके क्लेशसे रहित है, शुद्ध है और अनंत जिनेन्द्र तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है, उन्होंने स्वयं पालन करके फिर औरोंको उपदेश किया है, इस प्रकार पहला संवरद्वार अंगीकार किया है,पालन किया है,(अतिचारों-दोषों को टालकर) शुद्ध किया है, पूर्ण किया है, उपदेश किया है, आराधन किया है और जिन भगवान् की आज्ञा लेकर साधुजनोंने इसका प्रतिपालन किया है। इस प्रकार भगवान् ज्ञातनन्दन भगवान् (महावीर) ने यह सिद्धवर शासन वताया, प्रतिष्ठित-प्रसिद्ध किया, पूज्य कहा, उपदेश द्वारा प्रशस्त किया ॥२३॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

—o—

अध्ययन २—सत्यवचन

जम्बूस्वामीसे सुधर्मास्वामी कहते हैं कि जम्बू ! अव मैं सत्यवचन के विषय में दूसरा अध्ययन सुनाता हूं । सत्यवचन का प्रभाव—सत्यवचन निर्दोष, महापवित्र, मोक्षका हेतुरूप, सुजात, सुभाषित, सुव्रत-रूप, सुकथित, सुदृष्ट, (अतीन्द्रिय-दृष्टिवालों द्वारा भली प्रकार देखा गया), सुप्रतिष्ठित (सव प्रमाणोंसे प्रतिपादित), यशःकीर्तियुक्त, सुसंयमित-वचन द्वारा कहा गया, उत्तम देव—नर—वृषभ—प्रधान पुरुष—वलवान् आदमी—सुविहित जनों द्वारा वहुमान्य, परम साधुजनोंके लिए धर्माचरणरूप, तप नियम का आदर सत्कार रूप, सुगतिका मार्ग दर्शाने वाला, और लोक में उत्तमोत्तम व्रत है। विद्याधरकी गगनगामिनी विद्याका साधन, स्वर्गका मार्ग वताने वाला और सिद्धि का मार्ग दिखाने वाला सत्यवचन ही है। सत्यवचन ऋजुभावयुक्त-सरल है, अकुटिल-अवक्र है, प्रयोजन के अर्थको लेकर विशुद्ध-निर्दोष है, सत्तत्व का उद्योत करने वाला है और सर्व-भावके जीवलोकको चमकाने वाला है। अविसंवादी, यथार्थ और

मधुर सत्यवचन प्रत्यक्ष दैवत तुल्य आश्चर्यकारक है। कई बार विपरीत अवस्था में आकर घिरने वाले मनुष्य सत्यके आश्रय द्वारा महासमुद्रके मध्यमें भी निराबाध रहते हैं, डूबनेसे बच जाते हैं। (समुद्रमें) भटके हुए (उलटी विपरीत दिशामें गए हुए) और पानीके भंवर में पड़े हुए जहाज भी सत्यसे नहीं डूबते, उसके भीतरके आदमियों को कोई जोखम नहीं होती, और इच्छित स्थान (किनारा) पा लेते हैं। सत्यसे अग्निसंभ्रममें भी आदमी सुलगने से बच जाते हैं। सत्यवादी गर्म तेल, रांग, लोहा या सीसे का स्पर्श लीला मात्रमें करके धारण कर लेते हैं, परन्तु वे दाझते नहीं, पर्वतकी चोटीसे फिसलकर भी सत्यशील आदमी नहीं मरता, वे समरांगण में (शत्रुओं की) तलवारोंके घेरे में (आ) फंसने पर भी उससे बिना घाव खाए बाहर निकल आते हैं। मार पीट-बंधन या घोर शत्रुताके जालमें फंस जाने पर भी शत्रुओंके शिकंजे से यथार्थवादी अबाधित वे लोग साफ निकल आते हैं और कुशलपूर्वक अपने परिवार से आ मिलते हैं। (आपत्ति के समयमें) देवता भी सत्यवादी की-सत्यवचनमें रति रखने वालों की सहायता करते हैं।

सत्यका आचरण करने वाले—सत्य भगवान् श्रीतीर्थङ्कर देवने भली भांति दस प्रकार का कहा है। चौदह पूर्वधर जनोंने सत्यके प्रभूत-पूर्वगत अर्थको जाना और समझा है। महर्षियोंने सिद्धान्तके द्वारा सत्यको अर्पण किया है। देवेन्द्र और नरेन्द्र ने सत्यके प्रयोजन (अर्थ) का प्रकाश किया है। वैमानिक देवोंने सत्यका महाअर्थ-महाप्रयोजन साधकर बताया है। मन्त्रौषधि-विद्याकी साधनाके लिए सत्य आवश्यक है, विद्याधर-चारणादि वृन्द की और श्रमणविद्या (आकाशगमन-वैक्रेयकरण आदि) सत्यसे ही सिद्ध होती हैं। मनुष्यों के लिए सत्य वन्दनीय है, देवों द्वारा अर्चनीय एवं असुर लोगों द्वारा पूजनीय है। नाना पाखण्ड मतवालोंने भी सत्यको स्वीकार किया है। लोकमें सत्य ही सारभूत है, यह महासागरसे भी अधिक गम्भीर है, मेरुपर्वतसे भी अधिक स्थिर-अडोल है, चन्द्रमण्डलसे अधिक सौम्य है, सूर्यमण्डल से भी अधिक दीप्तिमान्-प्रकाशमान् है, शरदृऋतुके आकाशसे भी अधिक निर्मल है, गन्धमादन पर्वतसे भी विशेष सुगन्धित है। लोकके सब मन्त्र-योग आदि (वशीकरणादि), मन्त्र-जाप, विद्याएं, जृम्भक-देव, अस्त्र-शस्त्रादि, (किं वा अर्थशास्त्रादि) शिक्षण (कलादि) का आगम सिद्धान्त है, ये सब सत्यके द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

न बोलने योग्य सत्य—यदि सत्य संयमका उपरोधक हो तो उसे तनिक भी न बोलना चाहिए। हिंसा और पापसे युक्त, जिससे चरित्रका घात होता हो, विकथा वाला (स्त्री आदि की विकथा), अनर्थवाद वाला, कलहकारक, अनार्य (किं वा अन्याय्य), अपवादयुक्त, विवाद-बवंडर उपजाने वाला, (औरों की) विडम्बना करने वाला, ओजसयुक्त (बल-जोशसे कहा गया), धैर्ययुक्त,

(हिम्मत से भरपूर), लज्जारहित, लोकनिन्दाका पात्र, दुर्द्दष्ट (बुरी तरह देखा गया), दुःश्रुत (असम्यक् प्रकारसे) सुना गया, अविधिसे जाना गया, आत्म-श्लाघासे युक्त, परनिन्दा से युक्त सत्य हो तो भी उसे कभी न बोलना चाहिए। "तू बुद्धिमान् नहीं है, तू धनका लेनदार नहीं है, तू धर्मप्रिय नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दाता नहीं है, तू शूर नहीं है, तू रूपवान् नहीं है, तू सौभाग्यवान् नहीं है, तू पण्डित नहीं है, तू बहुश्रुत नहीं है, तू तपस्वी नहीं है, तू परलोक के सम्बन्धमें निश्चयकारिणी मति वाला नहीं है," इस भांतिके वचन यदि जाति-कुल-रूप-व्याधि-रोग आदि के हों तो वे त्यागने योग्य हैं। द्रोहकारक और उपचार-भाव-पूजा का अतिक्रमण करने वाला सत्य हो तो भी वह बोलने योग्य नहीं है।

बोलने योग्य सत्य—सत्य ऐसे ढंगसे बोलना चाहिए कि द्रव्य, पर्याय, गुणकर्म (कृषि आदि व्यापार), नानाविध कला और आगम, सिद्धान्त आदिसे युक्त हो; एवं नाम, क्रियापद, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, सन्धि, पद, हेतु, यौगिक, उण् (प्रत्यय), क्रियाविधान, धातु, स्वर, विभक्ति, वर्ण आदि (व्याकरणके अंगों) से समृद्ध सम्पूर्ण (सत्य) वचन हो, फिर तीनों काल में (भूत-वर्तमान-भविष्य) सत्य हो उसे ही बोले।

दस प्रकारका सत्य—१ जनपद, २ संमत, ३ स्थापना, ४ नाम, ५ रूप, ६ प्रतीत, ७ सत्य, ८ व्यवहार, ९ भाव, १० योग; ये सत्य भी जिस प्रकार बोले जायं उसी तरह कार्य करके (अक्षरसे) लेखन करने आदि में अथवा हाथ-भौं आदिकी क्रिया की सूचनामें दर्शाना। भाषाके १२ भेद—संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश, इन छहों भाषाओंका गद्य और पद्य भाग।

वचन १६ प्रकार के होते हैं—तीन वचन, तीन लिंग, तीन काल, प्रत्यक्ष और परोक्ष, उपनीत, अपनीत, उपनीत-अपनीत, अपनीत-उपनीत और अध्यात्म इस प्रकार तीर्थंकर-भगवान्का अनुज्ञात कराया हुआ, बुद्धिसे पर्यालोचित किया हुआ वचन संयमवन्त मनुष्य यथा अवसर बोले। इस प्रकारके असत्य वचन, निन्दा-चुगली, कठोर वचन, अनिष्ट वचन और चपल-अधैर्ययुक्त वचनके निवारणके लिए भगवान्ने अपने प्रवचन (सिद्धान्त) में कहा है। यह प्रवचन आत्माको हितकर है, परभव में शुभफलदायक है, आगामी कालमें कल्याण-कारक है, शुद्ध है, न्याय्य है, कुटिलतासे रहित है, सर्वोत्तम है, सर्व दुःख-पापका उपशमन करने वाला है ॥२४॥

पांच भावनाएं—इस व्रतकी भी पांच भावनाएं हैं। असत्य वचनसे छुटकारा पानेके लिए, सत्य वचनकी रक्षाके लिए, पहली भावना इस प्रकार है—(सद्गुरुके समीप) संवरका अर्थ तथा परमार्थ (मोक्षलक्षणयुक्त) सुनकर,

भली प्रकार जानकर, अतिशीघ्र, झटपट, चपल, अनिष्ट, कठोर, साहसिक, पराई देहको पीड़ाकारक और सावद्य (पापयुक्त) वचन न बोले। सत्य, हित-मित, परिमित, ग्राहक (प्रतीतियुक्त), शुद्ध, सुसंगत, स्पष्ट, समीहित (बुद्धि द्वारा पर्यालोचित) वचन संयमवान मनुष्यको अवसरके अनुकूल बोलना उचित है। इस प्रकार अनुविचिन्त्य-समितिके योग-लक्षण द्वारा जो भावित होता है उसका अन्तरात्मा हाथ-पैर-आंख-मुंह आदि को संयत करता हुआ साधु और सत्यार्जवसे सुसम्पन्न हो जाता है।

दूसरी भावना—इस भावनामें क्रोध का सेवन नहीं किया जाता, क्योंकि क्रुद्ध और रुद्र मन वाला आदमी ही झूंठ बोलता है, दूसरेका अपवाद करता है, कठोर वचन कहता है, कलह करता है, वैर बढ़ाता है, विकथाएं करता है। झूंठ-अपवाद-कठोरवाणी-कलह-वैर-विकथाओंमें पड़ता है। सत्यका हनन कर डालता है, शील और विनय का नाश करता है, सत्य-शील-विनयको बिल्कुल मिटा देता है। अप्रिय होता है, वस्तुदोपका आवास घर बन जाता है, परिभव (निगमन) होता है, अप्रिय-दोपावास-परिभव पाता है, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके मृषावचन (क्रोधाग्निसे सुलगते हुए वचन) कह बैठता है; इसलिए क्रोधका सेवन न करे। इस भांति जो क्षमासे भावित होता है उसका अन्तरात्मा हाथ-पैर-नयन-वदन आदिको संयत रखता हुआ साधु और सत्यार्जवसे सम्पन्न बनता है।

तीसरी भावना—मैं लोभका सेवन नहीं करता। लोभी-लालची आदमी क्षेत्र घर आदिके अर्थ झूंठ बोलता है, कीर्ति और औपध आदिके लिए मिथ्यावचन कह डालता है, ऋद्धि-परिवार आदि और सुखके लिए असत्य बोलता है, भोजन पानी आदिके लिए अलीक वचन कहता है, तख्त, चौकी, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पैरपोंछना, चेला चेली आदि अनेक कारणोंसे लोभसे लुब्ध आदमी खोटे वचन बोलता है, इसलिए लोभका सेवन न करे। इस प्रकार मुक्ति-निर्लोभता की भावना से जो भावित है उसका अन्तरात्मा हाथ-पैर-आंखें, मुख आदिका संयमन करता हुआ साधु सत्यार्जवसे सम्पन्न होता है।

चौथी भावना—इसमें सात प्रकार के भयोंमें से किसी तरह का भय उत्पन्न नहीं हो पाता। डरपोक आदमी को अतिशीघ्र अनेक प्रकार के भय आ घेरते हैं, डरे हुए आदमी की कोई मदद नहीं करता, डरे हुए को भूत प्रेत भी डराया करते हैं, भयभीत मनुष्य दूसरों को भी डरा देता है, डरा हुआ आदमी तप-संयम तक छोड़ बैठता है, डरपोक आदमी सत्पुरुषों द्वारा सेवन किए हुए सन्मार्ग के पालन करने में समर्थ सिद्ध नहीं होता, इसलिए डरको कभी स्थान न दे। डरने से व्याधि-रोग-जरा-मृत्यु और अन्यान्य अनेक भय उपजते हैं। इस भांति जो साधक धैर्यसे

सम्पन्न होता है, उसका अंतरात्मा हाथ-पैर-मुंह को संयत करता हुआ साधु सत्यार्जवसे युक्त होता है।

पांचवीं भावना में—हंसी और मजाक का सेवन नहीं किया जाता। परिहास करने वाले झूठे (असद्भूत अर्थ वाले अशोभन-व्यवहार में भद्दे) वचन बोलते हैं, वे वचन पराभव-तिरस्कारके कारण हैं (पर के लिए खिल्ली उड़ाने के कारण कलह रूप होते हैं), हास्य-परपरिवादका कारण होते हैं, चरित्र भेदन के निमित्त बनते हैं, औरों को पीड़ा उपजाने का कारण बनते हैं, विमूर्ति (नयन-वदन-आकृति के विकृत-विगड़नेका कारण) हो जाते हैं, अन्यान्य कुचेष्टाका कारण होते हैं, लोकनिन्द्य कर्मके कारण हो जाते हैं, कन्दर्पदेव-भाण्ड-वृत्तिका साधन बन जाते हैं, आदेशकारी देवता (अभिगमनका निमित्त) होते हैं, भुवनपति आदि देवताओंका कारण हो जाता है, आसुरी गति और चाण्डालरूप (किल्विष) देवताका निमित्तभूत हो जाता है, (किसीका हास्य, उपहास (हंसी मजाक) उन-उन अधम देवों की गतिमें उपजने का कारण रूप हो जाता है)। इस लिए किसीका उपहास कभी न करे, और जो मौन साधन द्वारा भावित होता है, उसका अन्तरात्मा हाथ-पैर-आंख-मुख संयत करता हुआ साधु सत्यार्जवसे सम्पन्न हो जाता है।

इस रीतिसे इस संवरद्वार का सम्यक् रीतिसे समाचरण करते हुए वह उत्तमोत्तम निधानरूप सिद्ध होता है। इन पांच कारणों द्वारा मन-वाणी और शरीर से सुरक्षित होते हुए यह (सत्यवचन) योग मरण पर्यन्त धृतिमान् और मतिमान् आदमी को नित्यप्रति निर्वहन करने योग्य है। अनास्रवयुक्त, निर्मल, अच्छिद्र, अपरिस्रवित, कलहरहित, सब तीर्थङ्करों द्वारा अनुज्ञापित किया हुआ, यह दूसरा संवरद्वार कायाके द्वारा स्पर्शन करने योग्य, पालन करने योग्य, अतिचारोंका निवारण करके शुद्ध करने योग्य, पार उतारने योग्य, औरों को उपदेश द्वारा प्रेरणा देने योग्य, अनुपालन करने योग्य और आज्ञानुसार आराधना करने योग्य है। इस तरह ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्‌ने सम्यक् उपदेश किया है, निरूपण किया है और इसे अखिल विश्वमें प्रसिद्ध किया है। इस रीतिसे यह सिद्धशासन सदुपदिष्ट और प्रशस्त है ॥२५॥

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

—❀—

अध्ययन ३--दत्तादानग्रहण--अचौर्य

जम्बूस्वामीसे सुधर्मास्वामी कहते हैं कि जम्बू ! अब मैं "दत्त तथा अनुज्ञात वस्तुएं ही ग्रहण की जायं," इस सम्बन्ध में संवरका तीसरा अध्ययन सुनाकर उसका स्वरूप समझाता हूं।

दत्तादान का स्वरूप—हे सुव्रत ! (जम्बू !) यह महाव्रत है और गुणव्रत भी

है। इस लोक और परलोक के सुधारका निमित्तभूत है। परद्रव्यके हरण करने में विरक्तियुक्त, अपरिमित तथा अनन्ततृष्णारूप और अनुगत (वस्तुओंकी अपेक्षा) महेच्छारूप जो मन-वचन के द्वारा होने वाला पापरूपी ग्रहण (आदान) के भली प्रकार निग्रह-युक्त, अच्छी तरहसे संयमित मन-हाथ-पैर आदिके संवरण-युक्त, (बाह्य तथा अभ्यन्तर) ग्रन्थिको तोड़ने वाला, निष्ठायुक्त (उत्कृष्ट), निरुक्त (तीर्थङ्करों द्वारा पूर्णतासे कहा गया), आस्रव-रहित, निर्भय, विमुक्त, (लोभके दोषसे रहित), उत्तम, नरवृषभ द्वारा प्रधान बलवान् मनुष्यों और सुविहित (साधु)जनोंसे मान्य किया हुआ और परम साधुओंका धर्मानुष्ठानरूप यह(तीसरा) व्रत है। गांव-आगर-निगम-खेड-कव्वड-मण्डप-द्रोणमुख-सम्वाह-पट्टण-आश्रम आदिका कोई भी द्रव्य जैसे कि मणि-मुक्ता(मोती), शिला-प्रवाल-कांसो(धातु), वस्त्र-सोना-चान्दी-रत्न आदि कुछ भी क्यों न पड़ा हो, या किसीका खोया गया हो, और वह पड़ा पा गया हो(और उसके मालिकको मिलता न हो),फिर उसके विषय में किसी से कहना या स्वयं उठा लेना, साधुको नहीं कल्पता है। हिरण्य-सुवर्णसे रहित-पन और पत्थर तथा कंचन को समान जानने वाला (ऐसी उपेक्षावृत्तिसे) केवल अपरिग्रह और संवृत (इन्द्रियोंके संवरयुक्त) भावसे, साधुको लोकमें घूमना चाहिये। कुछ भी द्रव्यादि पदार्थ खलिहान या खेतमें हो, जंगल में हो, कुछ फूल-फल-वक्कल-मंजरी-(प्रवाल)कन्द-मूल-घास-लकड़ी-कंकर आदि वस्तुएं मूल्यवान् या विशेष मूल्य की हों, थोड़ी हों या बहुत हों, फिर भी साधु उन वस्तुओं को उसके मालिककी आज्ञा पाये बिना न ले। प्रतिदिन अवग्रह पाकर (मालिककी आज्ञा लेकर) उन-उन कल्प्य वस्तुओंको ही साधुको लेना उचित है। साधु से अप्रीति करने वाले के घरमें प्रवेश या ऐसे किसी अप्रीति वालेके घरका भोजन-पानादि साधुको लेना अनुचित है। एवं अप्रतीतिकारीके यहां से पाट, पट्टे, शय्या, संस्तारक, कपड़े, बर्तन, कंबल, रजोहरण, तख्त, चोलपट्टक, मुख पर बांधनेकी मुख-वस्त्रिका, पादप्रोंछन, भाजन, वस्त्रादि उपकरण भी न ले। दूसरे के अपवाद (विकथा) औरोंके दोषोंको दिखाकर या किसी पर के नामसे (आचार्य या साधुके बहानेसे) किसी प्रकार की वस्तु न ले, इस रीतिके दोष भी साधुके लिए त्याज्य हैं। इस भांति दूसरों के द्वारा किया गया उपकार (सुकृत) का नाश करना (ईर्षा भावसे किसी के उपकारकी अवगणना करना),इस ढंगके कार्य, दान में विघ्न खड़े करने वाले कार्य, दानका विनाश, दूसरोंकी खोटी-खरी चुगली-चाड़ी, तथा मत्सरित्व (किसी के गुणोंमें असहिष्णुता) ये सब दोष (तीर्थङ्करों द्वारा अनुज्ञात न किए गए होनेके कारण) त्याग करने योग्य हैं।

अचौर्यका अनाराधक और आराधक—जो साधु तख्त, चौकी, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, छोटी चौकी, चोलपट्टक, मुंह पर

बांधने की मुखपत्ती, पैर पोंछने का कपड़ा आदि तथा भाजन, भंड इत्यादि उपकरण(आचार्य ग्लान आदिको) न बांट दे, ऐसे उपकरण दोषमुक्त-सूझते मिलें तो भी उन्हें लेने की रुचि न करे। जो तप का चोर हो, वाचाका चोर हो, रूपका चोर हो, आचार धर्म (सामाचारी) का चोर हो, भावका चोर हो, (औरोंका व्याख्यान सुनकर जो अपनी मुहर लगाकर व्याख्यान करता है और उसका भाव स्वयं खोज निकालने का दावा करे)। (रातमें) प्रगाढ़-ऊंचे स्वरमें बोले, गच्छमें फूट डालता हो, कलह करता हो, वैर बढ़ाता हो, विकथा-बकवास करता हो, चित्त में असमाधि उत्पन्न करता हो, सदा प्रमाणरहित भोजन करता हो (बत्तीस ग्रास से अधिक खाने वाला), निरन्तर वैर विरोध को टिकाए रखता हो, नित्य नया रोप या अप्रसन्नता रखता हो, ऐसी प्रकृतिका साधु तीसरे व्रतका आराधन नहीं कर सकता।

इस व्रतका आराधन कैसे साधु कर सकते है? जो वस्त्र-पात्र, भोजन-पान लेने तथा देनेमें कुशल हैं, अत्यन्त बालक-दुर्बल-ग्लान-वृद्ध-मासक्षपणादि (एक महीनेका या अधिक) तप करने वाले, आचार्य-उपाध्याय-शिष्य-सहधार्मिक-तपस्वी-कुल-गण-संघ-ज्ञानार्थी आदिकी वैयावृत्य अपने कर्मक्षय करनेके लिए कीर्ति आदिकी वाञ्छासे रहित होकर, १० अथवा कई रीतिसे करते हैं। जो अप्रतीतिकारीके घर में प्रवेश नहीं करते, अप्रतीतिकारीका भोजन-पानी नहीं लेते, अप्रतीति-कारकसे लेकर तख्त-चौकी-शय्या-बिस्तर-वस्त्र-पात्र-कम्बल-रजोहरण-बैठने का छोटा पट्टा (पीढ़ी), चोल्लपट्टक, मुंह पर बांधनेकी मुंहपत्ती, पादप्रोंछन आदि भाजन, वस्त्रादि उपकरणोंका उपयोग नहीं करता। जो किसीका अपवाद नहीं बोलता, पराये दोपको अपने ऊपर नहीं लेता, पराये (वृद्धादिके) निमित्त जो कुछ भोजन-पान आदि बनाया है उसे नहीं मांगता, जो किसी भी मनुष्यको (दानादि धर्मसे) विमुख नहीं करता, जो किसीके दियेका-अच्छे कामसे इन्कार नहीं करता, जो (दान) देकर अथवा वैयावृत्यादि करके पीछेसे पछतावा नहीं करता, जो (मिले हुए भोजन-पान आदिके) संविभाग करनेमें कुशल है, जो संग्रहोपग्रहमें (शिष्यादि को भोजन तथा ज्ञानका दान करनेमें) कुशल है, ऐसे साधुजन इस व्रतका आराधन कर सकते हैं।

पांच भावनाएं—पराये धनके हरणसे विरमनेके व्रत का सम्यक् रक्षण करनेके लिए श्री भगवान्ने समस्त जीवोंके लिए हितकारी परभवमें उपकारक, आगामी कालमें कल्याणकारक, न्याययुक्त, अकुटिल, सर्वोत्तम, सर्व दुःख-पापका उपशमन करने वाला प्रवचन किया है। उस तीसरे व्रतकी पांच भावनाएं इस तरह हैं।

पहली भावना—पराये धनके चुरानेसे विराम पानेके व्रत की रक्षाके लिए इस भावनामें देवकुल, सभास्थान (महाजन स्थान), प्याऊ, परिव्राजक का मठ,

वृक्षका मूल, वगीचा, पहाड़की गुफा, (लोहादिकी) खान, गिरि कन्दरा, चूना निकालने-बनानेका स्थान, उद्यान, यानशाला (वैलखाना), घर की वखारी या दुछत्ती, माल भरनेका स्थान, यज्ञादिकका मण्डप, सूना घर, मरघट, लयन (पहाड़ी मकान), दुकान तथा अन्यान्य स्थानोंमें साधुको विहार करना उचित है। मट्टी, पानी, बीज, हरियावल, त्रसजीव काई आदिसे रहित एवं गृहस्थने अपने लिए बनाया घर प्राशुक (निर्दोष) हो, जिसमें स्त्री-पशु और नपुंसक न रहते हों, प्रशस्त-अच्छा हो, ऐसे उपाश्रयमें ही साधु वसेरा करता है। जहां बहुतसे आधाकर्म (साधुके नाम पर आरम्भ) करनेमें आए हों, जैसे कि वहुत सा पानी का छिड़काव किया गया हो, झाड़ू देकर साफ किया…हो, पानीसे पृथ्वी तर की हो, (माला-फूल-तोरण-बंदन-वार-झंडी आदि से) सजाया हो, (दाभ आदिसे) छप्परकी तरह छाया हो, खड़िया या चूनेकी सफेदी कराई हो, गवरिंडी फिरवाई हो, लीपने के वाद पोचा देकर फिर लीपा-पोता हो, (सरदी मिटानेके लिए) आग सुलगाई हो, (साधुके लिए) वासन-भाण्डोंका हेरफेर किया हो, तो ऐसे आगम-निषिद्ध उपाश्रय-स्थानके भीतर साधुको न रहना चाहिए। उपाश्रयके वाहर और भीतर साधुके लिए समारम्भ करवाया हो तो साधु वहां न रहे। इस भांति अलग-अलग स्थान के दोषोंसे रहित स्थानमें रहकर जो वस्ती-समिति योगसे भावित है उसका अन्तरात्मा दुर्गतिमें पटकने वाले पापकर्म करने करानेके दोषसे नित्य विरति पाता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि रखने वाला होता है।

दूसरी भावना—इसमें अनुज्ञात-पूछकर लिये संस्तारकका ग्रहण करे, अर्थात् वाग वगीचे-उद्यान-कानन-वन प्रदेशोंमें जो कुछ (अचित्त) घास जलाशयमें उत्पन्न वनस्पति (कसेरघास आदि) के पत्ते, परा(एक तरहका तृण)मूंज-भाभड-कुश-दाभ-पुराल-मूय (च) क (मेवाड़ी जात का घास), वल्वज (घासकी किस्म), सूखे वक्कल, तृण काठ, कंकर आदि संस्तारक-विछौने या कपड़े आदिके लिये अनुज्ञा मांगकर लेना उचित है, अनुज्ञा मांगे विना, अदत्त-विना दिया न ले। इस भांति अवग्रह समितिके योगसे जो भावित है, उसका अन्तरात्मा दुर्गतिमें गिराने वाले पाप कर्म करने-करानेके दोपसे नित्य विरति पाता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रहकी रुचि प्राप्त करने वाला होता है।

तीसरी भावना में—काष्ठशय्या-तख्त, चौकी, विस्तर-शय्या आदिके लिए वृक्ष न काटे जायं, (वृक्षके) छेदन भेदनके द्वारा या (भूमि-पत्थरको) फोड़कर शय्या न वनाए। जिस गृहस्थके स्थानमें निवास किया हो वहां ही शय्याकी गवेषणा करे, ऊंची नीची भूमि देख कर उसे सम-वरावर न करे, हवाके अभावमें या अधिक हवा आती हो तो भी उसके विषयमें किसी प्रकारकी उत्सुकता खटपट न करे, डांस-मच्छर-जवे-चीचड़ आदिका(उपद्रव)हो तो भी क्षुब्ध न हो, अग्नि द्वारा

धुआं न करावे, इस प्रकार संयम (पृथ्वी आदिके जीवों के रक्षण)में अति-तत्पर, संवर (आस्रवद्वार के रोकने)में अतितत्पर, संवृत(कषाय और इन्द्रियके संवर) में अति-तत्पर, चित्तसमाधिमें अति-तत्पर, धैर्यवान्, कायाके द्वारा (परिषहों को) सहन करता हुआ जो निरन्तर अध्यात्मध्यान (आत्म-चिन्तन) से युक्त है, वही समभावसे (रागद्वेषरहित) चरित्र धर्मका आचरण करता है। इस तरह जो शय्यासमितिके योगसे भावित है, उसका अन्तरात्मा दुर्गतिमें गिराने वाले पापकर्म करने करानेके दोषसे नित्यप्रतिकी विरति पाया हुआ अनुज्ञात अवग्रह की रुचि धारण करने वाला होता है।

चौथी भावना—इसमें संयतिको साधारणतया-बहुतसे घरोंका आहार जिस पात्र में आता है, वह सम्यक्रीतिसे (अदत्तादान न समझा जाय इस ढंगसे) भोजन करना उचित है। आहारमें शाकादिका भाग अधिक न ले, भोजनका भी अधिक भाग न ले (ऐसा करने से अन्य साधुओंसे अप्रीति होती है), जल्दी जल्दी न खाने लगे, शीघ्रगति से आहार न करे, चपल रीति से आहार न ले, सहसा-एक दम भोजन न करे, दूसरेको पीड़ा उपजे ऐसी विधिसे आहार न करे, तथा सावद्य-पापरूप आहार ग्रहण न करे ऐसी विधि से आहार ले कि जिससे तीसरा व्रत खण्डित न हो, साधारण पिण्ड-पात्र आहार मात्र ले और जरा सा भी अदत्तादान विरमण व्रतके नियम को खण्डित न होने दे। इस ढंगसे साधारण पिण्डपात्र समितिके योग से जो भावित है, उसका अन्तरात्मा दुर्गति में डालने वाले पापकर्म करने कराने के दोषसे नित्य विरति पाता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रहकी रुचि-युक्त होता है।

पांचवीं भावना—इसमें सहधार्मिकोंका विनय करना होता है, उपचारमें (रोगी साधुकी सेवा-सार संभाल करनेमें), पारणकके प्रसंगमें (तपस्वीके तपके पारणक-पूर्तिके समय), विनय करना, (सूत्रादिकी) वाचनामें तथा उसके परावर्त में (ग्रहण किए हुए सूत्रार्थ के दुहराने-बार बार स्मरण करने में) विनय करे, भोजनादिका दान करने और लेनेके समय तथा (भूला हुआ सूत्रार्थ) पूछते समय विनय करे, उपाश्रय-स्थानकसे बाहर जाते समय या लौटकर प्रवेश करते समय विनयका समाचरण करे, निकलते समय 'आवस्सही' और प्रवेश करते समय 'निस्सही' शब्दका उच्चारण करे। इसके अतिरिक्त और बहुतसे कार्योंमें विनयका विधान करना आवश्यक है। विनय भी एक तप है, और तप ही धर्मका मुख्य अंग है। इसलिए साधु-गुरु और तपस्वीका विनय करना कभी न चूके। जो विनयसे समृद्ध है, उसका अन्तरात्मा दुर्गतिमें रुलाने वाले पाप कर्म करने-करानेके दोषसे नित्यप्रति विरत रहता हुआ, दत्त अनुज्ञात-अवग्रहकी रुचियुक्त होता है।

इस प्रकार संवरद्वारका सम्यक् प्रकार से आचरण करते हुए मौलिक निधान-कोषके समान हो जाता है। इन पांच कारणों द्वारा मन, वचन, कायाको सुरक्षित रखते हुए यह योग (दत्तादान ग्रहण) मरण पर्यन्त धैर्यवान् एवं मतिमान् साधक द्वारा नित्य-व्यवधान रहित निर्वाह्य है। अनास्रवयुक्त-निर्मल-अच्छिद्र-अपरिस्रवित-क्लेशरहित-सर्व तीर्थकरों द्वारा अनुज्ञापित-यह तीसरा संवर-द्वार कायाके द्वारा स्पर्श्य है, पालन करने योग्य है, अतिचारोंको टालकर शुद्ध करने योग्य है, पार उतारने योग्य है, और औरोंको उपदेश करने योग्य है, अनु-पालन और आज्ञानुसार आराधन करणीय है। इस तरह ज्ञातपुत्र-भगवान् महावीरने अपने उपदेशमें कहा है, प्ररूपित किया है और प्रसिद्ध किया है, इस प्रकार यह सिद्धशासन सदुपदिष्ट और प्रशस्त है ॥२६॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

—०—

अध्ययन ४—ब्रह्मचर्य

श्री जम्बूस्वामीसे भगवान् सुधर्मा कहते हैं कि हे जम्बू ! अब मैं ब्रह्मचर्य विषयक चौथा अध्ययन सुनाता हूं। ब्रह्मचर्यका स्वरूप—ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम (पिण्ड-विशुद्धि आदि उत्तर-गुण), ज्ञान-दर्शन-चरित्र, सम्यक्त्व तथा विनयका मूल कारण-रूप है। यम (अहिंसादि), नियम (पिण्डविशुद्धि आदि), प्रधानगुण से युक्त है। हिमालय पर्वत से भी महान् तेजस्वी (व्रत)है। प्रशस्त, गम्भीर और स्थिर अन्तःकरणसे युक्त है। आर्जव (सरलता) युक्त साधुजनों द्वारा आचरण किया हुआ है। मोक्षमार्ग रूप है, विशुद्ध-सिद्धगतिका स्थानरूप है,शाश्वत अव्याबाध (अबाधा-रुकावटका काम नहीं) है, इसकी साधना पूर्ण होने पर पुनर्भव-पुनर्जन्म नहीं होता, प्रशस्त है, (रोगादिका अभाव होनेके कारण) सौम्य है, सुखरूप है, शिव-अचल और अक्षयकर है, मुनिवर इसका सम्यक् पालन करते हैं। सुचरित (शोभाका अनुष्ठान) रूप है, सुसाधित-अच्छे प्रकारसे प्रतिपादित किया हुआ है, मुनिवर-महापुरुष-धीर-शूरवीर और धार्मिक-आदमियोंने, तथा धैर्य रखने वालोंने सदैव सर्वायुभरमें एवं प्रत्येक अवस्थामें विशुद्धरीतिसे प्रतिपालन करते हुए अपना कल्याण किया है, भव्यजनोंने निश्शंक होकर उसे निभाया है। ब्रह्मचर्य निर्भय-अवस्था है, तुष-रहित-तृणसे अलग किये हुए दानेके समान शुद्ध है, खेद उपजने के कारणोंसे मुक्त है, पापकी चिकनाईसे अलग है, वृत्ति-स्वस्थता या समाधिका घर है, बिल्कुल अडोल-इसे कोई हिला नहीं सकता, तपसंयम का मूल दलरूप-या तनेके समान है। पांच महाव्रतोंमें सम्यक्तया सुरक्षित है; पांच-समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त है। उत्तम-ध्यानको सुरक्षित रखनेके लिए किवाड़

की तरह है, शुभध्यानकी रखवालीके लिए शृंखला है, दुर्मतिके मार्गको रोकनेके लिए निरुद्ध तथा आच्छादित करने वाला खासा सन्नाह जैसा है, सुगतिके मार्गको बताने वाला तथा लोकमें सबसे उत्तम है, यह व्रत पद्मसरोवर और तालावकी पालके समान है, बड़ी गाड़ीके आरोंकी नाभिकी तरह (क्षमा आदि गुणोंका आधार) है, अत्यधिक फैले हुए वृक्षके तने जैसा है, विशाल नगरके किलेके किवाड़ोंकी अर्गला है, पक्की रस्सीसे बंधे हुए इन्द्रध्वजके स्तम्भकी भांति उन्नत एवं निर्मल है, अधिक क्या कहा जाय, यह साधन अनेक गुणोंसे समृद्ध है।

ब्रह्मचर्य भंग कैसे होता है?—(जैसे घड़ा गिरकर या ठोकर खाकर फूट जाता है, ऐसे ही आत्मावलोकनसे विमुख होने पर) ब्रह्मचर्य भी सहसा सर्वथा भग्न हो जाता है। (दहीके मथे जाने की तरह, विभाव-विचारमें) मर्दित हो जाता है।(किसी पदार्थके चूर्ण की तरह)मोहभावसे चूर्णित, छोटे-छोटे कणके रूपमें हो जाता है। (शरीरमें निकम्मे शल्यके घुस जानेके समान) शल्ययुक्त हो जाता है। (पर्वतके शिखरके ऊपरसे टूट पड़ने वाले पत्थरके टुकड़ेकी भांति) सम्यक् चरित्र के आश्रयसे चलित होकर नीचे की ओर टूट पड़ता है। (महलके शिखरसे गिरने वाले कलशके समान-भव भ्रमणके फेरसे) अधःपतन हो जाता है। (लकड़ीके टुकड़ों की तरह) इन्द्रिय जनित वासनासे प्रेरित होकर खण्डित हो जाता है।(कोढ़ आदि से अंगके सड़ जानेके समान लालसा में) सड़कर विध्वस्त हो जाता है और (दवा-नलसे जले हुए वृक्ष के सदृश-अनात्मभावके आने पर) विनष्ट हो जाता है।

ब्रह्मचर्यकी महत्ता—ब्रह्मचर्यव्रत विनय-शील-तप-नियम आदि गुणोंका समूह, विशाल और व्यापक है। जैसे ग्रह-नक्षत्र और तारोंमें चन्द्रमा-महान है, जैसे मणि, मोती, शिला, प्रवाल, रक्त (विद्रुम आदि) रत्नकी खानोंमें समुद्र-बड़ा है, जैसे मणियोंमें वैडूर्यमणि महान् है, जैसे समस्त आभूषणोंमें मुकुट प्रधान है, वस्त्रोंमें जैसे क्षोमयुगल (रुईका कपड़ा) मुख्य है, फूलोंमें जिस प्रकार कमल या कपासका फूल श्रेष्ठ है, चन्दनोंमें गोशीर्षचन्दन उत्तम है, औषधियोंके स्थानोंमें हिमवान् पर्वत, नदियोंमें सीतोदा नदी, समुद्रमें स्वयम्भूरमण, माण्डलिक पर्वतोंमें रुचकपर्वत, हाथियोंमें ऐरावत, मृगों-वन्यपशुओंमें सिंह प्रधान, प्रवकाण (सुवर्ण-कुमारोंमें) वेणुदेव, पन्नगों-नागकुमारोंमें धरणेन्द्र, कल्पोंमें-पांचवां ब्रह्मदेवलोक, पांच सभाओंमें सौधर्मकी सभा, आयुष्यमें सातवीं स्थिति (अनुत्तरविमानवासी देवों का आयु), दानोंमें अभयदान, कम्बलोंमें लालरंगका रत्नकम्बल, संहननमें वज्र-ऋषभनाराचसंहनन, संस्थानमें समचतुरस्र संस्थान, ध्यानमें परम शुक्लध्यान, ज्ञान में केवलज्ञान, लेश्याओंमें परम शुक्ललेश्या, मुनीश्वरोंमें तीर्थङ्कर सर्वश्रेष्ठ, क्षेत्रों-वासोंमें विदेहक्षेत्र, गिरिवरोंमें मेरु, वनोंमें नन्दनवन (मुख्य), वृक्षोंमें जम्बू-सुदर्शन

नामक वृक्ष की ख्याति है (इसीके नामसे यह जंबू-द्वीप कहलाता है), राजाओंमें तुरगपति-गजपति-रथपति-नरपति सुविख्यात है, और रथियोंमें महारथी-कर्मरिपु की सेनाको हराने वाला बड़ा है, इसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत सबमें महान्-प्रधान-मुख्य और सर्वोपरि है। एक तान ब्रह्मचर्यव्रतका आराधन करने वाला अनेकानेक गुणोंसे परिपूर्ण होता है। इस व्रतका सम्यक्तया पालन करनेसे सारे व्रत-शील-तप-विनय-संयम-क्षमा-गुप्ति-निर्लोभता आदि सब धर्म सुगमतासे पालन किए जा सकते हैं। इस साधन की सफलतामें इस लोक तथा परलोकमें यशःकीर्ति तथा प्रत्यय-विश्वास"यह साधुजन है ऐसी प्रतीति" होती है। इसीलिए निश्चल भावोंसे ब्रह्म-चर्यव्रत का पालन करना चाहिए। (मन-वचन-कायाकी विशुद्धिसे) सर्वथा विशुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन पर्यन्त जहां तक (मांस-रक्तादिसे रहित) शरीर केवल श्वेत अस्थि-मय रहे वहां तक संयमीको इसका पालन करना उचित है।

भगवान्ने इस व्रतके विषयमें कहा है कि यह ब्रह्मचर्यव्रत पांचों महाव्रतों का मूल है, साधुओंने भाव सहित निर्व्याकुल होकर भली प्रकार इसका आदरसे आचरण किया है, इसका फल वैरका उपशमन रूप है, सारे समुद्रोंमें महोदधि-रूप संसारसे पार करनेके लिये यह तीर्थरूप है, तीर्थकरों द्वारा भली प्रकार यह मार्ग दिखाया गया है, नरकगति और तिर्यञ्चगतिको रोकनेके लिए यह साधन प्रबल-तम मार्ग है, संसारकी समस्त उजली और निर्मल वस्तुओंका सार ब्रह्मचर्य है, मोक्ष तथा देवलोकके द्वारको खोलने वाला है, देव और नरेन्द्रोंसे प्रमाणित एवं पूज्य है, अखिल विश्वमें उत्तम मांगलिक मार्ग है, अद्वितीय गुणोंको प्राप्त करने वाला मात्र एक ही (उपाय) है, और मोक्षके मार्गका मुकुटरूप है, जो आदमी शुद्धरीतिसे इसका पालन करते हैं, वे ही सुब्राह्मण-सुश्रमण-सुसाधु-सुऋषि-सुमुनि-सुसंयनि और भिक्षु हैं।

ब्रह्मचारी के लिए त्याग करने योग्य—जो शुद्धरीतिसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं उनके छोड़नेके योग्य (क्रिया-पदार्थ आदि) इस प्रकार हैं—रति-राग-द्वेष-मोह और ममताके बढ़ाने वाले (अनुष्ठान), प्रमाद दोष वाले, पासत्थे-साध्वाभास बहिर्वर्ती-बहिरंगीके अनुष्ठान, अभ्यंगन-घी-मक्खन आदि चुपड़ना, तैलमर्दन, स्नान, बारंबार बगल-मस्तक-हाथ-पैर-मुंह आदि धोना, अंगचम्पी, देहचम्पी, पगचम्पी, शरीरका मैल उतारना, अंग-विलेपन, (सुगन्धित) चूर्णसे शरीरको महकाना, (अगर आदि द्वारा) शरीरको धूपदीप करना, शरीर को सजाना, जिससे शरीर कलुषित हो जाय, इस ढंगसे नख-वस्त्र बाल आदि संवारना, हंसना, कुशास्त्र-कामशास्त्रादि पढ़ना, नाच-गीत और बाजे बजाना, नट-नर्तक बाजे-बजैया-पहलवान आदिके खेल देखना, भाण्डोंका तमाशा देखना इत्यादि जो अधमाधम और शृंगारकी खानके समान हैं, तथा इनके अतिरिक्त और कई

ऐसी खराब बातें हैं, जो कि तप-संयम-ब्रह्मचर्यका घात-उपघात और विघात करने वाली हैं, उन्हें ब्रह्मचर्यका पालन करने वाला हर समय विरक्त भाव रखकर छोड़ें। उपरोक्त त्यागी अपने अन्तरात्मा द्वारा नित्य तप-जप-यम-नियम-संयम और शीलाचार के योगसे भावित होता है। (इस तप-नियम-शील व्यापारका साधन इस प्रकार है—) स्नान और दांत साफ करने की शृंगार विधिसे वह अलग रहता है, पसीना मैल-गहरे मैल चढ़ने की पर्वाह नहीं करता, मौन व्रत रखता है, केशोंका लुंचन करता है, क्षमाभावमें लीन रहता है, इन्द्रिय-विकारोंका निग्रह करता है, वेमर्याद कपड़े नहीं पहनता, भूख-प्यासको सहन करता है, लाघव-उपकरण बहुत कम रखता है, सर्दी-गर्मीको सहन करता है, लकड़ीके तख्ते पर या भूमिपर बैठता है, (गोचरचर्या—भिक्षाचर्या के लिए ही परके घर जाता है, (भिक्षा) मिले या न मिले या कम मिले पर खेद नहीं पाता, मान, अपमान और निन्दा को सहन करता है, डांस-मच्छरके उपद्रव को सहकर स्थिर रहता है, नियम-तप-गुण-विनय आदि के योगसे अन्तरात्मा में ही रमण करता रहता है और इस रीति से उसका ब्रह्मचर्य स्थिरतर-विशेष दृढ़तम होता है।

इसकी पांच भावनाएं—ब्रह्मचर्य व्रतकी रक्षाके लिए और अब्रह्मचर्य से विराम पाने के लिए श्रीभगवान् का प्रवचन सकल जीवों के लिए हितकारक, पर-भवके लिए अधिकाधिक सुखकारक, आगे के लिए कल्याणदायक, निर्दोष, न्याय-युक्त, अकुटिल, सर्वोत्तम, समस्त दुःख और पापोंका उपशमन करने वाला है। उन्होंने चौथे व्रतकी पांच भावनाएं इस प्रकार कही हैं—

पहली भावना—अब्रह्मचर्य का सर्वथा विरमण करने के लिए तथा ब्रह्मव्रत की रक्षाके हेतु पहली भावना में स्त्रीसे संयुक्त आश्रय वर्जनीय कहा है। शय्या-आसन-घर-द्वार-आंगन-छत-झरोखा-भाण्डशालादि (अनेक प्रकार की सामग्रियां रखनेका स्थान), अभिलोकनस्थान जो स्थान इतना ऊंचा हो जहां से दूरका सब दिखता हो, जैसे अटारी या मीनार। पिछवाड़े का घर, शृंगारागार, स्नातिका-न्हानेका खुला स्थान, जिस स्थान में वेश्या रहती हों, वह स्थान जहां बारबार अज्ञानतासे-मोहदोषसे रतिराग बढ़ाने वाली औरतें खड़ी रहती हों, तथा जहां कई प्रकारके-शृंगारादिककी कथाएं कही जाती हों, ये सब स्थान छोड़ने योग्य हैं। स्त्रीके संसर्ग वाले स्थान आत्मक्लेश उत्पन्न करते हैं और भी इससे मिलते जुलते स्थान भी त्यागने योग्य हैं। जहां रहने से मनोविभ्रम-मतिभंग होता हो, ब्रह्मचर्य व्रतका भंग होता हो, भ्रंशन (थोड़ा-सा भी व्रत भंग) होता हो, जहां आर्त (इष्ट विषय संयोगकी अभिलाषा रूप) और रौद्रध्यान उत्पन्न होता हो, वे सब स्थान त्याज्य हैं। पापभीरु—पापसे डरने वाला ऐसे स्थानों को अयोग्य मानता

है। जिन स्थानों पर रहने से इन्द्रियोंका राग जोर न पकड़ता हो उन स्थानों पर निवास करना उचित है। इस प्रकार स्त्रियों के संसर्ग रहित स्थानों पर वसनेकी समितिके योगसे से जो भावित है, उसका अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य में लगा होता है। इन्द्रियधर्म-पदार्थोंकी लोलुपता आदिसे जिसका मन निवृत है, वही जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्यकी गुप्तियों से युक्त होता है।

दूसरी भावना—स्त्री जनों के घेरे में बैठकर कथा न कहे। चित्र-विचित्र प्रकारकी कामुक स्त्रीकी चेष्टासे युक्त-विलास-नेत्रविकार से युक्त, हास्य शृंगार विशिष्ट लौकिक कथा न करे। मोहजनक आवाह—नवपरिणीत वर—वधूके लानेकी वैवाहिक कथा भी न कहे। स्त्रीकी सुभगता दुर्भगता की कथा, स्त्रियों के चौंसठ गुण-वर्ण-देश-जाति-कुल-रूप-नाम-नेपथ्य-गुप्तशृंगार-क्रिया-परिजन-दासी-सखी आदिकी विकथा भी न कहे। स्त्रियोंकी और सब कथाएं भी शृंगारोत्पादक हैं तथा करुणोत्पादक हैं। तप-संयम-ब्रह्मचर्यका घात-उपघात करने वाली हैं। ये कथाएं ब्रह्मचर्य के अनुपालन करने वाले के लिए कहने योग्य नहीं हैं, सुनने और विचारने योग्य तक नहीं हैं। इस भांति स्त्रीकथा से निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्य में आसक्त मन वाला, इन्द्रियधर्म-लोलुपता आदिसे बिल्कुल अलग, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्यकी गुप्तियों से युक्त होता है।

तीसरी भावना—स्त्रीके रूपका विकारी दृष्टिसे निरीक्षण न करे। स्त्रीका हंसना-बोलना-विलसना तथा अन्यान्य चेष्टाओंका निरीक्षण, चलने की सुघड़ गति, नेत्रविलास, क्रीडा, कामुकचेष्टा (विब्वोका), नाचना, गाना, बाजे बजाना, शरीर संस्थान, वर्ण, हाथ-पैर-नयन, लावण्य, रूप, यौवन, स्तन, होठ, चमकीले कपड़े, भड़कीले अलंकार, आभूषण, गुह्येन्द्रिय का आकर्षण आदि (देखना-सुनना और दूसरे भी तप-संयम-ब्रह्मचर्यका घात-उपघात करने वाले कार्य हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को आंख, मन और वचन के द्वारा भी अभिलषणीय नहीं हैं, कारण ये पापकर्मके कार्य हैं। इस प्रकार स्त्रीरूप विरति-समितिके योगसे जो भावित है, उसका अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य में संलग्न मन वाला है, इन्द्रिय धर्म से निवृतिप्राप्त, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्यकी गुप्तियों से युक्त है।

चौथी भावना—पहले समय के किए गए (सेवन किए हुए) विषय-विकार आदि को याद न करे। पहले के (गृहस्थ अवस्था में)भोगे हुए विषय भोग पहले की गई रमत-क्रीडा, पहले समय के सगे (सास-साले-साली आदि) के परिचय, आवाह (नव परिणीतको घर लाने का) प्रसंग, विवाह प्रसंग, चोलकर्म (मुण्डन-बालककी चोटी आदि रखनेका) प्रसंग, तिथियां (मदन चतुर्दशी आदि और यज्ञ-क्रिया के दिन), नाग पूजाका पर्व और भी मेले तमाशे उत्सव दिवस (इन्द्र-महोत्सव), नाना शृंगारसे सुसज्जित सुन्दर वेश वाली स्त्रियोंके साथ, अनुकूल प्रेमि-

काओं के सहवास में जो शासन-प्रयोगोंका अनुभव किया हो (विषय सेवन किया हो) उसे याद न करे। नाना ऋतुओंके सुन्दर फूल, सुगन्धित-चन्दन, सुगन्ध-द्रव्य आदिसे सजी हुई स्त्रियों के साथ पहले किए हुए विषयभोगोंको याद न करे। रमणीय बाजे-गाजे, गीत, नट, नर्तक, वजैया, पहलवान, मुक्केबाज, भाण्ड, विदूषक, कथाकार, पानी में छलांग लगाकर तैरने वाले, रास रचने वाले, आख्यान-व्याख्यान करने वाले (शुभाशुभ कहने वाले), हाथमें चित्रका तख्ता या चित्रपट लेकर भीख मांगने वाले (मंख), तूण-वादित्र वजाने वाले, तूंबे की वीन वजाने वाले, ताल लगाने वाले, गायन करने वाले, आदि की क्रियाएं और वहुविध स्वरों से गीत गाने वालों के सुस्वर युक्त गीत, एवं अन्यान्य (कर्णप्रिय) शब्द, तप संयम और ब्रह्मचर्यका घात-उपघात करने वाले हैं। ब्रह्मचर्यका अनुपालन करने वाले श्रमण के देखने योग्य तक नहीं हैं, कहने सुनने तथा याद करने लायक भी नहीं हैं। इस रीतिसे जो पहले किये गये विषयभोगकी क्रीड़ा आदि की विरतिरूप समिति के योग से भावित है, उसका अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य में आसक्त मन वाला है, साथ ही इन्द्रियधर्म से परिनिवृत-जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य की गुप्ति से समृद्ध होता है।

पांचवीं भावना—प्रणीत स्निग्ध (जिसमें घी, तेल आदि की बूंदें टपकती हों) भोजन संयति—साधु को (निर्वाण के साधक को) वर्जनीय है। दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, शक्कर, खजले (आदि मिठाई) इन सब विगयों (विकृति पैदा करने वाले पदार्थ) से युक्त आहार-दर्प कारक आहार को साधु छोड़ दे और निर्दोष आहार भी दिन में कई बार न करे। निरन्तर-प्रति दिन आहार न करे। शाक-दाल-अवलेह आदि स्वादु पदार्थ अधिक मात्रा में न खाये, अधिक मात्रा में भोजन कभी न करे। इस प्रकार के आहार का उपभोग न करे। संयमी की यात्रा के प्रमाण के लिए ही आहार करना उचित है। विभ्रम या धर्म-साधन का भ्रंश-नाश न हो इसलिए ही आहार किया जाय। यों प्रणीत आहार विरति समिति के योग से जो युक्त है, उसका अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य में आसक्त मन वाला, इन्द्रियधर्म से निवृत, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त होता है।

इस तरह इस संवरद्वार को सम्यक् प्रकार से आचरण में लाते हुए उसके पास एक अच्छा चरित्रकोष वन जाता है। इन पांच कारणों को मन-वचन और काया से सुरक्षित रखते हुए यह योग मरण पर्यन्त धृतिमान् और मतिमान् मनुष्य के लिये नित्य संयममें निरत रहना उचित है। अनास्त्रवयुक्त-निर्मल-अछिद्र अपरिस्रवित-क्लेशरहित-शुद्ध धर्म को अनन्त तीर्थंकरों ने अनुज्ञप्त किया है। इस भांति यह चौथा संवरद्वार कायके द्वारा स्पर्शित करने योग्य है। अतिचारों को टालकर शुद्ध-प्रशुद्ध करणीय है। इसे साधक को जीवन के अन्त तक निभाना

चाहिए। औरों को भी इसका उपदेश करना चाहिए। सम्यक् प्रकार से आराधना करनी चाहिए तथा वीतराग की आज्ञा के अनुसार अनुपालन करने योग्य है। इस भांति ज्ञातपुत्र-महावीर भगवान् ने अपने उपदेश में कहा है, प्रतिपादन किया है, भव्यात्माओं में प्रसिद्ध किया है, और ऐसा यह सिद्धशासन सदुपदिष्ट एवं प्रशस्तातिप्रशस्त है ॥२७॥

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

अध्ययन ५--अपरिग्रह

श्री जम्बू स्वामीके प्रति श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! और[1] भी कई प्रकार के (धर्मोपकरणों का भी) अपरिग्रह (ममता रहित भावसे धारण) करने वाला, (कषायोंका) संवरण करने वाला, एवं आरम्भ तथा परिग्रहसे निवृत्त होने वाला साधु होता है, पुनः साधु क्रोध-मान-माया और लोभसे भी निरन्तर अलग रहे।

एक प्रकार का असंयम, दो प्रकार का बन्ध—रागबन्ध-द्वेषबन्ध, तीन प्रकार का दण्ड-गर्व-गुप्ति और विराधना, चार प्रकारके कषाय-ध्यान—संज्ञा और विकथा, पांच प्रकार की क्रिया—समिति—इन्द्रिय—महाव्रत, छः प्रकारके जीवनिकाय और लेश्या, सात प्रकारके भय, आठ प्रकारके मद, नौ प्रकारकी ब्रह्मचर्य-गुप्तियां, दस प्रकारका साधुधर्म, ग्यारह प्रकारकी श्रमणोपासक (श्रावक) की प्रतिमा, बारह प्रकारकी भिक्षु-प्रतिमा, तेरह प्रकारके क्रिया-स्थानक, चौदह प्रकारके जीव, पन्द्रह प्रकारके परमाधार्मिक देव, गाथाषोडशक[2], सत्रह प्रकारका असंयम, अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य, ज्ञाता सूत्रके १९ अध्ययन, बीस प्रकारके असमाधिस्थान, २१ प्रकार के सबल दोष, बाईस प्रकारके परिषह, सूत्रकृतांगके २३ अध्ययन, २४ प्रकारके देव, पांच महाव्रतकी २५ भावनाएं, छब्बीस दशाश्रुतस्कन्ध-बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र के उद्देशक, सत्ताइस प्रकारके साधुगुण, अट्ठाइस प्रकारके आचारकल्प, २९ प्रकार के पापसूत्र, तीस प्रकारके महामोहनीय स्थानक, ३१ सिद्धोंके गुण, ३२ प्रकारका योग(प्रशस्त व्यापार)संग्रह, ३३ प्रकारकी आशातना[3] (३२ प्रकारके सुरेन्द्र[4])।

---

१ यहां और शब्द से जो विषय प्रारम्भ होता है, इसका कारण यह है कि साधक ब्रह्मचर्ययुक्त होनेके उपरान्त अपरिग्रहव्रत भी धारण करे।

२ सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतस्कंधके १६ अध्ययन।

३ इन बोलोंके विशेष विवेचनके लिए स्थानांग व समवायांग सूत्र देखें।

४ यहां क्रमान्यग्रन्थानुसार ३४ होने चाहिएं, परन्तु सूत्रमें वस्तुतः ३२ जान पड़ते हैं।

इस प्रकार एक बोलसे लगाकर तेतीस बोल तक बढ़ाते हुए एकाग्रमनसे उनका विरमण करने योग्य स्थानक हैं, उनमें अविरतिके विषयमें तथा और दूसरे भी अनेक जिनभाषित स्थानक हैं, वे सब सत्य हैं, शाश्वत भावोंमे अवस्थित हैं, उन स्थानकों–पदार्थोंके विषयमें शंका-कुशंका (सन्देह), कांक्षा-अन्य अपूर्णमतकी अभिलाषा का निराकरण करके, उन मिथ्यात्वी भावोंको सर्वथा टालकर भगवान् के शासनको जो सच्चा मानता है, वह निदान-पौद्गलिक अभिलाषासे रहित है, मनमें गर्व भी नहीं रखता, अलोलुपजीवी और मनोवाक्काय गुप्तियोंसे समृद्ध है, वह ठीक साधु है, भगवान् महावीरके वचनोंका अनुसरण करते हुए विरति-साधन को विस्तारपूर्वक अनपेक्षासे पालन करता है । निर्मल सम्यक्त्वका सुबद्ध मूलक है, उसका धैर्य कन्द है, विनय की क्यारीमें उसका आरोप हुआ है, अनेकान्तकी वेदी है, तीन लोकमें वितान, यशरूप सुजात एवं बहुत बड़े तने वाला है, पांच महाव्रत की विशाल शाखाएं हैं, भावनारूपी बक्कलका उसका प्रान्त है, शुभयोग तथा ज्ञानरूप पल्लव एवं सुन्दर अंकुर धारण किए हुए है, नाना गुणगुम्फित पुष्पोंसे समृद्ध, शीलमय प्रशस्त सुगन्धसे व्याप्त एवं अनास्रव फलयुक्त है, मोक्षरूपी बीजसे संयुक्त संवररूपी तरुवर मेरु पर्वतके शिखरकी चूलिकाकी भांति मोक्षके बीजरूपी मुक्ति-निर्लोभताके मार्गके शिखर पर राजित है ॥२८॥

साधुके लिए अकरणीय—अन्तके संवरद्वार में साधुके लिए कुछ न करने योग्य बातें ये हैं, गांव-आगर–नगर-ढाणी–कव्वड-मण्डप-द्रोणमुख-पत्तन आदिमें जो जो कुछ न्यूनाधिक, छोटा या बड़ा (पदार्थ) गिरा पड़ा हो, त्रसकायरूप पदार्थ (सचित्त या अचित्त कौड़ी शंख आदि),स्थावरकायिक पदार्थ (रत्नादिक), सामान्य वस्तु, मनके द्वारा भी परिग्रहण करना अयुक्त है । हिरण्य-सुवर्ण-क्षेत्र-घर आदि का परिग्रह धारण न करे । दासी-दास-भृत्य-प्रेषक(सन्देशवाहक) घोड़ा हाथी—गाय और बकरे आदि का परिग्रह भी न करे । यान–वाहन–शयन–आसन—छत्र आदि न रक्खे । कमण्डलु–जोड़ा–मोरपंखों का पंखा, दूसरी तरहका पंखा तालवृन्त पंखा आदि भी न ले । लोह-रांग-तांवा-सीसा-कांसा-रूपा-सोना-मणि-मोती-सीपके पर्दे-शंख-हाथीदान्तकी चीज-मणि-सींग-शिला-प्रवाल-काच-वस्त्र-चमड़ा-वर्तन और कई प्रकारके मूल्यवान् पदार्थ आदि जोकि लोभके उपजाने वाले हैं, उन्हें गुणवान् मुनि एकाग्र-स्थिर मन रखकर कभी न ले, फिर पुष्प-फल-कन्द-मूलादि-चावल प्रभृति १७ प्रकार के बीज, एवं सब प्रकारके धान्यादि भी तीन योगोंसे औषध-भेषज भोजनादिके लिये संयतिको परिग्रह न रखना न लेना न छूना चाहिए। भला किस लिए ? अपरिमित ज्ञान-दर्शनके धारक, शील-गुण-विनय-तप संयम के नायक तीर्थंकरोंने तथा अखिल जगतके जीवोंके हितकारी और तीन लोकमें पूज्य जिनवरोंने (केवलज्ञानके द्वारा) उनमें (फूल-फल-धान्यादिमें) जीवजगतकी उत्पत्तिका स्थान देखा है,

इस कारण उन्हें अपने पास न रक्खे न छुए। (उसके परिग्रहसे) जीवजगतका उत्पत्तिस्थान समुच्छिन्न होनेके कारण श्रमणसिंह (मुनिपुंगव) उसका सर्वथा त्याग करते हैं। फिर रंधे चावल, उबले हुए उड़द, गंज (एक प्रकारका खाद्य पदार्थ), साथवा, बेरकुट (दहीका मस्का), सेके हुए धान्य, तलवट, मूंग आदि दालकी बनी हुई वस्तु, (जिसमें लंबे कालान्तर के बाद सड़ाव-विकृत हो जाता है), तिलपापड़ी, वेढ़ई-रोटी-मीठे रसमें डुबोकर पागे हुए पक्वान्न (जैसे कि गुलाबजामुन-मुरब्बे-खजले आदि), चूर्णकोशक (जैसे कि मीठे चूर्ण-पदार्थ भरे हुए समोसे-कचौरी आदि), शिखंड, दालके बड़े, मोदक, लड्डू, दूध, दही, घी, मक्खन, तेल. गुड़, खांड, शक्कर, खजले, नाना प्रकारकी चटनी, अचार, रायते आदि प्रणीत रस युक्त पदार्थ उपाश्रयमें, पराये घरमें अथवा अरण्यमें, साधुको अपने पास रखना (या संग्रह-परिग्रहण करना)*नहीं कल्पता। यदि साधु के उद्देश्यसे किया हो, रख छोड़ा हो, बनाया या तैयार किया हो, पर्यवजात कर रक्खा हो(पर्यायका अवस्थान्तर कर डाला हो, जैसे कि दूध-भात मिलाकर करंबा बनाया हो), रसकी बूंदें टपकती हों, इतना कुछ होते हुए साधुके लिए अंधेरेमें उजाला करके दिया हुआ, कुछ दिनके बाद वापस कर देनेकी शरतसे दिया हो, उधार लाकर दिया गया हो, मिश्र-साधुके लिए और कुछ अपने लिए तैयार किया हुआ, साधुके लिए मोल लेकर रक्खा हो, साधुको महमान समझकर दानके रूपमें दिया हो, दानपुण्य के हिसाब से दिया हो, शाक्यादि तापस-रंक-याचकके लिये तैयार किया हो, पश्चात्कर्मी (साधुको आहार आदि देकर फिर कच्चे पानीसे हाथ आदि धोना), पुराकर्मी (पहले सचित्त पानीसे हाथ धोकर फिर वहराना), नित्यप्रति एक घरका आहार, पानी–हरी आदिसे सना हुआ आहार, अतिरिक्त (३२ ग्राससे अधिक लिया गया) आहार, मुखरीपन (वाचाल होकर या स्तुति (खुशामद) करके लिया हुआ आहार, साधुके लिए सामने लाया गया आहार, मिट्टी-गोमय-आदिसे लिपा हुआ आंगन उघाड़कर या लांघकर दिया गया आहार, बच्चोंसे छीनकर दिया हुआ, दो जनोंकी साझेकी वस्तुको एक आदमी द्वारा (दूसरे के भाव विना) दिया जाता हो, तिथि (मदनत्रयोदशी) में, यज्ञादिके प्रसंगमें, उत्सव(इन्द्रमहोत्सव आदि) के बारेमें, उपाश्रयके भीतर या बाहर साधुके लिए रक्खा हुआ, यह सब (आहार-पदार्थ-वस्त्रादि) हिंसावादसे युक्त होनेके कारण साधुको न लेना चाहिए।

साधुके लिए क्या कल्पनीय है—(आचारांग सूत्रके) पिण्डेषणा अध्ययनके ११ वें उद्देशकके आदेशानुसार शुद्ध, क्रय, हनन, पचन आदि तीन कर्मके करने-कराने

*उस समय अन्यमति साधु वैरागी याचकादिमें प्रयुक्त होने वाले भोजन आदिके व्यवहारके ऊपर ध्यान देकर भगवान्ने इनका निषेध फर्माया है।

और अनुमति देने आदि के नव कोटि त्याग द्वारा विशुद्ध (अर्थात् इनमें से किसी प्रकारका दोष न लगा हो), एषणाके दस दोषसे मुक्त, उद्गमदोष तथा उत्पादन-दोष रहित तथा एषणाशुद्ध, चेतना रहित-प्रासुक हो गया हो, जीवसंसर्गसे रहित भोजन, संयोजना दोषसे मुक्त, अंगार-धूम दोषसे रहित भोजन, छ उद्देश्यसे युक्त-(वेयण-वेयावच्च आदि छ स्थानक-कारण), छ कायके जीवोंकी परिरक्षाके लिए, साधु को नित्य प्रासुक भिक्षाके लिए जाना उचित है। साथ ही सुविहित (पासत्थादि भावसे रहित)साधुको चाहे कई प्रकारके रोग हों, दुःख हों, वायु की अधिकता हो, पित्तप्रकोप हो, श्लेष्म दोष हो, सन्निपात हो, लेश सुख हो तो भी दोषसे टले, अधिक कष्ट हो, प्रगाढ़ दुःख उपजा हो, अशुभ-कड़वा-कठोर-प्रचण्ड-फल विपाक भोगना पड़ता हो, महाभय उपजता हो, जीवन लीला समाप्त होनेका कारण उत्पन्न हुआ हो, समस्त देहपिण्डको परिताप-पीड़ा होनेके समान दुःख हुआ हो, तो भी साधुको अपने या परके लिए औषध-भेषज-भात-पानी अपने पास न रखना चाहिए। सुविहित पात्र रखने वाले साधुको भाजन, मिट्टीका पात्र, वस्त्रादि उपधि विशेष उपकरण जैसा कि पात्र बांधनेकी झोली, पात्र मार्जन करनेकी मार्जनी, पात्र स्थापन करनेके लिये कंवलका टुकड़ा, तीन तह वाला (भिक्षा के समय पात्रको ढांपनेका) वस्त्रखण्ड, रजस्त्राण (पात्र लपेटनेका कपड़ा), गुच्छा, तीन प्रच्छादक (शरीर ढांपने के तीन कपड़े-सूतके दो और एक ऊनका), रजोहरण, चोलपट्टक,मुंह पर बांधनेकी मुंहपत्ती, पैर पोंछनेका तौलिया, आदि उपकरण रखने भी उचित हैं। संयमके उपष्टम्भके लिये वायु-ताप-डांस-मच्छर-शीतसे बचने के लिए राग-द्वेष रहित साधु इन उपकरणोंको भी उपयोगमें ले सकता है, और भाजन पात्रादि उपकरणोंका साधु प्रतिदिन प्रतिलेखन करे—यतनापूर्वक देखे। सारी दिशाओं में प्रमार्जन करे-अर्थात् रजोहरणसे स्थानकका मार्जन करे। उन्हें रात दिन अप्रमत्त होकर निरन्तर यथासमय रक्खे और यतना विधिसे धरे।

मोक्षके साधकके लक्षण—जो इस भांतिसे संयमवान् है, विमुक्त है, परिग्रह रहित रुचिका है, ममता और स्नेह-बन्धनसे छूटा है, सारे पापोंसे अलग है, उसे चाहे तो कोई वसौलेसे छीलने लगे, या कोई चन्दनका विलेपन करे, सब (अपकारी एवं उपकारी) को समान जानने वाला है, तिनका-मणि-मोती-पत्थर-सोना आदि को बराबर जानता है, मान-अपमान को समान गिनता है, पापरूपी धूलको दबाने वाला है। वह राग द्वेपकी आगको ठंडा करता है। पांच समिति से समित है, सम्यग्दृष्टिमान् है। सारे प्राण-भूतों को समान जानता है, सचमुच वही साधु है। वह श्रुतको धारण

करने वाला है, क्रिया आचरण में उद्यमशील-निरालस है, संयति एवं मोक्ष का साधक (सुसाधु) ऐसा ही होता है। वह सर्वभूत (पृथ्वी आदि) का शरणभूत है। समस्त विश्व का वात्सल्यकारक है। निरवद्य सत्य-भाषा बोलता है। संसारमें रहता हुआ भी संसार का समुच्छेदक है। सदा पण्डित मरण का पारगामी एवं सब के भीतर के संशय मिटाने वाला और आठ प्रवचन माता (पांच समिति-तीन गुप्ति) के द्वारा आठ कर्म-ग्रंथिका विमोचक (छोड़ने वाला), आठ मदों का मर्दन करने वाला, स्वसमय-परसमय कुशल (अपने सिद्धान्त में निपुण), सुख दुःख में हर्ष-विषाद रहित, बाह्य तथा अभ्यन्तर तप रूपी उपधानमें अच्छी तरह उद्यत (सावधान), क्षमावान्, ज्ञानपूर्वक इन्द्रियों को दमन करने वाला, सारे जीवों का हित करने में तत्पर, पांच समिति-तीन गुप्ति के नियमों का पालक, इन्द्रियों के विकारों को गोपने वाला गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारी, त्यागी, रस्सी के समान सीधा, धन्यवाद का पात्र, तपस्वी, शान्ति-क्षमाशील (क्षमाभाव के द्वारा सब परिषह सहने वाला, क्षमा करने में समर्थ), जितेन्द्रिय, गुणों से शोभित, निदान-इच्छा की प्रेरणाओं से रहित, (संयम-पूर्वक) बाहर की लेश्याओं से रहित, ममता मुक्त, अकिंचन (धनरहित), छिन्न-ग्रन्थ (बाह्य-अभ्यन्तर ग्रन्थि का उच्छेदक), कर्ममल के लेपसे अलग, निर्मल-कांसी के वर्तन पर जैसे पानी ढुलक जाता है वैसे ही स्नेहसम्बन्ध से अलग, शंख की तरह निरंजन (इनकी आत्मा पर कर्म का रंग नहीं लगता), राग-द्वेष और मोह से मुक्त, कछुवे के समान इंद्रियों को गोपने वाला, सुवर्ण के समान सुरूप (निर्मल), कमल की पंखुड़िओं सा अलेप, चान्द सा सौम्यभावयुक्त, सूर्य जैसा तेजस्वी, मेरु के समान अडोल, समुद्र के समान अक्षुब्ध, निर्भय, पृथ्वी की तरह सारे स्पर्शोंको सहन करने वाला,तपश्चरण द्वारा भस्मके आवरण से ढकी आग जैसा, या जलती-आग के समान। तेजोराशि से ज्वलन्त (जैसे राख से ढंकी आग बाहर से मलिन सी दिखती है, परन्तु अन्दर से आग ज्वलन्त होती है, इसी भान्ति साधु अन्तर में शुभ लेश्या से दीप्तिमान् होता है), गोशीर्ष चन्दन के समान ठण्डा (शीलकी) सुगन्धिसे युक्त, द्रहके सदृश समभाव की गम्भीरता से भरपूर (क्योंकि ऊंडे गढ़े का पानी हवा के झोंकों से क्षुब्ध नहीं होता), साफ-निर्मल शीशे (मण्डल) के तले के समान प्रकट भाव द्वारा शुद्धभाव युक्त, शोंडीर (शूरवीर) सा (परिषहरूपी सेना के सामने डटकर लड़ने वाला), युद्धभूमि में हाथी के समान, संयम का भार वहन करने में वृषभ के समान, समर्थशील, जैसे सिंह मृगों का मनोनीत अधिपति होता है वैसे ही अजित, शरत्काल के पानी की तरह-हृदय के भावों की अपेक्षा शुद्ध, भारण्ड पक्षी सा अप्रमत्त, खड्ग-विषाण (गैंडे जैसे एक सींग के पशु के) समान इकला (रागद्वेष रहित),स्तम्भ

के समान उर्ध्वकाय होकर कायोत्सर्ग करने वाला, सूने घर की भान्ति अप्रतिकर्मी (अशुश्रूषक), शून्य और वायुवर्जित घर के दिये की तरह अकम्प ध्यानसमाधि समृद्ध, उस्तरे के समान एक धार वाला (साधु उत्सर्ग लक्षण से संयम में एक रस-धार वहने वाला), सांप के समान एक दृष्टि रखने वाला (बांका टेढ़ा न देखकर), आकाश की तरह निरालम्बन, पक्षीवत् सर्वथा परिग्रह विमुक्त--अपरिग्रही, जैसे सांप दूसरे के वनाए दर में जा रहता है, वैसे ही दूसरे के लिए वनाए गये स्थान में रहने वाला,वायु या जीव की गति की भांति अप्रतिहत(बेरोकटोक विचरने वाला), प्रत्येक गांव में एक रात (सप्ताह) और बड़े नगर में पांच रात (एक मास) विहार-भ्रमण करने वाला, जितेन्द्रिय, परिषहों को जीतने वाला, निर्भय, विद्वान (गीतार्थ), सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य में विराग-अनासक्ति भाव धारण करने वाला, सर्वथा विरक्तियुक्त, परिग्रह से परिमुक्त, निवृत्त, लोभरहित, स्नेह-मुक्त, आकांक्षाओं से अलेप, जीवन मरण के झंझट से दूर, निरतिचार-जीवी, सच्चरित्रवान्, कायरतामुक्त और निरन्तर अध्यात्मध्यान को काय के द्वारा पालन करने वाला साधु एकाग्रचित्त होकर उपशान्त विरति का आचरण करता है।

पांच भावनाएं—परिग्रह विरमण व्रतकी रक्षाके लिए भगवान् द्वारा सुकथित-आत्महितकर-परभवमें सुखका कारणरूप-आगामी कालमें कल्याणदायक-शुद्ध-न्यायपथप्रकाशक-सरल-सर्वोत्तम-सर्वदुःख-पापके उपशमन करने वाला प्रवचन किया गया है। इसकी पांच भावनाएं इस प्रकार हैं। परिग्रह विरमण व्रतकी पूर्ण रक्षार्थ—

पहली भावना में—श्रोत्रेन्द्रियके मनोज्ञ और मधुर शब्द सुनकर भी निस्पृह रहे, वे शब्द कैसे हैं? बड़े मुंहवाले मृदंग-प्रणव (छोटा ढोल),वड़ा ढोल, कच्छभि (नारदीय) वीणा, वीणा, विपंची (एक प्रकार की वीणा), वल्लकी (दूसरी जातिकी वीणा), वद्धीसक (एक तरह का बाजा), सुघोषा (घंटा), नंदी (एक प्रकार का वाजा), सात तारकी वीणा, बंसरी, तुणक (वाजा), पर्वक (वाद्य), तन्त्री(एक तारका इकतारा), ताली, करताली, (कांसेकी) तूर (वाद्य), आदि अनेक प्रकारके वाजोंके नाद, गीत, वाद्य, नट, नर्तक, वजैये, मल्ल, मुष्टिमल्ल, भाण्ड, कथाकार, जलमें छलांग लगाकर खेलने वाले तैराक, मंख(चित्रपट दिखाने वाले), तूण, तुनतुना वजाने वाले, तुम्बेकी वीणा या इकतारा वजाने वाले, हाथ से ताल देने वाले, इत्यादि सब कलाकारोंकी विविध क्रियाएं,अनेक प्रकारके मधुर-स्वर, सुस्वरगीत, (इन सब हाव-भावोंको सुनकर या देखकर किसी भी समय इनमें आसक्त न हो), एवं कांची-कड़ियोंका वना हुआ स्त्रियोंके पहननेका कमरका आभूषण, तगड़ी, कटिमेखला, कलापक (गलेका भूषण), प्रतरक (आभूषण

विशेष), प्रहरक (एक भांतिका गहना), पैरोंकी झांझर-घंटड़ियां, छोटी घुंघरी, जांघमें पहननेका जेवर, जाली के समान ग्राभरण, मुद्रिका, नूपुर, चरणमालिका, कनक, निगड, जालक, (अलग-अलग तरहके गहने,) इन सब आभरणोंके शब्द या जो लीलापूर्वक चलते हुए उत्पन्न होते हैं, इन्हें सुनकर या देखकर उनमें आसक्त न हो, इसी प्रकार तरुण स्त्रियोंके हास्यशब्द, कलरव, गुंजन, ग्रादि मधुरस्वर युक्त वचन, स्तुतिके वचन ग्रौर ग्रन्यान्य प्रकारके मीठे स्वर वाले ग्रादमियोंके गाए गये शब्द जो कि ग्रत्यन्त मनोज्ञ होते हैं। साथ ही मोहक तथा कर्णरुचिकर भी हैं, तब साधु उनमें संग, ग्रासक्ति न करे। राग न करे, उनमें गृद्ध न हो, मूच्छित न हो (मोह न आ पाये), उन्हें पाने के लिए ग्रात्माका घात न कर डाले, लुब्ध न हो, तुष्टमान न हो, हसे नहीं, उन्हें याद न करे, उनमें ग्रनुरागकी मति न रक्खे। इसी भांति श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रमनोज्ञ तथा पापके हेतुरूप शब्द जैसे कि ग्राक्रोश वचन, कठोर वचन, निन्दाके वचन, ग्रपमानजनक शब्द, तर्जना के (धमकानेके तुच्छ) शब्द, झिड़कनेके शब्द, दीनवचन, खुशामदकी वातें, त्रासजनक (डराने के शब्द, कोप के वचन, रुदन, ग्ररडानेके शब्द, क्रन्दन गीदड़की तरह) चीख-पुकार, चिल्लाने जैसे करुणाजनक स्वर, विलापके स्वर ग्रादि अनेक प्रकार के ग्रमनोज्ञ ग्रौर पापके हेतु रूप शब्द सुनकर साधु रोष न करे, अवहेलना, निन्दा न करे, लोगों के सामने ऐब-जोई बांकी टेढ़ी वातें न निकाले, किसी की वात न काट दे, उसे तोड़-झिझोड़ भी नहीं, ग्रपने-ग्रौर ग्रन्य के लिए जुगुप्सा-वृत्तिका व्रर्ताव न करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रियकी सद्भावनासे जो भावित है, उसका ग्रन्तरात्मा मनोज्ञ-अमनोज्ञ-शुभ ग्रौर ग्रशुभ शब्दोंके प्रति राग द्वेष नहीं करता। इन्द्रिय की तन्मात्रा का संवरण करने वाला साधु मन वचन कायको संवृत करता हुग्रा, इन्द्रियोंका निरोध करते हुए निरन्तर धर्मका ग्राचरण करता है।

दूसरी भावना—इसमें चक्षु इन्द्रिय के द्वारा रूप (स्त्री पुरुषके देहकी वनावट) को देखकर मनको विकारकी ग्रोर न जाने देकर वहीं रोके, (वह रूप कैसा है?) मनोज्ञ, सुन्दर, सचित्त, ग्रचित्त ग्रौर मिश्र, काष्ठकर्म, वस्त्र, चित्रके लेपकर्म, पत्थरके, दान्तके रूप, पांच वर्ण सहित ग्रनेक ग्राकारोंसे संस्थित, गुंथे हुए, वेष्टित (घेरे हुए), पूरिल (रंग भर कर वनाए हुए), सांध-जोड़कर वनाए गए (चन्दोवा ग्रादि) ग्रनेक प्रकारसे ग्रांख ग्रौर मन को सुखकारी, गुंथी हुई फूलमाला, वनखण्ड-पर्वत-गांव-आगर-नगर-पानी की खाई, कमलयुक्त गोलाकार वावड़ी, चार कोने वाली वावड़ी, लम्वी पुष्करणी, टेढ़ी मेढ़ी नहर, सरोवरपंक्ति (एकसे दूसरे में ग्रौर दूसरेसे तीसरेमें पानी वहता हो ऐसे तालावोंकी हारमाला), समुद्र, धातुकी खान, गढ़के चारों ओर फिरती खाई, नदी, कुदरती सरोवर, खोदा तालाव, उनमें खिले हुए फूल-उत्पल कमलके समान शोभा पाते हुए ग्रौर वहीं

अनेक प्रकारके पक्षियोंके जोड़े विचर रहे हैं। ऐसे बाग बगीचोंके सुन्दर बनाव, रूप, अच्छे मण्डप, विविध भवन, तोरण, सभा, प्याऊ, परिव्राजकोंके वसति-स्थान. उत्तम शयन, आसन, पालकी, रथ, गाड़ी, यान, युग्य (अनेक प्रकारके वाहन), स्यन्दन, इत्यादि रूप, सौम्य, मनचाहे देखने योग्य अलंकारोंसे भूषित, पहले जन्म के किये गये तपके प्रभाव और सौभाग्यसे सम्पन्न नरनारी समूहके रूप सौन्दर्य, नट-नर्तक, वजैये, गवैये, मल्ल-मुष्टिमल्ल, (भाण्ड) विदूपक, कथाकार, पानी में छलांग लगाकर खेलने वाले तैराक, रास रमने वाले, व्याख्यानकार, लंख, मंख, तूण बजाने वाले, ताल देने वाले, इत्यादि अनेक प्रकारकी दर्शनीय एवं शृङ्गारिक क्रियाओंसे मनोज्ञ तथा सुन्दर रूपमें साधु आसक्ति—आसंग न करे, उनमें गृद्ध न हो, मोह न करे, उन तृणवत् पदार्थो को पाने के लिए आत्मघात न कर बैठे। लुभावे नहीं, तुष्ट न हो, न हंसे न याद करे, उनमें तन्मय मति उत्पन्न न करे। इसी प्रकार साधुको आंखों द्वारा अमनोज्ञ तथा पापके हेतुरूप-जैसे कि—कण्ठ-माल और कोढ़ी, लूले और जलोदर वाले, हाथी पगे जैसे कठिन पैरों वाले आदमी श्लीपदके रोगी), कुवड़े, पंगु, बौने, अंधे, काने, जन्मान्ध, लकड़ी टिकाकर चलने वाले, पिशाचग्रस्त (पागल), अनेक व्याधि-रोगसे पीड़ित, सड़े हुए कलेवर, सड़े हुए या कीड़े पड़े हुए पदार्थोंके ढेर, इसी प्रकारके अमनोज्ञ तथा पापके हेतुरूप आकार देखकर रोप, होलना, निन्दा, वक्रता, छेदन, भेदन, जुगुप्सादि न करना चाहिए। चाहे अपना हो या पराया। इसी रीतिसे इंद्रिय भावनासे जो भावित होता है, उसका अन्तरात्मा, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, शुभ एवं अशुभ रूप के प्रति राग-द्वेपके आवेश को रोकने वाला होता है। ऐसा साधु मन-वचन कायाको संवृत करता हुआ इन्द्रियों के विकारों को रोककर मात्र धर्मका ही आचरण करता है।

तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय-नासिकाके द्वारा वह मनोज्ञ तथा भद्रक-मधुर भीनी गन्ध लेते हुए उसका संवरण करता है। (वह गन्ध) जल, स्थल, सरस फूल, फल, पानी, भोजन, कुठ(उपलेट)तगर-तमालपत्र-सुगंधित-वक्कल, दमनक-एक प्रकार का फूल, मरवा-इलायची-जटामासी (बिल्लीलोटन), सरस-गोशीर्ष-चन्दन, कपूर, लौंग, अगरु (काला अगर), कुंकुम, केसर, कक्कोल (एक तरहका फल), सुगन्ध वाल, सफेद चन्दन, सुगन्ध द्रव्यसे युक्त धूप, वास, जिस किसी ऋतु में उत्पन्न होकर नाना दिग्दिशाओंमें अधिक दूर तक फैलता है। इस ढंगके अनेक मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ गंधके बारे में साधुको उनका संग न करना चाहिये। राग-गृद्ध, मोह, लोभ, तोप, हास्य, स्मरणादि न करे और उनके विपयमें मति भी न करे, तथा साधुको नासिकासे अमनोज्ञ तथा पापके कारणरूप गंध—जैसे कि मरा हुआ सांप-घोड़ा-हाथी-गाय-बछड़ा-कुत्ता-गीदड़-आदमी-बिल्ली-सिंह-भेड़िया आदिके सड़े कलेवर, छिन्न भिन्न होकर कीड़े पड़े हों,उसमें से दुर्गंध निकलती हो या किसी

का भोजन वुस गया हो, आदि कारण उपस्थित होने पर उसके वारेमें साधु रोप-अमर्प-निन्दा-घृणा-वक्रता-छेदन-भेदन-जुगुप्सा आदि अपने-परके लिए न करे। इस तरह घ्राणेंद्रियके दमनकी भावनासे जो युक्त होता है, वह मनोज्ञ या अमनोज्ञ शुभ और अशुभ गंधोंके वारेमें राग द्वेपको रोके, मन-वचन-कायाका संवरण करे, इस ढवसे इन्द्रियोंकी विकृत तन्मात्राएं रोककर निरन्तर सद्धर्मका आचरण करता रहे।

चौथी भावना—जीभके द्वारा मनोज्ञ तथा मधुर रसास्वाद लेता हुआ उसका संवरण करे, (वह रस और आस्वाद कैसा है?) पक्वान्न तथा कई प्रकारके पेय, गुड़-खाण्ड और तेल-घीसे बने हुए (अनेक प्रकारके) भोजन, नाना लवण रसादिसे युक्त भोज्य पदार्थ, अथवा अनेक प्रकारकी मूल्यवान् खाद्य वस्तुएं, दूध-दही और अठारह प्रकारके शाक और भी अनेक तरहके भोजन, मनोज्ञ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श युक्त द्रव्योंसे मिश्रित किए हुए भोजन पदार्थ और अन्यान्य रीतिके अच्छे तथा मधुर रसोंमें साधु आसंग न करे। राग-गृद्धि-मोह-लोभ-तोष-हास्य-स्मरण तथा मति भी उत्पन्न न करे। जिव्हाइन्द्रियसे अमनोज्ञ तथा पापके कारण रूप आस्वाद और रस जैसे कि-रसरहित-विरस (चलित या विकृत रस) युक्त रूखा सत्वरहित भोजन पानादिक, वासी-विनष्टवर्ण, वुसा हुआ (अखाद्य) दुर्गन्ध युक्त, अशोभन विगड़ा हुआ, काई आ गई हो, वास मारती हो, तीखे, कड़वे, कसैले, खट्टे, सेवाल छाया हुआ हो, पुराने व सड़ियल पानीमें जैसी दुर्गन्ध आती हो, इसी भांति और भी अनेक रीतिके अमनोज्ञ तथा पापरूप रसोंमें साधु रोप, हीलना, निन्दा, वक्रता, छेदन-भेदन की जुगुप्सा आदि स्व-परकी आत्माके लिए गर्हा न करे। इस रीतिसे जिह्वा-इन्द्रियकी भावनासे जो समायुक्त है उसका अन्तरात्मा मनोज्ञ अमनोज्ञ, शुभ और अशुभ (रस) में राग द्वेपका संवर करता है। मन-वचन-कायाका संवरण करने वाला इन्द्रियों को रोककर अध्यात्म-धर्मका आचरण करता है।

पांचवीं भावना—स्पर्शेन्द्रिय (शरीरकी चमड़ी) के मनोज्ञ तथा सुखदायक स्पर्शका आनन्द भी लेना वर्जित है। वह सुकोमल स्पर्श कैसा है? उदकमण्डप (जिसमें से पानीके वारीक कण विखरा करते हैं जैसे कि–फव्वारा), सफेद चन्दन, शीतल ठंडा और निर्मल पानी, नाना प्रकारके मुलायम और रंगीन फूलोंकी शय्या, सुगन्धित वाल, मुक्ताफल, पद्मनाल (मृणाल), चान्दनी, मोर पांख या ताड़के पंखेसे उत्पन्न शीतल पवन, ग्रीष्मकालमें सुखस्पर्श कराने वाले अनेक प्रकारके शयन, आसन तथा वस्त्र, शीतकालमें अग्निके द्वारा शरीर का तापना, सूर्यकी आतापना लेना, स्निग्ध-मधुर-मृदु-शीत-उष्ण-हलका आदि नाना ऋतुओंमें सुखकारी स्पर्श जो कि शरीरको सुख तथा मनको स्वस्थ करने वाला है। इसी रीतिसे और

भी कई प्रकार (नाना भांति) के मनोज्ञ तथा सुखानुकूल स्पर्शोंमें साधु उनका आसंग न करे, रागगृद्ध-मोह-लोभ-तोष-हास्य-स्मरण तथा मतिसे भी उन्हें न चाहे।

साधुको स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अमनोज्ञ तथा पापके कारणरूप स्पर्श जैसे कि अनेक प्रकारके वध-बंधन-ताडन-मारण-डांभ-अतिभारारोपण-अंगभंजन (अवयवों का तोड़ना-मरोड़ना), नखमें सूई चुभोना, चमड़ी पर कई ढवसे छेदना, गोदना, गर्म लाखका रस, खार,तेल, सीसा, काला लोहा, आदिसे धगधगायमान रूपसे सींचना, काठमें ठोकने का बन्धन, डोर या रस्सीका बन्धन, बेड़ी-जंजीर-हथकड़ी-कुंभीपाक-दहन (घड़ेमें डालकर उसे रांधना-पकाना), इन्द्रियोंका तोड़ना, ऊंचा (वृक्षादिके ऊपर) लटकाना, शूलीमें पिरोना-हाथीके पैरों तले कुचलवाना, हाथ-पैर-कान-नाक-होंठ-मस्तकका छेदन-जीभ काटना, वृषण-नयन-हृदय-दांत आदि तोड़ना, जोत और चाबुकका प्रहार, पैर-एड़ी-घुटने-आदिके प्रहारसे पीड़ित करना, कोंच-आग-बिच्छूका डंक-वायु-ताप-डांस-खटमलका उपद्रव, कष्टकारी आसन, कष्टकारी स्वाध्यायभूमि, इसी तरह कठोर-भारी(बोझ)ठंडा-गर्म-सूखा और नाना प्रकार के अमनोज्ञ तथा पापके हेतुरूप स्पर्शोंमें साधु रोष-हीलना-निंदा-वक्रता-छेदन भेदन, जुगुप्सा आदि अपने परायेकी आत्माके लिए न करे। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय भावनासे जो भावित है उसका अन्तरात्मा मनोज्ञ अमनोज्ञ एवं शुभाशुभ (स्पर्श) में राग द्वेषका संवरण करे। साधु मन-वचन-कायाके विकारको रोकने वाला और इन्द्रियोंका निरोधक हो धर्मका आचरण करनेमें लगा रहता है।

इस प्रकार संवरद्वारका भली प्रकार आचरण करते हुए वह एक अच्छे आत्मसाधन-निधानका रूप लेता है। इन पांच कारणोंसे मन-वचन-कायके द्वारा सुरक्षित रखते हुए यह योग (अपरिग्रहत्व) जीवनके अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक धृतिमान् और मतिमान् मनुष्यको नित्य निर्वाह करना उचित है। अनास्रवयुक्त, निर्मल, अछिद्र, अपरिस्रवित, क्लेशरहित, अनन्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञप्त यह पांचवां संवरद्वार कायाके द्वारा स्पर्शित-एवं पालन करने योग्य, अतिचार-दोषोंका निवारण करते हुए शुद्धभावसे आराधन करने योग्य, पार उतारने योग्य, औरोंको उपदेश करने योग्य, अनुपालन करने योग्य और आज्ञानुसार साधन करने योग्य है। इस प्रकार श्री ज्ञातपुत्र-महावीर-भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे यह उपदेश किया है, प्ररूपण किया है, वितान किया है, प्रसिद्ध किया है, इस भांति यह समर्थ सिद्ध-शासन सदुपदिष्ट एवं प्रशस्त है।

उपसंहार—हे सुव्रत ! (जम्बू !) ये पांचों महाव्रत सैंकड़ों हेतुपूर्वक विचित्र प्रकारसे अनन्त अर्हन्तोंके शासनमें विस्तारपूर्वक बताए गए हैं। संक्षेपसे कहे गये पांच संवर, तथा इनकी विस्तार से कही गई पच्चीस भावनाएं और पांच समिति

सहित सदा यतन (संयम पालनेकी) घटना, और विशुद्ध (निर्मल) दर्शन श्रद्धाके द्वारा आचरण करने वाले संयति चरम शरीरको धारण करने वाले होंगे (निर्मल संवरके प्रतिपालक इसी भव (जन्म) से मोक्ष प्राप्त करेंगे) ।।२९ ।।

प्रश्न व्याकरणमें एक श्रुतस्कंध है। दस अध्ययन एक जैसे दस दिनोंमें वांचे जाते हैं एकान्तर आयंबिल…शेष आचारांगके समान ।। ३० ।।

।। पांचवां अध्ययन समाप्त ।। संवरद्वार समाप्त ।।

।। प्रश्नव्याकरणसूत्र समाप्त ।।

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम
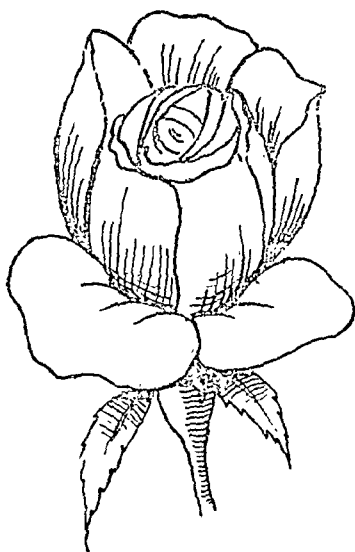
विपाकसूत्र

उस काल[1] उस समयमें (अवसर्पिणी कालके चौथे आरेमें) चम्पा[2] नाम की एक नगरी थी। वहां श्रेणिक राजाका पुत्र कोणिक राजा राज्य करता था। नगरीके बाहर उत्तर और पूर्व दिशाके बीचमें–ईशान कोणमें नन्दन वन जैसा एक पूर्णभद्र नामक उद्यान था ॥१॥

एक समय आर्य[3] सुधर्मा स्वामी पांच सौ साधुओंके साथ एक गांवसे दूसरे गांव विहार करते हुए, मुनि योग्य 'अभिग्रह' धारण करते हुए पधारे और आज्ञा मांगकर उस पूर्णभद्र उद्यान में ठहरे। वे जाति (मातृपक्ष) और कुल (पितृपक्ष) से निर्मल थे।

वे चौदह पूर्व और चार ज्ञानके धारक थे। वज्रऋषभनाराच संहननके स्वामी थे। अनुत्तर विमानके देवतासे भी विशेष कान्तिमान् थे। श्रीज्ञातपुत्र महा-

---

१ कालचक्रके एक भागको एक 'आरा' कहते हैं। काल तीन हैं—१ उत्सर्पिणी ('उन्नतिका समय' जिसमें आयुष्य-अवगाहना-रस आदि बढ़ते हैं), २ अवसर्पिणी (अवनति-काल, जिसमें आयुष्यादि कम होते हैं), ३ नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणी (जिसमें मध्यम स्थिति रहे–न घटे न बढ़े)। पांच भरत और पांच ऐरावतमें अवसर्पिणी काल होता है और पांच महाविदेह क्षेत्रोंमें नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणी काल है, क्योंकि वहां 'आरों' का परिवर्तन नहीं होता।

२.एक लाख योजनका जम्बूद्वीप है। उसमें इस भरतखंड जैसे १९० खंड हैं। भरतखण्डके दो भाग हैं–एक उत्तर और एक दक्षिण। उत्तरमें अनार्योंका निवास है। दक्षिणमें बत्तीस हजार देश हैं, जिनमें २५॥ आर्य देश हैं और शेष सब अनार्य देश हैं। इन २५॥ आर्यदेशोंमें मुख्य मगध देश है, जिसमें राजगृही आदि १ करोड़ ६६ लाख गांव हैं। दूसरे अङ्ग देशमें चम्पानगरी मुख्य और ५ लाख गांव हैं।

३. 'आर्य शब्द अंग्रेजी Reverend' जैसा है, दोनों शब्द धर्मगुरुके साथ लागू होते हैं। धर्मोपदेशिकाके लिए 'आर्या' शब्द है।

वीर प्रभुके शिष्य आर्य सुधर्मा स्वामी महा प्रतापी पुरुष थे ।* उनकी चम्पापुरीके उद्यानमें आने की खबर नगरीमें फैल जानेसे बहुतसे धर्मप्रेमी मनुष्य दर्शन करने और उपदेश सुननेका लाभ उठाकर अपने-अपने घर चले गये ।

आर्य सुधर्मास्वामीके साथ उनके अन्तेवासी शिष्य जम्बूस्वामी थे । वे जाति और कुलसे निर्मल तथा शरीर की ऊंचाई में सात हाथ ऊंचे थे । वे ध्यान करनेके पश्चात् जहां आर्य सुधर्मास्वामी विराजमान थे वहां आये और तीन बार प्रदक्षिणा कर पंचाङ्गी नत वंदना नमस्कारपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे-"भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभुने (जो मोक्षपदको पा गये हैं) दशमांग प्रश्नव्याकरणका यह अर्थ कहा है तो ग्यारहवें अंग विपाकसूत्र का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामीने उत्तर दिया कि...'विपाकसूत्र' के दो श्रुतस्कंध कहे हैं-१ दुःखविपाक और २ सुखविपाक ।...उत्थानिका पूर्ववत् । प्रत्येक स्कंधमें १०-१० अध्ययन हैं । इन २० अध्ययनोंमें प्रथम दुःखविपाकके दश अध्ययन क्रमशः कहता हूं ।

पहला अध्ययन--मृगापुत्र

उस समय एक नगर था उसका नाम था मृगागांव (मियागाम) । वहां विजय नामका क्षत्रिय राजा था । उसकी मृगावती नामकी रानी थी । वह बड़ी रूपवती थी । उसकी उदरकंदरासे मृगापुत्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह जन्म-जात अंधा, बहरा, लूला, लंगड़ा, गूंगा और वातकफादि रोगोंसे पीड़ित था । कोई देख न ले इस विचारसे उसे भूतल-तहखानेमें रखकर वह उसका पालन-पोषण करने लगी ॥२॥

उसी गांवमें एक जन्मान्ध भिखारी था । उसके माथेके बाल सदा बिखरे रहते थे और मुंह पर मक्खियां भिनभिनाया करती थीं । एक सुजाखा आदमी उसकी लकड़ी पकड़ कर उसे घर घर भीख मांगनेके लिए ले जाया करता था ।

---

*सच्चे सन्त कैसे होते हैं यह इससे सोचा जा सकता है । संसार पक्षमें उनके माता पिता अच्छे खानदानी होते हैं, वे स्वयं सुरूप स्वच्छ शौर्यवान् ज्ञान-वान् और मधुरभाषी होते हैं । कितने ही बदसूरत लोग हमें 'कैवल्य' हुआ है कहकर अपने को पुजवाते हैं, उनमें ऐसी आत्मिक शक्ति का होना ही सम्भव नहीं है । एक अंग्रेज लेखकका कहना है कि—The person (man of cosmicconsciousness) has an exceptional physique, exceptional beauty of build and carriage, exceptionally handsome features, exceptional health, exceptional sweetness of temper, and exceptional magnetism. (w. m. Shah).

मृगागांव से उत्तर-पूर्वके बीच-ईशान कोणमें छहों ऋतुओंके फल फूलसे सुशोभित 'चन्दनपादप' नाम का उद्यान था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर प्रभु उस उद्यानमें पधारे। उनकी वन्दना करने के लिए बहुतसे मनुष्योंको आते जाते देख कर विजय राजा भी वन्दना करने गया और जाकर भगवान्की सेवा भक्ति करने लगा।

बहुतसे आदमियोंका कोलाहल सुन कर वह अंधा भी उस सुजाखे आदमी की लकड़ीके सहारेसे आया, उसने दाहिनी ओरसे प्रारम्भ करके श्री महावीर स्वामीकी प्रदक्षिणा की और वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करने लगा। श्रमण भगवान् महावीरने विजय राजा और परिषद्को धर्मकथा सुनाई और सब लोग धर्मकथा सुनकर अपने-अपने घर गये ॥३॥

तब भगवान्के बड़े शिष्य इन्द्रभूति (गौतम) अणगार (जो 'तप' और संयम' से अपनी आत्माको प्रफुल्लित करते हुए विचरते थे) उस अंधे मनुष्यको देखनेसे उत्पन्न हुए अपने अचरजको मिटानेके लिये प्रभुसे पूछने लगे—"हे प्रभो! क्या किसी स्त्रीने कोई बच्चा जन्म से ही अन्धा पैदा किया है?"

प्रभु कहने लगे—"हे गौतम! चित्त लगाकर सुन! इस मृगागांवमें ही विजय राजा व मृगादेवीका अंगजात मृगापुत्र जन्मान्ध है। इतना ही नहीं, बल्कि वह जन्मसे ही अपङ्ग, बहरा, लूला और लंगड़ा भी है। उसके हाथ पैर उपांगादि आकार-मात्र हैं, प्रकट नहीं हैं। उसे उसकी मां भू-तलघरमें रखकर अन्न जलसे पोषण करती है।"

श्री गौतमने पूछा—"प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं उसे देखने जाऊं!" प्रभुने कहा—"हे देवोंके प्यारे! जैसे सुख हो वैसे करो"। आज्ञा मिलनेसे प्रसन्न होकर श्री गौतम स्वामी ईर्यासमितिको निभाते हुए गांवके बीचोंबीच होकर मृगा-देवीके महलमें गये। उन्हें देखकर रानीको बड़ा हर्ष हुआ और बोली—"अहो पूज्य! आप यहां कैसे पधारे? जो आज्ञा हो फरमाइये।" श्री गौतम स्वामीने कहा—"हे देवानुप्रिये! मैं तुम्हारे पुत्रको देखनेके लिये यहां आया हूं"। यह सुनते ही रानी ने अपने चारों पुत्रोंको वस्त्रालंकारसे सजाकर श्री गौतमके चरणोंमें उप-स्थित किया और कहा कि "पूज्य! यह मेरे पुत्र हैं"।

श्री गौतम कहने लगे—"हे देवानुप्रिये! मैं इन बच्चोंको देखनेके लिये नहीं आया हूं, बल्कि तेरा बड़ा पुत्र मृगापुत्र जो जन्मान्ध है और जिसे भू-तलके भोंयरेमें रख छोड़ा है, उसे देखने आया हूं।"

भगवान् गौतमसे मृगावती कहने लगी—"हे पूज्यपाद! किस अतिशय ज्ञानी महात्माने आपको यह गुप्त बात बताई?" श्री गौतम स्वामी कहने लगे—

वीर प्रभुके शिष्य आर्य सुधर्मा स्वामी महा प्रतापी पुरुष थे।* उनकी चम्पापुरीके उद्यानमें आने की खबर नगरीमें फैल जानेसे बहुतसे धर्मप्रेमी मनुष्य दर्शन करने और उपदेश सुननेका लाभ उठाकर अपने-अपने घर चले गये।

आर्य सुधर्मास्वामीके साथ उनके अन्तेवासी शिष्य जम्बूस्वामी थे। वे जाति और कुलसे निर्मल तथा शरीर की ऊंचाई में सात हाथ ऊंचे थे। वे ध्यान करनेके पश्चात् जहां आर्य सुधर्मास्वामी विराजमान थे वहां आये और तीन बार प्रदक्षिणा कर पंचाङ्गी नत वंदना नमस्कारपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे–"भगवन्! यदि श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभुने (जो मोक्षपदको पा गये हैं) दशमांग प्रश्नव्याकरणका यह अर्थ कहा है तो ग्यारहवें अंग विपाकसूत्र का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?"

आर्य सुधर्मा स्वामीने उत्तर दिया कि···'विपाकसूत्र' के दो श्रुतस्कंध कहे हैं–१ दुःखविपाक और २ सुखविपाक।···उत्थानिका पूर्ववत्। प्रत्येक स्कंधमें १०-१० अध्ययन हैं। इन २० अध्ययनोंमें प्रथम दुःखविपाकके दश अध्ययन क्रमशः कहता हूं।

पहला अध्ययन--मृगापुत्र

उस समय एक नगर था उसका नाम था मृगागांव (मियागाम)। वहां विजय नामका क्षत्रिय राजा था। उसकी मृगावती नामकी रानी थी। वह बड़ी रूपवती थी। उसकी उदरकंदरासे मृगापुत्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जन्मजात अंधा, बहरा, लूला, लंगड़ा, गूंगा और वातकफादि रोगोंसे पीड़ित था। कोई देख न ले इस विचारसे उसे भूतल-तहखानेमें रखकर वह उसका पालन-पोषण करने लगी ॥२॥

उसी गांवमें एक जन्मान्ध भिखारी था। उसके माथेके बाल सदा बिखरे रहते थे और मुंह पर मक्खियां भिनभिनाया करती थीं। एक सुजाखा आदमी उसकी लकड़ी पकड़ कर उसे घर घर भीख मांगनेके लिए ले जाया करता था।

---

*सच्चे सन्त कैसे होते हैं यह इससे सोचा जा सकता है। संसार पक्षमें उनके माता पिता अच्छे खानदानी होते हैं, वे स्वयं सुरूप स्वच्छ शौर्यवान् ज्ञानवान् और मधुरभाषी होते हैं। कितने ही बदसूरत लोग हमें 'कैवल्य' हुआ है कहकर अपने को पुजवाते हैं, उनमें ऐसी आत्मिक शक्ति का होना ही सम्भव नहीं है। एक अंग्रेज लेखकका कहना है कि—The person (man of cosmicconsciousness) has an exceptional physique, exceptional beauty of build and carriage, exceptionally handsome features, exceptional health, exceptional sweetness of temper, and exceptional magnetism. (w. m. Shah).

मृगागांव से उत्तर-पूर्वके बीच-ईशान कोणमें छहों ऋतुओंके फल फूलसे सुशोभित 'चन्दनपादप' नाम का उद्यान था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर प्रभु उस उद्यानमें पधारे। उनकी वन्दना करने के लिए बहुतसे मनुष्योंको आते जाते देख कर विजय राजा भी वन्दना करने गया और जाकर भगवान्‌की सेवा भक्ति करने लगा।

बहुतसे आदमियोंका कोलाहल सुन कर वह अंधा भी उस सुजाखे आदमी की लकड़ीके सहारेसे आया, उसने दाहिनी ओरसे प्रारम्भ करके श्री महावीर स्वामीकी प्रदक्षिणा की और वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करने लगा। श्रमण भगवान् महावीरने विजय राजा और परिषद्‌को धर्मकथा सुनाई और सब लोग धर्मकथा सुनकर अपने-अपने घर गये ॥३॥

तब भगवान्‌के बड़े शिष्य इन्द्रभूति (गौतम) अणगार (जो 'तप' और संयम' से अपनी आत्माको प्रफुल्लित करते हुए विचरते थे) उस अंधे मनुष्यको देखनेसे उत्पन्न हुए अपने अचरजको मिटानेके लिये प्रभुसे पूछने लगे—"हे प्रभो! क्या किसी स्त्रीने कोई बच्चा जन्म से ही अन्धा पैदा किया है?"

प्रभु कहने लगे—"हे गौतम! चित्त लगाकर सुन! इस मृगागांवमें ही विजय राजा व मृगादेवीका अंगजात मृगापुत्र जन्मान्ध है। इतना ही नहीं, बल्कि वह जन्मसे ही अपङ्ग, बहरा, लूला और लंगड़ा भी है। उसके हाथ पैर उपांगादि आकार-मात्र हैं, प्रकट नहीं हैं। उसे उसकी मां भू-तलघरमें रखकर अन्न जलसे पोपण करती है।"

श्री गौतमने पूछा—"प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं उसे देखने जाऊं!" प्रभुने कहा—"हे देवोंके प्यारे! जैसे सुख हो वैसे करो"। आज्ञा मिलनेसे प्रसन्न होकर श्री गौतम स्वामी ईर्यासमितिको निभाते हुए गांवके बीचोंबीच होकर मृगा-देवीके महलमें गये। उन्हें देखकर रानीको बड़ा हर्ष हुआ और बोली—"अहो पूज्य! आप यहां कैसे पधारे? जो आज्ञा हो फरमाइये।" श्री गौतम स्वामीने कहा—"हे देवानुप्रिये! मैं तुम्हारे पुत्रको देखनेके लिये यहां आया हूं"। यह सुनते ही रानी ने अपने चारों पुत्रोंको वस्त्रालंकारसे सजाकर श्री गौतमके चरणोंमें उप-स्थित किया और कहा कि "पूज्य! यह मेरे पुत्र हैं"।

श्री गौतम कहने लगे—"हे देवानुप्रिये! मैं इन बच्चोंको देखनेके लिये नहीं आया हूं, बल्कि तेरा बड़ा पुत्र मृगापुत्र जो जन्मान्ध है और जिसे भू-तलके भोंयरेमें रख छोड़ा है, उसे देखने आया हूं।"

भगवान् गौतमसे मृगावती कहने लगी—"हे पूज्यपाद! किस अतिशय ज्ञानी महात्माने आपको यह गुप्त बात बताई?" श्री गौतम स्वामी कहने लगे—

"मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्री महावीर स्वामी सब कुछ जानते हैं; सब कुछ देखते हैं; उनके कहनेसे मैंने यह सब जाना है"।

मृगापुत्रके भोजन करनेका समय हुआ जानकर रानी बोली—"हे पूज्य-पाद ! जरा ठहरियेगा; मैं उस बच्चेको आपको अभी दिखाए देती हूं।" यों कह रानी 'रसोईघर' में गई। कपड़े बदले और एक छोटीसी गाड़ीमें अन्न पानी रखकर बच्चोंकी तरह उस गाड़ीको खींचती हुई गौतम स्वामीके पास आई और बोली—"भगवन् ! मेरे पीछे पीछे चले आइये" उन्होंने वैसा ही किया।

मृगावती रानी गाड़ी खींचती हुई भू-तलमें पहुँची। उसने अपनी नाक पर कपड़ा बांधा और गौतमको भी नाक पर कपड़ा बांधनेको कहा, और उन्होंने भी वैसा ही किया, क्योंकि उसका द्वार खुलते ही उसमें से मरे सांपकी बाससे भी तीव्र दुर्गन्ध आती थी। दुःखसे पीड़ित होने पर भी मृगापुत्र आहार पानीके मिलने पर मूर्च्छित था। वह मुखसे आहार लेता था कि सब नाश हो जाता था, खून और राध बनकर वह जाता था। मृगापुत्र फिर उसे खाता था। यह देखकर गौतम स्वामीको वैराग्य भावसे संकल्प उठा कि—"अहो, विस्मयकारी मृगापुत्र पूर्व भवमें महा अशुभ पापकर्म करने वाला होना चाहिए, कि जिसके कारण यह ऐसे अनिष्ट दुःख भोगता है, नारकीके दुःख लोगोंने प्रत्यक्ष तो नहीं देखे परन्तु यह मनुष्य निश्चय नारकी के जैसे ही दुःख भोगता है"। फिर गौतम स्वामी वहां से चलकर श्रमण भगवान् महावीर के पास गांवके बीचोंबीच होकर आये। उन्हें तीन बार वन्दना नमस्कार किया, देखी हुई सब बातें कहीं और पूछने लगे—"हे पूज्य ! यह मृगापुत्र पूर्वभवमें कौन था ? इसका नाम और गोत्र क्या थे ? कौनसे नगरमें रहता था ? क्या अशुभ कर्म उपार्जन किया था और क्या कुपात्र दान दिया था ? क्या मांसादि अभक्ष्य खाया था ? कैसे कुव्यसनमें फंसा था और किस तरह बहुत समयके किये हुए हिंसादि कर्मोंको बुरा न कहकर निःशल्य न होनेसे ऐसे दुष्ट[१] फल भोग रहा है ? कृपा कर फरमाइये" ॥४॥

भगवान् कहने लगे—उस समय जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र में शतद्वार नामक नगर था। उसके सौ दरवाजे थे। वह ऋद्धिसे भरा हुआ था। उसमें किसी प्रकार का भय नहीं था। इस नगरसे न बहुत दूर न बहुत पास अग्निकोणमें विजय-

---

१. दुष्ट फल या विपाक कैसे कामोंका होता है ? इसका कुछ संकेत शास्त्र-कार ऊपरके शब्दोंमें देते हैं। कुव्यसन, मांसाहार, कुपात्र-दानादिके विपाक बुरे होते हैं, इतना ही नहीं बल्कि 'मरनेके पहले' उन कुकर्मोंका पश्चात्ताप करके शल्यरहित न होनेसे भी ऐसे ही कड़वे फल भोगने पड़ते हैं। २. खेड़ा—मिट्टीके कोट वाला गांव।

वर्द्धमान नामका खेड़ा२ था। वह भी मालमत्तेसे भरा हुआ था। उसमें ५०० गांव लगते थे। इनकी उपज खेड़ेमें जमा होती थी। इस खेड़े के मालिकका नाम 'एक्काई राठोड़' था। वह बड़ा अधार्मिक, नास्तिक था। उसे खोटे काम करनेमें ही आनन्द मिलता था। प्रजासे कर और किसानोंसे जमीनका महासूल बहुत ही ज्यादा लेता था। उसे भी दिन-दिन बढ़ाता जाता था। रिश्वत लेनेसे भी न चूकता था। दुनियांदारोंको मारता था, डराता था और कहता था कि "मेरा तुम्हारे ऊपर इस लोक और पूर्व जन्मका लेना देना है इसलिये सब अभी चुका दो!"। एक ही अपराध कइयों पर डालकर सबसे खूब जुर्माना वसूल करता था। चोरोंकी परवरिश करता था। रास्तेमें आते-जाते हुए आदमियोंको लूट लेता था। उन्हें स्वयं पीड़ा देता था और औरोंसे भी दुःख पहुँचवाता था। गांवोंको जला देता था। इस तरह दुःख दे दे कर दुनियां का पैसा खींच लेता था। राजा, प्रजा, सेठ, साहूकार सार्थवाह (महाजन) आदिका काम बिगाड़ता था और बिगड़वा देता था। न कोई बड़े गम्भीर विचारका काम करता था, न गुप्त और लज्जावाली बातों का निर्णय करता था। वह विवाह और व्यापारके मामलेमें सुनी अनसुनी कर जाता था, देखा अनदेखा कर जाता था, कहा न कहा और लिया न लिया कर जाता था। इस प्रकार तीव्र शब्द और तीव्र कर्मोंके सहित वर्ताव करता हुआ, अशुभ कर्म ही जिसका विज्ञान है ऐसा वह राठोड़ ज्ञाना-वरणादि कर्मोको बांधता हुआ विचरता था। एक बार उसके शरीरमें एकदम ये १६ रोग उत्पन्न हुए—(१) दमा (२) खांसी (३) बुखार (४) जलन (५) पार्श्वशूल (६) भगन्दर (७) मसा (८) अजीर्ण (९) दृष्टिशूल (१०) शिरःशूल (११) अरुचि (१२) आंखें दुखना (१३) कानका दर्द (१४) खाज (१५) जलो-दर और (१६) कोढ़।

इन रोगोंके होनेसे उसने कुटुम्बियोंको कहा कि आप लोग गांव में जाओ और जहां-जहां दो, तीन, चार या बहुतसे रास्ते मिलते हों वहां-वहां खड़े होकर घोषणा करो कि "एक्काई राठोड़के १६ रोग प्रकट हुए हैं; यदि कोई पढ़ा लिखा आदमी रोगका निदान करना जानने वाला वैद्य अथवा वैद्यपुत्र उसे आराम कर देगा तो वह बहुत धनका पुरस्कार पायेगा" और वापस आकर मुझे सूचना दो कि आज्ञाका पालन किया गया है। उन्होंने वैसा ही किया।

उद्घोषणा सुनकर बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र आये और अपनी शस्त्रों की पेटियां और दवाओं की झोलियां साथ लेते आये। खेड़े के बीचोंबीच होकर एक्काई के घर गये। इनमें से कोई नाड़ी देखने लगा। कोई रोग का निदान करने लगा। कोई गरम घी और उकाली देने लगा। कोई उलटी कराने लगा। कोई जुलाब देने लगा। कोई डाह देने लगा। कोई बहुत तरह की मिली औषधियों के

जल से स्नान कराने लगा। कोई गुदा में तेल लगाने लगा। कोई वस्तीकर्म करने लगा। कोई चमड़े की वत्ती बनाकर तेल में भिगो-भिगोकर गुदा में रखने लगा। कोई नस्य देने लगा। फस्त खोलने लगा। कोई माथे पर चमड़ा लपेट उस पर तेल डालकर आग मे सेकने लगा। कोई रोहिणी आदि वनस्पति की छाल से व जड़ से सेकने लगा। कोई सूरणादि कन्द के पत्तों व जल से सेंकने लगा। कोई नाना प्रकार की औषधि के पत्तों व जलसे सेंकने लगा। कोई हरड़ वहेड़े आंवले का चूर्ण फंकाने लगा। कोई चिरायता पिलाने लगा। कोई गोलियां देने लगा। कोई पाक खिलाने लगा। सबने वारी-वारीसे अपनी-अपनी हिकमत लगाई परन्तु किसी से कुछ भी न हुआ—एक भी रोग न मिटा। सब वंद्य हार कर अपने-अपने घर चले गये और बड़े खिन्न हुए। सेवा शुश्रूषा करने वाले सब निरुपाय हो गए और एक्काई दुःख पाता ही रहा। इतना ही नहीं राज्य और रानियों पर मूर्च्छाभाव (मोह) होने से आर्तध्यान और रौद्रध्यान में पड़ा इस प्रकार शारीरिक और मानसिक पीड़ा भोगते-भोगते ढाईसौ वरसकी परम उत्कृष्ट आयुष्य भोगकर मरा और रत्नप्रभा पृथ्वी में (पहली नरक में) गया।

वहां एक सागरोपम की स्थिति भोगकर अन्तररहित निकलकर उसका जीव मृगागांव के राजा विजय क्षत्रिय की रानी मृगावती की कोख में आया। आते ही माता के शरीर में सख्त वेदना हुई। इतना ही नहीं वल्कि उसी दिन से रानी पर राजा की प्रीति न रही, अविश्वास हो गया और राजा उससे घृणा द्वारा मुंह मोड़ने लगा। एक समय रानी रात के पिछले पहर में 'कुटुम्ब-जागरिका' (कुटुम्ब के सुख दुःख का विचार) कर रही थी उस समय उसे विचार हुआ कि 'अहो ! मैं जितनी अपने स्वामी को प्यारी थी और उनकी विश्वासपात्र थी आज भी मैं वही हूं पर जब से यह गर्भ कोख में आया है तब से मेरी यह अवदशा हुई है; इसलिये ऐसा कोई इलाज करूं तो ठीक हो, जिससे किसी प्रकार यह गर्भ सड़ जाय, गल जाय या गिर जाय"। इस विचार से उसने वहुत कड़वी, तीखी और तूरी औषधियां खांईं। मन्त्रित पानी पिया; परन्तु किसी का किया कुछ न हुआ। इससे खेद पाती हुई किसी प्रकार गर्भ को विना मन के धारण किये रही।

गर्भ में होते हुए भी उस वच्चे के आठ नाड़ियां शरीर में वहती थीं, आठ नाड़ियां शरीर के वाहर वहती थीं। आठ से खून वहता था और आठ से राध। दो-दो कान के पास, दो दो नाक के पास, दो दो आंख के पास और दो दो धमनी के पास (अपान देश में)। इनसे खून और राध बराबर वहती जाती थी। इतना ही नहीं वल्कि उसे भस्माग्नि रोग भी हुआ। इससे जो कुछ वह आहार करता था तुरंत नाश हो जाता था और उसका खून और राध वन जाता था और फिर वह उसी को खाता था।

नौ महीने पूरे हो जाने पर बालकका जन्म हुआ । वह जन्मान्ध, अंगोपाङ्गहीन और इन्द्रियोंके आकार मात्र दिखाई देने वाला (प्रकट इन्द्रियां नहीं) जन्मा । उसे देखकर मृगादेवी डरी और धायको बुलाकर कहने लगी-"जाओ इस बच्चेको एकान्त उत्कर-कुरडी१ या ऊखरमें डाल दो ।" धायने इस बातको मानकर राजासे जाकर निवेदन किया । वह मृगादेवीके पास आया और कहने लगा कि "यह तुम्हारा पहला ही गर्भ है, इसे ऐसे फेंक दोगी तो तुम्हारी सन्तानें जियेंगी नहीं । इस लिये इसे कहीं न फेंककर भूतलके मकानमें रक्खो और अन्न-पानीसे इसका पोषण करो ।" उस वचनको मृगादेवीने तहत्त-तथास्तु अर्थात् सत्य कहा मान लिया, और बच्चेको भूतलगृहमें रक्खा तथा आहार पानीसे पालन पोषण करने लगी ॥५॥

आगामीभवपृच्छा ।...यह मृगापुत्र बालक पूर्वजन्मके चिरकालके संचित कर्म फलसे अथाह दुःख भोग रहा है । यहांसे २६ वर्षकी प्रतिपूर्ण आयुष्य भोगकर मरनेके समय मरेगा और जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैताढ्य पर्वतके पास सिंह कुलमें पैदा होगा । वहां बहुतसे पाप संचित कर कालके समय मरेगा और रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले नरकमें उत्कृष्ट (एक सागरोपमकी) स्थिति वाला नारकी होगा । वहांसे अंतररहित च्यवकर नेवला और गोहकी पर्यायमें उत्पन्न होगा । वहांसे अंतररहित निकलकर पक्षी होगा । वहांसे मरकर तीसरी नरक में जायेगा और वहां सात सागर तक रहेगा । वहांसे निकलकर सिंह होगा और मर कर चौथी नरकमें जाएगा । फिर सर्प होगा और मर कर पांचवीं नरकमें जायेगा । फिर स्त्री होगा और मरकर छठी नरकमें जायेगा । फिर मनुष्य होगा और मर कर सातवीं नरकमें जायेगा । वहांसे अंतररहित निकल कर जलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि मछली, कछुए, मगर आदि जलचरोंकी साढ़े बारह लाख कुलकोड़ीमें उत्पन्न होगा । वहांसे एक एक योनिके भेदमें अनेक लाख बार मर-मर कर वहीं का वहीं पैदा होगा । वहांसे चौपदमें, उरपुर सांपों, भुजपुरों, पक्षियों, चौइन्द्रियों, तेइन्द्रियों, बेइन्द्रियों, वनस्पतियों, कड़वे वृक्षों, कड़वे दूध, वायु, अग्निकाय, अप्काय, पृथ्वीकाय आदिमें अनेक लाख बार मर मर कर वहीं पैदा होगा । फिर अंतर-रहित च्यवकर सुप्रतिष्ठित नगरमें सांड होगा । तब जवानीकी हालतमें वर्षा ऋतुके* पहले महीने सावनमें गंगा महानदीके तटकी मिट्टीको सींगोंसे खोदते खोदते ढांगका किनारा टूट पड़नेसे दबकर मर जायेगा । वहांसे सुप्रतिष्ठित नगरके सेठके घर पुत्रभावसे उत्पन्न होगा । वहां पर वृद्ध साधुके पास जवानीकी अवस्थामें धर्म सुनेगा । उसे हृदयमें धारण कर साधु हो जायेगा । पांच 'समिति'

१. कूड़ा-कचरा फेंकने का स्थान ।

*ऋतु छः हैं (१) शिशिरऋतु (माघ-फागुन), (२) वसन्त (चैत्र-वैशाख), (३) ग्रीष्म (जेठ-असाढ़), (४) वर्षा (श्रावण-भादवा), (५) शरद् (असोज-कार्तिक), (६) हेमन्त (मंगसिर-पोह) ।

और तीन 'गुप्ति' धारण करेगा। ब्रह्मचर्य और चिरकाल तक चारित्र पालन करेगा, आलोचना और प्रतिक्रमण करेगा। कालके समय काल कर सुधर्म देवलोकमें देवता होगा। वहांसे अंतररहित देवशरीरको छोड़कर महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम कुल समृद्धिवंत और दृढ़प्रतिज्ञावंत अंवडकी भांति 'दृढ़प्रतिज्ञ' नामक समदृष्टि जीव होगा। वहां वह ७२ कलाएं सीखेगा और फिर दीक्षा लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।...॥६॥

सार

मूल सूत्रके भाषान्तरमें कुछ बढ़ घट किये बिना सार मात्र कहनेके पश्चात् अब 'अध्ययनके'' पाठ' में से तत्व-निष्कर्ष निकालें।

"कर्म सिद्धान्त अटल है" इस एक ही सिद्धान्तमें जिसका अचल विश्वास है ऐसा आदमी आगे पीछे कभी न कभी मुक्ति पायेगा, क्योंकि वह इस बातकी खोज रखता है कि किस कर्मके करनेसे सुख मिलता है और किस कर्मके करनेसे दुःख। कदाचित् कोई काम उससे अयोग्य भी हो जाय या उलटा समझ बैठे तो वह पछताता है। परन्तु जो धर्मकी बड़ी बड़ी बातें करते हुए भी 'कर्म' के अचल सिद्धान्तमें श्रद्धा नहीं रखते, उन्हें 'सम्यक्त्व' प्राप्त नहीं होता, फिर मोक्ष कहां? 'कर्म' कुछ घड़ा-घड़ाया भाग्य नहीं है, बल्कि मनुष्यके अलग अलग भवमें किये हुए अच्छे बुरे कामों का हिसाब है। जैसे लेने वाला अपने लेनेको नहीं छोड़ता, वैसे ही अच्छे बुरे काम भी बदला लिये बिना नहीं रहते। कितने ही वृक्ष जल्दी फलते हैं और कितने ही देरमें। इसी भांति कितने ही कामोंका सुख दुःख रूपी फल जल्दी मिलता है और कितनोंका कई वर्षों या भवोंके बाद। कोई अनधारी अनसोची घटना हो जाती है तो वह अनियमित रीतिसे या किसी देवताकी इच्छासे नहीं होती; बल्कि आजकल वर्षों या भवोंके काम या कार्योंके परिणामसे ही होती है। श्रीमान् इस बातको समझें तो अपने आप दगा छल आदि कुकर्म छोड़ दें। गरीब इस बातको समझें तो आर्तध्यान छोड़ दें। प्रजा इस बातको समझे तो अराजकीय खून (ANARCHISM) और हुल्लड़ न हों। राजा इस बातको समझें तो भारी से भारी कर जुल्म और पक्षपात होने ही न पावें।

विपाकसूत्रका यह पहला अध्ययन जैसा सादा है वैसा ही इस समयके लिए अमूल्य और हितकारी भी है। राजा लोगोंको इसमें से बहुत शिक्षा मिलती है। एककाई राठोड़ नामके राजाने कर बढ़ाये, दुनियांको भांति भांतिसे लूटा, अपने महलोंको सजाया, आचार भ्रष्टताका प्रचार किया और अनेक कुकर्म किये। इसका फल उसे कितना खराब मिला? २५० वर्षमें किये हुए पापोंका पलटा पहली नरकसे सातवीं नरक तक अनन्त वर्षों तक भटक भटक कर देना पड़ा। तुच्छ देहोंको धारण कर परतन्त्रता से दुःख भोगने पड़े। अन्तमें रानीके

पेटमें आने पर भी महाकष्ट भोगना पड़ा। अरे ! स्वयं माता तकने गर्भमें ही सड़ा देनेकी कोशिश की। जिस भगवान्ने ये बातें गौतमसे कहीं इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं था कि किसी राजाको अन्योक्तिसे समझाते, उन भगवान्के वचन पर हे राजा महाराजाओ ! हे श्रीमन्तो ! आपको वास्तवमें श्रद्धा ही उत्पन्न होती हो तो 'कर्म' के अटल सिद्धान्तमें श्रद्धा रक्खो। अन्याय न करो, न्याय पथ पर चलो। सफेद सफेद सब दूध न समझो। राजऋद्धि साहिबी सदाकाल न रहेगी। आज जिस लक्ष्मी या सत्ताका मद तुम्हें है वह बहुत चला तो सौ वर्ष तक चलेगा। आगे क्या होगा ? फिर नरक तिर्यचादिके दुःख हैं, क्या उन्हें सहनेको तैयार हो ? और ऐसा भी हो सकता है कि तुम आर्तध्यान रौद्रध्यानके प्रतापसे इसी भवमें सोलह महारोगोंमें से किसी एक रोगके शिकार बनकर फंस जाओ।

कोई राजा यों समझे कि हम स्वास्थ्यके नियमोंको निभायेंगे, फिर बीमारी कहां ? परन्तु उस बेचारे अज्ञानके पुतलेको मालूम ही कहां है कि राज्योंमें हुल्लड़ होते हैं और राजाओंके शिर काटे गये हैं ऐसे उदाहरण योरुप जैसे सुधरे हुए देशमें भी हो चुके हैं। कितने ही राजाओं पर यकायक बदनामी, अपमान और लांछनका धब्बा लग जाता है कि जिससे ऊंचा मुंह भी नहीं किया जा सकता। कितनोंको जलप्रलय धरतीकंप या ज्वालामुखी पहाड़का प्राकृतिक त्रास भोगना पड़ता है। कितनोंको खुराकमें न मालूम क्या खानेमें आ जाता है और असीम वेदना पहुंचाता है। इन सब 'कर्म' के परिणामोंको कोई रोक नहीं सकता।

'कर्म' सिद्धान्त का रहस्य समझाने वाले महावीर स्वामी स्वयं इस कानून की चंगुल से न बच सके थे। उनके कान में भी ग्वालों ने कीलें ठोक दीं थीं, यह क्या 'कर्म' के कानूनका अमल न था ?

इसलिये हे मनुष्य ! शान्त हो, विचारशील हो, 'कर्म' सिद्धान्त में अटल श्रद्धा रख। चाहे जैसे लालच देने वाले कुकर्मको भी छोड़ दे। चाहे जैसे भयंकर मालूम होते हुए सत्कर्मको निर्भय होकर कर। आज जो तू देख रहा है या भोग रहा है यह सब तेरे पूर्व कर्मोंका 'परिणाम' है। और जो कार्य तू आज कर रहा है और सोच रहा है इन सबका फल भी तुझे भोग लेना है।

एक हाथ से लेना हो तो दूसरे हाथसे दे। एक हाथसे लुनाई करनी हो तो दूसरे हाथसे बो। एक आंख से चमत्कारी ज्ञान देखना हो तो दूसरी आंखसे सम्यग्दृष्टि हो। सीधी सादी बात कहने वाले धर्मशास्त्र 'वहम' नहीं हैं बल्कि अचल और अनिवार्य नियमकी उद्घोषणा है।

।। प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

दूसरा अध्ययन-उज्झियकुमार

...उस समय वाणिज्यगांव नामका एक नगर था। उसमें लोगोंके पास बड़ी समृद्धि थी। किसी को किसी से कुछ भय न था। वहां के राजाका नाम था मित्र और उसकी रानीका नाम था श्रीदेवी। उस नगर के ईशानकोण में द्युतिपलास नामका उद्यान था।

उसी नगर में कामध्वजा नाम की एक वेश्या रहती थी। वह पांचों इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण और रूपवती थी। पुरुषोंकी ७२ कला और स्त्रियोंकी ६४ कलाओं में निपुण थी। २९ विपय के गुणों में रमण करती थी और ३१ रतिके गुणोंको जानती थी। पुरुपके ३२ उपचारोंमें पारगत थी। किसी के नव अंगोंको वह जागृत कर सकती थी। १८ देशकी भापाओंको जानती थी। शृङ्गार रसके महा भवन तुल्य परिधान पहनती थी। गानेमें बड़ी प्रवीण थी। हाथी सी मतवाली चाल चलती थी। बड़ी मधुर मुस्कान थी। नेत्रविकार और वचन चातुर्यमें अत्यन्त कुशल थी। लोकव्यवहार को खूब समझती थी। मनोहर और पीन स्तन थे, चन्द्रका सा मुख था। कमल जैसे हाथ और कछुए से पैर थे। नारीकी चेष्टामें अग्रगामिनी थी। उसके घर ऊंची ध्वजा फहराती थी। एक हजार मुद्राएं उसके लाभकी निश्चित थीं। राजा से उसे चंवर, रथ, पालकी आदि सन्मानमें मिले थे। बहुत सी वेश्याओंमें वह सर्वोपरि थी। इस तरह वह कामध्वजा अपने दिन सुखमें विताती थी ॥७॥

उसी नगर में विजयमित्र नामका एक सार्थवाह (व्यापारी) भी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सुभद्रा और पुत्रका नाम था उज्झिय। एक बार श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी उस नगर में पधारे। राजा और प्रजा उन्हें वन्दना कर धर्मकथा सुन अपने-अपने घर गये। इसके बाद भगवान् के बड़े शिष्य इन्द्रभूति (गौतमस्वामी) जिन्होंने तेजोलेश्या अपने अन्तर मानस में अप्रगट रक्खी थी और छट्ठ छट्ठ पारणा करते हुए विचरते थे। पहले पहर में* सज्झाय(स्वाध्याय-ज्ञानाभ्यास) और दूसरे पहर में ध्यान करते हुए, तीसरे पहर मे गोचरी के लिए निकले। ऊंच-नीच और मध्यम कुलमें अटन करते करते राजमार्ग पर आये। वहां उन्होंने एक आश्चर्यकारक दृश्य देखा—

गरुड़ादि चिन्हों से चिन्हित ध्वजाओं को हाथमें लेकर कवचधारी सुभट हाथियों पर दोनों ओर चढ़े हुए हैं। हाथियों पर हौदे लगे हुए हैं। घंटा झूल रहा है। आभूपण पहनाये हुए हैं। घुड़सवार लाल-लाल तेज घोड़ों पर चढ़े हुए हैं। खड्ग उनके पास हैं। घोड़ोंकी लगाम खैंच रक्खी हैं, इससे उनके होठ ऊंचे हो

---

*मुनियों की दिनचर्या अर्थात् दिन भर के कर्त्तव्य ध्यान में रखने योग्य हैं।

रहे हैं। घोड़े चामर और आयने से सुशोभित हैं। एक सैन्य पैदल चलने वाला है। उसने भी कवच पहन रक्खा है। धनुष धारण कर तरकशमें तीर वांध रक्खे हैं। हाथोंमें भांति-भांतिके अस्त्र और शस्त्र हैं। इस भांति वहुत से हाथी, घोड़े और सेनाके वीच में एक मनुष्यको वांध रक्खा है। वह चोर है। उसके नाक, कान काट रक्खे हैं। हथकड़ियां पड़ी हुई हैं। चोर के से कपड़े पहना रक्खे हैं। गलेमें लाल कनेरकी माला पहनाई है। मुंह काला कर रक्खा है। शरीर पर गेरू चुपड़ा है। पसीने में उसका शरीर सरावोर है। ऐसे वेशमें उसके शरीर का मांस तिलतिल वरावर काट काटकर उसे ही खिलाया जा रहा है। धमकाया जा रहा है। सोटोंसे मारा जा रहा है(सिर्फ सांस लेनेका ही सुख है)और जहां-जहां दो तीन रास्ते मिलते हैं वहीं वहीं ढोल वजा कर यह डोंडी पीटी जाती है कि "यह मनुष्य किसी राजा या राजपुत्र के मारने से नहीं मारा जा रहा है, वल्कि अपने किये हुए कर्मोंसे ही पीटा और मारा जा रहा है" ॥८॥

इस दृश्यको देखकर गौतमस्वामी विचार करने लगे कि "अहा हा ! इस पुरुषने पूर्व भवके वुरे आचरण की आलोचना न की होगी, उनका पछतावा न किया होगा, इसी कारण अशुभ कर्मके फल प्रत्यक्ष भोग रहा है। यह पुरुष निश्चय नारकी जैसे ही दुःख भोग रहा है।" ऐसा सोचकर वे वाणिज्यग्राममें ऊंच-नीच कुलमें अटन करते हुए अपनी मर्यादाके अनुकूल भिक्षा ग्रहण कर नगरके वीचों-वीच होकर भगवान् महावीर स्वामी जहां विराजते थे वहां आये। आहार दिखाया वन्दना नमस्कार कर कहने लगे—"हे भगवन् ! आपकी आज्ञा पाकर मैं गोचरी के लिये गया था, वहां एक पापीको नरक जैसी पीड़ा भोगते हुए देखा (यह कह देखी हुई सव वातें निवेदन कीं) और कहा—हे भगवन् ! यह मनुष्य पूर्व भवमें कौन था ? और क्या-क्या पाप किये थे, कि जिससे ऐसा अगाध दुःख भोग रहा है ?

श्रमण भगवान् महावीर फरमाने लगे—"गौतम ! सुन—उस समय, जम्बूद्वीप के भरतखंड में हस्तिनापुर नामका नगर था। वहां के लोगों के पास वड़ी समृद्धि थी। वहां सुनन्द नाम का राजा राज्य करता था। पर्वतों में हिमालय, मलयाचल और मेरु तथा देवों में सुधर्मेन्द्र जैसे वड़ा है वैसे ही वह राजा अनेक राजाओं में वड़ा माना जाता था। हस्तिनापुर के वीच में एक गोशाला का मंडप था, उसमें वहुत से स्तंभ थे। वह देखने योग्य था। उसमें धनी और वेधनी के पशु गाय, वैल, भैंस, भैंसे आदि निर्भय होकर घास, चारा खाकर सुख से रहते थे। उसी हस्तिनापुर में महापापी, वुरे कामों में आनन्द मानने वाला, भीम नामक कुंडग्राही रहता था। उसकी स्त्री का नाम था उप्पला। वह जव गर्भवती हुई तव उसको तीसरे महीने 'डोहला'* उत्पन्न हुआ कि—"जिन माताओं

*डोहला अर्थात् 'दौहृद'=मनोरथ, इच्छा।

के इस भांति मनोरथ पूर्ण होते हों उन्हीं का मनुष्य भव धन्य है कि—जो गायों के (दूध आने का ठिकाना) स्तन, बैलों के स्कंध, कान, आंख, नाक, जीभ, होठ, गले के नीचे की लटकती हुई नौली-त्वचा आदि मांस को तल, भून, सेक, नमक मिरच लगा, मदिरा के साथ खाती हुई विचरती हों और अपने मनोरथ को पूरा करती हों ऐसी माताओं को धन्य है, और मुझे अधन्य है कि मेरा मनोरथ अधूरा रहा हुआ है पूरा नहीं होता !"

ऐसे विचारों में घिर कर 'उप्पला' अपने मनोरथ पूर्ण न होने से और भोजन न करने के कारण सूख गई। फूल, वस्त्र, गंधमाला, अलंकार आदि का उपभोग न करने से वह कुम्हलाये हुए फूलों की मालासी हो गई। उसका तेज जाता रहा और उसकी देहयष्टि पीली पड़ गई। एक समय नीचा मुख कर मनमें संकल्प-विकल्प करती, आर्तध्यान व रौद्रध्यान ध्याती हुई, उदास होकर बैठी थी, उस समय उसका पति भीम वहां आया। उसने अपनी स्त्री को चिन्तातुर देखकर कहा—"तुम चिन्तातुर होकर क्यों कलपती हो ?" स्त्री ने अपने मनकी सब बातें कहीं, तब भीम ने कहा—"क्यों फिकर करती हो ? मैं तुम्हारी आशा पूर्ण करूंगा।" यह सुनकर उप्पलाको कुछ सन्तोष हुआ।

भीम कुण्डग्राही आधी रात में बख्तर पहन हाथ में हथियार लेकर अकेला घर से बाहर निकला। वह हस्तिनापुर के बीच में गोशाला के मंडप में आया और गाय, बैल के अगले पैरों के बीच की लटकती हुई और गलेमें लटकती हुई चमड़ी को काट और अंग उपाँग को छेदन-भेदन कर मांस लेकर अपने घर आया और स्त्री को वह मांस दिया। उसने उस मांस को भून भान कर शराब के साथ खाया। इस तरह दिन व्यतीत करते-करते उसने नौ मास पूरे किये। एक दिन उसकी कुक्षिसे बालक पैदा हुआ ॥६॥

पैदा होते ही उसने बड़ी जोर से चिल्ली मारी, जिससे सारे गांव के गाय, बैलादि पशु डर कर इधर-इधर भाग निकले। इसीलिये मां-बाप ने बच्चेका नाम 'गोत्रासिया' रक्खा। उस बच्चे के जवान होने पर उसका बाप मर गया। सगे सम्बन्धियों ने उसका अग्नि-संस्कार किया। इसके बाद एक दिन उस गोत्रासिया कुंडग्राही को सुनन्द राजा ने सूचक-मुखबिर के पद पर स्थापित किया। क्योंकि वह बड़ा अधर्मी, बुरे काम करने में आनन्द मानने वाला और चुगलखोरों का प्रमुख था।

वह गोत्रासिया रोज आधीरात बख्तर पहनकर अकेला हाथ में शस्त्र लिये हुए अपने घर से गोशाला में जाता और वहां गाय, बैलों के अंगोपांग काटकर मांस ले आता था। फिर उसको भून भानकर मदिरा के साथ खाता था। इस तरह वह तीव्र कर्म और अशुभ परिणाम को ही परम विज्ञान मानने वाला

गोत्रासिया बहुत से पाप कर्मों को संचितकर पांच सौ वर्ष का आयुष्य भोग आर्त-ध्यान और रौद्रध्यान करता हुआ मर गया और दूसरी नरक में उत्कृष्ट तीन सागर के आयुष्य से उत्पन्न हुआ। वहां से निकल कर ऊपर बताये हुए वाणिज्यगांव में विजयमित्र सार्थवाह की सुभद्रा नाम की मृतवंध्या जो मरे बच्चों को जनती थी, ऐसी स्त्री के पेटसे जन्म लिया। जन्मते ही उसे सत्कार-कुरडी पर डालकर फिर लाया गया, उसका जन्मोत्सव भी किया गया। साकार-पूर्वक कुटुम्बियों को भोजन कराकर बारहवें दिन गुणयुक्त नाम, डाल देने या फैंक देने से उज्झितकुमार रक्खा ॥१०॥

वह बालक पांच धायोंके हाथमें देकर पाला पोसा गया, जिनके नाम ये हैं—(१) खीरधाय-दूध पिलाने वाली, (२) मज्जनधाय-स्नानादि कराने वाली, (३) मंडनधाय-कपड़े पहनाने वाली, (४) कीलावणधाय-खिलाने वाली, (५) अंकधाय-गोदीमें लेने वाली। जैसे चंपक वृक्ष पर्वतकी गुफादिमें सुखपूर्वक बढ़ता है वैसे ही वह भी सुखसे विघ्नरहित बढ़ने लगा।

एक दिन विजयमित्र सार्थवाह चार प्रकारका किराना+भर कर लवण समुद्रमें जहाज पर चढ़कर जा रहा था। मार्गमें उसका जहाज घुम्मणघेरी-चक्कर में आकर टूट गया और धन लक्ष्मी सहित सब डूब गये, स्वयं भी अत्राण अशरण डूबकर मर गया। उसकी सम्पत्ति युवराज, कोतवाल, कुटुम्बी, सेठ साहूकार आदिने ले ली। मृत्युके समाचार सुनकर उसकी स्त्रीको बड़ा शोक हुआ। कटी हुई चम्पाकी डाल जैसे गिर पड़े वैसे वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। दो घड़ीमें उसे चेत आया। जातिवालोंके साथ रोते-पीटते हुए अपने पतिकी उत्तर क्रिया की। थोड़े दिनोंके पीछे वह भी अपने भरतारके दुःखमें मर गई ॥११॥

मातापिताके मर जानेके पश्चात् उज्झियकुमार को कोतवाल ने उसके घरसे निकाल दिया। वह कुसंगतिमें पड़ गया। कभी जुवारियोंमें, कभी वेश्या के घर और कभी कलालके यहां रहने लगा और निरंकुश हो जाने से शरावी, रंडीबाज और जुएबाज हो गया। कामध्वजा गणिकाके साथ संबन्ध हो जानेसे वह अधि-कतर उसके साथ रहने लगा। कुछ समय बीतने पर एक बार मित्र राजाकी राणी श्रीदेवीके गुह्यस्थानमें दैवयोग से शूल रोग पैदा हो गया। इससे राजाने काम-ध्वजाके घरसे उसको बाहर निकलवा दिया और कामध्वजाको अपने अन्तःपुर में रख लिया।

×१ गणिमं च—जो गिने जाते हैं, नारियल आदि। (२) धरिमं च—जो तोले जाते हैं, घी तेल आदि। (३) मेज्जं च—जो नापे जाते हैं, कपड़ा वगैरा। (४) परिच्छेज्जं च—जिनकी परीक्षा की जाती है, जवाहरात आदि।

कामध्वजाके घरसे निकलनेके कारण उज्झियकुमार वासना और लालसामें मूर्च्छित हो गया। विषयासक्त होनेसे उसे कहीं शान्ति न मिलती थी। कामध्वजामें ही उसका मन लगा हुआ होने से उसे भोगने के लिये उससे मिलने का मौका देखने लगा। एक वार अवसर पाकर वह कामध्वजाके घरमें घुस गया और कामध्वजासे विषय सुख विलसने लगा। इतने में स्नान मज्जन कर वस्त्राभूषण से सजकर वहुत से मनुष्योंको लेकर मित्र राजा भी वहां आ पहुँचा। देखता है तो उज्झियकुमार गणिका के साथ भोग विलास कर रहा है। देखकर राजा को क्रोध आ गया। उसने उसे नौकरोंके द्वारा पकड़वाकर धक्के, मुक्के, लात और डंडे लगवाकर खूब पिटवाया और आज्ञा दी कि इसे पांचों अंगोंसे बांधकर खूब मारा जाय। हे गौतम! पूर्व भवके अशुभकर्मो के उदयसे वह उज्झिय उस आज्ञा द्वारा कठोर दंड भोग रहा है" ॥१२॥

गौतमस्वामीने कहा—"हे भगवन्! वह उज्झिय यहांसे काल कर कहां जायगा?" भगवान् कहने लगे -"वह उज्झिय आज तीसरे पहर पच्चीस वर्ष का आयुष्य भोग कर सूली पर चढ़कर मरेगा और पहली नरकमें नारक होगा। वहांसे अंतररहित निकल कर जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैताढ्य पर्वतके मूलमें वन्दर होगा। तव यौवनावस्थामें भोगमें लीन होने से पाप कर्म संचित कर मरेगा और इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें इन्द्रपुर नगर में गणिकाके कुलमें पुत्र होगा। वहां उसके माता पिता उसे जन्मजात नपुंसक कर डालेंगे और नपुंसक-चेष्टा सिखायेंगे। उसका नाम प्रियसेन नपुंसक होगा। युवक, राजा, युवराज, सेनापति आदिको भांति भांति की विद्या, मंत्र, वशीकरण, औषधिलेपन आदि क्रियासे वश कर उनका धन हरण करेगा। इस प्रकार मनुष्य सम्वन्धी भोग भोगते हुए पाप कर्मका समुदाय उपार्जित कर १२१ वर्षका आयुष्य भोगकर मरेगा और पहली नरक रत्नप्रभामें नारक होगा। वहांसे निकल कर गोह और नेवला होगा। इस प्रकार संसारभ्रमण करेगा। जैसे मृगापुत्र का वर्णन किया है वैसे ही पृथ्वी आदिमें उत्पन्न होगा, वहांसे निकलकर अंतररहित च्यवकर जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रकी चम्पा नगरी में भैंसा होगा। वहां कुछ मित्र मिलकर उसे मार डालेंगे। तव वह इसी चम्पानगरीमें किसी सेठ के कुलमें जन्म लेगा। युवक होने पर शास्त्रके कहे हुए गुणोंसे युक्त साधुके पास केवलीका कहा हुआ धर्म सुनकर साधु हो जायेगा। आयुष्य पूर्ण होने पर सुधर्म नामके देवलोक में देवता होगा। वहांसे पहले अध्ययन के कथनानुसार सव दुःखोंका अन्त करके मोक्ष प्राप्त करेगा ॥१३॥

सार

पहले अध्ययनमें लक्ष्मी और सत्ताके दुरुपयोगके कड़वे विपाकका वर्णन करनेके अनन्तर श्री सर्वज्ञ प्रभुने इस दूसरे अध्ययनमें विषयासक्तिके कटु विपाक

का फल समझाया है। कुरडी पर फैंका गया वालक जिसका नाम ही इस घटनाके अनुसार उज्झियकुमार पड़ा था, कामध्वजा गणिकाके मोहमें लीन होनेसे इस लोक और परलोकमें कैसे दुःखी हुआ, इस विषयमें यह अध्ययन कितना अच्छा वोध देता है। वैसे ही हिंसा और मांसाहार का कितना अनिष्ट विपाक होता है इसका चित्र भी इस अध्ययनमें अच्छा खींचा गया है। विषयासक्ति महाप्रवल है और सवसे ज्यादा चिकनी प्रकृति है। भीतर से भयंकर किन्तु वाहर से सुन्दर वलाके फंदे में फंसे हुए मनुष्य वान्धवो! इससे छूटने का प्रयत्न करो। विषयों से मन को मुक्त करो। अगर मन छूट गया तो शरीर भी आज या कल विषयोंसे विरक्त हो ही जायेगा।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तीसरा अध्ययन-अभग्गसेन

...उस समय पुरिमताल नामका एक ऋद्धिमान् नगर था। उसके ईशान-कोणमें अमोहदंसण (अमोघदर्शन) नाम का उद्यान था। पुरिमताल नगरके राजा का नाम था महाबल। उस नगर के ईशानकोणमें देशकी सीमा पर सालाटवी नामकी एक चोरपल्ली (चोरोंका ग्राम) थी। वह पर्वत और गुफाओंसे युक्त थी, उसके चारों ओर खाई थी। इससे वह भीतरसे सुलभ और वाहरसे दुर्लभ थी। चारों ओर पानी होने से वाहर का आदमी भीतर नहीं घुस सकता था। उसमें निकलनेके वहुतसे पीछे की ओर गुप्त द्वार थे। वहां से जान पहचानके आदमियों को ही निकलने दिया जाता था, अनजानको नहीं। उस चोरपल्लीमें विजय नाम का चोरोंका सेनापति रहता था। वह वड़ा ही अधर्मी था। उसके हाथ वहुतसे जीवोंको मारनेके कारण खून से सने रहते थे। उसकी धाक वहुतसे नगरोंमें वैठ गई थी। वह वड़े वड़े साहसिक काम करनेमें और तलवार चलानेमें निपुण था। उसकी तावेदारीमें पांच सौ चोर थे। वह परस्त्रीलंपट भी था। वह मनुष्योंका धन खूव लूटता था। भीत तोड़ना, ताला तोड़ना, राहगीरों को लूटना, कोई उससे ही सीख ले, वह दंड पाये हुए आदमियोंको अपना साथी वना लेता था। यदि उनके हाथ, नाक काटे गये हों तो औषधियोंसे उन्हें ठीक कर देता था।॥१४॥

वह विजय चोर पुरिमतालके ईशानकोणके जनपद देश के वहुतसे नगरोंमें मनुष्योंको मारता था। गाय, वैल आदि पशुओंको उठा ले जाता था। कैदियोंको जेल से निकाल लाता था। रास्तेमें जाते हुए आदमियोंको लूट लेता था। घरोंमें नकव लगाता था, लोगोंको ठोकता, पीटता, डराता और उनके धन धान्य छीनकर उन्हें वेघर वेजर कर देता था। वह महावल राजा को भी लूट का

विभाग दिया करता था। उसकी एक स्त्री थी। उसका नाम खंदश्री था। वह सम्पूर्ण पांचों इन्द्रियोंसे युक्त थी। उसके अंगसे, पांचों इन्द्रियोंसे युक्त एक अभगगसेन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ।

उस समय महावीर भगवान् पुरिमताल नगरमें पधारे। उन्हें वन्दना करने को राजा और परिषद् आई। यावत् धर्मकथा सुनकर सब वापस लौट गये। फिर श्रमण भगवान् महावीरके बड़े शिष्य गौतम, भगवान् की आज्ञा लेकर गांवमें गोचरीके लिए गये। वहां उन्होंने राजमार्गमें एक दृश्य देखा—

एक आदमीके दोनों हाथ बांध रक्खे हैं। बहुतसे हाथी घोड़े और हथियारबन्द आदमियोंने उसे घेर रक्खा है। पहले चौराहे पर लाकर उसके सामने उसके गोत्रके आठ काकाओं१ को मार मार कर उनका थोड़ा-थोड़ा मांस उसे खिलाते थे और पानी की जगह उनका रक्त पिलाते थे। दूसरे चौराहे पर आठ काकियों का, तीसरे चौराहे पर आठ सगोत्र बड़े काकाओंका, और चौथे पर उनकी स्त्रियों का, पांचवें पर उसीके आठ बेटोंका, छठे पर उनकी बहुओं का, सातवें पर आठ जामाताओं का, आठवें पर आठ बेटियोंका, नौवें पर आठ दोहित्रों का, दसवें पर दोहतियोंका, ग्यारहवें पर दोहतियोंके पतियों का, बारहवें पर दोहतोंकी बहुओं का, तेरहवें पर पिताकी आठ भगिनियोंका, चौदहवें पर उनके पतियों का, पन्द्रहवें पर आठ मौसाओं का, सोलहवें पर आठ मौसियोंका, सतरहवें पर आठ मामाओं का, अठारहवें पर बाकी रहे हुए मित्र सजाति, सगोत्र, दास-दासी, माता-पिता आदि का मांस टुकड़े टुकड़े करके उसे खिलाया और रक्त पिलाया जा रहा था ॥१५॥

यह दृश्य देखकर श्री गौतमस्वामी महावीर प्रभुके पास आये और कहने लगे—"हे पूज्य! मैं आपकी आज्ञा पाकर नगरमें गया था, वहां कथित दृश्य देखा, वह पुरुष पूर्व भवमें कौन था? और उसने क्या क्या पाप किये थे? जिसके कारण वह ऐसे फल भोगता हुआ भ्रमता फिरता है?"

सर्वज्ञ प्रभुने उत्तर दिया—उस समय जम्बूद्वीपके भरतखण्डमें पुरिमताल नामक ऋद्धिमान् नगर था। वहां उदाई नामका बड़ा राजा था। वहां एक अंडे का व्यापारी था। उसका नाम था निन्नय। वह बड़ा अधर्मी था, दूसरे का बुरा होने में ही आनन्द मनाता था। उसने बहुतसे आदमियोंको रोटीके बदलेमें नौकर रख लिया था। वे रोज कुदाली और जाल तथा जालियां लेकर पुरिमताल नगरके जंगलोंमें जाते और कौए, उल्लू, कबूतर, टिटिहरी, बगुला, मोर, मुर्गे और बहुत से जलचर, थलचर, खेचर आदि जानवरोंके अंडोंसे बांसके टोकरे टोकरियोंको भरकर लाते थे और अंडवणिक निन्नयको देते थे। वह उन चाकरोंको मजदूरी देता था और फिर उन अंडोंको तल तलाकर सड़क पर दुकान लगाकर बेचता

१. 'चाचा'।

था। यही उसकी आजीविका थी। स्वयं भी अंडे खाकर पेट भरता था। ऐसे पाप कमाते कमाते उसकी एक हजार वर्ष की आयु बीत गई। मरकर वह तीसरी नरकमें गया। वहां सात सागरोपमकी स्थिति थी ॥१६॥

वहांसे अंतररहित च्यवकर ऊपर कही हुई सालाटवीकी चोरपल्लीमें विजय नामके चोर सेनापतिकी स्त्री खंदश्री भार्याकी कोखमें पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। जब तीन महीनेका गर्भ था, तब खंदश्रीके मनमें आया कि "धन्य है उन स्त्रियों के मां-बाप को जो अपनी सहेलियों दास दासियों समधनों और बहुतसी अन्यान्य चोरोंकी स्त्रियोंके साथ बनठन कर इधर-उधर सैर करती फिरती हैं और गोठों का आनन्द उठाती हैं, मदिराके मदमें झूमती हैं और खाना खा चुकने पर अस्त्र-शस्त्र सजकर पुरुषके वेशको धारण कर हाथमें नंगी तलवार लेकर या तीर कमान चढ़ाकर इस चोरपल्लीके आसपास समुद्रकी सी गर्जना करती हुई सब दिशाओंको देखती हों। मेरी यह इच्छा कब पूरी होगी ?" यों सोचकर चिंता करने लगी। एक रोज विजयचोरने उसे आर्तध्यान करते हुए देखकर पूछा—"तुम क्यों आर्तध्यान करती हो ?" उसने कहा—"मेरा गर्भ तीन मासका हो गया और मेरा मन ऐसा चाहता है।" यह बात सुनकर विजयचोर कहने लगा—"तुम्हें जैसे सुख हो वैसा करो, मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगा।" इससे उसे बड़ा सुख हुआ। फिर वह ऊपर कहे गये विचारके अनुसार अपने मनकी अभिलाषाको पूर्ण करती हुई सुखसे रहने लगी। नौवें महीनेमें एक बच्चा जन्मा। दस दिन तक जन्मका उत्सव मनाया गया। ग्यारहवें दिन सगे संबन्धियोंको जिमाया। ऊपर कही रीति से 'दोहद' होने के कारण उसका नाम अभग्गसेन रक्खा गया। उसे पांच धाय-मातायें पालने लगीं ॥१७॥

जवान होने पर उसे आठ कन्याएं परणाई गई और आठ तरह का दहेज दिया गया। वह उनके साथ सुख भोगने लगा। कुछ समयके अनन्तर विजयचोर मर गया। उसने पांच सौ चोरोंके साथ मिलकर मृत्युक्रिया की। अभंगसेन चोरों का सेनापति हुआ। वह बड़ा अधर्मी और पापी हुआ। वह महाबल राजाके माल में से माल बंटा लेता था। जनपदके लोगोंको बहुत दुःख देता था। इससे वहांके लोग बहुत दुःख पाते थे। आखिर सहन न होनेसे गुपचुप इकट्ठे होकर वे एक बहुत बड़ी भेंट लेकर पुरिमतालमें महाबलके पास गये और निवेदन किया कि "प्रभो ! हमें शरण दीजिए ! सालाटवी चोरपल्लीके सेनापति अभंगसेनसे हम तंग आ गये हैं, वह हमें बहुत सताता और मारता है और हमारा धन लूट लेता है।"

जनपद-देशके लोगोंकी अर्ज सुन महाबलको बड़ा गुस्सा आया। वह सांपकी तरह फूं फूं करने लगा। उसके कपाल में तीन बल पड़ गये। दंड—सेनापतिको

बुलाकर उसने आज्ञा दी कि "जाओ, सालाटवी चोरपल्लीका नाश कर दो और अभंगसेन को मेरे सामने जीता पकड़ लाओ।" दंडसेनापति राजा की आज्ञा को विनय से स्वीकार करके सजी सजाई सेना सहित जाने को तैयार हो गया। बख-तर पहन कर शस्त्रों से सजकर सालाटवीकी ओर सेना सहित रवाना हो गया। यह खबर अभंगसेनको भी एक उसके स्नेही चोरने पहुंचाई। उसने सब चोरोंको बुलाया और सलाह सम्मति करके यह निश्चय किया कि हमें लड़कर उसका मुंह फेर देना चाहिए। यह बात ५०० चोरोंने भी स्वीकार की। चार प्रकारका आहार बनवाया गया। सब न्हाये धोये। विघ्न दूर करने का अनुष्ठान किया। मंडपके नीचे आकर सबने खूब शराब पी और भोजन किया। कुल्ला किया और मुख साफ किया। फिर सबने अस्त्र शस्त्र सजे और सालाटवी चोर-पल्लीसे निकलकर एक विषम मार्गमें पर्वतकी चढ़ाई पर आ बैठे(जहांसे सेनाका निकलना कठिन था) और दंड-सेनापतिकी राह देखने लगे। इतने में दण्डसेनापति भी आ पहुँचा और संग्राम का आरंभ हुआ। दंडसेनापति की सेना तितर-बितर हो गई, उसे भारी हार खानी पड़ी। उसके मनोबल, कायबल सब रफूचक्कर हो गये। वह लौटकर पुरिमताल चला गया। वहां जाकर महाबल राजाको हाथ जोड़ कहने लगा- "प्रभो! अभंगसेनका गढ़ बड़ा विकट है। इससे वह चार प्रकारकी सेनाके हाथ आने वाला नहीं है। परन्तु जो उसे नीतिबलसे, मीठे वचनों से, धनादिकसे, उसके आदमियोंको अपने में मिलाकर और विश्वास दिलाने से वशमें किया जाय तो पकड़ा जा सकेगा। बड़ी बड़ी कीमती वस्तुओंकी बारबार भेंटें भेजकर उसका विश्वास जमालें तो उसे पकड़ सकेंगे।" यह बात राजाको उचित जान पड़ी और उसने वैसा ही किया ॥१८॥

एक समय उसने पुरिमताल नगरमें बड़ी लम्बी-चौड़ी कूटागारशाला बनवाई। वह बहुत अच्छी बनी। उनके स्तंभ देखने योग्य थे। आनन्दोत्सव में उसने दस दिन तक खूब उत्सव किया। पुरिमताल नगर का शुल्क माफ कर दिया। कुटुम्बके मनुष्यों को बुलाकर कहा कि जाओ और सालाटवी चोरपल्ली में जाकर चोरसेना-पति अभंगसेन को दोनों हाथ जोड़कर कहो कि—"हे देवानुप्रिय! पुरिमताल नगर में महाबल राजा ने दस दिन का महोत्सव किया है, वहां से चार प्रकार के आहार और वस्त्र आपको यहां ला दें या आप वहां पधारेंगे ?" कुटुम्ब के मनुष्य ने राजाज्ञा सिर पर चढ़ाई और वहां से कूच किया। रास्ते में विश्राम के स्थानों पर विश्राम करता हुआ यथासमय चोर-पल्ली में पहुंचा। अभंगसेन चोरसेनापति को 'जय विजय' शब्दों से बधाई देकर सब कहा। अभंगसेन ने उससे कहा कि—"हम पुरिमताल नगर में आयेंगे" कह उसका वस्त्रादि द्वारा सत्कार कर वापस भेजा।

अभंगसेन बहुत से मित्र और जाति के मनुष्यों को साथ लेकर सज-धज

कर पुरिमताल नगर में आया, वहां महावल राजा को 'स्वदेश में जय हो ! परदेश में विजय हो !' के शब्दों से वधाई देकर उसने वहुमूल्य भेंट अर्पण की। महावल ने उसे स्वीकार किया और अभंगसेन को सत्कार एवं सिरोपाव दिया और कूटागारशाला के वीचोंवीच का स्थान उतारे के लिये दिया। फिर कुटुम्ब के मनुष्योंके साथ चार प्रकारका आहार मद्य,मांस, फूल-फल, अलंकार आदि कूटागारशाला में भेज दिये। अभंगसेन नहा धोकर, कपड़े-लत्ते आभूषण धारण कर, भोजन कर, आनन्द से सुख भोगने लगा। अव महावल राजा ने कुटुम्ब के मनुष्य समुदाय को वुलाकर कहा कि—"हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, पुरिमताल नगर के दरवाजों को वन्द करो और अभंगसेन चोरसेनापति को जीता हुआ वांध कर मेरे सामने पकड़ लाओ।" और इस आज्ञा का तुरंत पालन किया गया दर्वाजे वन्द करके आदमो अभंगसेन को राजा के पास पकड़ लाये। राजा ने ऊपर लिखे नियम के अनुसार दंड की आज्ञा दी। हे गौतम ! सेनापति अभंगसेन अपने पहले किए हुए वहुत काल के पाप कर्मो का फल भोग रहा है। गौतम ने कहा—"हे भगवन् ! वह चोरसेनापति काल के समय काल करके कहां जायेगा ?" सर्वज्ञ बोले-चोरसनापति अभंगसेन पूरे सत्ताइस वर्ष की आयुष्य भोग कर आज दिन के तीसरे भागमें सूली पर चढ़ाया जायगा, और वह मरकर रत्नप्रभा नरक में उत्कृष्ट स्थिति का नारक होगा। वहां से अंतररहित निकल मृगापुत्र की तरह संसार भ्रमण करेगा। वहां से निकलकर वाणारसी नगरी में सूअर होगा। वहां उसे सूअर पालने वाले मारेंगे। तव वह वहीं सेठ के घर पैदा होगा। वालभाव छूटने पर मृगापुत्र की तरह दीक्षा लेकर कर्मों का क्षय करके मुक्त होगा।···॥१६॥

सार-हिंसा और चोरी का वुरा परिणाम इस अध्ययन से भली भांति स्पष्ट होता है।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चौथा अध्ययन--सगड

······उस समय सोहंजणी नाम की नगरी थी, समृद्धिपूर्ण और सव प्रकार के भय से रहित। नगर के ईशानकोण में देवरमण नामका उद्यान था। उस नगरी के राजा का नाम महचंद था। उसके सुसेण नाम का प्रधान था जो युद्धमें प्रवीण और सामवेद को भली प्रकार जानने वाला था। उसी नगरी में सुदर्शना नाम की एक वेश्या रहती थी, और सुभद्र नामका वड़ा धनवान साहूकार भी वहीं रहता था। उस साहूकार के भद्रा नाम की स्त्री और उसका सगड नामका पुत्र था।

एक समय श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी उस नगरी के वाहर

पधारे। धर्मकथा सुनकर परिषद् लौट गई और श्री गौतम गणधर विचरते हुए राजमार्ग पर आये। वहां उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा। बहुत से हाथी, घोड़े और आदमियों के बीच में एक स्त्री और पुरुष को बांध रक्खा है। आदमी को स्त्री के पीछे बांधकर पहरे में रक्खा है, दोनों के नाक काटे गये हैं। वे ऐसा शब्द करते हैं कि हम अपने पाप के फल से मारे जाते हैं। इस दृश्य को देखकर गौतम स्वामी महावीर स्वामी के पास आकर सविनय पूछने लगे—"हे भगवन्! ये स्त्री पुरुष पूर्वभव में कौन थे और इन्होंने क्या पाप कर्म किये जो ऐसा फल भोग रहे हैं?"

भगवान् ने कहा—उस समय इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में छगलपुर नाम का एक नगर था। वहां का राजा था सिंहगिरि। उस नगर में छन्निक नामका एक खटीक रहता था। वह बड़ा धनवान था, पापी था, दूसरे का बुरा करके प्रसन्न होता था। वह अपने बाड़ेमें बकरा, बकरी, भेड़, गाय, बैल, रोझ, सूअर, हरिण, शशक, मोर, मोरनी, भैंस, भैंसे, गीदड़, चीते, सिंह आदि अगणित जीव मंगवाकर एकत्र करता था। उसने दूसरे आदमियों को दाम देकर उनके बाड़ों में भैंसे आदि जीव रोक रक्खे थे, अपने घरमें भी बकरी आदि रखता था। दूसरे आदमियों द्वारा मांस खरीद लेता था। फिर वह खटीक जानवरोंके मांसको कढ़ाई में तलकर, अंगारों पर सेककर कबाब बनाकर सड़क पर बेचकर पापकी आजीविका करता था। इस प्रकार सात सौ वर्ष की आयु भोग कर अन्त में मर कर चौथी नरक में गया। वहां दस सागरोपम आयु थी। फिर वहां से अन्तररहित निकल कर सोहंजणी नगरी में सुभद्र साहूकार की स्त्री भद्रा की कोखमें पैदा हुआ। भद्रा की संतानें जीती न थीं। इसलिए उसे (उज्झियकुमार को जैसे कुरडी पर डाला था वैसे ही) एक गाड़ी के नीचे रखकर फिर वापस लाकर उसका 'सगडकुमार' नाम रक्खा ॥२०॥

सगड के जवान होने पर उसका पिता लवण समुद्रमें...मर गया और मां भी मर गई। राजा ने उसे किसी अपराधमें घर से बाहर निकाल कर उसका घर अपने अधिकार में कर लिया। घर रहित सगड इधर-उधर भटकता हुआ सातों व्यसनोंका सेवन करने लगा। एक बार सुदर्शना नामक वेश्या पर आसक्त होकर उसके साथ रहने लगा। एक समय सुषेण प्रधान ने उसे वेश्याके घरसे निकलवाकर वेश्याको अपने अन्तःपुर में स्वयं रख लिया।

सगडकुमारको वहां से निकल जाने पर भी कामतृप्ति न हुई, छिद्र देखकर एक दिन सुदर्शना गणिकाके यहां आया, परन्तु उसी समय सुषेण भी आ पहुंचा। सगड़कुमार को देखकर वह क्रोधमें भर गया और कुपित हुए सांपकी तरह फुंफकारने लगा। उसके कपाल पर तीन बल पड़ गये। अपने आदमियोंको आज्ञा दी

कि इसे पकड़ो और खूब मारो तथा महचंद से प्रार्थना की कि "स्वामिन्! इसने मेरे अन्तःपुर में अनधिकार चेष्टा की है" राजाने कहा—"देवानुप्रिय! तुम इसे स्वेच्छानुसार दंड दे सकते हो।" ऐसी राजाज्ञा होने पर सगड और सुदर्शना वेश्याको कठोर बंधनोंसे बांधकर मारनेकी आज्ञा दी गई। हे गौतम! यह सगड अपने चिरकालके बुरे कर्मोंका फल भोग रहा है ॥२१॥

गौतमने पूछा—"भगवन्! यहां से काल करके सगड कहां जायेगा?" सर्वज्ञ प्रभु कहने लगे—सगड सत्तावन वर्षकी आयुष्य भोगकर आज तीसरे पहर जलती हुई लोहेकी पुतली (स्त्री) के साथ आलिंगन कराये जानेके कारण जलकर मरेगा और रत्नप्रभा नरकमें जायेगा। वहांसे निकलकर राजगृही नगरीमें चंडालके कुलमें जोड़ेसे उत्पन्न होगा। बारहवें दिन पुत्रका नाम रक्खा जायगा सगड और पुत्रीका नाम होगा सुदर्शना। दोनों युवक होने पर बड़े सुन्दर होंगे। सुदर्शना का रूप देखकर सगड मूर्च्छित होगा, उसे अपनी बहनके साथ अनुचित वर्ताव करनेमें कुछ भी लज्जा न होगी। वह कुंडग्राही सूचकका पद अंगीकार करेगा और बहुत पाप करेगा मरकर रत्नप्रभा नरकमें जायेगा। फिर मृगापुत्रकी तरह संसारमें खूब परिभ्रमण करेगा। वहां से निकलकर वाराणसीमें मच्छ होगा। वहां धीवर द्वारा मारा जायेगा और वहीं सेठके घर पुत्र होगा। वहां सम्यक्त्व पाकर चारित्र धारण करेगा। मरकर सुधर्म देवलोकमें देव होगा। अन्तमें महाविदेह क्षेत्रमें मुक्ति प्राप्त करेगा ॥२२॥

———

सार

व्यभिचार का कैसा कड़वा फल मिलता है यही बात इस अध्ययनमें बताई गई है। इस अध्ययन से एक तत्व और भी प्रकट होता है कि मनुष्य जिस बातकी तीव्र इच्छा करता है वह उसे अवश्य मिल जाती है। बुरी इच्छामें तल्लीन रहनेसे पहले मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई वस्तु पीछेसे स्थूल रूपमें भी प्राप्त हो जाती है। इच्छा करने वाला इस प्रकारसे पाप कर्मकी परम्परामें पड़ जाता है। इसी लिये कहा गया है कि एक बुरे 'काम' से बुरी 'इच्छा' और उसमें भी 'तीव्र इच्छा' बहुत बुरी है। मनुष्य बुरा काम करके फिर मनको उधरसे हटा ले तो पाप परम्परा नहीं चल सकती—पाप बढ़ने नहीं पाता, परन्तु शरीर से पाप न कर मनमें सोचा करे तो आगे पीछे वह विकारके गर्तमें अवश्य पड़ेगा। एक बुरे काम से एक पाप होगा, खराब इच्छासे पापोंकी परम्परा बढ़ेगी। सगडने गणिकामें चित्त लगाये रक्खा और भोगकी तीव्र इच्छा से मरकर नरकमें गया। वहांसे आकर उसी स्त्रीका भाई होकर जन्मा और उसीसे रमण करने लगा। इस प्रकार पाप परम्परा बढ़ती ही गई। अभिप्राय यह है कि किसी को यह न समझना

चाहिए कि कुमार रहने से या विवाह कर चौथे व्रतका नियम लेने से अथवा पर-स्त्रीका त्याग मुंहसे कहने मात्रसे हमने जगत्को जीत लिया, सबसे बड़ा तो मानसिक पाप है। मनमें यदि विषय-व्यभिचारके संकल्प बार-बार उठते हों तो उससे बहुत भय उत्पन्न होता है। लोलुपता कुछ शरीरसे ही नहीं होती बल्कि मनसे भी होती है और मानसिक लोलुपता मनुष्यको शारीरिक पापमें डाल देती है। इसलिए बुरे विचारके उठते ही उसे दबा दिया जाय। अथवा ऐसे समय किसी संत महात्माके दर्शन करने चला जाना चाहिए। उनकी वैराग्य वृत्ति पर मनन करना चाहिए या किसी अध्यात्मिक पुस्तकके विचारमें मगन हो जाना चाहिए। अथवा प्राकृतिक शोभा देखनेमें लीन रहना चाहिए। इससे शारीरिक शोभासे विकार पाया हुआ मन स्थिर हो जायगा।

।। चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

पांचवां अध्ययन--बृहस्पतिदत्त

…उस समय कौशाम्बी नामकी नगरी थी। उसके बाहर ईशान कोणमें चंद्रोत्तर नाम का उद्यान था। उस नगर का राजा था शतानीक। उसकी रानी का नाम था मृगावती। उसके उदायन नामका पुत्र था और पद्मावती नाम की पुत्रवधू। राजाका एक पुरोहित भी था सोमदत्त। वह वेदज्ञ था। सोमदत्तकी स्त्रीका नाम था वसुदत्ता और पुत्र का नाम था बृहस्पतिदत्त।

श्रमण भगवान् महावीर एक समय उसी नगरमें पधारे। उनकी आज्ञा लेकर गौतम स्वामी गोचरी को गये। उन्होंने राजमार्ग में बहुत से सवारों से घिरे हुए एक आदमी को दुःख पाते हुए देखा। महावीर स्वामी के पास आकर वन्दना नमस्कार करते हुए गौतमने पूछा—"हे भगवन्! यह पुरुष पूर्व-भव में कौन था?"

भगवान् कहने लगे--इस जम्बूद्वीपके भरतखंडमें सर्वभद्र नामका एक ऋद्धि-मान नगर था। वहांके राजाका नाम था जितशत्रु। उसके एक महेश्वरदत्त नाम का पुरोहित वेदज्ञ था। वह राजाके राज्यबलकी वृद्धि के लिये प्रतिदिन नरमेघ यज्ञ किया करता था। इस प्रकार बहुतसा पाप कमाकर महेश्वरदत्त पुरो-हित तीन हजार वर्ष की आयु भोगकर मर गया और पांचवीं नरकमें गया। वहां सत्रह सागरोपम की स्थिति भोगकर कौशाम्बी नगरीमें सोमदत्त पुरोहित की स्त्री वसुदत्ताकी कुक्षिसे उत्पन्न हुआ। बारहवें दिन उसका नाम बृहस्पतिदत्त रक्खा गया। उसे पांच धायोंने पाला। युवा होने पर उदायन कुमारका प्यारा मित्र हुआ। क्योंकि ये दोनों साथ ही जन्मे थे, बड़े हुए थे और खेले कूदे भी साथ ही थे।।।२३।।

शतानीक राजा मर गया। उदायन बहुत रोया पीटा। अग्निदाह किया। मृत्यु क्रिया की। फिर उदायनका राज्याभिषेक हुआ। उदायन को राज्य मिलने पर बृहस्पतिदत्त पुरोहित हुआ। समय असमय वह उदायनके रनवासमें आने जाने लगा और पद्मावती पर आसक्त हो गया। एक समय वह उसके महलमें था कि उदायन राजा आ गया। देखा तो बृहस्पतिदत्त महलमें आया हुआ है। राजा उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और अपने आदमियोंको आज्ञा दी कि इसे खूब मारो, अन्तमें प्राणदंडकी आज्ञा दी। हे गौतम! बृहस्पतिदत्त पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रहा है।

गौतमने कहा-"प्रभो! अब मरकर यह कहां जाएगा?" सर्वज्ञने कहा-चौंसठ वर्षका आयुष्य भोगकर आज बृहस्पतिदत्त शूलीपर चढ़कर मरेगा और रत्नप्रभा नरकमें जायेगा। फिर मृगापुत्रकी भांति संसार भ्रमण कर हस्तीनागपुरमें मृग होगा। वहां व्याध मारेगा। फिर वहीं सेठका पुत्र होगा। सम्यक्त्व पाकर चारित्र पालकर सुधर्म कल्पमें देवता होकर महाविदेह क्षेत्रसे मुक्ति पायेगा।।२४।।

सार—हिंसा और व्यभिचारका फल इस अध्ययन से स्पष्ट होता है।

।। पंचम अध्ययन समाप्त ।।

—०—

छठा अध्ययन—नन्दीवर्धन

उस समय मथुरा नामकी नगरी थी। वहां भंडीर नामक उद्यान था। उस नगरीका राजा श्रीदाम था और रानी बन्धुश्री। उनका नन्दीवर्धन नामका ज्येष्ठ पुत्र था जो युवराज पद प्राप्त था। श्रीदाम राजाके सुबुद्धि नामका प्रधान था। वह साम-दाम-दंड-भेदसे लोगों को वश करनेमें बड़ा प्रवीण था। उसके एक पुत्र था। उसका नाम बहुमित्र था। राजा ने चित्र नामके नाईको राजसभा और रनिवास तक में आने जाने की आज्ञा दे रक्खी थी।

एक समय भंडीर उद्यानमें महावीर स्वामी पधारे। उन्हें वन्दना करनेको राजा और जन-परिषद् आई। सब वन्दना नमस्कार कर धर्मकथा सुन यथास्थान लौट गये। तब भगवान् महावीर के बड़े शिष्य अनगार गौतम गोचरीको गये। जाते हुये मध्यबाजारमें उन्होंने देखा कि एक आदमीको बहुतसे सवार, फौज, सिपाहियोंने घेर रक्खा है और आगके अंगारोंके समान धगधगते लोहेके सिंहासन पर उसे बिठा रक्खा है। उसके शिरपर पिघला हुआ सीसा, तांबा डाल रहे हैं। गर्मागर्म तेलका अभिषेक कर रहे हैं। नौ और अठारह अठारह सेरके भारी लोहे के जलते हुए हार उसे पहनाये गए हैं और गर्म लोहेका मुकुट भी उसे पहनाया गया है। इत्यादि दृश्य देखकर गौतम स्वामी प्रभुके पास आये और सब वृत्तान्त

कह कर पूछने लगे—"हे पूज्य ! इस पुरुषने पूर्वभवमें क्या पाप किया है, जिसका यह कटु फल भोग रहा है ?"

सर्वज्ञ प्रभु कहने लगे—हे गौतम ! इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें सिंहपुर नामका एक नगर था, वहां का राजा था सिंहरथ। उसके अपराधियोंको दंड देने के लिये दुर्योधन नामका कोतवाल था, जो महापापी और बुरे कामोंमें ही आनन्द मानने वाला था। उसने अपराधियों को दंड देने के कई प्रकारके सामान रख छोड़े थे। कितने ही लोहे के कड़ाहोंमें तांवा पिघला रक्खा था, कितनोंमें सीसा पिघला हुआ था, कितनों ही में चूर्णादि मिश्रित गरम पानी भरा था। कितने ही मिट्टीके घड़े थे। उनमें से कितनों ही में घोड़े का पेशाब, कितनों ही में भैंस बकरी आदि का मूत्र भरा था। बहुतसी हथकड़ी वेड़ी पड़ी थीं, और लक्कड़ोंमें पैर ठोकनेके सूखे लक्कड़ भी थे। सांकलें थी। बेंत थीं। इमली की सांटें थीं। हंटर थे। मूंजके कोरड़े थे। डंडे थे। बांधने की रस्सियां थीं। तलवार, छुरी, गुप्ती, करोंत, कीले, हथोड़े, कुल्हाड़े, फाले आदि बहुत थे। इनसे वह दुर्योधन कोतवाल चोर, परस्त्रीलंपट, राजद्रोही, बालघाती, जुवारी, विश्वासघाती और धूर्त मनुष्योंको सजा दिया करता था। वह अपराधियोंको पकड़ मंगवाता था और जमीन पर सीधा डाल कर लोहेके डंडोंसे उनका मुंह खुलवाता था। किसीके मुंहमें गरम तेल, उबलता हुआ पानी और गला हुआ सीसा डाल देता था। किसीके मुंहमें घोड़ेका पेशाब, कुत्ते का पेशाब डालकर पिलाता था। किसी को औंधा सुलाकर उस पर खूब वजन रख देता था। कितनों ही के हाथ पैरोंमें हथकड़ी वेड़ी डालता था। कितनों ही को लक्कड़में पांव ठोक कर रखता था। कितनों ही को जकड़ कर सांकलसे बांध देता था। कितनों ही के हाथ, नाक, कान, वगैरह काट डालता था। कितनों ही को बेतोंसे पिटवाता था। कितनों ही की छाती पर मनों वजनी सिल्ली रखकर उस पर आदमियों को चढ़ाता था। कितनों ही को कुंओं में औंधा लटका देता था। कितनों ही के हाथ पैर कपाल वगैरह में लोहे के खीले गड़वा देता था, इस प्रकार अनेकों यातनायें दिया करता था। इस तरह दुर्योधन कोतवालने बहुत बुरे-बुरे कर्म बांधे। वह इकत्तीस सौ वर्षका उत्कृष्ट आयुष्य भोगकर मरा और छठी नरक में गया। वहां उसकी बाईस सागरोपमकी स्थिति हुई ॥२५॥

वहांसे अंतररहित निकलकर मथुरा में श्रीदाम राजाकी वन्धुश्री रानी की कोखसे पुत्र उत्पन्न हुआ। बारह दिनका होने पर मातापिता ने उसका नाम रक्खा नन्दीषेण (नन्दीवर्धन)। नन्दीषेणको पांच धाय-माताओंने पाला। उसका बचपन गया, जवानी आई। युवराज होनेसे बापके बाद गद्दीका हकदार होने पर भी वह अन्तःपुरमें मूच्छित हुआ सोचने लगा कि यदि राजा को मार

डालूं तो झट राज्य मिल जाय, और श्रीदाम राजाको मारनेका मौका देखने लगा। उसने चित्र नामके नाईको बुलाया और कहा कि—"तू राजाके सब स्थानों में पहुँचता है। अन्त:पुरमें भी शृंगार और नाईका काम करने जाता है, मैं तुझे आधा राज दूंगा, तू हजामत बनाते बनाते राजाके गले में उस्तरा भोंककर मार डाल।" नाई इस बातको मान गया। परन्तु फिर उसे सूझा कि यदि इस बातको श्रीदाम महाराज जान लेंगे तो मेरी बुरी तरहसे जान ले लेंगे। यों सोच नाई श्रीदाम महाराज से एकान्तमें हाथ जोड़कर कहने लगा कि "प्रभो! नन्दीवर्धन राज्यमें मोहित हो आपकी जान लेना चाहता है।" श्रीदामको यह बात सुनकर क्रोध आया और नन्दीषेणको पकड़ मंगवाया और हे गौतम! तुमने देखा उस तरह उसे सजा दिलवाई जा रही है।

गौतमने पूछा—"हे पूज्य! नन्दीकुमार यहां से मरकर कहां जायेगा?" सर्वज्ञ प्रभु कहने लगे—नन्दीषेण कुमार साठ वर्षकी आयुष्य भोगकर कालके समय काल करेगा और रत्नप्रभा नामकी पहली नरकमें जायेगा। मृगापुत्रकी तरह सारे संसारका चक्कर लगायेगा और फिर हस्तिनापुरमें मच्छ होगा। वहां धीवरों द्वारा मारा जायेगा और उसी शहरके सेठके घरमें पैदा होगा। वहां बोध पाकर सुधर्म कल्पमें देव होगा। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें चरम भव पाकर मुक्त होगा। केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे जीवादिकका स्वरूप जानेगा। भावोपग्राही कर्मोंसे छूटेगा। कर्म क्षय होने पर मुक्त होगा···॥२६॥

सार

एक तीव्र इच्छासे पापकी परम्परा बढ़ती है। नन्दीषेणने राज्य पानेकी तीव्र इच्छासे पिताका खून करना चाहा, आखिर स्वयं मारा गया, पिता पुत्रमें वैर हुआ। इस अध्ययनका यही सार है, इसमें राजपुरुषोंके के लिए भी उपदेश है। चित्तकी कठोरतासे दी हुई सजासे अपराधीको जो दुःख उठाना पड़ता है, उससे ज्यादा सजा, सजा देने वालोंको भोगनी पड़ती है।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सातवाँ अध्ययन--उंबरदत्त

···उस समय पाटलीखंड नामक नगर था। वहांके राजाका नाम सिद्धार्थ था। उस नगरमें सागरदत्त नामका एक धनिक रहता था। उसके घर गंगदत्ता स्त्रीसे उंबरदत्त पुत्र हुआ। उस नगरीके बाहर वनपंड नाम का उद्यान था।

एक समय उस उद्यानमें श्री महावीर स्वामी पधारे। धर्मकथा हो चुकने पर अनगार श्री गौतम गोचरी करनेको नगरके पूर्वके दरवाजे होकर गये। उन्होंने एक विचित्र पुरुषको देखा।

उस पुरुषके देहपिंडमें खुजली, कोढ़, जलोदर, भगंदर, अर्श, वायु आदि कई बीमारियां थी। हाथ पैर सूजे हुए थे। उङ्गलियां सड़ रही थीं। नाक, कानसे राध, रसी बह रही थी। कीड़े पड़ गये थे। मुंह पर बड़े-बड़े फोड़े हो रहे थे। उनसे खून और कीड़े झड़ रहे थे। मक्खियां भिनभिना रही थीं। उलटीमें खून उगलता था। कीड़े टपकते थे। बुरी तरह चिल्लाता था। मस्तक फूटी हांडी सा जर्जर हो रहा था। बाल बिखरे हुए थे। फटा सड़ा कपड़ा पहने हुए था। खानेके लिये भाजन —फूटा ठीकरा और पानीके लिये फूटा घड़ा हाथमें लिये हुए घर घर मांगता फिरता था। गौतम स्वामी, उस पुरुषको देख, नीच ऊंच कुलसे यथायोग्य आहार लेकर महावीरस्वामीके पास पाटलीखंड नगरसे निकल कर गये। महावीर स्वामीको आहार दिखाया और उनकी आज्ञा लेकर आहार किया। उसे दहनीसे बांई डाढ़ों द्वारा न चबाकर जैसे सर्प सीधा बांबीं में घुसता है वैसे ही बिना स्वाद लिये हुए आहार किया। फिर गौतम स्वामीने दूसरे छट्ठके पारणे के दिन पहले पहरमें स्वाध्याय किया। दूसरे पहरमें अर्थ चिन्तन कर गुरुकी आज्ञा ले पाटलीखंडमें दक्षिणके द्वारसे होकर प्रवेश किया। यहां पर भी उसी आदमीको देखा। फिर तीसरे पारणेके दिन पश्चिमके दरवाजेमें होकर गये तब भी उसी मनुष्यको देखा। चौथे पारणेके दिन उत्तरके दर्वाजेसे होकर गये तब भी उसी मनुष्य को भीख मांगते देखा। इस आश्चर्यकारक दृश्यको देखकर श्री गौतम स्वामी श्री महावीर स्वामीके पास आकर कहने लगे—"हे भगवन्! उस मनुष्यके पूर्वभव का हाल फरमाइयेगा।"

श्री सर्वज्ञ प्रभुने कहा—उस समय इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयपुर नामक नगर था। वहां कनकरथ नामका ऋद्धिमान राजा था। उसके धन्वंतरी नामक वैद्य था। वह आठ प्रकारके वैद्यकको जानता था। १. बालरोग चिकित्सा, २. चर्मशलाका, ३. शस्त्रके घावोंको ठीक करना, ४. ज्वरातिसारादि कायरोगप्रतीकार, ५. विष-चिकित्सा, ६. भूतादि दोष शमन, ७. रसायन विधि, ८. वाजीकरण। वह बड़ा कुशल था। उसका हाथ अमृत सा था। वह समर्थ वैद्य विजयपुरमें कनकरथ राजा व उसकी रानी, सेठ साहूकार, युवराज, प्रधान, सेनापति, गरीब, ब्राह्मण, भिखारी आदि सबकी चिकित्सा करता हुआ असाध्य और दुःसाध्य रोगी को बात की बातमें ठीक कर देता था। रोगियोंको पथ्यमें अभक्ष्य मांसादि तथा मदिरा आदि अपेय बतलाया करता था। बत्तीस सौ वर्षकी आयु तक ऐसे-ऐसे महान् पाप करके वह छठी नरकमें गया। वहां पर पूरे बाईस सागरोपमकी स्थिति

की। वहांसे निकल इस पाटलीखंड नगरके सागरदत्त सार्थवाह की स्त्री गंगदत्ता की कोखमें आया।

वह गंगदत्ता स्त्री मृतवत्सा थी। उपचारके अनतंर भी गर्भस्थिति न होने के कारण एक बार रातमें उसे इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि मैं सागरदत्त सार्थवाहके साथ बहुत वर्षोंसे मानवी सुख भोग रही हूं परन्तु मैं सागरदत्तके योग्य नहीं हूं क्योंकि मेरी संतान ही नहीं जीती। मुझे धिक्कार है। धन्य है उस स्त्रीको जिसके घर पूर्व पुण्यके प्रभावसे पुत्र उत्पन्न हुआ हो, और जो उसको दूध पिलाती हो। जो उन्हें लाड़ लड़ाती हो आदि आदि। मैंने पूर्व जन्ममें पुण्य नहीं किये जिससे मेरे बालक नहीं जीते। इस प्रकार पुत्र पानेके लिये सदा तड़पती तरसती रहती थी। सन्तानके लिये उसने अनेक यत्न किये और वे सब निरर्थक सिद्ध हुए।

कई वर्षोंके उपचारके पश्चात् धन्वन्तरी वैद्यका जीव छठी नरकसे च्यवकर उसीके गर्भमें आया। गर्भको तीन महीने हो जाने पर गंगदत्ताको एक दौहृद उत्पन्न हुआ–"धन्य है उस माताको और सफल है जन्म उसी का, जो बहुतसी सखी सहेलियोंको साथ लेकर पाटलीखंड के बीचमें होकर पुष्करणी बावड़ी पर जाती हैं और वहां पर स्नानादिक करके रंग रली करती हुई चार प्रकार का आहार मदिरा मांसके साथ खाती हैं।" वह सवेरा होते ही पतिकी आज्ञा लेकर बहुतसी स्त्रियोंके साथ पुष्करणी बावड़ी पर गई और मदिरा मांसादि अभक्ष्य-अपेय खा पीकर मौज मजे उड़ाती हुई गर्भको सुखसे वहन करने लगी। नौ महीने पूरे होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका बड़ा उत्सव किया और उसका नाम उम्बरदत्त रक्खा।

उम्बरदत्त पांच धायोंसे पाला गया। दैवयोगसे सागरदत्त समुद्र में डूबकर मर गया। उसके वियोग में गंगदत्ता भी मर गई। राजाने कुकर्मी और दुराचारी उम्बरदत्त को घरसे बाहर निकाल दिया। कुव्यसनोंका फल यह मिला कि उसके शरीर में सोलह राज रोग उत्पन्न हो गये। हे गौतम! यह वही उम्बरदत्त अपनी करनी का फल भोग रहा है।

गौतम ने पूछा-"प्रभो! यह मरकर कहां जायगा?" भगवान् ने कहा-उम्बरदत्त पूरे बहत्तर वर्ष का आयुष्य भोग कर मरेगा और रत्नप्रभा नरक में जायेगा। वहां से मृगापुत्रकी भांति अनन्त संसार में भटकेगा। अन्तमें फिर हस्तिनापुरमें मुर्गा होगा। फिर वहीं शेठके यहां जन्मेगा। वहां ज्ञान पाकर...सुधर्म कल्पमें देवता होगा। वहांसे महाविदेह क्षेत्रसे मुक्त होगा...॥२७॥

सार

सम्भव है कि वैद्योंके भी बड़े वैद्य महावीर स्वामी का यह उपदेश वैद्योंके हितके लिए ही हुआ हो। आर्य प्रजा अनार्य संगतिसे आज अनार्य होती जाती है।

वह काडलीवर आइल, स्पिरिट वगैरा उड़ाने लगी है। डाक्टर लोग क्षय और खांसीके वीमारोंको इसे देने लगे हैं। इतना ही नहीं वैद्य लोग भी इसका उपभोग करते हैं। ये चीजें महाघोर हिंसासे वनती हैं, बुद्धि को भ्रष्ट करती हैं, अन्तःकरण में अज्ञान का अंधेरा भर देती हैं। विलायत में भी अव कई आर्य हृदय के पुरुष उत्पन्न होने लगे हैं वे इस पापका घोर प्रतिवाद करने लगे हैं। वे मांसाहार के विरुद्ध प्रचार करते हैं। जो मनुष्य उनकी मंडली में सम्मिलित होना चाहे वह मांस छोड़ देता है और सात वर्ष मांस छोड़े हुए हो जाने पर उसे तीसरे दर्जे में भर्ती किया जाता है। ज्यों ज्यों उसकी शुद्धिके दिन वढ़ते जाते हैं त्यों त्यों उसका दर्जा वढ़ता है। परन्तु अफसोस! हमारे यहां उलटा काम होने लगा है। इन विपथगामियों को चाहिये कि वे उम्वरदत्त की कथा पढ़ें।

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

आठवां अध्ययन-सोरियदत्त

···उस समय सोरीपुर नगर में सोरियदत्त नामका राजा था। उस नगरके वाहर सोरीवनखण्ड नामका उद्यान था। नगरके ईशान कोणमें मच्छीमारों का मुहल्ला था। उसमें समुद्रदत्त नामका धीवर रहता था। उसकी स्त्रीके सोरियदत्त नामका पुत्र हुआ।

एक समय महावीर स्वामी पधारे। उन्हें वन्दना कर परिषद् गई। उनके वड़े शिष्य अनगार गौतम सोरियपुर में गोचरी को गये। उन्होंने वहुत से मनुष्यों में ऐसे मनुष्य को देखा कि जिसके शरीर में खून और मांस सूख गया है। जिसके हाड़ कड़कड़ वोलते हैं। भूख प्यासके मारे मर रहा है। उसके गलेमें मच्छीका कांटा उलझ रहा है। जिससे वड़ा दीनस्वर निकलता है। खून और राधकी उलटी करता तथा कीड़े उगलता रहता है। इस दृश्यको देख गौतम स्वामी श्री महावीर स्वामी के पास आये और पूछने लगे—"हे भगवन्! यह पूर्व भवमें कौन था?"

भगवान् ने कहा-उस समय इस जम्वूद्वीपके भरतक्षेत्र में नन्दीपुर गांव नामक नगर था। वहां मित्र नामक राजा था। उसका रसोइया था सिरिया। वह वड़ा पापी था। दुष्ट काम करनेमें ही उसे प्रसन्नता होती थी। उसने वहुतसे मच्छीमार और चिड़ीमारोंको रसोई के अधिकार में नौकर रख छोड़ा था। वे प्रतिदिन वहुत से प्राणियोंको लाकर पिंजरों में वंद कर रखते थे। जीते हुए पंछियों की पांखें उखेड़ उखेड़ कर वेचते थे। इस तरह वहुत से प्राणियों का रस निकाल कर वह अनेक तरहका मांस पकाता था और खाने के समय मित्र राजाके भोजन में रखता था और स्वयं भी अभक्ष्य और अपेयका लोलुपी था, इस तरह बुरे और

पाप कर्म करते हुए वह बहुत वर्ष जिया और कालके अवसर पर मरकर छठी नरक में गया। वहांसे निकलकर समुद्रदत्तकी स्त्री समुद्रदत्ता की कुक्षि से पैदा हुआ।

समुद्रदत्ता मृतवत्सा थी, अनेक उपचारों का फल उसने पुत्र प्राप्ति समझा, उसका नाम भी सोरियदत्त रक्खा। उस बच्चेको पांच धायोंने लाड चावसे पाला। धीरे-धीरे वह जवान हुआ। समुद्रदत्त मर गया। उसने रो पीटकर उसका मृत्यु कार्य किया, फिर वह मच्छीमारों का 'महत्तर' अग्रेसर होकर रहने लगा। उसने बहुत से आदमियों को 'रोटी कपड़े' के बदले नौकर रक्खा। वे बड़ी-बड़ी युक्तियों से जाल डाल कर द्रहसे छोटी बड़ी मछलियों और मच्छों की नौकायें भर कर लाते थे और धूपमें सुखा सुखाकर और पका २ कर बाजार में बेचने ले जाते थे।

एक समय सोरियदत्त धीवर मछली भून कर खा रहा था कि उसके गले में मच्छीका कांटा चुभ गया। उससे उसे बड़ी वेदना हुई। कुटुम्बके मनुष्यों को बुलाकर कहने लगा कि "तुम इस बातकी घोषणा कराओ कि यदि कोई वैद्य या वैद्यपुत्र सोरियदत्त धीवर के गले में फंसा हुआ मछलीका कांटा निकाल देगा तो उसे बहुत सा द्रव्य दिया जायेगा। उन्होंने वैसा ही किया। बहुत से वैद्य आये और औत्पातिक बुद्धि से इलाजकर चले गये मगर कांटा किसी से भी न निकला। हे गौतम! पूर्व कर्मके फलसे सोरियदत्त धीवर कांटे की अथाह वेदना से दुःख पाता हुआ खून की उलटी करता हुआ फिरता है।

गौतमने पूछा-"हे भगवन्! सोरियदत्त काल के समय मर कर कहां जायगा?" भगवान् बोले-हे गौतम! यह माछी सत्तर वर्षका आयुष्य भोगकर मरेगा और रत्नप्रभा नामक पहली नरक में जावेगा फिर मृगापुत्रकी भांति संसार भ्रमण करेगा। हस्तिनापुर में मच्छ होगा। वहांसे मरकर सेठके घर जन्मेगा, धर्मबोध प्राप्त करेगा··· सुधर्म कल्प में देवता होगा और महाविदेहसे मुक्त होगा···॥२८॥

सार--हिंसाका कटु फल इस अध्ययनसे भली भांति स्पष्ट होता है।

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥

—o—

नौवां अध्ययन--देवदत्ता

···उस समय रोहिड नामका ऋद्धिमान् नगर था। उसके···पुढवीवडिंस उद्यान था। उस नगरमें वेसमणदत्त राजा, श्रीदेवी रानी, पूसनंदी नाम कुमार और दत्त नामक धनाढ्य गाथापति रहता था। गाथापतिकी स्त्रीका नाम था कन्हश्री। उनकी एक पुत्री थी देवदत्ता। एक समय श्री वर्धमान स्वामी पधारे। परिषद्

वंदना करके लौट गई। गौतम स्वामी छट्ठके पारणे पर गोचरीको बाजारमें होकर गये, उन्होंने देखा कि बहुतसे सिपाही और घुड़सवार एक स्त्रीको बांधकर फांसी पर लटकाने ले जा रहे हैं । श्री भगवान्के पास आकर गौतम स्वामीने उस स्त्रीका पूर्व भव पूछा।

सर्वज्ञ प्रभुने कहा-उस समय जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुप्रतिष्ठित नगर था। वहां का राजा था महासेन। उसकी धारिणी आदि कई रानियां थीं। धारिणी रानीके गर्भसे सिंहसेन नामका कुमार हुआ। वह बड़ा रूपवान और युवराज था। माता पिताने उसका विवाह बड़े बड़े राजाओंकी पुत्रियों और मुख्य कन्या सामादेवी आदिसे किया। उनके रहनेके लिये अच्छे अच्छे महल बनवाये। दहेजमें अगणित वस्तुयें आई। वह बड़े आनन्द में विषयसुख भोगने लगा। कुछ समय बीतने पर महासेन राजा काल कर गया। उसने उसका मृत्यु कार्य किया और युवराज होनेसे गद्दी पाई।

सिंहसेन रानियों में से सामादेवी पर मूर्छित-मोहित रहने के कारण उसीका अधिक आदर करता था। दूसरी किसी भी रानीका न आदर करता था, न सन्मान, न बातचीतसे ही सन्तोष देता था। इससे और रानियां और उनकी धायमाताओंने ऐसा विचार किया कि सामादेवीको शस्त्र, विष, या अग्नि प्रयोगसे किसी भी तरह मार डालना चाहिये । ऐसा विचार कर सबकी सब मौका देखने लगीं। यह बात सामादेवीको भी मालूम हो गई। वह कोप भवनमें आ पड़ी और आर्त्तध्यान ध्याने लगी।

सिंहसेन यह जानकर कि आज सामादेवी 'कोपभवन' में गई है, वहां आया और कहने लगा कि—"आज आर्त्तध्यान क्यों करती हो?" उसने कहा—"स्वामिन्! मेरी सारी सौतें और उनकी धायें मुझे मारने के लिए अवसर और छिद्र खोज रही हैं । इस भयके मारे आर्त्तध्यानमें छुपकर पड़ी हूं, आप ही मेरे प्राण बचाएं।" राजाने कहा—"डरो मत! मैं ऐसी व्यवस्था कर देता हूं कि तुम्हारे शरीरको हानि न पहुँचे।" इस तरह मीठे मीठे वचनोंसे उसे सन्तुष्ट कर बाहर आया और कुटुम्बके मनुष्यों को बुलाकर कहा—"जाओ तुम सुप्रतिष्ठित नगरके बाहर बहुतसे थंभों वाला एक 'अतिथिगृह' तैयार कराओ।" उन्होंने आज्ञाको माथे चढ़ाकर सुप्रतिष्ठित नगरके बाहर पश्चिम दिशा में अनेक खम्भोंवाला अतिथिगृह बनवाकर राजाज्ञाका पालन किया।

एक समय राजाने अपनी सब रानियों और धायोंको निमंत्रण दिया और सबको उस अतिथिगृहमें ठहराया। उनके लिये आभूषण, वस्त्र, फलफूल, गंधमाला आदि, चार प्रकारके अच्छे अच्छे भोजन, कुटुम्बके मनुष्योंके द्वारा भेजे। वहां पर वे आहारादि कर वस्त्रालंकार पहनकर नाचती गाती हुई आनन्द मनाने

लगीं। सिंहसेन राजाने बहुतसे मनुष्योंके साथ वहां जाकर अतिथिगृह के सब द्वार बन्द करा दिये और चारों ओर आग लगा दी। रानियां और उनकी धायें पीड़ासे रोती तड़पती हुई जलकर भस्म हो गईं।

सिंहसेन राजा घोर पापके कारण चौंतीस वर्षकी पूरी आयुष्य भोगकर मरा और छठी नरकमें गया। वहांसे बाईस सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिके बाद निकला और रोहिड नगरमें दत्त सार्थवाहकी स्त्री कन्हश्रीको कोखमें नौ महीने रहकर अति रूपवती पुत्री होकर जन्मी। पुत्रीका नाम, सगे संबन्धियोंको जिमाकर, देवदत्ता रक्खा गया। उसको पांच धायें पालने लगीं। वह धीरे धीरे तरुणी हुई और खूबसूरत दीख पड़ने लगी।

एक रोज देवदत्ता नहा धोकर वस्त्रालंकारसे सजकर बहुतसी दासियोंके साथ सोनेके तारोंसे गुंथी हुई गेंदसे खेल रही थी। उसी समय वेसमणदत्त राजा नहा धोकर सुन्दर परिधान पहन बहुतसे नौकरोंके साथ घोड़ा फिराता फिराता दत्त गाथापतिके पास आया। वहां उसने देवदत्ताको गेंदसे खेलते हुए देखा। उसका रूप देखकर राजा विस्मित हुआ और नौकरसे कन्याका नाम पूछा। उसने 'देवदत्ता' कहा और बताया कि यह सार्थवाहकी कन्या है और कुमारी है। राजा घोड़े पर चढ़कर घर आया और अन्तरङ्ग मनुष्यसे कहा कि—"जाओ दत्त गाथापतिसे कहो कि वह अपनी पुत्री का विवाह युवराज पुष्यनन्दी से करे।" वे मनुष्य सार्थवाहके यहां आये और उसकी पुत्रीको युवराज के लिए मांगा। उसने इस बातको स्वीकार कर लिया। नौकरने आकर राजा से निवेदन कर दिया।

एक समय दत्त सार्थवाह शुभ मुहूर्त देखकर, देवदत्ता पुत्री को नहला धुला, वस्त्रालंकार से सजाकर, बड़ी पालकी में बिठाकर, बहुत से मित्र और जातिके मनुष्योंको साथ लेकर, बाजे गाजेसे रोहिड नगरीके बीचोंबीच होकर वेसमणदत्त राजाके महल पहुंचा और अपनी पुत्रीका विवाह पुष्यनन्दीसे कर दिया। वेसमणदत्त राजाने बड़ी खुशी मनाई। जाति समुदायका आहार आदिसे स्वागत किया। अपने बेटे पुष्यनन्दी और देवदत्ताको नहला धुलाकर पाट पर बिठा दोनों का द्विरागमन किया। बड़े आडंबरसे प्रवेश किया और पुष्यनंदी कुमार देवदत्ताके साथ बत्तीसबद्ध नाटकपूर्वक सब प्रकारके सुख भोगने लगा।

कालान्तरमें वेसमणदत्त राजा मर गया। उसकी मृत्यु क्रिया कर पुष्यनंदी गद्दी पर बैठा और अपनी मां श्रीदेवीका भक्त हो गया। प्रातःकाल होते ही वह नित्यप्रति श्रीदेवीके पैरों पड़कर नमस्कार करता था। शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल शरीरमें मसलवाता था। सुगन्धित जलसे स्नान कराकर भोजन कराता था। फिर स्वयं नहा धोकर भोजनसे निबटकर संसार सम्बन्धी काम में लगता था। एक दिन देवदत्ता रानीको कुटुम्ब चिंता में जगते हुए यह विचार आया कि पुष्यनंदी राजा अपनी श्रीदेवी माताके भक्त होकर सदैव उनकी सेवामें लगे रहते हैं मेरा

भाव तक नहीं पूछते। यदि इस रोड़ेको हटा दूं तो मुझे कुछ सुख मिले। अपने निश्चयानुसार नित्य अपनी सासका छिद्र (मौका) देखने लगी। एक दिन वह नहा धोकर खा पीकर मदोन्मत्त पड़ी थी, अकस्मात् देवदत्ता आ गई और एकान्त समय पाकर उसने एक लोहेका डंडा खूब तपाया। वह टेसूके फूलके समान आगमें तपकर लाल टमाटर सा हो गया और संडासीसे पकड़कर देवदत्ताने श्रीदेवीके जनन-अंगमें घुसेड़ दिया। इससे वह जोर-जोर से चिल्ला चिल्ला कर मर गई। शोर सुनकर दासी दौड़कर वहां आई। उस समय देवदत्ताको भागते हुए देखा और श्रीदेवीको मरा पाया। उसे बड़ा दुख हुआ और सब वृत्तान्त रो रो कर पुष्यनंदीके सामने कह सुनाया। माताकी मृत्यु सुनकर वह चम्पेकी डालकी तरह पृथ्वी पर शोकके मारे गिर गया। एक घंटे में होश आया फिर बहुतसे मनुष्योंके साथ रोते रोते श्रीदेवीकी मृत्यु क्रिया की और देवदत्ताको पकड़वाकर ऊपर कहे अनुसार बांधकर मारनेकी आज्ञा दी। हे गौतम! देवदत्ता पूर्व जन्मके बुरे कर्मों का फल भोग रही है।

गौतम ने पूछा—भगवन्! यहां से मरकर देवदत्ता कहां जायेगी? भगवान् बोले—देवदत्ता पूरे अस्सी वर्षकी होकर मरेगी और रत्नप्रभा नामक पहली नरक में जायगी। वहां से वनस्पति, वायु और तेजस में पैदा होगी। वहां से पक्षी होगी। उसे चिड़ीमार मार डालेगा, फिर इसी नगर के सेठ के यहां पैदा होकर बोध पाकर···सुधर्म कल्प में पैदा होकर···महाविदेह क्षेत्र से मुक्त होगी···॥२६॥

॥ नौवां अध्ययन समाप्त ॥

दसवां अध्ययन-अंजू

···उस समय वर्धमान नामका नगर था। वहां विजयवर्धमान नामका उद्यान था, वहां का राजा था विजयमित्र और वहीं धनदेव नामक धनी भी रहता था, उसकी स्त्री थी प्रियंगू, और अंजू थी उसकी कन्या। उस समय भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वन्दना कर धर्मकथा सुन लौट गई, तब उनके बड़े शिष्य गौतम पूर्ववत् गोचरी के लिये फिरते-फिरते विजयमित्र राजा की अशोक-वाटिका के पास आये। वहां पर उन्होंने एक स्त्री को देखा। जिसके देह का लोही मांस क्षीण हो गया था। जो भूख से मर रही थी, जिसकी हड्डी हड्डी दीख रही थी। चमड़ी सिकुड़ गई थी। गीले कपड़े और गीली साड़ी पहने हुए थी। करुणा भरे शब्दों में रो रही थी, उसे देख गौतमजी श्रीवीर भगवान् के पास आये और उसका पूर्वभव पूछा।

भगवान् बोले—उस समय इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इन्द्रपुर नामक नगर था। वहां इन्द्रदत्त राजा राज्य करता था। उस नगर में पुढवीश्री

नाम की वेश्या रहती थी। उसने चूर्णादिक के प्रयोग से राजा, प्रधान, सेठ, सेनापति, पुरोहित आदि बहुतों को अपने वश में कर रक्खा था और मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगती थी। पाप करते-करते पैंतीस सौ वर्ष की होकर मरी। छठी नरक में जाकर बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति से उत्पन्न हुई। वहां से निकल कर वर्धमानपुर के धनदेव की भार्या प्रियंगू की कोख में आई। नौवें महीने पैदा हुई। नाम पड़ा अंजू।

एक समय विजय राजाने घोड़ा फिराते हुए अंजू को देखकर स्वयं विवाह किया और भोग भोगने लगा। एक समय अंजू के गुह्यस्थान में शूलरोग पैदा हुआ। बहुत कुछ उपचार किया गया पर कुछ आराम न हुआ। इससे वह व्याकुल और दुबली हो गई तथा दीन वचन कहती हुई विलाप करती फिरने लगी। हे गौतम! अंजू अपनो पूर्व भवकी करनी का फल भोग रही है।

गौतम ने पूछा—"भगवन्! अब वह मरकर क्या होगी?" भगवान् बोले—हे गौतम! वह ९० वर्ष की होकर मरेगी और पहली नरक में जायेगी। मृगापुत्र की भांति संसार भ्रमण करेगी। पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि में उत्पन्न होगी, वहां से अन्तररहित निकल कर उसका जीव सर्वतोभद्र नगरमें मोर होगा। वहां चिड़ीमार मारेगा। फिर उसी नगर में सेठके घर पुत्र होगा। साधु के पास धर्म दीक्षा पाकर सुधर्मकल्पमें देवता होकर (मृगाकी तरह) महाविदेह क्षेत्र में मुक्त होगा। ···॥३०॥

सार—पुढवीश्री गणिका ने भोगों में रची-पची रहने के कारण कितना कष्ट भोगा। भर्तृहरिका यह वाक्य "भोगे रोग भयं" इससे भली प्रकार सिद्ध होता है। उसने जैसे भोग भोगे वैसे ही रोग भी हुए। जैसा पाप वैसा फल।

॥ दसवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ पहला दुःखविपाक श्रुतस्कंध समाप्त ॥

सुखविपाकसूत्र

पहला अध्ययन--सुबाहुकुमार

उस समय राजगृह नगर के गुणशीलक नामक उद्यान में श्री सुधर्मा स्वामी पधारे। उनकी सेवा भक्ति कर सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी ने बड़े विनयसे पूछा कि "प्रभो! मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्ररूपित विपाकसूत्रके पहले श्रुतस्कंध दुःखविपाकको आपके द्वारा मैंने सुना। अब दूसरे श्रुतस्कंध सुखविपाकसूत्र के श्रवण करानेकी कृपा करें।" उत्थानिका

पूर्ववत् । आर्य सुधर्मा स्वामीने इस प्रार्थना को स्वीकार किया और इस प्रकार प्रतिपादन किया—

…उस समय हस्तीशीर्ष नामका एक वड़ा भारी ऋद्धिपूर्ण नगर था। उसके वाहर ईशान कोणमें पुष्पकरंडक नामक उद्यान था, कृतमाल वन था। उस नगरका राजा था अदीनशत्रु। उसके धारिणी आदि वहुतसी रानियां थीं। एक समय धारिणी पटरानीने आधी रातमें स्वप्नमें सिंह देखा। नौ महीने वाद उसके उदरसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मेघकुमारकी भांति उत्सव किया और उसका नाम रक्खा सुवाहुकुमार। युवा होने पर पुष्पचूला आदि कई स्त्रियोंसे उसका विवाह किया। सुवाहुकुमार पांच विषयोंके सुख भोगने लगा।

उस समय भगवान् महावीर पुष्पकरंडक उद्यानमें पधारे। कूणिककी भांति उनकी चरणवंदना कर राजा और परिषद् अपने अपने स्थान पर गये। सुवाहुकुमार भी जमालिकी भांति रथपर वैठकर वन्दना करने आया। धर्म सुना। उस पर श्रद्धा हुई। श्रीमहावीरके पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप गृहस्थ धर्म अंगीकार कर घर गया। श्री गौतम स्वामीने सुवाहुकुमारका रूप देखा और अचरज पाकर श्री महावीर स्वामीसे पूछने लगे कि "प्रभो! सुवाहुकुमारने अत्यन्त रूप, ऋद्धि और सुख सम्पत्ति किस पुण्यके प्रभावसे प्राप्त की है?"

भगवान्ने कहा—उस समय जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें हस्तिनागपुर नामक ऋद्धिमान् नगर था। वहां सुमुख नामका गाथापति रहता था। उस नगरके सहस्रवन उद्यानमें धर्मघोष नामक स्थविर पांच सौ साधुओंके साथ ठहरे हुए थे। उनके वड़े शिष्य सुदत्त अणगार तेजोलेश्या सहित मासोपवास तप करते थे। एक दिन गौतम स्वामीकी तरह गुरुकी आज्ञा लेकर मासखमणके पारणेके दिन हस्तिनागपुरमें अटन करते करते सुमुख गाथापतिके घर आये। उन्हें आते देख सुमुखको वड़ा आनन्द हुआ। वह उनके सामने गया, नमस्कार किया और चार प्रकार का निर्दोष आहार त्रिकरणशुद्धिसे प्रदान किया। इससे साढ़े वारह करोड़ सौनैयेंकी, पांच प्रकारके फूलोंकी और वस्त्रोंकी वृष्टि हुई। आकाशमें देवताओंने दुंदुभि वजाई और दानकी महिमा गाई। सब मनुष्य कहने लगे कि सुमुख गाथापतिको धन्य है कि जिसने साधु को दान दिया जिसमें धनकी वृष्टि भी हुई। सुमुख गाथापति वहुत वर्षका आयुष्य भोगकर मरा और हस्तिनागपुरके राजाकी रानीकी कोखसे उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुवाहुकुमार रक्खा गया।

सुवाहुकुमार श्रावक नवतत्त्वका ज्ञाता था। साधु-साध्वियों को निर्दोष आहार दान करता था। अष्टमी, चौदस, पूनम और अमावसके दिन पौषधशाला में जा, मार्जनकर, वड़ी नीति लघुनीति की भूमिका पडिलेखन कर, डाभका संथारा विछाकर उस पर वैठकर अष्टमभक्त तप ग्रहण कर पौषधव्रत करता था।

एक दिन आधी रातमें धर्मजागरण करते हुए उसे विचार आया कि "वह नगर, पट्टन, पुर या गांव धन्य है जहां श्री महावीर स्वामी विचरते हैं। उनके पास दीक्षा लेने वाले को धन्य है, श्रावकपन अंगीकार करने वाले को धन्य है और धन्य है उनका उपदेश सुनने वालेको। यदि वे यहां पधारें तो मैं भी दीक्षा ग्रहण करूं।"

सुबाहुका ऐसा विचार जानकर भगवान् महावीर गांव गांव विचरते हुए हस्तिशीर्ष नगरके पुष्पकरंडक नामक उद्यानमें आ पहुंचे। पहलेकी भांति राजा, रिषद् वन्दना कर लौट गये। सुबाहुकुमार भी बड़े ठाठसे वन्दना कर वापस लौटा। फिर मेघकुमारकी तरह माता पितासे पूछकर महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। ईर्यासमितिपूर्वक विचरने लगा। फिर ग्यारह अंग पढ़, उपवास, छट्ठ, अट्ठमादि तपसे अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। एक मासकी संलेखनाकर साठ भक्त का अनशन छेदकर अन्तमें आलोचना एवं प्रतिक्रमण कर भावसमाधि पाकर कालके समय काल करके सुधर्म देवलोकमें देवता हुआ। वहां देव आयुष्य पूर्ण करके मनुष्य होगा। फिर साधु होकर बहुत वर्षों तक चारित्र पालन करेगा। आलोचना, प्रतिक्रमण कर कालके समय कालकर सनत्कुमार देवलोकमें उत्पन्न होगा। वहांसे आकर फिर मनुष्य भव प्राप्त करेगा। वहां प्रव्रज्या पालकर ब्रह्म देवलोकमें जाएगा। फिर मनुष्य होकर महाशुक्र देवलोकमें उत्पन्न होगा। वहांसे मनुष्य होकर आरण देवलोकमें जायेगा। वहांसे मनुष्य हो सर्वार्थसिद्धमें देवता होगा। वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें बड़े सुखी घरमें जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा...॥३१॥

सार

सुपात्र मुनिको दान देनेसे यह फल मिला कि दूसरे जन्ममें उत्तम कुल, सुन्दर शरीर और धर्म सुननेका प्रसंग प्राप्त हुआ। इस प्रकार मुक्तिकी सीढ़ी दान ही है। 'प्रत्येक मनुष्यकी सदिच्छा पूरी होती है' इस नियमके अनुसार सुबाहुको भगवान्के दर्शनकी इच्छा हुई वह भी फलीभूत हुई। भगवान्ने उसकी इच्छा जानकर ही उस ओर विहार किया। जब प्रबल इच्छा होती है तब उसके पूरा होनेका प्रसंग भी आ जाता है।

धर्म श्रवण करनेका लाभ यह है कि उससे धर्मक्रिया करने की इच्छा होती है। कोरे 'धर्म धर्म' चिल्लानेसे कुछ नहीं होता। दीक्षा लेकर सुबाहुमुनि प्रमादमें न पड़े, तप और स्वाध्यायमें लगे रहे, इससे उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ, मनुष्यत्व प्राप्त होगा और अन्तमें मुक्त होंगे।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

दूसरा अध्ययन--भद्रनंदी

उसभपुर गांव, थूभकरंडक उद्यान, धनावह राजा, सरस्वती पटरानी, भद्रनंदी कुमारको श्रीदेवी आदि अनेक कन्यायें ब्याही गईं। भगवान् पधारे, उनके सामने श्रावक धर्म अंगीकार किया।

पूर्व भव—महाविदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरी, विजयकुमारने जुगबाहु विहरमान तीर्थंकरको आहार दान दिया। इससे मनुष्य गोत्र बांध यहां पैदा हुआ। बाकी सुबाहुकुमारकी भांति जानना। महाविदेह क्षेत्रसे मुक्त होगा।

तीसरा अध्ययन--सुजातकुमार

वीरपुर नगर, मनोरम उद्यान, वीरकन्हमित्र राजा, रानी श्रीदेवी, वलश्री आदि अनेक स्त्री सुजातकुमार को ब्याही गई। पूर्व भवमें नगर इक्षुकार। गाथापति ऋषभदत्त। पुष्पदत्त अनगारको आहार दान। मनुष्य गोत्र बांध यहां पैदा हुआ। महाविदेहमें मोक्ष प्राप्त करेगा।

चौथा अध्ययन--सुवासवकुमार

नगर विजयपुर, उद्यान नन्दनवन, वासवदत्त राजा, कृष्णा देवी, भद्रा आदि अनेक कन्या सुवासव कुमारको ब्याही गई। पूर्वभव में कौसंबी नगरी, धनपाल राजा, श्रमणभद्र अनगार को अन्नदान दिया। यावत् मुक्त होगा।

पांचवां अध्ययन--जिनदास

सौगंधिका नगरी, नीलाशोक उद्यान, अप्रतिहत राजा, सुकृष्णा रानी, अरहदत्ता महचंद कुमारकी स्त्री, इनका लड़का जिनदास, पूर्वभवमें मज्झिमिका नगरी, मेघरथ राजा, सुधर्म अनगारको आहार दान, क्रमशः मुक्त होगा।

छठा अध्ययन--धनपति युवराजी

कनकपुर नगर, श्वेताशोक उद्यान, प्रियचंद्र राजा, सुभद्रा देवी, वैश्रमण-कुमार युवराज, श्रीदेवी प्रमुख अनेक स्त्रियां, तीर्थंकर पधारे। युवराजने अपने पुत्र धनपतिका पूर्वभव पूछा। मणिव्रता नगरी, मित्र राजा, संभूतिविजय अणगार को आहार दान, मुक्त होगा।

सातवां अध्ययन--महाबलकुमार

महापुर नगर, रक्ताशोक उद्यान, बल राजा, सुभद्रा राणी, महाबल कुमार, रक्तवती आदि बहुत सी स्त्रियां ब्याहीं। पूर्वभवमें मणिपुर नगर, नागदत्त गाथापति, अनगार इन्द्रचन्द्र को आहार दान दिया। मोक्ष प्राप्त करेगा।

आठवां अध्ययन--भद्रनंदीकुमार

सुघोष नगर, देवरमण उद्यान, अर्जुन राजा, तत्ववती रानी, भद्रनंदी कुमार को श्रीदेवी आदि अनेक स्त्रियां ब्याहीं। पूर्वभव में महाघोष नगर, धर्मघोष

गाथापति, धर्मसिंह अनगार को चार प्रकारका आहार दिया, अंतमें सिद्ध पद प्राप्त करेगा ।

नौवां अध्ययन--महचंद्रकुमार

चपां नगरी, पूर्णभद्र उद्यान, दत्त राजा, रक्तवती रानी, महचन्द्रकुमार युवराज, श्रीकांता प्रमुख अनेक स्त्रियां ब्याहीं। पहले की तरह तिगिच्छा नगरी, जितशत्रु राजा, धर्मविरति अनगार को अशनप्राशन दिया। पूर्ववत् सिद्ध होगा।

दसवां अध्ययन--वरदत्तकुमार

साकेत नगरी, उत्तरकुरु उद्यान, मित्रनंदी राजा, श्रीकान्ता रानीविरदत्त-कुमार, वीरसेना प्रमुख अनेक स्त्रियां ब्याहीं। तीर्थंकर पधारे, श्रावक धर्म स्वीकार किया। पूर्वभवमें शतद्वार नगर, विमलवाहन राजा। धर्मरुचि मुनिको आहार दान दिया। मनुष्यका आयुष्य बांध यहां पैदा हुआ। बाकी सब सुबाहुकी तरह प्रौषध के बारे में सोचा। पहलों की भांति दीक्षा ली। देवलोक में चढ़ते-चढ़ते १-३-५-७-९-११वें देवलोकमें जाकर सर्वार्थसिद्ध में देव होगा। वहांसे च्यवकर महाविदेहक्षेत्र से मुक्त होगा ॥३२॥

॥ दसवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ सुखविपाक द्वितीय श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥

॥ विपाकसूत्र समाप्त ॥ एकादशांग समाप्त ॥

॥ मूलश्लोकसंख्या ३५००० ॥ अर्थश्लोकसंख्या ५२५०० ॥

विपाकसूत्र के दो श्रुतस्कंध हैं—दुःखविपाक और सुखविपाक। दुःख-विपाक में दस अध्ययन एक समान दस दिनोंमें उपदिष्ट होते हैं। ऐसे ही सुख-वपकके भ। शेप आचारांगके समान।

परिशिष्ट नं० १

पारिभाषिक शब्दकोष

(अ)

अंग—शरीर-अवयव, शरीर।

अंगप्रविष्ट—आचारांग आदि वारह अंग। वर्तमान में ग्यारह अंग ही उपलब्ध हैं। वारहवां दृष्टिवाद लुप्त हो चुका है।

अन्तर्मुहूर्त—दो घड़ी प्रमाण काल। एक घड़ी २४ मिनट, दो घड़ी एक सामायिककाल।

अन्तराय—रुकावट, जिस कर्मके उदय से किसी वस्तुकी प्राप्ति या किसी कार्य के सम्पन्न होने में वाधा हो उसे अन्तराय कहते हैं।

अन्तरालगति-जन्मान्तर के समय नवीन भवग्रहण के लिये जाती हुई आत्मा की गति।

अकामनिर्जरा—विना इच्छा के कष्ट सहकर कर्मकी निर्जरा करना।

अगुरुलघुकर्म-जिस कर्मके उदय से जीव का शरीर न भारी हो और न हल्का हो, उसे अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं।

अघातिकर्म—जो कर्म आत्माके मुख्य गुणोंका नाश नहीं करते, वे अघातिकर्म···। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—ये चार अघातिकर्म हैं। घातिकर्मोंके क्षय होने पर ये कर्म भी उसी जन्म में क्षय हो जाते हैं।

अचक्षुस्—आंखको छोड़कर त्वचा, जिह्वा, नाक, कान और मन द्वारा पदार्थों के सामान्य धर्मका जो प्रतिभास होता है उसे अचक्षुस् दर्शन कहते हैं, उसका आवरण अचक्षु दर्शनावरण है।

अजीव—जिसमें प्राण न हो अर्थात् जो जड़ हो, वह अजीव। चेतनारहित द्रव्य अजीव।

अनादेय—जिस कर्मके उदय से किसी व्यक्तिका वचन युक्त होने पर भी आदरणीय न समझा जाय।

अनाभोग—विचार व विशेष ज्ञान का अभाव। मिथ्यात्व विशेष।

अनाभोगनिर्वर्तित—अज्ञानता से इप्सित आहारकी इच्छा।

अनाहारक—आहार नहीं करने वाले जीव। अनाहारक जीव दो प्रकारके हैं--छद्मस्थ और वीतराग। वीतरागमें जो (मुक्त) अशरीरी हैं वे सदा अनाहारक रहते हैं, परन्तु जो सशरीरी हैं वे केवली समुद्घात के तीसरे चौथे और पांचवें समय में अनाहारक रहते हैं। छद्मस्थ जीव अनाहारक तभी रहते हैं जब वे विग्रहगतिमें वर्तमान हों।

अधर्मास्तिकाय-स्थितिमें सहायता करने वाला द्रव्य अधर्मास्तिकाय।

अध्यवसाय—प्रयत्न।

अनिन्द्रिय—इन्द्रिय रहित जीव, अनिन्द्रिय—सिद्ध, मुक्तात्मा, जिस ज्ञानमें इन्द्रियोंकी सहायता की अपेक्षा न हो उसे अनिन्द्रिय ज्ञान कहते हैं।
अनुदीरक—भविष्यकाल में जो कर्म वेदन किये जायेंगे परन्तु जिनका अबाधाकाल व्यतीत नहीं हुआ है, उन कर्मों को अनुदीरक कहते हैं।
अनुदय—कर्मोंका उदय में न आना।
अनुभागबंध—कर्मोंकी फल देनेकी शक्ति मन्द है या तीव्र, इसका निश्चय होना अनुभागबंध।
अनंत—जिसका अन्त न हो वह अनन्त, अन्तका अभाव,संख्या विशेष। अनन्तसे अनन्तगुणित अनन्तानन्त।
अनंतानुबंधी—जिस कषाय के अनुबन्ध से जीव अनन्तकाल तक संसारमें भ्रमण करता है, उसे अनन्तानुबंधी कषाय कहते हैं।
अपवर्तन—स्थितिबंध और अनुभागबंध के घटने को अपवर्तन कहते हैं।
अपर्याप्त—जिस जातिके जीवमें जितनी पर्याप्तियां हों या हो सकती हों उतनी बिना प्राप्त किये जो जीव मर जाते हैं या जब तक नहीं प्राप्त करते तब तक वे अपर्याप्त कहे जाते हैं।
अपरिग्रह-अनासक्ति, चल-अचल पदार्थों तथा शरीर आदि पर भी आसक्ति न होना।
अप्रत्याख्यान-देशविरतिरूप अल्प प्रत्याख्यान—त्याग भी न होना, श्रावक-धर्म की प्राप्ति भी न होना।
अप्रमत्त—जो मुनि निद्रा, विषय,कषाय, विकथा आदि प्रमादोंका सेवन नहीं करते, वे अप्रमत्त संयत कहे जाते हैं। सप्तम गुणस्थान।
अबाधाकाल—बंधा हुआ कर्म जितने समय तक उदय में नहीं आता, उसे अबाधाकाल कहते हैं।
अभव्य—ये प्रथम गुणस्थान में ही वर्तमान होते हैं। सम्यक्त्व और चारित्रकी प्राप्ति न होने के कारण अभव्य जीवों की मुक्ति नहीं होती।
अभव्येतर—अभव्यों के अतिरिक्त।
अल्पत्वबहुत्व—न्यूनाधिकता।
अर्थावग्रह—एक तरहका मति ज्ञान। पदार्थ के अव्यक्त ज्ञानको अर्थावग्रह कहते हैं।
अर्द्धनाराच—चतुर्थ संहनन। जिस शरीर-रचनामें एक ओर मर्कटबंध हो और दूसरी ओर कील हो, उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं।
अलोभ—लोभको छोड़कर।
अलेश्य—लेश्यारहित, चौदहवें गुणस्थानमें वर्तित जीव।
अयोगी—मन, वचन और काययोगका निरोधकर अयोगी-योगरहित अवस्था। सिद्ध जीव।
अवग्रह—एक तरहका मतिज्ञान। विषय और विषयी (जानने वाला) के संबंधसे जो प्राथमिक स्वरूपमात्रका ज्ञान होता है उसे अवग्रह कहते हैं।
अवगाढ़—ढके हुए।
अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मनकी विना सहायता जो ज्ञान मूर्त्त पदार्थों को जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।
अवाय—ईहासे जाने हुए पदार्थमें यह

यही है, दूसरा नहीं ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान ।

अविरति—पापोंसे विरक्त न होना ।

अविरत—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव, त्यागरहित प्राणी ।

असातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल विषयोंकी अप्राप्ति अथवा प्रतिकूल विषयोंकी प्राप्तिसे दुःख हो उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं ।

अस्तिकाय—वे द्रव्य जो सदा ही सत्तात्मक रूपसे विद्यमान रहते हैं। इनका कभी विनाश नहीं होता ।

अस्तेय—चोरीका परित्याग ।

अप्रत्याख्यान नाम–जिस कषायके उदयसे देशविरतिरूप–अल्पप्रत्याख्यान भी न हो और श्रावकधर्मकी प्राप्ति भी न हो ।

अहोरात्रि—रात-दिन ।

असंज्ञीभूत—वर्तमानजन्मसे पूर्व जन्ममें जो जीव असंज्ञी थे उन्हें असंज्ञीभूत कहते हैं ।

(आ)

आकाशास्तिकाय—आश्रय देने वाला द्रव्य ।

आयुष्य—जिस कर्मके अस्तित्वसे प्राणी जीवित रहता है तथा जिसके क्षय हो जानेसे मर जाता है ।

आत्मा—चेतनामय अविभाज्य असंख्येयप्रदेशी पिंड ।

आवरण—आच्छादन ।

आवरणद्विक—ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म ।

आश्रव—कर्मोंके आनेका द्वार ।

आहारक—चतुर्दशपूर्वधर मुनि आवश्यक कार्य उत्पन्न होने पर जो विशिष्ट पुद्गलोंका शरीर बनाते हैं, उसे आहारक शरीर कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे ऐसे शरीरकी प्राप्ति होती है, उसे आहारकशरीरनाम कर्म कहते हैं ।

आहार—भुक्त भोजनका रक्त, हड्डी आदिके रूपमें निर्माण होना ।

आवलिका—असंख्य समयोंकी एक आवलिका होती है । आवलिका समयका माप विशेष है ।

आलापक—विभेद, भंग ।

आहारक—औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीनों शरीरोंमें किसी भी शरीरयोग्य पुद्गलोंको ग्रहण करने वाला जीव आहारक कहा जाता है ।

(इ)

इन्द्रिय—आत्मा जिस बाह्य चिह्नसे पहचाना जाय, अथवा त्वचा, नेत्र आदि जिन साधनों द्वारा विषयोंका ज्ञान हो उसे इन्द्रिय कहते हैं ।

(ई)

ईहा—मतिज्ञान विशेष । अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थ-ज्ञानका विशेष आलोचन करना ।

ईर्यासमिति—अप्रमाद एवं उपयोगपूर्वक गमनागमन करना ।

(उ)

उत्तरप्रकृति—अवान्तर प्रकृति ।

उदय—विपाक, फलानुभव ।

उदीरणा—अबाधाकाल व्यतीत हो जाने पर जो कर्मदलिक पश्चात् उदय में आने वाले हैं, उनको प्रयत्न विशेष से खींचकर उदयप्राप्त दलिकोंके साथ भोग लेना उदीरणा कहा जाता है।
उपयोग—ज्ञान-दर्शनकी प्रवृत्तिको उपयोग कहा जाता है।
उद्वर्तन—स्थितिबंध और अनुभाग बंधके बढ़नेको उद्वर्तन कहते हैं।
उपभोग—बार २ काममें लाना।
उपशम—भावविशेष, कर्मोंका शान्त होना और उदयमें न आना।
उपरिमक—ऊपरके।

(ऊ)

ऊण—कम, हीन।

(ए)

एकजीवदेश—एक जीवके प्रदेश।
एकेन्द्रिय—जो जीवमात्र स्पर्शन इन्द्रियकी योग्यता एवं आकृतियुक्त हैं; ऐसे जीवोंकी जाति एकेन्द्रिय कही जाती है। स्पर्शन इन्द्रिययुक्त एक जीव भी एकेन्द्रिय ही कहा जाता है।

(ओ औ)

ओघ—सामान्य।
औदारिक—स्थूल पुद्गल, हड्डी, रक्त, मांस आदि स्थूल द्रव्योंसे जो शरीर-निर्माण हो, उसे औदारिक कहते हैं।

(क)

कर्म—आत्माकी शुभ-अशुभ प्रवृत्ति-द्वारा आकृष्ट किये गये पुद्गल, जो आत्माके साथ संवद्ध होकर शुभाशुभ फलके कारण होते हैं और शुभाशुभ रूपमें उदयमें आते हैं; उन आत्मगृहीत पुद्गलोंको कर्म कहा जाता है।
कर्मविपाक—कर्मका शुभाशुभ फल।
करण—इन्द्रिय, शरीर आदि।
कषाय—कष-जन्म-मरण रूपी संसारमें जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा आगमन हो, उसे कषाय कहते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये काषायिक वृत्तियां हैं।
कृष्णलेश्या—कज्जल के सदृश कृष्ण और अत्यन्त कटु पुद्गलोंके संबंधसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कृष्णलेश्या कहते हैं। क्रूरता-सम्बन्धी सर्व कार्य इसमें आ जाते है।
कीलिका—कील।
कापोत लेश्या— कपोत वर्ण और अत्यन्त तिक्त पुद्गलों के सम्बन्धसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कापोतलेश्या कहते हैं। वक्रता, शठता आदि कापोतलेश्याके परिणाम हैं।
कार्मण—जीव-प्रदेशों से संवद्ध आठ प्रकारके कर्म-पुद्गलोंको कार्मण शरीर कहते हैं।
कुब्ज—जिस व्यक्तिके शरीरके छाती, पेट, पीठ आदि अंग हीन हों, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।
कुब्ज—कुबड़ा।

(ग)

गति—जीवकी नरक आदि अवस्थाओं को गति कहते हैं।
गतिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव देव, नारक आदि अवस्थाओं को प्राप्त करता है, उसे गतिनामकर्म कहते हैं।

गुरु—भारी।

गुरुलघु—भारी और हल्का।

गोत्र—आत्माके अगुरुलघु गुण को प्रच्छन्न कर जो कर्म आत्माको उच्च अथवा नीच कुलमें उत्पन्न करता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

गुणस्थान—संसारके दृढ़ बन्धनोंसे लेकर संपूर्ण विमुक्तिकी अवस्था तक पहुंचनेकी सर्व भूमिकायें जिन विभागों में विभाजित हैं, उन्हें गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान आत्माकी स्थिति विशेष हैं।

गुण—वस्तु-स्वरूपको गुण कहते हैं।

(घ)

घन—दृढ़, मजबूत।

घातिकर्म—जो कर्म आत्मासे चिपक कर आत्माके मूल—स्वाभाविक गुणों की घात करते हैं उन्हें घातिकर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये घातिकर्म कहे जाते हैं।

(च)

चतुरिन्द्रिय—जातिविशेष, शरीर, जिह्वा, नाक, आंख, इन चार इन्द्रिय वालेको चतुरिन्द्रिय कहते हैं।

चारित्र—आत्माको शुद्ध स्वरूपमें रखने का प्रयत्न करना।

चरम—जो जीव अपनी वर्तमान देहसे ही विमुक्त होने वाला हो, उसे चरम कहते हैं।

चक्षुदर्शन—चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशमसे नेत्रों-द्वारा पदार्थोंका जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे चक्षु-दर्शन कहते हैं।

चारित्रमोहनीय--जिस कर्मके द्वारा जीव के आत्म-स्वरूप प्रकट होने में वाधा हो, उसे चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं।

(छ)

छद्मस्थ—कषाययुक्त जीव छद्मस्थ कहा जाता है।

छेद—भेद, अभाव।

छेदोपस्थानीय चारित्र—संयम विशेष। प्रथम ली हुई दीक्षामें दोष आ जाने पर उसका विच्छेद कर पुनः नये सिरेसे दीक्षा लेना छेदोपस्थानीय चारित्र कहा जाता है।

(ज)

जघन्य—कमसे कम।

जाति—इन्द्रियोंके अनुसार जीवोंके विभाग, जाति कहे जाते हैं।

जिन—वीतराग।

जीव देखो—आत्मा।

ज्योतिष्क--सूर्य चन्द्रादि ज्योतिष्क देव।

जातिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव एकेन्द्रिय आदि कहा जाय, उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

(त)

तिर्यंच—मनुष्य, नैरयिक और देवको छोड़कर सर्व सांसारिक जीव तिर्यंच कहे जाते हैं।

तीर्थंकर—साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थोंकी स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहे जाते हैं।

तेजसकायिक—अग्निकायिक जीव।

तेजोलेश्या—अत्यन्त मधुर पुद्गलों के

उदीरणा—अबाधाकाल व्यतीत हो जाने पर जो कर्मदलिक पश्चात् उदय में आने वाले हैं, उनको प्रयत्न विशेष से खींचकर उदयप्राप्त दलिकोंके साथ भोग लेना उदीरणा कहा जाता है।
उपयोग—ज्ञान-दर्शनकी प्रवृत्तिको उपयोग कहा जाता है।
उद्वर्तन—स्थितिबंध और अनुभाग बंधके बढ़नेको उद्वर्तन कहते हैं।
उपभोग—बार २ काममें लाना।
उपशम—भावविशेष, कर्मोंका शान्त होना और उदयमें न आना।
उपरिमक—ऊपरके।

(ऊ)

ऊण—कम, हीन।

(ए)

एकजीवदेश—एक जीवके प्रदेश।
एकेन्द्रिय—जो जीवमात्र स्पर्शन इन्द्रियकी योग्यता एवं आकृतियुक्त हैं; ऐसे जीवोंकी जाति एकेन्द्रिय कही जाती है। स्पर्शन इन्द्रिययुक्त एक जीव भी एकेन्द्रिय ही कहा जाता है।

(ओ औ)

ओघ—सामान्य।
औदारिक—स्थूल पुद्गल, हड्डी, रक्त, मांस आदि स्थूल द्रव्योंसे जो शरीर-निर्माण हो, उसे औदारिक कहते हैं।

(क)

कर्म—आत्माकी शुभ-अशुभ प्रवृत्ति-द्वारा आकृष्ट किये गये पुद्गल, जो आत्माके साथ संवद्ध होकर शुभाशुभ फलके कारण होते हैं और शुभाशुभ रूपमें उदयमें आते हैं; उन आत्मगृहीत पुद्गलोंको कर्म कहा जाता है।
कर्मविपाक—कर्मका शुभाशुभ फल।
करण—इन्द्रिय, शरीर आदि।
कषाय—कष-जन्म-मरण रूपी संसारमें जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा आगमन हो, उसे कषाय कहते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये काषायिक वृत्तियां हैं।
कृष्णलेश्या—कज्जल के सदृश कृष्ण और अत्यन्त कटु पुद्गलोंके संबंधसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कृष्णलेश्या कहते हैं। क्रूरता-सम्बन्धी सर्व कार्य इसमें आ जाते है।
कीलिका—कील।
कापोत लेश्या— कपोत वर्ण और अत्यन्त तिक्त पुद्गलों के सम्बन्धसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कापोतलेश्या कहते हैं। वक्रता, शठता आदि कापोतलेश्याके परिणाम हैं।
कार्मण—जीव-प्रदेशों से संवद्ध आठ प्रकारके कर्म-पुद्गलोंको कार्मण शरीर कहते हैं।
कुब्ज—जिस व्यक्तिके शरीरके छाती, पेट, पीठ आदि अंग हीन हों, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।
कुब्ज—कुबड़ा।

(ग)

गति—जीवकी नरक आदि अवस्थाओं को गति कहते हैं।
गतिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव देव, नारक आदि अवस्थाओं को प्राप्त करता है, उसे गतिनामकर्म कहते हैं।

गुरु—भारी।

गुरुलघु—भारी और हल्का।

गोत्र—आत्माके अगुरुलघु गुण को प्रच्छन्न कर जो कर्म आत्माको उच्च अथवा नीच कुलमें उत्पन्न करता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

गुणस्थान—संसारके दृढ़ वन्धनोंसे लेकर संपूर्ण विमुक्तिकी अवस्था तक पहुंचनेकी सर्व भूमिकायें जिन विभागों में विभाजित हैं, उन्हें गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान आत्माकी स्थिति विशेष हैं।

गुण—वस्तु-स्वरूपको गुण कहते हैं।

(घ)

घन—दृढ़, मजबूत।

घातिकर्म—जो कर्म आत्मासे चिपक कर आत्माके मूल—स्वाभाविक गुणों की घात करते हैं उन्हें घातिकर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये घातिकर्म कहे जाते हैं।

(च)

चतुरिन्द्रिय—जातिविशेष, शरीर, जिह्वा, नाक, आंख, इन चार इन्द्रिय वालेको चतुरिन्द्रिय कहते हैं।

चारित्र—आत्माको शुद्ध स्वरूपमें रखने का प्रयत्न करना।

चरम—जो जीव अपनी वर्तमान देहसे ही विमुक्त होने वाला हो, उसे चरम कहते हैं।

चक्षुदर्शन—चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशमसे नेत्रों-द्वारा पदार्थोंका जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे चक्षु-दर्शन कहते हैं।

चारित्रमोहनीय--जिस कर्मके द्वारा जीव के आत्म-स्वरूप प्रकट होने में वाधा हो, उसे चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं।

(छ)

छद्मस्थ—कषाययुक्त जीव छद्मस्थ कहा जाता है।

छेद—भेद, अभाव।

छेदोपस्थानीय चारित्र—संयम विशेष। प्रथम ली हुई दीक्षामें दोष आ जाने पर उसका विच्छेद कर पुनः नये सिरेसे दीक्षा लेना छेदोपस्थानीय चारित्र कहा जाता है।

(ज)

जघन्य—कमसे कम।

जाति—इन्द्रियोंके अनुसार जीवोंके विभाग, जाति कहे जाते हैं।

जिन—वीतराग।

जीव देखो—आत्मा।

ज्योतिष्क--सूर्य चन्द्रादि ज्योतिष्क देव।

जातिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव एकेन्द्रिय आदि कहा जाय, उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

(त)

तिर्यंच—मनुष्य, नैरयिक और देवको छोड़कर सर्व सांसारिक जीव तिर्यंच कहे जाते हैं।

तीर्थंकर—साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थोंकी स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहे जाते हैं।

तेजसकायिक—अग्निकायिक जीव

तेजोलेश्या—अत्यन्त मधुर पुद्गल

संयोगसे आत्माका जो परिणाम होता है, उसे तेजोलेश्या कहते हैं। इसके द्वारा शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति वढ़ती है।

तैजसशरीर—जो शरीर खाये हुए आहार आदिको पचानेमें समर्थ है तथा जो तेजोमय पुद्गलोंसे वना हुआ है, उसे तैजस शरीर कहा जाता है। तेजोलेश्या और शीतलेश्याका संवंध इसी शरीर से है।

(द)

दंडक—विभाग, भेदपूर्वक ज्ञान।

दर्शनावरणीयकर्म—जो कर्म आत्मा के दर्शन गुणको आच्छादित करे, वह दर्शनावरण कर्म कहा जाता है।

दर्शन—जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही समझना दर्शन है। तत्त्वश्रद्धा को भी दर्शन कहते हैं।

दर्शनमोहनीय—दर्शन गुणकी घात करने वाले कर्मको दर्शनमोहनीय कहते हैं।

द्रव्य—जिस पदार्थमें गुण और पर्याय विद्यमान हों उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य सत्तात्मक रूपसे सदा विद्यमान रहता है उसका कभी विनाश नहीं होता।

द्रव्यात्मा—आत्माके असंख्येय प्रदेश हैं। इन असंख्येय प्रदेशोंका समूह ही जीव-आत्मा है। इन असंख्येय प्रदेशोंका विभाजन नहीं किया जा सकता।

दृष्टि—नजर, पदार्थोंके सत्य या असत्य स्वरूपमें अपनी मान्यताके अनुसार विश्वास करना।

द्रव्येन्द्रिय—पुद्गलमय जड़ इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय। इन्द्रियोंकी वाह्य या आभ्यन्तर पौद्गलिक रचनाको द्रव्येन्द्रिय कहा जाता है।

देव—एक गति विशेष।

(ध)

धर्मास्तिकाय—गतिमें सहायता करने वाले द्रव्यको धर्मास्तिकाय कहते हैं।

धारणा—मतिज्ञान, ज्ञानविशेष। अवायके द्वारा जाना हुआ ज्ञान इतना दृढ़ हो जाय कि कालान्तरमें भी वह नहीं भूला जा सके। इस प्रकारके संस्कार वाले ज्ञानको धारणा कहते हैं।

(न)

नरकगति—अधोलोक, जिसमें दुःख ही दुःख है।

नपुंसकवेद—जिस कर्मके उदयसे स्त्री-पुरुष दोनोंके साथ विषय-सेवन की अभिलापा हो, उसे नपुंसकवेद कहते हैं।

नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे आत्मा नारक, तिर्यंच आदि नामोंसे संवोधित हो उसे नामकर्म कहते हैं। अच्छी गति, सुन्दर शरीर आदि शुभ नामकर्मसे तथा नीच गति, कुरूप शरीर आदि अशुभ नामकर्म से प्राप्त होते हैं।

नाराच—दोनों ओर मर्कट-वंध रूप अस्थि-रचनाको नाराच-संहनन कहते हैं।

निकाचित—जिन कर्मोंका फल

निश्चित अवधि और अनुभाग के आधार पर भोगा जाता है और जिनके विपाकको भोगे विना छुटकारा न हो, ऐसे कर्म निकाचित कहे जाते हैं। इनमें उद्वर्तन, अपवर्तन या उदीरणा नहीं होती।

निधत्ति—जिसमें उद्वर्तन और अपवर्तन के अतिरिक्त कोई संक्रमण आदि न हो उसे निधत्ति कहते हैं।

निर्जरा—कर्मोके एक देशका आत्मप्रदेशों से अलग होना द्रव्य-निर्जरा और द्रव्यनिर्जरा-जन्य आत्माके शुभ परिणाम भावनिर्जरा हैं। निर्जराके वारह भेद हैं।

निचय—रचना।

नीललेश्या—अनन्त तीक्ष्ण पुद्गलों के सम्बन्धसे आत्मामें जो परिणाम होते हैं उसे नीललेश्या कहते हैं। नीललेश्या वाला व्यक्ति मायी, निर्लज्ज, लोलुप व कामुक होता है।

नोकषाय-मोहनीय—कर्म-विशेष, कषायों के उदय के साथ जिन का उदय होता है उन्हें नोकषाय कहते हैं। इन भावों का कार्य कषायोंको उत्तेजित करना है। जैसे क्रोध के साथ हास्य।

न्यग्रोधपरिमंडल—वट-वृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं। वटके समान जिस शरीरके नाभि से ऊपर के अवयव पूर्ण हों तथा नाभिसे नीचेके अवयव हीन हों, उसे न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान कहते हैं।

(प)

पंचेन्द्रिय—शरीर, जिह्वा, नाक, आंख और कान—ये पांच इन्द्रियां जिस जाति के जीवोंमें विद्यमान हों, उन्हें पंचेन्द्रिय कहते हैं।

पद्मलेश्या—मधुसे भी अनन्तगुण मिष्ट पुद्गलों द्वारा आत्माका जो परिणाम होता है, उसे पद्मलेश्या कहते हैं।

पर्याप्त—जिस जातिके जीवमें जितनी पर्याप्तियां हैं उतनी ही जिस जीवको प्राप्त हों, उसे पर्याप्त कहते हैं।

परित्त—मर्यादित।

परमाणु—वह निरंश अंश जिसका कोई विभाजन न हो।

प्रज्ञा—बुद्धि।

पर्याप्ति—पुद्गलोपचय-जन्य शक्ति-विशेष।

प्रत्यनीक—निन्दक, अहितैषी।

परिग्रह—आसक्ति।

परिहारविशुद्ध चारित्र—जिस चारित्र में परिहारविशुद्धि नामक तप द्वारा शरीर को प्रहारित कर तप किया जाता है उसे परिहारविशुद्ध चारित्र कहते हैं।

पल्य—परिमाण विशेष।

पल्योपम—औपमेयिक काल।

पश्चादनुपूर्वी—पीछेके क्रमसे।

पारिणामिक—आत्माके परिणामों से समुत्पन्न भाव।

पुद्गल—रूप, रस, गंध आदि गुणयुक्त पदार्थ।

पुरुषवेद—जिस कर्मके उदयसे पुरुष को स्त्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा हो, उसे पुरुषवेद कहते हैं।

प्रत्येकशरीरी—जिस वनस्पतिमें एक शरीरमें एक जीव हो, उसे प्रत्येकशरीरी कहते हैं।

प्रदेशबंध—जीवके साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्मस्कंधोंका बंधन, प्रदेशबंध कहा जाता है।

प्रकृति—स्वभाव, कर्मभेद।

प्रत्याख्यान—त्याग, देशविरतिरूप श्रावकधर्म प्राप्त होना।

प्रकृतिबंध—जीव द्वारा ग्रहीत कर्मपुद्गलोंमें विभिन्न स्वभावों अर्थात् शक्तियों का पैदा होना प्रकृतिबंध कहा जाता है।

प्रदेश—निरंश अंश। जिस अंशके दो अंश न हों, उसे प्रदेश कहते हैं। यह स्कंधका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।

प्राण—जिसके संयोगसे यह जीव जीवनावस्था प्राप्त हो और जिसके वियोगसे मृत्यु प्राप्त हो, उसे प्राण कहते हैं।

(ब)

बंध—कर्म-पुद्गलोंका जीवप्रदेशोंके साथ दूध-पानीको तरह मिल जाना, बंध कहा जाता है।

बादर—दृष्टिगोचर होने वाले जीव।

(भ)

भंग—विकल्प, भेद।

भव्य—विमुक्त होने वाले जीव।

भव—संसार।

भाव—जीवपरिणाम।

भाषा—वचन-योग विशेष।

भेद—प्रकार।

भोग—भोगना—व्यवहृत करना।

भवनपति—देवजाति विशेष।

(म)

मतिज्ञान—इन्द्रिय तथा मनकी सहायता से होने वाला ज्ञान, मतिज्ञान।

मतिअज्ञान—इन्द्रिय तथा मनकी सहायता से होने वाला अज्ञान-मति-अज्ञान।

मनयोग—मनकी प्रवृत्तिको मनयोग कहते हैं।

महाव्रत—हिंसादिका सर्वथा परित्याग महाव्रत कहा जाता है।

मनःपर्ययज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता बिना जिस ज्ञानके द्वारा संज्ञी जीवोंके मनोगत भाव जाने जा सकें, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

मनुष्यगति—मनुष्यरूप में जहां उत्पन्न हुआ जाता है, उसे मनुष्यगति कहते हैं।

मिथ्यात्व—विपरीत श्रद्धानरूप जीवके परिणामको मिथ्यात्व कहते हैं।

मोक्ष—समस्त कर्मों का क्षय होना मोक्ष कहा जाता है।

मोहनीयकर्म—जो कर्म स्व-पर-विवेक में तथा स्वरूपज्ञान की प्राप्ति में बाधक हो, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

मायी—माया-कषाययुक्त जीव।

(य)

योग-आत्मा—मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति योग कही जाती है। इस योग में आत्मा की परिणति ही योगात्मा है।

योग—मन, वचन और शरीरकी प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

(र)

राग—प्रीति, ममता।

राजि—रेखा, लकीर।

राशि—समूह।

(ल)

लब्धि—शक्तिविशेष।

लघु—जघन्य।

लेश्या—मनकी शुभाशुभ वृत्ति।

लोक—प्राणिवर्ग, संसार।

(व)

व्यंजनावग्रह—अव्यक्तज्ञान, अर्थावग्रह से पूर्व होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान व्यंजनावग्रह कहा जाता है। व्यंजनावग्रह पदार्थकी सत्ता अनुभव करने के लिये होता है।

वर्ण—रंग।

वर्णनाम—जिस कर्मके उदय से शरीर के कृष्ण या गौर आदि वर्ण होते हैं।

वक्रगति—जन्मान्तर को जाते हुए जीव की घुमावयुक्त गति। इसमें घूमने का स्थान आते ही पूर्व देह—जनित वेग मन्द हो जाता है और कार्मण योग-द्वारा नवीन प्रयत्न करके अपने गन्तव्य स्थान पर जाना होता है।

वज्र—कील।

वज्रऋषभनाराच—संहननविशेष। इस संस्थानमें दोनों ओर मर्कटबंधसे बंधी हुई दो हड्डियोंके ऊपर तीसरी हड्डीका वेष्टन होता है, और तीनोंको भेदने वाला हड्डी का कीला होता है।

वृक्ष—वनस्पति, पादप।

वामनसंस्थान—जिस शरीरमें हाथ, पैर आदि अवयव हीन हों तथा पेट, छाती आदि अवयव पूर्ण हों, उसे वामनसंस्थान कहते हैं।

विपर्यय—विपरीत, उल्टा।

विहायोगति—जीवकी हाथी या बैलकी चालके समान शुभ अथवा ऊंट या गधेकी चाल की तरह अशुभ चालको विहायोगति कहते हैं। शुभ चाल होने पर शुभ विहायोगति, अशुभ होने पर अशुभ विहायोगति। यहां विहायका अर्थ आकाश नहीं है और न गतिका अर्थ नर्क आदि गति ही है।

विकल—दो, तीन और चार इन्द्रियों वाले जीव, अपरिपूर्ण, खंडित।

विपाक—कर्मफल।

विमुक्त—कर्म-बन्धन-रहित सिद्ध जीव।

विग्रहगति—देखो वक्रगति।

विभंगज्ञान—मिथ्या अवधिज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं। देखो अवधिज्ञान।

वीतराग—रागद्वेषको विजय करने वाले—वीतराग, केवली।

वीर्य—पराक्रम।

वेद—जिस लक्षण द्वारा स्त्री-पुरुष या नपुंसक की पहचान हो, उसे वेद कहते हैं।

वेदना—अनुभूति। सुखरूपमें अनुभूति सुख-वेदना और दुखरूपमें अनुभूति दुखवेदना।

वेदनीय—जो कर्म आत्माको सुख-दुख पहुंचाये उसे वेदनीयकर्म कहते हैं।

वेदक—अनुभव करने वाला।

वैक्रिय शरीर—जिस शरीर से विविध क्रियायें हों उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। इस शरीरमें हड्डी, मांस, रक्त आदि स्थूल पदार्थ नहीं होते परन्तु सूक्ष्म पुद्गल होते हैं। मरने पर यह कपूरकी तरह उड़ जाता है।

(श)

शरीर—जिसके द्वारा जीव रूप धारण कर चलना-फिरना, खाना-पीना आदि कार्य करता है तथा जो शरीरनामकर्मके उदयसे प्राप्त होता है उसे शरीर कहते हैं। अथवा सांसारिक आत्माका निवासस्थान।

श्रुतज्ञान—शास्त्र-श्रवण अथवा चिन्तन, मनन तथा पढ़ने से जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

शुक्ललेश्या—मिश्री से भी अनन्त गुणित मधुर पुद्गल द्रव्योंके संबंध से आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे शुक्ललेश्या कहते हैं। शान्त मन, जितेन्द्रियता तथा वीतरागता शुक्ल लेश्याके परिणाम हैं।

शैलेशी—शैल-पर्वतके सदृश निष्कंप अवस्था। चौदहवें गुणस्थानमें वर्तित जीव की यह स्थिति होती है।

(स)

संहनन—हड्डियोंकी रचना।

संहनन नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे शरीर को हड्डियोंकी संधियां दृढ़ होती हैं, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

संस्थान—शरीरके विभिन्न आकारों की रचना।

संघात—शरीरयोग्य पुद्गलोंका पूर्व ग्रहित पुद्गलों पर व्यवस्थित रूपसे स्थापित होना संघात कहा जाता है।

संवर—आते हुए नये कर्मों को रोकने वाला आत्माका परिणाम भाव संवर और कर्म-पुद्गलकी रुकावटको द्रव्यसंवर कहा जाता है।

संज्वलन—जिस कषायका व्यक्ति पर अल्प प्रभाव पड़ता हो, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्व-विरति रूप साधु-धर्ममें बाधा नहीं पहुंचाता परन्तु यथाख्यात चारित्र में बाधा पहुंचाता है।

संज्ञी—मनयुक्त जीव।

संज्ञीभूत—जो जीव वर्तमान भव से पूर्वजन्ममें संज्ञी जीव हों उन्हें संज्ञीभूत कहते हैं, संज्ञियोंको अनुभव होने वाली वेदनाको भी संज्ञीभूत कहते हैं।

संयत—इन्द्रियोंको वशीभूत रखने वाला संयममें दृढ़ अनगार।

संक्रमण—जिस प्रयत्नविशेष से कर्म एकस्वरूपको छोड़कर सजातीय अन्य स्वरूप को प्राप्त हो; उसे संक्रमण कहते हैं, एक कर्म-प्रकृतिका दूसरी कर्म-प्रकृतिमें बदल जाना।

सत्ता—कर्म फल न देकर जब तक अस्तित्वमें रहते हैं, उसे सत्ता कहते हैं।

समय—कालके उस अत्यन्त सूक्ष्म भागको समय कहते हैं, जिसका कोई विभाजन न हो।

समचतुरस्र—जिस देहके चारों कोण समानान्तर हों उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

सपर्यवसित—अन्त सहित।

सर्वविरत—साधु-धर्मको प्राप्त करना, सब ओरसे आरंभादिसे विरत होना।

समासतः—संक्षेपमें।

सम्यक्त्व—आत्माके उस परिणाम को सम्यक्त्व कहा जाता है जिसके अभिव्यक्त होने पर आत्माकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। सम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा व आस्था में दृढ़ता।

सम्यक्दृष्टि—वस्तुका यथार्थज्ञान।

साता—सुख वेदनानुभव।

साधारण—जहां एक शरीरमें अनन्त जीव निवास करते हों, उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं।

सामायिक—आत्माको समभावमें स्थिर

रखने के लिये सर्व अशुद्ध प्रवृत्तियों का परित्याग करना सामायिक है।

साम्परायिकी—वह हिंसाजनक प्रवृत्ति जो उपयोगरहित व प्रमादपूर्वक की जाती है।

सुभग—सुन्दर, सुभगनामकर्म ।

सूक्ष्मसाम्परायिक चारित्र—जिस अवस्थामें क्रोध, मान और मायाका क्षय या उपशम होता है। मात्र सूक्ष्म लोभ विद्यमान रहता है, उस अवस्थामें सूक्ष्मसम्पराय नामक चारित्र प्राप्त होता है।

सूक्ष्म—नेत्र या अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा भी दृष्टिगोचर न होने वाले सशरीरी जीव ।

स्थावर—जो जीव गमनागमन क्रिया नहीं कर सकते उन्हें स्थावर कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर कहे जाते हैं।

स्थिति—आयुष्य ।

स्थितिबंध—आयुष्यका बंधन ।

(ह)

हुण्डसंस्थान—जिस शरीरके समस्त अवयव यथानुरूप न हों उसे हुण्ड संस्थान कहते हैं।

हेतु—कारण ।

(क्ष)

क्षायिकसम्यक्त्व— अनन्तानुबंधी दर्शन-मोहनीयके क्षयोपशमसे प्रकट होने वाला आत्म-परिणाम, जिसमें तत्व के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

क्षयोपशम—सर्वथा विनाश या कापायिक वृत्तियोंसे उपशान्त होनेसे आत्मा में उज्ज्वलता प्राप्त होना ।

क्षुल्लकभव —२५६ आवलिका एक क्षुल्लकभव (सबसे अल्पायुष्य)।

(त्र)

त्रस—हलन-चलन करने वाले जीव त्रस कहे जाते हैं।

त्रिक—तीन ।

(ज्ञ)

ज्ञान—चेतना शक्तिका व्यापार—जिस के द्वारा किसी वस्तुको जाना जाय उसे ज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान—शास्त्र-श्रवण अथवा चिन्तन, मनन तथा पढ़ने से जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

शुक्ललेश्या—मिश्री से भी अनन्त गुणित मधुर पुद्गल द्रव्योंके संबंध से आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे शुक्ललेश्या कहते हैं। शान्त मन, जितेन्द्रियता तथा वीतरागता शुक्ल लेश्याके परिणाम हैं।

शैलेशी—शैल-पर्वतके सदृश निष्कंप अवस्था। चौदहवें गुणस्थानमें वर्तित जीव को यह स्थिति होती है।

(स)

संहनन—हड्डियोंकी रचना।

संहनन नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे शरीर की हड्डियोंकी संधियां दृढ़ होती हैं, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

संस्थान—शरीरके विभिन्न आकारों की रचना।

संघात—शरीरयोग्य पुद्गलोंका पूर्व ग्रहित पुद्गलों पर व्यवस्थित रूपसे स्थापित होना संघात कहा जाता है।

संवर—आते हुए नये कर्मों को रोकने वाला आत्माका परिणाम भाव संवर और कर्म-पुद्गलकी रुकावटको द्रव्यसंवर कहा जाता है।

संज्वलन—जिस कषायका व्यक्ति पर अल्प प्रभाव पड़ता हो, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्व-विरति रूप साधु-धर्ममें बाधा नहीं पहुंचाता परन्तु यथाख्यात चारित्र में बाधा पहुंचाता है।

संज्ञी—मनयुक्त जीव।

संज्ञीभूत—जो जीव वर्तमान भव से पूर्वजन्ममें संज्ञी जीव हों उन्हें संज्ञीभूत कहते हैं, संज्ञियोंको अनुभव होने वाली वेदनाको भी संज्ञीभूत कहते हैं।

संयत—इन्द्रियोंको वशीभूत रखने वाला संयममें दृढ़ अनगार।

संक्रमण—जिस प्रयत्नविशेष से कर्म एकस्वरूपको छोड़कर सजातीय अन्य स्वरूप को प्राप्त हो; उसे संक्रमण कहते हैं, एक कर्म-प्रकृतिका दूसरी कर्म-प्रकृतिमें बदल जाना।

सत्ता—कर्म फल न देकर जब तक अस्तित्वमें रहते हैं, उसे सत्ता कहते हैं।

समय—कालके उस अत्यन्त सूक्ष्म भागको समय कहते हैं, जिसका कोई विभाजन न हो।

समचतुरस्र—जिस देहके चारों कोण समानान्तर हों उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

सपर्यवसित—अन्त सहित।

सर्वविरत—साधु-धर्मको प्राप्त करना, सब ओरसे आरंभादिसे विरत होना।

समासतः—संक्षेपमें।

सम्यक्त्व—आत्माके उस परिणाम को सम्यक्त्व कहा जाता है जिसके अभिव्यक्त होने पर आत्माकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। सम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा व आस्था में दृढ़ता।

सम्यक्दृष्टि—वस्तुका यथार्थज्ञान।

साता—सुख वेदनानुभव।

साधारण—जहां एक शरीरमें अनन्त जीव निवास करते हों, उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं।

सामायिक—आत्माको समभावमें स्थिर

रखने के लिये सर्व अशुद्ध प्रवृत्तियों का परित्याग करना सामायिक है।

साम्परायिकी—वह हिंसाजनक प्रवृत्ति जो उपयोगरहित व प्रमादपूर्वक की जाती है।

सुभग—सुन्दर, सुभगनामकर्म।

सूक्ष्मसाम्परायिक चारित्र—जिस अवस्थामें क्रोध, मान और मायाका क्षय या उपशम होता है। मात्र सूक्ष्म लोभ विद्यमान रहता है, उस अवस्थामें सूक्ष्मसम्पराय नामक चारित्र प्राप्त होता है।

सूक्ष्म—नेत्र या अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा भी दृष्टिगोचर न होने वाले सशरीरी जीव।

स्थावर—जो जीव गमनागमन क्रिया नहीं कर सकते उन्हें स्थावर कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर कहे जाते हैं।

स्थिति—आयुष्य।

स्थितिबंध—आयुष्यका बंधन।

(ह)

हुण्डसंस्थान—जिस शरीरके समस्त अवयव यथानुरूप न हों उसे हुण्ड संस्थान कहते हैं।

हेतु—कारण।

(क्ष)

क्षायिकसम्यक्त्व—अनन्तानुबंधी दर्शन-मोहनीयके क्षयोपशमसे प्रकट होने वाला आत्म-परिणाम, जिसमें तत्व के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

क्षयोपशम—सर्वथा विनाश या कापायिक वृत्तियोंसे उपशान्त होनेसे आत्मा में उज्ज्वलता प्राप्त होना।

क्षुल्लकभव —२५६ आवलिका एक क्षुल्लकभव (सबसे अल्पायुष्य)।

(त्र)

त्रस—हलन-चलन करने वाले जीव त्रस कहे जाते हैं।

त्रिक—तीन।

(ज्ञ)

ज्ञान—चेतना शक्तिका व्यापार—जिसके द्वारा किसी वस्तुको जाना जाय उसे ज्ञान कहते हैं।

———

परिशिष्ट नं० २

अकारादि अनुक्रमणिका

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३	विचारे	विचारे	१३६	कांसीकेपात्र	कांसी के पात्र
६	पुरुषों से	पुरुषों के	,,	पात्रपणा	पात्रैपणा
११	वायुकाय के जीवों	त्रसकाय के जीवों	१३६	साधर्मी	साधर्मी
२३	श्राता	श्रोता	१४२	कटे हुए हैं	···कटे हुए हैं···
२४	उपयोग वस्तु	उपयोगी वस्तु	१४६	मर्दन	मर्दन
३०	सत्ययाम	सत्य या	१५१	अर्था गम	अर्थागम
३१	न रहले वाले	न रहने वाले	१५२	श्रमणभगवान्	श्रमण भगवान्
३४	मनोवृत्ति का	मनोवृत्ति को	१५४	ओर	और
३६	दख	देख	१५५	पुरिम	पूरिम
४३	क्यांकि	क्यों कि	१५८	सर्वप्रधान	सर्वप्रधान
७७	वोरप्रभु	वीरप्रभु	१७४	वेतालोय	वेतालीय
८१	साध	साधु	,,	आदस	आदि से
८५	पूर्वसंखडी	पूर्वसंखडी	१८४	धर्मदायज	धर्मदायज
८८	साधुओं	साधुओं	१८८	नंदीचूर्ण	नंदीचूर्ण
,,	अग्रपिण्ड	अग्रपिण्ड	१९०	दुष्कर हैं	दुष्कर है
९८	आधाकर्मी	आधाकर्मी	१९२	पर्वत	पर्वत
९९	भिक्षार्थ	भिक्षार्थ	१९४	वर्णवाला	वर्ण वाला
१०४	निर्वल	निर्वल	१९९	सूत्रकृतांक	सूत्रकृतांग
१०५	साघु	साधु	२०२	निर्ग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
१०७	स	इस	२०३	वन्धन	वन्धन
११०	साघु	साधु	२०३	अ०	अ० १०
११४	भिक्षओं	भिक्षुओं	२०५	दु ख	दुःख
११६	मार्ग	मार्ग	२१४	उपघान	उपधान
११७	एकत्रित	एकत्रित	२१७	कर्मवन्घ	कर्मवन्ध
,,	नोका	नौका	२१९	फसे	फंसे
११९	स्पर्श	स्पर्श	२२८	कर्म	कर्म
१२१	हा	ही	२३०	मृगवत्ति	मृगवृत्ति
१२४	प्रशसा	प्रशंसा	२३८	घरु	घरू
१२७	शरोर	शरीर	२४३	पानों में	पानी में

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२५२	तीर्थकरों	तीर्थंकरों
२६०	सूत्रकृतांक	सूत्रकृतांग
२६२	वैसे	वैसे
२६४	धर्मपूर्वक	धर्मपूर्वक
२७२	दोप्रकार	दो प्रकार
२७४	आरभ	आरंभ
२७५	दुखपूर्वक	दु:खपूर्वक
२८०	सर्व से	सर्व से
२८४	वर्षधर	वर्षधर
२८५	कटशाल्मली	कूटशाल्मली
२९४	अकर्मभूमिज	अकर्मभूमिज
२९६	क्रूर्मोन्नता	कूर्मोन्नता
३०१	पूर्ववत्	पूर्ववत्
३०३	आमाति	आयाति
३०६	कारणां	कारणों
३१५	निर्ग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
३१६	हेट्ठिमहेट्ठिम	हेट्ठिमहेट्ठिम
३२५	वाला	वाला
३२६	आर्य	आर्य
३२९	दक्षिणावर्त	दक्षिणावर्त
३३२	माल्यवत्पर्यांय	माल्यवत्पर्याय
३३७	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त
३५६	शीताष्ण	शीतोष्ण
३५८	स्मी	स्वामी
३६१	पयङ्का	पर्यङ्का
३६६	अर्थदण्ड	अर्थदण्ड
३६८	शव्द	शव्द
३७१	······दर्शनधर	···दर्शनधर
३७४	पार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ
३७७	गई	गई
३७९	ऋतुए	ऋतुएं
३८१	निवर्तित	निर्वर्तित
३८५	गोतों	गीतों
३९२	प्रकर	प्रकार
४०४	रत्री	स्त्री
४०६	सुर्णमय	सुवर्णमय
४१७	उत्पातपर्वत	उत्पातपर्वत
४२०	वर्गावर्ग	वर्गावर्ग
४२५	सर्वतोभद्र	सर्वतोभद्र
४३०	देवों को	देवों की
४३२	सूरावत	सूरावर्त
४३५	पुखों में	सुखों में
४४०	धमप्रभा	धूमप्रभा
४४८	शुक्लवणं	शुक्लवर्ण
४५०	प्रत्येक शरी र नाम	प्रत्येकशरीरनाम
४५२	श्रोतेन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय
४५४	हसता	हंसता
४५५	केवलदनावरण	केवलदर्शनावरण
४५७	तेतोसवां	तेतीसवां
४६१	शरीरवधन	शरीरवंधन
४६२	ततालीसवां	तेतालीसवां
४६६	ओर	और
४६७	व्यतोत	व्यतीत
४७०	चोरासी	चौरासी
४७२	वावेवां	बानवेवां
४७५	अरहत	अरहंत
४७८	अथागम	अर्थागम
४८३	धर्मकथा	धर्मकथा
४८७	इसमे	इसमें
४९०	पूर्व गत	पूर्वगत
५००	निर्मलता	निर्मलता
५०३	यशस्वो	यशस्वी
५०४	तोर्थकर	तीर्थंकर

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३	विचारे	विचारे	१३६	कांसीकेपात्र	कांसी के पात्र
६	पुरुषों से	पुरुषों के	,,	पात्रषणा	पात्रैषणा
११	वायुकाय के जीवों	त्रसकाय के जीवों	१३६	साधर्मीं	साधर्मी
२३	श्राता	श्रोता	१४२	कटे हुए हैं	...कटे हुए हैं...
२४	उपयोग वस्तु	उपयोगी वस्तु	१४६	मर्दन	मर्दन
३०	सत्ययाम	सत्य या	१५१	अर्था गम	अर्थागम
३१	न रहले वाले	न रहने वाले	१५२	श्रमणभगवान्	श्रमण भगवान्
३४	मनोवृत्ति का	मनोवृत्ति को	१५४	ओर	और
३६	दख	देख	१५५	पुरिम	पूरिम
४३	क्यांकि	क्यों कि	१५८	सर्वप्रधान	सर्वप्रधान
७७	वोरप्रभु	वीरप्रभु	१७४	वेतालोय	वेतालीय
८१	साध	साधु	,,	आदस	आदि से
८५	पूर्वसंखडी	पूर्वसंखडी	१८४	धर्मदायज	धर्मदायज
८८	साधुओं	साधुओं	१८८	नंदीचूर्ण	नंदीचूर्ण
,,	अग्रपिण्ड	अग्रपिण्ड	१९०	दुष्कर हैं	दुष्कर है
९८	आधाकर्भी	आधाकर्मी	१९२	पर्वत	पर्वत
९९	भिक्षार्थ	भिक्षार्थ	१९४	वर्णवाला	वर्ण वाला
१०४	निर्वल	निर्बल	१९६	सूत्रकृतांक	सूत्रकृतांग
१०५	साघु	साधु	२०२	निर्ग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
१०७	स	इस	२०३	वन्धन	वन्धन
११०	साघु	साधु	२०३	अ०	अ० १०
११४	भिक्षओं	भिक्षुओं	२०५	दु ख	दुःख
११६	मार्ग	मार्ग	२१४	उपघान	उपधान
११७	एकत्रित	एकत्रित	२१७	कर्मवन्ध	कर्मवन्ध
,,	नोका	नौका	२१९	फसे	फंसे
११९	स्पर्श	स्पर्श	२२८	कर्म	कर्म
१२१	हा	हो	२३०	मृगवत्ति	मृगवृत्ति
१२४	प्रशसा	प्रशंसा	२३८	घरु	घरू
१२७	शरोर	शरीर	२४३	पानों में	पानी में

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२५२	तीर्थकरों	तीर्थंकरों
२६०	सूत्रकृतांक	सूत्रकृतांग
२६२	वैसे	वैसे
२६४	धर्मपूर्वक	धर्मपूर्वक
२७२	दोप्रकार	दो प्रकार
२७४	आरभ	आरंभ
२७५	दुखपूर्वक	दुःखपूर्वक
२८०	सर्व से	सर्व से
२८४	वर्षधर	वर्षधर
२८५	कटशालमली	कूटशालमली
२९४	अकर्मभूमिज	अकर्मभूमिज
२९६	क्रूर्मोन्नता	कूर्मोन्नता
३०१	पूर्ववत्	पूर्ववत्
३०३	आमाति	आयाति
३०६	कारणां	कारणों
३१५	निर्ग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
३१६	हेट्ठिमहेट्टिम	हेट्ठिमहेट्ठिम
३२५	वाला	वाला
३२६	आर्य	आर्य
३२९	दक्षिणावर्त	दक्षिणावर्त
३३२	माल्यवत्पर्याय	माल्यवत्पर्याय
३३७	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त
३५६	शीताष्ण	शीतोष्ण
३५८	स्मी	स्वामी
३६१	पयङ्की	पर्यङ्का
३६६	अर्थदण्ड	अर्थदण्ड
३६८	शब्द	शब्द
३७१	······दर्शनधर	···दर्शनधर
३७४	पाश्वनाथ	पार्श्वनाथ
३७७	गई	गई
३७९	ऋतुए	[illegible]

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३८१	निर्वतित	निर्वर्तित
३८५	गोतों	गीतों
३९२	प्रकर	प्रकार
४०४	रत्री	स्त्री
४०६	सुर्णमय	सुवर्णमय
४१७	उत्पातपर्वत	उत्पातपर्वत
४२०	वर्गावर्ग	वर्गावर्ग
४२५	सर्वतोभद्र	सर्वतोभद्र
४३०	देवों को	देवों की
४३२	सूरावत	सूरावर्त
४३५	पुखों में	सुखों में
४४०	धमप्रभा	धूमप्रभा
४४८	शुक्लवणं	शुक्लवर्ण
४५०	प्रत्येक शरी र नाम	प्रत्येकशरीरनाम
४५२	श्रोतेन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय
४५४	हसता	हंसता
४५५	केवलदनावरगा	केवलदर्शनावरण
४५७	तेतोसवां	तेतीसवां
४६१	शरीरवधन	शरीरबंधन
४६३	ततालीसवां	तेतालीसवां
४६६	श्रोर	और
४६७	व्यतोत	व्यतीत
४७०	[illegible]	चौरासी
[illegible]	[illegible]	नानवेवां
[illegible]	[illegible]	अरहंत
[illegible]	अथागम	अर्थागम
[illegible]	[illegible]	धर्मकथा
[illegible]	[illegible]	इसमें
[illegible]	[illegible]	पूर्वगत
[illegible]	निर्मलता	निर्मलता
[illegible]	यशस्वो	यशस्वी
[illegible]	तीर्थंकर	[illegible]